

ॐ

श्री भाव मिश्र विरचितः

राय भवानी प्रसादस्य

निर्देशात्

वैद्य (परिदुत) राय श्री कृष्ण चन्द्र

कृत या भाषा टीका सहितः

मुद्रितः

BHAVAPRAKASHA

SATIK—VOL I

इन्द्र प्रस्थ नगरे

यत्ने मुद्रितः

म १९४४

श्री गणेशाय नमः॥
सूची पत्र
भाव प्रकाश के पूर्वखंडका
प्रथमो भागः

प्रकरण	पृष्ठ	महाभूतों के गुण	२४	उसी का उत्तर कालीन	२५
मंगलाचरण आदि	१	प्रकृति सात	३१	लक्षण ॥	४
आयुर्वेद का लक्षण	१	विकार सोलह	३२	उसमें पुत्र गर्भवती का	४५
आयुर्वेद की निरुक्ति	२	मन के योग में गुण भेद	१	लक्षण ॥	१८
दक्ष मादु माव	१	गर्भोत्पत्ति क्रम	३५	पैप्री दीर्घ आकार	५०
अश्विनी कुमार प्रा०	३	रज स्वला का लक्षण	१	उन न पुंसक आदियों	१
इन्द्र प्रा०	४	उसके नियम	३६	का लक्षण ॥	५
आत्रेय प्रा०	५	इनके न करने में दोष	१	और भी गर्भ का प्रकृ	५३
भार हाज प्रा०	८	रज स्वला का कृत्य	३७	पुत्रों के आहार आवा	५
चरक प्रा०	११	पतिकृत्य उस गर्भाधा	५	संकी चेष्टा भेद करण	५३
धन्वन्तरि प्रा०	१३	नमें निषिद्ध और विहि	५	गर्भ लक्षण	१
सुश्रुत प्रा०	१५	तकाल ॥	५	रुद्ध बाग्भट का कथन	५४
ग्रन्थ का आरम्भः	१७	और उनका फल	३८	शरीर की उत्पत्ति समवा	५
सृष्टि क्रम	१८	तन्त्रान्तरोक्त	३९	विकार गान्तर	६१
प्रकृति का स्वरूप वि०	१९	युग्म और अपुष्प एवि-	४०	तन्त्रान्तर में दोष स्व	६२
प्र० पुरुषों का साधर्म्य	२०	का फल ॥	५	दोष शब्द की निरुक्ति	१
उनका वैधर्म्य	१	उमें योग्य और अयो-	१	वायु का स्वरूप	६३
प्रकृति के नाम	२२	ग्य पुरुष ॥	५	उन वायु के नाम	६५
गुण	१	योग्य अयोग्य स्त्री	४१	उदा नादियों के स्थान	१
सत्वादि युक्त मन के गु	१	गर्भ के उत्पन्न होने का	४२	उनके कर्म	११
रजोगुण युक्त मन के गु	२३	गर्भाशय का स्वरूप	४३	पित्त का स्वरूप	६७
तमोगुण युक्त मन के गु	२४	गर्भोत्पत्ति सत्त्व	४५	पित्तों के नाम	६८
आह्नकार अभिमान-	२६	तन्त्रान्तर	४७	पाच कादि पित्तों के स्था	१
व्यापार लक्षण ॥	१	परिहार के अर्थ नन्	५	उनके कर्म	११
उत्पत्ति प्रकाश के का	१	काल गृहीत गर्भ वाली	५	कफ का स्वरूप	७६
उमें इन्द्रियों के विषय	२७	का लक्षण ॥	४८	कफों के नाम	१

कुंदादियों के स्थान	॥	दूसरे विशेष	॥	स्नायु जस्में स्नायु का स्वरूप	१४५
उन स्थानों में गत	११	कफ स्वरूप	१४६	शाखा में प्राप्त स्नायु	१४७
कफ के कर्म	॥	ग्रहणी लक्षणा	१४६	कोष्ठ गत	॥
धातु पद की निरुक्ति	१४७	इस आहार पाक में वि	१४७	ग्रीवा के ऊपर प्राप्त	॥
धातु वों के कर्म	॥	स्थूल सूक्ष्म रस भेद और	॥	धमनि	॥
रस शब्द की निरुक्ति	॥	ओज रूप का लक्षणा	१४८	उनमें ऊपर की	१४८
रस का स्वरूप	१४८	शुक्र का स्वरूप	१४९	कंडरा	१४९
रस के स्थान	॥	जीव की सर्वत्र स्थिति	॥	उनमें हस्त याद गत	॥
उत्के कर्म	॥	गर्भ को उत्पन्न करने वा	॥	कंडराओं की विशेषता	॥
रक्त का स्वरूप	१४९	ले शुक्र का लक्षणा	१५०	रन्ध्र	१५०
उत्का स्थान	१५०	शुक्र का स्थान	॥	स्रोत	॥
मांस का स्वरूप	॥	उसके निकलने का मा	॥	जाल	॥
उत्स के पेशी	॥	मांस के निकलने का मा	१५१	कूच	१५१
मांस पेशी वों की संख्या	१५१	आर्तव का स्वरूप	॥	रज्जु	१५२
उनमें शाखा गत	॥	गर्भ ग्रहण योग्य आ	१५२	सीवन	॥
कोष्ठ गत	१५२	तब काल लक्षणा ॥	॥	संचात	॥
गले के ऊपर की	॥	धातु वों के अलग शु	१५३	सीमन	॥
मांस पेशी वों के कर्म	१५३	धातु वों के मल	१५३	त्वचा	॥
भेद स्वरूप	१५४	उप धातु	॥	अवभासिनी	१५४
उत्का स्थान	॥	आशय	१५४	लोम और लोम कूप	१५५
हड्डी का स्वरूप	॥	कला का स्वरूप	१५५	गर्भ का मासिक क्रम	॥
अस्थि वों की संख्या	१५५	वोसात	१५५	दो हृदय विशेष फल	१५६
शाखा गत अस्थि	१५६	मर्म	१५६	गर्भ का प्रथम अंग	१५६
पसली आदि में प्राप्त	॥	शृंगा वक	१५६	गर्भ का जीवनों पायान्त	१५७
गले के ऊपर की अस्थि	॥	छाती के मर्म	१५७	गर्भ विट्टिका कारण और	॥
अस्थि वों का प्रयोजन	१५७	सन्धि दो प्रकार की	॥	रजयाय ॥	॥
मज्जा का स्वरूप	॥	चेष्टा वाली और स्थिर	१५८	दृष्टि और रोम कूपों की	१५८
मज्जा का स्थान	॥	कोष्ठ में प्राप्त	॥	अवृद्धि ॥	॥
शुक्र की उत्पत्ति	१५८	ग्रीवा के ऊपर प्राप्त	१५९	नख के शो की सदा दृष्ट	॥
आग शय स्वरूप	१५९	शिरा	१६०	अचेतन अंग	॥

गर्भ का वातमलमूत्रन	१६६	अभिमन्त्रण	१६६	उददने के गु	२०६
होने में कारण ॥	*	माता के दूध न होने में	*	स्नान के गुण	२०७
गर्भवती कृत्य	१६७	और धातु के न मिलने	१६७	घटन का पुरुष	२०८
प्रसव भास	१६८	में प्रकार ॥	१६८	वस्त्र धारण	२०९
सूतिका घरकी आरु	१६९	बालक का अन्न प्राण	१६९	चन्दन लगाने के गुण	२१०
अन करीब बालक हो	१७०	न समय ॥	१७०	पुष्पादि धारण	२११
ने वाली का लक्षण ॥	*	उसकी परि चर्च्यी वि	१७१	आभूषण का धारण	२१२
उसका उपचार	१७२	बालक को स्वभाव से हि	१७२	रत्नादि धारण	२१३
दाई का ल०	१७३	उसके कंठला दिका स	१७३	खड़ाऊं का पहनना	२१४
दाई का कृत्य	१७४	बालक आदिकी अ०	१७४	भोजन दि के गु०	२१५
पीड़ा रहित के प्रवाह	*	प्रकृति लक्षण	१७५	रसादि यों के पाक का	२१६
ण से वै गुण	१७५	अनन्तर देश	१७५	ज्ञान ॥	२१७
बालक की जन्मोत्तर वि	१७६	आरूप देश ल०	१७६	भोजन पात्र के गु०	२१८
जन्म के नियम	१७७	जाङ्गल लक्ष०	१७७	भोजन के प्रथम लक्षण	२१९
उसके नियम समपकी	१७८	साधारण देश ल०	१७८	अन्न का भक्षण के	२२०
अवधि ॥	१७९	उनमें वागभटका मत	१७९	हृष्ट दोष दूर होने वस्त्र	२२१
दुग्ध काल लक्षण	१८०	दिनादि चर्च्य	१८०	वस्त्र आदि का स्मरण	२२२
उसकी प्रवृत्ति	१८१	उत्तरे स्वस्थ का लक्ष०	१८१	भोजनादि क्रम	२२३
उसके अल्प होने का हेतु	१८२	दिन चर्च्यी	१८२	मधुर अन्न का गुण	२२४
उसके वृद्ध होने का कारण	१८३	हातुन की विधि	१८३	सुरुचि विधि निवारण	२२५
फालम धान का लक्षण	१८४	सील गरम जल की कु	१८४	भोजन का भोजन परि	२२६
दुग्ध के विगडने का क	१८५	और शीतल जल की कु	१८५	शुष्क अन्नादि यों का वि	२२७
विगडे हुवे दुग्ध का ल०	१८६	सुख का धोना	१८६	विद्यमान शन का लक्षण	२२८
उसकी शोधन विधि	१८७	कटु तैलादि नास	१८७	अकाल में भोजन किये	२२९
शुद्ध दुग्ध का लक्षण	१८८	अंजन	१८८	का दोष मुक्त भावसे	२३०
धातु का लक्षण	१८९	बालों का साफ करना	१८९	उत्पन्न हुये ॥	२३१
निषेध धातु का लक्षण	१९०	शीशे का देसना	१९०	कफ का इलाज	२३२
बालक के दुग्ध धान की	१९१	कसरत	१९१	नामूल गुण	२३३
विधि ॥	*	अभ्यङ्ग	१९२	भोजन के अनन्तर की	२३४
अभ्यङ्ग विगाड	१९३	सुगन्ध तैल	१९३	क्रिया ॥	२३५

वायुके गुण	२३३	व्यासीक्त पुंसद नान्तर	२५२	वेद भेद में आयु भेद	२५१
दिन के शयन का गुण	२३५	कतु चर्या	२५६	आग लुक हेतु	२५२
और भी अन्न के संस्थाप	२३७	सुश्रु नोक्त चपलक्षण	२५४	आयु का विचार	२५३
न का राग ॥	*	अंशुदक का लक्षण	२६१	दीर्घ आयु का लक्षण	२५३
अन्न का उदर में स्थिति	२३८	रोग का लक्षण	२६३	अल्प आयु का लक्षण	२५४
हेतु ॥	*	कर्माजि रोग	२६४	चिकित्सा विधान फ	२५६
और भी वर्जनीय	२३९	दोषज रोग	२६५	परिचारक का लक्षण	२५७
अजीर्ण के कारण	२४०	कर्म दोषज	२६६	द्रव्य	२५८
अध्ययन का लक्षण	२४१	साध्य असाध्य याध्य	२६७	औषध ग्रहण परिभा	२५९
उसका इलाज	२४२	उपद्रव का लक्षण	२६८	द्रव्यों की परीक्षा	२६०
सायं काल के भोजन से	*	अरिष्ट का लक्षण	२६९	स्वभाव से हिन	२६१
अजीर्ण होने में भोजन	*	चिकित्सा का लक्षण	२७०	स्वभाव से अहिन	२६२
का उपाय ॥	२४३	चिकित्सा की विधि	२७१	संयोग विरुद्ध	२६३
दिन के मधुन का निषेध	२४४	रोग को न जान कर	*	औषध ग्रहण संकेत	२६४
चंद्रमण के गुण	२४५	इलाज करने में दोष	२७२	प्रतिविधि	२६५
पगड़ी धारण के गुण	२४६	रोग को जान कर औष	*	द्रव्य गन पच पदार्थों	२६६
पाद धारण धारण गुण	२४७	धन जानने में दोष	२७३	के कर्म	२६७
कूब धारण गुण	२४८	रोग और औषध के	*	मधुर रस का गु	२६८
दंड धारण गुण	२४९	ज्ञान में गुण	२७४	अति युक्त मधुर रस गु	२६९
पालकी की सवारी के गु	२५०	चिकित्सा का फल	२७५	अम्ल का गुण	२७०
नांव की सवारी के गुण	२५१	चिकित्सा के अंग	२७६	अति युक्त अम्ल का गुण	२७१
हाथी की सवारी के गु	२५२	रोग का लक्षण	२७७	लवण का गुण	२७२
घोड़े की सवारी के गु	२५३	चिकित्सा के योग्य	२७८	अति युक्त लवण का गु	२७३
धूप के गुण	२५४	चिकित्सा के अपोय	२७९	कटु गु	२७४
वारिण के गुण	२५५	द्रुत का लक्षण	२८०	अति युक्त कटु रस का गु	२७५
कुद्दा के गुण	२५६	व्रम की यात्रा में शकुन	२८१	तिक्त रस का गु	२७६
अग्नि के गुण	२५७	विचार ॥	२८२	अति तिक्त रस का गु	२७७
धूम का गुण	२५८	विचार का लक्षण	२८३	कषाय गु	२७८
अक्षर	२५९	निषिद्ध वैद्य	२८४	अति युक्त कषाय का गु	२७९
सर्व चर्या	२६०	विचार का कर्म	२८५	गुण	२८०

लघु आदिगुण ना	२२	सौफ सीया के ना० गु०	३४३	दोनो रासना के नाम गु०	२२
लों के गु०	२३	मेयो वनमंघी नाम गु०	३४३	तेजवती के नाम गु०	२३
आम शक	३२५	चार दीना नाम गु०	३४३	माल कंगुनी के ना गु०	३४३
दीर्घ	३२५	हिंदू के नाम गु०	२२	कुठ के नाम गु०	२२
विपाक	२२	बच्च नाम गु०	२२	पोहकर सुल के ना गु०	२२
विपाकों के गुण	३२३	सुरासानी बच्च नाम गु०	२२	चोक के ना गु०	३५८
प्रभाव	२२	कुलिजन नाम गु०	३४४	काकडा बीड़ी के ना गु०	२२
हडके नाम लक्षण गु०	३२५	चोव चीनी गु०	२२	काय फल के ना गु०	२२
बहुँडे के नाम गुण	३३३	देना ही बेर के नाम गु०	३४५	भारंगी के नाम गु०	३५५
मावले के नाम गु०	२२	वाय विडङ्ग के नाम गु०	३४६	पाषाण भेद के ना गु०	२२
विफला के नाम ल० गु०	३३२	तुवरू फल के नाम गु०	२२	धव के ना गु०	२२
सोव के नाम गु०	२२	वंश लोचन के नाम गु०	२२	मजीद के नाम गु०	३६०
अन्न के नाम गु०	३३३	समुद्र फेन	३४७	कुसुंभ के नाम गु०	२२
दीपल के ना गु०	३३४	अष्टवर्ग कालक्षरा गु०	२२	लाही के नाम गु०	२२
मिरच के ना गु०	३३५	जीवक रुच भक को	२२	हलदी के ना गु०	३६३
विकुट ना गु०	३३६	उत्पत्ति नाम ल० गु०	२	कपूर हलदी ना गु०	२२
पीपला मूल ना गु०	२२	मेदा महा मेदा की उ	३४८	बन हलदी ना गु०	३६३
नर रूपण काल गु०	२२	त्यत्ति ल० ना गु०	२	दार हलदी नाम गु०	२२
चव के गुण	३३७	काकोली धीर काको	३४९	रस वत ना गु०	२२
गज पीपल के नाम गु०	२२	ली की उत्पत्ति ल० गु०	२	वावची ना गु०	३६३
चित्रक के ना गु०	२२	अहि रुद्धि की उत्पत्ति	३५०	चकोड ना गु०	२२
पंच कोल का ल० गु०	३३८	लक्षण नाम गुण	२	अजीस ना गु०	३६४
बड़ पण का ल० गु०	२२	इनकी प्रति निधि	३५१	लीध ना गु०	२२
अजवाइन के नाम गु०	२२	मुलहरी के नाम गु०	३५२	लहसन ना गु०	३६५
अजमोद के ना गु०	३३९	कम्भीला के ना गु०	२२	विआज नाम गु०	३६६
सुरासानी अजवाइन के	२२	अमल तास के ना गु०	२२	मिलावा ना गु०	३६७
गुण ॥	२	कुटकी के नाम गु०	३५३	भाङ्ग नाम गु०	३६८
त्याह अंस सफेद जीरे के	२२	दिगपते के नाम गु०	२२	पेल ना गु०	२२
नाम गुण ॥	२	इन्द्र अज के नाम गुण	३५४	भस्मी नाम गु०	३६८
धनियाँ के नाम गुण	३४०	मयम फल के नाम गु०	३५५	पोल दाना ना गु०	२२

मेन्धव नाम गु०	३९०	सलई की राल ना० गु०	३९०	नालीस पत्र ना० गु०	३९४
सांभर ना० गु०	३९१	शिलास्त ना० गु०	३९१	सीतल चीनी ना० गु०	३९५
पाङ्गना० गु०	३९२	जायफल ना० गु०	३९२	गन्धकोकिला ना० गु०	३९६
विडलवरा ना० गु०	३९३	जावड़ी ना० गु०	३९३	पीली खस ना० गु०	३९७
सौचल नाम गुण	३९४	लवङ्ग ना० गु०	३९४	एलवालुक ना० गु०	३९८
चनास्वार ना० गु०	३९५	इलायची पूरवी ना० गु०	३९५	जलमोघा ना० गु०	३९९
जवास्वार ना० गु०	३९६	इलायची गुजरानी ना० गु०	३९६	पिडित कणाक ना० गु०	४००
सज्जी सास ना० गु०	३९७	तज ना० गु०	३९७	चकवत के ना० गु०	४०१
सुहागना० गु०	३९८	दारचीनी ना० गु०	३९८	पवाड नाम गु०	४०२
क्षारद्वज क्षारत्रय क्षा	३९९	तेज पात ना० गु०	३९९	शूल कमल के ना० गु०	४०३
रायक लक्षणा	४००	नाग केसर ना० गु०	४००	इतिकपूरदि वर्गः	४०४
चूक नाम गुण	४०१	विजात और चतुर जा	४०१	अथ गुड च्यादि वर्गः	४०५
कपूर आदि वर्ग	४०२	त का लक्षणा गु० ॥	४०२	गिलीय उत्पत्ति ना० गु०	४०६
कपूर के ना० गु०	४०३	केसर ना० गु०	४०३	पाव ना० गु०	४०७
चीनी पाक पूर ना० गु०	४०४	गोलो चन नाम गु०	४०४	वेल के ना० गु०	४०८
कस्तूरी ना० गु०	४०५	नख नखी गन्ध द्रव्य गु०	४०५	कुहो ना० गु०	४०९
मुसक दाना ना० गु०	४०६	सुगन्ध वाला नाम गु०	४०६	पाटला काष्ठ पाटला	४१०
गौरा साख भेद ना० गु०	४०७	वीरणा ना० गु०	४०७	नाम गुणा	४११
चन्दन ना० गु०	४०८	खस नाम गुण	४०८	अरनी नाम गु०	४१२
पीत चन्दन ना० गु०	४०९	जटा मांसी ना० गु०	४०९	सोना पाठाना० गु०	४१३
रक्त चन्दन ना० गु०	४१०	वाल रुड ना० गु०	४१०	रुहत पंचमूल काल गु०	४१४
पतंग ना० गु०	४११	मोथानागर मोथाना गु०	४११	सरिवन ना० गु०	४१५
अगर मा० गु०	४१२	कचूर ना० गु०	४१२	पिठवन ना० गु०	४१६
देव द्वार ना० गु०	४१३	मरोड फली ना० गु०	४१३	वन भाट ना० गु०	४१७
घूप ना० गु०	४१४	गन्ध यला पत्ती ना० गु०	४१४	दोनों कटे ली ना० गु०	४१८
नगर ना० गु०	४१५	प्रिय गुना० गु०	४१५	सफेद कटे ली ना० गु०	४१९
पदम काष्ठ ना० गु०	४१६	रेनुका ना० गु०	४१६	गोखरू नाम गुण	४२०
गुगल ना० गु०	४१७	भटोरा के ना० गु०	४१७	लघु पंचमूल काल गु०	४२१
धूप नाम गुण	४१८	धनेर ना० गु०	४१८	दशमूल काल गु०	४२२
रान ना० गु०	४१९	उन्नी का भेद भटे उर ना० गु०	४१९	जीवनी ना० गु०	४२३

वनमूङ्गना०गु०	४००	दंकारीके ना०गु०	८८	दीनोंदलीना०गु०	४३४
वनउड़ना०गु०	८८	देतना०गु०	८८	जमालमोदना०गु०	८८
जीवनीययागकाल	४००	जलदेतना०गु०	८८	इन्द्रायतना०गु०	४३६
क्षणागुण॥	८८	समुन्दरफलना०गु०	८८	नीलना०गु०	८८
सफेदऔरलालअंडी	४	अंबोदना०गु०	४३४	सरफोकाता०गु०	४३७
नामगुण॥	४०४	चरोवरिआरना०गु०	८८	जवांसाऔरधमासे	८८
सफेदलालआंकका	४	लक्ष्मणा०गु०	४३४	कैना०गु०	४
नामगुण॥	४३०	सौनावेलना०गु०	४३६	मुंडीनामगु०	४३८
सेहुंडना०गु०	४३१	कपासना०गु०	८८	देनोंकंगकेना०गु०	४३९
मीकाकाईना०गु०	४३२	वांसना०गु०	८८	नालमखाना०गु०	८८
करिहारीनामगु०	४३३	नरकटना०गु०	४३३	हारसिंगारना०गु०	४४०
सफेदलालकनेर	८८	सरयतना०गु०	८८	घीउकुआरना०गु०	८८
धतूरेकेना०गु०	४३४	मूडना०गु०	८८	दीनोंपुनर्नवाना०गु०	४४१
वांसकेनामगुण	८८	काषा०गु०	४३४	गन्धप्रसारणीना०गु०	४४२
पित्तपापडा०गुण	४३५	गन्धपटेरना०गु०	८८	दीनोंसारिदाना०गु०	८८
नीमनामगु०	८८	मैथीगुणना०गु०	८८	भाङ्गना०गु०	४४३
वकाचनना०गु०	४३६	कुशना०गु०	४३६	हुलीकेना०गु०	४४४
जलनीमना०गु०	८८	कचुराणा०गु०	८८	जायमाना०गु०	८८
दीनोकवनारना०गु०	८८	मूङ्गना०गु०	८८	मरोहफलीना०गु०	८८
दीनोंसहिंजना०गु०	४३७	दूवकेना०गु०	४३७	किंवाचना०गु०	४४५
सफेदऔरनीलेफूल	४३८	सफेददूवकेना०गु०	८८	कीवादीदीदीना०गु०	८८
कीवियाकानाना०गु०	४	गांडरना०गु०	४३९	काकअंधाना०गु०	८८
मेडडीना०गु०	१७	विदारीकन्दना०गु०	८८	नागपुष्पीकेना०गु०	४४६
कोरेआना०गुण	८८	दारहीकन्दना०गु०	८८	मेढासीडीना०गु०	८८
दीनोंकरंजना०गुण	४३९	मूसलीना०गु०	४३९	हंसपदीना०गु०	८८
हारकरंजना०गु०	४३३	दीनोंसतावरकेना०गु०	८८	सोमवल्लीना०गु०	४४७
सफेदलालगुंजाना०गु०	८८	असगन्धना०गु०	४३३	अमरवेलना०गु०	८८
किवांचना०गु०	४३३	पाहना०गु०	८८	पातालगरुडीना०गु०	८८
रोहिणीना०गु०	८८	सफेदनिसोयना०गु०	४३४	वन्दालना०गु०	८८
नीलकेना०गु०	४३३	कालीनिसोयना०गु०	८८	वटपत्तीना०गु०	४४८

वट पत्री ना० गु०	॥	सेवार ना० गु०	४६१	इति पुण्यादि वर्गः	॥
मछे छी ना० गु०	॥	सेवती	॥	अथ वट आदि वर्गः	४७१
भरतही ना० गु०	४४४	नेवारि ना० गु०	४६२	वरके ना० गु०	॥
घांख पुष्पी ना० गु०	॥	वसीती बेलके ना० गु०	॥	पीपल के ना० गु०	॥
अर्क पुष्पी ना० गु०	४५०	दोनों चमेली ना० गु०	४६२	मारस पीपल ना० गु०	४७२
लजालू के ना० गु०	॥	दोनों जुही ना० गु०	४६३	बेलिया पीपल	॥
दूसरे लजालू के ना० गु०	॥	चम्या ना० गु०	॥	गूलर ना० गु०	॥
दूधी के ना० गु०	॥	मौल सरी ना० गु०	॥	कठिया गूलर ना० गु०	४७३
भूमि आंवले के ना० गु०	४५१	बड़ी मौल सरी ना० गु०	४६४	पाकर ना० गु०	॥
ब्रह्मी के ना० गु०	॥	कदंब ना० गु०	॥	सिरिस ना० गु०	॥
गुमा के ना० गु०	४५२	कूजा ना० गु०	॥	क्षीरदक्ष पंद वल्क-	५
हुर नाम गुगा	४५२	मालती ना० गु०	४६५	लकाल क्षगा गु०	४७४
दोनों खेखसे ना० गु०	४५३	माधवी ना० गु०	॥	साल ना० गु०	॥
सेनै आ ना० गु०	॥	दोना के वड़े के ना० गु०	॥	साल मेद ना० गु०	४७५
जल पीपल ना० गु०	४५४	किंकिरात ना० गु०	४६६	सलई ना० गु०	॥
गोभी ना० गु०	४५५	करीं कार ना० गु०	॥	शीसम ना० गु०	॥
नाग दोन ना० गु०	॥	अप्रोक पुष्प ना० गु०	॥	अर्जुन ना० गु०	४७६
वर वेल ना० गु०	४५६	वारण पुष्प ना० गु०	४६७	विजय सार ना० गु०	॥
नका छिकनी ना० गु०	॥	चारो कट सरे या के ना०	॥	खैर नाम गुगा	४७७
ककरोन्दा ना० गु०	॥	कुन्द ना० गु०	॥	सफेद खैर ना० गु०	॥
सुदर्शन ना० गु०	४५७	सुद कुन्द ना० गु०	४६८	दुर्गन्ध खदिर ना० गु०	॥
सुसा कासी ना० गु०	॥	तिलक पुष्प ना० गु०	॥	रोहितक के ना० गु०	४७८
मोर पिरवा ना० गु०	॥	दुप हरिया ना० गु०	॥	कीकर ना० गु०	॥
इति गुड च्या विवर्गः	॥	जवा पुष्प ना० गु०	॥	रीठा ना० गु०	॥
अथ पुष्प वर्गः	॥	सेन्दुरि आ ना० गु०	४६९	पित्तो जिभा ना० गु०	॥
कमल के नाम गु०	॥	अगस्ति पुष्प ना० गु०	॥	हिं गो र ना० गु०	४७९
पद्मती ना० गु०	४५८	दोनों तुलसी ना० गु०	॥	जिंगिनी ना० गु०	॥
नवीन पत्र आदि ना० गु०	४५९	मरु आ नाम गुगा	४७०	तुन के ना० गु०	॥
स्थान कमल ना० गु०	४६०	द्वना ना० गुगा	॥	भोज पत्र ना० गु०	४८०
कुमुद ना० गु०	॥	वाकरी ना० गु०	॥	पलाश ना० गु०	॥

सेमल ना.गु.	४८१	स्वचूजा ना.गु.	४८१	निर्मली ना.गु.	४८१
मैवरस ना.गु.	४८२	खीना ना.गु.	४८२	दाख ना.गु.	४८२
कटिया सेमल ना.गु.	४८२	सुपारी ना.गु.	४८२	खजूर ना.गु.	४८२
धवनाम गु.	४८३	ताड़नाम गु.	४८३	कोदारा ना.गु.	४८३
धामित ना.गु.	४८३	ताड़ीनाम गु.	४८३	पिडरवजूरी ना.गु.	४८३
करीर ना.गु.	४८३	बेल फल ना.गु.	४८३	बादाम ना.गु.	४८३
साखुना.गु.	४८४	कच्चे वेल के ना.गु.	४८४	सेव ना.गु.	४८४
वर ना.गु.	४८४	कैथ ना.गु.	४८४	अमृत फल ना.गु.	४८४
कठनी ना.गु.	४८५	नारङ्गी ना.गु.	४८५	पीलू नाम गु.	४८५
घटा पावला ना.गु.	४८५	तेन्दु ना.गु.	४८५	अखरोट ना.गु.	४८५
जलसिरीस ना.गु.	४८६	कुचला ना.गु.	४८६	विजौर ना.गु.	४८६
शमी ना.गु.	४८६	बड़ जामन ना.गु.	४८६	मधु के कडी ना.गु.	४८६
क्षितवन ना.गु.	४८७	कैरे और नदी के जा	४८७	दोना जवारी ना.गु.	४८७
मिनिस ना.गु.	४८७	मत्त नाम गु.	४८७	नीम्बू ना.गु.	४८७
गुईसहा ना.गु.	४८८	देर नाम गु.	४८८	मिठा नीम्बू ना.गु.	४८८
द्वितीयादि वर्गः	४८८	और देर के लक्षणा गु.	४८८	कम खरब ना.गु.	४८८
आम आदि फल वर्गः	४८९	पानी आंवला ना.गु.	४८९	दमली ना.गु.	४८९
आम के ना.गु.	४८९	हर फारे बड़ी ना.गु.	४८९	अमल बेत ना.गु.	४८९
अमचर का लक्षणा गु.	४९०	दोना करो न्दा ना.गु.	४९०	विषामिल ना.गु.	४९०
आमकी गुठली के गु.	४९०	चिमें जी नाम गु.	४९०	चतुर म्ल पंचा म्ल	४९०
नवीन पत्र के गु.	४९१	सिरनी ना.गु.	४९१	काल.गु.	४९१
अम्बाडा ना.गु.	४९१	कंटाई ना.गु.	४९१	परिभाषा	४९१
रत्नाक्ष ना.गु.	४९२	कमल गझी ना.गु.	४९२	द्वितीयादि वर्गः	४९२
कोयल ना.गु.	४९२	सिधाडा ना.गु.	४९२	धातु आदिका वर्गः	४९२
कट हल ना.गु.	४९३	भेंद ना.गु.	४९३	धातु दो के ल.गु.	४९३
बड़ हल ना.गु.	४९३	दोना महुवो के ना.गु.	४९३	सोने की वस्तु ना.गु.	४९३
केलाना.गु.	४९४	फालमा नाम गु.	४९४	चादी की उ.ना.ल.गु.	४९४
धुंकर ना.गु.	४९५	राहु नृत ना.गु.	४९५	नाम की उ.ना.ल.गु.	४९५
नारियल ना.गु.	४९५	अनार ना.गु.	४९५	राहु ना.ल.गु.	४९५
तरबूज ना.गु.	४९६	बहु वार ना.गु.	४९६	यसद ना.ल.गु.	४९६

सीसेकी उत्पत्ति नाम	२	खपरि आ ना० गु०	२२	उपवियों का निरूपण	५५९
गुरा लक्षणा ॥	२२	कसीस ना० गु०	२२	इति धान्यादि वर्गः	२२
लोहकी उ० ना० ल० गु०	५२३	सोरही ना० गु०	५५६	अथ धान्य वर्गः	२२
सार लोहका ल० गु०	५२४	कांदो ना० गु०	२२	धान्यों के भेद	२२
काला लोह काल० गु०	२२	पहाड़ी माटी उत्पत्ति	२	शालि धान्य काल० गु०	५५७
मंहर के ल० गु०	५२६	लक्षणा नाम गुरा	५५७	धानों के नाम	२२
अथ उप धानु	२२	रत्न की निरुक्ति	५५८	उनके गु०	२२
सोना माखी ना० गु०	५२७	रत्नों का निरूपण	२२	लाल धान के गु०	५६०
रूपा माखी ना० गु०	५२८	हीरे के ना० ल० गु०	५५९	ब्रीही धान्य काल० गु०	५६१
लीला घोषा ना० गु०	५२९	हीरे के भस्म का गु०	५५९	सारी के ल० गु०	२२
खपरि आ ना०	२२	पद्मे के ना०	२२	सारी के ना०	५६२
कासा ना० गु०	२२	मार्गिक के ना०	२२	उनके गु०	२२
दोना पीतल के ना० गु०	५३०	युखराज के ना०	२२	शुक धान्य	२२
सिंदूर ना० गु०	५३१	नीलम के ना०	२२	उन के ना० गु०	५६३
शिला जीत ना० गु०	२२	गोमेद ना०	२२	गेहूँ के ना० गु० ल०	२२
पारेकी उत्पत्ति लक्षण	२	वैदुर्य ना०	२२	अथ शिन्दी धान्य	५६४
नाम गुरा ॥	५३३	मोती ना० गु०	२२	और उसके पर्याय	२२
उप रसों के ल०	५३४	मूँड़े के नाम	५५२	उनके गु०	२२
शिङ्ग-रिफ ना० ल० गु०	५३६	रत्नों के गुरा	२२	मूँड़े के गु०	२२
गंधक की उत्पत्ति नाम	२	कौनसा रत्न किस ग	२	उड़द के गु०	५६६
लक्षण गुरा ॥	५३७	हको हित होता है ॥	२२	लोविया ना० गु०	२२
अधक की उ० ना० ल० गु०	५३८	उप रत्नों का निरूपण	५५३	पावय ना० गु०	५६७
हरनाल के ना० ल० गु०	५५९	विय के ना० ल० गु०	२२	मोठ ना० गु०	२२
मैनसिल ना० गु०	५५२	बचनाक काल० गु०	२२	मसूर ना० गु०	५६८
सुरमे के ना० गु०	५५३	हारिद्र काल०	५५५	चने के ना० गु०	२२
सोहागा ना० गु०	२२	सौराष्ट्र काल०	२२	मटर ना० गु०	५६९
रह ना० गु०	५५४	सीगिया काल०	२२	खे सारी ना० गु०	२२
लोह सुम्बक ना० गु०	२२	काल कूट काल०	५५५	कुलपी ना० गु०	५७०
खडिया ना० गु०	५५५	हला हल काल०	२२	तिल ना० गु०	२२
बालू ना० गु०	२२	ब्रज पुत्र काल०	२२	भलसी ना० गु०	५७१

तोरी ना० गु०	॥	चैवुना ना० गु०	॥	सहिजनना० गु०	॥
दोनों सरसों के ना० गु०	॥	हुर हुर ना० गु०	५६२	बेंगन छोटा बड़ा	॥
दोनों रुई के ना० गु०	५५२	शिरि आरि ना० गु०	॥	सफेद नाम गुला	५६२
अथ धुइ धान्य	॥	मुई पत्र ना० गु०	५६३	चिंहा ना० गु०	५६२
कंगुनी ना० गु०	॥	अज वाइम साग ना०	५६३	खेख सा ना० गु०	॥
चीना ना० गु०	५५३	गुला ॥	॥	कोरुआ ना० गु०	॥
सावा ना० गु०	॥	चक वड़ ना० गु०	॥	कटली फल नाम गु	५६३
को दो ना० गु०	॥	सिंहुड ना० गु०	॥	नाली का साग नाम	॥
सरवीज ना० गु०	॥	पित पाप डा ना० गु०	५६४	गुला ॥	५६४
वास बीज ना० गु०	५५४	मिलोय पत्र ना० गु०	॥	अथ कन्द शाक	॥
कुसुम बीज ना० गु०	॥	कसौं ली ना० गु०	॥	खुराण के ना० गु०	॥
देव धान ना० गु०	॥	चने का साग ना० गु०	५६५	अलू ना० गु०	५६५
तिनी ना० गु०	॥	केराव ना० गु०	॥	कठिआ आलू के ना	॥
पुनेर ना० गु०	५५५	सरसों साग गु०	॥	म गुला ॥	॥
इनके नये पुराने का गु०	॥	अथ पुष्प शाक	॥	पिडा लू ना० गु०	॥
बोष ॥ इति धान्य वर्ग	५५६	अगस्ती फूल के गु०	॥	अरुई ना० गु०	॥
अथ शाक वर्गः	॥	केले के फूल का गु०	५६६	दोनों मुली नाम गु०	५६६
शाक निरूपण	॥	सहिजन के फूल का	५६६	गाजर ना० गु०	५६६
शाको के गुला	॥	गुला ॥	॥	कदली ना० गु०	५६६
दोनों बथुवा के ना० गु०	५५७	सेमल के फूल का गु०	॥	मान के चु ना० गु०	॥
पाई ना० गु०	॥	अथ फल शाक	॥	खुशती ना० गु०	॥
दोनों मरसे के ना० गु०	५५८	दोनों पेठे के नाम	५५८	हस्ति कर्ण ना० गु०	॥
चव रई ना० गु०	॥	गुला ॥	५५८	कैऊ ना० गु०	॥
जल चव रई ना० गु०	५५९	लोकी ना० गु०	॥	कसेरू ना० गु०	५५९
पलकी ना० गु०	॥	कड़वी लोकी ना० गु०	५६६	परम आविक नो के	॥
नरिच ना० गु०	॥	चीया तो रई ना० गु०	॥	नाम गुला ॥	॥
पटुआ ना० गु०	५६०	तोरी ना० गु०	॥	खेद ज शाक ना० गु०	५६०
कलम्बी साग ना० गु०	॥	पटोल ना० गु०	॥	इति शाक	॥
नोमिया ना० गु०	॥	कुन्दरू ना० गु०	५६०	वर्गः	॥
दोनों चक के ना० गु०	५६१	सेम सेमा ना० गु०	५६१		

सूची पत्र

भाव प्रकाश के पूर्व खंड का ।

द्वितीय भागः

अथ मांस वर्गः

प्रकरा	एक	उन विक्रि में वंटे आ	१२	सीङ्गी गु०	१२
उसमें मांस के नाम	१	प्रतु दोमें हरीत आदि	१३	हीलसा गु०	१३
जाङ्गल के लक्ष और	२	पक्षि अंड के गु०	१४	सीरी गु०	१४
गुण ॥	३	ग्राम्यों में रुगका गु०	१५	गर्गरा गु०	१५
ग्राम्य आठ जाङ्गल	४	भेदे के गुण ०	१६	कवई गु०	१६
जाति ॥	५	दुम्बा के गुण	१७	वान्दी गु०	१७
आनुप का ल० गु०	६	वर्द गाय	१८	दंडेरी गु०	१८
जाङ्गल की गरा ना	७	घेड़ के ना० गु०	१९	अरंगी गु०	१९
विशेष गुण ॥	८	कूले चरों में भैंस का	२०	पपता गु०	२०
विले शयों की गरा ना	९	नाम गुण	२१	गरई गु०	२१
गुण ॥	१०	भेड़ क ना० गु०	२२	मङ्गरी गु०	२२
गुहा शयों की गरा ना	११	पादियों में ककुवा	२३	देई रा गु०	२३
गुण ॥	१२	तन काल हन के मांस	२४	सफरी पाई गु०	२४
परी रोगों की ग० गु०	१३	का नाम गुण ॥	२५	छोटी मछ लियों के गु०	२५
विक्रि में की ग० गु०	१४	स्वयं मृत के मांस का	२६	बहुत छोटी मछ लियों	२६
प्रतुदों की गरा ना गु०	१५	गु० दाय ॥	२७	के गुण ॥	२७
प्रसहा की ग० गु०	१६	रुद्ध बाल के मांस का	२८	मछलियों के अंड के	२८
कूले चरों की गरा गु०	१७	दाय गुण ॥	२९	गुण ॥	२९
सुवों की ग० गु०	१८	विषादि से मृत के मा	३०	सूकी मछ लियों के गु०	३०
कोषास्थों की ग० गु०	१९	सका दाय ॥	३१	दग्ध मांस के गु०	३१
पादियों की ग० गु०	२०	मछलियों में रोहू के गु०	३२	कूप आदि के मछ लि	३२
मछलियों के ना० गु०	२१	सिलंधा गु०	३३	यों का गुण ॥	३३
जाङ्गल दियों के ना गु०	२२	भाकुर गु०	३४	कतु विशेष में मांस	३४
पक्षियों के नाम गुण	२३	मोचिका गु०	३५	विषय गु०	३५

अननर कृतान्न वर्गः	११	मूडू वटी गु०	११	नीम्बू का पत्ता गु०	५३
उसमें अन्न का साधन	११	क्षारिक वच्छ गु०	३७	धनिया का पत्ता गु०	११
प्रकार ॥	११	कडी ना० गु०	११	काजी का गु०	११
और सिद्ध हुवा का गु०	११	अन्नक वटिका	३८	जारी गु०	११
परिभाषा	११	पकाडियां गु०	३४	तक गु०	५४
भात के नाम और साध	३१	गन्ध मन्थना गु०	४०	दुग्ध गु०	५५
न गुण ॥	११	संछुड गु०	४१	सजू के गु०	५५
दाल के नाम गुण	११	अखनी गु०	४१	जव के सजू का गु०	११
सिबडी नाम गु०	११	शोरु ना गु०	११	चने के सजू का गु०	११
खीर के ना० गु०	३४	मले हुवे मांस का गु०	४२	चावल के सजू का गु०	११
सेवई ना० गु०	११	सीरव गु०	४२	बहरी गु०	५६
मण्डा ना गु०	११	मांस मृगाव गु०	४३	खीलों का गु०	११
लोई ना० गु०	३०	मांस रस गु०	४३	चिडका गु०	५७
दुधौरी ना० गु०	११	शाक याक विधि	४४	होला गु०	११
लपसी ना० गु०	३१	माठ के गु०	४४	ऊंवी गु०	११
रोटी नाम गु०	११	संभाव पराक गु०	४५	घुबनी गु०	११
अंगा कडी गु०	३२	कर्पूर मालि गु०	४५	तिल कुंद गु०	५८
जव रोटी	११	फेनी गु०	४६	खल ना० गु०	११
उडद की रोटी गु०	११	सोहाली गु०	४७	चावल गु०	११
चने की रो० गु०	११	सेवका लाडू गु०	४७	द्वि कृतान्न वर्गः	११
पिट्टी गुण	३३	मोती लाडू गु०	४८	अथ वारि वर्गः	५९
वेदई गु०	११	मर्करी गु०	४८	पानी के नाम और गु०	११
पापड़ गु०	११	सेवके लडू गु०	४९	उनके भेद	११
पूरी गु०	३४	दूध कृपिक गु०	४९	उनमें धारणा का ज	११
बड़ा ना० गु०	११	जलेबी गु०	५०	क्षराक्षीर गुण ॥	५
काजी बड़ा ना गु०	३५	सिरवन गु०	५०	अननर धातु जल के	६०
ऊरी बड़ा गु०	३६	सरबत गु०	५१	भेद ॥	५
मूडू की बडियां	११	पञ्चा के गु०	५२	उनमें गंगा और समुद्र	११
कड़व की बडियां	११	दमली का गु०	५३	के जल का गु० ल०	५
कोह डोरी गु०	११		५३	वे जल के जल का गु०	६१

ओलों के जल का ल० गु०	६२	करने का उपाय ॥	७५	संवरे के दूध का गु०	७७
पाला का ल० गु०	६३	पीये हुवे जल की पाक	७६	दूध सेवन समय वि	७८
वरक के पानी का ल० गु०	६४	विधि ॥ इति वारि वर्गः	७६	शेष और गु०	७९
भूमि के जल का भेद	६४	अथ दुग्ध वर्गः	७६	दिलोये हुवे दूध गु०	८०
और उनके ल० गु०	६४	दूध के ना० गु०	७७	गाय के दू० का० गु०	८५
नदी आदि के जल का	६५	गाय के दूध का गु०	७७	निन्दित दुग्ध गु०	८६
लक्षण गुण ॥	६५	वर्ग विशेष में गुण वि	७७	इति दुग्ध गु०	८७
औदभिद का ल० गु०	६६	शेष ॥	७७	अनन्तर दही का गु०	८८
भरने के जल का ल० गु०	६६	बे बछड़े वाली माय	७८	दधि भेद	८९
सारस जल का ल० गु०	६७	के दूध का गुण ॥	७८	मन्द आदि दधि के	९०
नालाव के ज० ल० गु०	६७	वाखडी गाय के दूध	७८	ल० गु० ॥	९१
वावडी के ज० ल० गु०	६८	का गुण ॥	७८	गाय के दही का गुण	९२
कुवे के पानी का ल० गु०	६८	देश विदेश में गुण वि	७८	दोष विशेष और रोग	९३
चीञ्ज का ल० गु०	६९	शेष ॥	७८	विशेष में तक्र विशेष	९४
गढे के पानी का ल० गु०	६९	भोजन विशेष में गुण	७८	भैस के दही का गु०	९५
विकिर जल ल० गु०	७०	विशेष ॥	७८	बकरी के दही का गु०	९६
केदार के ज० ल० गु०	७०	भैस के दूध का गु०	७८	पकारे हुवे दूध के द	९७
वरया ज० के ल० गु०	७०	बकरी के दूध का गु०	७८	ही का गुण ॥	९८
अनन्तर हे मन्नादिका	७१	मृग आदि के दूध गु०	७८	वे मलाई के दूध के	९९
ल विरोध में विहित	७१	भेडी दूध गु०	७८	दही का गुण	१००
जल विशेष ॥	७१	घोडी के दू० का गु०	७८	निचोडी दही का गु०	१०१
जल ग्रहण का ल०	७२	ऊँदनी के दू० का गु०	७८	शंके रा आदि मिले हुवे	१०२
जल की पान विधि	७२	हथनी के दूध का गु०	७८	दही का गुण ॥	१०३
शीतल जल पान का	७२	खी दुग्ध गु०	७८	रात में दधि भोजन नि	१०४
विषय ॥	७२	धारोया दुग्ध का गु०	७८	षेध ॥	१०५
जल पान की आवश्यक	७२	पीयूष किलाट क्षीर	७८	अनन्तर ऋतु विशेष से	१०६
कता ॥	७२	पाक तक्र पिंड मीर द	७८	विधि निषेध ॥	१०७
प्रशस्ति जल	७३	इन का ल० गु०	७८	सरमस्तु का ल० गु०	१०८
निन्दित जल	७३	मलाई के गु०	७८	इति दधि वर्गः	१०९
दुग्ध जल का निर्देश	७३	मीठे दूध का गु०	७८	अथ तक्र वर्गः	११०

तक्रसेवनके निमित्त	इति सूत्रवर्गः	काउपायः॥	
तक्र विषया	अथ तेलवर्गः	इति सन्धानवर्गः	
गो आदिके तक्रकायु	तेलका स्वरूपनिरूपण	अथ मधुवर्गः	
इति तक्रवर्गः	तिलतेलगु	मधुके ना० गु०	
अथ माखनवर्गः	सरसों राई तेलगु	मधुके भेद	११६
माखन के ना० गु०	तोरी तेलगु	उनके ल० गु०	
भैंसे के माखनका गु०	भलसी तेलगु	भाक्षिक का गु०	
दूध के माखनका गु०	कुसुम तेलगु	शामर काल० गु०	
नाजे माखनका गु०	पोस्त के तेलका गु०	औद काल० गु०	११७
बासी माखनका गु०	अंडी तेलगु	पौनिक काल० गु०	
इति माखनवर्गः	राल तेलगु	खवका ल० गु०	११८
अथ घृतवर्गः	सर्व तेलगु	आर्घ्य कालगु	
उसमें घृतके ना० गु०	इति तेलवर्गः	औदाल काल० गु०	११८
गायके घृतका गु०	अथ सन्धानवर्गः	दाल काल० गु०	
भैंसे के घृतका गु०	उनमें कांजी कालगु	नवपुराण मधुगुण	१२०
बकरी के घृतका गु०	जुबाद कालगु	शीतल मधुका गुणा	
ऊँटनी के घृतका गु०	सेवीर काल० गु०	धिया और उष्ण कानि	
भेड़के घृतका गु०	आरनाल काल० गु०	षेधः॥	
खड़ी घृतगुण	धान्याम्ल काल० गु०	शोम गु०	१२१
घोड़ी के घृतका गु०	पिंडाकी काल० गु०	इति मधुवर्गः	
दूधके घृतका गु०	शुक्र काल० गु०	अथ ईस्वका वर्गः	
हथनी के घृत० गु०	सन्धान कालगु	ईस्वके ना० गु०	
पुराने घृतका गु०	मद्यका ना० ल० गु०	ईस्वके भेद	१२२
नवीन घृतका गु०	अरिष्टका ना० ल० गु०	स्वेत पौंडा आदिके गु०	
जिसमें घृतन देना चाहि	सुरा पान काल० गु०	ईस्वके रसके पदार्थ	१२५
ये उसका विषयः॥	बारुणी काल० गु०	का गुणाः॥	
इति घृतवर्गः	दोनों सीधू काल० गु०	राव काल क्षरा गु०	
अथ सूत्रवर्गः	आसव काल० गु०	सांड काल० गु०	१२६
गो सूत्र गुण	नवपुराण मधुगुण	गुड़ काल० गु०	
भातुव भव गु०	मर्वा के गन्ध दूर होने	पुराने गुड़ काल० गु०	

नये गुड़ का ल० गु०	१२७	वर का विधि	१५२	अयोग्य नाम	११
चीनी का ल० गु०	१२८	घृत तैल की विधि	१५३	शोधन विधि	१२
गुड़ शक्कर का गु०	१२९	व्यवहार मात्रा	१५४	ताम्र की मारणा विधि	१३३
मधु खंड का गु०	१३०	पुनर्विषेय	१५५	ताम्र की भस्म का गु०	१३४
इति वस्त्र का गु०	१३१	सन्धान विधि	१५६	रंग का स्वरूप निरूप	१३५
अथ अने कार्य नाम	१३२	आसव अरिष्ट का ल०	१५७	पराग ॥	१३६
वर्गः ॥	१३३	सामान्य से अरिष्ट विधि	१५८	अशुद्ध उसके दोष	१३७
उनमें दो अर्थ वाले नाम	१३४	अथ धातु वों की शोधन	१५९	राज की मारणा विधि	१३८
तीन अर्थ वाले नाम	१३५	मारणा विधि ॥	१६०	राज के भस्म का गुणा	१३९
बहुत अर्थ वाले नाम	१३६	उसमें मारणा योग्य सुवर्ण	१६१	सीसे का शोधन	१४०
अथ मान परिभाषा	१३७	अशुद्ध सुवर्ण का दोष	१६२		
मागध मान	१३८	सुवर्ण की मारणा विधि	१६३		
कालिंग मान	१३९	इसमें दूसरा प्रकार	१६४	अशुद्ध लोह का दोष	१४१
द्विती मान परिभाषा	१४०	सुवर्ण भस्म का गु०	१६५	लोह की मारणा विधि	१४२
ओषधियों का विधान	१४१	तन्त्र भेद में पुट प्रकार	१६६	लोह भस्म का गुणा	१४३
स्वरस विधि	१४२	महापुट	१६७	उप धातु वों की मारणा	१४४
तंडुल जल विधि	१४३	तन्त्र भेद में यन्त्र प्रकार	१६८	प्रकार ॥	१४५
हिम विधि	१४४	नाल का यन्त्र	१६९	अशुद्ध सोना मारवी का	१४६
मन्य विधि	१४५	शाला यन्त्र	१७०	दोष ॥	१४७
फाट विधि	१४६	खेदन यन्त्र	१७१	मारणा विधि	१४८
कल्क विधि	१४७	विद्या धर यन्त्र	१७२	रूपा मारवी का शोध	१४९
चूर्ण विधि	१४८	सूधर यन्त्र	१७३	मारणा विधि	१५०
भावना विधि	१४९	डमरू यन्त्र	१७४	उनके विशेष गु०	१५१
पुट पाक विधि	१५०	मारणा योग्य रूप	१७५	लीले थोथे का शोध	१५२
उष्णोदक विधि	१५१	उसमें अयोग्य	१७६	शुद्ध का गुणा	१५३
शीत पाक विधि	१५२	शोधन विधि	१७७	मारणा विधि	१५४
काष्ठ विधि	१५३	अशुद्ध चान्दी का दोष	१७८	सिन्धूर का शोधन	१५५
काहे की मान मात्रा	१५४	उसमें दूसरा प्रकार	१७९	अथ गु०	१५६
नव्रान्न रोज	१५५	चान्दी के भस्म का गु०	१८०	शिला जिन शोधन	१५७
अवलेह विधि	१५६	मारणा योग्य ताम्र	१८१	शोधन योग्य	१५८

दूसरा प्रकार	१०५	अधक भस्म के गु०	१०५	विष के गुण	१०५
हरीतिका का दवा	१०६	अशुद्ध हरताल का	२०२	उप विषों के लक्षण	२०४
प्रकार ॥	५	दोष ॥	५	गुण वाले द्रव्यों की	१०
शुद्ध शिला जीत का गु	१०७	उसकी मारणा विधि	१०	अवधि	१५
पारे की शोधन विधि	१०८	शुद्ध हरताल भस्म के	२०३	घृत तैल में विशेष	१०
सूचने	१०९	गुण ॥	५	स्नेह पान विधि	२५०
उद्ध पान	११०	अशुद्ध मैंग सिंल के	१०	पंच कर्म	२१३
अधः पान	११	दोष ॥	५	वमन विधि	१०
सुख्य दोष हर शोध-	११२	उस्की शोधन विधि	२०४	विरेचन विधि	२२२
न विधि ॥	५	स्वपरि या की शोधन	१०	स्नेह वस्ति विधि	२३०
सर्व दोष हर से क्षिप्र	११	विधि ॥	५	अथा दश दिवस में	२३८
शोधन विधि	५	उत्का गुण	१०	अधिक वस्ति ॥	५
पारे की मारणा विधि	११३	सब उप रसों की सा-	२०५	निरुह वस्ति विधि	२४०
दूसरा प्रकार	११४	धो रणा शोधन विधि	२०५	उत्तर वस्ति विधि	२४७
रस कपूर की विधि	११५	उसमें विशेष	१०	फल वस्ति विधि	२४८
सिन्दूर रस	११६	शुद्ध उप रसों के जल	१०	नास लेने की विधि	१०
मृच्छित पारे की विधि	११७	ग गुण ॥	५	विरेचन नास	२५१
उप रसों की शोधन वि-	११८	रत्नों की शोधन मार	२०६	हृद्गुण नास	२५५
उसमें हिं गुल की शोध-	११	णा विधि ॥	५	घृह पान नास	२६१
न विधि ॥	५	हीरे के दोष	१०	गरारा कवल और	२६४
शुद्ध हिं गुल के गु०	११	हीरे की शोधन विधि	१०	मंजन विधि	५
हिं गुल से पारा निकाल	११	हीरे की मारणा विधि	१०	उसमें उन के भेद	२६५
लने की विधि ॥	५	भस्म करने की दूसरी	१०	गरारा	१०
अशुद्ध गन्धक का दोष	११६	विधि ॥	५	कवल	२६६
शोधन विधि ॥	११	हीरे के भस्म का गु०	२०७	मंजन	२६७
शुद्ध गन्धक के गु०	११	वाकी रत्नों की शोध	१०	सेद विधि	१०
अशुद्ध अधक का दोष	२१०	न मारणा विधि ॥	५	नाप स्नेद	२१३
उस्की शोधन विधि	११	द्वियों की शोधन विधि	१०	उष्ण स्नेद	१०
उत्का मारणा	११	दच नाम का लक्षण	२०८	उप नाह स्नेद	२१३
पाया भस्म की विधि	२०९	विष की शोधन विधि	१०	द्रव्य स्नेद	१०

पक्षान्तर	२२	द्वितीयकाल	२२	कफप्रकोप का कारण	३२२
मूर्ध्नि तेल विधि	२७५	तृतीयकाल	३०३	रोगके हेतु रोग का	३२४
कर्ण विधि	२७७	चतुर्थकाल	२२	वैचित्र्य ॥	५
लेपविधि	२२	पंचमकाल	२२	क्षीरा दोष धातुमलों	२२
आलेप	२८०	निरन् औषधकागु	३०४	की चिकित्सा	५
रक्तखावविधि	२२	साध औषधकागु	२२	स्वस्थकाल	३२५
प्रसादन कर्म	२८७	चर कोक्त औषध -	३०५	दोष धातुमलों की वृ	३२७
कल्पविधि	२८७	लक्षणा विधि ॥	५	हिका निदान ॥	५
सेकविधि	२२	चिकित्सा र्थ रोगीकी	३०६	बहुत बड़े हुवे उनके	२२
आश्रोतन विधि	२८८	परीक्षा ॥	५	लक्षणा ॥	५
पिंडी विधि	२८८	तन्त्रान्त रादि में नेत्र	३०७	अति रुद्ध दोषमलों	२२
विडालक विधि	२२	परीक्षा ॥	५	का कर्षण ॥	५
तर्पण विधि	२८९	जिह्वा परीक्षा	३०८	दोष धातुमल के क्ष-	२२
पुटपाक विधि	२९३	मूत्र परीक्षा	२२	यका कारण ॥	३३१
तिक्तक द्रव्य	२९४	नाडी परीक्षा	२२	क्षीरा उनके ल०	२२
अंजन विधि	२२	रोग ज्ञान लक्षणादि	३१०	ओज क्षय का निदान	३३३
लेखनी वरी	२९७	हेतु का लक्षणा ॥	५	क्षीरा ओज वाले का	२२
चन्द्रोदयावर्ति लेखनी	२२	उत्से हेतु व्याधियों के	३११	लक्षणा ॥	५
रोपणी वर्ति	२९८	ज्ञान र्थ संप्राप्ति काल	५	उदर संकोच	२२
स्नेहनी वर्ति	२२	उत्से औषाधिक भेद	३१२	क्षीरा दोष धातुमलों	३३५
रस क्रिया लेखनी	२२	संप्राप्ति व्याधिके ज्ञा-	२२	का वर्धन ॥	५
रोपणी रस क्रिया	२९९	नार्थ हेतु ॥	३१४	क्षीरा होने में कारण	२२
स्नेहनी रस क्रिया	२२	लक्षणा कालक्षणा	३१६	उत्प्लुत मन मेवल ल-	३३७
लेखनी चूर्ण	२२	उप शम का लक्षणा	२२	क्षणा ॥	५
रोपण चूर्ण	३००	वात का उप शम	३१७	बल क्षय निदान	२२
स्नेहन चूर्ण	२२	पित्त का उप शम	२२	बल क्षय का लक्ष०	२२
मन्यजन विधि	३०३	कफ का उप शम	२२	बल वृद्धि निदान	३३८
दृष्टि प्रसादनी प्रालास	३०५	पित्त के प्रकोप का	३२५	बला बल लक्षणा	२२
औषध सेवन काल	२२	कारण ॥	५	इति०	२२
प्रथमकाल	२२	विदाही लक्षणा	२२		

सूची पत्र

भाव प्रकाश के मध्य खण्ड का

प्रथम भाग:-

प्रकरण	पृष्ठा	सुश्रुतादिनन्द और	२२	अतु पक्क जल का वि-	३१
प्रथम ज्वर का अधि-	१	नन्त्रान्तर में निषेध ॥	४	पथ भेद में शीतल पान	४
कार ॥	४	आम का लक्षण	२३	विधि ॥	४
ज्वर की उत्पत्ति	१०	आम सहित वात का-	१०	और कि शीतल किये	३२
ज्वर की मूर्ति	२	लक्षण ॥	४	हुवे नल का गुण ॥	४
ज्वर की संख्या रूप	३	निराम वात का ल०	२४	उस्में विशेषान्तर	१०
संमाप्ति ॥	४	साम पित्त का ल०	१०	काल विभाग भेद में-	३३
विप्र कृष्ट कारण-	५	निराम पित्त का ल०	२५	उष्णोदक का लक्ष	४
कथन पूर्विक संमा-	४	साम कफ का ल०	१०	णान्तर ॥	४
प्ति ॥ ॥ ॥ ॥	४	आम की चिकित्सा	१०	उत्काशु०	१०
ज्वर का सामान्य वि-	१०	लंघन में भी जल पा	२६	अहराग्न से शीतल-	३४
शेष पूर्व रूप ॥	४	न विधि ॥	४	आदि अलोक्य पाक-	४
हृन्मज्ज पूर्व रूप	८	अल्प जल पान विधि	२७	काल की अवधि ॥	४
त्रिदोषजन पूर्व रूप	१०	रोग विशेष में शीतल	१०	रोग विशेष में जल	३५
ज्वर का सामान्य ले-	१०	और उष्ण जल की-	४	संस्कार ॥	४
फलीता नही ने में का-	४	विधि निषेध ॥	४	उस्में हन्त्रान्तर से वि	१०
रणा ॥ ॥ ॥ ॥	४	उष्ण जल का विधान	२८	स्तर ॥	४
सामान्य से ज्वर की	१०	उष्णोदक का लक्ष	१०	पड्डु जल विधि	३६
चिकित्सा ॥	४	अतु भेद में जल पा	२४	वातादि ज्वरों की पाक	४०
ज्वर में वर्जनीय	११	क भेद ॥	४	विधि ॥	४
लंघन का फल	१२	दोषों की जैसे अधि	१०	ज्वर में औषध प्रयोग	४३
अच्छी तरह किये हु-	१४	क ता वाहीन ता होवे	४	काथन लक्षण	४४
लंघन का लक्षण	४	वैसे व्यवस्था कल्प	४	नरुण ज्वर में पाक	१०
तीन लंघन का लक्ष०	२०	ना करे ॥	४	का दोष ॥	४
बहुत लंघन किये का	१०	अतु भेद में जल ग्रह	३०	पाचन शमन का ल०	४०
लक्षण ॥	४	एकैक दोष भेद ॥	४	सामान्य ज्वर में पाक	४१

नकयाय ॥	x	रसोदन विधि	८६	कसंप्राप्ति ॥	x
सामान्य से संशमनीय ॥	५२	रसोदन गु०	८७	पित्त ज्वर का पूर्व रूप	८८
पाक प्रकार	५३	उसकी प्रक्रिया	८८	उत्का पूर्व रूप	८९
शोधन साध्य रोग	५३	औषध सिद्ध पेयाके	८९	पित्त ज्वर की चिकि०	९१५
सावान्तर	५४	गुण ॥ ॥ ॥	९०	औषधावली	९२०
निविद्ध शोधन शमन	५५	पंच मुखिक यूष	९१	इति पित्त ज्वराधि	९२५
सावान्तर योगविस्तर	५६	खिलोके सत्का गु०	९२	कार ॥	९३०
नव ज्वर में रस	५७	ज्वर नाशक फल	९३	कफ ज्वराधिकार	९३५
सामान्य ज्वर में रस	५८	ज्वर वाले के नियम	९४	कफ ज्वर का ल०	९४०
ज्वर वाले को अन्न दे	५९	ज्वर मुक्त काल०	९५	उसकी चिकित्सा	९४५
नेका समय ॥	x	ज्वर मुक्त के नियम	९६	इति कफ ज्वराधिकार	९५०
अन्न ग्रहण के अर्थ	६०	वात ज्वर का अधिकार	९७	वात पित्त ज्वराधिकार	९५५
स्थान ॥ ॥ ॥	x	वात ज्वर का सन्नि क	९८	उत्का पूर्व रूप	९६०
भोजन के अर्थ उप वे	६१	दृष्टि कष्ट कारण पू	९९	वात पित्त ज्वर का ल०	९६५
शन प्रकार ॥	x	विक संप्राप्ति ॥	१००	उत्की चिकित्सा	९७०
ज्वर वाले के अर्थ हिन	६२	उसका पूर्व रूप	१०१	इति वात पित्त ज्वराधि	९७५
अन्न ॥ ॥ ॥	x	वात ज्वर का ल०	१०२	कार ॥	९८०
अन्न साधन प्रक्रिया	६३	वात ज्वर की चिकित्सा	१०३	वात कफ ज्वर का ज	९८५
मंडकाल० विधि गु०	६४	विशेष कथन पूर्वक	१०४	धिकार ॥	९९०
पेया की विधि गु०	६५	औषध ॥	१०५	पूर्व रूप	९९५
प्रमथ्या किविधि गु०	६६	निद्रा नाश का निदान	१०६	उत्का लक्षण	१०००
यूष की विधि गु०	६७	उत्की चिकित्सा	१०७	वात कफ ज्वर की वि	१००५
जूस का दूसरा प्रकार	६८	वाकी कथनादि पूर्वक	१०८	किता ॥	१०१०
सूङ्ग के जूस की वि०	६९	चिकित्सा ॥	१०९	इति वात कफ ज्वरा	१०१५
मूङ्ग के जूस का गु०	७०	इति वात ज्वराधिका	११०	धिकार ॥	१०२०
मसूर के जूस का गु०	७१	र ॥ ॥ ॥	१११	पित्त कफ ज्वर का अ	१०२५
पवाय आदिकी वि० गु	७२	अथ पित्त ज्वर का	११२	धिकार ॥	१०३०
विले पीकी वि० गु०	७३	अधिकार ॥	११३	पूर्व रूप	१०३५
भात की विधि गु०	७४	उसमें उत्का विप्रकृत	११४	उत्का ल०	१०४०
	७५	सन्नि कष्ट कथन पूर्व	११५	पित्त कफ ज्वर की चि	१०४५

किंवा ॥	*	लघनकी अवधि	१६४	नद्रिककी चिकित्सा	१६०
इति पि० क०	१३४	हनन प्रशासमंकार	१६५	प्रलापकी चिकित्सा	१६१
तीक्ष्ण पातज्वराधिकार	१३५	रा ॥	*	रक्तघ्नी विकी चि०	१६२
उस्का पूर्व रूप	१३६	धानु पाक काल	१६६	भुग्न नेत्र की चि०	१६३
उत्केसामान्यल०	१३७	मल पाक काल	१६७	आभिन्यासकी चि०	१६४
साधान्य सन्नि पात ज्वर	१३८	वायु का स्वेद	१६८	जिह्वक की चि०	१६५
कैनेरह भेद ॥	*	नासके भेद	१६९	अनक की चि०	१६६
वाताधिक काल०	१३९	निष्ठीवन	१७०	रुग्णहकी चि०	१६७
पित्ताधिक काल०	१४०	अवलेह भेद	१७१	चित्र भ्रम की चि०	१६८
कफाधिक काल०	१४१	अथ भजन	१७२	कंठकुञ्ज की चि०	१६९
वात पित्ताधिक काल	१४२	काष्ठ भेद	१७३	इति सन्नि पात ज्वर	१७०
वात कफाधिक काल	१४३	सन्नि पात ज्वर में	१७४	धिकारः ॥	*
पित्त कफाधिक काल	१४४	स भेद ॥	*	आगन्तु ज्वराधिकार	१७१
वात पित्त कफाधिक	१४५	शीत ज्वर में सभेद	१७५	उस्का निदान	१७२
काल क्षरा ॥	*	अन्न भेद	१७६	उस्की संप्राप्ति	१७३
प्रवृद्ध मध्य हीन वाता	१४६	वाताधिक सन्नि पा	१७७	उनकी चिकित्सा	१७४
दिन नित सन्नि पात ज्व	*	त ज्वर की चिकित्सा	*	इति आगन्तु ज्वराधि	१७५
र के अक्षरा ॥	*	पित्ताधिक सन्नि पात	१७८	कारण ॥	*
तेरह सन्नि पात विशेष	१४७	ज्वर की चिकित्सा ॥	*	विषम ज्वराधिकार	१७६
यो के शीताद्ग्न दि ते	*	कफाधिक सन्नि पा	१७९	उस्का निदान संप्राप्ति	१७७
रह नाम ॥	*	त ज्वर की चिकित्सा	*	विषम ज्वर का सामान्य	१७८
तन्वा नर मेवाताधिक	१४८	वात पित्ताधिक स-	१८०	न्यलक्षणा ॥	*
तेरह सन्नि पात के कुं	*	त्रि पात ज्वर की चि-	*	सन्नत काल	१८१
भी पातादि तेरह ना-	*	किंवा ॥	*	सन्नत लक्षणा	१८२
मलक्षरा ॥	*	प्रवृद्ध मध्य हीन वा	१८३	अन्य दुष्क ल०	१८३
उत्तर राक के ल०	१४९	ता दि सन्नि पात ज्व	*	निजारी और वीर्यवा	१८४
असाध सन्नि पात	१५०	रों की चिकित्सा ॥	*	काल क्षरा ॥	*
ज्वर लाल०	*	शीताद्ग्न दि तेरह स-	१८५	द्वि दोषाधिक नृती	१८५
सामान्य सन्नि पात	१५१	त्रि पात ज्वरों की चि-	*	यक काल क्षरा ॥	*
ज्वर की चिकित्सा	*	शीताद्ग्न की चि०	१८६	कफाधिक और यना	१८६

धिक चतुर्थक के विष	×	शुक्रगत काल०	॥	कष्ट साध्य ज्वर काल०	॥
र्यय काल०	×	अथ जीर्ण ज्वर का-	॥	उसपित्त ज्वर की चि०	॥
सन्त तादि घोंके दाह पू	२२६	अधिकार ॥	×	असाध्य ज्वर काल०	॥
र्व और शीत पूर्व होनेमें	×	जीर्ण ज्वर का सामा	॥	सामान्य	॥
कारण ॥	×	न्य लक्षणा ॥	×	मूल शीथ में सुख-	×
विषम ज्वर विशेष	२२७	जीर्ण ज्वर का ही वि-	॥	साध्य त्वादिक ॥	×
विषम ज्वर विशेष प्र-	॥	शेष वात बलासक-	×	गंभीर ज्वर काल०	॥
लेपक काल०	×	कालक्षणा ॥	×	अरिष्ट	॥
विषम ज्वरों की सामा	२२८	जीर्ण ज्वर की सामा-	२४४	दूसरा अरिष्ट	२६१
न्य चिकित्सा ॥	×	न्य चिकित्सा ॥	×	इति ज्वराधिकारः ॥	२६३
सन्त तादि घोंकी विशेष	२३१	दुर्ज्वल जल से हुवे	२४७	अथ अतीसार अधिका	॥
य चिकित्सा ॥	×	ज्वर की चि०	×	अतीसार के निदान	॥
अन्न	॥	साध्य ज्वरस्य लक्षणा	२५०	उस्का पूर्वरूप	२६५
सन्त तादि योंकी विशेष	२३२	ज्वर के उपद्रव	॥	उस्की संप्राप्ति	२६६
य चिकित्सा ॥	×	उपद्रवों की चिकित्सा	॥	उस्का सामान्य लक्षणा	॥
सन्त तादि विपर्यय	२३४	विशेष ॥	×	उस्की संख्या	२६७
विषम ज्वरों की चि०	×	ज्वर में प्रवास की चि०	॥	सामान्य अतीसार की	॥
रसादि धातुगत ज्वर	२४०	मूर्च्छा की चि०	२५२	चिकित्सा ॥	×
कालक्षणा ॥	×	ज्वर के अरु चिकीचि०	२५३	क्रम चिकित्सा	॥
उस्की चिकित्सा	२४१	ज्वर के दमन की चि०	॥	आम पक्व काल०	॥
रक्तगत ज्वर	॥	ज्वर में तुषा की चि०	॥	योग चतुष्टय	२६८
उस्की चिकित्सा	॥	अतीसार की चि०	२५४	भैयज्या वलि	२६९
मांसगत काल०	॥	ज्वर में मल ग्रह की चि०	२५५	वातातीसार काल०	२७५
उस्की चि०	२४२	ज्वर में हिचकी की चि०	॥	उसकी चि०	॥
मेदोगत काल	॥	ज्वर में कास की चि०	॥	पित्तातीसार की ल०	॥
उस्की चि०	॥	ज्वर में दाह की चि०	२५६	उस्की चि०	॥
अस्थिगत काल०	॥	सुख साध्य ज्वर काल०	॥	रक्तातीसार काल०	२७६
उस्की चि०	॥	वहिवेग ज्वर काल०	॥	उस्की संप्राप्ति	॥
मज्जागत काल०	२४३	बर्षादि में हुवोंकी चि०	२५७	उस्की चिकित्सा	॥
उस्की चि०	॥	विशेषार्थ प्राधान्य	×	गुदाके दाह पाक की	२८०

गुदाकी पीडुमें वि०	२२	ज्वरातीसारकी वि०	२२	याचिकनाईननिका	४
कफातीसारकाल०	२२२	इतिज्वरा	३०४	लेहुवैतक्रकेयु०	४
उस्कीचिकित्सा	२२	ग्रहणीरोगाधिकारः	२२	आमपक्वतक्रकेयु०	३१५
सन्निपातकेअतीसार	२२३	उस्कीसंप्राप्ति	२२	तक्रकानिवेध	२२
काल०	४	ग्रहणीस्वरूप	२२	उसकागुणोत्कर्ष	३२३
उस्कीचि०	२२	ग्रहणीरोगकासंख्या	३०६	इति०॥	२२
आगन्तुकशोकाती	४	पूर्वकसामान्यल०	४	मध्यखण्डः॥	
सारकाल०	३०६	वातकीग्रहणीका-	२२		
उस्कीसंप्राप्ति	२२	निदानसंप्राप्तिपूर्व	४	द्वितीयोभागः	
आगन्तुकभयातीसा	२२८	कलक्षण॥	४		
रकासंप्रा०ल०	४	पित्तकीकानिदानसं	३०८	अर्शिकाअधिकार	१
दोनोंकीचि०	२४०	प्राप्तिपूर्वकलक्षण	४	अर्शिकासन्निहृष्टनि	२२
आमातीसारकीसं	२२	कफकीग्रहणीकानि	२२	दान॥	४
प्राप्तिपूर्वकल०	४	दानपूर्वकसंप्राप्ति	४	वातार्शिकाविप्रकृष्ट	२
उसकीचिकित्सा	३४१	सन्निपातकीग्रहणी	३१०	निदान॥	४
योयातीसारकीचि०	२४२	रोगकीनिदानपूर्वक	४	पित्तार्शिकाविप्रकृष्ट	३
धमनातीसारकीचि०	२२	संप्राप्ति॥	४	निदान॥	४
अतीसारकाभेदप्र-	३४४	संग्रहणीरोगकाल	२२	कफार्शिकाविप्रकृष्ट	२२
वाहिकाउसकासंप्रा	४	घटीयुवनामग्रहणी	३११	निदान॥	४
प्तिपूर्वकल०	४	रोग॥	२२	सन्निपातार्शिकावि-	४
उसकावातादिभेद	३४५	सामान्यग्रहणीरो-	२२	प्रकृष्टनिदान॥	४
रूपलक्षण॥	४	गकीचि०	४	अर्शिकापूर्वरूप	४
उस्कीचि०	२२	गोदधियु०	३१२	अर्शिकासंप्राप्तिपूर्व	२२
असाध्यअतीसारवा	३४६	मैंसकीदहीकायु०	३१३	कसामान्यल०	४
लेकालक्षण०	४	वकरीकेदहीकायु०	२२	वातार्शिकाल०	६
मुक्तअतीसारकाल०	३४८	तक्रभेद	२२	पित्तार्शिकाल०	८
अतीसारवालेकेवर्ज	२२	उसकेसामान्यसेयु०	३१४	रक्तार्शिकाल०	४
नीय॥	४	चिकनाईनिकाने-	३१४	रक्तकामीवाताधिक	१०
इतिअतीसारअधि	३०१	हुवेऔरथोड़ीचिक	४	कालक्षण॥	४
कारः॥	४	नाईनिकालेहुवेन-	४	कफाधिकाल०	२२
				दहजअर्शिकाल०	१२

सन्निपातार्थका सह	१	सन्निकृष्टकारण स-	१	कृष्ट निदान ॥	५
न अर्था ल०	२	हित अजीर्णके भेद	५	कफज कृमियोंकी ल-	१०
सुखसाध्य अर्था काल	१३	आमाजीर्णकाल०	४०	प्राग्नि पूर्वक ल०	५
कृष्टसाध्य अर्था काल०	१४	विदग्ध अजीर्णकाल०	४१	रक्त की कृमि	६४
साध्य अर्था काल	१५	विदग्ध अजीर्णकाल०	४२	मलकी कृमि	१०
अभ्यन्तर वलिं	१६	रस प्रेषा जीर्णकाल०	४३	कृमियोंकी वि०	१०
प्रत्येक असाध्य ल०	१७	दुसके उपद्रव	४४	पांडू रोग कामला ह-	११
अर्था का अरिष्ट	१८	दिसूची आदि रोग	४५	लीमका अधिकारः	५
इनसे मिलित अर्था	१९	दिसूचीकी निरुक्ति	४६	पांडू रोग का संख्या पू-	१२
कालक्षणा ॥	२०	दिसूचीका निदान	४७	वर्क सन्निकृष्ट निदान	५
लिङ्गार्थकाल०	२१	दिसूचीकालक्षणा	४८	विप्रकृष्ट निदान पूर्वक	१३
सामान्य से अर्था की वि०	२२	दिसूचीके उपद्रव	४९	संप्राप्ति ॥	५
रक्तार्थकी वि०	२३	अलसकाल०	५०	उसका पूर्व र०	१४
इति अर्था अधिकारः	२४	दिसूचि अलसक का	५१	बातके पांडू रोगकाल०	१०
ज्वरान्नि विकार का	२५	अरिष्ट ॥	५२	पित्तके पांडू रोगकाल०	१०
अधिकारः ॥	२६	दिलं विकाल०	५३	कफके पां० र० ल०	१५
सन्निकृष्टकार पूर्व-	२७	जीर्ण आहार काल०	५४	सन्निपातके पांडू रोग	१०
क ज्वरान्नि विकार	२८	आकी वि०	५५	वा लक्षणा ॥	५
मन्दान्नि काल०	२९	अजीर्ण में रस	५६	सृष्टिकाके पांडू रोग-	१०
तौक्ष्ण अग्नि काल०	३०	अक्षेण काल०	५७	की संप्राप्ति ॥	५
विष माग्नि काल०	३१	विशिष्ट द्रव्या जीर्ण में	५८	उसका लक्षणा	१६
समाग्नि काल०	३२	विशिष्ट पाचन ॥	५९	उत्का सामान्य ल०	१०
मसक का निदान सं	३३	द्विज्वरान्नि विकार	६०	असाध्य ल०	१०
प्राग्नि पूर्वक ल०	३४	अथ कृमि अधिकारः	६१	पांडू भेद कामला का	१०
मसकके उपद्रव अ-	३५	उनके भेद और निदान	६२	निदान पूर्वक संप्राप्ति	५
रिष्ट ॥	३६	उनके लक्षणा	६३	कामला काल०	१०
अजीर्ण का विप्रकृष्ट	३७	भीतर की कृमियोंके	६४	उसका भेद	१४
निदान ॥	३८	विप्रकृष्ट निदान	६५	कोष्ठाश्रय कामला	१०
अजीर्ण का सामान्य	३९	व्यपन्न कृमि ल०	६६	कुम्भकामला बालोंका	१०
लक्षणा ॥	४०	कफ कृमियोंके विप्र	६७	अरिष्ट ल०	५

देनों कामला वालों-	८०	अम्ल पित्त की अव-	१०७	व्याधय शोथिकाल०	११
का अरिष्ट ल०	४	स्था विशेष ॥	४	शोक शोथिकाल०	१२२
हलीमक काल०	४१	अम्ल पित्त दोष सं-	१०८	जरा शोथिकाल०	१२३
सामान्य से उनकी चि०	४२	सर्गः ॥	४	मार्ग शोथिकाल०	१२४
इति पांडू रोगाधि०	८७	दोष भेद से ल० भेद	४१	व्यापाम शोथिकाल०	१२५
अथ रक्त पित्ताधि०	४३	अम्ल पित्त का साध्य	४२	उरः क्षत निदान	१२६
उस्की निदान पूर्वक-	४४	त्वादिक ॥	४३	उरः क्षत काल०	१२७
संप्राप्ति ॥	४५	प्लेख पित्त काल०	१०९	उस्का विशेष ल०	१२८
रक्त पित्त का सामान्य	८८	अम्ल पित्त प्लेख	४४	निदान विशेष करके	४
लक्षणा ॥	४६	पित्त की चि०	४५	उर क्षत काल०	१२९
उसके मार्ग	८९	इति०	११०	साध्य असाध्य ल०	१३०
पूर्वरूप	४७	अथ राज यक्ष्माधि	४६	राज यक्ष्मा की चि०	१३१
विशेष ल०	४८	कारः ॥	४७	शोथ चि०	१३२
वातिक	४९	उस्का सन्नि कृष्ट विप्र	४८	व्यायाम शोथ चि०	१३३
पैत्तिक	५०	कृष्ट निदान ॥	४९	अध्य शोथ चि०	१३४
भार्गभेद	५१	यक्ष्मादियों की निरू०	११५	जरा शोथ चि०	१३५
उपद्रव	५२	उस्की संप्राप्ति	४९	उर क्षत की चि०	१३६
साध्य त्वादिक	५३	पूर्व रूप ॥	११६	राज यक्ष्मा में रस	१३७
साध्य	५४	यक्ष्मा वाले काल०	११७	इति०	१३८
असाध्य	५५	सुश्रुतौक्त ल०	५०	कासका अधिकार	१३९
अरिष्ट	५६	उल्लेख नाकरके दोष	५१	कासका निदान संप्रा	४
रक्त पित्त की चिकि०	१०५	के भेद से पक्ष कर	५२	प्ति पूर्वक सामान्य ल०	१४०
इति०	५७	काटण लक्षणा	५३	संख्या	१४१
अथ अम्ल पित्ताधि०	५८	असाध्य यक्ष्मा	५४	पूर्वरूप	१४२
अम्ल पित्त का विप्र	५९	उस्में विशेष	५५	वातिक काल०	१४३
कृष्ट निदान ॥	६०	अरिष्ट	५६	पैत्तिक काल०	१४४
अम्ल पित्त काल०	१०६	अवधि	५७	प्लेथिक काल०	१४५
ऊपर के काल०	६१	चिकित्सा	५८	क्षत कासका निदान	४
नीचे के अम्ल पित्त	६२	निदान विशेष कर	५९	पूर्वक ल०	१४६
काल लक्षणा	६३	के विशेष शोथ	६०	लक्षणा	१४७

क्षय कांस की निदान	॥	स्वास के भेद ॥	॥	अरोचकाधिकारः	॥
पूर्वकसंप्राप्ति ॥	॥	उसका पूर्वरूप	॥	निदान के सहित अ	॥
विचिकित्सायुक्त धृति	॥	१४० उसकी संप्राप्ति	॥	रोचक ॥	॥
कालक्षरा ॥	॥	॥ महास्वासकाल ॥	॥	वातिककाल ॥	११०
साध्य असाध्य याध्य	॥	॥ ऊर्ध्वस्वासकाल ॥	१५५	पैत्रिककाल ॥	॥
कासकी चि०	१४१	॥ उसका अरिष्टल ॥	१५६	प्लेथिककाल ॥	॥
वातकासकी चि०	॥	॥ तमकस्वास	१५७	आगन्तुजकाल ॥	१११
पित्तकासकी चि०	१४२	॥ तमककीही पित्तातु	१५८	त्रिदोषजकाल ॥	॥
कफकासकी चि०	॥	॥ दन्तजनितज्वरादि	॥	वातजादिभेदसे अ	॥
क्षतजकासकी चि०	१४३	॥ योगसे प्रतभकसंज्ञा	॥	न्यथा विकृति ॥	॥
क्षयकासकी चि०	१४४	॥ उसका दूसरा ल०	१६०	रुद्धभीजोक्तउनके	११२
कासकी सामान्यचि०	॥	॥ क्षुद्रस्वास	॥	अलग २ लक्षणा ॥	॥
इतिकासाधि०	१४५	॥ स्वासांकी साध्यत्वा	१६१	अरोचककी चि०	॥
अथ हिचकी का अ	॥	॥ दिक उसकी चि०	॥	इति०	११५
धिकार ॥	॥	॥ इति स्वासाधिकारः	१६५	वमनाधिकार	११६
उसका विप्रकृष्ट नि०	॥	॥ अपस्वमेवाधिकार	॥	उसकीसन्निहृष्टविप्र	॥
उसकी संप्राप्ति	॥	॥ उसका निदानसंप्राप्ति	॥	रुद्ध निदान पूर्वकसंप्रा	॥
सामान्यल०	१४६	॥ पूर्वकल०	॥	पि ॥ पूर्वरूप	११७
पूर्वरूप	॥	॥ वातिकस्वरभेद वा	१६६	छर्दिका सामान्यल०	॥
अन्नजाकाल ॥	१४७	॥ लेकालक्षरा ॥	॥	वातकी छर्दिकाल ॥	॥
यमलाल ॥	॥	॥ पैत्रिककाल ॥	॥	पित्तकी छर्दिकाल ॥	११८
क्षुद्रल ॥	॥	॥ कफके स्वरभेद का	॥	कफकीकाल ॥	॥
गभीराकाल ॥	॥	॥ लक्षरा ॥	॥	सन्निपातकी छर्दिका	॥
महतीकाल ॥	॥	॥ सन्निपातके स्वरभेद	॥	लक्षरा ॥	॥
असाध्यत्व	॥	॥ कालक्षरा ॥	॥	आगन्तुजकाल ॥	॥
साध्यत्व	१४८	॥ क्षयके स्वरभेदकाल ॥	॥	उपद्रव	११९
हिचकी की चि०	॥	॥ भेदके स्वरभेदकाल ॥	१६७	असाध्य और साध्य	॥
इति हिक्काधिकार	१४९	॥ असाध्यता	॥	कालक्षरा ॥	॥
अथ स्वासाधिकारः	१५०	॥ स्वरभेदकी चि०	॥	छर्दिकी चि०	॥
उसका निदान	॥	॥ इति०	१६८	इति०	१२०

अथ नृणां अधिकारः	॥	निद्रा कालः	॥	निदान ॥	५
नृणां निदान पूर्व	॥	सन्ध्यास की संप्राप्ति-	॥	उत्कालः	॥
क संप्राप्ति ॥	५	पूर्वक लक्षणा ॥	५	पैत्रिक मदात्ययका	॥
संरगा	१८४	सन्ध्यास ने मूर्च्छाभि-	१८५	निदान ॥	५
नृणां का सामान्यल	॥	दा मूर्च्छा की वि०	२००	उत्कालः -	२१७
बान्जी	॥	रक्तज मूर्च्छा की वि०	२०२	प्लेक्षिक मदात्यय-	॥
पित्त की	१८५	सन्ध्यास की वि०	॥	का निदान ॥	५
कफ की नृणां कालः	॥	मूर्च्छा में रस	२०३	उत्कालः	॥
क्षत की नृणां कालः	१८६	भ्रम की वि०	॥	सान्निपातिक मदात्य-	॥
क्षय की नृणां कालः	॥	तन्द्रा और अति निद्रा	२०४	य का निदान ॥	५
आम की नृणां कालः	॥	की चिकित्सा ॥	५	लक्षणा	॥
भुक्तो द्रव नृणां कालः	॥	इति०	॥	परमद	॥
उपसर्ग की नृणां कालः	१८७	मदात्यय का आधिका	॥	पाना जीर्ण	२१८
उपसर्ग	॥	रः ॥	५	पान विभ्रम	॥
नृणां की वि०	॥	मद का स्वभाव	॥	असाध्य मदात्ययों-	२१९
इति नृणां अधिकारः	१८८	युक्ति पूर्वक सेवन कि	॥	का लक्षणा ॥	५
मूर्च्छा अधिकार	॥	ये की महिमा ॥	५	मदात्ययों की वि०	॥
मूर्च्छा की निदान पूर्व	१८९	तन्त्रान्तरोक्त मद्य पान	२०६	कादों आदिके मद	२२३
र्वक संप्राप्ति ॥	५	माला ॥	५	की वि०	५
सामान्य ल०	१८२	मद्य के गु०	२०८	इति०	२२४
उत्काल पूर्व रूप	१८३	सान्निपातिक मद्य कालः	२११	दाह का अधिकार-	॥
दात की मूर्च्छा कालः	॥	राज समद्य कालः	॥	पित्त दाह का	॥
पैत्रिक की मूर्च्छा कालः	॥	तामस मद्य कालः	२१२	उत्काली पित्त ज्वरे	॥
कफ की मूर्च्छा कालः	१८४	तन्त्रान्तरोक्त अति ता	॥	क्रम चिकित्सा ॥	५
सन्निपात की मूर्च्छा	॥	मस ल०	५	रक्त का दाह	॥
रक्त की मूर्च्छा कालः	१८५	मदात्ययों का निदान	२१३	रक्त पूर्ण की एज	२२५
मदली मूर्च्छा कालः	१८६	विकार	२१४	मद्यज दाह	॥
विपरी मूर्च्छा कालः	॥	मदात्यय का सामान्य	२१५	नृणां निरोधन	॥
तन्द्रा कालः	१८७	लक्षणा ॥	५	धातु क्षयज	२२६

असाध्य	२२	देवाविष्टकाल०	२३६	इति०	२४४
दाहकीचि०	२२	दैत्याविष्टकाल०	२३७	वातव्याधि अधिकार	२४५
इति दाह अधिकारः	२२८	गन्धर्वाविष्टकाल०	२३८	उत्काविप्रकृष्टनिदान	२४६
अथ उन्मादाधिकारः	२२९	यक्षाविष्टकाल०	२३९	वातव्याधिकीसामा-	२४७
उन्मादकी निरुक्ति	२३०	पित्ताविष्टकाल०	२४०	न्यचिकित्सा ॥	२४८
उसीका अवस्थाभेदमे	२३१	नागाविष्टकाल०	२४१	विशिष्ट वातव्याधि-	२४९
नामान्तर ॥	२३२	राक्षसाविष्टकाल०	२४२	योकीचि०	२५०
उन्मादका विप्र कृष्ट-	२३३	ब्रह्मराक्षसाविष्टका	२४३	शिरोग्रहकाल०	२५१
लक्षणा ॥	२३४	लक्षणा ॥	२४४	उत्कीचि०	२५२
सन्नि कृष्ट निदान	२३५	पिशाचाविष्टकाल०	२४५	जृम्भाकाल०	२५३
उसकी संप्राप्ति	२३६	हिसार्थ गृहीतकाल	२४६	उत्कीचि०	२५४
उन्मादका सामान्यल०	२३७	देवादियोंका आवेश-	२४७	हनुग्रहका निदान	२५५
वातिकोन्मादकी नि-	२३८	समय ॥	२४८	सहितल०	२५६
दान पूर्वकसंप्राप्ति ॥	२३९	उन्मादकीचि०	२४९	उत्कीचि०	२५७
उसीकाल०	२४०	देवाद्याविष्टोंकीचि०	२५०	जिह्वास्तम्भकाल०	२५८
पैत्रिककी निदानपू	२४१	इति०	२५१	उसकीचि०	२५९
र्वकसंप्राप्ति ॥	२४२	अपस्मारका अधिक	२५२	मूक गद्गदमिमृमिन्	२६०
उसकाल०	२४३	रः ॥	२५३	इनकाल०	२६१
प्लेथिककी निदान	२४४	अपस्मारकी निदान	२५४	उनकीचि०	२६२
पूर्वकसंप्राप्ति ॥	२४५	पूर्वकसंप्राप्ति ॥	२५५	प्रलापकाल०	२६३
उत्कालक्षणा	२४६	उत्की संख्या	२५६	उत्कीचि०	२६४
सन्निपातिककानि-	२४७	उत्का सामान्यल०	२५७	रसा ज्ञान काल०	२६५
दान पूर्वकल०	२४८	पूर्वरूप	२५८	उसकीचि०	२६६
मनोदुःखका विप्रकृ	२४९	वातिककाल०	२५९	त्वक धून्यक्तकाल०	२६७
ष्ट निदान ॥	२५०	पैत्रिककाल०	२६०	उत्कीचि०	२६८
उत्काल०	२५१	प्लेथिककाल०	२६१	अर्दितकासंप्राप्तिपू-	२६९
विषयकाल०	२५२	सन्निपातिककाल०	२६२	र्वकलक्षणा	२७०
अरिष्ट	२५३	अपस्मारका अरिष्टल	२६३	असाध्यकाल०	२७१
देवादि कृत उन्माद	२५४	उसके प्रकीपकाल०	२६४	उत्कीचि०	२७२
का सामान्यल०	२५५	अपस्मारकीचि०	२६५	मन्यासम्भकानिदा	२७३

न पूर्वकाल०	*	क्रोडुक शीर्षकाल०	२०७	त्वादिक॥	*
उसकी वि०	२०७	उस्की वि०	२०७	असाध्यल०	२०७
बाहु पोथकाल०	२०७	खल्लीकाल०	२०७	उस्की वि०	२०७
उसकी वि०	२०७	उस्की वि०	२०७	सर्वाङ्ग वातकाल०	२०७
अपबाहुकाल०	२०७	वातकंदककाल०	२०७	उस्की वि०	२०७
उस्की वि०	२०७	उस्की वि०	२०७	स्थान नाम लक्ष्यल०	२०७
विशवाचीकाल०	२०७	पाद दाहकाल०	२०७	वाले वात के रोग ॥	*
उस्की वि०	२०७	उस्की वि०	२०७	उनकी वि०	२०७
ऊर्ध्व वातकाल०	२०७	पाद हर्षकाल०	२०७	हंड काटि योंकी वि०	२०७
उसकी वि०	२०७	उस्की वि०	२०७	रसादि धातु गत वातों	२०७
आ ध्यान काल०	२०७	आधे पक का सामान	२०७	के लक्षण ॥	*
उसकी वि०	२०७	न्य लक्षण ॥	२०७	उनकी वि०	२०७
ग्रन्था ध्यान काल०	२०७	उर के चारों भेद	२०७	स्थान विपरीत का के	२०७
उस्की वि०	२०७	केवल वात के आक्षेप	२०७	वात रोग विशेष ॥	*
वात शीलाकाल०	२०७	काल०	२०७	कोष्ठ ल०	२०७
प्रत्यशीलाकाल०	२०७	कफ युक्त काल०	२०७	उस्की वि०	२०७
उनकी वि०	२०७	उस्की वि०	२०७	अनाशय काल०	२०७
तूली काल०	२०७	अन्तरायाम काल०	२०७	उस्की वि०	२०७
प्रतूली काल०	२०७	वाह्यायाम काल०	२०७	पक्षाघात के दान का	२०७
उनकी वि०	२०७	उनकी वि०	२०७	लक्षण ॥	*
विक शूल काल०	२०७	धनु संभ काल०	२०७	उस्की वि०	२०७
उसकी वि०	२०७	कुब्ज काल०	२०७	गुद गत वात काल०	२०७
वसि वात काल०	२०७	उस्की वि०	२०७	उस्की वि०	२०७
उस्की वि०	२०७	अपतप्त काल०	२०७	हृदय वात की वि०	२०७
गृध्र सी काल०	२०७	उस्की वि०	२०७	कृष्ण दिग्गत वात का	२०७
गृध्र सी की वि०	२०७	अपतप्त काल०	२०७	लक्षण ॥	*
खंडक और यंगु काल०	२०७	उस्की वि०	२०७	उस्की वि०	२०७
उस्की वि०	२०७	पक्षा घात काल०	२०७	शिरागत वात काल०	२०७
कृष्ण खंड काल०	२०७	उसका साध्या साध्य	२०७	उसकी वि०	२०७
उस्की वि०	२०७	पक्षा घात का असाध्य	२०७	लाघु गत काल०	२०७

उत्कीर्ण	३३३	उसीके विप्रयुक्त	३४०	तृतीयो भागः ॥	१
सन्धिगत काल	३३३	उसके साध्यादिक	३४१	अथ शूलाधिकारः	२
उत्कीर्ण	३३३	अमवातकी चि	३४८	शूलकासनि कृष्ट	३
उक्त रोगोंकी कष्टसाध	३३३	इति	३४९	निदान ॥	४
ता ॥ ॥ ॥ ॥	३३३	पित्त व्याधि अधिकार	३५०	वातिक का विप्र कृष्ट	५
दात के उपद्रव	३३३	उनके विप्र कृष्ट निदान	३५१	निदान संप्राप्ति पू	६
याप्य	३३४	पित्त के रोग	३५२	शूल का देश	७
पांच प्रकार के मज्जत	३३४	इन्की चिकित्सा अप	३५३	पसली के शूल काल	८
वातों के कार्य ल	३३४	ने प्रकरण में जान ले	३५४	वस्ति शूल का ल	९
वात व्याधियों के सामा	३३४	वे ॥ ॥ ॥ ॥	३५५	पैत्रिक	१०
न्य औषध ॥	३३४	कफ व्याधियों के सामा	३५६	प्लेविक	११
वात रोग में रस	३३४	न्य से विप्र कृष्ट निदान	३५७	हृन्द्वाज	१२
इति	३३४	इनकी चि अपने प्र	३५८	विशेषज्ञ	१३
उरुस्त आधिकारः	३३४	करण में जाननी चा	३५९	आमज	१४
उसका विप्र कृष्ट सन्धि	३३४	हिये ॥	३६०	शूल के दोष विशेष से	१५
कृष्ट निदान संप्राप्ति	३३४	इति	३६१	देश विशेष ॥	१६
पूर्वका लक्षण ॥	३३४	वात रक्त का अधिकार	३६२	तन्वा न्तरे क आस शूल	१७
पूर्व रूप	३३४	उसका विप्र कृष्ट निदान	३६३	शूल के उपद्रव	१८
लक्षण	३३४	संप्राप्ति ॥	३६४	असाध्यत्वादिक	१९
उरुस्तम्भ का अरिष्ट	३३४	पूर्व रूप	३६५	अरिष्ट	२०
उत्कीर्ण	३३४	वात रक्त का ल	३६६	परिणाम शूल	२१
इति	३३४	अधिक रक्त वात रक्त	३६७	अल द्रव शूल विशेष	२२
अमवात आधिकारः	३३४	अधिक पित्त वात रक्त	३६८	शूल की चि	२३
आमवात की निदान पू	३३४	अधिक कफ विशेष	३६९	परिणाम शूल की	२४
र्वक संप्राप्ति ॥	३३४	विशेष का वात रक्त ॥	३७०	चिकित्सा	२५
आमवात का सामान्य	३३४	पादानि रक्त स्थान	३७१	अन्न द्रव की चि	२६
लक्षण ॥	३३४	वात रक्त के उपद्रव	३७२	इति	२७
तन्वा न्तरे में उसी काल	३३४	असाध्यत्वादिक	३७३	उदा वर्तका अधिकार	२८
वात धिक्त में इसी की ल	३३४	वात रक्त की चि	३७४	उसका विप्र कृष्ट निदान	२९
		इति	३७५	उसका विप्र कृष्ट निदान	३०

वैभोके अभि धात से-	११	दूति	३३	वातिक काल०	५९
हुवे उदावर्तकी अल-	१२	अययुल्माधिकारः	११	असाध्य ल०	११
ग अलग विप्रोष ल०	१४	उस्का सान्नि कृष्ट विप्र-	११	शरीरा वयव विप्रोष	११
अपान वायु कैरो कने-	११	कृष्ट करणा पूर्वक सा	१४	पिलही यकृत काल	१४
से हुवे काल क्षण ॥	१४	मान्य लक्षण ॥	१४	रूप ॥ ॥ ॥ ॥	१४
मल निरोधज काल०	२२	कोष्ठ में भी स्थान नि-	३४	यकृत रोग	११
मूत्र निग्रहज काल०	११	यम ॥ ॥ ॥ ॥	१४	प्लीहा अधिकार में वि०	५२
जुना निरोधज काल०	२३	गुल्म का सामान्य ल०	११	यकृत रोग की वि०	५३
अशु निरोधज काल०	११	उस्का पूर्व रूप	३५	इति०	५४
श्लेष्मानिरोधज काल-	११	वातिक का निदान	११	हृद् रोगाधिकारः	११
लक्षण ॥	१४	उस्का ल०	३६	उस्का विप्र कृष्ट नि०	११
वाति निरोधज	२४	पैत्रिक का नि०	३७	संप्राप्ति पूर्वक ल०	११
शुक्र निरोधज काल०	११	उस्का ल०	११	वातिक काल०	११
क्षुधा निरोधज काल०	११	श्लेष्मिक और सान्नि	३८	पैत्रिक काल०	५५
तृषानिरोधज काल०	११	पातिक का हेतु ॥	१४	वात श्लेष्मिक काल०	११
व्यास निरोधज काल०	२५	उस्का ल०	११	सान्नि पातिक काल०	५६
निद्रा विघातज काल०	११	विदोषन	३४	कुमिज काल०	११
रूक्षादिकुपित वातज	११	आर्तव रूप रक्तज	११	उस्की विप्र कृष्ट निद	११
का लक्षण ॥	१४	साध्य काल०	५२	न पूर्वक संप्राप्ति ॥	१४
उस्का निदान संप्राप्ति-	११	असाध्य काल०	११	उस्का ल०	५७
पूर्वक लक्षण ॥	१४	उस्की वि०	५४	हृद् रोग के उप ह्व	११
संप्राप्ति ॥	११	रक्त के गुल्म की वि०	५८	उस्की वि०	११
असाध्य काल०	२६	दूति०	५५	इति०	५६
आनाह काल०	११	प्लीहा अधिकारः	११	मूत्र कृच्छ्राधिकार	११
आमका आवाह	२७	उस्को शरीरा वयव-	११	उस्का विप्र कृष्ट नि०	११
मल संचय ज	११	विप्रोष स्वरूप ११	१४	उस्का संप्राप्ति पू० ल	११
उदावर्तकी वि०	२८	उस्का निदान संप्राप्ति	११	पैत्रिक काल०	६०
रूक्षादिकुपित वातके	३०	पूर्वक ल० ॥	१४	श्लेष्मिक काल०	११
उदावर्तकी वि०	१४	रक्तज ल०	५७	सान्नि पातिक काल०	११
आनाह की वि०	३२	पैत्रिक काल०	११	पुरीयज काल०	६९

अश्वरीज काल०	८८	इति०	८९	उसका निदान	८८
अश्वरी शक्ति का सामान्य	८९	अथ अश्वरी का अ-	९०	लक्षण	८९
शक्ति के उपद्रव	९०	धिकार ॥	९१	उसकी वि०	९३५
वात रुच्छ की वि०	९३	उनकी संप्राप्ति	९२	कार्य का अधिकार	९४६
पित्त रुच्छ की वि०	९४	इनका पूर्व ल०	९३	उसका निदान	९४
कफ रुच्छ की वि०	९५	सामान्य ल०	९४	उसका ल०	९५
सन्निपात के रुच्छ की	९६	वाताधिक	९५	अति कृश के रोग	९४५
चिकित्सा ॥	९७	उसकी वि०	९६	कारण	९५
अभिघात रुच्छ का नि०	९८	पैत्रिक वि०	९७	कार्य की वि०	९६
शुक्र विबन्ध के रुच्छ	९९	स्लेमिक वि०	९८	इति	९४६
की चिकित्सा ॥	१००	शुक्राश्वरी वि०	९९	उदर का निदान	९५०
पुरी वन रुच्छ की वि०	१०१	उसकी संप्राप्ति	१००	उसके हेतु	९५
इति०	१०२	उसका ल०	१०१	उसकी संप्राप्ति	९५
मूत्राघात का अधिकार	१०३	शक्ति भेद	१०२	सामान्य ल०	९५
उनके भेद	१०४	उसके उपद्रव	१०३	वातादर का ल०	९५३
अष्टौला	१०५	अश्वरी भेद के अरि	१०४	पैत्रिक	९५३
बात वस्ति ॥	१०६	अश्वरी वि०	१०५	धैमिक भेद	९५
मूत्रा नीत	१०७	इति०	१०६	सन्निपातो दर काल	९५३
मूत्र जठर	१०८	प्रमेह का अधिकार	१०७	प्रीहो दर ल०	९५४
मूत्रा तद्व	१०९	उसका निदान	१०८	वह्न्युद ल०	९५५
मूत्र क्षय	११०	पूर्व रूप	११३	क्षतो दर ल०	९५६
मूत्र ग्रन्थि	१११	उनका सामान्य ल०	११४	दको दर ल०	९५७
मूत्र शुक्र	११२	मूत्र वर्णादि भेद से	११३	साध्य असाध्य भेद	९५८
उष्ण वात	११३	प्रमेह भेद ॥	११४	जातो दको दर ल०	९५८
मूत्र साद	११४	असाध्य	११५	उदर की वि०	९६०
विडु विघात	११५	दश पिडिका	११६	इति०	९६६
वस्ति कुंडली	११६	उनका ल०	११७	अथ शोधाधिकारः	९६
उसका असाध्य ल०	११७	अथ वि०	११८	उसका विप्रकृष्ट निदान	९६
कुंडली भूत का ल०	११८	इति०	११९	उसका संप्राप्ति पूर्व कसा	९६७
मूत्रा घात की वि०	११९	भेद का अधिकार	१२०	मान्य लक्षण	९६७

वातिक शोथकालः	१६८	अथ गल गंड गंड मा-	१६८	गल गंड की चि०	१६८
पैत्रिक	१६९	लाका सामान्यल०	१६९	गंड माला की चि	१६९
प्लेथिक	१७०	उस्की संप्राप्ति	१७०	ग्रन्थि और अर्बुद की	१७०
इन्द्रज भेद	१७१	वातिक	१७१	चिकित्सा ॥	१७१
सर्पि पातिकल०	१७२	प्लेथिक	१७२	इति०	१७२
अभिघातज	१७३	मेदोज	१७३	अथ श्ली पदाधिकारः	१७३
वियज	१७४	असाध्य	१७४	उस्का विप्रकृष्ट कारण	१७४
उपद्रव	१७५	गंड माला काल०	१७५	उस्का सामान्यल०	१७५
असाध्य	१७६	अपदी काल०	१७६	उनका क्रमसे ल०	१७६
कटुसाध्य	१७७	उस्का असाध्यत्वादि	१७७	असाध्य भेद	१७७
तन्मात्रैक विशेषभेद	१७८	क भेद ॥	१७८	श्ली पद की चि०	१७८
शोथचि०	१७९	ग्रन्थिकाल०	१७९	इति०	१७९
सामान्यचि०	१८०	वातिक काल०	१८०	अथ विद्रधि का अ-	१८०
इति०	१८१	पैत्रिक भेद	१८१	धिकारः ॥	१८१
अथ रूद्धि अधिकार	१८२	प्लेथिक	१८२	उस्का संप्राप्ति पूर्व	१८२
उस्का निदान	१८३	मेदोज का भेद	१८३	क सामान्यल०	१८३
और संस्था	१८४	शिराज भेद	१८४	विशिष्टल०	१८४
वातिक	१८५	और भी असाध्य	१८५	वातिक काल०	१८५
पैत्रिक	१८६	अनन्तर अर्बुद	१८६	पैत्रिक काल०	१८६
प्लेथिक	१८७	उस्की संप्राप्ति पूर्वक	१८७	प्लेथिक	१८७
रक्तज	१८८	सामान्यल०	१८८	सर्पि पातिक	१८८
भेदज	१८९	निदान पूर्वक विशि-	१८९	अभिघात विद्रधि	१८९
गूजन	१९०	ष्टलक्षणा ॥	१९०	का संप्राप्ति पूर्वक	१९०
अन्व रूद्धि	१९१	रक्तार्बुद	१९१	लक्षणा ॥	१९१
उस्की अवस्था	१९२	मांसा र्बुद की संप्राप्ति	१९२	रक्तज	१९२
असाध्य	१९३	निदान	१९३	भीतर की विद्रधि	१९३
वह	१९४	असाध्य भेद	१९४	स्थान विशेष में ल०	१९४
रूद्धि की चि०	१९५	असाध्य भेदान्तर	१९५	विशेष ॥	१९५
वह की चि०	१९६	अर्बुदों को पाका भाव	१९६	स्वाव मार्ग	१९६
इति०	१९७	कारण ॥	१९७	साध्यत्वादिक	१९७

चतुर्थीभागः		
वाद्यविद्वधियोंका	२१३	उपनाह
साध्यासाध्य	२	पाचन
विद्वधिकीचि०	२१४	पाचनद्रव्य
इति०	२१४	भेदन
अयव्रणाधिकारः	२१४	शस्त्रसाध्यभेदन
व्रणाकी संख्याविवरण	२१४	शस्त्रनिर्धे पायवाद
पूर्वकसामान्यल०	२	भेदन
विशिष्टरूप	२१४	हारण
अपक्वव्रण शोथका	२१४	पीडन
लक्षणा ॥	२	शोधन
पचमानकाल	२१५	शेषण
पक्वकाल०	२१६	सर्वजाकरसा
पाककालमें सब होयें	२१७	व्रणवालेका भोजन
का सम्बन्ध ॥	२	आगन्तुव्रणकीचि०
पाकमें मतान्तर	२१७	अग्नि दग्ध कीचि०
पाक ज्ञानार्थ ल०	२१८	इति०
पाका ज्ञान	२१७	भग्नाधिकार
पीपननिकालनेमें	२१७	भग्नका भेद
दीय ॥	२	सन्धि भग्न का साक्षा
शोथके कच्चे पक्के के	२१७	त्यलक्षणा ॥
ज्ञानने और न जानने	२	उन्निष्ठकाल०
में वैद्यकाशुण दीय ॥	२	कांड भग्न के प्रकार
व्रण शोथकीचि०	२१८	कर्कटकादि कांड भग्न
क्रमचि०	२१८	लक्षणा ॥
शोथ हर लेप	२२०	कष्ट साध्य
परिषेचन	२२१	असाध्य
विमलापन	२२२	दूसरा असाध्य ल०
शोथकी विमलापन	२२२	अस्थिविशेष भग्न वि०
विधि ॥	२	भग्नकीचि०
रक्त सीक्षणा	२२३	इति०
	२२३	
	२२४	
	२२५	
	२२६	
	२२७	
	२२८	
	२२९	
	२३०	
	२३१	
	२३२	
	२३३	
	२३४	
	२३५	
	२३६	
	२३७	
	२३८	
	२३९	
	२४०	
	२४१	
	२४२	
	२४३	
	२४४	
	२४५	
	२४६	
	२४७	
	२४८	
	२४९	

भगन्दरकीचि०	१०	असाध	१०	कालक्षरा	१०
इति०	१०	शुकदोषकीचि०	३४	रसगतकालक्षरा	१०
अथउपदंशाधिकारः१५		कुष्टाधिकारः	११	रुधिरगतकामेद	४७
उस्कीनिरुक्ति	११	उस्कीनिरुक्ति	११	मांसगतकामेद	११
उस्कीचिकित्सा	११	महाकुष्ट	३६	मेदोगतका	११
लिङ्गश्रीकाउपक्रम	२६	क्षुद्रकष्ट	३०	अस्थिमज्जागत	४८
इति०	२७	उनकेसातप्रकार	३४	शुकगत	११
शुकदोषकाअधि	२८	पूर्वरूप	११	कुष्टोमेंउत्पन्नवाता	४४
कारः॥	५	महाकुष्टोकेबीचमें	४३	दिदोषल०	५
उस्कानिदान	११	कपालकाल०	५	साध्यत्वादिक	५०
उनकेभेदअठारह	२४	औदुम्बर	११	अरिष्ट	११
क्रमकेअनुसार	११	मंडल	११	शिवभेद	४३
सर्पयिका	११	सिध्द	४२	दोषभेदसेलक्षरा	११
अष्टौलिका	११	काकरा	११	मेद॥	५
ग्रन्थित	११	पुंडरीक	४३	उसकेसंसर्गजशैरा	४३
कुम्भिका	३०	जृष्टजिह्व	११	कुष्टकीचि०	५४
अलजी	११	क्षुद्रकुष्टोकेबीचमें	४४	सिध्दकीचि०	६४
सुदित	११	रक्तकुष्ट॥	५	चर्मदलकीचि०	११
संमूहपिडका	११	गजचर्मल०	११	पानाकीचि०	११
अवनम्य	११	चर्मदल०	११	कच्छुकीचि०	७०
पुयकरिका	३३	विचर्चिकी	११	दद्रुकीचि०	७१
स्पर्शहानि	११	विषादिका	४५	शिवजकीचि०	७२
उन्नम	११	पामा	११	इति०	७३
शतयोनक	११	कच्छू	११	अथशीतपित्ताधि-	११
त्वकपाक	३२	दद्रु	४६	कारः॥	५
पोशितार्तुद	११	विस्फोट	११	उस्कीविप्रकष्टसन्धि	११
मांसावुद	११	किटिभ	११	कुष्टनिदानपूर्वक	५
मांसपाक	११	अलसक	११	संग्राप्ति॥	५
विद्रधि	११	शतारू	११	पूर्वरूप	७४
निलकालक	३३	सप्तधातुगनकुष्टो	११	शीतपित्तकान्०	११

उद्धर्त काल०	॥	अथ विस्फोटका अ	॥	उसकी सन्नि कष्ट वि	॥
कोठोद कोठकाल०	७५	धिकारः ॥	॥	प्र कष्ट निदान पूर्व	५
दुन्की चि०	॥	विस्फोटक की निदा	॥	क संग्राप्ति०	५
इति०	७७	न पूर्वक संग्राप्ति॥	५	पूर्वरूप	१००
विसर्पाधिकार	॥	पूर्वरूप	८६	वातज	१०१
उस्की विष कष्ट निदा	॥	वातिक	॥	पित्तज	॥
न संख्या निरुक्ति	५	पैत्रिक	॥	रक्तज	॥
वैसात प्रकार	७८	प्लैक्षिक	॥	कफज	॥
दोष दुयों के भेद से-	॥	कफ पैत्रिक	४०	सन्नि पातिक	१०२
विसर्प सात	५	वात पैत्रिक	॥	रसादि सप्त धातुगत	॥
वातिक काल०	७५	वात प्लैक्षिक	॥	रसकी	॥
पैत्रिक	॥	सन्नि पातिक	॥	रक्तकी	॥
प्लैक्षिक	॥	रक्तज	॥	मांसकी	१०३
सन्नि पातिक	॥	विस्फोटक	४१	मेदकी	॥
वात पैत्रिक	॥	उपद्रव	॥	आस्थि मज्जागत	॥
वात प्लैक्षिक ग्रन्थि	८०	उपद्रवों के लक्षण	४२	शुकगत	१०४
विसर्प ॥	५	नर ॥	५	जर्मज	१०५
पित्त प्लैक्षिक कर्द	८१	साध्यत्वादिक	॥	रोमान्तिका	॥
मवीसर्प ॥	५	विस्फोटक की चि०	॥	असाध्य	॥
सन्नि पातिक	८२	इति०	४४	कष्ट साध्य	॥
क्षतज	८३	अथ फिरंगका अ-	॥	और असाध्य	१०६
उपद्रव	॥	धिकार ॥	५	अरिष्ट	१०७
साध्यत्वादिक	॥	उस्की निरुक्ति	॥	मसूरिकाकाररूप शो	॥
विसर्प चि०	॥	विप्रकष्ट निदान	॥	य विशेष ॥	५
इति०	८६	लक्षणा	४५	मसूरिका की चि०	१०८
अथ स्नायु अधिका	॥	उपद्रव	॥	इति०	१०९
रः ॥ ॥ ॥ ॥	५	साध्यत्वादिक	॥	उसका भेद शीतला	॥
उसका विप्रकष्ट सा-	॥	फिरंगकी चि०	४६	का अधिकार	५
मान्य लक्षणा ॥	॥	इति०	४७	उस्की निरुक्ति	॥
स्नायु रोगकी चि०	८७	अथ मसूरिका निदा	॥	शीतला के भेद	११०

इन्द्रकासाध्यत्वादिक	११८	उस्की चि०	११८	कदरकाल०	१४३
क्षुद्र रोगाधिकार	११८	विदारिकाल०	११८	उस्की चि०	१४४
उस्का निदान पूर्वक	११८	उस्की चि०	११८	निलकालल०	१४५
लक्षणा ॥	११८	विषयल०	११८	मशकल०	१४६
पलितकीचि०	११८	कुनखकाल०	११८	जतुमरीकाल०	१४७
इन्द्र लुप्त का निदान	११८	उनकी चि०	११८	जतुमरीभेद	१४८
पूर्वकलक्षणा ॥	११८	परिवर्तिकाल०	११८	इनकी चि०	१४९
इन्द्र लुप्तकी चि०	११८	उस्की चि०	११८	न्यच्छकाल०	१५०
दारुणकाल०	११८	अव पाटिकाल०	११८	इस्की चि०	१५१
दारुणकीचि०	११८	उस्की चि०	११८	पद्मिनीकंदककाल०	१५२
रूधिका ल०	११८	निरुद्ध प्रकाश का	११८	उस्की चि०	१५३
उस्की चि०	११८	लक्षणा ॥	११८	अजगन्ती का भेद	१५४
इरिवेल्लिकाल०	११८	उस्की चि०	११८	उस्की चि०	१५५
उस्की चि०	११८	सन्नि रुद्ध गुदकाल	११८	यव प्रख्याल	१५६
पनसिकाल०	११८	क्षणा ॥	११८	अन्धालजील०	१५७
उस्की चि०	११८	उस्की चि०	११८	उनकी चि०	१५८
पायाण गर्दभ का-	११८	वषण कच्छूकाल०	११८	निवृत्ता भेद	१५९
लक्षणा ॥	११८	उस्की चि०	११८	इन्द्र वृद्धाल०	१६०
उसकी चि०	११८	अहि पूनना काल०	११८	गर्दभिकाल०	१६१
मुख दूधिकाल०	११८	उस्की चि०	११८	जाल गर्दभ ल०	१६२
उसकी चि०	११८	गुद भ्रंशकाल०	११८	इनकी चि०	१६३
मुखलेप	११८	उस्की चि०	११८	कच्छपिकाल०	१६४
व्यङ्गकाल०	११८	शूकर दंष्ट्रकाल०	११८	उस्की चि०	१६५
नीलिकाल०	११८	उस्की चि०	११८	शर्करा बुंदकाल०	१६६
उनकी चि०	११८	अनुषापीकाल०	११८	उस्की चि०	१६७
वल्लीककाल०	११८	उस्की चि०	११८	सहेतुलक्षणा विकार	१६८
उस्की चि०	११८	अलसकाल०	११८	विशेष ॥	१६९
कक्षागन्धकाल०	११८	उस्की चि०	११८	इति०	१७०
उनकी चि०	११८	दारी ल०	११८	पिरो रोगाधिकारः	१७१
अग्नि रोहिणीकाल०	११८	उस्की चि०	११८	उसका निदान और-	१७२

संख्या ॥	x	उसमें चार पटल	११	अथ रुणा मंडल -	११
उसके एका दश-	११	प्रथम पटल गत -	१२६	रोग ॥	x
प्रकार ॥	११	द्वेय स्तभाव ॥	x	उनके नाम और-	११
वातिक काल०	११३	द्वितीय पटल गत	१३०	संख्या ॥	x
पैतिक काल०	११	तृतीय पटल गत	११	सत्रण शुक्र लिङ्ग-	११
प्लैविक काल०	११	चतुर्थ पटल गत दो	१३२	कालक्षरा ॥	x
सांनिपातिक काल	११	य ॥ ॥ ॥	x	इति०	११
रक्तज काल०	११४	दृष्टि रोगों के नाम और	१३३	सन्धिके रोग ॥	१८२
क्षयज काल०	११	र संख्या ॥	x	रुः सन्धि	११
क्रिमिज काल०	११	रुः लिङ्ग नाश	११	उनमें होने वाले रोग	११
सूर्यावर्त काल०	११५	लिङ्ग नाश काल०	१३४	और उनके नाम त-	११
अनन्त वात काल०	११	वात काल०	११	था संख्या ॥	x
शंखक काल०	११६	कफ का	११	पूया लस काल०	११
अर्द्धाव मेदक काल०	११७	सवि पात का	११	उपनाह ल०	११
शिरारोगों की द्धि०	११	रक्त का	१३५	स्त्रावों की संप्राप्ति	१८३
शिरो वस्ति विधि	१३८	परिन्लायिक काल०	११	पैतिक स्त्राव	११
इति०	१६५	हेतु विशेष में मंडल	१३६	प्लैविक स्त्राव	११
अथ नेत्र रोगाधिकार	११	विशेष ॥	x	सांनिपातिक स्त्राव	१८४
रः ॥ ॥ ॥ ॥	x	पित्त विदग्ध दृष्टि	१३७	पर्वरागी काल०	११
उस्का प्रमारा	११	कालक्षरा ॥	x	अलजील०	११
उस्के अंग	११	प्लैविक विदग्ध दृष्टि	११	इति०	१८५
नेत्र के अट हत्तर	११	लक्षरा ॥	x	अनन्तर शुक्ल भाग	११
रोग ॥	x	धूम दर्शन ल०	१३८	के रोग ॥	x
तन्वान् रीत विशेष	१६६	हृस्व जान्य ल०	१३९	उनके नाम और सं-	११
उनका सामान्य से-	११	नकुलान्ध्य ल०	११	ख्या ॥	x
विप्र रुध सन्नि रुध	x	गंभीर कल०	११	प्रस्त्रायाम काल०	११
निदान ॥	x	निमित्त काल०	१८०	शुक्लार्म काल०	११
संप्राप्ति	१६७	अनिमित्त लिङ्ग-ना	११	रक्तार्म काल०	१८६
दृष्टि रोग	१६८	शकालक्षरा ॥	x	अधि मासार्म काल०	११
दृष्टि ल०	११	इति०	१८१	स्त्राय वर्म काल०	११

शुक्तिजकाल०	॥	शीशिनाशील०	॥	शुक्ताक्षिपाक	२०२
अर्जुनकाल०	॥	लगणल०	॥	अन्वतोवात	॥
पिष्टककाल०	॥	विषवर्त्मल०	॥	अम्नाधुयित	२०३
शिराजालकाल०	॥	कुंचनल०	॥	शिरोत्पात	॥
शिरापिडिकाकाल०	१८७	इति०	१८३	शिरोदुर्घ	॥
चलासंस्थितका	॥	अथपक्ष्मरोग	॥	नेत्रकीसामताल०	२०४
लक्षणा॥	×	पक्ष्मममेहीनेवाके	॥	निरामनाल०	॥
इति०	॥	रोगोंकेनाम॥	×	इति०	॥
अथवर्त्मजरोग	१८८	पक्ष्मकीपल०	॥	नेत्ररोगोंकीचि०	२०५
उत्कीनिरुक्ति	॥	नदानरोगपक्ष्म	१८४	इसकीसाध्यासाध्य	२०६
उनमेंहीनेवालेरोगों	॥	कोप॥	×	अत्रराशुक्त	२०७
केनामऔरसंख्या	×	पक्ष्मशातल०	॥	साध्यतमकाभीअथ	॥
उत्संगपीडिकाकाल०	॥	आश्रितनविधि	१८५	स्थामेदसेकष्टसा	×
कुम्भिकाकाल०	१८९	पिंडीविधि	१८६	ज्यता॥ ॥ ॥ ॥	×
पोथिकाकाल०	॥	जलुग्रन्थि	१८७	इसकीसाध्यासाध्य	॥
वर्त्मशर्कराल०	॥	इति०	॥	औरभीअसाध्यल०	२०८
अर्षीवर्त्मकाल०	॥	समस्तनेत्रकेरोग	॥	अक्षिपाकान्यप-	॥
शुष्काणीकाल०	१८९	उनकेवामऔरसं-	॥	लक्षणा॥	×
अंजननामिकाका-	॥	ख्या॥ ॥ ॥	×	अजकाजातकाल०	२०९
लक्षणा॥	×	उनमेंअभिष्यन्दचा	१८८	विडालकविधि	॥
वहलवर्त्मभेद	॥	र॥ ॥ ॥	×	तर्पणाविधि	॥
वर्त्मवन्धकभेद	॥	वातिक	॥	पुटपाकविधि	२१३
क्षिप्तवर्त्मभेद	॥	पेन्निक	१८९	अंजनविधि	॥
वर्त्मकर्मभेद	॥	प्लेजिक	॥	विकित्ता	२१४
प्रपासवर्त्मभेद	॥	रक्तज	॥	इति०	२१५
प्रक्षिप्तवर्त्म	१८९	अधिमन्थनामअ-	२००	वर्त्मरोगाधिकार	॥
अक्षिप्तवर्त्म	॥	भिष्यन्द॥ ॥	×	वर्त्मरोगोंकेनाम-	॥
वागहतवर्त्म	॥	उनकेल०	॥	औरसंख्या	×
वर्त्माहुद	॥	हताधिमन्थ	२०१	कर्मशूलकीसंज्ञा	॥
निमेष	१८२	वातपथ्याय	॥	पिपूर्वकल०	×

असाध्यता	२२३	नासारोगाधिकारः	२३४	सकालक्षणा ॥	५
कर्णनादकालः	२२४	उनके नाम और संख्या	२३५	पक्षपीनसकालः	२४५
वाधिर्य	२२५	पीनसकालः	२३६	मासारोगों की वि०	२४६
असाध्यवाधिर्य	२२६	अनुक्तसंग्रह	२३७	इति०	२४७
प्लेडभेद	२२७	पूतिनस्य	२३८	अध्यमुखरोगाधिकारः	२४८
कर्णश्राव	२२८	नासापाक	२३९	उत्कास्वरूप	२४९
कर्णकंदू	२२९	पूयरक्त	२४०	मुखरोगों की संख्या	२५०
कर्णगूथ	२३०	क्षययू	२४१	उनके निदान	२५१
प्रतिनाह	२३१	आगनुज क्षययू	२४२	औष्ठरोगों की निदान	२५२
कृमिकर्ण	२३२	संशयु	२४३	पूर्वक संस्था	२५३
कानमें पतंग आदि-	२३३	दीप्ति ल०	२४४	वातिक कालः	२५४
जाने कालक्षणा	२३४	प्रतिनाह ल०	२४५	पैत्रिक कालः	२५५
दो प्रकार की कर्ण वि-	२३५	सावल०	२४६	प्लेथिक कालः	२५६
द्रधि ॥ ॥ ॥	२३६	नासा पोष ल०	२४७	सान्निपातिक कालः	२५७
कर्ण पाक	२३७	प्रति श्याय ल०	२४८	रक्तज कालः	२५८
पूति कर्ण	२३८	उत्कासद्योजन कालः	२४९	मांसज कालः	२५९
कर्णगत शीघ्र अर्ण-	२३९	दान पूर्वक संग्राप्ति-	२५०	नैदोज कालः	२६०
अर्बुद कालः	२४०	लक्षणा ॥	२५१	अभिघातज कालः	२६१
इनमें वातिक	२४१	चपादि कुमजनित नि-	२५२	औष्ठरोगों की वि०	२६२
पैत्रिक	२४२	दान पूर्वक संग्राप्ति ॥	२५३	प्रति सारणा विधि	२६३
काफज	२४३	वातिक कालः	२५४	दन्त रोग उनके नाम	२६४
कर्ण पाला ल०	२४४	पैत्रिक कालः	२५५	और संख्या	२६५
उसमें परियोदक का	२४५	प्लेथिक कालः	२५६	शीताद कालः	२६६
निदान सहित ल०	२४६	सान्निपातिक कालः	२५७	दन्त पुष्पुद कालः	२६७
उपात्त ल०	२४७	दुष्ट प्रति श्याय कालः	२५८	दन्त वैदलः	२६८
उत्पत्त्य कालः	२४८	रक्तज कालः	२५९	सौधिर ल०	२६९
दुःख दर्दन ल०	२४९	उनमें कृमि	२६०	महा सौधिर	२७०
परिलेहिन ल०	२५०	विकारानर	२६१	परिदर ल०	२७१
कर्णरोग वि०	२५१	चैतीस संख्या पूरणा	२६२	उपकुशलः	२७२
इति०	२५२	चिकित्सा भेदसे पीन	२६३	वैदर्भ ल०	२७३

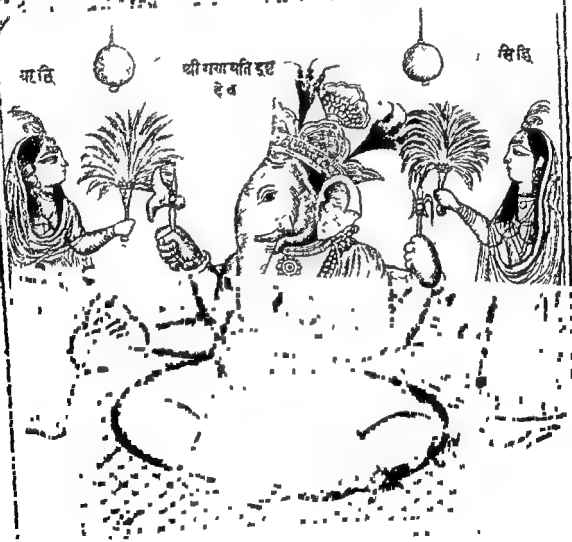
खलिवर्धन ल०	२२५	विदारि ल०	२२५
अधि मांसक ल०	२२६	मुख रोगों की चि०	२२५
पंच दन्त नाडी	२२७	सामान्य कंठ रोगों की चिकित्सा ॥	२२५
दन्त विद्रधि	२२८	समस्त मुख रोग व-	२२६
दन्त वेष्ट रोगों की चिकित्सा ॥	२२९	सका निदान और सं-	२२६
दन्त रोगान्तर उनके नाम और संख्या ॥	२३०	वातिक काल०	२२६
दालन काल०	२३१	पेनिक काल०	२२६
कृमि दन्त काल०	२३२	प्लेजिक काल०	२२६
भंजन काल०	२३३	विभिन्न गति विद्रोह की नाडी ॥	२२७
दन्त हृय काल०	२३४	समस्त मुख रोगों की चिकित्सा ॥	२२७
दन्त शर्करा काल०	२३५	इति०	२२७
कपालि काल०	२३६	अथ विद्राधिकारः	२२७
श्याव दन्त काल०	२३७	विष दो प्रकार का	२२७
कपाल काल०	२३८	स्यावर विषके दश	२२७
उनकी चि०	२३९	आध्वय ॥	२२७
जिह्वा रोग	२४०	जंगम विषके सोल	२२७
उनका निदान संख्या	२४१	इ भोग्रय ॥	२२७
वातज काल०	२४२	सामान्य स्यावर वि	२२७
पित्तज काल०	२४३	षके कार्य ॥	२२७
कफज काल०	२४४	मूल विषका कार्य	२२७
आलस काल०	२४५	पत्रावयका कार्य	२२७
उप जिह्वि काल०	२४६	फल विषका कार्य	२२७
उनकी चि०	२४७	पुष्य विषका कार्य	२२७
अथ तात्त रोग	२४८	त्वचासार आदिके कार्य ॥	२२७
उनके नाम और संख्या	२४९	क्षीरविषका कार्य	२२७
गल शृङ्गी काल०	२५०	धातु विष कार्य	२२७
तुण्डिकरी काल०	२५१		२२७
अभूय ल०	२५२		२२७

कन्द विष कार्य	२६३	गर कार्य	२६३	जंगम विषकी वि०	३१२
दण्डगुण	२६३	लूना आदि जन्तु वि०	३०४	द्वि०	३१३
उन गुणों से विष- कार्य ॥	२६३	शेयों की उत्पत्ति नि०	२६३	स्त्रियों के प्रदरादि री	२६३
विषलिप्त शस्त्र सेहत	२६४	रुक्ति और संख्या ॥	२६३	गों का अधिकार ॥	२६३
कालक्षरा ॥	२६४	सामान्य उनके दंश-	३०५	उसका विप्रकृष्ट नि०	२६३
उनके ज्ञानार्थ ल०	२६५	लक्षरा ॥ ॥ ॥	२६५	उसका सामान्य ल०	३१४
जंगम विषों के सामा- न्य कार्य ॥	२६६	असाध्यों का ल०	२६५	प्लेथिक प्रदर का ल०	२६५
तीक्ष्णतर जंगमों में	२६६	आखू विषका कार्य	३०६	पैन्तिक काल०	२६५
सर्प ॥ ॥ ॥	२६६	पाराहर मूविक विष	२६६	वातिक काल०	३१५
भोगि आदि यों के	२६७	का कार्य ॥	२६६	सन्निपातिक काल०	२६६
काटे का लक्षरा ॥	२६७	गिर गिट के कांटे का	२६६	रक्त के बहुन निकलने	२६६
देश काल विशेष में	२६७	लक्षरा ॥	२६७	में उषः ऋतु ॥	२६७
काटे की असाध्यता	२६७	विच्छू के विष का ल०	३०७	असाध्य प्रदर रोग वा	३१६
दर बी कर का ल०	२६७	असाध्य विच्छू के कां	२६७	ली का लक्षरा	२६७
दूयी विष के कार्य	३०७	टे का लक्षरा ॥	२६७	चिकित्सा निवृत्त्यर्थ-	२६७
स्थान विशेष स्थित-	३०७	कराग दण्ड का ल०	२६७	घुड़ आर्तिव काल०	२६७
दूयी विष में लक्षरा-	३०७	उच्चि टिङ्ग के काटे का	२६७	प्रदर की वि०	२६७
विशेष ॥ ॥ ॥	३०७	लक्षरा ॥ ॥ ॥	२६७	द्वि०	३१८
दूयी विषका प्रकीर्ण	३०७	विष वाले मेहक के-	३०८	सोम रोगाधिकारः	२६७
समय ॥ ॥ ॥	३०७	काटे का ल०	३०८	उसकी निदान पूर्वक	२६७
कुपित उसका पूर्व	३०७	जलो का विष का कार्य	२६७	संश्राप्ति ॥	२६७
रूप ॥ ॥ ॥	३०७	क्षिप कली के विष का	२६७	उसका ल०	२६७
दूयी विष मेह से वि-	३०७	खन खजूर का विष	२६७	उसकी वि०	३१९
कार मेठ ॥	३०७	कार्य ॥ ॥ ॥	२६७	रूपाती शर का ल०	३१९
दूयी विष की निरुक्ति	३०७	मूषक विष का कार्य	२६७	योनि रोगाधिकारः	२६७
दूयी विष के लाध्य वा	३०७	असाध्य मणक ल०	३०८	उनका निदान	२६७
दिक ॥ ॥ ॥	३०७	माक्षिका दंश का ल०	२६७	योनि रोग के नाम	२६७
गर मेह	३०७	आघ्रादि विष का ल०	२६७	उनके ल०	३२०
	३०७	विषोहित काल०	३१०	विदुता सूची	३२४
	३०७	स्थावर विष की वि०	२६७	विदोय जा	३२५

असाध्यता	२२	समय पर प्रसव वि	२२	ज्वरादियों का रोग वि	३५९
योनि कन्द का नि-	२२	लंब में चिकित्सा ॥	२५	श्रेष्ठ करके निदान वि	२
दान ॥ ॥ ॥	२५	सूदुर्गर्भ की निदान	३५६	श्रेष्ठ ॥ ॥ ॥ ॥	२
लक्षण	२२	संप्राप्ति पूर्वक ल०	२	सूत के रोग की वि०	२
वात जादि भेद से-	२२	उसकी संख्या निरास	२२	मसूना के निदान सम	२२
लक्षण०	२	चार प्रकार	२२	यकी अवधि ॥	२
योनि रोग की वि०	३२६	उसका ल०	३५७	सब रोग की संप्राप्ति ॥	३६३
जस्में वन्ध्या की वि०	२२	आठ प्रकार	३५७	उनका भक्ति देश से ल०	३६३
उसका ल०	२२	आठ प्रकारान्तर	३५७	रोग रोग की वि०	२२
नद्यातव की वि०	२२	असाध्य सूदुर्गर्भ	३५५	ज्ञति०	३६३
वन्ध्या वि०	३२७	एही लक्षण ॥	२	अथवाल रोगाधि	२२
गर्भ प्रद औषध क	३२८	सूदुर्गर्भ का क्रम से-	२२	कारः ॥ ॥ ॥	२
थना वसर में गर्भ न	२	कारणार्थ क्रम ॥	२	बाल ग्रहों के नाम	२२
रहने का औषध ॥	२	गर्भ के भ्रूरा में का	३५७	उनकी वन्धति	२२
क्रम से वि०	३२७	रणा ॥	२	सामान्य ग्रह जुष्टों	३६६
गर्भ स्त्राव का निदान	३३६	असाध्य गर्भिणी ल०	२२	काल लक्षण ॥	२
उनका पूर्व रूप	२२	योनि संवरण ल०	२२	बाल ग्रहों का बाल	२२
उनकी अवधि	२	सूदुर्गर्भ की वि०	३५३	ग्रहणा ॥ ॥ ॥	२
गर्भ स्त्राव की वि०	३३७	हेदन प्रकार	३५३	विशिष्ट ग्रह जुष्टों का	३६७
गर्भ पात के उपद्रव	३३८	मसूना की योनि में	३५३	लक्षण ॥	२
गर्भ के स्थानांतर	२२	क्षता हिकी वि०	२	सामान्य ग्रह जुष्टों	२
गमन में उपद्रव	२	मसूना के उदर में अ	२२	की वि०	३६७
उसकी वि०	२२	परा के उपद्रव	२	विशिष्ट ग्रह जुष्टों की	३७३
मासांतु मासिक	३५७	उसकी वि०	२२	चिकित्सा	२
वात शुष्क गर्भ की-	३५३	मकल काल०	३५५	स्कन्द ग्रह जुष्टों की	२२
चिकित्सा ॥	२	उसकी वि०	३५५	चिकित्सा ॥	२
प्रसव मास	२२	मसूना के हित	२२	स्कन्द यस्मार लगे	३७२
प्रसव मास आति क्र	३५५	सूत का रोग का नि	३५६	की चिकित्सा ॥	२
म करके रहे हुवे ग	२	दान ॥ ॥ ॥	२	राहुनी ग्रह जुष्ट की	३७५
र्भ की चिकित्सा ॥	२	व्याधि सामान्य स्वरू	२२	चिकित्सा ॥	२

रेयती ग्रह जुष्ट कीचि	३७३	अथोत्तररब्द	४७३
पूतना ग्रह जुष्ट कीचि	३७८	वाजी करणाधिका	४७४
गन्धपूतना ग्रह जुष्ट	३८०	रः ॥ ॥ ॥	४७५
चिकित्सा ॥	४	उसका ल०	४७६
तिक्तकुम्भ	४	नपुंसक काल०	४७७
प्रति पूतना ग्रह जुष्ट	३८१	संख्या निदान	४७८
कीचि० ॥ ॥ ॥	४	असाध्य क्लेश	४७९
मुखमडिकाग्रह	३८२	नपुंसक कीचि	४८०
जु० चि० ॥ ॥ ॥	४	वाजी करणा विधि	४८१
जलाभि सन्नणमन्त्र	३८३	स्त्री भजन विधि	४८२
नैगमेय ग्रह जुष्ट	४	वाजी करणा	४८३
वाल रोगों के नि० ल०	३८४	इति०	४८४
तालु कंठक ल०	३८५	रसाय नाधि कारः	४८५
नहा पद्म ल०	४	उसका ल०	४८६
कुक्कुरा कल०	३८६	उसका फल	४८७
हुंडी गुद पाक ल०	४	उसके उद्ग हरणा	४८८
आहि पूतल ल०	४	इति०	४८९
अजगल्ली ल०	४		
परिगर्भिक ल०	३८८		
दन्ती द्वेदक रोग	४		
वाल रोगों की चि०	३८९		
वानक की कनीयसी	४		
मावा ॥ ॥ ॥ ॥	४		
मकारान्तर से ओय	३९०		
धो पायन ॥	४		
म अवचन वाल को के	४		
आभ्यन्तर ज्ञानोपा	४		
य ॥ ॥ ॥ ॥	४		
ज्वर की चि०	३९१		
इति०	४९२		

पूँः
गणेश जी ?





भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डे

प्रथमोऽध्यायः।

प्रणम्य परमात्मानं भिषजां सुखहेतवे ।
क्रियते रावद्वर्षाणं भाषा भावार्थबोधिनी ॥१॥
गजमुखममरप्रवरं सिद्धिकरं विघ्नहर्त्तारम् ।
गुरुमवगमनयनप्रदमिष्टकरीमिष्टदेवतां वन्दे ॥१॥
आयुर्वेदागमनं क्रमेण येनाभवद्भूमौ ।
प्रथमं लिखामि तमहं नानातन्त्राणि संहृत्य ॥२॥

भाषा- मैं भावमिश्र सिद्धिके करनिवालि और विघ्नके हरनिवालि गजके समान सुख ऐसे देवताओं में श्रेष्ठ श्रीमहाराज गणेशजीको नमस्कार करता हूँ और ज्ञानरूपी नेत्रको देनेवाले गुरुजीको तथा बांछिन फलको देनेवाले कुलदेवता को नमस्कार करता हूँ ॥१॥

एध्वीपर आयुर्वेद का आगमन अर्थात् वैद्यशास्त्र का आना जिस क्रमसे ज्ञान वा उसको पहिले में ब्रह्मन से तन्त्रोंको देखकर लिखना है ॥२॥

आयुर्वेदस्य लक्षणमाह

आयुर्हि ताहितं व्याधिर्निदानं शमनं तथा ॥

विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥३॥

भा० आयुर्वेद का लक्षण । आयुके हित और अहितवस्तुका कथन रोग का निदान तथा रोगकी शान्ति जिसमें है उसको विद्वान् पुरुष आयुर्वेद कहते

आयुर्वेदस्य निरुक्तिमाह

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेति च ।

तस्मान्मुनिवै रेष आयुर्वेदइति स्मृतः ॥४॥

(क) शरीर जीवयोर्योगे जीवनं तेनावच्छिन्नः कालआ

युः । आयुर्वेदद्वारायुष्यायनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्मा

णि ज्ञात्वा तेषां सेवनत्यागाम्यामारोग्येणायुर्विन्दति ।

तेनैव हेतुनापरस्यायुर्वेति च क्रम माह तत्रादौ ब्र

ह्मणः प्रादुर्भावः ॥ (क)

आयुर्वेद की निरुक्ति ।

भा० जिस कारण मनुष्य इसी आयु पाताहै अथवा जानताहै उस कारण बड़े सु
मियोंने इसको आयुर्वेद ऐसा कहाहै ॥४॥

(क) शरीर और जीवके संयोगको जीवन कहतेहैं उससे धिरेइंदे समय
की आयु कहतेहैं । आयुर्वेद के द्वारा आयुके हित और अहित द्रव्य गुण कर्मा
की जानकर उनके सेवन और त्यागसे अर्थात् हित द्रव्य हितगुण हितकर्म
इनका सेवन और अहितद्रव्य अहितगुण अहितकर्म इनका त्याग इन
दोनों से आरोग्यके साथ आयु पाताहै । और इसी हेतु से दूसरे की भी आयु
जानताहै (क)

विधाताऽथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन् ।

स्व नाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीं मृजुम् ॥५॥

ततः प्रजापतिं दत्तं दत्तं सकल कर्मसु ।

विधिर्धोनीरधिं साङ्गमायुर्वेदमुपादिशत् ॥६॥

भा० क्रमको कहतेहैं । उसमें प्रथम ब्रह्मासे निकला ॥ ब्रह्मानीने अथर्वके
सारे आयुर्वेद की प्रगट करके अपने नामसे लाखश्लोक की सरल संहिता ब
नाई ॥५॥ उसके अनन्तर सब कामोंमें चतुर ऐसे बल प्रजापति को ब्रह्मानी
की पुष्टिरूपी समुद्र ऐसे साष्टाङ्ग आयुर्वेद को पढ़ाया ॥६॥

अथ आयुर्वेद-लक्षणा चित्र १

श्री ब्रह्मा

आयुर्वेद-वक्ता

रोगादि-प्र

रोगादि निवृत्ति



अथ ब्रह्म संहिता प्रादुर्भावः चित्र २



अथ दक्ष मां चित्र ३



[अथ दक्षप्रादुर्भावः॥] अथ दक्षः क्रियादक्षः स्वर्वे-
द्योवेदमायुषः। वेदयामास विद्वांसौ सूर्य्योऽशौ सुर
सत्तमौ ॥७॥

अथ अश्विनी सुत प्रादुर्भावः।

दक्षादधीत्य दक्षो वितनुतः संहितां स्वीयाम् ।
सकलचिकित्सकलोक प्रतिपत्ति विवृद्ध्ये धन्याम् ॥८॥
स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नं भैरवेण रुषाऽप्यतत् ।
अश्विभ्यां संहितं तस्मात्तौ यातौ यज्ञभागिनौ ॥९॥

भा० अनन्तर दक्ष प्रजापति से निकला । अनन्तर जो संपूर्ण क्रिया में च-
नुर ऐसे दक्ष प्रजापति ने सूर्य के पुत्र देवताओं में श्रेष्ठ विद्वान् अश्विनी।
कुमारों को पढ़ाया ॥७॥

अनन्तर अश्विनी पुत्र से प्रगट हुआ । अश्विनी कुमारों ने दक्ष प्रजापति
से पढ़कर सब वैद्य लोगों की क्रिया चानुर्य की वृद्धि के अर्थ ब्रह्म अच्छी अ-
पनी संहिता बनाई ॥८॥ ब्रह्मा का शिर क्रीधरूपी भैरव ने काटा उसकी अ-
श्विनी कुमारों ने लीठा उस कारण वे यज्ञ के भागिज्जब ॥९॥

देवासुररणो देवा दैत्यैर्ये सक्षताः कृताः ।

अक्षतास्ते कृताः सद्योदसाम्भ्यामद्भुतं महत् ॥१०॥

वज्रिणोऽभूत् भुजस्तम्भः सदसाम्भ्यां चिकित्सितः ।

सीमान्निपतितश्चन्द्र स्ताभ्यामेव सुखीकृतः ॥११॥

भा० देवता और दैत्यों की लड़ाई में दैत्यों से जो देवता घायल हुये थे उनको
उसी समय में वडी अद्भुतता के साथ अश्विनी कुमारों ने अच्छा कर दिया ॥१०॥

इन्द्र का हात जकड़ गया था वह अश्विनी कुमारों ने अच्छा किया । चन्द्र
अपने नेत्र विशेष से गिर गया अर्थात् हीनतेज हुआ था अश्विनी कुमारों हीने

आरम्भ किया ॥ ११ ॥

विशीर्ण दशनाः पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च ।

शशिनी राजयक्ष्माऽभूदश्विभ्यान्ने विकित्तिताः ॥ १२ ॥

भार्गवश्चावनः कामी वृद्धः सन् विकृतिं गतः ।

वीर्यवर्णं स्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्यां पुनर्युवा ॥ १३ ॥

एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषजां चरी ।

बभूवतु भृशं पूज्या विन्द्रादीनां दिवौकसाम् ॥ १४ ॥

भा० सूर्य के दांत गिर गये थे इन्द्र की आँखें नष्ट होगई थीं, चन्द्रमा को राज यक्ष्मा रोग होगया था वे अश्विनीकुमारों से अच्छे किये गये ॥ १२ ॥

भोग की इच्छावाला भार्गवच्यवन वृद्ध होनेसे बुरा कुत्तरूप होगया था उस को अश्विनीकुमारों ने फिरसे सामर्थ्य और रंगरूप स्वर से युक्त तरुण किया ॥ १३ ॥ ये और बहुतसे कामोंके करनेसे वैद्यों में श्रेष्ठ अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवताओं के अत्यन्त पूज्य हूँवे ॥ १४ ॥

अथेन्द्रप्रादुर्भावः ।

संहप्रयदस्त्रयोरिन्द्रः कर्म्मारीयतानि यत्नयान् ।

आयुर्वेदं निरुद्धे गं तौ ययाचे शचीपतिः ॥ १५ ॥

नासत्यौ सत्यसन्धेन शक्रेण किल याचितौ ।

आयुर्वेदं यथाधीतं ददतुः शतमन्यवे ॥ १६ ॥

भा० अगन्तर इन्द्रसे प्रगट हुआ । यत्नवाले इन्द्रने अश्विनीकुमारों के इन कामों को देखकर बहुत चमत्कारी वैद्यशास्त्र को उनसे माँगा (अर्थात् पढ़ने केवाले प्रार्थनाकी) ॥ १५ ॥ सत्य के प्रणवाले इन्द्रसे प्रार्थना किये गये अश्विनी कुमारों ने जैसे आयुर्वेद पढ़ाया वैसे इन्द्रको दे दिया अर्थात् पढ़ाया ॥ १६ ॥

अथ भविनीकुमारप्र० चि० ५

ब्रह्माको
रा

शशिचोडेहे

भविनीकुमारपुरवैखदे०



अथ दुर्दं प्रादु० चि० ५



नास्तत्याभ्यामधीत्येष आयुर्वेदं शतक्रतुः ।

अध्यापयामस वहूनावेय प्रसुरवान् मुनीन् ॥ १७ ॥

अथावेय प्रादुर्भावः ।

एकदा जगदलोक्य गदाकुलमितस्ततः । चिन्तया

मास भगवानावेयो मुनिपुङ्गवः ॥ १८ ॥ किं करोमि

क्व गच्छामि कथं लोकाः निरामयाः । भवन्ति साम

याच्चेतान्न शक्नोमि निरीक्षितुम् ॥ १९ ॥

दयालु रहमत्यर्थं स्वभावो दुरतिक्रमः ।

एतेषां दुःखतो दुःखं समापि हृदयेऽधिकम् ॥ २० ॥

भा० ————— इन्द्र ने आयुर्वेद को अश्विनीकुमारों से पढ़के ही अत्रिया दि बड़न से मुनियों को पढ़ाया ॥ १७ ॥ अतन्तर अत्रियसे प्रगट हुवा । एक समयमें मुनि श्रेष्ठ भगवान् अत्रियजी सब जगह पर रोगसे पीड़ित संसार को देखकर चिन्ता करने लगे ॥ १८ ॥ क्याकरूं कहाँ जाऊँ कैसे लोग निरोग होविङ्गे । इन रोगियों को देखनहीं सक्ता ॥ १९ ॥ मैं बहुत दयालु हूँ स्वभाव बदल नहीं सक्ता । मेरे मनमें इनके दुःख से अधिक दुःख होता है ॥ २० ॥

आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्ज्याय शरीरिणाम् ।

इति निश्चित्य गतवान् आत्रेयस्त्रिवशालयम् ॥ २१ ॥

तत्र मन्दिर मिन्द्रस्य गत्वा शक्रं ददर्श सः । सिंहास

न समासीनं स्तूयमानं सुरर्षिभिः ॥ २२ ॥

भा०-मनुष्यों के निरोग होनेके वास्ते वैद्यशास्त्र को पढ़ूँगा । ऐसे निश्चय करके अत्रियजी स्वर्गमें गये ॥ २१ ॥ वहाँपर इन्द्र के मन्दिर में जाकर अत्रियजी ने आयुर्वेद के बड़े आचार्य-देवताओं के सिंहास-जेज ने सूर्य के समान

अपनी कान्ती से दिशाओं को प्रकाश करने वाले-देवता और ऋषियों से स्तुति किये हुवे इन्द्र की सिंहासन पर बैठे हुवे देखा ॥ २२ ॥

भासयन्तं दिशो भासा भास्कर प्रतिमन्विषा ।
 आयुर्वेदं महाचार्य्य शिरोधार्य्य दिवौकसाम् ॥ २३ ॥
 शक्रस्तु तं निरीक्ष्येव त्यक्तसिंहासनो ययौ । नद
 ग्रे पूजयामास भृशं भूरितपः कृशम् ॥ २४ ॥
 कुशलं परिपप्रच्छ तथा गमनकारणम् । समुनि
 र्वक्तुमारेभे निजागमन कारणम् ॥ २५ ॥

भा० इन्द्र उनकी देखते ही सिंहासन छोड़कर उनके आगे गया और बड़तनप से दुर्बल हुवे अत्रियजी का चड़ा सन्कार किया ॥ २३ ॥ २४ ॥ कुशल श्रीर आगमन का कारण पूछा । उस मुनिने अपने आगमन का कारण कहना प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥

देव । राजन्नराजासि दिवराव यतो भवान् । विधा
 वा विहितो यत्नात् त्रिलोकीलोकपालकः ॥ २६ ॥
 व्याधिर्भिव्यथिता लोकाः शोकाकुलितचेतसः ।
 भूतले सन्ति सन्नापं तेषां हन्तुं कृपां कुरु ॥ २७ ॥
 आयुर्वेदोपदेशं मे कुरु कारुण्यतो नृणाम् । तथे
 त्युक्त्वा सहस्त्राक्षोऽध्यापयामास तं मुनिम् ॥ २८ ॥

भा० हे देवताओं के राजा नृम स्वर्ग ही के राजा नहीं हो । क्यों कि ब्रह्माजी ने यत्न के साथ आपको नीनों लोकों के लोगों का पालन करने वाला बनाया है ॥ २६ ॥ शोक से व्याकुल चिन्तित और रोग से पीड़ित लोग संसार में हैं उनके सन्नाप को दूर करने के अर्थ कृपा कीजिये ॥ २७ ॥

मुनियों पर दयाकरके मुझे आयुर्वेद का उपदेश कीजिये । बहुत अच्छा यह कहकर इन्द्र ने उस मुनिको यज्ञाया ॥ २८ ॥

मुनीन्द्रः इन्द्रतः साङ्गमायुर्वेद मधीत्यसः । श्र
भिनन्द्य जमाशीर्भिराजगाम पुनस्महीम् ॥ २९ ॥

अथात्रेयो मुनिश्रेष्ठो भगवान् करुणाकरः । स्वना
म्ना संहितां चक्रे नरचक्रानु कम्पया ॥ ३० ॥ ततो
ऽग्निवेशां भेदञ्च आनूकर्णं पराशरम् ॥ क्षीरपाणिं
च हारीत मायुर्वेदं मपाठयत् ॥ ३१ ॥

भा० इस मुनिराज ने इन्द्र से अष्टाङ्ग-सहित आयुर्वेद को पढ़कर आशीर्वादों से इन्द्रको प्रसन्न करके फिरसे पृथ्वीपर आये ॥ २९ ॥ दयावान् मुनिवर भगवान् अथात्रेयी ने राजाओं के लिये नरचक्रानु करके अपने नाम से संहिता बनाई । ततोऽग्निवेशां भेदञ्च आनूकर्णं पराशरं क्षीरपाणिं च हारीत मायुर्वेदं मपाठयत् ॥ ३१ ॥

तन्त्रस्य कर्ता प्रथमऽग्निवेशोऽभवत्पुरा ॥ ततो
भेडादयश्चक्रुः स्वं स्वं तन्त्रं कृतानि च ॥ ३२ ॥ श्राव
यामासु शत्रेयं मुनिघ्नन्दे न वन्दितम् ॥ श्रुत्वा च ता
नि तन्त्राणि हृष्टोऽभूच्चित्रन्दनः ॥ ३३ ॥ यथाचतस्र
त्रितन्त्रस्मात् प्रहृष्टो मुनयोऽभवन् ॥

श्री० पूर्वकाल में प्रथम तन्त्र के करने वाले अग्निवेशाज्ये ॥ उसके अनन्तर भेडादिकों ने अपने-अपने तन्त्र बनाये ॥ ३२ ॥ मुनि इन्द्रों से समस्कार किये गये आश्विजी को सुनाया । उन तन्त्रों को सुनकर अश्विजी प्रसन्न ज्ये ॥ ३३ ॥ ठीक ठीक बनी इस कारण मुनिलोक प्रसन्न ज्ये ॥

दिवि देवर्षयो देवाः श्रुत्वा साध्वितितेऽब्रुवन् ॥ ३४ ॥

भरद्वाज प्रादुर्भावः ।

एकदा हिमवत्पार्श्वे देवादागत्य सङ्गताः ॥ मुनयो
ब्रह्मस्तेषां नामभिः कथयाम्यहम् ॥ ३५ ॥ भारद्वा
जो मुनिवरः प्रथमं समुपागतः ॥ ततोऽङ्गिरस्ततो ग
र्गो मरिचिर्भृगुर्भार्गवौ ॥ ३६ ॥ पुलस्त्योऽगस्तिरसितो
वसिष्ठः सपराशरः ॥ हारीतो गौतमः सांख्यो मैत्रेय
श्च वनोऽपि च ॥ ३७ ॥

भा० स्वर्ग में देव ऋषि और देवता लोगोंने मुनिकर बेलीग बहूत अच्छा ऐसा
कहने लगे ॥ ३४ ॥ भरद्वाज से प्रगट हुआ । एक समय में हिमालय के पास
देवयागसे बहूतसे मुनिलोग आकर मिले ॥ उनके नाम मैं कहता हूँ ॥ ३५ ॥
पहिले मुनिवर भारद्वाजजी आये ॥ अनन्तर अङ्गिरा और उसके अनन्तर
गर्ग मरीचि भृगु भार्गव ॥ ३६ ॥ और पुलस्त्य अगस्ति असित वसिष्ठ पराश
र सहित ॥ हारीत गौतम सांख्य मैत्रेय और च्यवन भी आये ॥ ३७ ॥

जमदग्निश्च गार्गश्च काश्यपः कश्यपोऽपि च ॥ ना
रदो वामदेवश्च मार्कण्डेयः कपिञ्जलः ॥ ३८ ॥ शा
ण्डिल्यः सहकौण्डिन्यः शाकुनेयश्च शौनकेः ॥
आश्वलायन सांक्रन्त्यौ विश्वामित्रः परीक्षकः ॥ ३९ ॥
देवलो गालवो धौम्यः काम्य कात्यायना वुभौ ॥

और जमदग्नि गार्ग काश्यप कश्यप ॥ नारद वामदेव मार्कण्डेय कपिञ्जल
कौण्डिन्य के साथ शान्डिल्य शाकुनेय शौनक ॥ आश्वलायन सांक्रन्त्य
॥ ३९ ॥ देवल गालव धौम्य काम्य कात्यायन वुभौ ॥
कुशिको वादरायणः ॥ ४० ॥

अथ आत्रेय प्रादुः चित्र ६

आत्रेयादिभुनि

इन्द्र-करपती

देवसभा

आयुर्वेदाभ्यासः



अथ भारद्वाज प्रादुः चित्र ७

भारद्वाजादिभुनि

इन्द्र-करपती

देवसभा

आयुर्वेदाभ्यासः



हिरण्याक्षश्च लौगाक्षिः शरलोमा च गोभिलः ॥ वै
 खानसा बालखिल्या सत्यैवान्ये महर्षयः ॥ ४१ ॥ ब्र
 ह्मज्ञानस्य निधयो यमस्य नियमस्य च ॥ तपतस्ते
 जसा दीप्ता हूयमाना इवानयः ॥ ४२ ॥ स्वोपविष्टा
 स्ते तत्र सर्वे चक्रुः कथामिमाम् ॥ धर्मार्थं काम
 मोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम् ॥ ४३ ॥

भा० और काङ्कायन वैजपाय कुशिक बादरायण ॥ ४० ॥ हिरण्याक्ष लौगा
 क्षि शरलोमा गोभिल ॥ वैखानस बालखिल्य जैसेही और महर्षि लोग ।
 ॥ ४१ ॥ जो ब्रह्मज्ञान के और यमनियम के भी समुद्र ॥ प्रज्वलित अग्नि के
 समान तप और तेजसे दीप्त अर्थात् प्रकाशवाले ये सब आये ॥ ४२ ॥ वहाँपर
 बैठकर वे सब इस कथा को कहने लगे । कि धर्म अर्थ काम मोक्ष इनकी जड़
 देह कहीं गवई है ॥ ४३ ॥

तपः स्वाध्याय धर्माणां ब्रह्मचर्यं व्रतायुषाम् ॥
 हर्तारः प्रसृता रोगाः यत्र तत्र च सर्वतः ॥ ४४ ॥ रो
 गाः कार्श्यकरा बलक्षयकरा वेहस्य चेष्टाहराः दृ
 ष्ट्वा इन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः ॥
 धर्मार्थीरिवलकाममुक्तिषु महाविघ्नस्वरूपा बला
 त् प्राणानाशु हरन्ति सन्ति यदि ते क्षेमं कुतः प्राणि
 नाम् ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

भा० तप वेदपाठ और धर्मों का तथा ब्रह्मचर्य व्रत आयु इनके हरण क
 रनेवाले रोग यहाँ वहाँ सब जगह फैले हुए हैं ॥ ४४ ॥ रोग दुःखलापन कर
 नेवाले, और बल के क्षय करनेवाले, तथा शरीर की चेष्टा हरनेवाले, और इन्द्रि
 य की शक्ति नष्ट करनेवाले देखे, और संपूर्ण शरीर में पीडा करनेवाले ॥ तथा
 धर्म अर्थ और संपूर्ण काम मुक्ति इनमें बड़े विघ्नरूप ये रोग बलान्कार से प्राणों
 को शीघ्र हरते हैं जब ये रोग विद्यमान हैं तब प्राणियों को सुख कहाँ अर्थान् नहीं

मिल सक्ता ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

तत्तेषां प्रशमाय कश्चन विधिश्चिन्त्यो भवद्भिर्बु
धै र्योग्यैरित्यभिधाय संसदि भरद्वाजं मुनिं तेऽब्रु
वन् ॥ त्वं योग्यो भगवन् । सहस्रनयनं याचस्व
लब्धं क्रमादायुर्वेदमधीत्य यं गदभयात्सुक्ता भ
वामो वयम् ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इत्थं स मुनिभिर्योग्यैः
प्रार्थितो विनयान्वितैः ॥ भरद्वाजो मुनिश्रेष्ठो ज
गाम त्रिदशालयम् ॥ ४९ ॥

भा० तिस्रि उनके दूर होने के वास्ते आप ऐसे विद्वान् और योग्य पुरुषों से
कोई प्रकार सौचा जाना चाहिये इस तरह सभामें वे ऋषिलोग नाम लेकर
भरद्वाज मुनिसे बोले ॥ ४७ ॥ हे भगवन् तुम योग्य हो । इन्द्र से प्रार्थना करो कि
प्राप्त किये जूवे आयुर्वेद को क्रमके साथ पढ़कर इन रोगों से हमलोग छूट जाविं
॥ ४८ ॥ इस तरह पर विनयकरके युक्त और योग्य मुनियोंसे प्रार्थना किये
गये वह मुनिबेष्ट भरद्वाजजी महाराज स्वर्ग को गये ॥ ४९ ॥

तथेन्द्र भवनं गत्वा सुरर्षि गणमध्यगम् ॥ दृष्टवान्
वृत्वहन्तारं दीप्यमानं भिवानलम् ॥ ५० ॥ दृष्ट्वैव स
मुनिं प्राह भगवान् मधवा मुदा ॥ धर्मज्ञा । स्वाग
तन्तेऽथ मुनिं तं समपूजयत् ॥ ५१ ॥ सोऽभिगम्य
जयाशीर्भिरभिनन्द्य सुरेश्वरम् ॥ ऋषीणां वचनं
सम्यक् श्रावयन् मुनिसत्तमः ॥ ५२ ॥

भा० उसी प्रकार इन्द्रके भवनमें जाकर देवता और ऋषियों के बीचमें बैठे
हुए वृत्रासुरके मारनेवाले तथा अग्निके समान प्रकाशमान इन्द्रको देखवा ॥ ५०
॥ उस भगवान् इन्द्रने मुनिको देखतेही आनन्द पूर्वक कहा ॥ हे धर्मके जानने

चाले ॥ तुम्हारा आना कुशल केमके साथ जवा इसप्रकार कुशल रहने के
 अनन्तर उस मुनीकी पूजाकी ॥ ५१ ॥ उस मुनि श्रेष्ठ भरद्वाजजी ने इन्द्रसे
 मिलकर और आशीर्वाद से प्रसन्न करके ऋषियोंका कहना अच्छी तरह सु
 नाया ॥ ५२ ॥

व्याधयो हि समुत्पन्नाः सर्व्व प्राणिभ्यङ्कुराः ॥ ते
 षां प्रशमनोपायं यथावद्वक्तुं मर्हसि ॥ ५३ ॥ तमुवा
 च मुनिं साङ्गः मायुर्वेदं शतक्रतुः ॥ जीवेद् वर्षस
 हस्त्राणि देही नीरुङ् निशम्य यम् ॥ ५४ ॥ सोऽन
 न्तपारन्तिस्कन्ध मायुर्वेदं महासुनिः ॥ यथा वद
 चिरात् सर्व्वं बुबुधे तन्मना शुचिः ॥ ५५ ॥

भा० संपूर्ण जीवोंकी भयदेनेवाले रोग उत्पन्न हवे हैं ॥ उनके शमन होने
 का उपाय आप ठीक ठीक कह सकते हो ॥ ५३ ॥ इन्द्रने अंगसहित आयुर्वे
 द उस ऋषिकी पढ़ाया ॥ जिसकी सुनकर देही निरोग होकर सहस्र वर्ष
 जीता है ॥ ५४ ॥ पावित्र्य और सकाग्रचिन्तनसे उस महासुनि भरद्वाजने ती
 न कौंडवाले अपार आयुर्वेदको अच्छी तरह पर थोड़े दिनोंमें सब जा
 न लिया ॥ ५५ ॥

तेनायुः सुचिरं लेभे भरद्वाजो निशम्य यम् ॥ अन्या
 नपि मुनींश्चक्रे निरुजः सुचिरायुषः ॥ ५६ ॥ तत्त
 न्त्रजनित ज्ञानचक्षुषा ऋषयोऽखिलाः ॥ गुणान्
 द्रव्याणि कर्म्मणि दृष्ट्वा तद्विधिमाश्रिताः ॥ ५७ ॥
 आरोग्यं लेभिरे दीर्घमायुश्च सुखसंयुतम् ॥ आयु
 र्वेदाक्त विधिनाऽन्येऽपि स्युर्मुनयो यथा ॥ ५८ ॥

चरकप्रादुर्भावः ।

यदा मत्स्यावतारेण हरिणा वेद उद्धृतः ॥ तदा प्रो-
षश्च तत्रैव वेदं साङ्गमवाप्तवान् ॥ ५६ ॥ अथर्वा-
न्तर्गतं सम्यक् आयुर्वेदं च लब्धवान् ॥ एकदा
स महीवृत्तं द्रष्टुञ्चर इवागतः ॥ ६० ॥

भा० उससे भरद्वाजजी ने आरोग्यता के साथ बङ्गत दिनतक आयु पाई
। और मुनियों को भी निरोग और दीर्घायु किया ॥ ५६ ॥ सम्पूर्ण ऋषियों ने
उस मन्त्रद्वारा उत्पन्नहुँवे ज्ञानरूपी नेत्रोंसे गुणद्रव्य और कर्मोंको देखकर
उसकी विधिको स्वीकार किया ॥ ५७ ॥ आरोग्य और सुखके सहित दी-
र्घ आयुको पाया ॥ और भी मुनिलोग आयुर्वेदकी कही विधिसे सुखी औ-
र दीर्घ आयुहुँवे ॥ ५८ ॥ चरक का प्रादुर्भाव । जब भगवान् ने म-
त्स्यावतार लेकर वेद निकाला । तब वहीँपर शेषजी ने अंग सहित वेद
को पाया ॥ ५९ ॥ अथर्वण वेदके अन्तर्गत आयुर्वेद को अच्छे प्रकार हाँसि-
ल किया ॥ एक समयमें वह शेषजी पृथ्वीका समाचार देखनेको जासूस
के मानिंद आयी ॥ ६० ॥

तत्र लोकान् गदिर्यस्तान् व्यथया परिपीडितान् ॥
स्थलेषु बहुषु व्यग्रान् म्रियमाणान् च दृष्टवान् ॥
॥ ६१ ॥ तान् दृष्ट्वा तिदया युक्त स्तेषां दुःखेन दुःखितः
॥ अनन्तश्चिन्तयामास रोगोपशमकारणम् ॥ ६२ ॥
सञ्चिन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रो बभूवह ॥

भा० वहीँपर बङ्गतसे स्थानोंमें रोगोंसे ग्रसित और दुःखसे पीड़ित ।
व्याकुल मरेसे लोगोंको देखा ॥ ६१ ॥ वनको देखकर बङ्गत दयावाले
और उनके दुःखसे दुःखित शेषजी रोगके शमन होनेका उपाय सो-
चने लगे ॥ ६२ ॥ बाद अच्छीतरहपर सोचकर शेषजी ने खुद
वहीँपर वेद और वेदांगके जाननेवाले प्रसिद्ध और विप्रहुँ

भार्गव

सुषु

अंगिरा

भारद्वाज

यमद

नारद

कश्यप

चरक प्रादुर्भवः ६

चरक सुती

प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्ग वेदिनः ॥ ६३ ॥ यत
 श्वर इवायातो न ज्ञातः केनचिद्यतः ॥ तस्माच्चरक
 नाम्नाऽसौ विख्यातः क्षितिमण्डले ॥ ६४ ॥ स भा
 ति चरकाचार्य्ये वेदाचार्य्ये यथा दिवि ॥ सहस्र
 वदनस्यांशो येन ध्वंसो रुजो कृतः ॥ ६५ ॥ अत्रिय
 स्य मुनेः शिष्या अग्निवेशादयोऽभवन् ॥

भा० मुनिके पुत्र ज्ञवे ॥ ६३ ॥ क्यों कि जिस कारण जासूस के से आये ।
 और किसीसे नहीं जाना उस कारण यह चरक नाम से संसार में प्रसिद्ध हु
 वा ॥ ६४ ॥ जिसने रोगों का नाश किया वह शेषजीका अंश चरकाचार्य्य
 पृथ्वी में शोभते हैं जैसे स्वर्ग में वेदाचार्य्य शोभते हैं ॥ ६५ ॥ अग्निवेशादि
 क ब्रह्मन्तसे मुनि अत्रियजी के शिष्य ज्ञवे ॥

मुनयो बहवस्ते श्व कृतं तन्त्रं स्वकं स्वकं ॥ ६६ ॥
 तेषां तन्त्राणि संस्कृत्य समाहृत्य विपश्चिता ॥ च
 रकेनात्मनो नाम्ना ग्रन्थोऽयं चरकः कृतः ॥ ६७ ॥

धन्वन्तरि प्रादुर्भावः ।

एकदा देवराजस्य दृष्टिर्निपतिता भुवि ॥ तत्र तेन न
 रा दृष्टा व्याधिभिर्भृशपीडिताः ॥ ६८ ॥ तान् दृष्ट्वा
 हृदयं तस्य दयया परिपीडितम् ॥ दयार्द्र हृदयः श
 क्रो धन्वन्तरिमुवाच ह ॥ ६९ ॥

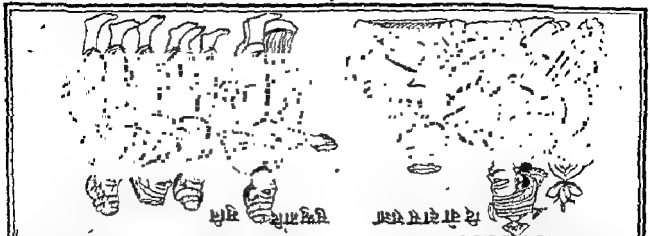
भा० उन्होंने भी अपने अपने ग्रन्थ किये ॥ ६६ ॥ बहुत अच्छी बुद्धिवाले च
 रक ने उनके ग्रन्थों को लाकर और ठीक करके अपने नाम से यह चरक

ग्रन्थ बनाया ॥ ६९ ॥ धन्वन्तरी का प्रादुर्भाव । एक समय में इन्द्र की दृष्टी पृथ्वीपर पड़ी ॥ उसमें उसने रोगसे अत्यन्त पीड़ित मनुष्य देखे ॥ ६७ ॥ उनको देखकर इन्द्र का हृदय व्यासे अत्यन्त क्लेशित हुआ ॥ व्यासे सींचे जू वे चित्तवाले इन्द्र ने धन्वन्तरि से कहा ॥ ६८ ॥

धन्वन्तरि । सुरश्रेष्ठ । भगवन् । किञ्चिदुच्यते ॥
 योग्यो भवसि भूतानामुपकारपरो भव ॥ ७० ॥ उप
 काराय लोकानां केन किन्न कृतं पुरा ॥ त्रैलोक्याधि
 पतिर्विष्णुरभून्मत्स्यादिरूपवान् ॥ ७१ ॥ तस्मात्त्वं
 पृथिवीं याहि काशीमध्ये नृपो भव ॥ प्रतीकाराय ।
 रोगाणामायुर्वेदं प्रकाशाय ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वा सुर
 शार्दूलः सर्वभूतहितेप्सया ॥ समस्तमायुषो वेदं
 धन्वन्तरिमुपादिशत् ॥ ७३ ॥ अधीत्य चायुषो
 वेदमिन्द्रात् धन्वन्तरिः पुरा ॥ आगत्य पृथिवीं का
 श्याञ्जातो बाह्वज्वेशमनि ॥ ७४ ॥

भा० हे देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् धन्वन्तरिकुछ कहता हूँ ॥ आप योग्य हो प्रालियों के उपकार में तत्पर हूजिये ॥ ७० ॥ पहिले लोगों के उपकार के वास्ते किसने क्या नहीं किया ॥ तीन लोक के मालिक भगवान् ने मत्स्यादि रूपों के धारण किया ॥ ७१ ॥ तिससे वृष पृथ्वीपर जाओ और काशी के बीच में राजा बनो ॥ रोगों के दूर होने के वास्ते आयुर्वेद को प्रकाश करो ॥ ७२ ॥ इस प्रकार से कहकर इन्द्र ने सम्पूर्ण जीवों के हित की इच्छा से समस्त आयुर्वेद धन्वन्तरि को पढ़ाया ॥ ७३ ॥ पहिले धन्वन्तरि ने आयुर्वेद को इन्द्र से पढ़कर अनन्तर पृथ्वीपर आकर काशी में बाह्वज के घर में जन्म लिया ॥ ७४ ॥

नाम्ना तु सोऽभवत्ख्यातो दिवोदास इति क्षितौ ॥



वालस्य विरक्तोऽभूच्चार सुमहत्तपः ॥ ७५ ॥ यत्ने
न महता ब्रह्मा तं काश्यामकरोद्धृपं ॥ ततो धन्वंत
रिलोकैः काशीराजोऽभिधीयते ॥ ७६ ॥ हिताय देहि
नां स्वीया संहिता विहिताऽमुना ॥ अयं विद्यार्थिना
लोकान् संहितान्ता मपाठयत् ॥ ७७ ॥

सुश्रुत प्रादुर्भावः ।

अथ ज्ञानदृशा विश्वामित्र प्रभृतयोऽविदन् ।

अयं धन्वन्तरिः काश्यां काशिराजोऽयमुच्यते ॥ ७८ ॥

विश्वामित्रो मुनिस्तेषु पुत्रं सुश्रुत मुक्तवान् ॥

वत्सः वाररासीं गच्छ त्वं विश्वे श्वरवल्लभासू ॥ ७९ ॥

तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति बाह्वजः ॥

स हि धन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेदं विदो वरः ॥ ८० ॥

भा० वह पृथ्वी में दिवोदास इस नामसे प्रसिद्ध हुआ । बालक पने में ही विरक्त
हुआ और बहुत बड़ा तप किया ॥ ७५ ॥ ब्रह्माजी ने बड़े यत्न से उनको काशी
का राजा बनाया ॥ तब से लोग धन्वन्तरि को काशीराज कहने लगे ॥ ७६ ॥
अनन्तर ब्रह्म ने लोगों के हितार्थ अपनी संहिता बनाई ॥ और विद्यार्थी लो
गों को वह संहिता पढ़ाई ॥ ७७ ॥ सुश्रुत का प्रादुर्भाव । अनन्तर ज्ञान व
क्षु से विश्वामित्रादि मुनियों ने जाना । कि यह धन्वन्तरी है जिसको काशी में
लोग काशीराज कहते हैं ॥ ७८ ॥ उन मुनियों में से विश्वामित्र मुनि ने अपने
पुत्र सुश्रुत से कहा ॥ कि हे पुत्र तুম विश्वेश्वर की प्यारी काशी को जाओ ॥
७९ ॥ वहाँ पर बाह्वज का पुत्र दिवोदास इस नाम से काशीराज है ॥ वह आ
युर्वेद जाननेवालों में श्रेष्ठ साक्षात् धन्वन्तरी है ॥ ८० ॥

आयुर्वेदं ततोऽधीष्व लोकोपहृतिहेतवे ॥ सर्व

प्राणिदयातीर्थसुपकारो महामखः ॥ ८१ ॥ पितुर्व
चनमार्कण्य सुश्रुतः काशिकां गतः ॥ तेन सार्द्धं
समध्येतुं मुनिसन्नुशतं ययौ ॥ ८२ ॥ अथ धन्व
न्तरिं सर्वे वानप्रस्थाश्रमे स्थितम् ॥ भगवन्तं सु
रश्रेष्ठं मुनिभिर्बहुभिः स्तुतम् ॥ ८३ ॥ काशिराजं
दिवोदासं तेऽपश्वन्विनयान्विताः ॥ स्वागतञ्च ।
इतिस्माह दिवोदासं यशोधनः ॥ ८४ ॥ कुश
लं परिपप्रच्छ तथा गमनकारणम् ॥

भा० सम्पूर्ण जीवों की दया है वह तीर्थ है और उपकार बड़ा यज्ञ है ति
से लोगों के उपकार के अर्थ आयुर्वेद को पढ़ो ॥ ८१ ॥ पिताका वचन सु
नकर सुश्रुत काशी को गया ॥ उसके साथ पढ़ने के अर्थ सौ मुनियों के
पुत्र गये ॥ ८२ ॥ अनन्तर विनय युक्त उन सब मुनियों के पुत्रों ने वान
प्रस्थाश्रम में स्थित देवताओं में श्रेष्ठ और बहूत से मुनियों से स्तुति कि
ये जूँवे दिवोदास नाम काशिराज धन्वन्तरि की देवता ॥ ८३ ॥ यश है धन
जिनका ऐसे दिवोदास ने अच्छा आनाज्जवा अर्थात् बड़ी कृपा की सेवा क
ही और कुशल तथा आगमन का कारण पूछा ॥

ततस्ते सुश्रुतद्वारा कथयामासुरुत्तरम् ॥ ८५ ॥
भगवान्मानवान्दृष्ट्वा व्याधिभिः परिपीडितान् ॥
क्रन्दतो म्रियमाणांश्च जाताऽस्माकं हृदि व्यथा ॥
८६ ॥ आमयानां शमोपायं विज्ञातुं वयमागताः ॥

भा० तब उन्होने सुश्रुत के द्वारा अच्छी तरह प्र कथन किया ॥ ८५ ॥ ८५
है भगवान् रोगों से दुखी और रोते जूँवे मरे से मनुष्यों की देखकर हमारे हृद
य में पीड़ा उत्पन्न हुई ॥ ८६ ॥ रोगों का उपाय जानने के वास्ते हम लोग
आये हैं ॥

आयुर्वेदं भवान् अस्मान्मध्यापयतु यत्नतः ॥ ८३ ॥
 अङ्गीकृत्य वचस्तेषां नृपतिस्तानुपादिशत् ॥ व्या
 ख्यातन्तेन ते यत्नाज्जगृह्णसुनयो मुदा ॥ ८४ ॥ का
 शिराजं जयाशीर्भिरभिनन्द्य मुदान्विताः ॥ सुश्रुता
 द्याः सुसिद्धार्या जग्मुर्गेहं स्वकं स्वकम् ॥ प्रथमं
 सुश्रुतस्तिषु स्वतन्त्रं कृतवान् स्फुटम् ॥ सुश्रुतस्य
 सखायोऽपि पृथक् तन्त्राणि ते निरे ॥ ८५ ॥ सुश्रु
 तेन कृतं तन्त्रं सुश्रुतं बहुभि र्यतः ॥

भा० आप यत्न के साथ आयुर्वेद हम लोगों को पढ़ाइये ॥ ८३ ॥ उनका
 कहना स्वीकार करके राजा ने उनको पढ़ाया ॥ उनसे पढ़ाये ज्ञान को उन मुनि
 यों ने यत्न के साथ खुरी से गृहण किया ॥ ८४ ॥ अच्छी तरह पर सिद्ध ज्ञान
 प्रयोजन वाले आनंद युक्त सुश्रुतादि मुनियों ने काशिराज को जयाशीर्वादी से
 प्रसन्न करके अपने अपने घर की गये ॥ ८५ ॥ उनमें पहिले सुश्रुत ने अप
 ने तन्त्र को स्पष्ट किया ॥ सुश्रुत के मित्रों ने भी अपने तन्त्रों को अलग व
 नाया ॥ ८५ ॥ सुश्रुत के बनाये ज्ञान तन्त्र को बहुतों ने अच्छी तरह पर
 चना वसवासे ॥

तस्मात्तत्सुश्रुतं नाम्ना विख्यातं क्षितिमराडले ॥

॥ ८६ ॥

इत्यायुर्वेद प्रकरणे नृणां प्रादुर्भावः

आयुर्वेदाब्धि मध्यादतिमतिमुनयो योगरत्नानि
 यत्ना लब्ध्वा स्वे स्वे निबन्धे दधुर खिलजन व्या
 धिविध्वंसनाय ॥ तत्तद्व्याद् गृहीतैः सुवचनम
 रिभिर्भावमिश्रे श्रिकित्सा शास्त्रे जाडान्धकारं

प्रशमयितुमिमं संविधत्ते प्रकाशम् ॥ १ ॥

श्रीपतिपदप्रसादादाशीर्भिर्भूमिदेवानाम् ॥

भावप्रकाशनाम्ना ग्रन्थोऽयं पठ्यतां सर्वैः ॥ २ ॥

एतस्य निबन्धस्य फलं चिकित्सा पुरुषस्य पुरुषस्तु च
तुर्विंशति तत्त्वजीवात्म समवायस्तस्माच्चतुर्विंशति तत्त्वा
नां जीवात्मनश्च स्वरूप निरूपणाय सृष्टिक्रममाह । (ख)

भा० सुश्रुत नाम से पृथ्वीपर प्रसिद्ध ज्ञवा ॥ ६१ ॥ इस तरहपर आयुर्वेद
के प्रकरणों में मनुष्यों का प्रादुर्भाव ज्ञवा है ॥

ब्रह्मत बुद्धिवान् मुनियों ने आयुर्वेद रूपी समुद्र के बीच में से योगरूपी रत्नों
को यत्नसे पाकर सब लोगों के रोग दूर होने के वास्ते अपने २ ग्रन्थों में स्थापन
किया ॥ उन २ ग्रन्थों से लिये ज्ञवे अच्छे २ वचनरूपी मणियों से भाव मिश्र के
चिकित्सा शास्त्र में जो जाड्यरूपी अन्धकार है उसको दूर करने के वास्ते इस प्र
काश को बनाया है अर्थात् भावप्रकाश नाम ग्रन्थ को बनाया है ॥ १ ॥

श्रीभगवान के चरणों के प्रसाद से और ब्राह्मणों की आशीर्वाद से इस ग्रन्थ को
भावप्रकाश नाम से स्वपदें ॥ २ ॥

इस ग्रन्थ के सन्दर्भ का प्रयोजन पुरुष की चिकित्सा अर्थात् रोग का प्रतीका
र है । और पुरुष तो चौबीस तत्त्व जीव आत्मा इनका समवाय अर्थात् मेल है
निस्से चौबीस तत्त्वों का और जीवात्मा के स्वरूप निरूपण के वास्ते सृष्टि का
क्रम कहते हैं ॥ (ख) ॥

आत्माज्योतिश्चिदानन्द रूपो नित्यश्च निस्पृहः ॥

निर्गुणः प्रकृतेर्योगात्सगुणः कुरुते जगत् ॥ १ ॥

सगुण इच्छादि युक्तः ॥ (ग)

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणास्ते प्रकृतेः समाः ॥ सा ज

डपि जगत्कर्त्तृ परमात्म चिदव्ययात् ॥ २ ॥

सतः साधोभीवः सत्त्वं प्रकाशकं ज्ञानं सुखहेतुः रजोरागा

त्मकं दुःखहेतुः ताम्यति ग्लानिं ग्रामोति अनेनेति तमः आव
रकं मोहहेतुः । ते गुणाः समाः प्रकृति रित्यर्थः तथा स
ति न्यूनाधिकगुणाः विकृतिः अथ सुश्रुतमुपदिशन् धन्व
न्तरिः (ख) ॥ [प्रकृतेः स्वरूपविशेषणमाह ।]

भा० आत्मा प्रकाश और ज्ञानरूप तथा नित्य निरिच्छ निर्गुण है परंतु प्रकृति
के योगसे सुगुण होकर जगत को करता है ॥ १ ॥ सुगुण अर्थात् बुद्ध्यादिक
के युक्त (क) ॥ सत्त्व रज तम इस तरह पर प्रकृति के वे सम गुण हैं । वे प्र
कृति जड़ जड़ भी अविनाशी ज्ञानरूप परमात्मा के विदाभास से जगत को उत्प
न्न करने वाली है ॥ २ ॥ साधु नाम उत्तम जों भाव अर्थात् धर्म को सत्त्व कह
ते हैं वह प्रकाश करने वाला ज्ञान सुख का हेतु है ॥ रज इच्छा प्रीति वाला
दुःख का हेतु है । तम ग्लानि को देने वाला और बुद्धि को आच्छादन करने
वाला मोह का कारण है । वे गुण समझे प्रकृति कहलाते हैं । और जो न्यूना
धिक हूवे विकृति कहलाते हैं ॥ (क) ॥

अनन्तर सुश्रुत को उपदेश करते हुवे धन्वन्तरि ने ॥ (ख) ॥
प्रकृति के स्वरूप विशेष को कहा है ॥

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्व रजस्तमोलक्षणा मष्टरू
पमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नामेति ॥ (ग) ॥
अस्यायमर्थः । (घ) अव्यक्तं न व्यज्यते स्मेति अव्यक्तं
मूलप्रकृत्यपरपर्थ्यार्थं ततः सर्वभूतानां कारणं समवा-
यिकारणं अकारणं न विद्यते कारणं यस्य तत् सत्त्व रज
स्तमोलक्षणां सम सत्त्व रजस्तमः स्वरूपं अष्टरूपं अव्यक्तं
महान् अहङ्कारः पञ्चतन्मासीत्यष्टौ रूपाणि यस्य तत्
यत् इन्द्रियाणां महाभूतानाञ्च कारणतया महदादयोऽ
पि सप्त प्रकृतयः एवमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं

मित्युपसंहारः ॥ (६)

भा० सम्पूर्ण जीवों का कारण और अकारण अर्थात् आपे सबका कारण और अपना कोई कारण नहीं और सत्त्व रज तम लक्षणवाला अष्टरूप संमूर्ण जगत् का उत्पत्ति हेतु अव्यक्त नाम है ॥ (ग) ॥

इसका अर्थ यह है कि (घ) । जो प्रगट नहीं होता वह अव्यक्त है अर्थात् मूल प्रकृति का दूसरा पर्याय है । निस्से सब भूतों का कारण अर्थात् सम वायि कारण नव्यायिकों के मत में द्रव्य गुणों का सम्बन्ध समवाय होता है । और यहाँ सांख्य के मत में द्रव्य द्रव्य का सम्बन्ध जिसको संयोग सम्बन्ध कहते हैं वह समवाय है ॥ अकारण नहीं है कारण जिसका वह अकारण सम सत्त्व रज तम स्वरूप और अष्टरूप नाम अव्यक्त महान् अहंकार और पंच तन्मात्रा अर्थात् रूप रस गंध शब्द स्पर्श यह आठ रूप हैं जिसके वह अष्टरूप जैसे इन्द्रियों का अर्थात् चक्षु श्रोत्र जिह्वा नासिका और त्वचा इनका तथा महा भूतों का अर्थात् पृथ्वी जल तेज वायु आकाश इनके कारण रूप से महदादिक भी सानप्रकृति होते हैं ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् के उत्पत्ति का हेतु अव्यक्त है ॥ (ङ)

[प्रकृति पुरुषयोः साधर्म्यमाह ।]

उभावप्यनादौ उभावप्यनन्तौ उभावप्यलिङ्गा
बुभावपि नित्या बुभावप्यपरा बुभावपि सर्वगतौ
इति उभावपि नित्यौ लयं क्वचिदपि न यातः उभा
वप्यपरौ न विद्यते परोऽपरो याभ्यान्तावपरौ (च)

अथातो नयो वैधर्म्यमाह ।

एकातु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी प्रस
वधर्मिणी मध्यस्थधर्मिणी चेति अचेतना जडा त्रिगु
णा तुल्यगुण त्रयात्मिका बीजधर्मिणी सर्वेषां महदादी
नां विकाराणां बीजत्वेनावस्थित प्रसवधर्मिणी पुरुषे

आक्रान्ताक्षोभंप्राप्य सम्यगतिक्रम्य महदहङ्कारा
दि क्रमेण जगतः प्रसवित्री अमध्यस्थधर्म्मिणी सुख
दुःख भोग भोगिनी ॥ (छ) ॥

न तु सुखदुःख भोगादुदासीना पुरुषस्तु चेतनावान्
निर्गुणाऽप्रसवधर्म्मा बीजधर्म्मा मध्यस्थधर्म्मा चेति (ज)

भा० प्रकृति और पुरुष का साधर्म्य अर्थात् समान धर्मता कहते हैं।
दोनों अनादि दोनों अनन्त दोनों अलक्षणा दोनों नाश रहित दोनों अप
र अर्थात् जिनके परे कोई नहीं और दोनों सबमेव्याप्त इस प्रकार सा
धर्म्य है। दोनों नित्य अर्थात् कभीभी नाश की नहीं प्राप्त होते दोनों अ
पर, अपरिहृत नहीं हैं परे जिन्हें से ॥ (च) ॥

साधर्म्य कथन करने के अनन्तर विरुद्ध धर्म के देरवने से उन का वै
धर्म्य कहते हैं। प्रकृति तो एक और जड़ तीन गुण वाली बीज ध
र्म वाली अर्थात् सब महदादि की बीजरूप होकर रहने वा
ली तथा प्रसवधर्म वाली अर्थात् महत्तत्त्व अहंकारादि
क्रमसे जगत को उत्पन्न करने वाली अमध्यस्थ धर्म वाली अर्थात् सुख
दुःख के भोग को भोगने वाली इस प्रकार प्रकृति पुरुषों का वैधर्म्य है।
अचेतना नाम जड़ अर्थात् ज्ञान से रहित त्रिगुणा तीन गुण वाली बीजधर्म्मे
णी अर्थात् सब महदादि विकारों के बीजरूप होके रहने वाली प्रसव धर्म्मे
णी अर्थात् पुरुष से आक्रान्त ऊर्द्ध क्षोभ को पाकर महत्तत्त्व अहंकारादि
क्रमसे जगत को उत्पन्न करने वाली अमध्यस्थ धर्म्मिणी सुखदुःख के
भोग को भोगने वाली ॥ (छ) ॥

न कि सुखदुःख के भोगसे तटस्थ होने वाली। पुरुष तो चेतना वाला औ
र निर्गुण तथा अप्रसव धर्म्म वाला अबीज धर्म्म वाला और मध्यस्थ ध
र्म्म वाला इस प्रकार वैधर्म्य है ॥ (ज)

निर्गुणः अविद्यमान सत्त्वादिगुणः । (क) ॥

अबीजधर्म्मा महाप्रलये महदादीनां विकाराणां प्रकृता

विव तस्मिन्ननवस्थानात् मध्यस्थधर्म्मा सुखदुःखे
च्छाद्वेषादिभ्यः उदासीनः ॥ (ज) ॥

[प्रकृतेर्नामानि आह ।]

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा ॥
एतानि तस्या नामानि पुरुषं या समास्थिता ॥ ३ ॥

गुरणानाह ।

सत्त्वं रजस्तमस्त्रीणि विज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तैश्च
युक्तस्य चित्तस्य कथयाम्यखिलान् गुरणान् ॥ ४ ॥

अथ सत्त्वादि युक्तस्य मनसो गुरणानाह ।

आस्तिक्यं प्रविमज्य भोजन मनुतापश्च तथ्यं वचो ।
मेधाबुद्धि धृतिदामाश्च करुणा ज्ञानञ्च निर्दम्भता ॥
कर्मानिन्द्रितमस्पृहञ्च विनयो धर्मः सदैवादरा ।
देते सत्त्वगुरणान्वितस्य मनसो गीता गुराणि ज्ञानिभिः ॥ ५ ॥

भा० निर्गुणः सत्त्व रज तम इन तीन गुणों से रहित ॥ (ज) ॥ अवीज
धर्म्मा महाप्रलय में महदादि विकारोंको प्रकृतिके मानिंद उसमें न रहनेसे
मध्यस्थ धर्म्मा सुखदुःख इच्छा द्वेषादिकोंसे उदासीन अर्थात् बेप्रयोजन
॥ (ज) ॥ ॥ प्रकृतिके नाम कहते हैं ॥ प्रधान प्रकृति शक्ति नित्या
अविकृति ये उसके नाम हैं जो पुरुषका आश्रय करके रहती है ॥ ३ ॥

॥ प्रकृतिके गुण कहते हैं ॥ सत्त्व रज तम ये तीन प्रकृतिके गुण ज्ञानि गये हैं
। उनसे युक्त चित्तके सब गुण कहता हूँ ॥ ४ ॥

सत्त्वादि युक्त मनके गुण कहते हैं ।

आस्तिकता अच्छी तरह विभाग करके अर्थात् वैश्वदेव बलि अतिथि इनको
दे करके भोजन और क्रोधसे रहित होना सचवानना तथा मेधा बुद्धि धृति
क्षमा करुणा ज्ञान और दम्भसे रहित होना तथा निन्दामें रहित कर्म और नि

स्पृह विनय तथा सर्वदा आदरसे धर्म्माचरण करना ये सत्वगुण से युक्त ज्ञेय मन के गुण ज्ञानियों से कहे गये हैं ॥ ५॥

अस्ति धर्ममोक्ष परलोकादिकमिति बुद्ध्या चरतीत्यास्तिकः
स्तस्य भाव आस्तिक्यं अनुतापः अक्रोधः धृतिः भूतप्रेतस्म
रक्रोध लोभाद्यावेशराहित्यं ज्ञानमात्मज्ञानम् । निर्दम्भ
ता कपटाभावः कर्म अनिन्दितं अस्पृहं निष्कामं च । (क)

भा० धर्म मोक्ष परलोकादिक है इस बुद्धिसे जो आचरण करता है वह आस्तिक उसका जो धर्म वह आस्तिक्य अनुताप सन्ताप रहित अर्थात् क्रोधका अभाव धृतिः भूत प्रेत काम क्रोध लोभादियों के आवेश से रहित होना ज्ञान आत्माका ज्ञान निर्दम्भता कपटका न होना निन्दासे रहित काम अस्पृहं इच्छासे रहित होना ॥ (क) ॥

रजोगुणयुक्त मनसो लक्षणं।

क्रोधस्ताडन शीलता च वज्रलं दुःखं सुखेच्छाधिका
दम्भः कामुकताऽप्यलोक वचनं चाधीरता हङ्कृतिः ।

ऐश्वर्यादभिमानितातिशयितानन्दोऽधिकश्चाटनं

प्रख्याता हि रजोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥ ६ ॥

(ख) अलीकवचनं मिथ्या कथनं अटनं पृथ्वी परिभ्रमणम् (ख)

भा० रजोगुण से युक्त ज्ञेय मन का लक्षण ॥ क्रोध मारपीट करने का स्वभाव वज्रत दुःख सुख की अधिक इच्छा दम्भ स्त्री भोग करने की इच्छा फूट बीलना धीरज न धरना (अहंकार) ऐश्वर्य से बज्रत अभिमान होना और वज्रत आनंद होना तथा घूमना रजोगुणवाले मन के यह लक्षण कहे गये हैं ॥ ६ ॥ अलीकवचनं मिथ्याभाषण करना अटनं पृथ्वीपर घूमना।

॥ (ख) ॥

अथ तमोयुक्त मनसो लक्ष-

नास्ति क्वं सुविषण्णताति शयितालस्यं च दुष्टा मतिः
प्रीतिर्निन्दितकर्म शर्मणि सदा निर्द्वलुताऽहर्निशम् ।

अज्ञानं किल सर्वतोऽपि सततं क्रोधान्धता मूढता
प्रख्याता हि तमोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥ ७ ॥

तत्र प्रभूत सत्त्वस्तु सात्त्विकः पुरुषः स्मृतः । राज
सस्तामसश्चैव त्रिविधस्तेन मानवः ॥ ८ ॥ ततो

ऽभवन्महत्तत्त्वं बुद्धितत्त्वा पराभिधम् ॥

भा० अन्तर तमसे युक्त ज्ञवे मनका लक्षण ॥ नास्तिकता अत्यन्त
विषण्णता बह्वन्तालस्य और दुष्टमति बुरे कामोंमें प्रीति और आराम में प्री
ति सर्वदा रात्रिदिवस निद्रालुता और चारों तरफ से निरंतर आज्ञान तथा
क्रोध के मोरे अन्धा होना और मूर्खता तमोगुण से युक्त ज्ञवे मनके यह
गुण कहे गये हैं ॥ ७ ॥ उसमें बह्वन्त सत्ववाला सात्त्विक पुरुष कहला
ता है उसी तरह से रजोगुण अधिकवाला राजस तमोगुण अधिक वा
ला तामस इस प्रकार तीन तरह के मनुष्य कहे गये हैं ॥ ८ ॥
उसके अनंतर दूसरे बुद्धि तत्त्व नामवाला ॥ तीनों गुणों से युक्त सत्त्वाधि
क स्फटिक समान महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

त्रिगुणं सत्त्वबहुलं निर्मलं स्फटिकोपमम् ॥ ९ ॥

चिच्छाया प्राप्तचैतन्यं तदिच्छा मयमीरितम् ॥

ततः प्रकृतेस्त्रिगुणं त्रयोगुणा यत् तत् तच्च सत्त्व बहुलं
अत्राय मभिप्रायः । (क) ॥ यथा निष्चले हृदादौ ब
हुद्रव्यपातात्तदीयं जलं वर्धते तथा चिद्रूपपुरुषेणाक्रम
णं तुल्यगुणात्रयात्मिकायाः प्रकृतेर्ज्ञानहेतुः प्रकाशः स
त्त्वगुणोद्बुद्धः प्रवृद्धः सत्त्वतः प्रकृतेः सत्त्वबहुलं बुद्धितत्त्व

मभवत् ॥ (ख) ॥ महत्तत्त्वविगुणाज्जातिः सहङ्ग
रत्त्वविगुणान्वितः ॥ सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चे
ति सत्त्विधा ॥ १० ॥

भा० चित् छाया से प्राप्त हुआ चैतन्य उसकी इच्छावाला कहा गया ॥ उम्
के अनंतर प्रकृतिके त्रिगुण तीन हैं गुण जिसमें वह त्रिगुण इसे यहाँ पर य
ह अभिप्राय है कि । (क) । वह सत्त्वाधिक है । जैसे निम्न लज्जालाश
य के बीच में बहुत सी वस्तु गिरने से उसका पानी बहुत है उसी प्रकार
विद्रूप पुरुष से धिरीझड़ बराबर गुणवाली प्रकृतिके ज्ञानका कारण प्र
काशरूप सत्त्वगुण घड़ा । प्रकृतिके सत्त्वगुण से बहुत बढ़ा हुआ सत्त्वाधिक
बुद्धि तत्व हुआ ॥ (ख) ॥

महत्तत्त्व के त्रिगुण से त्रिगुणयुक्त अहंकार उत्पन्न हुआ । वह अहंकार
सात्त्विक राजस तामस इस तरह से तीन प्रकार का हुआ ॥ १० ॥

महत्तत्त्वः बुद्धितत्त्वात् त्रिगुणात् त्रयोविधाः यत्र
ततः ननु महत्तत्त्वं त्रिगुणमुक्तमेव किमर्थं मह
त्तत्त्वविगुणादिति विशेषणं सत्यम् । (क) ॥

त्रिगुणादिति पुन विशेषणादुक्तं सत्त्वबहुलमिति
विशेषणमत्र नानुवर्तते तेनाहङ्कारोत्पादकं म
हत्तत्त्वं त्रिगुणमपि रजोबहुलं बोद्धव्यम् (ख)

भा० त्रिगुणवाली महत् बुद्धितत्त्व से तीन गुण हैं जिसमें वह त्रिगुणों
। यहाँ पर शंका करने हैं कि महत्तत्त्व तीन गुणवाला कहा ही गया था तब
महत्तत्त्व त्रिगुणात् यह विशेषण फिर से किसवाले दिया । सच है (क)

त्रिगुणात् यह फिर से विशेषण देने से सत्त्वाधिक मान्य होता है परन्तु
यहाँ पर विशेषण पीछे नहीं जाता तबसे अहंकार का उत्पन्न करने वाला स
त्त्वतत्त्व तीन गुणवाला भी रजोगुण अधिक जानना चाहिये ॥ (ख) ॥

अहङ्कारस्य रजो गुणान्वितस्य मनो धर्म्मत्वात् (ग)

अहंकारोऽभिमानव्यापारलक्षणमाह ।
 अहङ्कारस्त्विविधस्तानाह सात्त्विक इत्यादि ।
 तस्य त्रिविधस्य कार्यमाह ।
 जातानि सात्त्विका तस्मादिन्द्रियाणि स राजसान् ।
 तानि श्रोत्रं त्वचो नैवं रसना नासिका तथा ॥ ११ ॥
 वाग्धन्त चरणापस्थं गुदान्ये कादशी मनः ॥ पञ्च
 बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च ॥ १२ ॥
 कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथयन्ति विपश्चितः ॥

भा० रजोगुण के युक्त अहङ्कार का मनोधर्म होनेसे । (ग) ॥ अहंकार अभिमान व्यापार त्राला उसका लक्षण कहें हैं ॥ अहंकार तीन प्रकार का है उनके कहते हैं । सात्त्विक राजस तामस । उन तीन अहङ्कारों के काम कहते हैं । उस राजस के सहित सात्त्विक अहङ्कार से इन्द्रियां उत्पन्न हुईं । वह कान त्वचा और जीभ नाक ॥ ११ ॥ वागी हाथ पैर शिश्न गुदा ये दस और ग्यारहवाँ मन । परिष्ठत लोग पहिली पांच को बुद्धिन्द्रिय कहते हैं ॥ और दूसरी पांच को कर्मेन्द्रिय कहते हैं ॥ १२ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि बुद्धेराश्रयत्वात् कर्मेन्द्रियाणि क
 कर्माश्रयत्वात् सात्त्विकाहङ्काराज्जातत्वादिन्द्रि
 याणि प्रकाश लक्षणाणि सत्त्वस्य प्रकाशकत्वा
 त् ॥ (क) ॥

मनो बुद्धीन्द्रियं विज्ञैः कर्मेन्द्रियं मयि स्मृतम् ॥
 मनोऽधीष्टितमेवेदमिन्द्रियं यत् प्रवर्तते ॥ १४ ॥

भा० बुद्धीन्द्रिय अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय बुद्धी के आश्रय होनेसे और कर्मेन्द्रिय कर्मों के आश्रय होनेसे सात्त्विक अहंकार के उत्पन्न होने से इन्द्रिय प्रकाश

लक्षणा वाली हैं क्यों कि सत्त्वगुण का प्रकाश धर्म होने से ॥ (क) ॥
बुद्धिवान् लोग मन और बुद्धीन्द्रिय को कर्मेन्द्रिय भी कहते हैं ॥ यह इन्द्रिया मनके मिलनेहीसे अपने अपने कर्मेंमें प्रवृत्त होती हैं ॥

[तत्र इन्द्रियाणां विषयानाह]

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धोऽह्यनुक्रमात् ॥

बुद्धीन्द्रियाणां विषयाः समाख्याता महर्षिभिः ॥ १५ ॥

वाच्यं ग्राह्यञ्च गन्तव्य मानन्दं त्याज्यमेव च ॥

कर्मेन्द्रियाणां विषया ज्ञातव्याः विषयो हृदः ॥ १६ ॥

तामसादप्यहङ्कारस्तन्मात्राणि सराजसात् । (हृदः मन

सः ॥ (ख) ॥ यच्चाल्पसत्त्वसम्बद्धात् तल्लिङ्गानि

भवन्ति हि ॥ शब्द तन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमा

त्रकम् ॥ १७ ॥

भा० अब उक्तें इन्द्रियों के विषय कहते हैं ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह अनुक्रमसे अर्थात् एकके पीछे एक इस क्रमसे बुद्धीन्द्रियों के विषय अर्थात् आकाश का शब्द वायु का स्पर्श अग्निका रूप जलका रस पृथ्वीका गन्ध । इस क्रम से महर्षियों ने कहे हैं ॥

बोलना लेना चलना आनन्द और छोड़ना यह कर्मेन्द्रिय के अर्थात् वाणी का बोलना हातका लेना पैरका चलना शिश्न का आनन्द और गुदा का मलत्याग इस क्रमसे ये कर्मेन्द्रियों के विषय जानने चाहियें और मनके विषय भी जानने चाहियें ॥

गजस के साथ तामस अहंकारसे भी और छोड़ेसे सत्त्व संबंधसे उसी लक्षणा वाली पांच तन्मात्रा उत्पन्न हुई ॥

वह शब्द तन्मात्रा के स्पर्श तन्मात्रक रूप तन्मात्रक रस तन्मात्रक गन्ध तन्मात्रक ये उत्पन्न हुई ॥ १७ ॥

रस तन्मात्रकं गन्ध तन्मात्रमिति तानि तु ॥

तल्लिङ्गानि मोहादिलिङ्गानि तान्यद्भुतस्वभावानि बाह्ये
 न्द्रिय ग्राह्याणि सा सा मात्रा यस्मिन् तन्मात्रकम् (क)
 तन्मात्रेभ्यो वियद्वायुवन्हि वारि वसुन्धरा ॥ ए
 तानि पञ्च जायन्ते महाभूतानि तत् क्रमात् ॥ १७ ॥
 एकोत्तर परिदृष्ट्या वियदादयो जायन्त इत्यर्थः। (ख)
 तद्यथा । शब्दतन्मात्राच्छब्द गुरां वियज्जायते; श
 ब्द तन्मात्र सहितात् स्पर्शतन्मात्राच्छब्द स्पर्शगुरां
 वायुजायते। (घ) ॥

भा० तल्लिङ्गानि अर्थात् मोहादि लक्षणावाली वोह अद्भुत स्वभाववाली
 और बाह्येन्द्रियों से अर्थात् कान नाक इत्यादिकों से ग्रहण करने योग्य श
 ब्दादिक तन्मात्राही है वोह योगियों से ही ग्रहण की जाती है वोह वो मात्रा
 है जिसमें वह तन्मात्रक है। (क) ॥ तन्मात्राओं से आकाश वायु अग्नि
 जल पृथ्वी ये पञ्च महाभूत क्रमसे अर्थात् शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु,
 रूप से अग्नि, रस से जल, गन्ध से पृथ्वी, इस तरह उत्पन्न हवे ॥ १७ ॥
 एक एक के उत्तर उत्तर बढ़ने से आकाशादिक उत्पन्न हवे। (ख) ॥
 (ग) वह जैसे । शब्द तन्मात्रा से शब्दगुरावाला आकाश उत्पन्न होता।
 और शब्द तन्मात्रा के सहित स्पर्श तन्मात्रा से शब्द स्पर्श गुरावाला वायु
 उत्पन्न हवा ॥ (घ) ॥

शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र सहितात् रूप तन्
 मात्राच्छब्द स्पर्श रूप गुरां वन्हिजायते ॥ (ङ) ॥
 शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्ररूप तन्मात्रसहिताद्रस
 तन्मात्राच्छब्द स्पर्शरूप रसगुरां वारि जायते। (च)
 शब्द तन्मात्र स्पर्श तन्मात्र रूपतन्मात्र रसतन्मात्र

भा० शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्र के सहित रूप तन्मात्रा से शब्द स्पर्श रूप
गुणावाली आग उत्पन्न हुई ॥ (६) ॥ शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्र रूप तन्मा
त्र सहित रस तन्मात्रा से शब्द स्पर्श रूप रस गुणावाला जल उत्पन्न हुआ (च)

सहिताङ्गं तन्मात्राच्छब्द स्पर्श रूप रस गन्ध गुणा वसु
न्धरा जायते । (छ) ॥

[अथ महाभूतानां गुणानाह]

शब्दः श्रोत्रेन्द्रियं वापि छिद्राणि च विविक्तता ।

वियतः कथिता एते गुणा गुणा विचारिभिः ॥ १६ ॥

विविक्तताः शरीराणां भावानां शिरास्तायुस्थियेशी

प्रभृतीनां जातिव्यक्तिभ्यां मियः पृथक्त्वम् ॥ (क)

भा० शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्र रूपतन्मात्र रसतन्मात्र सहित गन्ध तन्मात्रा
से शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध वाली दृष्टी उत्पन्न हुई ॥ (छ) ॥

अनन्तर भूतों के गुण कहते हैं] शब्द श्रोत्रेन्द्रिय छिद्र अर्थात् छेक और
विविक्तता अर्थात् असंयुक्तता ये आकाश के गुणों के विचार करने वालों ने
कहे हैं ॥ १६ ॥ विविक्तता अर्थात् शरीरों के भाव (शिरा) छोटी नसें,
(स्नायु) मोटी नसें, हड्डी मांस की चैली इत्यादिकों की जाति और व्यक्ति
यों से दोनों का अलगपन । (क) ॥

गुण

स्पर्शस्त्वगिन्द्रियञ्चापि लघुता स्पन्दनन्तनोः ॥

चेष्टाः सर्वशरीरस्य वायोरेते गुणाः स्मृताः ॥ २० ॥

रूपं नेत्रेन्द्रियं पाकः सन्तापस्तीक्ष्णता तथा ।

वरीणीं भ्राजिष्युताऽमर्षः शौच्यं वन्हे गुणा अमो ॥ २१ ॥

रूपं लावण्यम् (ख) । पाकः उदराग्निनाहार पाकः

सन्तापः औषायम् । (ग) ॥ तीक्ष्णता आशुकारिता वरीणी
गौरादिः । (घ) ॥ भ्राजिष्णुता दीप्तिः अमर्षः क्रोधः (ङ) ॥
रसो रसेन्द्रियं शैत्यं स्नेहश्च गुरुता तथा ॥ सर्व्वं द्रव
समूहश्च शुक्रं वारि गुणाः स्मृताः ॥ २२ ॥

भा० सूर्य और त्वेगेन्द्रिय भी तथा हलकापन शरीर का हिलना और सब
शरीर की चेष्टा ये वायु के गुण कहे गये ॥ २० ॥ रूस और चक्षु रिन्द्रिय पा
क संताप तीक्ष्णता वरी कान्ति क्रोध मूरता ये अग्निके गुण कहे गये हैं ॥
२१ ॥ रूप सुन्दरता (ख) ॥ पाक जठराग्नि से आहार का परिपाक सं
ताप (ग) ॥ गरमी तीक्ष्णता तेजी वरी गौर रंग ह्वत्यादि (घ) ॥
भ्राजिष्णुता दीप्ति अमर्षः गुस्ता । (ङ) ॥ रस और रसेन्द्रिय ठंडाप
न नैलादिकों का झिकनापन भारीपन सब बहजानेवाली वस्तु का समूह
और घात ये सब पानी के गुण हैं ॥ २२ ॥

गन्धो घ्राणेन्द्रियं चापि काठिन्यं गौरवं तथा ॥ वसु
न्धरा गुणास्ते गदिता गुण वेदिभिः ॥ २३ ॥ शब्दः
स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च तत् क्रमात् ॥ तन्मा
त्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ॥ २४ ॥

भा० गन्ध और नासिकेन्द्रिय भी तथा कठिनता भारीपन ये गुण पृथ्वी के
गुण के जानने वालों ने कहे हैं ॥ २३ ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये क्रम
से स्थूल भावको प्राप्त हवे तन्मात्रों के विशेषण हैं ॥ २४ ॥

तत् क्रमात् शब्द तन्मात्रादि क्रमात् विशेषाः अनुभव
योग्यैः सुख दुःख मोह रूपैर्धर्मैर्विशेष्यन्त इति विशेषाः
अत्र कर्मणि घञ प्रत्ययः तन्मात्राणि त्वविशेषाणि
य स्तान्यनुभवयोग्यैः सुखादिभिर्विशेष्यं न शक्यन्ते
सूक्ष्मत्वात् ॥ (च) ॥

प्रकृतेः कारणायोगान्मतां प्रकृतिरेव सा ॥ मह

त्तत्त्वादयः सप्त शक्तेर्विकृतयः स्मृताः ॥ २५ ॥

प्रकृतिरेव कारणमेव न तु कस्यचित् कार्यमितर्थः कार्याणि इन्द्रियाणां सर्वभूतानां कारणत्वात्महर्षिभिर्महत्तत्त्वादयः सप्त महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणीति ॥ (क) ॥ शक्तेः प्रकृतेर्विकृतयः कार्याणि । (ख)

भा० तत्क्रमात् अर्थात् शब्द तन्मात्रादि क्रमसे विशेषाः अनुभव योग्य सुख दुःख रूप धर्मोसे प्रभेद कियेगये वह विशेष कहलाने हैं । यहाँपर कर्ममें धन प्रत्यय है । तन्मात्रा तो अविशेष है क्योंकि उन को अनुभव योग्य सुखादिकों से अलग नहीं कर सके क्योंकि सूक्ष्म होने से । (च) ॥

प्रकृति का कारण योग न होने से वही प्रकृति कारण कही गई है और महत्तत्त्वादिक सात प्रकृति के विकार कहे गये हैं ॥ २५ ॥ प्रकृति ही कारण ही अर्थात् किसी का कार्य नहीं और कार्य सब भूतों के अर्थात् प्राणिमात्रों के और इन्द्रियों के कारण होने से महर्षियों ने महान् अहंकार और पञ्च तन्मात्रा इस प्रकार । (क) ॥ महत्तत्त्वादि सात शक्ति के अर्थात् प्रकृति के विकार कार्य कहे हैं ॥ (ख) ॥

इन्द्रियाणां च भूतानां कारणात्वात्महर्षिभिः ॥

महत्तत्त्वादयः सप्त प्रोक्ता प्रकृतयोऽपि च ॥ २६ ॥

तथा सति प्रकृतिर्महानहङ्कारः पञ्च तन्मात्राणीत्येष्टौ प्रकृतयः ॥ (ग) ॥

भा० महर्षियों ने इन्द्रिय और भूतों के कारण होने से महत्तत्त्वादि सातों को प्रकृति कहा है ॥ २६ ॥ इसवासे प्रकृति महान् अहंकार और पञ्च तन्मात्रा इस प्रकार आठ प्रकृतियाँ हैं ॥ (ग) ॥

दशेन्द्रियाणि चित्तञ्च महाभूतानि यञ्च च ॥ एता
नि सृष्टिं जानद्भिर्विकाराः षोडश स्मृताः ॥ २७ ॥

[विकाराः कार्याणि ।]

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्वे सिद्धे वपुर्गृहे ॥ जीवा
त्सानियतेर्निधोवसति स्वान्तदूतवान् ॥ २८ ॥

अत्र शब्दादीनां वियदादि महाभूतगुणानां धर्मिभ्यो
ऽभिन्नतया पृथकत्वं निरस्यन्नुक्तानाम् तत्त्वानामुप
संहारमाह । (क) ॥

भा० दशेन्द्रियां पांच महाभूत और चित्त इनको सृष्टि के जानने
वालों ने सोलह विकार ऐसा कहा है ॥ २७ ॥ सोलह विकार औ
र आठ कार्य इस प्रकार चौबीसों से सिद्ध हवे तब ऐसे शरीर रूपी घर
में जीवात्मा शुभाशुभ कर्मों के स्वाधीन मनदूत के साथ रहता है ॥ २८ ॥
यहाँपर आकाशादि महाभूतों के गुण शब्दादिकों का धर्म से अर्थात् आ
काशादिकों से भिन्नता करके अलग निकाल कर कहे हवे तत्वों का उपसं
हार कहते हैं ॥ (क) ॥

चतुर्विंशतिभिरिति तानि च प्रकृतयोऽष्टौ विका
राः षोडशेति । महत्त्वतनि प्रकृत्यादीनां भावाः
नियतेः शुभाशुभ कर्मणः । (ख) ॥ निघ्नः
आयतः स्वान्तदूतवान् मनोदूतयुक्तः सदेही क
थ्यते पापपुण्य दुःखसुखादिभिः व्याप्ता बद्धश्च
मनसा कृत्रिमैः कर्मबन्धनैः स जीवात्मा तस्य देहिनः
शरीरजीवात्मनोः संयोगकारकेण मनसा संयोगे ये
ये गुणा उत्पद्यन्ते । (ग) ॥

भा० बौद्ध प्रकृतियां आठ और सोलह विकार इस प्रकार चौबीस तत्त्व हैं ॥
आत्मा और प्रकृत्यादिषों के धर्म शुभाशुभ कर्मों के स्वाधीन मनो दूत के
युक्त वह देही कहाना है । पाप पुण्य सुख दुःखादिकों से घिरा हुआ मन और
कर्म बन्धनों से बन्धा वह जीवात्मा कहाना है उस देही के अर्थात् शरीर जीवा
त्मा का संयोग कराने वाले मन के संयोग में जो जो गुण उत्पन्न होते हैं ॥ (ग)
उनको कहते हैं । इच्छा द्वेष दुःख सुख विषय का ज्ञान मन का प्रयत्न औ
र संकल्प विचारणा स्मृति बुद्धि कला विद्या का ज्ञानना ॥ (घ) ॥

[तानाह] इच्छा द्वेष दुःख सुखानि विषय ज्ञानं प्रयत्नो
मनः सङ्कल्पश्च विचारणा स्मृति रस्यो बुद्धिः कला विज्ञा
ता । (घ) ॥ प्राणस्योपरि व्यापनं गुदवसाद्वायो
रधः प्रेरणाम् ॥ नेत्रान्मेषनिमेष कृत्यकरणोत्सा
हाश्च जीवे गुणाः ॥ २६ ॥

इच्छा सुखहेतु अभिलाषः द्वेषो दुःखहेतुर्मनः प्रवृत्तिः
। (क) ॥ सुखं प्रीतिः दुःखमप्रीतिः विषय ज्ञानं शब्दा
दिज्ञानम् प्रयत्नः कार्यं तात्पर्यं मनः संशयात्मकं त
स्य कर्म संकल्पः । ख) ॥ विचारणा ऊहापोहाभ्यां
वस्तुविमर्शः । (ग) ॥

भा० प्राण का ऊपर की तरफ निकालना और गुद के मार्ग के वायु का नीचे
निकालना नेत्र का निमेष और अनुमेष अर्थात् आँख का खुलना भिड़ना
और काम करने का उत्साह ये जीव के गुण हैं ॥ २६ ॥

इच्छा सुख के अर्थ अभिलाषा द्वेष दुःख के हेतु मन की प्रवृत्ति । (क) ॥
सुख प्रीति अर्थात् आनन्द दुःख अप्रीति का न होना विषय ज्ञान शब्द स्पर्श
रूप रस गन्ध इनका ज्ञान प्रयत्न कार्य में तात्पर्य मनः संशयात्मक अर्था
त् है या नहीं इस प्रकार के संशयवाला उसका कर्म सङ्कल्प । (ख) ॥

विचारणा तर्क वितर्क द्वारा वस्तुका निश्चय करना ॥ (ग) ॥

स्मृतिः पूर्वानुभूतस्यार्थस्य स्मरणम् ॥ (घ) ॥ बुद्धिः
निश्चयात्मिका कलाविज्ञताशिल्प शास्त्रादिवोधः प्राण
स्य हृदयस्थितस्य वायौः उपरियापनम् । (ङ) ॥ मुखा
दिप्रति नयनम् गुदवसाद्वायोरधः प्रेरण मपानस्याधः प्रे
रणं नेत्रोन्मेष निमेषौ नेत्रयोरून्मीलननिमीलने कृत्य
करणोत्साहः कार्यारम्भे सामर्थ्ये नोत्साहः । (च) ॥
जीवे मनो युक्तस्य जीवात्मनोऽमी इच्छादयो गुणाः ॥ (छ)

इति श्री मिश्र लटकन तनय श्रीमन्मिश्र
भावविरचिते भावप्रकाशे सृष्टि प्रकरणं प्रथमं
समाप्तम् ॥ १ ॥

भा० स्मृतिः पहिल अनुभवकिये हुवे वस्तुका स्मरण । (घ) ॥ बुद्धिनि
श्चयात्मिका अर्थात् निश्चयरूप कला विज्ञता शिल्प शास्त्र का जानना प्रा
णका हृदय में रहनेवाली वायु का ऊपरकी तरफ निकालना ॥ (ङ) ॥
अर्थात् मुख नासिकादि में लेजाना । गुदा के मार्ग से वायु का नीचे निका
लना अर्थात् अपानवायु का नीचे निकालना ॥ नेत्रका निमेष और
उनिमेष अर्थात् आँखका खोलना ढकना काम के करने में उत्साह काम
के प्रारम्भ में सामर्थ्यद्वारा उत्साह । (च) ॥

इति श्री मिश्र लटकनके पुत्र श्रीभावमिश्र का निर्मित भावप्रकाश
ग्रन्थ में पहिला सृष्टि प्रकरण समाप्त हुआ ॥ १ ॥

चिकित्सायां शरीरी ह्यधिकृतः स शरीरी यथोत्पद्यते त
द्वोधयितुं गर्भोत्पत्ति क्रममाह ॥ (क) ॥

गर्भोत्पत्ति भूमिस्तु रजस्वलास्त्वी । (ख) ॥

[ततो रजस्वला स्वरूपमाह]

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वं मापञ्चाशत्समाः स्त्रियः ॥

मासि मासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्त्तवं सवेत ॥ १ ॥

आर्त्तवस्त्रावदिवसादतुः षोडशरात्रयः ॥ गर्भग्रह

रा योग्यस्तु स एव समयः स्मृतः ॥ २ ॥

भा० चिकित्सा में अर्थात् रोग के प्रतीकार में देही मुख्य किया गया है इस वास्ते वह देही जिस प्रकार उत्पन्न होता है उसको जानने के वास्ते गर्भ की उत्पत्तिका क्रम कहते हैं ॥ (क) ॥ गर्भ के उत्पत्तिकी भूमि रजस्वला स्त्री हैं ॥ (ख) ॥ तिसे रजस्वला का लक्षण कहते हैं ॥ चारह बरस के ऊपर से पचास बरस तक औरतें महीने २ स्वभाव से ही योनि द्वारा आर्त्तव को निकालती हैं अर्थात् कपड़े से बैठती हैं ॥ १ ॥ कपड़े से बैठे हुवे दिन से सोलह दिन ऋतु कहलाता है और वही समय गर्भ धारण करने योग्य कहा गया है ॥ २ ॥

सर्व्वासामेव चतुःवर्ग स्त्रीणां सर्ववादि सम्मतः (क) ।

पूर्वोक्तः समयः, ग्रन्थान्तरतु विशेषः ॥ (ख) ॥

तद्यथा । (ग) ॥ स्नान दिवसा दूर्ध्वं द्वादशरात्रावधि

ब्राह्मण्याः दशरात्रावधि क्षत्रियायाः । (घ) ।

अष्टरात्रावधि वैश्यायाः षड्रात्रावधि शूद्रायाः गर्भधा

ररो शक्तिः ॥ (ङ) ॥

भा० चारों वर्गों की सब स्त्रियों का यही ऋतुकाल सब वादियों के समत है ॥ (क) ॥ पूर्वोक्त समय और ग्रन्थों से कुछ विशेष कहें ॥ (ख) ॥ वह जैसे ॥ (ग) ॥ स्नान के दिन के ऊपर चारह दिन तक ब्राह्मणी द्वादस दिन तक क्षत्रिया की ॥ (घ) ॥ आठ दिन तक

[अथ रजस्वलाया नियमानाह]

आर्त्तवस्त्रावदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी ॥ शयीत
 दर्भे शय्यायां पश्येदपि पतिन्न च ॥ ३ ॥ कोरे
 शरावे परो वा हविष्यं त्यहमाहरेत् ॥ अश्रुपातं न
 खच्छेद मभ्यङ्गमनुलेपनम् ॥ ४ ॥ नेत्रयो रञ्जनं
 स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम् ॥ अत्युच्च शब्द श्रव
 णं हसनं बहु भाषणम् ॥ ५ ॥ आयासं भूमि र्व
 ननं प्रवातञ्च विवर्जयेत् ॥

भा० वैश्या का और छः दिन तक शूद्रा का गर्भ धारण करने में सामर्थ्य
 होता है ॥ (६) ॥ अनन्तर रजस्वला के नियम कहते हैं ॥ * ॥
 आर्त्तवस्त्राव अर्थात् कपड़े से होय उस दिन से हिंसा न करे और ब्रह्मचर्य
 रखे तथा कुसा के वस्त्रों पर सेवे और पतिको भी न देखे ॥ ३ ॥ हान पर
 या सकोरे में या पत्ते पर हविष्यान्न को भोजन करें ॥ और आँसू का गिरा
 ना नारबून काटना तेल लगाना चन्दनारि सुगन्ध द्रव्य लगाना ॥ ४ ॥
 आँखों में सुरमा लगाना नहाना दिन में सीना बज्जत दौड़ना ऊँचे शब्द की सु
 नना हँसना बज्जत बोलना ॥ ५ ॥ श्रम करना ज़मीन खोदना और बज्जत
 हवा का सेवन इनकी रजस्वला छोड़ देवे ॥

[एतस्या नियमकरणे दोषानाह]

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा ॥
 सा चेत् कुर्व्यान्निषिद्धानि गर्भो दोषास्तदाभुयात् ॥ ६ ॥
 एतस्या रोदनाद्गर्भो भवेद्विकृत लोचनः ॥ नखच्छे
 देन कुनरवी कुण्ठी त्वभ्यङ्गनो भवेत् ॥ ७ ॥ अनुले
 पात्तथा स्नानात् दुःखशीलोऽञ्जनादहक ॥

भा० इनके नकरने में दोष कहते हैं ॥ वे समझी से या पागलपन से या लोभ से या दैव योग से वोह रजस्वला निषेध किये इन्हे को करेती गर्भ दोष को प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ इस के रोने से विकार युक्त नेत्रवाला गर्भ होगा नाखून के काटने से कुनखी और अम्यंग से कुष्ठी होगा ॥ ७ ॥ अनुलेप और स्नान से सदा दुखी तथा आँख में आँजने से और दिनमें सोने से सदा सोने वाला होगा ॥

स्वापशीलो दिवास्वापाच्चञ्चलः स्यात् प्रधावनात् ॥ ८ ॥

अत्युच्च शब्द श्रवणाद्वधिरः खलु जायते ॥ तालुदन्तोष्ठ जिह्वासु श्यावो हसन तो भवेत् ॥ ९ ॥ प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात् ॥ स्वलते भूमि खननादुन्मत्तो वात सेवनात् ॥ १० ॥

भा० दौड़ने से चंचल होगा ॥ ८ ॥ बड़न ऊँचे शब्द के सुनने से बहिरा होगा तालुदांत आठ जीभ में स्याही हसन से होगी ॥ ९ ॥ बड़न बोलने से वं कबादी और बड़न श्रम से उन्मत्त उत्पन्न होता है ॥ भूमि के खोदने से गिरता है और वायु के सेवन से उन्मत्त होता है ॥ १० ॥

[अथ रजस्वला कृत्यम्]

पूर्वं पश्येदनु स्नाता ग्राहशं नरमङ्गना ॥ तादृशं जनयेत् पुत्रं ततः पश्येत्पतिं प्रियम् ॥ ११ ॥

प्रियमिति भर्त्तव्यं नासन्ने पुत्रादिकमपि पश्येत् चतुर्थ दिवसेऽपि स्त्रीनिवृत्तौ स्त्री पतिना सङ्गच्छेत् ननु स्त्रीऽनुवृत्तौ ॥ (क) ॥ यत आह ।

भा० अनन्तर रजस्वला का कृत्य अर्थात् जो करना चाहिये ॥ चौथे दिन नहा इड्डू और त जिस प्रकार के पुरुष को देखेगी उस प्रकार के पुत्र को उत्पन्न करेगी इसवास्ते पति को देखे अथवा पति यास नही तो पुत्रादिकों को देखे ॥ ११ ॥

चौथे दिन में भी रज निवृत्त हो गया हो तो अर्थात् स्त्रियों का मासिक धर्म बन्द हो गया हो तो स्त्री पतिके साथ संभोग करें । और रजके निकलनेमें न करें ॥ (क) ॥ जिसे कि कहते हैं ॥

प्रवहत्सलिले क्षिप्तं द्रव्यं गच्छत्यधो यथा ॥ तथा
बहति रक्तैतु क्षिप्तं वीर्यमधो ब्रजेत् ॥ १२ ॥

[अथ भर्तृकृत्यम्]

तत्र गर्भाधाने निषिद्धं विहितं च कालं तयोः । (क)

फलञ्चाह । आयुः क्षयभयाद्भर्ता प्रथमे दिवसे

स्त्रियम् ॥ द्वितीयेऽपि दिने रत्यै त्यजेदनुमतीं त

था ॥ १३ ॥ तत्र यध्वाहितो गर्भा जायमानो न जीव

ति ॥ आहितो यस्तृतीयेऽन्ति स्वल्पायुर्विकलाङ्ग-

कः ॥ १४ ॥ अतश्चतुर्थी वष्टी स्यादष्टमी दशमी तथा

। द्वादशी वापि या रात्रिस्तस्यान्तां विधिना भजेत् ॥ १५ ॥

भा० वेग से बहते हुवे पानी में डाली हुई वस्तु जैसे नीचे जाती है वैसे बहते

हुवे रक्त में डाला हुआ वीर्य नीचे जावेगा ॥ १२ ॥ ॥ अनन्तर पतिका

कृत्य ॥ उस गर्भाधान में जो निषिद्ध काल और विहित काल है । (क)

उन दोनों का फल कहते हैं ॥ आयु के क्षय होने के भय से पति पहिले

दिन स्त्री के पास न जावे । वैसे ही दूसरे भी दिन रतिके अर्थ रजस्वला के

छोड़ देवे अर्थात् रजस्वला के साथ दूसरे दिन भी भोग न करें ॥ १३ ॥

उस में अर्थात् पहिले दूसरे दिन में जो खराब हुआ गर्भ नहीं जीता । और

जो तीसरे दिन किया हुआ वह छोड़ी आयुवाला शिथिल अंग उत्पन्न हो

नाहै ॥ १४ ॥ इससे चौथे दिन छठे दिन आठवे दिन दशवे दिन और न के

साथ भोग करें ॥ और बारह दिन भी विधिके साथ भोग करें ॥ १५ ॥

विधिना गर्भाधानोक्त विधिना । (क) ॥

अत्रोत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च ॥

[तत्त्वान्तरे ।] प्रजासौभाग्यमैश्वर्य्यबलञ्चाभिग
मात्फलम् ॥ १६ ॥ मनो भवांगारमुखेऽवलानां
तिस्रो भवन्ति प्रमदाजनानाम् ॥ समीरणाच्चन्द्र
मुखीच गौरी विशेषमासासुपवर्णायामि ॥ १७ ॥
प्रधानभूतामदनातपत्वे समीरणा नाम विशेषना
डी ॥ तस्या मुखेयत्पतितं तु वीर्य्यं तन्निष्फलं स्या
दिति चन्द्रमौलिः ॥ १८ ॥

भा० विधिसे अर्थात् गर्भाधानोक्त विधिसे (क) इसमें उत्तरोत्तर अ
र्थात् बोधेसे छठेमेंछठे से आठवे इसक्रमसे आयु और आरोग्य की
अधिकता होती है ॥ और तन्त्रमे । स्त्री संभोग से प्रजा सौभाग्य ऐश्व
र्य और बल प्राप्त होता है ॥ स्त्रियों के कामदेव के मंदिर के मुखपर तीन
नाड़ियाँ होती हैं पहिली समीरणा दूसरी चन्द्रमुखी तीसरी गौरी इनका
विशेष लक्षण और वर्णन करता है ॥ १७ ॥ मदन के छत्रपर समीरणा
नाम विशेष नाड़ी है उसके मुखपर गिराहुवा वीर्य्य निष्फल होता है ।
ऐसा चन्द्रमौलि कहने हैं ॥ १८ ॥ और जो दूसरी चान्द्रमसी नाड़ी है वोह
कामदेव के घरमें प्रधान है और वोह स्त्री कन्याकोही उत्पन्न करती है
तथा थोड़े मैथुन के उत्सवमें साध्य होती है अर्थात् गर्भको धारण करती
है । ॥ १६ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १६ ॥ ॥

याचापरा चान्द्रमसी च नाडी कन्दर्पगोहे भवति
प्रधाना ॥ साखुन्दरी योषितमेव सूते साध्याभवे
दल्परतोत्त सवेषु ॥ १६ ॥ गौरीति नाडी यदुप
स्थ गर्भे प्रधानभूता भवति स्वभावात् ॥ पुत्रम्

प्रसूते बह्वधाङ्गना सा वाष्टोप भोग्यां सुरतोपविष्टा
॥ २० ॥ [युग्मायुग्मरात्रिणां फलमाह]

युग्मासु युत्वाजायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । तत्र
दस्यत्योः सम्भोगे द्वादक पुमान्युक्तस्तादृशमुच्यते (क)
स्नानश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्ध सुमनोऽर्चितः ॥
भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतः ॥ २१ ॥
ताम्बूलचदनस्तस्याः मनुरक्तोऽधिक स्मरः ॥
पुत्रार्थी पुरुषो नारी मुपेयाच्छयने शुभे ॥ २२ ॥

॥ २० ॥ तीसरी गौरी नाड़ी स्वभावसे पुरुष गर्भमें प्रधान भूत होती है । वोह स्त्री कष्टसे उपभोग योग्य मैथुनपर आरुढ़ हुई पुत्रही को उत्पन्न करती है ॥ २० ॥ ॥ युग्म और अयुग्म रात्रिका फल कहते हैं ॥

युग्म रात्रिमें अर्थात् चार छः आठ दश बारह इन दिनों में युत्र उत्पन्न होते हैं । और अयुग्ममें अर्थात् पांच सात नौ ग्यारह इन दिनोंमें कन्या उत्पन्न होती है ॥ उन स्त्री पुरुषके सम्भोग में जैसा पुरुष होना चाहिये सो कहना है । (क) ॥ स्नान किया हुआ शरीरमें चन्दन लगाया हुआ अच्छे सुगंधित पुष्पोंसे पूजन किया हुआ अच्छे दुग्धादि पदार्थोंकी भोजन किया हुआ अच्छा कपड़ा पहिने हुआ अच्छे लिबास से रहनेवाला और अच्छे आभूषणोंको पहिने हुवे ॥ २१ ॥ पान खाये हुआ उसमें अधिक प्रीतिकर ता हुआ अधिक कामदेववाला पुत्रार्थी पुरुष अच्छे शयन पर स्त्री के पास जावे ॥ २२ ॥

[तत्राऽयोग्यां स्त्रियमाह]

अत्याशितोऽधृतिः क्षुहान् सव्यथाङ्गः पिपासि
नः ॥ वालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्य जेद्वागी च मैथुनम्
॥ २३ ॥ तत्र स्त्री द्वादशी योग्या तादृशमुच्यते । (क) ।
पुरुषस्य गुरोर्युक्ता विद्विता न्यून भोजना ॥ नारी

ऋतुमती पुंसां सङ्गच्छेत्तु सुतार्थिनी ॥ २४ ॥

[तत्राऽयोग्यां स्त्रियमाह]

रजस्वला व्याधिमती विशेषाद्योनिरोगिणी ॥

वयोऽधिका च निष्कामा मलिना गर्भिणी तथा ॥

॥ २५ ॥ एतासां सङ्गमात्पुंसां वैशुण्यानि भवन्ति

हि ॥

तत्र रजस्वला दिनत्रयं यावद्वतौ निषिद्धा ॥ (क) ॥

यत उक्तम् । प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्म घा

तिनी ॥ तृतीये रजकी पुंसां यथा वर्ज्या तथाङ्गना ॥ २६

भा० उसमें अयोग्य पुरुष कहते हैं ॥ बहुत भोजन किया हुआ धी रज न रखनेवाला भूखा शरीर में पीड़ा वाला व्यासा बालक बूढ़ा और बीमारी से अधीन मल मूत्र दि वेगों से पीड़ित और रोगी इतने मनुष्य - मैथुन को छोड़ दें ॥ २४ ॥ उससे जैसी स्त्री होनी चाहिये सो कहते हैं ॥

पुरुष के गुरों से युक्त और विहित तथा अल्प भोजन करने वाली और पुत्र की चाहने वाली ऋतुमती भारी पुरुष के साथ भोग करे ॥ २४ ॥ उसमें जैसी स्त्री त्यागनी चाहिये सो कहते हैं ॥ रजस्वला

याने कपड़ों से वेढी हुई रोगवाली विशेष करके भगके रोगवाली बड़ी उमरवाली और कामदेव से रहित मैली गर्भिणी ॥ २५ ॥

इनके संग से पुरुष को विकार उत्पन्न होते हैं ॥ उसमें रजस्वला तीन दिन जब तक कि ऋतुकाल में निषिद्ध है ॥ (क) ॥ जैसे कहा है ॥

पहिले दिन चाण्डाली दूसरे दिन ब्रह्म घातिनी तीसरे दिन रजकी अर्थात् धोविन जैसे पुरुषों को ये नछूनी चाहिये वैसेही औरन भी नछूनी चाहिये ॥

॥ २६ ॥

व्याधिमती च वर्ज्या तत्र स्त्रीणां व्याधयः प्रदरादय उ

क्ता निषिद्धा तत्रापि विशेषाद्योनिरोगिणी ॥ (ख)

[गर्भावतरणक्रममाह ।]

कामान्मिथुन संयोगे शुद्धशोणित शुक्रजः ॥

गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥ २७ ॥

गर्भः शुद्धः अशुद्धस्तु गर्भोऽशुद्धः शुक्रः शोणितयो
रपि दम्पत्योर्भवति यत आह । (ग) ॥

दम्पत्योः कुष्ठ बाहुल्या दृष्टशोणित शुक्रयोः ॥

यदपत्यन्तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितमिति । २८ ॥

कुष्ठं संजातं यस्य तत् कुष्ठितम्, अत्र तारकादित्वादि
तत् प्रत्ययः । (घ) ॥

भा० रोगवाली छोड़ देने योग्य है उसमें औरतों के रोग प्रदरादि कहे उन
से युक्त निषिद्ध है उसमें भी विशेष करके योनि रोग वाली निषिद्ध है ॥

(ख) ॥ गर्भ के उत्पन्न होने का क्रम कहते हैं ॥ काम से दो
नों के संयोग में स्त्री के शुद्ध रक्त और शुक्र से उत्पन्न हुआ गर्भ होता
है वह हुआ बालक होता है ॥ २७ ॥ गर्भ शुद्ध होता है और अशुद्ध
तो स्त्री पुरुषों के अशुद्ध रक्त शुक्र से होता है । जैसे कि कहते हैं (ग)

कुष्ठ रोग की अधिक्यता से बिगड़े हुये रक्त शुक्रवाले उन स्त्री पुरुषों
से जो सन्तान उत्पन्न हुई उसको भी कोढ़ी जानना चाहिये ॥ २८ ॥

कुष्ठ उत्पन्न हुआ है जिसको वह कुष्ठित है । यहाँ पर तारका दित्व से
इतत् प्रत्यय हुआ है ॥ (घ) ॥

यत्तु, वातादि दुष्ट रेतसः प्रजोत्पादने न समर्थाः (ङ)

इति सुश्रुतः ॥ तत्र शुद्ध प्रजोत्पादने न समर्था

इति बोद्धव्यम् । (च) ॥ रोगादिना शुद्धास्तु

प्रजां वातादि दुष्ट शुक्राः अपि जनयन्ति जन्माध

बधिरपङ्कगदि सम्भवान् ॥ (छ) ॥

ऋतौ स्त्री पुंसयो र्योगे मकरध्वज वेगनः ॥ पुंसः
सर्व्व शरीरस्यः रेतो द्रावयतेऽथ तत् । वायुर्मह
नमर्गोऽग्रा पानयत्यङ्गनाभगे ॥ नत् संश्रुत्य व्या
त्तमुखं याति गर्भाश्रयं प्रति ॥ तत्र शुक्रवदायति
नार्जवेन युतं भवेत् ॥ ३० ॥

भा० जो कि वातादि दैवों से दुष्ट हुआ शुक्र सन्तान उत्पन्न करने में न
ही समर्थ होता ऐसा सुश्रुत ने कहा है (छ) ॥ वहाँ पर शुद्ध सन्तान उ
त्पन्न करने में नहीं समर्थ होता ऐसा जानना चाहिये ॥ (च) ॥
रोगादि कों से शुद्ध और वातादि दैवों से दुष्ट शुक्रवाली भी सन्तान को
उत्पन्न करती हैं क्योंकि जनम के अन्धे वहीरे ब्रूल इत्यादि उत्पन्न होने
से ॥ (छ) ॥

ऋतुकाल में स्त्री पुरुष के मिलने में कामदेव के वेग से लिंग और यो
निके संघर्ष से उष्ण वायु द्वारा ताड़ित ॥ २९ ॥ पुरुष के सब शरीर
में रहनेवाला शुक्र पिघलता है अनंतर वायु उसको लिंग के मार्ग से
औरत को भग में डालता है ॥ उसको आश्रय करके खुले मुखवाले
गर्भाशय यानि वच्चेदानी में जाता है वहाँ पर शुक्र के गर्भाद आये हुए
आर्जव से यानि हैज से मिल जाता है ॥ ३० ॥

[गर्भाशयस्य स्वरूपमाह]

शङ्खनाभ्याकृति र्योनि स्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्तिता ॥

तस्यास्तृतीयं त्वावर्त्तं गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥

यथा रोहित मत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः ॥ तत्

संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥ ३२ ॥

भा० गर्भाशय का लक्षणा कहते हैं ॥ शंख के नाम की आकार
तीन आवर्त्तवाली योनि कही गई है उसके तीसरे आवर्त्त में गर्भ

शय्या स्थापन की गई है ॥ ३१ ॥ जैसे आकारसे रोहू मछली का मुख होता है वैसेही आकाररूप गर्भशय्या का पंडित लोग जानते हैं ॥ ३२ ॥

अयमर्थः। गर्भशय्या मुखं रोहित मत्स्येव भवति यथा च रोहित मत्स्यस्य स्थितिर्जले भवति तथा पिप्ताशय पक्वाशयमध्ये गर्भशय्यायाः स्थितिर्भवति रूपमपि तस्यैव भवति यथा रोहितस्य मुखं स्वल्पमाशयस्तु महानित्यर्थः ॥ (क) ॥

शुक्रार्त वसमाश्लेषो यदैव खलु जायते । जीवस्तदैव विशति युक्तः शुक्रार्तवान्तरः ॥ ३३ ॥

भा० यह अर्थ है, गर्भशय्या का मुख रोहू मछली ही के मानिंद होता है । और जैसे रोहू मछली का रहना पानीमें होता है वैसे पिप्ताशय और पक्वाशय के बीच में गर्भशय्या की स्थिति है और रूपभी उसी के मानिंद है जैसे रोहू का मुख थोड़ी जगह और यों बड़त बड़ा है ॥ (क) ॥ वहीं शुक्र और आर्तव का संयोग होता है उसी समय में शुक्र और आर्तव के बीच रहनेवाला जीव उनसे मिलाजुवा प्रवेश करता है ॥ ३३ ॥

सूर्यांशोः सूर्यमगितोद्यु भयस्माद्युताद्यथा । वह्निः सज्जायते जीवस्तथा शुक्रार्तवाद्युतात् ॥ ३४ ॥ अस्मानादिरनन्तश्चाऽव्यक्तो वक्तुं न शक्यते ॥ चिदानन्दैकरूपोऽयं मनसापि न गम्यते ॥ ३५ ॥ एवं भूतोऽपि जगतो भाविनी बलवत्तया । अविद्या स्वीकृते कर्मवशो गर्भे विशत्यसौ ॥ ३६ ॥

भा० सूर्य के किरण और सूर्य कान्तमणि इन दोनों के मिलने से जैसे आग उत्पन्न होती है वैसे शुक्र और आर्तव के मिलने से जीव उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥ अनादि अनंत और अव्यक्त जिसको कह नहीं सकते । तथा चिदानन्द ही है एक रूप जिसका ऐसा यह आत्मा मतसे भी नहीं जाना जाना ॥ ३५ ॥ इस प्रकार का हुवा भी जगत् की भावी की बलवत्ता से अविद्या के द्वारा स्वीकार किया गया और कर्म के बश हुवा यह आत्मा गर्भ में प्रवेश करता है ॥ ३६ ॥

[गर्भे चतुर्विंशति तत्त्वमयम्]

स एव वेत्ता रसनो द्रष्टा घ्राता स्पृशत्यसौ ॥ श्रो
ता वक्ता च कर्ता च गन्ता रन्तोत्सृजत्यपि ॥ ३७ ॥
दिने व्यतीते नियतं सङ्कुचत्यम्बुजं यथा ॥ ऋतौ
व्यतीते नाव्यास्तु योनिः संप्रियते तथा ॥ ३८ ॥

भा० गर्भ में चौबीस तत्त्वमय । वही जाननेवाला और स्वाद का लेने वाला देखनेवाला सूँघनेवाला यह स्पर्श करता है । तथा सुननेवाला बोलने वाला करनेवाला चलनेवाला रन्त को छोड़ता है ॥ ३७ ॥ दिन के व्यतीत होने में जैसे नियम के साथ कमल संकोच को प्राप्त होता है अर्थात् सिकुड़ जाता है वैसे ही स्त्री की योनि ऋतुकाल के व्यतीत होने में सिकुड़ जाती है ॥ ३८ ॥

ऋतौ रजोदर्शनान् । षोडशनिशात्मके काले तौ
धर्मेतरपुरःसरो । योनिरत्र धराद्वारम् । (क) ॥
वीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ ॥
यमावित्यभिधीयते धर्मेतरपुरःसरो ॥ (३९) ॥

भा० ऋतु में अर्थात् खसबला हुवे दिन से सोलह दिन तक । के समय में । वे दोनों धर्म और अधर्म अणुवे हैं जिनके । यहाँ पर योनि पृथ्वी का द्वार है । (क) ॥

प्राण वायु से दो बीजों के अलग होने पर दो जीव कूख में जाते हैं जिस हेतु जोड़ा ऐसे कहे जाते हैं धर्म और अधर्म अगुवे हैं जिनके ॥ ३६ ॥

धर्मस्तदितरो ऽधर्मस्तौ पुरःसरो ययोः तेन यमौ धर्माधर्माभ्यां भवत इत्यर्थः । (ख) ॥

आधिक्ये रेतसः पुत्रः कन्या स्यादार्तवे ऽधिके ।

न पुंसकं तयोः साम्ये यथेच्छा परमेश्वरी ॥ ४० ॥

नन्वेवं सति कथं पुत्रोत्पत्तिः स देवार्तवस्यैव बाहु

ल्यात् ॥ (ग) ॥ यत उक्तम् ॥ आर्तव चतुरंज

लि प्रमारां शुक्रं प्रसृति मात्रमिति ॥ (घ) ॥

भा० धर्म उल्लेख दूसरा अधर्म वे दोनों अगुवे हैं जिनके तिस हेतु जोड़ा धर्माधर्म से होता है ॥ (ख) ॥ शुक्र की अधिकता से पुत्र उत्पन्न होता है और आर्तव अर्थात् स्त्री रज के अधिक होने से कन्या होती है । तथा उन दोनों के बराबर होने से नपुंसक होता है जैसी इच्छा परमेश्वर की होवे ॥ ४० ॥

यहाँ पर शंका करते हैं कि ऐसा होतौ सर्वदा आर्तव ही की आधिक्यता होती है निस्से कैसे पुत्र की उत्पत्ति होती है ॥ (ग) ॥

जैसे कि कहा है । आर्तव का प्रमारा चार अञ्जुली है और शुक्र का एक पसर भर अर्थात् चुल्लू भर है ॥ (घ) ॥

[वाग्भटे ऽप्युक्तमात्रेयादिभिः]

मज्जा मेदो वसा मूत्र पित्र श्लेष्म शकृत् प्रसृक् ।

रसो जलं च देहे ऽस्मिन् न्वेकैकाञ्जलि वर्द्धितम् ॥

४१ ॥ पृथक् च प्रसृतं प्रोक्तमोजो मस्तिष्करेतसासू ।

द्वावज्जली तु दुग्धस्य चत्वारो रजसस्तत्ते ॥ ४२ ॥

भा० वाग्भटमें भी अत्रिधादि मुनियों ने कहा है । मज्जा अर्थात् हड्डीके भी
नर का गूदा भेद वसा अर्थात् चरबी मूत्र पित्त कफ मल रुधिर रस
और जल ये क्रम से एक २ अंजुलि अधिक हैं ॥ ४१ ॥ और अलग
कहा गया है एक एक पसा भर ओज और माँथे में का भेजा तथा शु
क्र । और दो अञ्जुली दूध और चार अञ्जुली रज ॥ ४२ ॥

समधानोरिदं मानं विद्यात् वृद्धिदयावतः । इति ॥
(क) । नैवं, यतो गर्भाशयस्थमेव शुक्रमार्तं वं च ग
र्भात्पत्तिहेतुः शुक्रं कदाचिदत्यन्तहर्षवशाद्बुग्धादि
शुक्रलत्वद्रव्यसेवनात् शुक्र बाहुल्यात् गर्भाशये बद्ध
स्त्वति कदाचिद्वै मनस्यादिना शुक्राल्पत्वात्त्वल्पमि
ति स्वमार्तवमपीति न दोषः ॥ (ख) ॥

भा० यह समधानु का मान है । इससे न्यूनाधिक होने से क्षय वृद्धि जा
नना चाहिये ॥ (क) ॥ इस तरह पर नहीं जैसे गर्भाशय में रहने
वाला ही शुक्र और आर्तव गर्भकी उत्पत्ति का कारण है तो शुक्र कदाचि
त् बहुत खुशीके वश से अथवा बुग्धादि शुक्रकी बढ़ानेवाली वस्तुओंके
से या शुक्रके बाहुल्यता से गर्भाशय में शुक्र बहुत गिरता है । अथवा
कदाचिद् वैमनस्य से अथवा शुक्रकी अल्पता से छोड़ा गिरता है इसी
तरह आर्तव भी इससे दोष नहीं ॥ (ख) ॥

[सुश्रुतः पुनराह ॥]

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वा तथैव च ॥ दो
ष धातु मलानां तु परिमाणं न विद्यते ॥ ४३ ॥
वैलक्षण्यात् दीर्घह्रस्व कृशादि भेदेन सादृश्याभावान्
अस्थायित्वात् वयोऽहर्निशार्तु भुक्तेष्वेक मात्रानवस्था

नान् एवं तामाभिसङ्गम्य पुनमासाद् भजेदसौ मासादूर्ध्व
मिति शेषः श्रुत्वा कर्मनेन गर्भद्वारविघटनान् गर्भच्यु
ति प्रसङ्गः स्यात् केचित्तु पुनः पुष्यदर्शनेन गर्भालाम्
निश्चये मासादूर्ध्व गच्छेत् लब्ध गर्भं नैव गच्छेदिति
वदन्ति ॥ (क) ॥

तत्र परिहार्य परिहारार्थं सद्योगृहीतगर्भाया लक्ष
णमाह ॥ (ख) ॥

भा. १. और सुश्रुत ने कहा है ॥ शरीरों की विलक्षणता से तथा क्षण
भंगुरपने से दोष धातु मूल इनका परिमाण नहीं जाना जाता ॥ ४३ ॥
वैलक्षण्यसे अर्थात् लंबा छोटा दुबला मोटा इन में दो करके समान
नहीनेसे और स्थायि नहीनेसे अर्थात् अवस्था रात दिन बहत्तु और भी
जन इनमें एक तरह न रहनेसे । इस प्रकार उसके साथ संभोग करके
फिर से महीने भरमें संभोग करें परंतु महीने से ऊपर अर्थात् रजस्वला
होने के उपरान्त संभोग करें क्यों कि इससे पहिले गमन करनेमें गर्भद्वार
के विघटनसे गर्भपात होता है । कोई कहनेहैं कि फिरसे रजस्वला होने
में गर्भ के न रहनेके निश्चय होनेपर महीने के ऊपर गमन करें और
गर्भवही नौ न गमन करें । ऐसा कोई कहनेहैं ॥ (क) ॥

उसमें दूर करने के योग्य को दूर करने के वास्ते तत्काल गृहण की हुई
गर्भका लक्षण कहते हैं ॥ (ख) ॥

शुक्रशोणित तयो र्योने रस्वावोर्ध्र्य श्रमोद्भवः ॥

सकाथि सादः पिपासा च ग्लानिः स्फूर्ति भगे भवेत् ।

॥ ४४ ॥ [अथ तस्या एवोत्तरकालीनं लक्षणमाह]

स्तनयोर्मुरव काण्ड्य स्याद्रोगराज्यु ज्ञम स्तथा ॥

अक्षि पद्माणि चाप्यस्याः संमील्यन्ते विशेषतः ॥

॥ ४५ ॥ छर्दयेत् पथ्यमुक् चापि गन्धादुद्विजते शुभात्

प्रसेकः सदनं चैव गर्भिण्या लिङ्गं मुच्यते ॥ ४६ ॥

[तत्र पुत्रगर्भवत्या लक्षणं]

पुत्रगर्भयुतायास्तु नाख्या मासि द्वितीयके ॥ गर्भो

गर्भाशये लक्ष्यः पिण्डाकारोऽपरं शृणु ॥ ४७ ॥

पिण्डो वर्तुलाकृतिः मासि द्वितीयके इत्यस्य गर्भः पि

ण्डाकारो लक्ष्यः इत्यनेनैवान्वयो न त्वग्निमस्तोके

ऽपि ॥ (क) ॥

दक्षिणादिमहत्त्वं स्यात् प्राक्क्षीरं दक्षिणे स्तने ॥

दक्षिणोरुः सुखदः स्यात् प्रसन्नं मुखं वर्णता ॥ ४८ ॥

पुत्रामधेयं द्रव्येषु स्वप्नेष्वपि मनोरथः ॥ आम्नादि

फलमाप्नोति स्वप्नेषु कमलादि च ॥ ४९ ॥

भा० शुक्र और रुधिर का योनि से न निकलना काममें शम होना जांघ में पीड़ा प्यास ग्लानि और योनि में फड़कना ये लक्षण होते हैं ॥ ४४ ॥

अनन्तर उसीका पश्चान् कालका लक्षण कहते हैं । छातियों के सुख का का सापन, नाभिके ऊपर से स्तन तक रोमों की कतार खड़ी होना, और इस की विशेष करके आंखों की पलकें मिरती हैं ॥ ४५ ॥ हिनकारी भोजन को भीगेरे और अच्छे गन्ध से लेखा होवे, प्रसेक और पीड़ा ये गर्भिणी के लक्षण कहें हैं ॥ ४६ ॥ [उत्तम पुत्रगर्भवाली का लक्षण कहते हैं]

पुत्रगर्भवाली स्त्री का दूसरे महीने में गर्भ गर्भाशय में पिंड के आकार अर्थात् गोला ज्ञातना चाहिये और दूसरा सुनो ॥ ४७ ॥

पिंड अर्थात् गोला आकार महीने दूसरे का इसतरह पर इसका गर्भ पिंडाकार लक्ष्य है इस प्रकार इसी के साथ अन्वय है न पि अग्नि मस्तोक में भी ॥ (क) ॥ दाहिनी ओर खड़ी होवे और पक्षि से दाहिनी चूची में दू-

ध होवे तथा दाहिनी जांघ भारी होवे और सुख पर अच्छी रंगन होवे ॥ ४८ ॥

स्वप्न में भी पुरुषनाम वाली वस्तु में दृष्ट्या । स्वप्न में आम आदि फलों की और कमलादि कों की पाती है ॥ ४८ ॥

कन्या गर्भवती गर्भे पेशी मासि द्वितीयके ॥ पुत्री
गर्भस्य लिङ्गानि विपरीतानि चेक्षते ॥ ५० ॥

[पेशी दीर्घा कृतिः।]

नपुंसकं यदा गर्भे भवेद्गर्भोऽर्बुदा कृतिः ॥ उन्नते
भवतः पार्श्वे पुरस्तादुदरं महत् ॥ ५१ ॥

अर्बुदं वर्तुलं फलार्द्धतुल्यं नपुंसक विशेषमाह ॥ (क)

आसेकश्च सुगन्धी च कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा ॥

अमी सशुक्रा बोद्धव्या अशुक्रः पण्ड संज्ञकः ॥ ५२ ॥

भा० कन्या गर्भ वाली के दूसरे महीने के गर्भ में मांस की थैली होती है ॥

कन्या गर्भ के चिन्ह उसे विपरीत देखे जाते हैं ॥ ५० ॥

[पेशी अर्थात् दीर्घाकार] जब गर्भ में नपुंसक होवे तब गर्भ अर्बुदाकार अर्थात् गोल फल के अर्धभाग समान आकार होता है दोनों पासे ऊंचे होते हैं और पेट आगे की तरफ बड़ा होता है ॥ ५१ ॥

अर्बुद अर्थात् गोल फल के आधे भाग के समान आकार ॥ (क) ॥
नपुंसक विशेष को कहते हैं । आसेक सुगन्धी कुम्भीक ईर्ष्यक ये सशुक्र नपुंसक जानने चाहिये अशुक्र नपुंसक पण्ड संज्ञक है ॥ ५२ ॥

[एतेषां लक्षणमाह]

पितृस्तु स्वल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ॥

स शुक्रं प्रास्य लभते ध्वजोन्नतिमसंशयं ॥ ५३ ॥

भा० इनके लक्षण कहते हैं । पिता के थोड़े वीर्य होने से आसेक्य पुरुष होता है वह वीर्य को प्राशन करके स्त्री संभोग करने की सामर्थ्य को प्राप्त होवेगा

पित्रो मीतापित्रोः स्वल्पवीर्यत्वात् स्वल्पशुक्रार्तवत्वात्
 आसेक्यनामा मुखयोनीति नामान्तरः स शुक्रं प्राशयेति
 सपुरुषोऽन्य पुरुषेण स्वमुखे मैथुनं कारयित्वा तस्य शु
 क्रं प्रास्यमेहनोत्थानं लभते इत्यर्थः ॥ (क) ॥

यः पूति योनौ जायेन सहि सौगन्धिको भवेत् ॥ स
 योनि शोफसौगन्धमाघ्राय लभते बलम् ॥ ५४ ॥

भा० पितृ के अर्थात् माबाप के शुक्र शोणित होनेसे आसेक्यनाम अर्थात्
 न मुखयोनि इस नामान्तर वाला वह शुक्र प्राशन करके अर्थात् वह पुरु
 ष दूसरे पुरुष से अपने मुखमें मैथुन करकर उसका शुक्र प्राशन करके
 लिंगका उठना प्राप्त करता है अर्थात् इन्द्रिय उठती है ॥ (क) ॥

जो दुर्गन्धयुक्त योनिमें उत्पन्न होवे वह सौगन्धिक है। वह योनि लिंग
 की गन्धको सूंघ कर मैथुन करने की सामर्थ्यको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

सौगन्धिकः सौगन्धिक नामां नासायोनीति नामान्तरं
 बलं मैथुने शक्तिं स्वे गुदेऽब्रह्मचर्याद्यः स्त्रीषु पुं वत्

प्रवर्तते (ख) ॥ सकुम्भीक इति ज्ञेयो गुद योनि
 स्तु स स्मृतः ॥ ५५ ॥

अब्रह्मचर्यात् ब्रह्मचर्यममैथुनं अब्रह्मचर्यं मैथुनं
 यत्स्यात् ॥ (ग) ॥

भा० सौगन्धिकः सौगन्धिकनाम अर्थात् नाक योनि इस दूसरे नाम
 वाला ॥ (ख) ॥ बल अर्थात् मैथुनमें सामर्थ्य। अपनी गुदा में दूसरे
 पुरुष से मैथुन करने से जो पुरुष स्त्री में पुरुष के मानिंद मैथुन करता है
 वह कुम्भीक ऐसा जानना चाहिये और वह गुद योनि ऐसा कहा गया
 है ॥ ५५ ॥ अब्रह्मचर्य अर्थात् मैथुन ॥ (ग) ॥

हृष्टा व्यवायमन्ये पां व्यवाय यः प्रवर्तते ॥ इर्थकः

स तु विज्ञेयो दृष्टि योनिस्तु स स्मृतः ॥ ५५ ॥

यो भार्याया मृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्तते ॥ न

त्र स्त्री चेष्टिताकारो जायते षण्डसंज्ञकः ॥

॥ ५६ ॥ स्त्रीचेष्टिताकारः स्त्र्याकार प्रम

श्रु रहितः । स्त्री चेष्टितः समेहनोऽपि पुरुष

शक्ति रहितः ॥ (क) ॥

भा० दूसरे का मैथुन देखकर जो मैथुन में प्रवृत्त होता है उसको ईर्ष्य-
का ऐसा जानना चाहिये और वह दृष्टि योनि ऐसा कहा गया है ॥ ५५ ॥

ऋतुकाल में जो मोह के बस होकर स्त्री के साथ औरत के मानिंद मैथु-
न अर्थात् आप नीचे और स्त्री को ऊपर इस प्रकार करता है उसे स्त्री
चेष्टा और स्त्री के आकारवाला षण्ड संज्ञक उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥

स्त्री चेष्टिताकार स्त्री आकार अर्थात् दाढ़ी वगैरह से रहित और
स्त्री चेष्टित अर्थात् लिङ्ग सहित ज़वाभी पुरुष शक्ति रहित होता है ।

॥ (क) ॥

किन्तु स्त्रीवदधौ भूतः स्वे गुदे पुरुषान्तरेण मैथुनं

(ख) ॥ ऋतौ ऋतौ पुरुषवत् प्रवर्तताङ्गना यदि

॥ तत्र कन्या यदि भवेत्सा भवेन्नर चेष्टिता ५७।

पुरुषवत् स्त्रिय मारुह्य सा तस्या यो नौ स्वयोनि च

वर्णं करोति ॥ (ग) ॥

भा० लेकिन स्त्री के मानिंद नीचे होके अपनी गुदा में दूसरे पुरुष से
मैथुन कराता है ॥ (ख) ॥ ऋतुकाल में यदि स्त्री पुरुष के मानिं-

द अर्थात् आप ऊपर और पुरुष नीचे इस प्रकार मैथुन करे तो उसमें
यदि कन्या हो तो नर के चेष्टा और आकारवाली उत्पन्न होती है ॥ ५७ ॥

पुरुष के मानिंद औरत को बढ़ाकर वो उसकी योनि में अपनी योनि का

पर्यण करती है ॥ (ग) ॥

• [अपरा अपि गर्भं प्रकृतीराह]

यदा नाख्यावुपेयातां दृषस्यन्त्यो कथञ्चन ॥

मुञ्चन्त्यो शुक्रमन्योन्यमनस्थि स्तत्र जायते ॥

॥ ५८ ॥ अनस्थिः अत्रेषदर्थे नञ् तेनाल्पको

मलास्थिरित्यर्थः ॥ (क) ॥

ऋतुस्त्राता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमाचरेत् ॥

आर्तवमवायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥ ५९ ॥

भा० दूसरी भी गर्भकी प्रकृति कहने हैं ॥ जब दो औरतें मदान्ध जुड़ें आपस्मि नौचे ऊपर होके एकके साथ मैथुन करती है तब एक में एक शुक्र छोड़ती है उसमें जो सन्तान उत्पन्न होती है वह अस्थि रहित होती है ॥ ५८ ॥ (अनस्थि यहाँपर छोड़े अर्थमें नञ् है तिल्ले अल्प और कौमल अस्थि समझनी चाहिये) ॥ ऋतु में जो न्हाई जुड़ें औरत स्वप्नमें मैथुन को करे तब वायु आर्तव को लेकर कुक्ष में गर्भको करता है ॥ ५९ ॥

मासि मासि प्रवर्द्धेत स गर्भो गर्भलक्षणाः ॥ क

लले जायते तस्य वर्जितं पैतृकैर्गुरौः ॥ ६० ॥

गर्भलक्षणाः प्रकृतगर्भलक्षणाः । पैतृकैर्गुरौः केश

स्मश्रु लोमनखदन्त शिरास्त्रायु धमनीरेतः प्रभृतिभिः

॥ (क) ॥ सूर्यवृश्चिककुम्भागडाकनयो विह

ताश्च ये । गर्भास्ते योपिनस्ताश्च जेवाः पापकृता

भृशम् ॥ ६१ ॥ गर्भो वान प्रकोपेण दोहृदे चाप
मानिते ॥ भवेत् कुब्जः कुणिः पङ्गुर्मूकोमिन्
मिन एवच ॥ ६२ ॥

भा० गर्भ के चिन्ह वाला वह गर्भ महीने महीने में बढ़ता है ॥ उसका पि
तृ सम्बन्धी केशादि गुणों से रहित कलल अर्थात् मांस पिंडसा बच्चा ही
ना है ॥ ६० ॥ (गर्भ लक्षण अर्थात् प्रधान गर्भ चिन्ह पैत्रि

क गुण अर्थात् केश डाढ़ी रोम नख दांत सिरा स्नायु धमनी शुक्र प्र
भृतियों से रहित) ॥ ६१ ॥

सांप बिच्छू कूष्मांड के आकार और जो विकार की प्राप्त हुआ गर्भ है वे
औरतों के बहुत पाप करने से होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ ६१ ॥

गर्भ वायु के प्रकोप से और दोहृद के अपमान से अर्थात् गर्भवती
स्त्री की जिस वस्तु में इच्छा होती है उस २ वस्तु की न देने से कुबड़ा कु
नि पंगुली गूंगा मिनमिना उत्पन्न होता है ॥ ६२ ॥

[पुत्राणां माहाराचार चेष्टाभेदस्य]

हेतुमाह

आहाराचार चेष्टाभिर्य्यादृशिभिः समन्वितौ ॥

स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥ ६३ ॥

(समुपेयातां संयोगं गच्छेताम् ।)

[अथ गर्भलक्षणमाह]

भा० पुत्रों के आहार और आचारों की चेष्टा के भेद के हेतु को कहते
हैं ॥ जिस प्रकार के आहार और चेष्टा से युक्त स्त्री पुरुष संग करें उन
का पुत्र भी वैसा उत्पन्न है ॥ ६३ ॥ (समुपेयातां संयोग करें)

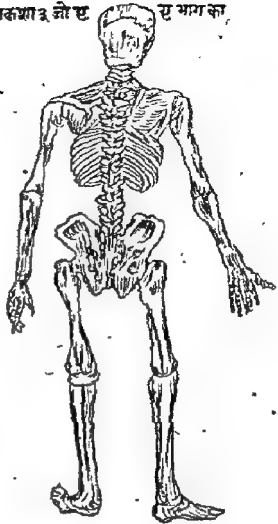
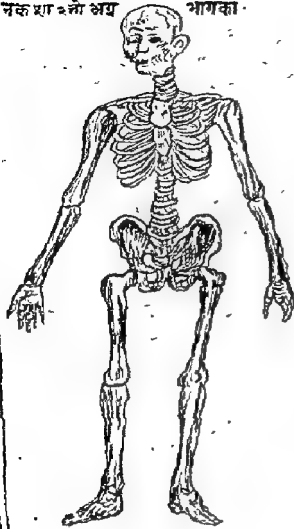
[अनन्तर गर्भ का लक्षण कहते हैं]

नक्षत्र २ जो अग्र

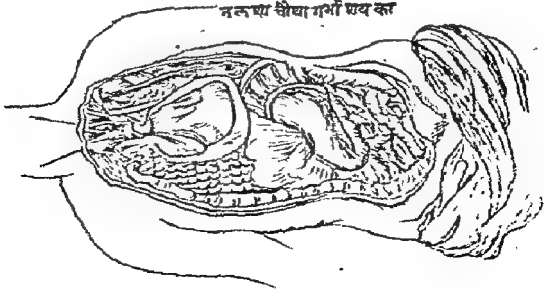
भाग का

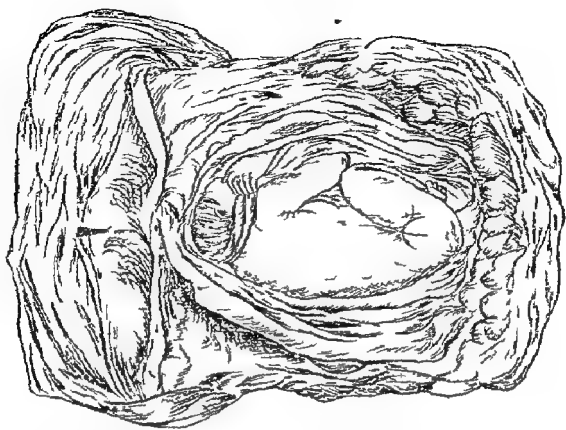
नक्षत्र ३ जो पृ

ष्ठ भाग का

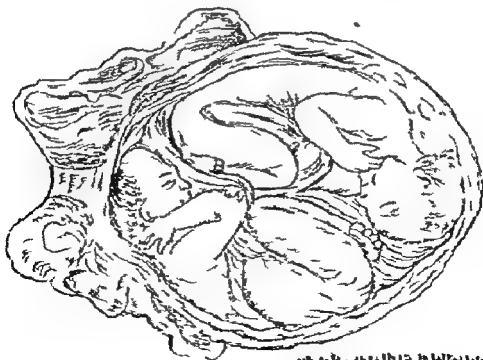


नक्षत्र ४ जो गर्भ का





नकशा ६ गर्भस्थानीय १ बालक का दर्शन



नकशा ७ गर्भस्थानीय २ बालक का दर्शन

गर्भाशयगतं शुक्र मूर्तवत् जीव संज्ञकः ॥ प्र
कृतिः सविकारा च तत्सर्व्वं गर्भसंज्ञकम् ॥
॥ ६४ ॥ कालेन वर्द्धितो गर्भो यद्यङ्गेपाङ्ग संयु
तः ॥ भवेत्तदा स मुनिभिः शरीरीति निगद्यते ॥ ६५

[अङ्गेपाङ्ग संयुक्तः व्यक्ताङ्गेपाङ्गः]

तस्य त्वङ्गन्युपाङ्गानि ज्ञात्वा सुश्रुतशास्त्रतः ॥
मस्तकादभि धीयन्ते शिष्याः शृणुन यत्नतः ॥ ६६ ॥
आद्य मङ्ग शिरः प्रोक्तं तदुपाङ्गानि कुन्तलाः ॥ त
स्यान्तर्मस्तु लुङ्गं च ललाटं श्रूयुगन्तथा ॥ ६७ ॥

भा०-गर्भाशय में प्राप्त शुक्र और मूर्तवत् उसकी जीव संज्ञा है । और सौ
लहविकार के साथ प्रकृति उन सबकी गर्भसंज्ञा है ॥ ६४ ॥ जब
काल तक बढ़ा हुआ अंग और उपांग से युक्त जब गर्भ होता है तब मुनि
लोग शरीरी ऐसा कहते हैं ॥ ६५ ॥ अङ्गेपाङ्ग से युक्त अर्थात् प्रगट
अङ्गेपाङ्ग वाला ॥ सुश्रुत ग्रन्थ से उसके अंग और उपाङ्गों का ज्ञान
कर मस्तक से कहते हैं हे शिष्यों यत्न पूर्वक सुनो ॥ ६६ ॥
पहिला अंग शिरः कहा है और उसके उपांग के गण हैं ॥ उसके भीतर
मस्तुलुंग अर्थात् भेजा है तथा ललाट और दो भवे ॥ ६७ ॥

नेत्र द्वयं नयोरन्तर्वर्त्तते द्वे कनीनिके ॥ दृष्टिद्वयं
हृष्यागोलौ श्वेतभाणौ च वर्त्मनी ॥ पद्माण्यया
ङ्गे शाङ्गौ च करौ तच्छस्कुली द्वयम् ॥ पालिद्व
यं कपोली च नासिका च प्रकीर्तिता ॥ ६८ ॥

भा०-दो आंखें और उनके बीच में दो पुनलियां हैं ॥ दो दृष्टि दो हृष्यागोल
अर्थात् आंख के भीतर काली गोल दो आंख सफेद कौड़ी दो पलकें दो और

और पलकों के रोवें ॥ ६८ ॥ और ख की नोकें माथे पर की दो हड्डियाँ कान
और उसके दो छिद्र तथा कान की दोनों नोकें और दोगल तथा नाक
ये कही गई ॥ ६९ ॥

श्रोत्राधरो च सूक्ष्मरोऽसुखं तालु हनु द्वयम् ॥ द
न्ताश्च दन्तवेष्टश्च रसना चिवुकङ्गलः ॥ ७० ॥
द्वितीयं मङ्गं ग्रीवा तु यथा मूर्द्धा विधार्यते ॥ तृतीयं
बाहु युगलं तदुपाङ्गन्यथ ब्रुवे ॥ ७१ ॥ तत्रोपरि
मनो स्कन्धौ प्रगण्डौ भवतस्त्वधः ॥ कफो न्युनं
तदधः प्रकोष्ठ युगलन्तथा ॥ ७२ ॥

भा० होंठ और नीचे का होंठ तथा दोनों हीठों के प्रान्त भाग यानि खर-
वाड़ा मुख ताल और दोनों जबड़े ॥ दान्त मसूड़े जीभ ठुडी और गला ॥
॥ ७० ॥ दूसरा अंग गर्दन जिसके द्वारा शिर धारण किया जाता है ॥ तीस-
रा अंग दोनों बाजू उसके उपांग कहते हैं ॥ ७१ ॥ उसके ऊपर दो कन्धे
और नीचे दो प्रगंड अर्थात् कोहनी से लेकर बगल तक बाजू उसके नीचे
कफ से युक्त दो प्रकोष्ठ अर्थात् कोहनी से हाथ के पैंचे तक ॥ ७२ ॥
हाथ के दो पैंचे दोनलवे दो हाथ उनको दस अङ्गुलियां ॥

मणिबन्धौ तले हस्तौ तयोश्चाङ्गुल्यो दश ॥
नखाश्च दश ते स्थाप्या दश च्छेद्याः प्रकीर्तिताः ॥
॥ ७३ ॥ चतुर्थं मङ्गं वक्षस्तु तदुपाङ्गन्यथ ब्रुवे ॥
स्तनौ पुंसस्तथा नार्या विशेष उभयोरयम् ॥ ७४ ॥
यौवनागमने नार्याः पीवरौ भवतः स्तनौ ॥ गर्भ
वत्याः प्रसूताया स्तावेद क्षीर पूरितौ ॥ ७५ ॥

भा० नख दश वेर खने योग्य और दस कान्हे योग्य कहे गये हैं ॥ ७३ ॥

न कशा यहिला १ शाली रक्त भाग का



हृदयं पुराङ्गीकेण सदृशं स्यादधो मुखम् ॥ जा
ग्रतस्तद्विकसति स्वपतस्तु निमीलति ॥ ७६ ॥

आशायस्तत्तु जीवस्य चेतनास्थानमुत्तमम् ।

अतस्तस्मिंस्तमोव्याप्ते प्राणिनः प्रस्वपन्निहि ॥ ७७ ॥

चेतनास्थानमुत्तममिति अयमभिप्रायः ॥ क) ॥

चेतनानां अधिष्ठानं मनोदेहश्च सैन्द्रियः ॥ केश-

लामनस्वाग्रं च मलं द्रव्यगुरोर्विना ॥ ७८ ॥

भा० चौथा अंग छाती उसके उपाङ्ग कहते हैं । दो स्तन पुरुष के तथा
औरत के परन्तु दोनों में यह विशेष है कि ॥ ७४ ॥ यौवन अवस्था के
आगमन में औरतों के स्तन उठे ऊँचे होते हैं ॥ पेटवाली तथा जापेवाली औ-
रत के वही स्तन दुध से भर जाते हैं ॥ ७५ ॥ हृदय कमल के सदृश अधोमुख
हैं । जाग्रत में वह खिलता रहता है और सोने में वह सिकुड़ जाता है ॥ ७६ ॥
वह आशय जीवका चेतना स्थान है । इस हेतु तमोगुण से व्याप्त उस में
प्राणि सोने हैं ॥ ७७ ॥ चेतना स्थान उत्तम ब्रह्म का यह अभिप्राय है कि
॥ (क) ॥ प्राणियों का अधिष्ठान अर्थात् जगह मन और इन्द्रियों के
सहित देह ॥ ७८ ॥

इत्युक्तवता चरकेण सकलं शरीरं चेतनास्थानमुक्तं ।

तदपेक्षया हृदयं विशेषतश्चेतनास्थानमिति ॥ (ख)

कक्षयोर्वक्षसः सन्धी जत्वुराणो समुदाहृते ॥ कक्षे उभे

समाख्याते नयोः स्यातां च चङ्क्षुराणी ॥ ७९ ॥

भा० तथा केशरीम और नखाग्र और द्रव्य गुरों के विना मल यह हैं
इस प्रकार कहने वाले चरक ने संपूर्ण शरीर चेतना स्थान कहा है । उन
की अपेक्षा से हृदय विशेष करके चेतना स्थान है ॥ (ख) ॥

कौंख और छाती के जोड़ को जत्रुणी कहते हैं ॥ दो कौंखें कही गईं । और उनके दो बड़-सण अर्थात् करि प्रदेश का ऊर्ध्वभाग ॥ ७६ ॥
नथा पांचवौं अंग उदर और छठा अंग दोनों पसलियों ।

उदरं पञ्चमज्वाङ्गं षष्ठं पार्श्व द्वयं मतम् ॥
सष्टष्टवंशं षष्ठं तु समस्तं सप्तमं स्मृतम् ॥ ८० ॥
उपाङ्गानि च कथ्यन्ते तानि जानीहि यत्नतः ॥
शोणिताज्जायते स्नीहा वामतो हृदयादधः ॥ ८१ ॥
रक्तवाहि शिराणां समूलं ख्यातो महर्षिभिः ॥
हृदयाद्वामतोऽधश्च फुफ्फुसो रक्तफेनजः ॥ ८२ ॥
अधो दक्षिणतश्चापि हृदयात् यकृतः स्थितिः ॥
तत्तु रज्जक पित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम् ॥ ८३ ॥

भा० पीठ के बाँसके सहित छठा अंग समझना चाहिये और बाकी सब मानवाँ अंग कहा गया है ॥ ८० ॥ उपांगों को कहते हैं उनको यत्न पूर्वक समझे ॥ रुधिर से स्नीहा उत्पन्न हुई हैं बायें तरफ हृदय के नीचे उसको रक्तवाही नसों का मूल महर्षियों ने कहा है ॥ हृदय से बाईं तरफ नीचे रक्त की जाग से उत्पन्न हुवा फुफ्फुस है ॥ ८२ ॥ हृदय के नीचे दाहिनी तरफ यकृत है । वह रक्त से उत्पन्न है और रज्जक पित्त का स्थान है ॥ ८३ ॥

अधस्तु दक्षिणे भगे हृदयात् क्लोम तिष्ठति ॥
जलवाहि शिरामूलं तृष्णाच्छादनं कृन्म मतम् ॥ ८४ ॥
क्लोम तिलकम् एतत्तु वानरक्तजम् ॥ (क) ॥

भा० हृदय से नीचे दाहिनी तरफ यकृत के पास क्लोम है वह जलवाहि नसों का मूल है अर्थात् जोड़ है और तृष्णा का आच्छादन करने वाला है

॥ ८४ ॥ क्लोमतिलक यह घात और रक्त से उत्पन्न है ॥ (क)

[अथ वृद्ध वाग्भटः ।]

रक्ताद निलसंयुक्तात्कालीयकं समुद्भूतं इति ॥

मेदः शोणितयोः साराहृष्कयोर्गुगलं भवेत् ॥ ८५ ॥

तौ तु पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ॥ उक्ताः

सार्द्धस्त्रयो व्यामाः पुंसां मन्त्राणि सूरिभिः ॥ ८६ ॥

अर्द्धव्यासेन हीनानि योषितोऽन्त्राणि निर्दिशेत् ।

उन्दु कश्च कटी चापि त्रिकं वस्तिश्च वङ्गराणां ॥ ८७ ॥

भा० वृद्ध वाग्भट में कहा है ॥ कि रक्त से मिले हुवे वायु से कालीयक की उत्पत्ति । मेद और रक्त के सार से दो वृष्कल ज्वे हैं वे दोनों जठर में रहने वाले मेद को पुष्ट करते हैं सेसा परिडनों ने कहा है ॥ परिडनों ने साहे तीन व्याम पुरुषों की आँतड़ीयाँ कही हैं (व्याम दोनों हाथों के फैलाव की) कहते हैं ॥ ८६ ॥ आधे पैमाने से हीन अर्थात् घेने दो व्याम और तों की आँतड़ियाँ कही गई हैं ॥ उन्दुक कटि त्रिक वस्ति अर्थात् पेड़ वङ्ग-राणा ॥ ८७ ॥

कराडराणां प्ररोहः स्यान् स्थानं तद् वीर्यं मूत्रयोः

स सव गर्भस्याधानं कुर्याद्गर्भाशये स्त्रियाः ॥ ८८ ॥

शङ्खनाभ्याकृत्योर्नित्यावर्तः सा च कीर्तिता ।

तस्यास्तृतीये त्वावर्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ८९ ॥

भा० ये कंडरा अर्थात् बड़ी गग इनके अंदर हैं और शुक्र तथा मूत्र की वह जगह है ॥ और तों के गर्भाशय में वही गर्भका आधान करता है ॥ ८८ ॥ शंख नामकी आकार तीन आवर्तवाली योनि कही गई है । उसके तीसरे आवर्त में गर्भशय्या स्थापन की गई है ॥ ८९ ॥

वृषणी भवतः सारात्कफासृग्भ्यां च मेदसाम् ॥
 वीर्यवाहि शिराधारी तौ मतौ पौरुषा वहौ ॥ ६० ॥
 गुदस्य मानं सर्वस्य सार्द्धं स्याच्चतुरङ्गुलम् ॥ तत्र
 स्युर्व्वलयस्तिष्ठः प्राङ्मावर्त्तनिभास्तु ताः ॥ ६१ ॥
 प्रवाहिणी भवेत्पूर्वा सार्द्धाङ्गुलमिता मता ॥ उ-
 त्सर्जनी तु तदधः सा सार्द्धाङ्गुल सम्मिता ॥ ६२ ॥

भा० मेद के सार और कफ रक्त से वृषण अर्थात् अंडकोश डूबे हैं । वीर्य को धारण करने वाली रणों के आधार और पौरुष को धारण करने वाले कहे गये हैं ॥ ६० ॥ सबके गुदा का मान साढ़े चार अंगुल है ॥ उसमें तीन बलि अर्थात् लपेट शंख के आवर्त्त के समान हैं ॥ ६१ ॥ पहिली बलि प्रवाहिणी नाम है वो डेढ़ अंगुल की कही गई है ॥ उसके नीचे उत्सर्जनी नाम दूसरी बलि है वो भी डेढ़ अंगुल की है ॥ ६२ ॥

तस्याधः सञ्चरणी स्यादेकाङ्गुल समा मता ॥ अ-
 र्द्धाङ्गुल प्रमारां तु बुधैर्गुद मुखं मतम् ॥ ६३ ॥ मलां
 त्सर्गस्य मार्गोऽयं पायुर्देहे विनिर्मितः ॥ पुंसः
 प्रोथो स्मृतौ यौ तु तौ नितम्बौ च योषितः ॥ ६४ ॥
 तयोष्क कुन्दरे स्यातां सक्थिनी त्वङ्ग मष्टमम् ॥
 तदुपाङ्गनि चतुर्मा जानुनी पिण्डिका द्वयम् ॥ ६५ ॥

भा० उसके नीचे संचरणी नाम तीसरी बलि है वो एक अंगुल के समान है । गुदा का मुख आधा अंगुल प्रमारा पंडितों ने कहा है ॥ ६३ ॥ मल के निकालने का मार्ग शरीर में यह गुदा बनाई गई है ॥ जो पुरुष के प्रोथ कहे गये हैं वो औरतों के नितंब अर्थात् चूतड़ कहे गये हैं ॥ ६४ ॥ उनके दो कुंदा हैं और जांघ आठवां अङ्ग है । उसके उपांग कहेते हैं घुटने दो पिंडलियां

जङ्घे द्वे घुगिठके पार्श्वीतले च प्रपदे तथा ॥ पादा
वङ्गुल्यस्तत्र दश तासां नखा दश ॥ ८६ ॥
अथेदं शरीर मपरिणापि येन येन समवायिकारणे नीत्य
द्यते तानि सर्वाख्याह ॥ (क)

अथ दोषाः प्रवक्ष्यन्ते धातवस्तदनन्तरम् ॥ आ
हारादेर्गतिस्तस्य परिणामश्च वक्ष्यते ॥ ८७ ॥
आर्त्तव चाथ धातूनां मलास्तदुप धातवः ॥ आश
याश्च कलाश्चापि मर्माण्यथ च सन्धयः ॥ ८८ ॥

भा० दो जाँघ दो ढक्के दो सट्टियाँ दो नलवे दो प्रपद अर्थात् पाँव के सिरे
दो । पाँव की अँगुलियाँ दस और उनके नाखून दस ॥ ८६ ॥ अनन्तर यह
शरीर और जिन २ के मिलनेसे उत्पन्न होता है उन सबको कहते हैं (क)
॥ अनन्तर दोषों को कहते हैं उसके अनन्तर धातु कहते हैं । आहारादि
कों की गति और उसका परिणाम कहते हैं ॥ ८७ ॥ आर्त्तव अर्थात्
स्त्रीकारज और धातुओं के मल तथा उनकी उपधातु । आशय कला
मर्म और सन्धियाँ अर्थात् जोड़ ॥ ८८ ॥

शिराश्च त्नाद्यवश्चापि धमन्यः कराङ्गरास्तथा ॥
रन्ध्राणि भूरि स्त्रोतांसि जालैः कूर्चीश्च रज्जवः ॥
॥ ८९ ॥ सेवन्यश्चाथ सङ्गताः सीमन्ताश्च तथा
त्वचः ॥ लोमानि लोमकृपाश्च देह एतन्मयो म
तः ॥ ९० ॥

भा० छोटी नसें बड़ी नसें धमनी घोड़ नसें छिद्रें और बहुत से स्त्रोत जाल
ल कूर्व रज्जू ॥ ८९ ॥ सेवनी संघात सीमन्त तथा त्वचा लोम और
लोम कृप इनही से देह बनाया गया है ॥ ९० ॥

[तत्र दोषस्वरूपमाह वाग्भटः]

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥
 विकृताऽविकृतादेहं घ्नन्ति ते वर्द्धयन्ति च ॥ १ ॥
 ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्येर्द्धसंश्रयाः ॥
 वयोऽहोरात्रि मुक्तानां मन्तमध्यादिगाक्रमान् ॥ २ ॥

[दोषशब्दस्य निरुक्तिमाह]

धातवश्च मलाश्चापि दुष्यन्त्ये भिर्यतस्ततः ॥
 वातपित्तकफा एते त्रयो दोषा इति स्मृताः ॥ ३ ॥

भा० उनमें दोषों का स्वरूप वाग्भट कहते हैं । वायु पित्त कफ ये तीन दोष संक्षेप से कहे गये हैं ॥ वे अर्थात् वायु पित्त कफ बिगड़ें जैव शरीर को नाश करते हैं और अविकृत अर्थात् विकार से रहित जैव देह को पुष्ट करते हैं ॥ १ ॥ वे सम्पूर्ण शरीर में फैले जैव भी हृदय नाभिके नीचे वायु और हृदय नाभिके बीच में पित्त तथा हृदय नाभिके ऊपर कफ इस क्रम से रहते हैं ॥ २ ॥ अवस्था दिन रात और भोजन इनके अन्तर्माध्य और आदि इस क्रम से वायु पित्त कफ रहते हैं अर्थात् वृद्धावस्था में वायु तरुण अवस्था में पित्त और बाल अवस्था में कफ इसी प्रकार सायंकाल में वायु मध्याह्न में पित्त और प्रातः काल में कफ, और रात के अन्त में वायु मध्य में पित्त आदि में कफ तथा भोजन करने पर परिपाक अवस्था के अन्त में वायु और मध्य में पित्त और आदि में कफ इस क्रम से रहते हैं ॥ २ ॥

दोष शब्द की निरुक्ति कहते हैं ॥ जिस हेतु धातु और मल जिसके द्वारा दोष का प्राप्त होते हैं अर्थात् बिगड़ते हैं जिस हेतु ये वात पित्त कफ तीन दोष कहे गये ॥ ३ ॥

(दोषा इत्यत्र दुष्य वैकृत्ये इति दुषधातोः । दुष्यन्त्ये भिरिति वाक्ये । अकर्तरि च कारके संज्ञाया मित्य

नेन सूत्रेण करणेऽर्थे घञ् प्रत्ययः ।)
 ते धातवोऽपि विद्वद्भिर्गदिता देहधारणात् ।
 यत आह सुश्रुतः ।

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ॥

धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथेति ॥ ४ ॥

अत्र यथा सङ्क्षेपेनान्वयो बोद्धव्यः । विसर्गादानं वात
 स्यैव । विक्षेपः शीतोष्णादीनां विविधप्रकारेण प्रे
 रणम् । मलाश्च ते रसादीनां मलिनीकरणान्मताः ॥

भा० दोषा यहाँ पर दुष्व वैकृत्यमें हैं इस्से दुष् धातु से दुष्यन्त्येभिरिति
 इस वाक्य में । अकर्तरि जकारके संज्ञायां वस सूत्र से करण अर्थ में घञ्
 प्रत्यय होता है) ॥ उनको विद्वानोंने धातु भी कहा है देह के धारण
 करने से । जिसके सुश्रुत ने कहा है ॥ चांद देने से सूरज लेने से
 और हवा पड़चाने जैसे जगत् को धारण करने हैं वैसे वायु पित्त कफ
 शरीर को धारण करते हैं ॥ ४ ॥

(यहाँ पर यथा संख्या से अन्वय जानना चाहिये । देना लेना वायु
 काही । विक्षेप शीत श्रेष्ठ उष्णादिकों का नाना प्रकार से प्रेरण करना ।
 वे रसादिकों के मलीन करने से मल कहिये ॥)

तत्र वायोः स्वरूपमाह ।

दोषधातुमलादीनां नेता शीघ्रः समीरणः ॥

रजोगुणमयः सूक्ष्मो रूक्षः शीतो लघुश्चलः ॥ ५ ॥

(नेता स्थानान्तरं प्रापयिता । शीघ्रः आशुकारी)

अन्यच्च, उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासवेष्टावेगप्रवर्तनेः ॥

सम्यक् गत्या च धातूनां मिन्द्रियारणञ्च पाट्यैः ॥ ६ ॥

भा० उनमें वायु का स्वरूप कहते हैं) दोष धातु मल इनका लेजाने वा

ला और जल्दी करनेवाला वायु है । तथा रजोगुण स्वरूप सूक्ष्म रूक्ष शीतल लघु चञ्चल यह वायु का स्वरूप है ॥ ५ ॥ नेता अर्थात् दूसरी जगह लेजानेवाला शीघ्र अर्थात् जल्दी करनेवाला) और भी । उत्साह उच्छ्वास अर्थात् सांसलेना निश्वास चेष्टा और वेगोंका प्रवर्तन अर्थात् छींक जंभाई पाद इत्यादि चतुर्दश वेगों की प्रवृत्ति होने और सप्तधातुओं की अच्छी गतिसे तथा इन्द्रियों की पटुता अर्थात् अपने २ विषयों को ग्रहण करने की शक्ति से ॥ ६ ॥

अनुगृह्णात्यविकृतो हृदयेन्द्रियचिन्तकः ॥

रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः ॥ ७ ॥

स्वरो मृदुर्योगवाही संयोगादुभयार्थकः ॥ दाहक

त तेजसा युक्तो शीतरूक्षो मसंप्रयात् ॥ ८ ॥

विभागकरणाद्वायुः प्रधानं दोषसंग्रहे ॥ पक्काश

यकदी सकथि खोतो स्थि स्पर्शनेन्द्रियम् ॥ ९ ॥

स्थानं वातस्य तत्रापि पक्काधानं विशेषतः ॥ १० ॥

को वायुः पित्तवन्नामस्थानं कर्मभेदैः पञ्चविधः ॥

भा० हृदय इन्द्रिय चिन्तको धारण करण करनेवाला विकार रहित वायु देहको धारण करना है ॥ रजोगुण स्वरूप सूक्ष्म शीत रूक्ष लघु और चञ्चल ॥ ७ ॥ तथा स्वर अर्थात् नीरावा कोमल और योगवाही अर्थात् जिसके साथ मिले उसीके गुणों की बढ़ावे तथा संयोग से दोनों अर्थों को करनेवाला ॥ अर्थात् तेजसे मिला ज्ञान दाह को करना है और सेमके मिलनेसे शीत को करना है ॥ ८ ॥ विभाग करनेसे दोषोंके संग्रह में वायु प्रधान है ॥ पक्काशय अर्थात् अन्नके परिपाक का स्थान कमर जांघ सोन हड्डी और स्पर्शनेन्द्रिय अर्थात् जो इन्द्रिय त्वचामें रहती है और जिसे स्पर्श ज्ञान होता है ॥ ९ ॥ ये वात के स्थान हैं उनमें भी विशेष करके पक्काशय वात का स्थान है ॥ एक वायु पित्त

केमानिन्द नामस्थान और क्रिया इन्मेंसे पाँच प्रकार का है ॥ १० ॥

[तेषां वायूनां नामान्याह]

उदानस्तदनुप्राणः समानोऽपानएव च ॥ व्या
नश्चैतानि नामानि वायोः स्थानप्रभेदतः ॥ ११ ॥

[अथोदानादीनां स्थानान्याह]

कण्ठे हृदि तथा धस्तात्कोष्ठवन्हेर्मलाशये ॥
सकलेऽपि शरीरेऽसौ क्रमेण पवनो वसेत् ॥ १२ ॥

भा० उन वायुओं के नाम कहते हैं ॥ उदान उसके पीछे प्राण समान
अपान व्यान स्थान भेदसे वायु के ये नाम कहे गये हैं ॥ ११ ॥ अनंतर उ
दानादिकों के स्थान कहते हैं । उदान कंठ में रहता है और हृदय में प्रा
ण तथा जठररसिकों के नीचे समान और मलाशय में अर्थात् गुदान अथा
न तथा सम्पूर्ण शरीर में व्यान इस क्रमसे बँटता है ॥ १२ ॥

[अथ तेषां कर्माग्याह]

उदानो नाम यस्यूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः ॥ तेन
भाषितगीतादिप्रवृत्तिः कुपितस्तु सः ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वजत्तु गतान्त्रागान्विदधाति विशेषतः ॥ यो
वायुः प्राणनामासौ मुखं गच्छति देहदृक् ॥ १४ ॥
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥

भा० अब उनके कर्म कहते हैं । उदान नाम पवनोत्तम जो ऊपर जाता
है । उसे बोलना गाना इत्यादिमें प्रवृत्ति होती है और वो कोपको प्राप्त
होता ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वजत्तु अर्थात् छाति और बगल की जोड़ के ऊपर के रोगों
को विशेष करके करता है ॥ जो वायु प्राणनाम देह को धारण करने वाला

यह मुख में जाता है ॥ १४ ॥ वह अन्नको भीतर लेजाता है और प्राणोंकी आश्रय करके रहता है ॥

प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान् ॥ १५ ॥

आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः ॥ द्योऽन्नं

पचति तज्जान्श्च विशेषान्विविनक्ति हि ॥ १६ ॥

(तज्जानीत्यादि । अन्नगतान् रसमलमूत्रादीन् पृथक् करोतीत्यर्थः ।)

स दुष्टो वह्निमान्याति सारगुल्मान् करोति हि ॥

पक्वाशयालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम् ॥ १७ ॥

भा० और वह बिगड़ा हुआ प्रायः हिचकी खाँसी इत्यादिक रोगों को करता है ॥ १५ ॥ ज्वरान्निसे मिला हुआ आमाशय और पक्वाशय में आनेजाने वाला समानवायु है वह अन्नको परिपाक करता है और उस अन्नसे उत्पन्नहुवे विशेषोंकी अलग २ करता है ॥ १६ ॥

तज्जान् अर्थात् अन्नमें मिलेहुवे रस मल मूत्र आदिकों की अलग करता है) वह दुष्टहुवा अग्निमान्धा अनिसार गुल्म इन रोगोंकी करता है ॥

पक्वाशय है स्थान जिसका ऐसा यह अपानवायु मल मूत्र शुक्र गर्भ और आर्तव इनकी आकर्षण करता हुआ भी समय पर नीचे करता है अर्थात् निकालता है ॥ १७ ॥

समीरणः शक्नुमूत्र शुक्रगर्भात् चान्यधः ॥ क्रु

ञ्चक्षु कुरुते रोगान् घोरान् वस्ति गुदाश्रयान् ॥ १८ ॥

शुक्रदोषप्रमेहांश्च व्यानापानप्रकोपजान् ॥

कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवाहनो ह्यतः ॥ १९ ॥

स्वेदाऽसृक् श्रावकश्चापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥

गत्यु पक्षे प्रसोक्तं क्षेपनिमेषोन्मेषणादिका ॥ २० ॥
 प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः शरीरिणम् ॥
 प्रस्यन्दनञ्चोदहनं पूरणञ्च विरेचनम् ॥ २१ ॥
 धारणाश्चेति पञ्चैताश्चैषा प्रोक्ता नभस्वतः ॥
 क्रुद्धः स कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् ॥ २२ ॥
 युगपत् कुपिता एते देहं भिन्दुरसंशयम् ॥
 देहं भिन्नं कुर्युर्म्मारयेयुरित्यर्थः ॥ (क)

भा० और वह कुपित हुआ भयंकर प्रेड़ और गुदा के रोगों को करता है ॥
 ॥ २० ॥ तथा शुक्रवेष और प्रमेह रोग को भी करता है । और व्यान अपा
 न के प्रकोप से उत्पन्न होनेवाले रोगों को भी करता है । रक्त धातु को सब ज
 गह पहुँचाने में तय्यार ॥ २१ ॥ और संपूर्ण शरीर में घूमनेवाला तथा
 खिद अर्थात् पसीना और रुधिर को बहानेवाला भी व्यान वायु चलना
 ऊपर होना नीचे होना और आँख का बन्द करना तथा खोलना इत्यादि
 के पाँच प्रकार की चेष्टा करता है ॥ २० ॥
 प्राणियों कि सब क्रिया प्रायः उसी में बन्ध रही हैं अर्थात् वायु के ही स्वाधी
 नहीं । बहुत चलना ऊपर लेजाना मरजाना मलादिकों का निकालना ॥ २१ ॥
 और धारण करना ये पाँच चेष्टा वायु की कही गई हैं । इस वास्ते वह वा
 यु कुपित हुआ सब शरीर में फैले हुए रोगों को करता है ॥ २२ ॥
 और जब ये तीनों वात पित्त कफ एक काल में कोप को प्राप्त हों निःसन्देह
 देह को नाश करते हैं ॥
 देह को भिन्न करते हैं अर्थात् मार डालते हैं ॥ (क)

[अथ पित्तस्य स्वरूपमाह]

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्वगुणोत्तरम् ॥ सरं
 कटु लघु स्निग्धं तीक्ष्णमम्लन्तु पाकतः ॥ २३ ॥

पीतन्निरामम् । (क) ॥ नीलं सामम् । एकं पित्तं वा-
तवन्नामस्थानकर्मभेदैः पञ्चविधम् । (ख) ॥

[तेषां पित्तानां नामान्याह]

पाचकं रज्जकञ्चापि साधकालोचके तथा ॥ भ्रा-
जकञ्चेति पित्तस्य नामानि स्थानभेदतः ॥ २४ ॥

[अथ पाचकादीनां स्थानान्याह]

अग्न्याशये यक्षन् शीन्हे हृदये लोचनद्वये ॥ त्व-
चि सव्वे शरीरेषु पित्तं निवसति क्रमात् ॥ २५ ॥

भा० अनन्तर पित्तका स्वरूप कहते हैं ॥ पित्त उष्ण और द्रव अर्थात्
पिघलने वाला तथा पीला और नीला और सत्व गुण प्रधान ऐसा है ॥
और सर अर्थात् रेचक कड़वा हल्का स्निग्ध अर्थात् चिकना तीखा ।
तथा पाकमें अम्ल होता है ॥ २३ ॥ आम से रहित पित्त पीला होता है
(क) ॥ और आम के सहित पित्त नीला होता है ॥ (ख) ॥

एक पित्त वायुके मानिंद नाम स्थान कर्म इन भेदों से पांच प्रकार का है
॥ उन पित्तों के नाम कहते हैं ॥ पाचक रजक साधक आलोचक औ-
र भ्राजक इस प्रकार स्थानके भेद से नाम कहे गये हैं ॥ २४ ॥

अनन्तर पाचकादिकों के स्थान कहते हैं ॥ अग्न्याशय में पाचक पित्त
और यक्षन् पिल्ली में रजक पित्त तथा हृदय में साधक पित्त और दोनों
नेत्रों में आलोचक पित्त त्वचामे भ्राजक पित्त इस क्रमसे सब शरीर में पि-
त्त रहता है ॥ २५ ॥

[अथ तेषां कर्मायाह]

पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्नि बलवर्द्धनम् ॥ रस-

मूत्रं पुरीषाणि विवेचयति नित्यशः ॥ २६ ॥

पाचकं पित्तं मामपक्वाशयमध्यस्थं षड्विधमाहारं भो-

ज्यं भक्ष्यं चर्व्यं लेह्यं चूष्यं पेयं पचति दोषरसमूत्रपु
रीषाणां पृथक्करोति च । (ख) ॥ तदग्न्याशयस्थ
मेव स्वशक्त्या रसरञ्जनहृदयस्थ कफ तमोप नोदनरू
पग्रहणप्रभा प्रकाशनाभ्यङ्ग-लेपादि पाचनाद्यग्निक
र्मणां विशेषाणां पित्तस्थाना नामनुग्रहं करोति । (ग)
शेषाण्यपि पित्तस्थानानि यकृतस्त्रीहादीनि भागेन
गत्वा तत्र तत्र रसरञ्जनादिकर्मभिरुप करोतीत्यर्थः
॥ (घ) ॥ कथम्भूतं पाचकं पित्रशेषाग्निबल
वर्द्धनम् । शेषा अग्नयः पृथिव्यादिमहामूतगणाः (ङ)

भा० अनन्तर उनके कर्म कहते हैं । पाचक पित्त भोजन किये ज्वे अन्न
का परिपाक करता है । और शेष अर्थात् बाकी अग्नियों के बलको बढ़ा
ने वाला है । तथा प्रतिदिन रस मूत्र मल इनको अलग करता है ॥ २६ ॥

पाचक पित्त आमाशय और पक्वाशय के बीच से रहनेवाला छः प्रकार
के आहारको अर्थात् भोजन करने योग्यको भक्षण करने योग्यको चर्वण
करने योग्यको चाटने योग्यको चूसने योग्यको और पीने योग्यको पकाता है
और दोष रस मूत्र मल को अलग करता है ॥ (क) ॥

वह अग्न्याशय में रहनेवाला पित्त अपनी पाचन शक्ति से रसका रंगना ।
और हृदय में रहनेवाले कफ तथा तमको दूर करना और रूखका गृहण करना
कान्तिका प्रकाश करना तथा अभ्यङ्ग-लेपादिकोंका पाचनादि अग्निकर्म
विशेष पित्त में रहनेवालोंका उपकार करता है ॥ (ख) ॥

बाक्कीयोंको भी अर्थात् यकृत पिल्लि इत्यादिक पित्तके स्थानोंमें जाकर उ
न २ स्थानोंमें रस रञ्जनादिकर्मोंके द्वारा अनुग्रह करना है ॥ (ग) ॥

कैसा है पाचक पित्त शेष अग्नियोंको । शेष ऐसे जो अग्नि अर्थात् पृथि
व्यादि महामूत समुदाय ॥ (घ) ॥ जैसे कि चरक ने कहा है ॥ (ङ)

[यत उक्तं चरकेण ।]

भौमाप्याग्ने यवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभरा इति।
ऊष्माणः अग्नयः ॥ (क) ॥

[यत उक्तं वाग्भटे।]

दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनमिति । (ख)

दोषधातुमलादीनामूष्मेवाग्निरित्यर्थः । (ग) ॥

स्तादि धातुगता सप्त तेषां बलवर्द्धनम् । (घ) ॥

भा० भूमिसम्बन्धि जलसम्बन्धि आग्निसम्बन्धि वायुसम्बन्धि और आकाशसम्बन्धि इस प्रकार पाँच उष्मा अर्थात् अग्नि हैं ॥ (क) ॥

और जैसे वाग्भट में कहा है । दोष धातु मल इत्यादिकों की उष्मा होती है इस प्रकार अत्रेयजी का उपदेश है ॥ (ख) ॥

अर्थात् दोष धातु मल इत्यादिकों की उष्मा ही अग्नि है ॥ (ग) ॥

स्तादि धातु में प्राप्त सात उष्मा उनके बल को बढ़ाने वाला है ॥ (घ) ॥

यथा गृहे स्थापितानि रत्नानि खद्योतवद् दूरभास्वरा
णि तान्यपि दीपज्योतिषा दूरप्रकाशकानि भवन्ति ।
तथा अग्न्याशयस्थ पाचकाग्निनेजसा सर्वे अग्नयो
बलवन्तो भवन्ति । (ङ) ॥

[तथाचं वाग्भटः।]

अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तराणां अधिको मतः ॥ त.

न्मूलास्ते हि न हृषि क्षयवृद्धिक्षयात्मका इति ॥ २७ ॥

भा० जैसे घर में रखे हुए रत्न पट्टीजने के मानिंद दूर से चमकदार मालूम होते हैं । परंतु वो भी दीपक के प्रकाश से दूर तक प्रकाश करने वाले होते हैं । उसी प्रकार अग्न्याशय में रहने वाले पाचक अग्निके नेजसे सब अग्नि बलवान् होती हैं ॥ (ङ) ॥ उसी प्रकार वाग्भट ने कहा है ॥

अन्न का पाक करनेवाला सब पकानेवालों में आर्यान् सब अग्नियों में मुख्य समझा गया है। वही है अर्यान् पक्काशय में रहनेवाला पाचक अग्निही है जब जिनका ऐसेवे अग्नि उसके दृष्टि क्षयसे अर्यान् पाचक अग्निके दृष्टि और क्षयसे दृष्टि क्षय वाले होते हैं ॥ २७॥

ननु पित्तादन्योऽग्निराहोस्विन्यित मेवाग्निरिति सन्देहः । (क) ॥ उच्यते । पित्तस्याष्णादिगुणद्वाराहारापाचनरञ्जनदर्शनादि कर्मणाश्च न खलु पित्तव्यतिरेकेणान्योऽग्निः । तस्मादग्निरूपस्यैव पित्तस्य स्थानभेदात्पाचकरञ्जकसाधकालोचकभ्राजकसंज्ञाः ॥ (ख) ॥

भा० यहाँ पर शंका करते हैं कि पित्तसे अलग अग्नि है या पित्तही अग्नि है इस प्रकार सन्देह है ॥ (क) ॥ इसवांस्ते कहता है । कि पित्त के उष्णादि गुणद्वारा आहारका पाचन और रञ्जन दर्शन इत्यादि कर्मोंसे पित्तके सिवाय दूसरा अग्नि नहीं है ऐसा निश्चय है ॥ तिसहेतु अग्निरूपही पित्तकी स्थानके भेदसे पाचक रंजक साधक आलोचक और भ्राजक ये संज्ञा हैं ॥ (ख) ॥

[तथाच वाग्भटः ।]

पाचकं तिलमानं स्यात् कठिन्यान्नास्य दोषता ।

अनुगृह्णात्यविकृतं पित्तं पाकोष्मदर्शनेः ॥ २८ ॥

क्षुत्तृट् रुचिप्रभामेधा धीशैर्यत्ननुमार्दवैः ॥

पित्तं पञ्चात्मकं न च पक्वामाशयमध्यगम् ॥ २९ ॥

[और वाग्भट में कहा है]

पाचक पित्त तिल प्रमाण है परंतु कठिनता से इसको दोषत्व नहीं है ।

किंतु पाक उष्मा और दर्शन इनसे विकार रहित पित्त का उपकार करना है ॥ २८ ॥ क्षुधा दृष्टा रुचि कान्ति मेधा बुद्धि शूला और शरीर का कीमलपन इनसे पक्काशय और आमाशय के बीच रहनेवाला वह पित्त पंचात्मक अर्थात् पंच महाभूत स्वरूप कहा गया है ॥ २९ ॥

पञ्च भूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयम् ॥

त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मसंज्ञानलशब्दितम् ॥ ३० ॥

पचत्यन्नं विभजते सारकिं दौष्ट्यक तथा ॥ त

वस्थ मेव पित्तानां शेषाणा मप्यनुग्रहम् ॥ ३१ ॥

करोति बलदानेव पाचकं नाम तस्मृतम् ॥

भा० जिस कारण पंच भूतात्मक धर्म होनेपर भी तैजस गुण अधिक वाला है । उस कारण द्रवत्व अर्थात् पिघलाव से रहित जवा पाकादि कर्म से अग्नि कहा गया ॥ ३० ॥ अन्न को पकाता है और उसका सार तथा कीट को अलग करता है । और वही पर रहनेपर रहनेवाले शेष पित्तों पर बल देने के द्वारा अनुग्रह करता है ॥ ३१ ॥ इसे पाचक नाम से कहा गया ॥

(क) ननु यदि पित्ताग्न्योरभेदस्तदा कथं घृतं पित्तस्य शमकमग्निदीपकमिति । तथा मत्स्याः पित्तं कुर्वन्ति न च तेऽग्निदीप्तिकरा इति । तथा पित्ताधिक्यात्तीक्ष्णाऽग्निरित्यपि कथं स्यात् । तथा समदोषः समाग्निश्चेत्यपि चक्षुं न युज्यते । तथा दूर्बस्निग्धमधोगज्ज्व पित्तं वह्निर्लाऽन्यथेति ॥ (ख) ॥

भा० (क) ननु शंका करते हैं कि यदि पित्त और अग्नि एक ही है तब कैसे घृत पित्त का तो शमन करनेवाला और अग्निका दीपन करनेवाला है ।

और वैसेही मछलियाँ पित्तकी करती हैं और आगिको बढ़ानेवाली नहीं हैं। तथा पित्तकी आधिक्यतामें तीक्ष्ण अग्नि भी कैसे होता है। वैसेही समदोष वाला सम अग्नि भी कहना ठीक नहीं है। तथा द्रव स्निग्ध नीचे जानेवाला पित्त है और इसे विपरीत अग्नि है ॥ (ख) ॥

अत्रोच्यते । पित्तमग्नेः सन्तताधिष्ठानम् ॥ (ग) ॥

[तथाचोक्तं तन्त्वान्तरे]

अग्निभिन्नगुरौर्युक्तः पित्तं भिन्नगुरौस्तथा ॥

द्रवं स्निग्ध मधोगच्च पित्तं वह्निरतोऽन्यथा ॥ ३२ ॥

तस्मात्तेजोमयं पित्तं पित्तोष्मायः स शक्तिमान् ॥

स सञ्चरति कुक्षिस्थः सर्वतो धमनी मुखैः ॥ ३३ ॥

स कायाग्निः स कायोष्मा स पक्ता स च जीवनम् ।

अनन्यगतिरित्येवं देहे कायाग्नि रुच्यते ॥ ३४ ॥

भा० यहाँपर कहते हैं। पित्त अग्निके निरन्तर रहने की जगह है। उस तरह पर कहा है तन्त्वान्तर में। अग्नि और गुरोंसे युक्त और पित्त और गुरों से युक्त हैं। जैसे द्रव स्निग्ध और नीचे जानेवाला पित्त और इसे विपरीत अग्नि ॥ ३२ ॥ उस कारण पित्त तेज स्वरूप है ॥ और जो पित्तकी ऊष्मा है वह शक्तिमान् है। वह कोरबमें रहनेवाला धमनी नाड़ियों के मुखसे सब स्थानों में संचार करता है ॥ ३३ ॥ वह शरीर की अग्नि है। वह शरीर की ऊष्मा है वह पाक करनेवाला है और वह जीवन है। तथा एक गति इस प्रकार देहमें कायाग्नि कही गई है ॥ ३४ ॥

(अन्यच्च) वामपार्श्वीश्रितं नाभेः किञ्चित् सोम

स्य मण्डलम् ॥ तन्मध्ये मण्डलं सौख्यं तन्मध्ये

ऽग्निर्य वस्थितः ॥ ३५ ॥ जरायुमान् प्रच्छन्नः का

चकोशस्थ दीपवत् ॥ ३५ ॥

[तथा च मधुकोशे]

(क) द्रवतेजःसमुदायात्मकस्यापि पित्तस्य तेजोभा
गोऽग्निरिति । तेन पित्तमप्यग्नि वन्मन्यते । अतिता
पितायोमोलकवत् । परमार्थतस्तु अग्निः पिताद्वित्र
स्येति सिद्धान्तः ॥

भा० औरसी । नाभिके घाम पार्ष्वके आश्रित होवा सा सोम का मंडल है
। उसके बीचमें सूर्यका मंडल है और उसके बीचमें अग्नि रहता है ॥ ३५
जरायु मात्र में ढका हुआ है काँचके कोशके भीतर रहनेवाले दीपक के मानि
द ॥ ॥ उत्तरह पर कहा है मधुकोशमें ॥

(क) द्रव और तेज इनके समुदाय स्वरूपवाले पित्तका तेजोआग अग्नि हैं ।
निस्से पित्तभी अग्निके मानिंद माना जाता है । बड़न तपाये हुवे लोहके
गोलेके मानिंद । परमार्थ से तो अग्नि पित्तसे अलग ही है । यह सिद्धान्त
है ॥ (क) ॥

[अतस्वाह रसप्रदीपे]

जाठरो भगवानग्नि रीश्वरोऽन्नस्य पाचकः ॥ सौ

दमा द्रसानाऽऽददानो विवक्तुं नैव शक्यते ॥ ३६।

नाभि मध्ये शरीरस्य विशेषात्सोममण्डलम् ॥

सोममण्डल मध्यस्थं विद्यात्सूर्यस्य मंडलम् ३७

प्रदीपवत्तत्र नृणां स्थितो मध्ये हुताशनः ॥ सूर्यो

दिवि यथा तिष्ठं स्तेजोयुक्तैर्गमस्तिभिः ॥ ३८ ॥

भा० इसवास्ते रसप्रदीप में कहा है ॥ ऊपर में रहनेवाला भगवान् अग्नि
अन्नका पाक करनेवाला ईश्वर सूक्ष्म भावसे रसोंको लेनेवाला है परन्तु
विशेषकरके कहनहीं सके ॥ ३६ ॥ शरीर की नाभिके बीचमें विशेषकर

के चन्द्रमंडल हैं । और चन्द्रमंडल के बीचमें रहनेवाला सूर्यमंडल जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ दीवों के मानिंद मनुष्यों के बीचमें अग्नि रहता है । जैसे सूर्य आकाशमें रहकर तेजसे युक्त ऐसी किरणों से सब जंगल और नदियों को सुखाना है ॥

विशोऽगति सर्वाणि पल्वलानि सरांसि च ॥ तद्
च्छरीरिणां भुक्तं ज्वलनो नाभि माश्रितः ॥ ३८ ॥ ३९
मयूरेवैः पचते क्षिप्रन्नानाव्यञ्जन संस्कृतम् ॥
स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रः प्रमाणातः ॥ ४० ॥

भा० वैसेही नाभिके आश्रित अग्नि अनेक प्रकार के व्यञ्जनों से संस्कार कि ये जैव मनुष्यों के भोजन किये जैव को किरणों से पकाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बड़े शरीर वाले जीवोंमें जल बराबर रहता है । और छोटे शरीर वाले जीवोंमें तिल प्रमाण रहता है ॥ ४० ॥

द्रव्यकायेषु सत्त्वेषु निलमात्रः प्रमाणातः ॥ ४० ॥
कामिकीट पतङ्गेषु बालमात्रोऽवतिष्ठत इति ॥

[पुनः प्रकृत मनुसरति]

रञ्जकं नाम यत्पित्तं तद्रसं शोणितं नयेत् ॥ यत्तु
साधकसंज्ञं तत्क्षुब्धार्द्र बुद्धिं धृतिं स्मृतिम् ॥ ४१ ॥
धृतिं मेधां यदालोचकं संज्ञं तद्रूपग्रहण कारणम् ॥

भा० तथा कामिकीट पतङ्ग इनमें बाल बराबर रहता है ॥
॥ फिरसे उसको कहते हैं ॥

जो रंजक नाम पित्त है वह रसका रुधिर बनाना है । और जो साधक नाम पित्त है वह बुद्धि धृति स्मृति को करता है ॥ ४१ ॥ धृति अर्थात् मेधा । तथा जो आलोचक नाम पित्त है वह रूपके ग्रहण करने का कारण है ॥

भ्राजकं कान्तिकारी स्यात्त्रेयाभ्यङ्गनादि पाचकम् ॥ ४२ ॥

[अथ श्लेष्मस्वरूपमाह]

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥

तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥ ४३ ॥

(क) एकः श्लेष्मा वातपित्ताविव नामस्थानकर्मभेदैः पञ्चविधः । (क) ॥

[अथ श्लेष्मणां नामान्याह]

कफस्यैतानि नामानि क्लेदनश्चाव लम्बनः ॥ र

सनः स्नेहनश्चापि श्लेष्मणाः स्थानभेदतः ॥ ४४ ॥

भा० और भ्राजक कान्तिका करनेवाला है तथा लेप और अभ्यंग आदियों का पाचक है ॥ ४२ ॥ अनन्तर श्लेष्मा का स्वरूप कहते हैं ॥ (श्लेष्मा) कफ श्वेत है भारी है और स्निग्ध तथा फिस्लहट वाला है और शीतल तथा तमोगुण अधिक है मधुर और विदग्ध हुआ लवण हो जा है ॥ ४३ ॥ (क) एक कफ वात पित्तों के मानिंद नाम स्थान और कर्म इन भेदों से पांच प्रकार का है ॥

[अनन्तर कफ के नाम कहते हैं]

स्थानों के भेद से कफ के ये नाम हैं ॥ क्लेदन अवलम्बन रसन स्नेहन और श्लेष्मणा ॥ ४४ ॥

[अथ क्लेदनादीनां स्थानान्याह]

आमाशयेऽथ हृदये कण्ठे शिरसि सन्धिषु ॥ स्था

नेष्वपि मनुष्याणां श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥ ४५ ॥

भा० अनन्तर क्लेदादिकों के स्थान कहते हैं ॥ आमाशय में क्लेदन हृदय में अवलम्बन कंठ में रसन शिर में स्नेहन और सन्धियों में श्लेष्मणा इस क्रम

से मनुष्यों के इन स्थानों में श्लेष्मा रहना है ॥ ४५ ॥

(क) दोषाणां सकलशरीर व्यापिनामपि पञ्चषष्ठ
स्थानानीति बाहुल्याभिप्रायेणोक्तानि ॥ (क) ॥

[तथाच वाग्भटः]

इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्येकी कृतात्मनाम् ।
व्यापिनामपि जानीयान् कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥
इति ॥ ४६ ॥ चरकश्च । ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्यो
रधेमध्योर्द्ध संश्रया इति ॥

भा० (क) सम्पूर्ण शरीर में फैले हुवे भी दोषों के पाँच १ स्थान आधिक्य
भिप्रायसे कहे गये हैं । उसी तरह पर कहा है वाग्भटने । इस प्रकार
प्रायः करके सब शरीर में फैले हुवे और मिले दोषों के स्थान और अलग
अलग कर्म इनको जानें ॥ ४६ ॥ इस प्रकार चरक ने भी कहा है ॥
वे सम्पूर्ण शरीर में फैले हुवे भी हृदय नाभिके नीचे और बीच में तथा
ऊपर रहते हैं ॥

[अथ तत्तत्स्थानगतस्य श्लेष्मणाः कर्माण्याह]

क्लेदनः क्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्या पराण्यपि ॥ ४७ ॥

अनुगृह्णाति च श्लेष्मस्थान्युदक कर्मणा ॥ ४८ ॥

(क) अयमर्थः क्लेदोऽन्नं क्लेदयति तेन संहतमन्नं मे
हं प्राप्नोति । अपराण्यपि श्लेष्मस्थानानि हृदयादीनि
॥ मार्गिण गत्वा तत्र तत्र हृदयावलम्बन संधारण र
स ग्रहण समस्तेन्द्रिय तर्पण सन्धिसंश्लेषणाद्युदक

कर्मभिरनुगृह्णाति उपकरोति ॥ (ख) ॥ तथाच
रसयुक्तात्मवीर्येण हृदयस्थावलम्बनम् ॥ त्रिक
सन्धारणं चापि विदधात्यवलम्बनः ॥ ४८ ॥

भा० अनन्तर उन २ स्थानों में प्राप्त कफ के कर्मों को कहते हैं । तैदन
कफ अन्नको आर्द्र करता है और अपनी शक्ति से दूसरे श्लेष्म स्थानों के
भी उदक कर्म के द्वारा अनुग्रह करता है ॥ ४७ ॥ यह अर्थ है कि तैद
न अन्नको गीला करता है उसे दृढ़ ज़वाभी अन्न अलग हो जाता है ॥
और भी श्लेष्म स्थान अर्थात् हृदयादिक ॥ मार्ग से वहाँ वहाँ पर जाकर
हृदय का अवलम्बन संधारण रसग्रहण सम्पूर्ण इन्द्रियों का तर्पण अर्था
त् नृप्त करना और संधियों का अच्छे प्रकार मेलन इत्यादिक उदक क
र्म से अनुग्रह करता है ॥ (ख) ॥

और भी । हृदय में रहनेवाला अवलम्बन कफ रस से युक्त अपने सामर्थ्य
से अवलम्बन और त्रिक अर्थात् पीठकी हड्डी का नीचला हिस्सा उसका
संधारण अर्थात् पकड़ना भी करता है ॥ ४८ ॥

(क) (त्रिकं शिरोवाङ्मह्यसन्धिः)

उभावपि ततः सौम्यौ निष्ठतश्चान्तिके यतः ॥

रसान्वितौ हि जानीतो रसनारसनौ समौ ॥ ४९ ॥

(रसना रसनेन्द्रियं रसनः कण्ठस्थकफः ।)

स्नेहनः स्नेहदानेन समस्तेन्द्रियतर्पणः ॥ श्ले

ष्मणः सर्वसन्धीनां संश्लेषं विदधात्यसौ ॥ ५० ॥

भा० (क) त्रिक अर्थात् शिर और दोनों भुजाओं की सन्धि जिसे कि रो
म्य दोनों समीप में रहते हैं निस हेतु समान रसना अर्थात् जिह्वा और रसन
अर्थात् कण्ठ में रहनेवाला कफ ये दोनों रस से युक्त होते हैं ॥ ४९ ॥
(रसना अर्थात् रसनेन्द्रिय रसनः अर्थात् कण्ठ में रहनेवाला कफ ।)
स्नेहनकफ स्नेह दान से अर्थात् तरावट देने से सम्पूर्ण इन्द्रियों का नृप्त

करता है ॥ श्लेष्मरा कफ सब संधियों को जोड़ता है ॥ ५० ॥

[अथ धातुशब्दस्य निरुक्तिमाह]

रग्ने सप्त स्वयं स्थित्वा देहन्दधनियन् नृणाम् ॥

रसास्त्वङ्मांस मेदोस्थिमज्जा शुक्राणि धानवः ॥ ५१ ॥

धानव इति धाधातोस्तु प्रत्ययः । (क) ॥

[अथ धातूनां कर्मभारवाह]

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणा पूरणो ॥ गर्भो

नृपादश्च कर्मोणि धातूनां कथितानि हि ॥ ५२ ॥

भा० [अनन्तर धातुशब्दकी निरुक्ति कहते हैं]

रस रुधिर मांस मेद अस्थि मज्जा और शुक्र ये सात बाप रहकर मनुष्यों की देहको धारण करते हैं ॥ ५१ ॥ धानव इसमें धा धातु से तु प्रत्यय होता है ॥ अनन्तर धातुओं के कर्म कहते हैं ॥ प्रीणन अर्थात् तृप्त करना जीवन अर्थात् प्राणका धारण करना लेप आर्द्र करना धारण करना भरना और गर्भका उत्पन्न करना ये कर्म क्रमके साथ अर्थात् रसका प्रीणन रुधिर का जीवन मांसका लेप मेदका स्नेह अस्थिका धारण मज्जा का पूरण और शुक्रका गर्भ उत्पन्न करना इस प्रकार कहे गये हैं ॥ ५२ ॥

[तत्र रसशब्दस्य निरुक्तिः]

यद्यथा रस धातुर्यस्तनोऽभवदप्यां रसः ॥ स इव

सकलं देहं रसतीति रसः स्तुलः ॥ ५३ ॥

भा० उत्तमें रस शब्दकी निरुक्ति कहते हैं। किजै रस जी रस धातु जिस प्रकार जल का रस डबा जिस हेतु इव के स हेतु स पुरी शरीर को आर्द्र करना है इस वासे रस कहा गया ॥ ५३ ॥

[अथ रसस्य स्वरूपमाह]

सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितोरसः ॥

संतु द्रवः सितः शीतः स्वादुः स्निग्धश्चलो भवेत् ॥ ५४ ॥

(क) सारो यथा गुड़ मधूक पूष्य बुब्बूलत्वग्दरी मूला
दि भवः सारो मदिरा ॥ (क) ॥

[अथ रसस्य स्थानमाह ।]

सर्व्वदेह चरस्यापि रसस्य हृदयं स्थलम् ॥ स

मान मरुता पूर्वं यदयं हृदये द्युतः ॥ ५५ ॥

भा० अनन्तर रस का स्वरूप कहते हैं । अच्छे प्रकार परिपाक हुवे भी
जन कियेका जो सार वह रस कहा गया है । और वह रस द्रव अर्थात्
वह जाने वाला है तथा श्वेत और शीत मधुर स्निग्ध और अस्थिर हो
ता है ॥ ५४ ॥ (क) सार जैसे गुड़ महुवे के फूल बुब्बूल जिसकी की
कर कहते हैं उसकी छाल और बेरीकी जड़ इत्यादिकों से उत्पन्न हुआ
सार अर्थात् मदिरा ॥ (क) ॥

[अनन्तर रसका स्थान कहते हैं ।]

सम्पूर्ण शरीर में धूमनेवाले भी रसका स्थान हृदय है । क्योंकि यहिले य
ह समान वायु के द्वारा हृदय में स्थापन किया गया ॥ ५५ ॥

[अथ रसस्य कर्म्मोपपत्त्याह ।]

आरुह्य धमनीर्गत्वा धातून् सर्वानयं रसः ॥ पु

ष्णाति तदनु स्वीयैर्व्याप्नोति च तनुं गुरौः ॥ ५६ ॥

(क) गुरौः शीत स्निग्ध पोषकत्व गुरौः । (क)

भा० अनन्तर रसका कर्म्म कहते हैं ॥ यह रस चढ़कर धमनियों में जा
के सब धातुओं को पुष्ट करता है उसके पश्चात् अपने गुरों से शरीर में फै
लता है ॥ ५६ ॥ (क) गुरों से अर्थात् शीत स्निग्ध और पोषकत्व गुरों से ।

मन्दबन्धि विदग्धस्तु कड़वांस्त्रो भवेद्रसः ॥ सकु
र्व्याद्दुलान् रोगान् विषकृत्यं करोत्यपि ॥ ५७ ॥

[अथ रक्तस्य स्वरूप माह]

यदा रसो यद्व्याप्ति तत्र रज्जक पित्ततः ॥ रणं पा
कं च संप्राप्य स भवेद्रक्त संज्ञकः ॥ ५८ ॥ रक्तं
सर्व शरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम् ॥ स्निग्धं गुरु
चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥ ५९ ॥

(जीवस्याधार मुत्तम मिति)

भा० मन्दाग्नि से विदग्ध रस होता है अथवा कटु या अम्ल रस होता है
। वह रस चरुत से रोगों को तथा विषके कृत्य को करता है ॥ ५७ ॥

[अनन्तर रक्तका स्वरूप कहने हैं]

जब रस यकृत में अर्थात् कलेजे में जाता है तब वहाँ पर रज्जक पित्त से रंग
और पाक को पाकर वह रस रक्त संज्ञक होता है ॥ ५८ ॥ रक्त सम्पूर्ण
शरीर में रहने वाला और जीवका आधार तथा श्रेष्ठ ॥ और स्निग्ध भा
री अस्थिर और मधुर तथा विदग्ध दुवा पित्तके सदृश होता है ॥ ५९ ॥

[जीवका आधार और उत्तम]

यत आह । जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेष
तः ॥ वीर्यं रक्ते मले यस्मिन् क्षीरो याति क्षयं क्षणा
दिति ॥ ६० ॥ (क) वीर्यं रक्ते मले च शरीरारंभके
वाग् भवेत्तपरिमाणा मिते शुद्धे जीवो वसति ननु दुष्ट
प्रवृत्ते रक्त लावणोपदेशस्य वैपट्यं प्रसङ्गान् पित्त व
द्भवेत् । अम्लं भवेदित्यर्घः ॥ (क) ॥

भा० जैसे कि कहते हैं । जीव संपूर्ण शरीर में रहता है । और शुक्र में

रक्तमें मल में रहता है परंतु जिसके क्षीण होनेसे क्षरण में क्षेयको प्राप्त होना है अर्थात् नाशको प्राप्त होता है उसमें विशेषकरके रहता है ॥ ६० ॥

(क) वाग्भटके कहेहुवे प्रमाण के बराबर शुक्र रक्त और मल ये शरीर के अरंभक हैं। अर्थात् इन्हींसे शरीर जुवा है। इस शुद्ध में जीव रहता है न कि दुष्ट में। क्यों कि वहने में रक्त निकालने के उपदेशको व्यर्थता होगी इसवासे पित्तवत् होता है अर्थात् खटा होता है ॥ (क) ॥

[अथ रक्तस्य स्थानमाह]

यद्वत् स्निग्धा च रक्तस्य मुख्यस्थानन्तयोः स्थितम्।
अन्यत्र संस्थितवतां रक्तानां पोषकं भवेत् ॥ ६१ ॥

[अथ मांसस्य स्वरूपमाह]

शोणितं स्वाग्निना पक्वं वायुना च यनी कृतम् ॥
तदेव मांसं जानीयात्तस्य भेदानपि ब्रुवे ॥ ६२ ॥

भा० अनन्तर रक्त का स्थान कहते हैं ॥ यद्वत् और पिलही रक्त का मुख्य स्थान है ॥ उनमें रहता हुआ और स्थानों में रहने वाले रक्तों का पोषण करने वाला होता है ॥ ६१ ॥

[अनन्तर मांस का स्वरूप कहते हैं]

निज अग्निसे परिपाक किया गया और वायु से गाढ़ा किया गया जो उसी को मांस कहते हैं और उसके भेदोंको भी कहता हूँ ॥ ६२ ॥

(क) शोणितमिति शोणितस्थानगतत्वाद् रस एव
शोणितं संज्ञां लभते। एवमग्रे रसस्यैव मांसादिव्य
पदेशः ॥ [अथ मांसस्य पेशीमाह]

यथार्थं मूष्मणा युक्तो वायुः स्निग्धांसि दारयेत्।

भा० (क) शोणितमिति। रुधिर के स्थानमें जानेसे रसही रुधिर संज्ञाको प्राप्त होता है। ऐसेही आगे रसकेही मांसादिक नाम होते हैं ॥ (क) ॥

[अनन्तर मांसकी पेशी अर्थात् मांसके पिंड कहते हैं]

रीक २ गरमी से युक्त वायु स्त्रियों को फाड़ता है और पञ्चान् मांस में घुसकर पे
णियों को अन्नग करता है ॥ ६३ ॥ अनुप्रविश्य पिशितं पेशी

विभजते तथा ॥ ६३ ॥ (यथार्थं यथा प्रयोजनम्)

[मांसपेशीनां संख्यामाह ।]

मांसपेश्यः सभारव्याना नृणां पञ्च शतानि हि ।

तासां शतानि चत्वारि शाखासु कथितान्यथा ॥ ६४ ॥

कोष्ठे षडुत्तरा षष्टिः कथिता मुनिपुङ्गवैः ॥ ग्रीवा

या ऊर्ध्वगास्तास्तु चतुस्त्रिंशत् प्रकीर्तिताः ॥ ६५ ॥

भा० यथार्थं अर्थात् जेतना चाहिये ॥ मांस के पेशियों की संख्या कहते
हैं ॥ मनुष्यों की मांस पेशी पान्सी कहौ गई हैं ॥ उनके चारसौ अर्थात्
चारसौ मान्सपेशी चार शाखाओं में अर्थात् दोहाथ और दो पाँव इनमें
कही गई हैं ॥ ६४ ॥ और कोष्ठ में छःसठ बड़े मुनियों ने कही हैं ॥
तथा गले के ऊपर जानेवाली चौह चौतीस कही गई हैं ॥ ६५ ॥

(क) ताः शाखागताः । [प्राह ।]

(ख) एकैकस्यान्तु पादाङ्गुल्या तिस्रस्त्रिंशताः पञ्च

दश १५ पादाग्रे दश १० पादोपरि कूर्चसन्निविष्टा दश १०

गुल्फतलयोर्दश १० गुल्फजानुनोरन्तरे विंशतिः २० जा

नुनि पञ्च ५ ऊरौ विंशतिः २० वक्षसोर्दश १० एवमेक ।

स्मिन् सकंथिनि शतं भवन्ति । एतेनेतर सकथिवाह-

च व्याख्यातो ॥ (ख) ॥

भा० (क) योक्त अर्थात् शाखामें प्राप्त । कहते हैं ॥ (क)

(ख) एक पाँव की अंगुलियों में तीन २ मांस पेशी हैं एमे पाँवों अंगुलियों में
नर पन्द्रह १५ हैं । पाँव के किरों में दश १० और पाँव के ऊपर कूर्च अर्थात्

अंगुष्ठ और ऊंगलि के मध्यका ऊपरका भाग उससे मिले हुए दस १० गि
होंके तलुवोंमें दस १० गिहें और घुटनोंके बीचमें बीस २० घुटने में पांच जाँव
में बीस २० बंत्तरा में अर्थात् कमर के नीचेके भागमें दस १० इस प्रकार एक
सकथि में सौ मांसकी पैरी हैं ॥ इसी प्रकार दूसरी सकथि और दोनों सु
जा व्याख्या किये गये ॥ (ख) ॥

[अथ कोष्ठगताः प्राहः ।]

(क) गुदे तिस्रः ३ शेषस्थैका १ सेवन्यामेका १ वृषरा
योर्द्वे २ स्फिजोः पञ्च ५ पञ्च ५ वस्ति मूर्द्धनि द्वे २ उदरे
पञ्च ५ नाभ्यामेका १ पृष्ठोर्द्वे सन्निविष्टा उभयतः पञ्च
५ पञ्च दीर्घा ५ पार्श्वयोः षट् ६ वक्षसि दश १० अक्षकां
सौ प्रतिसमन्तात् सप्त ७ । अक्षको अपु आ इति लोके
अंसौ स्कन्धौ १ हृदि द्वे २ यक्षति २ स्तीन्हि द्वे २ (नासा
यां द्वे २ नेत्रयोर्द्वे २ गण्डयोश्चतस्रः ४) तुण्डके द्वे २ ।

भा० अनन्तर कोष्ठमें प्राप्त ऊँचोंको कहते हैं । (क) गुदामें तीन ३
लिंगमें एक सेवनी अर्थात् लिंगके नीचे जो सीवन हैं उसमें एक १
अण्डकोशोंमें २ चूतड़ोंमें पांच पांच ५।५। पैडके सिरपर दो २ उदरमें
पांच ५ नाभिमें एक १ पीठके ऊपर मिले हुए दोनोंतरफ पांच पांच ५।५
दीर्घ । पसलियोंमें छ ६ वक्षस्थल अर्थात् छातीपर दस १० अक्षक अ
र्थात् असुवा और अंस अर्थात् कन्धा इनके आसपास सप्त ७ । अक्ष
क अर्थात् अपुआ ऐसा लोकमें कहते हैं और अंस अर्थात् कंधे ।
हृदय अर्थात् दिलपर दो २ यक्षन् में दो २ पिलहीमें दो २ मूँडि में दो २
अनन्तर गलेके ऊपर गर्ई ऊँचोंको कहते हैं ।

[अथ ग्रीवावर्द्ध गाः प्राहः ।]

(ख) ग्रीवायाञ्चतस्रः ४ हन्वीरष्टौ ८ कराट्मरौ सक्ता

घण्टिकायामिति यावत् । गले रज्ज्वा १ नालूनि द्वे २ जि
ह्वायामेका १ ओष्ठयोर्द्वे २ नासायां द्वे २ नेत्रयोर्द्वे २ ग
ण्डयोश्चतस्रः ४ कर्णयोर्द्वे २ ललाटे चतस्रः ४ । शि
रस्थेका १ एवं मांसपेश्यः पञ्च शतानि भवन्ति ।

भा० गले में चार ४ दोनों जवाबों में आठ ८ करण मणि अर्थात् घण्टिका
में जिसकी घांटी भी कहते हैं उसमें एक । नालू में दो २ जीभ में एक १
होंठों में दो २ नाक पर दो २ और ख में २ गालों पर चार ४ कर्णों में २ मांस
पर चार ४ सिर में एक १ इस प्रकार मांसकी पेशी अर्थात् पिंड ५०० हैं।

स्त्रीरामपि भवन्त्येताः किन्तु विंशतिरुत्तराः ॥

गर्भाशये गर्भमार्गे योनि च स्तनयो रपि ॥ ६६ ॥

(क) एताः पञ्च शतानि मांसपेश्यः । अधिका विंश
तिर्य्यया । गर्भाशये तिस्रः ३ गर्भच्छिद्र संस्थिता शु
क्रार्तव प्रवेशिन्यस्तिस्रः ३ । योनावभ्यन्तरतो मुखं
श्रिते प्रसृतं द्वे २ योनावेव वहिर्विर्गते स्त्रोतः पार्श्वे द्वे
यस्थिते वर्तुले योनिकर्णिकेति यावत् । द्वे २ स्तनयोः
पञ्च ५ पञ्च ५ यौवने तासां वृद्धिर्भवति ॥ (क) ।

भा० औरतों की मांसकी पेशियां होती हैं । किन्तु बीस २० और होती
हैं । गर्भ में और गर्भ के मार्ग में योनि अर्थात् मग में और स्तनों में भी ॥
॥ ६६ ॥ (क) ये पान्सी मांसकी थैली है और बीस २० अधिक है ।
गर्भाशय ३ गर्भ के छिद्र में रहने वाली और शुक्र आर्तव को प्रवेश कराने
वाली तीन ३ योनिके भीतर की तरफ मुमेलगी फैली हुई दो २ योनिके
ही बाहर निकलने में स्त्रोत के दोनों बगल में रहने वाली गोल जिसकी यो
निकर्णिका अर्थात् योनिके कान कहते हैं सो दो २ और स्तनों में पांच ५

पांच ५ तारुण्य अवस्था में उनहीकी वृद्धि होती है ॥ (क) ॥

पुंसां पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता मेहनमुष्कजाः ॥

स्त्रीणां भावृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गता हिताः ॥ ६७ ॥

(क) अस्यायमर्थः । पुंसां मेहनं मुष्कयोश्च यास्ति
स्त्री मांसपेश्यः ॥ पूर्वमुक्तास्ताः स्त्रीणां मेहनमुष्का
भावान् फलं गर्भशमार्थं आवृत्य तिष्ठन्ति । (क) ॥

भा० पूर्व में पुरुषों के लिङ्ग और अण्डकोश सम्बन्धी जो मांस पेशी क
हीगई वोह भीतर रहनेवाली स्त्रियों के गर्भलाभके अर्थ आवरणा कर
के रहती है ॥ ६७ ॥

(क) इसका यह अर्थ है कि पुरुषों के लिंग और अंडकोशों में जो तीन
मांस पेशी पूर्वमें कहीगई थीं वो मांस पेशी स्त्रियों के लिंग और अंडको
शों के नहोनेसे गर्भलाभके अर्थ आवरणा करके रहती हैं ॥ (क) ॥

[गयदासस्त्वाह ।]

(ख) स्त्रीणां मांसपेश्यस्त्रिभिर्होतानि पञ्चशतानि ।

[तथा च भोजः]

पञ्चपेशी शतान्येव स्त्रीवर्जं विद्धि भूमिय ! अ
तश्च तिस्रो हीयन्ते स्त्रीणां शेषसि मुष्कयोः ॥ ६८ ॥

[अथ मांसपेशीनां कर्मण्यथाह]

भा० गयदास कहने हैं कि । स्त्रियों की मांस पेशी तीन कम पानसो ४६७
होती हैं ॥ (ख) ॥ वैसे ही भोजने कहा है ।] हे राजा स्त्रियोंको
छोड़कर अर्थात् पुरुषोंहीकी मांस पेशी पानसो ही जानों । इसवास्ते स्त्रि
यों की तीन कम हैं लिंगमें और अंडकोशों में अर्थात् इनके नहोनेसे ॥ ६८ ॥

[अनन्तर मांसपेशीके कर्म कहते हैं]

शिरास्त्रायुस्थि पर्वारिण सन्धयश्च शरीरिणाम् ॥

पेशीभिः संवृतान्येवं बलवन्ति भवन्ति हि ॥ ६६

[अथ मेदसः स्वरूपमाह]

यन्मान्सं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते ॥

तदतीव गुरु स्निग्धं बलकार्य्यति वृंहणम् ॥ ७० ॥

[अथ मेदसः स्थानमाह]

मेदोहि सर्व्व भूताना मुदरेष्वस्थि संस्थितम् ॥

अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ ७१

भा० मनुष्यों के शिरा छोटतसें स्नायु बड़ीनसें पर्व पोर सन्धि जोड़ ये सब मांस पेशीयों से लपेटी हुई ही बलवान हैं ॥ ६६ ॥

[अनन्तर मेदका स्वरूप कहते हैं]

जो मांस निज अग्निसे पका हुआ है उसको मेद कहते हैं । वह बड़न भारी है और सचिकरण तथा बल करने वाला और बड़न बढ़ने वाला है ॥ ७० ॥

[अनन्तर मेदका स्थान कहते हैं]

मेद सब जीवों के उदर में अस्थिसे मिला हुआ रहता है ॥ इसीवास्ते प्रायः मेदवालों के उदर में ही वृद्धि होती है ॥ ७१ ॥

[अथास्थ्रः स्वरूपमाह]

मेदो यन् स्वाग्निना पक्वं वायुना चानि शोषितम् ॥

तदस्थि संज्ञां लभते ससारः सर्व विग्रहे ॥ ७२ ॥

[अस्थि का स्वरूप कहते हैं]

जो मेद निज अग्निसे पका हुआ और वायुसे बड़न शोषण किया हुआ होता है वह अस्थि संज्ञाको प्राप्त होता है । और वह सम्पूर्ण शरीर में सार है ॥ ७२ ॥

अभ्यन्तर गतिः सारै र्यथा तिष्ठन्ति सूरुहाः ॥ अ

स्थि सारै स्तथा देहा ध्रियन्ते देहिना द्रवम् ॥७३॥

तस्माच्चिर विनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् ॥ अ

स्थीनि न विनश्यन्ति सारा एतानि सर्वथा ॥७४॥

भा० भीतर रहने वाले सार अर्थात् जिसको साल कहते हैं । उसे जैसे वृक्ष ठहरे रहते हैं । वैसेही अस्थि सार से देही देहों को धारण करते हैं ॥७३॥ तिस कारण देहियों की त्वचा और मांस बहुत काल में नाश होने परभी अस्थियां नाशको नहीं प्राप्त होतीं इससे यह सर्वथा सार हैं ॥ ७४ ॥

[अथास्थ्यां संख्यामाह ।]

शल्य तन्त्रेऽस्थि रवगडानां शतन्त्रय मुदाहृतम् ।

तान्ये वात्र निगद्यन्ते तेषां स्थानानि यानि च ॥७५॥

स विंशतिशतं त्वस्थां शाखासु कथितं बुधैः ॥

पार्श्वयोः श्रोणि फलके वदः पृष्ठोदरेषु च ॥७६॥

भा० [अनन्तर अस्थियों की संख्या कहते हैं]

शल्य तन्त्र में अस्थियों के खंड तीन सौ ३०० कहे गये हैं । उनही को यहाँ पर कहते हैं । और जो उनके स्थान हैं उनको भी कहते हैं ॥७५॥

एक से बीस अस्थियां शाखाओं में पंडितों ने कही हैं ॥ इसलिये में कटि प्रदेश में और वक्षस्थल में तथा पृष्ठ और उदर में भी ॥७६॥

जानीयाद्भिषगे तेषु शतं सप्तदशोत्तरम् ॥ ग्रीवा

यामूर्धगां विद्या हस्थां षष्टि त्रिसंयुतम् ॥७७॥

भा० इन स्थानों में वैद्य एक सौ सतरह ११७ जाने । ग्रीवा में ऊपर की तरफ जाने वाली अस्थियां तिरसठ ६३ जाने ॥ ७७ ॥

[तानि शाखागतान्याह]

(क) एकै कस्यां पादोद्गुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पंच द-
श १५ पादतले पञ्चास्थि शलाकास्तदाधार भूतमेक
मस्थि १ । एवं षट् दं कूर्चं द्वे २ गुल्फे द्वे स्थाष्णी वे
कम् १ जङ्घयोर्द्वे २ जानुन्येकम् १ ऊरवेकं एवं त्रिं
शदेकस्मिन् सविध्यनि भवन्ति ।

एतेनेतर सविध्य बाहू च व्याख्यातौ ॥ (क)

[बहू शाखाश्रोमे प्राप्तां को कहने हैं]

(क) एक एक पैरकी अंगुलियों में तीन तीन ३।३। अस्थियाँ हैं ॥ इस तरह
पर पन्धरह होती हैं । पैरके तलुवे में पांच ५ अस्थियों की शलाका अर्थात्
सलाहियाँ हैं । उनकी आधार भूत एक अस्थि है ।
इस प्रकार छः ६ अस्थियाँ हैं । पूर्वोक्त कूर्चस्थानमें २ टखनों में २ एड़ी
में एक १ गँग में दो २ घुटने में एक १ और जांघ में एक १ इस प्रकार एक
सक्थि में तीस अस्थियाँ हैं । इसी तरह पर दूसरी सक्थि और दोनों
भुजा व्याख्या किये गये ॥ (क) ॥

[अथ पार्श्वदि गतान्याह ।]

(ख) पार्श्वयोः षट् त्रिंशत् ३६ ॥ शिथ्रे भगे च एक
म् १ ॥ निरुन्धयो रेकैकम् २ ॥ त्रिकैकम् १ ॥
वक्षस्यष्टौ ८ ॥ एष्टे त्रिंशत् ॥ ३० ॥ अक्षक संज्ञे द्वे २ ॥

॥ अथ ग्रीवोर्द्ध गतान्याह ॥

भा० अनन्तर पसलियों में प्राप्त अस्थियों को कहने हैं ॥ (ख) दोनों पस-
लियों में छत्तीस ३६ लिंगमें एक १ और भागमें एक १ चूतड़ों में एक एक
१ १ पूर्वोक्त त्रिकस्थानमें एक १ वक्षस्थानमें आठ ८ पीठ में तीस ३०
अक्षक संज्ञा आपुवा में दो २ ।

[अनन्तर ग्रीवाके ऊपर प्राप्त अस्थियोंको कहते हैं]

(ग) ग्रीवायां नव ६ कण्ठनाडां चत्वारि ४ हन्वो रे
कैकम् २ दन्ताः द्वाविंशत् ३२ ॥ नासायां त्रीणि ३
तालुन्येकं १ गण्डयोरेकैकं २ कर्णयोरेकैकम् २ ॥
स्युवोरेकैकम् २ शिरसिषट् ६ एतान्यस्थीनि पञ्च
विधानि भवन्ति ॥ तानि यथा ।

भा० (ग) गलेमें ९ नौ ॥ कंठ , नाड़ीमें चार ४ । जवाड़ोंमें एक एक १।१। दांत बत्तीस ३२ नाकमें तीन ३ तालुमें एक १ गालों पर एक एक १।१। कानोंमें एक एक १।१। भूवोंमें एक एक १।१। सिरमें छ ६ ये अस्थियां पांच प्रकार की होती हैं ॥ वोह जैसे ॥

तरुणगनि कपालानि रुचकानि भवन्ति हि ॥

वलयानीति तानि स्युर्नलकानि च कोनिचित् ॥७८

अक्षिकेश श्रुति घ्राण ग्रीवासु तरुणानि च ॥

शिरःशङ्ख कपोलेषु ताल्वं सं प्रोथ जानुनि ॥७९

कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचिकानि च ॥

पारयोः पार्श्व युगेष्टे वक्षे जठर पादयोः ॥८०॥

भा० तरुण कपाल रुचक और वलये तथा कोई नलक ऐसे पांच प्रकार की होती हैं ॥ ७८ ॥ आँख कान नाक और गला इनमें तरुण होती हैं ॥ शिर शंख अर्थात् माथेपर की अस्थि और गाले वनमें तथा तालु कंधे और कमर इत्यादिक इनमें कपाल अस्थि होती हैं ॥ ७९ ॥ और दाँतोंमें रुचक अस्थि होती हैं । हाथों में और दोनों पसलियों में तथा पीठ में वक्षस्थल में उदर में पावों में ॥ ८० ॥

(जानुनि तम्बांस गण्डतालु शङ्ख शिरः सु कपालानि ॥

(दशान्तुरुचकाः शिरःशङ्ख कपालेषु ताल्वंश प्रोथका
दिषु ॥)

एतानि वलंयानि स्युर्नलकानि ब्रुवेऽधुना ॥ हस्त

पादाङ्गुलितले कूर्चैश्च मणिबन्धके ॥ ८१ ॥

बाहजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नलकानि तु ॥

[अथास्थां प्रयोजनमाह]

मांसान्यन्त्वानि वद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा ॥

अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्य्यन्तिपतन्ति च ॥ ८२ ॥

भा० ये अस्थियां वलय हैं और अव नलकों को कहते हैं ॥

हाथ पैरों की अंगुलियों में और इन्हीं के तलुवे में तथा पूर्वोक्त कूर्चों में और
पाँचों में ॥ ८१ ॥ दोनों बाह जंघा में भी नलक ज्ञाने ॥

[अस्थियों का प्रयोजन कहते हैं]

शिरा और स्नायु से बन्धी हुई मांस और आँतें अस्थियों को अवलंबन कर
के नर्झाती होती हैं न गिरती हैं ॥ ८२ ॥

[अथ मज्जास्वरूपमाह]

अस्थिवत् स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो भवेद्भूतः ॥

यः स्वेदवत् पृथग् भूतः समज्जेत्यभिधीयते ॥ ८३ ॥

[अथ मज्जास्थानमाह]

स्थूलास्थियु विशेषेण मज्जात्वभ्यन्तरे स्थितः ॥

भा० अनन्तर मज्जा का स्वरूप कहते हैं ॥ जो अस्थि निज अग्नि से पकी
हुई है उसका सार अर्थात् सत गाढ़ा होता है । उसमें से जो पसीमे की मा
निंद अलग हुआ वह मज्जा ऐसा कहलाता है ॥ ८३ ॥

अनन्तर मज्जा का स्थान कहते हैं ॥ स्थूलास्थि में भीतर विशेषकरके मज्जा

[अनन्तर ग्रीवाके ऊपर प्राप्त अस्थियोंको कहने हैं]

(ग) ग्रीवायां नव दं कण्ठनाड्यां चत्वारि ४ हन्वो रे
कैकम् २ दन्ताः द्वाविंशत् ३२ ॥ नासायां त्रीणि ३
तालुन्येकं १ गण्डयोरेकैकं २ कर्णयोरेकैकम् २ ॥
स्रुवोरेकैकम् २ शिरसि षट् ६ एतान्यस्थीनि पञ्च
विधानि भवन्ति ॥ तानि यथा ।

भा० (ग) गले में ९ नौ ॥ कंठ , नाड़ी में चार ४ । जवाड़ों में एक एक १।१। दांत वृत्तीस ३२ नाक में तीन ३ तालु में एक १ गालों पर एक एक १।१। कानों में एक एक १।१। भुवों में एक एक १।१। सिरमें छ ६ ये अस्थियां पांच प्रकार की होती हैं ॥ वोह जैसे ॥

नरुणानि कपालानि रुचकानि भवन्ति हि ॥

वलयानीति तानि स्युर्नलकानि च कोनिचिन् ॥७८

अक्षिकेश श्रुति घ्राण ग्रीवासु नरुणानि च ॥

शिरःशङ्ख कपोलेषु ताल्वं सं ग्राथ जानुनि ॥७९

कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचिकानि च ॥

पार्श्वयोः पार्श्व युगे पृष्ठे वक्षे जठर पादयोः ॥८०॥

भा० नरुण कपाल रुचक और वलय तथा कोई नलक ऐसे पांच प्रकार की होती हैं ॥ ७८ ॥ आँव कान नाक और गला इनमें नरुण होती हैं ॥ शिर शंख अर्थात् माँथे पर की अस्थि और गाल इनमें तथा तालु कंधे और कमर इत्यादि इनमें कपाल अस्थि होती हैं ॥ ७९ ॥ और दाँतों में रुचक अस्थि होती हैं । हाथों में और दोनों पसलियों में तथा पीठ में वक्षस्थल में उदर में पावों में ॥ ८० ॥

(जानुनि तस्मांस गण्ड तालु शङ्ख शिरः सु कपालानि ॥

(दशनस्तुरुचकाः शिरः शङ्ख कपालेषु ताल्वंश प्रोथका
दिषु ॥)

एतानि वलंयानि स्युर्नलकानि ब्रुवेऽधुना ॥ हस्त
पादाङ्गुलितले कूर्चैश्च मणिवन्धके ॥ ८१ ॥

बाहुजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नालकानि तु ॥

[अथास्थ्यां प्रयोजन माह]

मांसान्यन्त्रानि वद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा ॥

अस्थीन्यालस्वनं कृत्वा न प्रीर्य्यन्तिपतन्ति च ॥ ८२ ॥

भा० ये अस्थियां बलय हैं और अव नलकों को कहते हैं ॥
हाथ पैरों की अंगुलियों में और इन्ही के नलुवे में तथा पूर्वोक्त कूर्च में और
पोंचे में ॥ ८१ ॥ दोनों बाहु जंघा में भी नलक ज्ञाने ॥

[अस्थियों का प्रयोजन कहते हैं]

शिरा और स्नायु से बन्धी हुई मांस और आँतें अस्थियों को अवलंबन कर
के नखीरा होती हैं न गिरती हैं ॥ ८२ ॥

[अथ मज्जास्वरूप माह]

अस्थिवत् स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो भवेद्भूतः ॥

यः स्वेदवत् पृथग् भूतः समज्जे न्यभिधीयते ॥ ८३ ॥

[अथ मज्जास्थान माह]

स्थूलास्थिषु विशेषेणा मज्जात्वभ्यन्तरे स्थितः ॥

भा० अनन्तर मज्जा का स्वरूप कहते हैं ॥ जो अस्थि निज अग्नि से पकी
हुई है उसका सार अर्थात् सत गाढ़ा होता है । उसमें से जो पसीने की भा
निव अलग हुआ वह मज्जा ऐसा कहलाता है ॥ ८३ ॥

अनन्तर मज्जा का स्थान कहते हैं ॥ स्थूलास्थि में भीतर विशेषकरके मज्जा

ग्रहणी है ॥

[अनन्तर शुक्र की उत्पत्ति कहते हैं]

अथ शुक्रस्योत्पत्तिमाह ।

रसादृक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ॥ मेदसो
ऽस्थिततो मज्जा मज्जः शुक्रस्य सम्भवः ॥ ८४ ॥

(शुक्रस्येति वचनेन शुक्र सम्भव मुक्तम् ।)

(क) ननु मासेन रसः शुक्रो भवति स्त्रीणां चार्तवं भव
तीति । सुश्रुतस्यैव वचनेन रसादेव शुक्रास्यात्पत्ति रुच्य
ते । (ख) तदे तत्कथं सङ्गच्छते इदमेव सन्देहं दूरी
कर्तुमाहारादेर्गतिं परिणामं चाह ॥

भा० रससे रक्त होता है उससे मांस मांससे मेद । मेदसे मज्जा नथ्या
ज्जासे शुक्र की उत्पत्ति होती है ॥ ८४ ॥

(शुक्र का इस वचनसे शुक्र का सम्भव कहा गया)

(क) ननु कोई कहने हैं कि महीने में रससे शुक्र होता है ॥ और स्त्रियों का
आर्तव महीने में होता है ॥ इस प्रकार सुश्रुत के कहने से रससे ही शुक्र की
उत्पत्ति कही है ॥ (क)

(ख) निस्से यह क्योंकर ठीक हो सक्ता है ॥ इसी सन्देह को दूर करने अर्था
आहारदिकों की गति और परिणाम को कहने हैं ॥

यान्यामाशय माहारः पूर्वं प्राणानिले रितः ॥ ।

माधुर्य्यं फेन भावं च षड्रसोऽपि त्वमेतसः ॥ ८५ ॥

(क) आहार इत्यत्र आह्रियते इत्याहारः ॥ अकर्त्तरि
च कारके) संज्ञाया मिति सूत्रेण कर्मणि घञ् ।)

स च षट् विधः ।

नथा च ।

प्रथम प्राण वायुके द्वारा भेजा हुआ आहार आमाशय में जाता है । वह आहार छः रसों से युक्त भी कागसा मधुरता को प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥
(क) (अहार यही पर आहरण किया जाता है इस प्रकार आहार है । अकर्तारि चकारके संज्ञायां इस सूत्र से कर्म में घट्ट होता है ।) वह आहार छः प्रकार का है । उस प्रकार कहा है ।

आहार्यं षट्विधं भोज्यं भक्ष्यं चर्व्यन्तथैव च ॥
लेह्यं चोष्यं तथा पेयं नदुदाहरणानि तु ॥ ८६ ॥
भोज्य मोदन सूपानि भक्ष्यं मोदक मण्डकम् ॥
चर्व्यं चिपिटु धान्यादि रसालादितु लेह्यते ॥ ८७ ॥
चोष्य माम्र फलेष्वादि पीयते पानकं पयः ॥

भा० आहार करने के योग्य छः प्रकार के हैं भोज्य, भक्ष्य, चर्व्य, लेह्य, चोष्य, पेय । उसका उदाहरण कहने हैं ॥ ८६ ॥ चावल दाल इत्यादि भोज्य हैं ॥ और मोदकादिक भक्ष्य हैं तथा चर्व्य निबुवा और लावा इत्यादिक तथा रसालादिक चादे जाते हैं ॥ ८७ ॥ और आम्र फल गन्ना इत्यादिक चोष्य हैं अर्थात् चूसने योग्य हैं । और पानी का पीना तथा दूध पीया जाता है ॥

[आमाशय माह चरकः ।]

नाभिस्तनान्तरे जन्तो राहु रमाशयं बुधा इति ।

[अत्र विशेष माह ।]

नाभेर्वितस्ति मात्रं च कण्ठदेशान् षडङ्गुलम् ॥

भा० आमाशय को चरक कहने हैं । पंडित नाभि और स्तन के बीच में आमाशय को कहने हैं ॥ इसमें विशेष कहने हैं ॥ नाभि से विलम्ब भर कंठ देश से छः अंगुल ॥

उरसंस्तद् विजानीयात् शेषे तु हृदयं मतम् ॥८८॥

उरारक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः ॥

आमाशयस्तु तदधस्तदधो दहनाशयः इति ॥८९॥

(क) (प्राणानिलेरितइति । हृदयाधिष्ठानेन प्राणाना
म्ना वायुना मुखं गतेनान्तः प्रवेशितः ।)

[तथा च सुश्रुतः ।]

भा० उसको उर जानना चाहिये और बाकी को हृदय कहते हैं ॥८८॥
उर को रक्ताशय कहते हैं । और उसके नीचे श्लेष्माशय कहा है । उसके नी
चे आमाशय और आमाशय के नीचे पक्वाशय इस प्रकार कहा है ॥८९॥
(प्राणवायु से प्रेरित अर्थात् हृदय में रहनेवाले प्राण नाम मुख में प्राप्त वा
यु से भीतर किया गया । उस तरह पर सुश्रुत ने कहा है ॥

यो वायुः प्राणानामासौ मुखं गच्छति देहधृक् ॥

सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्नः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥९०॥

(क) क्लेदननामा कफः क्लेदयति क्लेदनात्संहतं भिना-
ति च । [उक्तं च सुश्रुते ।]

क्लेदनः क्लेदयत्यन्नं संहतं च भिनस्यति इति ।

(क) स आहारः षड्रसोऽप्यामाशये माधुर्यं लभते
आमाशयस्थस्य मधुरस्य कफस्य योगात् ॥ (क)

भा० शरीर को धारण करनेवाला जो प्राणनाम वायु मुख में जाता है । वह
अन्न को भीतर करण है और प्राणोंको अवलंबन भी करता है ॥ ९० ॥
(क) क्लेदन नाम कफ आर्द्र करता है और कठिन वस्तु को ढीला करता है ।
[सुश्रुत में कहा है]

क्षेदन अन्नको आर्द्र करना है और कठिन ज्वे को ढीला भी करना है । (क)
 (क) वह आहार पदार्थ वाला भी आमाशय में मधुरता को प्राप्त होता है
 क्यों कि आमाशय में रहनेवाले मधुर कफ के योग से । (क) ॥

[उक्तञ्च श्लेष्म स्वरूपम्]

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतल
 स्तथा ॥ तमोगुणाधिकः स्वादु विदग्धो लवणो भ
 वेदिति ॥ ८१ ॥

(क) फेण भावञ्च लभते जठरानलं तेजसा ।

भा० कफ का स्वरूप कहा है । कफ सफेद है भाग्यी है तर है पिच्छिल
 अर्थात् फिस्लापनवाला है तथा ठंडा है और तमोगुण अधिकवाला है
 तथा मधुर है और विदग्ध जवा लवण होता है ॥ ८१ ॥ तथा,
 (क) जठराग्नि के तेज से फेण भाव को प्राप्त होता है । अर्थात् कागसा
 हो जाता है ॥ (क) ॥

[यत आह वाग्भटः ।]

सन्धुक्षितः समानेन पचन्यामाशय स्थितम् ॥
 औदर्याग्निर्यथा वाह्यः स्थालीस्थं तोयतरादुल
 मिति ॥ ८२ ॥ (क) अथ सं रवाहारः प्राण
 वायुना प्रेरितस्ततः किञ्चित् १ स्वलिप्तः पाचका
 रव्यपित्तोज्ज्वला यत्पक्वोऽन्नरसो भवति ।

भा० जैसा कि वाग्भट ने कहा है । जैसे प्रज्वलित बाह्याग्नि अर्थात्
 लौकिकाग्नि बटुवे में के जल से संयुक्त चावलों को पकाता है ।
 वैसे समान वायु से तेज किया जवा जठराग्नि आमाशय में स्थित अन्न
 को पकाता है ॥ ८२ ॥ (क) अनन्तर वही आहार प्राणवायु से

प्रेरित्वा योडा २ गिरनाइवापाचकारव्य पित्तकी उष्मां से जो पकता है वह स्वदा रस होता है ॥ (क) ॥

उक्तं च । (ख) अथ पाचक पित्तेन विदग्धं चाम्लतां ब्रजेत् । (ग) पाचक पित्तेन पाचक पित्तस्योष्मणा । ततः स एवाहारो नाभि मण्डलाधिष्ठानेन समान नाम्ना वायुना प्रेरितो ग्रहणी मभि नीयते ॥

भा० कहा है । (ख) अन्नान्न पाचक पित्तसे विदग्ध हुवा अम्ल ताको प्रोत्त होता है ॥ (ग) पाचक पित्तसे अर्थात् पाचक पित्तकी उष्मां से । वही वही आहार नाभि मण्डल में रहनेवाले समान नाम वायु से प्रेरित हुवा ग्रहणी में पहुँचाया जाता है ॥ (ग) ॥

[ग्रहणी लक्षण मोह ।]

षष्ठी पित्त धरा नाम या कला परिकीर्तिता ॥ आम पक्काशयां तस्यां ग्रहणी साऽभिधीयते ॥ ६३ ॥

(क) पित्त धरा पाचकारव्य पित्तं यदग्न्याधिष्ठानं तद्वारयति तत्र ग्रहाण्या मामाशय पक्काशय मध्यवर्ति पाचकारव्य पित्ताधिष्ठानेनाग्निनाहारः पच्यते संकटूष्म भवति ॥

[ग्रहणी का लक्षण कहते हैं]

भा० जो छठी पित्त धरा नाम कला कही गई थी । वो उस आमाशय पक्काशय में ग्रहणी ऐसी कही गई है ॥ ६३ ॥ (क) पित्त धरा जो अग्नि के अधिष्ठान पाचक नाम पित्तको धारण करती है ॥ उस ग्रहणी में पक्काशय के बीच रहनेवाला पाचकारव्य पित्त के अधिष्ठान अग्नि के द्वारा जो आहार पकता है वह कटूष्म होता है ॥

तथा च । ग्रहाण्या पच्यते कोष्ठे वह्निना जायते

कटुरिति । अयमर्थः । (ग) आहारो ग्रहणी
कोष्ठवन्हिना ग्रहणीस्थितपाचकपित्तो वन्हिना
पच्यते पच्यमानः स ग्रहणीस्थितस्य कटुरसस्य यो
यात् कटुभवति ॥ (घ) एतदाहारपाके विशेष
माह । शरीरं पाञ्चभौतिकम् । तत्र पञ्चसु भूतेषु
पञ्चाग्नयस्तिष्ठन्ति ।

भा० (ख) वैसेही । ग्रहणी में कोष्ठाग्निसे जो पकता है वह कटु हो
माह । (ग) यह अर्थ है कि आहार ग्रहणी में कोष्ठाग्निसे अ-
र्थात् ग्रहणी में रहनेवाले पाचकपित्तरूपी वन्हीसे पकता है । वह
पकाहुवा ग्रहणी में रहनेवाले कटुरसके योगसे कटु होता है ॥
(घ) इस आहारके पाक विशेष कहने हैं । शरीर पंच भूतसे बना
हुवा है । उन पांचों भूतों में पांच अग्निरहती हैं ।

उक्तं चरकेन भौमाप्याग्नेय वायव्या पञ्चोष्माणः
सनामसाः । पञ्चाहारगुणान् स्वान् स्वान् पार्थिवा
दीन् पचन्त्यनु । (क) अत्रोष्मपदेनाग्निरुच्यते ।
आहारोऽपि पाञ्चभौतिकः तत्र पाचकपित्तस्य
नाग्निनेत्तेजितेन शरीरवर्तिना भूभागाग्निनाहार
वर्तिभूभागः पच्यते । पक्वो भूभागः स्वकीयान् गु-
णानभिबर्द्धयति । एवं

भा० चरकने कहा है । भूमिसंवन्धि जलसंवन्धि अग्निसंवन्धि वायु-
संवन्धि और आकाशसंवन्धि ये पांच उष्मा हैं ॥ पार्थिवादिक
अपने २ पांच आहारगुणोंको पकाने हैं ॥ ६४ ॥ (क) यहाँ पर उष्मा
शब्दसे अग्नि कही है । पकाहुवा पृथ्वीका अंश अपनेगुणोंको बढ़ाता है
इस प्रकार जलादिक के भाग भी पकाने हैं ।

जलादिभागा अपि पच्यन्ते ।

[तथाचसुश्रुते]

पञ्च भूतात्मके देहे आहारः पाञ्च भौतिकः ॥

विपक्वः पञ्चधा सम्यग्गुणान्स्वानभिवर्द्धये
दिति ॥ ६५ ॥

(क) गुण शब्देनात्र गुणिनः पृथिव्यादय उच्यन्ते ।

तेन गुणान् शरीरवर्तिनः पार्थिवादीन् भागानभिव
र्द्धयेदित्यर्थः ।

भा० वैसेही सुश्रुतमें कहा है । पंच भूतवाले शरीरमें पंच भूतसे बना हुआ
आहार पका हुआ पांच प्रकार अच्छीतरह से अपने अपने गुणों को बढ़ा
ना है ॥ ६५ ॥ (क) गुण शब्द से यहाँ पर गुणवाले पृथिव्यादिक क
हे गये हैं । उसे गुणों को अर्थात् शरीर में रहनेवाले पार्थिवादि भागों
को बढ़ाना है ॥

(ख) सव महोरात्रेण पक्व आहारो मिष्टः पटुश्च मधु

रो भवति । अम्लस्त्वम्लो भवति । (ग) कटु तिक्तः

कषायश्च कटुर्भवति । उक्तञ्च,

मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ॥ क

टुतिक्त कषायाणां विपाकी जायते कटुरिति । ६६ ॥

भा० (ख) इस प्रकार दिनरात में पका हुआ मधुर और पटु अर्थात् लव
ण आहार मधुर होता है । तथा अम्ल अर्थात् खट्टा आहार पककर के
खट्टा ही होता है ॥ (ग) और कटु अर्थात् चरपरा तथा तीता और
कस लये पककर कटु होता है ॥

कहा है । मधुर लवण रसका पके क मधुर होता है और कटु तिक्त क पायोंका विपाक प्रायः कटु होता है ॥ ८६ ॥

(क) एवं विपक्वस्याहारस्य सारो निगदिता रसः शेषो ग्रहणीस्थो मलद्रवः मलद्रवस्य जल भागः शिरभिर्नस्ति नीलो मूत्रं भवति । उक्तञ्च ।

आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः ॥

शिरामिस्तज्जलं नीतं वस्ति मूत्रत्वमाप्नुयान् ॥ ८७ ॥

शेषं किदृञ्च यत्तस्य तत्पुरीषं निगद्यते ॥ स

मानवायुना नीतन्ततिष्ठति मलाशये ॥ ८८ ॥

भा० इस प्रकार पके हुवे आहार का सार रस कहा गया है ॥ वाक्नी ग्रहणी में रहनेवाला मला अरक उत्तम मले अरक का जल का भाग शिराओं के द्वारा वस्ति अर्थात् येड़ में पहुँचा हुआ मूत्र होता है ॥ (क) कहा है । आहार का सार रस होता है और सारहीन मल द्रव कहलाता है । शिराओं के द्वारा वह जल वस्ति में पहुँचा मूत्र को प्राप्त होता है ॥ ८७ ॥ और वाक्नी उसका जो किदृह वह मल कहलाता है ॥ समान वायु के द्वारा पहुँचाया गया वह मलाशय में रहता है ॥ ८८ ॥

(ख) तत्र मलाशये नापान वायुना प्रेरितं मूत्रं मेढू

भगमार्गेण । पुरीषं गुदमार्गेण शरीराद्वहिर्याति ।

उक्तञ्च । मूत्रञ्चोपस्थमार्गेण पुरीषं गुदमार्गेणः ॥

अपानवायुना क्षिप्तं वहिर्याति शरीरतः ॥ ८९ ॥

भा० उस मलाशय में अपान वायु से प्रेरणा किया हुआ मूत्र लिंग १ और भग के मार्ग से तथा गुद मार्ग से मल शरीर के बाहर निकलता है ॥ कहा है ॥ लिंग मार्ग से मूत्र और गुद मार्ग से मल अपान वायु से फैका हुआ शरीर से बाहर निकलता है ॥ ८९ ॥

(क) उपस्थः शिथ्रो भगञ्च । रसस्तु समान वायुना
प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीररम्भकस्य रसस्य स्थानं
हृदयं गत्वा तेन सह मिश्रितो भवति । उक्तञ्च ।

रसस्तु हृदयं याति समान मरुतेरितः ॥ स तु व्या
नेन विक्षिप्तः सर्वान् धानून् विवर्द्धयेत् ॥ ८६ ॥

केदारिषु यथा कुल्याः पुष्पानि विविधौषधीः ॥

नथा कलेवरे धानून् सर्वान् वर्द्धयते रसः ॥ १०० ॥

भा० (क) उपस्थ । लिंग और भग । रस समान वायु से प्रेरण किया हुआ
धमनी मार्ग से शरीर का आरंभ करनेवाले रसके स्थान हृदय में जाकर उ
सके साथ मिश्रित होता है ॥ समान वायु से प्रेरित हुआ रस हृदय में जाना
है । वह रस व्यानवायु से फैका गया सब धातुओं को बढ़ाना है ॥
८६ ॥ जैसे खेतों में नाना प्रकार की औषधियों को नहरें पृष्ट कर
ती हैं । वैसेही शरीर में सब धातुओं को रस बढ़ाना है ॥ १०० ॥

(रसस्तु तत्र तत्र त्रिधा विभज्यते ।)

उक्तञ्च चरके । स्थूलः सूक्ष्मस्तन्मलश्च तत्र तत्र
त्रिधा रसः ॥ स्वंस्थूलोऽंशः परं सूक्ष्मस्तन्मलो
याति तन्मलम् ॥ ९९ ॥

(क) अयमर्थः । स्थूलोऽंशः स्वं याति यथास्थितस्ति
ष्ठनि सूक्ष्मरुवंशः परं द्वितीयं धातुं याति
तन्मलः रसादिमलः तन्मलं
शरीररम्भकं तत्र जानुमलं यातीत्यर्थः ।

भा० रसतो उन उन स्थानों में तीन प्रकारसे विभाग किया जाता है ॥
चरक में कहा है । स्थूल सूक्ष्म और उनका मल इस प्रकार उन उन स्था-
नों में रस तीन प्रकार होना है । आप स्थूल अंश रहता है और सूक्ष्म
अंश दूसरी धातु में जाता है तथा उन उन धातुओं के मल शरीर के आ-
रम्भक कफ पित्त प्रस्वेदादि होजाने हैं ॥ २०१ ॥

(क) यह अर्थ है । स्थूल अंश आप होजाना है अर्थात् यथा रि न
रहता है । और सूक्ष्म अंश दूसरी धातु में जाता है । तथा उनका म-
ल अर्थात् रसादियों का मल उनका मल अर्थात् शरीर के आरम्भक
उन २ धातुओं का मल होजाना है ॥

यथा लौकिकाग्नि नेत्रुरसः पच्यते तथा शरीरार- २०
म्भकस्य रसस्याग्नि नाहाररसः पच्यते पच्यमानः
स पञ्चाहोरात्रान् सार्द्धं दण्डमेकञ्च यावत् प्राक्त न
रसधानावेव तिष्ठति । [उक्तं च सुश्रुते ।

(ख) स खलु रसः त्रीणि त्रीणि कलासहस्राणि पञ्च
दशकला एकैकस्मिन्धाना बुपनिष्ठते । अत्र कलानां
विंशतिः मुहूर्तः स च दण्डद्वयान्मकः ।

तथा च भोजः । धातौ रसादौ भज्जान्ते प्रत्येकं क्रमतो
रसः ॥ अहोरात्रान् स्वयं पञ्च सार्द्धं दण्डं च तिष्ठति ॥

॥ २०२ ॥ (क) प्रत्येकमेकै कस्मिन्नित्यर्थः । ततो यथा
पच्यमानादिश्चुरसान्मलो निर्गच्छति । तथा

भा० जैसे लौकिकाग्नि से गन्धकारस पकाया जाता है वैसे शरीर के
आरम्भक रसकी अग्निसे आहार का रस पकाया जाता है ।
पकाहुवा वह रस पांच दिन और डेढ़ घड़ी तक
पहली धातु में ही रहता है ।

पच्यमानादाहार रसान्मलो निर्गच्छन्ति सः कफः ।

भा० सुश्रुतमें कहा है । (ख) वह रस तीन तीन कला सहस्र और पंद्रह कला एक एक धातु में रहता है । यहाँ पर बीस कला का सुहृत् होता है । वह दो घड़ी का होता है । उस तरह पर भोजन कहा है । रस आप क्रमके साथ मज्जा तक हर एक रसादि धातु में पांच दिन डेढ़ घड़ी रहता है ॥ १०२ ॥

(क) प्रत्येक अर्थात् एक एक में । जैसे उस पके झूवे गन्ने के रस से मेल निकलता है । वैसेही पके झूवे आहार के रस से मेल निकलता है । वह कफ है । [उक्तं च सुश्रुते ।]

कफ पित्त मला स्वेषु प्रस्वेदो नखरोम च ॥ नेत्र

विट् चक्षुषः स्निहो धातूनां क्रमशो मलाः ॥ ३॥

(क) स्वेषु मलः कर्णादि श्रोतो मलः स च कफः प्राणानिल प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकं क्षेदनाख्यं कफ गत्वा पुष्पाति ततः सारभूत स्याद्दाहार रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मो भागः शरीरारम्भकं रसं पोषयति सकल शरीराधिष्ठानेन व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः सञ्चरन् पोषणं स्निह न जठरानलोष्म कृतसन्नाय निवारणादिभिर्गुणैः सकलशरीरं पुष्पाति ततः स्थूलो भागः प्राणवायुना प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकस्य रक्तस्य स्थानं गत्वा यद्वत् स्निह रूपं गत्वा तेन सह मिलितो भवति ।

भा० कहा है सुश्रुत में । कफ पित्त और कर्णादि श्रोतों में के मल तथा पसीना नख रोम और नेत्र का मल तथा नेत्र का स्निह ये क्रमसे

धातुओं के मल हैं ॥ १०३ ॥ (क) स्वेषु मलाः अर्थात् कर्णादि स्त्रो-
तों के मल । वह पूर्वोक्त रस धातु का मल कफ प्राण वायु से प्रेरित
हुवा धमनी नाड़ी के मार्ग से जाकर शरीर का आरम्भक लैड नारव्य
कफ को पुष्ट करता है । उसके अनन्तर उस सारभूत आहार के दो भा-
ग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म । उसे सूक्ष्म भाग शरीर के आरम्भक
रस को पुष्ट करता है । और सम्पूर्ण शरीर में रहने वाले व्यान वायु के
द्वारा प्रेरित तथा धमनियों के द्वारा संचार करता हुआ पोषण स्निहन और
जठराग्नि की उष्मा से किये गये सन्नाप के निवारणदि गुणों से सम्पूर्ण
शरीर पुष्ट होता है । और उसका स्थूल भाग प्राण वायु से प्रेरित हुवा
धमनी मार्ग से शरीर का आरम्भक रक्त स्थान में जाकर अर्थात् यक-
न स्त्रीरूप में जाकर उसके साथ मिल जाता है ॥ (क) .

(ख) ततः प्राक्तनस्य रक्तस्याग्निना पुनः पच्यमा-
नः पञ्चाहोरात्रात्सार्द्धं दण्डञ्च यावत् प्राक्तनरक्तं
धातावेव निष्ठति । (ग) ततो यथाग्निना पुनः पुनः
पच्यमानादिद्वु विकारं वारं वारं मलं निर्गच्छति ।
(घ) तथा पुनः पुनः पच्यमानादाहार रसात् प्र-
तिवारं मलं निर्गच्छति । (ङ) तत्र रक्ताग्निना
पच्यमानान्मलं पित्तं निर्गच्छति ।

भा० उसके अनन्तर पहिली रक्ताग्नि के द्वारा फिर से पका हुआ पां-
च दिन और डेढ़ घड़ी तक पहिली रक्त धातु में ही रहना है (ख) ॥
(ग) जैसे उस बार बार पकाने से गन्ने का विकार बार बार मेल नि-
कलता है ॥ (घ) वैसे फिर फिर से पके हुवे आहार रस से
प्रतिवार मल निकलता है ॥
(ङ) उस में रक्ताग्नि के द्वारा पके हुवे रस से मल पित्त निकल-
ता है ॥ (ङ) ॥

(च) तच्च पित्तं समानवायुना प्रेरितं धमनी मार्गेण शरीरारम्भकं पाचकारव्यं गत्वा पुष्णानि ।

(छ) ततः सारभूतस्याहार रसस्य द्वौ भागौ भवतः

स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मो भागो रज्ज्ज्काग्निना पित्तं न स रक्तीकृतः । (ज) शरीरारम्भकं रक्तं व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः सञ्चरन् सकलं शरीरं

गन्तानि रुधिराणि पुष्णानि । (क) ततः स्थूलो भागः व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकानि मांसानि याति ।

(न) ततो मांसाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चा होरात्रात् सार्द्धं दण्डश्च यावन्मांसिष्वेव तिष्ठति । ततः पच्यमानात्तस्मान्मलं निर्गच्छति

भा० (च) वह पित्त समान वायु से प्रेरित हुआ धमनी मार्ग के द्वारा जाकर शरीर का आरंभक पाचक नाम पित्त को पुष्ट करना है ।

(छ) अनन्तर उस सारभूत आहार रस के दो भाग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म । उसमें वह सूक्ष्म भाग रज्ज्ज्काग्नि पित्त से लाल कि या गया । (ज) शरीर का आरंभक रक्त व्यानवायु के द्वारा प्रेरित और धमनीयों के द्वारा सञ्चार करना हुआ सम्पूर्ण शरीर में प्राप्त होने रुधिर को पुष्ट करना है ।

(क) तदनन्तर उसका स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुआ धमनी नाड़ियों के द्वारा शरीर के आरम्भक मांस में जाता है ।

(न) उसके अनन्तर मांस की आग्नि से पुनः पका हुआ पांच दिन और डेढ़ घड़ी तक मांस में ही रहता है ॥

(ठ) तद्व्यान वायुना क्षिप्रं कर्णावागत्य कर्णविडुभ
वति । (ड) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ
भवतः । (ढ) स्थूलः सूक्ष्मश्च ततः सूक्ष्मो भागो
मांसानि पुष्पाति । (ण) ततः स्थूलो भागो व्यान
वायुना प्रेरितो धमनीभिः शरीरारम्भकस्य मेदसः
स्थानमुदरं याति । (त) ततो मेदसोऽग्निना
पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धं दण्डं च याव
न्मेदस्येव तिष्ठति ।

भा० अनन्तर पकेहुवे उससे मल निकलता है ॥ (ट) ॥
(ठ) वह मल व्यानवायु के द्वारा शीघ्र कानों में जाकर कानों का मैल
होजाता है ॥ (ड) और उस सारभूत रस के दो भाग होजाते हैं ।
(ढ) स्थूल और सूक्ष्म । उसका सूक्ष्म भाग मांस को पुष्ट करता है ।
(ण) और स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित ज्ञा धमनीयों के द्वारा
शरीर का आरम्भक मेदका स्थान उदर में जाता है ॥
(त) उसके अनन्तर मेदकी अग्नि से फिर पका हुवा पांचदिन औ
र डेढ़ घड़ी तक मेदमें ही रहता है ॥

(थ) ततः पच्यमानात् तस्मान्मलो निर्गच्छति प्र
स्वेदरूपः । (द) स च शीतः स्नोतस्येव तिष्ठति
शरीरोष्मणा तप्तश्चेतदा व्यानवायुना प्रेरितः शिरा
मार्गैः लोम कूपेभ्यो वर्हिर्यानि ॥ (ध) जिह्वादन्त
कक्षामेहादि मलञ्च मेदो मलमित्येके ।

भा० अनन्तर उस पकेहुवे से प्रस्वेद अर्थात् पसीनारूप मल निकल
ता है । (थ) ॥ (द) वह प्रस्वेद ठंढा हुवा स्नोतों ही में रहता
है । जब शरीर की उष्मा से गरम होता है तब व्यानवायु में प्रेरित

हुवा नसों के मार्गों के द्वारा रस कूप से बाहर निकलता है ॥

(घ) जीभ दाँत काँख लिंग वृत्त्यादिकों का मल मेदका मल है ऐसा कोई कहते हैं ॥

(न) ततः सारभूत रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मो भागः मेदः पुष्पाति उदरे तिष्ठन् व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकारण्य स्थीनि याति ।

(प) ततोऽस्थ्यग्निना पुनः पच्यमानं पच्चाहोरात्रात्सार्द्धं दण्डञ्च यावदस्थिष्वेव तिष्ठति ॥

(भा०) (न) उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म । उसमें सूक्ष्म भाग मेदको पुष्ट करता है । और स्थूल भाग उदर में रहता हुआ व्यानवायुके द्वारा प्रेरित हुवा धमनी नाडियों से शरीरके आरम्भक अस्थियों में जाता है । (प) उसके अनन्तर अस्थि की अग्नि के द्वारा फिरसे पका हुआ पाँच दिन और डेढ़ दंड तक अस्थि में ही रहता है । (फ) अनन्तर पके हवे उससे मल निकलता है ॥

(फ) ततः पच्यमानान् तस्मात् मलो निर्गच्छति ।

(ब) स च व्यानवायुना प्रेरितः शिराभिः मार्गेणागत्याहुर्लियु नखः स्तनौ लोमानि भवन्ति ।

(भ) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मभागो अस्थीनि पुष्पाति ततः स्थूल भागो व्यानवायुना प्रेरितः स्त्रोतो मार्गे मज्जा स्थानानिः स्थूलास्थ्यभ्यन्तराणि याति ॥

भा० (व) वह मल व्यानवायु से प्रेरित हुवा नसोंके मार्ग से आकर अंगुलियों में नख स्तन और रेम होजाते हैं । (भ) और उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म । उसमें सूक्ष्म भाग अस्थियोंको पुष्ट करता है । और उसका स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुवा स्नातमार्ग से मज्जास्थान स्थूल अस्थिके भीतर जाता है ॥

(म) अनंतर मज्जाकी अग्निसे फिर पकाहुवा पाँचदिन और डेढ़ दंड तक मज्जामें ही रहता है अनंतर पकेहुवे उससे मल निकलता है ।

(य) वह व्यान वायु से प्रेरित हुवा नसोंके मार्ग से आँखों में आकर नेत्र का मल और नेत्र का स्नेह हो जाता है ॥

(र) नदनन्तर उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं ॥

(म) ततो मज्जाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरत्रात् सार्धं दण्डश्च यावन्मज्जन्येव तिष्ठति ततः पच्यमानात्तस्मान्मलं निर्गच्छति । (य) तच्च व्यानवायुना प्रेरितं शिरामार्गे नयनयोरगन्त्य नेत्रविट्चक्षुः स्नेहश्च भवति । (र) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः ॥ (ल)

स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मभागो मज्जानं पुष्पाति ततः स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितः धमनीभिः शिराभिश्च शुक्रस्य स्थानं सकलं शरीरं गत्वा शरीरारम्भकेण शुक्रेण सह मिश्रितो भवति ।

भा० (ल०) स्थूल और सूक्ष्म । उसमें सूक्ष्म भाग मज्जाको पुष्ट करता है । और स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुवा धमनी नाड़ियों के द्वारा शुक्र का स्थान सम्पूर्ण शरीर में जाकर शरीर के आरम्भक शुक्र के साथ मिलजाता है ॥

(व) ततः शुक्राग्निना पुनः पच्यते पच्यमाने तस्मिन्मलं नास्ति । (श) सहि सहस्रधा ध्मात सुवर्णवत् । उक्तञ्च । (ष) ।

स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलैः षट्सु रसादिषु ।
षट्सु धातुषु जायन्ते मलानि मुनयो जगुः ॥ १०४ ॥
यथा सहस्रधा ध्माते न मलं किल काञ्चने ॥
तथा रसे मुहुः पक्वे न मलं शुक्रनाङ्गने ॥ १०५ ॥

भा० तदनन्तर शुक्र की आगिसे फिर पकते हैं ॥ उस पके हुए में मल नहीं होता ॥ (व) ॥ (श) वह हजार प्रकार आँच दिये हुए सेने के मानिंद होता है ॥ (ष) कहा है ।
अपनी आगिसे पके हुए छः रसादिकों में मल होता है इस वास्ते छ धातुओं में मल उत्पन्न होता है ऐसा मुनिलोग कहते हैं ॥ १०४ ॥
(जैसे हजार आँच दिये गये सेने में निश्चय करके मेल नहीं रहता । वैसेही बार बार पक के शुक्रत्वको प्राप्त हुए रस में मल नहीं होता ।
॥ १०५ ॥

ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च । (क) ॥ तत्र सूक्ष्मः स्नेहभागः ओजस्तस्य लक्षणा माह ।

ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम् ।
सोमान्मकं शरीरस्य वलपुष्टिकरं मतम् ॥ १०६ ॥

भा० उसके अनन्तर सारभूत रसके दो भाग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म । (क) ॥ उसमें सूक्ष्म स्नेह भाग ओज होता है उसका लक्षणा कहते हैं ॥

ओज सब शरीर में रहनेवाला स्निग्ध अर्थात् सचिक्राण और शीत स्थिर और स्वेत तथा सोमात्मक अर्थात् सोमस्वरूप और शरीर के बल तथा पुष्टि को करनेवाला कहा गया है ॥ १०६ ॥

(बलं चेष्टापाटवम् ।) [तथाच]

चेष्टासु पाटवं यत्तु बलं नदभिधीयते ॥

यत्तु सुश्रुते रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेज
स्तत्तु खलु तदेजस्तदेव बलमिति तेजस्तेजद्रवः । (ख)

अत्रायमभिप्रायः, यस्माद्रसादेजो भवति स रसः
सर्वधातुस्थानगतत्वान्न तद्भातुवन्मन्यत इति सर्व धा
तूनां स्नेहमोजः । (ग)

भा० बल अर्थात् चेष्टा सामर्थ्य । वैसे कहा है । जो चेष्टा में पटुता है
उसको बल ऐसा कहते हैं ॥ जो कि सुश्रुत में कहा है । शुक्र पर्यन्त
रसादि धातुओं का जो शुद्ध तेज है वह ओज और वही बल है । तेज अ
र्थात् तेज का घानी । (ख) ॥ यहाँ पर यह अभिप्राय है कि जिस
रस से ओज होता है वह रस सब धातुओं में प्राप्त होने से उन २ धातुओं
के मानिंद समझा गया है (ग) ॥

क्षीरे घृतमिव तदेव बलमिति । (घ) ॥ तत्कार्य

कारणयो रभेदीय चारात् । (ङ) ॥ अभेदकथनञ्च

चिकित्सैक्यार्थम् । [अन्यच्च]

गुरु शीतं मृदु स्निग्धं सान्द्रं स्वादु स्थिरं तथा ॥

भा० जैसे दूध में घृत, वहीं बल है (घ) ॥ उनके कार्य और कार
णों के भेद नहीं होने से (ङ) ॥ यहाँ पर अभेदकथन चिकित्सा की ए
कार्यता है ॥ [औरभी]

भारी शीत मृदु सिग्ध सान्द्र ऊर्ध्वान गाढा मधुर स्थिर स्वच्छ पिच्छिल
जघ्नात् किसलहटपन और सूक्ष्म ऐसे दशगुण वाला ओज कहा गया
है ॥ १०७ ॥

प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दशगुणं स्मृतम् ॥ १०७ ॥

[चरके तु]

अष्टविन्दु प्रमाणां नदीषद्रक्तं सपीतकम् ॥ अ
ग्निसोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितन्तु तत् ॥ १०८ ॥

[वाग्भटश्च]

ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ॥
हृदयस्यमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम् ॥ १०९ ॥
यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टि पुष्टि बलोदयाः ॥ य
न्नाशे नियतो नाशो यस्मिं स्तिष्ठति जीवनम् ॥ ११० ॥

भा० चरक में तौ । वह आठ बृन्द प्रमाणा और घोडा रक्त पीलाई के स
हित है । क्यों कि अग्नि और सोम स्वरूप होनेसे वह ओज दुर्गा वर्णित
किया गया है ॥ १०८ ॥ वाग्भट ने भी कहा है ॥

शुक्र पर्यन्त रसादि धातुवोंका जो उत्कृष्ट तेज है उसको ओज कहा है
। हृदय में रहता हुआ भी व्याप्त होकर देहकी स्थिति का कारण है ॥
॥ १०९ ॥ जिसके बढ़ने में देहकी तुष्टि और पुष्टि तथा बल इनका उ
दय होता है ॥ तथा जिसके नाशमें अवश्य नाश होजाना है और जि
सको रहने में जीवन होता है ॥ ११० ॥

निष्पद्यन्ते यतो भावौ विविधा देहसंश्रयाः ॥

उत्साह प्रतिभा धैर्य लावण्य सुकुमारताः ॥ १११ ॥

क) तनःस्थूलो भागो रसो मासेन पुंसां शुक्रं मूत्रीणा

त्वात्तर्तव शुक्रञ्च भवति । उक्तञ्च सुश्रुते ।

(खं) एवं मासेन रसः शुक्रो भवति ।

भा० जिसे कि देह में रहनेवाले नाना प्रकारके भाव अर्थात् धर्म वि
शेष ये उत्साह कान्ति धैर्य्य सुंदरता और सकुमारता इत्यादिक प्राप्त
होते हैं ॥ १११ ॥ (क) और उसका स्थूल भाग रस महीने म

र में पुरुष के शुक्र और औरतों के आर्तव अर्थात् मासिक धर्म और
शुक्र भी होता है ॥ (ख) जैसे कि श्रुत में कहा है ।)

इस तरह पर रस महीने में शुक्र होता है ॥

(ग) स्त्रीणाञ्चेति चकारात् स्त्रीणामपि शुक्रं भव

ति । अतएवाक्तं सुश्रुते ।

योषितोऽपि स्ववत्येव शुक्रं पुंसः समागमे ॥

तत्र गर्भस्य किञ्चित्तु करोतीति न चिन्त्यते ॥ ११२ ॥

(क) गर्भस्य शुद्धस्य विद्वतस्य तु गर्भस्य कारणं तद
पि भवति ॥ [यत् उक्तम्]

यदा नाय्याबुपेयतां दृषस्यन्त्यौ कथञ्चन ॥ सु

ञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योऽन्यमनस्थिस्तत्र जायत इति ११३

(ख) एतेन स्त्रीणां सप्तमो धानुरार्तव शुक्र मष्टममिति
बोधितम् ॥ आशयाधिक्यवत् ।

भा० (ग) और स्त्रियों का भी इस चकारसे स्त्रियों के भी शुक्र होता
है ॥ इसीवास्ते सुश्रुत में कहा है ॥ पुरुष के साथ संभोग करने में
औरतें भी शुक्र को छोड़ती हैं ॥ और उसमें छोड़े से गर्भकी करती हैं
इसवास्ते विचार नहीं किया गया है ॥ ११२ ॥

(क) शुक्र गर्भका और विद्वत गर्भका तो कारण वह भी होता है अर्थात्
न शुक्र भी होता है ॥ [जैसा कि कहा है]

जब औरतें मदान्धहूर्द्ध किसी न किसी यत्न से आपसमें मैथुन करती हैं

तव आपसमें शुक्र छोड़ती हैं उसमें अस्थि रहित सन्तान उत्पन्न होती है ।
 ॥ ११३ ॥ (क) इससे औरतोंकी सानवीं धातु आर्तव है आठवीं धातु शुक्र कही गई है ॥ आशय की अधिकता के मानिंद अर्थात् औरतों के जैसे एक गर्भाशय अधिक है वैसेही शुक्रभी आठवीं धातु अधिक है ॥

स्त्रीणां गर्भोपयोगि स्यादार्तवं सर्वं सम्मतम् ॥

तासामपि चलं वर्णं शुक्रं पुष्टिं करोति हि ॥ ११४ ॥

(क) एवं रस एवं केदारकुल्यान्यायेन सर्वान् धातून् पूरयन् मासेन नवदण्डोत्तरेण शुक्रमार्तवं भवतीति सिद्धान्तः ॥ (ख) एवं सति रसाद्रक्तमिति सङ्गतमेव ॥

भा० स्त्रियों के गर्भका उपयोगि आर्तवही यह सबका सम्मत है । उन का शुक्र चल वर्ण और पुष्टि को करता है ॥ ११४ ॥

(क) इस प्रकार रसही रदेन और कुल्या अर्थात् पानी जनेकी छोटी नहर उसके न्यायसे सब धातुओं को भरता हुआ एक महीना और नौ दंड में शुक्र और आर्तव होता है यह सिद्धान्त है ॥

(ख) इस प्रकार होने में जो रससे रक्त ऐसा कहा गया ठीक है ॥

(ग) ततो मांसन्ततो रक्तोत्पत्ते रनन्तरं मांसं जायते

रसादेवेत्यर्थः ॥ (घ) मांसान्मेदः प्रजायत इति ।

मांसादनन्तरं मेदः प्रजायते रसादेवेत्यर्थः ॥

(ङ) मेदसोऽस्थि जायते रसादेवेत्यर्थः ॥

भा० (ग) ततो मांसं । अर्थात् रक्तोत्पत्तिके अनन्तर मांस होता है ॥ अर्थात् रसही से होता है । (घ) मांसान्मेदः प्रजायत इति । अर्थात् रसही से मांस के अनन्तर मेद उत्पन्न होता है ॥

(ङ) और मेदके अनन्तर रसही से अस्थि होती है ॥

(ङ.) मैदसोऽस्थि जायते रसादेवेत्यर्थः । (च) एवं ततो मज्जा अग्रे शुद्ध शुक्रं सम्भवतीत्यर्थः ।

(छ) रसः शरीरे त्रिधा सञ्चरति । तथा चोक्तम्
रसः शरीरे शब्दार्चिर्जलसन्तानवत् त्रिधा ॥
सञ्चरत्यनुरूपोऽयं नित्यमेव हि देहिनाम् ॥

भा० (च) इसी प्रकार उसके अनन्तर मज्जा और अग्रे शुद्ध शुक्र उत्पन्न होता है । (छ) शरीर में रस तीन प्रकार से संचार करता है । वैसे कहा है । प्राणियों के शरीर में रस शब्द सन्तान और अग्नि शिखा सन्तान तथा जल सन्तान के मानिन्द तीन प्रकार वैसे ही वा नित्यही पुरुषों के संचार करता है ।

अस्यायमभिप्रायः । (क) पुरुषास्तीक्ष्णाग्नयो मध्यमाग्नयो मन्दाग्नयश्च भवन्ति । (ख) तत्र तीक्ष्णाग्नीनां स रसः शब्दसन्तानवत् शीघ्रं सञ्चरति । (ग) मध्यमाग्नीनां मर्चिः सन्तानवन्मध्यवेगेन चरति मन्दाग्नीनां जलसन्तानवन्मन्दं चरति ।

भा० इसका यह अभिप्राय है कि । (क) पुरुष तीक्ष्णाग्नि मध्यमाग्नि मन्दाग्नि होते हैं । (ख) उसमें तीक्ष्ण अग्निवाले पुरुषों का वह रस शब्द सन्तान के मानिन्द शीघ्र संचार करता है । (ग) और मध्यमाग्निवाले पुरुषों का अग्नि ज्वालाकी सन्तान के मानिन्द मध्यवेग से धूमता है । तथा मन्दाग्निवाले का जलसन्तान के मानिन्द धीरे चलता है ।

(घ) तेन मासेन रसान् शुक्रं भवतीति । (ङ.) यदुक्तं । तन्मध्यवेगेन चरति । (च) मन्दाग्नीनां जलसन्तानवन्मन्दं चरति तेन मासेन रसः शुक्रं

भवतीति यदुक्तं तन्मध्यमाग्नी नधिकृत्योक्तम् ॥
 (छ) दीप्ताग्नीनान्नु रसः किञ्चिन्न्यूनेन मासेन शुक्रं
 भवति । (ज) मन्दाग्नेः किञ्चिदधिकेन मासेन
 त्रि सिद्धान्नः ॥ (ङ) तर्हि वाजी करण नामौष
 धीनां किं प्रयोजन मित्याह ॥

भा० निस्स महीनेमें रससे शुक्र होता है ॥ (ङ) जो कहा कि वह
 मध्यवेगसे चलता है ॥ (च) मन्दाग्नियों का जल सन्तान के मानि
 द मन्द चलता है ॥ उससे महीने में रस शुक्र होता है ॥ जो कहा वह
 मध्यमाग्नियों को अधिकार करके कहा है ॥

(छ) तीक्ष्णाग्नियों का रस कुछ कम महीने में शुक्र होता है ॥
 (ज) और मन्दाग्नियों का कुछ ऊपर महीने में शुक्र होता है यह सिद्धान्न
 है । (ङ) तो वाजीकरण औषधियों का क्या प्रयोजन है ।
 इससे कहने हैं ॥ (ज) ॥

वाजी करिरायः औषध्यः स्वप्रभाव गुरोश्च्छ्रयान् ॥

(ट) विरेचयन्ति ताः शुक्रं विरेकिद्व्यवचरणम् । वा
 जीकरिरायः याभिः औषधीभिः पुरुषः शुक्राधिक्या
 न् स्त्रीषु वाजीवन् सामर्थ्यं प्राप्नोति ताः वाजीकरिरायः
 स्वप्रभाव गुरोश्च्छ्रयान् ॥

(ड) तत्र काश्चिदौषध्यः स्वप्रभावाधिक्यान् ।

भा० वाजीकरण औषधियां अपने प्रभाव और गुणकी अधिक्यता से
 वो औषधियां विरेचन औषधियों के मानिन्द पुरुष के शुक्र को निकाल
 ले हैं । (ट) वाजीकरिरायः । जिन औषधियों से पुरुष शुक्र की अं-
 धिक्यतासे औरतों में घोंडे के मानिन्द सामर्थ्य को प्राप्त होता

- है । (ठ) वो वाजीकराय अपने प्रभाव और गुणकी अधिकता से ।
 (ड) अर्थात् उनमें कोई औपाधियां अपने प्रभावकी अधिकता से ।
 (ढ) काश्चित् स्वगुणाधिक्यात् । काश्चित् स्वप्रभाव
 गुणाधिक्यात् । (ण) तत्र सङ्कल्पपादलेपविशिष्ट
 कान्तास्पर्शादयः स्वप्रभावाधिक्यात् शुक्रं विरेचयन्ति ।
 (त) घृतक्षीरादयः स्वगुणाधिक्यात् ।
 (थ) स्निग्धत्वादाधिक्यात् माषादयः स्वप्रभाव
 स्निग्धत्वादि गुणाधिक्यात् ॥

भा० (ढ) और कोई अपने गुणकी अधिकता से तथा कोई दोनोंकी
 अधिकता से (ण) शुक्र को निकालती हैं । सजाज् का पैर में लेप
 किया हुआ कान्ता का आलिंगनादिक अपने प्रभावकी अधिकता से
 शुक्र को विरेचन करता है ॥ (त) घृत दुग्धादिक अपने गुणकी अ-
 धिकता से । (थ) और चिकनेयन की अधिकता से माषादिक अ-
 र्थात् उड़द वगैरह अपने प्रभाव और स्निग्धत्वादि गुणों की अधिकता
 से ॥

- (द) वाजीकराय इति बहुवचनमाद्यर्थानुवर्तनम् ।
 (ध) वल्यं संहरां जीवनीय गणादयः तद्वद्दोषव्याः ।
 (न) विरेचयन्ति स्वप्रभाव गुणाधिक्यात् ।
 (य) शीघ्रमेवं रसाद्युत्पादन पूर्वकं शुक्रं जनयित्वा
 प्रवर्तयन्ति ॥ [यन आह]

भा० वाजीकराय है ऐसे बहुवचन पाहिले अर्थ को लौटाने के हेतु
 कहा है । (ध) वल देने योग्य और संहरा अर्थात् शुक्रादिक को
 प्रवर्तित करने वाले जीवनीय गणादिक उनके मानिन्द जानने चाहिये ॥
 (न) विरेचन करती हैं अपने प्रभाव और गुणकी अधिकता से ॥

(प) शीघ्रंही रसादियों के उत्पादन पूर्वक अर्थात् रसादियों को उत्पन्न कर पश्चात् शुक्र को उत्पन्न करके बढ़ाती हैं ॥ [जैसा कि कहा है]

दुग्धं माषाश्च मल्लानः फलमज्जा मलानि च ॥

जनकानि निगद्यन्ते रेचनानि चरेतसः ॥ ११५ ॥

[ननु बालानां कथं शुक्रं न दृश्यत इत्याह]

बालानां शुक्रमस्त्येव किन्तु सौक्ष्म्यात् न दृश्यते ॥

युष्पाराणां मुकुले गन्धो यथा सन्नपि नाप्यते ॥ ११६ ॥

तेषां तदेव तारुर्ये पुष्टत्वा द्यक्तिमेति हि ॥

कुसुमानां प्रफुल्लानां गन्धः प्रादुर्भवेद्यथा ॥ ११७ ॥

भा० दूध उड़द भिलावके फलकी मज्जा और आंवले ये शुक्र के उत्पन्न करनेवाले और रेचन करनेवाले कहे गये हैं ॥ ११५ ॥

प्रश्न) । बालकों के शुक्र क्यों नहीं दिखता । साकहने हैं । बालकों के शुक्र रहना है लेकिन सूक्ष्म होने से नहीं दिखता । जैसे फूलों की कलियों में गंध रहता हुआ भी नहीं मात्सूम होता ॥ ११६ ॥

उन बालकों का वही शुक्र युवावस्थामें पुष्ट होने से प्रगट होता है ॥ जैसे खिले हुए फूलोंमें से गन्ध निकलता है ॥ ११७ ॥

रोमराज्यादयः पुंसां नारीणामपि यौवने ॥

जायतेऽत्र च यो मेदो ज्ञेयो व्याख्यानतः स च ॥

(क) व्याख्यानं यथा पुंसां रोमराजीशमशु प्रभृतयः ।

नारीणान्तु रोमराजीस्तनस्तन्यार्त्तव प्रभृतयः ।

भा० वैसे रोमावल्पादिक पुरुषों के तथा औरतों के भी यौवन अवस्था में निकलते हैं । यहां पर जो मेद है वह व्याख्यान से जानना चाहिये ॥ ११८ ॥ (क) व्याख्यान जैसे पुरुषों के रोमावली श्मशु अर्थात् दाढ़ी

इत्यादिक होते हैं वैसेही औरतों के रोमपंक्ति स्तन दूध आर्त इत्यादिक होते हैं ॥ (ख) पञ्च । वृद्ध का अन्न रस धातु वृद्धि क्यों नहीं करता सो कहते हैं ॥

(ख) ननु, अन्नरसो वृद्धस्य धातुवृद्धिं कथं न करोमीत्याह ।

‘वार्द्धके वर्द्धमानेन वायुना रसशोषणान् ॥ न तथा धातुवृद्धिः स्यात्तत स्तत्रानिलं जयेत् ॥ ११८ ॥’

[अथ शुक्रस्य स्वरूपमाह ।]

शुक्रं सौम्यं सिनं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम् ॥
गर्भबीजं वपुः सारो जीवस्याश्रय उत्तमः ॥ १२० ॥

भा० वृद्धावस्था में बड़े बड़े वायुके द्वारा रस शोषण होने से उस प्रकार धातु वृद्धि नहीं होती तिस कारण उसमें वायु की जीने अर्थात् चानशमन औषधियों का सेवन करें ॥ ११८ ॥

[अमन्तर शुक्र का स्वरूप कहते हैं ।]

शुक्र सौम्य इवेन स्निग्ध और बलपुष्टि को करनेवाला कहा गया है । तथा गर्भका बीज शरीर का सार और श्रेष्ठ जीवका आश्रय अर्थात् स्थान कहा गया है ॥ १२० ॥

[जीवस्याश्रय उत्तम इति आह ।]

जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे नत्न विशेषतः ॥ वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीरो याति क्षयं क्षणान् ॥ १२१ ॥

[अथ गर्भसञ्जनन शुक्रस्य लक्षणमाह ।]

भा० जीवका आश्रय उत्तम इसको कहते हैं । सब शरीर में जीव रहता है परन्तु विशेष करके शुक्र में रक्त में मल में रहता है । क्यों कि जिनके क्षीण होने में क्षण में क्षयको प्राप्त होता है ॥ १२१ ॥

[अनन्तर गर्भको उभन्न करनेवाले शुक्रका लक्षण कहते हैं]

स्फटिकां भद्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च ॥ शुक्र-
मिच्छन्ति कोचितु नैल दौदूनिभञ्च तत् ॥ १२२ ॥

[अथ शुक्रस्य स्थानमाह]

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेत्तरसो यथा ॥ एवं
हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ॥ १२३ ॥

भा० स्फटिक के तुल्य आभावाला और द्रव अर्थात् बहनेवाला तथा स्निग्ध मधुर और मधु ऐसी गन्धवाला होना है। और कोई कहते हैं कि नैल तथा गहनसा शुक्र होता है ॥ १२२ ॥

अनन्तर शुक्रका स्थान कहते हैं। जैसे दुग्धमें घृत और गव्हेके रसमें गुड़ रहता है ऐसीही मनुष्योंके सम्पूर्ण शरीर में शुक्र रहता है ॥ १२३ ॥

(क) अत्र सर्पिर्दृष्टान्तो बह शुक्रेऽल्पमथनेन सर्पिः
शुक्रयोर्लाभान् । इत्तरस दृष्टान्तस्तु स्वल्प शुक्रे
पुंसि अतिपीडनेनेत्तरसस्य शुक्रयोर्लाभान् ॥

[अथ शुक्रस्य क्षरणमार्गमाह ।]

द्यद्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्ति द्वारस्य चाप्यधः ॥

मूत्रस्त्रोत्रपथे शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥ १२४ ॥

भा० (क) यहाँ पर बहून शुक्रवाले पुरुष में थोड़े मथनेके द्वारा घृत और शुक्रका लाभ होनेसे घृतका दृष्टान्त दिया है ॥

और थोड़े शुक्रवाले पुरुष में बहून मथनेके द्वारा इत्तरस और शुक्रका लाभ होनेसे इत्तरसका दृष्टान्त दिया गया है ॥

[अनन्तर शुक्रके निकलनेके मार्ग कहते हैं]

वस्ति द्वारके नीचे रहनी तरफ हो उंगल मूत्र खानके मार्गसे पुरुष का शुक्र निकलता है ॥

[वृद्धवाग्भटोऽप्याह ।]

(क) सप्तमी शुक्रधरा द्यद्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्ति द्वारस्य चाप्यधो मूत्रमार्गमाश्रिता सकलं शरीर व्यापिनी शुक्रं प्रवर्तयतीति ॥ सप्तमी कला ।

[अथ शुक्रक्षरण कारण माह ।]

हृत्स्नदेह स्थितं शुक्रं प्रसन्न मनस स्तथा ॥

स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षा नन्वसम्प्रवर्तते ॥ १२५ ॥

(स्त्रीषु व्यायच्छतः स्त्रीषु रतरूपं व्यायामं कुर्वतः ॥

भा० वृद्धवाग्भट ने भी कहा है ॥ (क) सप्तमी शुक्रको धारण करनेवाली हो उंगल दाहिनी तरफ वस्ति द्वारके नीचे मूत्र मार्गको आश्रय करनेवाली सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई शुक्रको निकालती है । वो सप्तमी कला है ॥

अनन्तर शुक्रके गिरनेका कारण कहते हैं ॥ सम्पूर्ण शरीर में रहने वाला शुक्र प्रसन्नचित्त तथा स्त्री में मैथुनरूप कसरन करनेवालेके भी हर्षसे वह शुक्र निकलता है ॥ १२५ ॥

[स्त्री में व्यायच्छतः अर्थात् स्त्रुतरूप व्यायाम करनेवालेके]

[अन्यच्च ।]

शुक्रं कामेन कामिन्या दर्शनात् स्पर्शनादपि ॥

शब्द संश्रवणात् ध्यानान् संयोगाच्च प्रवर्तते १२६

[अथार्तवस्य स्वरूप माह]

स्त्रीणां रस एव मासेनार्तवं भवतीत्युक्ता पुनराह शुक्र-

त एव ।)

रसादेव रजःस्त्रीणां मांसि मांसि व्यहं स्ववेत् ॥

तद्वर्षात् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् । १२७

मांसिनोपचितं काले धमनीभ्यस्तदार्तवम् ॥

ईषद्विवर्णां कृष्णञ्च वायुर्योनिमुखं नयेत् । १२८

[गर्भग्रहणयोग्यस्यार्तवस्य लक्षणमाह]

शशास्त्वक् प्रतिमं यच्च यद्वालाक्षारसोपमम् ॥

तदार्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरज्जयेत् ॥ १२९ ॥

भा० औरभी । कामिनी की कामनासे अर्थात् संभोगकी इच्छासे अथवा उसके दर्शनसे या स्पर्शसे या उसका प्राब् श्रवण करनेसे या चिन्तनसे या लिपटानेसे शुक्र निकलता है ॥ १२६ ॥

[अनंतर आर्तवका स्वरूप कहते हैं ।]

स्त्रियों का रस ही महीने में आर्तव होना है ऐसा कहकर किसे कहते हैं शुक्र से ही । रस से ही औरतों का रज महीने महीने में तीन दिन स्वाव होता है । वह आर्तव बारह वर्ष के ऊपर से निकलता है और पचास वरस में क्षय हो जाता है ॥ १२७ ॥ महीने भर में संचय जुड़े आर्तव को समय पर वायु धमनियों के द्वारा थोड़ा बदरंग और काला योनि द्वारसे निकालता है ॥ १२८ ॥

[गर्भरहित के योग्य आर्तवका लक्षण कहते हैं]

प्राश अर्थात् स्वरगोश के रक्त समान जो आर्तव अथवा लाख के रस सदृश जो है उसको अच्छा कहते हैं और ४ जो कपड़े को नहीं रंगता अर्थात् जो धोनेसे जाता है ॥ १२९ ॥

(क) आर्तवस्य वर्णद्वयाभिधानम् । वानादिप्रकृति

भेदेन वर्ण भेदात् । यद्वासो न विरज्जयेत् । यद्वासो

लग्नं प्रक्षालितं तद्वासस्त्यजति ननु विकृतरक्तं कुर्यात् ।

(क) आर्तव के दो रंग कहे हैं । बातादि प्रकृति के भेद से वर्ण भेद कहे हैं । और जो कपड़े को नहीं रंगता अर्थात् जो कपड़े से लगा हुआ धीने से उस कपड़े से दूध जाता है । उसको खराब लाल नहीं करता ।

ऋतुस्त्रीणां रजोदर्शानात् षोडशनिशाः तत्र भवमार्त-
वं गृहीत गर्भानाम् स्त्रीणामार्तव वहानां स्वातसां गर्भ-
णावरोधा दार्तवं न स्रवति । (ख) किन्तु तदेवाधः प्र-
तिहत मूर्द्धमागत मुपचीय मान मपरा भवति । अपरा-
तु श्रीवर इति लोके । शेषं चोद्धतरमागतं पयोधरो या-
ति तस्माद्गर्भस्थः पीवर पयोधरा भवन्ति ।

भा० औरतों का ऋतुकाल रजोदर्शन दिनसे सोलह दिन रहता है । उसमें
जवा आर्तव गर्भको धारण की हुई स्त्रियोंके आर्तववाही स्त्रियोंका
गर्भ द्वारा अवरोध होनेसे अर्थात् रोक होनेसे आर्तव नहीं निकलता ।
(ख) किन्तु वही नीचेसे टकर खाया हुआ कपूर आके संचय जवा अप-
रा अर्थात् गर्भनाड़ी होता है ॥ और दूसरी लोगों में श्रीवर सेसा कहते हैं
जाकी उससे कपूर आया हुआ स्तनोंमें जाता है । तिस्से गर्भाणी के भरे
हुए स्तन होते हैं ॥

[अथ धातुष्वतिरिक्तान् गुराणां नाह]

अतिरिक्ता गुराणरक्ते वन्हे मांसं तु पार्थिवाः ॥ मेद-
स्य पां रसे चास्त्रिष्टयि निल तेजसाम् ॥ १३० ॥
मज्जि शुक्रे च सोमस्य मूत्रे च शिखिनो गुराः ॥
भुवस्तयार्त्तवे त्वग्ने रसे क्षीरे तथा म्भसः ॥ १३१ ॥

भा० अलन्तर धातुओं में अलग गुरोंकी कहते हैं । रक्तमें अग्नि के अल-
ग गुरा हैं ॥ और मांस में पार्थिव गुरा । वैसेही मेदमें जलके गुरा और

स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायो रस्यामाशय द्वारं सत्वरजः ।

स्तमसा मधिष्ठानं हृदयं नाम शिरा मर्म चतुर-

ङ्गुलं सद्यो मारकं ॥

वस्तिर्नाभिः पृष्ठकंदी गुद वंदरण शेष साम् ॥ म-

ध्ये वस्ति तनुत्वक् च एक द्वारो ह्यधो मुखः ॥ १५४ ॥

(क) स्नायु मर्मदञ्चतुरङ्गुलं सद्यो मारकम् नाभिः प्र-

सिद्धा पक्वा माशयोर्मध्ये शिरा प्रभवानाभिर्नाम शि-

रा मर्मदञ्चतुरङ्गुलं सद्यो मारकम् ॥

भा० हृदयप्रसिद्ध है स्तनों के बीच छाती में आमाशय का द्वार सत्वरज-
तम इनकी जगह हृदय नाम शिरा मर्म चार अङ्गुल मसारा सद्यो मार-
क है ॥ वस्ति अर्थात् पेड़ नाभ पीठ कटि गुदा और पूर्वीक्त वंदरण त-

था लिंग इनके बीचमें वारीक चामका नीचे मुख वाला एक द्वार वस्ति
नाम स्नायु मर्म यह चार अङ्गुल का तत्काल मारक है ॥ १५४ ॥

नाभि प्रसिद्ध है । पक्वा माशय और आमाशय के बीच में शिरा ओंकी निकल-
ने की जगह नाभि नाम शिरा मर्म यह चार अङ्गुल का तत्काल मार-
क है ॥

यतो मर्माणि सीमन्ता सत्त्वा क्षिपेन्द्र वस्तयः ॥

वृहत्यौ पार्श्वयोः सन्धी कठीक तरुणे च ये ॥ १५५ ॥

नितम्बाविति चैतानि कालान्तर हरणि तु ॥

[वक्षो मर्मोणि ।]

(उरसः स्तनमूलस्य नरो हि स्तन रोहिते ।)

(क) स्तनयो रधरस्ताद्यङ्गुलं सुभयतः स्तनमूले नास-

शिरा मर्मोणी द्व्यङ्गुले कफ पूर्ण कोष्ठ तथा कास प्रवा-

साभ्यां च कालान्तरमारके ॥ स्ननयोरुपरि उभयतः
द्वङ्गुलं यावत् । स्ननरोहिते नाम द्वे मांसमर्मणी
रक्तपूरितं कोष्ठतया कालान्तरमारको ।

भा० वक्षस्थल के आठ मर्म और पांच सीमन्त तथा चार नल
और क्षिप्रचार इन्द्रवस्ति चार दहती दो पार्श्वसन्धी दो कटीक तरुण
दो ॥ १५५ ॥ नितम्ब दो ये नेतीस कालान्तरमारक हैं ॥
वक्षस्थल के मर्म कहते हैं ।] स्ननों के नीचे दो अंगुल दो नौ
तरफ स्ननमूल नाम शिरामर्म दो अंगुल के हैं । वो कफ से भरेको
छ होने से कास और श्वास के द्वारा कालान्तर में मारक हैं अर्थात्
इन मर्मों के कटने से कास श्वास होके पञ्चात् मरता है ॥
(ख) स्नन के ऊपर दोनों तरफ स्ननरोहित नाम दो मांसमर्म हैं ।
वे मर्म रक्त से पूरित कोष्ठ होने से कालान्तर में मारक हैं ॥

अपलायी भंस कूटयो रधस्तान् पार्श्वयो रुपरि द्वौ शिरा
मर्मणी । अर्द्धङ्गुले रक्तेन पूयनाङ्गुले न कालान्तरमा-
रको । अपस्तम्बो उरसः उभयोः नाड्योः वातवहे शि-
रामर्मणी । अर्द्धङ्गुले वातपूर्णकोष्ठतया कासश्वा-
साभ्यां च कालान्तरमारके सीमन्ताः शिरसि यञ्च स-
न्धयः सन्धिममीणि चतुरङ्गुलानि । उन्मादभयचि-
नविनाशैः कालान्तरमारकाः ॥

भा० कंठ के जोड़ के नीचे और पसलियों के ऊपर दो आधे अंगुल के
शिरामर्म हैं । वे मर्म रक्त से पीप हो जाने पर कालान्तर में मारक हैं
। ग्रीवी की दोनों वातवहा नाड़ी अपस्तम्ब नाम शिरामर्म आधे अं-
गुल का है । वो मर्म वायु से पूर्ण कोष्ठ होने से कास श्वास के द्वारा कालान्तर में मारक हैं । शिर में पांच जोड़ सीमन्त नाम सन्धिमर्म चार -

अंगुल प्रमाण हैं । उन्नाद भय चित विनाशके द्वारा कालान्तर में मारक हैं ॥

(ग) तलानि । मध्याङ्गुलि मनुक्रम्य हस्तस्य मध्यतल मेव मपरस्य हस्तस्य । पादयोश्चत्वारि तलानि मांस मर्माणि द्यङ्गुलानि रुजाभिः कालान्तर मारकाणि । क्षिप्राणि अङ्गुष्ठाङ्गुल्योर्मध्यं क्षिप्रम् । तच्च हस्त द्वयोर्द्वे तथा पादयोः एवं चत्वारि स्नायु मर्माण्यर्द्धाङ्गुलान्याक्षेपकेण कालान्तर मारकाणि ॥

भा० (ग) मध्यमांगुलि को अनुक्रम करके हात का मध्यतल है इसी तरह दूसरे हाथ का । और पावों के दो इस प्रकार चार तल हैं । मांस मर्म दो अङ्गुल के पीड़ा के द्वारा कालान्तर में नाश करने वाले हैं ॥

क्षिप्र अंगुष्ठ और अङ्गुलि के बीच को क्षिप्र कहते हैं । वे दोनों हात के दो तथा दोनों पावों के दो इस प्रकार चार स्नायु मर्म अर्द्धाङ्गुल प्रमाण होते हैं और आक्षेपक के द्वारा कालान्तर में मारक हैं ॥

(घ) इन्द्रवस्तयः प्रकीष्टयोर्मध्ये द्वौ जङ्घयोर्मध्ये द्वौ । एवं चत्वारि मांस मर्माणि द्यङ्गुलानि शीणित क्षयेण कालान्तर मारकाः । दहत्यौ । स्तनमूलादुभयतः सष्टष्ट वंशं यावत् । शिरामर्माणी । अर्द्धाङ्गुले शीणिता नि प्रवृत्ते रुपद्रवैः कारन्तर मारके ॥

भा० (घ) इन्द्रवस्ति । प्रकीष्ट अर्थात् कीहनी से लेकर हाथ के यह चेतक उनके बीच में दो और जांघों के बीच में दो इस प्रकार चार मांस मर्म दो अंगुल के हैं । वे रक्त के क्षय से कालान्तर में मारक होते हैं ।

दहतौ । स्तनमूल से दोनों तरफ पीठ के बांस तक आधे अंगुल के दो शिर

मर्म होते हैं । वोरक्त के अधिक निकालने से कालान्तर में मारक होते हैं ॥

पार्श्वसन्धीजघनपार्श्वयोः सन्धी शिरा मर्मरणी अर्द्धाङ्गुली
शोणित पूर्णकोष्ठतया कालान्तर मारको ॥

(इ०) कटीकतरुणो विक सन्निधाने उभयतः श्रोणिका
राडे स्तनीकृत्या स्थिस्थिते अस्थिमर्मरणी अर्द्धाङ्गुले शो-
णित क्षयात्पाराडु विवर्ण रूपङ्गुत्वा कालान्तर मा-
रके ॥

भा० पार्श्वसन्धी । कमर पसलियों का जोड़ पार्श्वसन्धी नाम दो शिरा म-
र्म अर्द्धाङ्गुल के होते हैं । और वोरक्त पूर्णकोष्ठ होने से कालान्तर में मार-
क हैं ॥ (इ०) कटीकतरुण । विक अर्थात् कमर के जोड़ के पास में दो-
नों तरफ कमर के नल में सीध पर रहने वाली अस्थि मर्म आधे अंगुल के
हैं । वोरक्तक्षय से पाराडु विवर्ण रूप की करके कालान्तर में मारक होते
हैं ॥

नितम्बौ प्रसिद्धौ द्वौ उभयतः श्रोणी काराडयो रूपर्या
प्रायाच्छादनौ पाण्वान्तर प्रतिबद्धौ नितम्बौ नाम अस्थि
मर्मरणी अर्द्धाङ्गुलावधः काय शोषेण सौर्वल्ये न च
कालान्तर मारको ॥

भा० कमर की नल के ऊपर आशय के आच्छादन पसलियों के बीच
में बन्धे हूँवे नितम्ब नाम अस्थिमर्म आधे अंगुल के हैं । वो नीचे के धड़
सक जाने से दुर्बलता के द्वारा कालान्तर में मारक होते हैं ॥

लोहितान्तराणि जानूर्वा कूर्वा विटप कूर्परा ॥ कु-
कुन्दरे कक्षधरे विधुर सप्रकाटिके ॥ १४६ ॥
अंसास फलकायाङ्गी नीले मन्ये फरे तथा ॥

वैकल्य करणान्याङ्गरावन्तो द्वौ तथैवच ॥ १५७ ॥

(क) ऊर्ध्वोरुद्धं मधो वक्षरा सन्धे लोहिताक्षान् च
द्वे बाह्वे द्वे ऊर्ध्वरेवन्तानि चत्वारि शिरा मर्माण्य
र्द्धाङ्गुलानि वैकल्य करणि ॥

भा० लोहिताक्ष अणि जानु ऊर्ध्व कूर्च विट्प कूर्पर कुकुन्दर कक्षध
र विधुर कृकाटिक ॥ १५६ ॥ अंस अंस फलक अपाङ्ग नील
मन्य फण तथा ॥ दो आवर्त इस प्रकार ये वैकल्य कर कह गये हैं
। लोहिताक्ष । (क) जांघ के ऊपर और वक्षरा सन्धि
के नीचे दो लोहिताक्ष मर्म हैं । दो बाहु में और दो जांघ में दोह च
र शिरा मर्म अर्द्धाङ्गुल के विकल करने वाले हैं ॥

(ख) तत्र शोणानक्षयेन पक्षघातः सकथिसादौ वा ।

आणन्यः । जानुनः ऊर्ध्व उभयोः पार्श्वयोः स्त्र्य दुः
ला एकस्मिन् जानुनि द्वे अपरस्मिन्दे एवञ्चतस्रः
स्नायु मर्माण्यर्द्धाङ्गुलानि वैकल्य करणि तत्र शो-
याभि वृद्धिः सकथिस्तम्भश्च ॥

भा० (ख) उसमें रक्तक्षय से पक्षघात अर्थात् लकवा या सकथिसाद
अर्थात् जांघ पीड़ा होती है ॥ आणन्यः । जानु के ऊपर दोनों
गलों में तीन अंगुल एक जानू में २ दो दूसरे जानू में दो २ इस प्र
कार चार स्नायु मर्म अर्द्धाङ्गुल के वैकल्य कर हैं ॥ उनमें सूजन ब
ढ़ती है और पांव अकड़ जाते हैं ।

(ग) जानु जङ्घनयोः सन्धौ सन्धि मर्माणि द्यङ्गुले वै
कल्य करे तत्र रक्छता ऊर्ध्वो द्वे ऊर्ध्वो मध्ये द्वे प्र-
गण्डयोः मध्ये द्वे एवं चतस्रः शिरा मर्माणि एका-

हुल्याः वैकल्यकर्यस्तत्र शोणितक्षयात्सकृदि शोषः ।
 कूर्चाः पादयोः रङ्गुष्ठाङ्गुल्यो मध्ये तयो रूद्ध मधश्च
 एवं चत्वारि स्नायु मर्मराणि वैकल्य करणि तत्र पा-
 दयो मर्मराण्येयने भवतः ।

भा० (ग) घुटने और जांघ के जोड़ में जानुनाम सन्धि मर्म दो अङ्गुल के वैकल्य कर होते हैं । उनमें ललायन होता है । जांघों के बीच में दो और प्रगण्ड अर्थात् कोहनी के ऊपर काख तक इनमें दो ऐसे ऊँची नाम चार शिरामर्म एक अंगुल के विकल करने वाले हैं । उसमें रक्त के क्षय से दाँग सूख जाती है । कूर्च पैरों के अंगुष्ठ और अंगुलियों के बीच में उन के नीचे ऊपर इस प्रकार चार स्नायु मर्म वैकल्य कर हैं । उसमें पैरों का फिरना और कांपना होता है ॥

(घ) विटपे दो वंशरा दृषणायो मध्ये स्नायु मर्मराणि ए
 काङ्गुल्यवैकल्य करे च तत्राल्प शुक्रताच कूपरौ ।
 कफो रिजोद्वौ सन्धि मर्मणी ह्यङ्गुलौ वैकल्य करौ तत्र
 बाह् मध्ये सङ्कोचः । कुकुन्दरे पार्श्व जघन बहिर्भागे
 षष्ठ वंशम्योभयतो नाति निम्ने कुकुन्दरे नाम मर्मराणि
 । तत्र स्पर्शान् मधः काये । चेष्टोप धातश्च । मर्म
 रणि अङ्गुले वैकल्य करे ।

भा० विटप दो वंशरा और अंड कोशों के बीच में स्नायु मर्म एक अंगुल के वैकल्य कर हैं । उसमें अल्प शुक्रता होती है ॥
 काहनी में दो सन्धि मर्म दो अंगुल के वैकल्य कर हैं । उसमें बाह के वाच में मकोच होता है । पसली और कमर के बहिर्भाग में पीठ के वा स क दानोत्क न वज्रन नीचे की तरफ़ जुकेड़े कुकुन्दर नाम सन्धि मर्म अङ्गुले वैकल्य कर हैं ॥

(ङ) तत्र स्पृशज्ञानमधः कायस्य चेष्टोपघातश्च । कक्षधरे । वक्षः कक्षयोर्मध्ये द्वे स्नायु मर्मरणी एकाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र पक्षाघातः । विधुरे कर्णाष्टतोऽधः संश्रिते किञ्चिन्निम्नाकारे द्वे स्नायु मर्मरणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र वाधिर्यम् ॥

(च) कृकाटिके शिरो ग्रीवयोरुभयतः । सन्धिद्वे । सन्धि मर्मरणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे शिरष्कम्पः । अंसौ स्कन्धौ बाहू मूर्धं ग्रीवामध्ये अंस पीठ स्कन्धनिबन्धनावंसौ नाम । स्नायु मर्मरणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र बाहू स्तम्भः ॥

भा० (ङ) उसमें छेदनादि क्रिया होनेसे नीचेके शरीर में स्पर्शज्ञान जाता रहता है । और चेष्टा बन्द हो जाती है ॥ कक्षधर । छाती और कंठ के बीच में दो स्नायु मर्म एकाङ्गुल के वैकल्यकर हैं । उसमें पक्षाघात होता है । विधुर । कान के पीठसे नीचे लगे हुए कुछ दूरे से दो स्नायु मर्म आधे अङ्गुल के वैकल्यकर हैं । उसमें बहिरापन होता है ॥

(च) कृकाटिके । शिर और गले के दोनों तरफ दो जोड़ सन्धि मर्म नाम अर्द्धाङ्गुल के विकल करनेवाले हैं । उसमें शिर कम्प होता है । बाहू शिर गला इनके बीच में कंधों का आधार और कंधों से बन्धे हुए दो स्नायु मर्म आधे अङ्गुल के वैकल्यकर हैं । उसमें बाहू अर्थात् भुजा अकड़ जाती है ॥

(छ) अंसफलके पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसम्बद्धे ग्रीवायां अंसद्वयस्य च संयोगो यत्र तत्त्रिकं ।

भा० (छ) अंसफलके । पीठ के ऊपर पीठ के बाँस के दोनों तरफ त्रिक सिलगे हुए गले में दोनों कंधों का जोड़ जिसमें है उसको त्रिक कहते हैं ।

अस्थिमर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र बाह्याः शून्य
 ताणोपश्च । (ज) अपाङ्गुले नेत्रयोरन्तो शिरा मर्मणी
 अर्द्धाङ्गुलौ वैकल्यकरौ तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा ।
 नीले मन्ये च कण्ठनाडी सुभयतश्च तस्यो धमन्यः
 द्वे नीले द्वे मन्ये । तत्र एकामन्या एकानीला । एकस्मि-
 न् यार्धे मन्या नीलाः अपरस्मिन् पार्श्वे द्वे द्वे शिरा म-
 र्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र मूकता विकृति स्वरताऽ
 रसग्राहिता च । फणो घ्राण मार्ग सुभयतः मांसमर्म-
 णी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र गन्धाज्ञानम् ॥

भा० अंसफलक नाम दो अस्थिमर्म आधे अंगुलके वैकल्यकर हैं ।
 उसमें बुना सूती पड़ती हैं और सूक भी जाती हैं ॥
 (ज) अपाङ्गु । नेत्रों के अन्तमें दो शिरा मर्म आधे अंगुलके वैकल्यकर
 हैं ॥ उसमें अन्धापन या दृष्टिमें चोट हो जाती है । नील और मन्य ये दो
 कंठनाडी दोनों तरफ चार धमनी दो नील दो मन्य हैं ॥ उसमें एक मन्य
 और एक नील एक तरफ तथा एक मन्य और एक नील दूसरी तरफ
 इस प्रकार दो दो शिरा मर्म दो अंगुलके वैकल्यकर हैं ॥ उसमें गूंगावन
 और बुरास्वर तथा रसका ग्रहण न करना ये होता है । घ्राण मार्ग पर दो
 नों तरफ दो मांस के मर्म आधे अंगुलके वैकल्यकर हैं । उसमें गंधका
 ज्ञान जाता रहता है ॥

(क) आवर्तौ भ्रूवो रुपरि निम्नयोः सन्धि मर्मणी अ-
 र्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातः ॥ गुल्फौ
 द्वौ मणिबन्धौ द्वौ तथा कूर्च शिरांसि च ॥ रुजा
 करा शिजानीयात् दृष्ट्वा चैतानि बुद्धिमान् ॥ १५८ ॥

भा० (क) आवर्त । सर्वोंके ऊपर देवदेव दो सन्धि मर्म आधे अंगुलके विकल्प करहैं । उसमें अंधापन और दृष्टिमें चीट होतीहैं । गुल्फ दो मणिबन्ध दो तथा कूर्च सिर । इनको रुजाकर अर्थात् पीड़ा करनेवाले बुद्धिमान देखकर जानलियें ॥ १५८ ॥

(क) गुल्फो धुगिटके सन्धि मर्मणी द्वाङ्गुली रुजाकरी तत्र रुजा पादस्तम्भः स्वज्जना च द्वौ मणिबन्धौ हस्त प्र-
कोष्ठ सन्धी सन्धि मर्मणी द्वाङ्गुली रुजाकरी । तत्र
हस्तयोः क्रियाराहत्यं कूर्च शिरंसि । पादं सन्धेरधः
उभयतः एकस्मिन् पादे द्वे च द्वितीये । एवञ्चत्वारि
स्नायु मर्मण्येकाङ्गुलानि रुजाकराणि तत्र रुजा
शोफश्च ॥

भा० गुल्फ धुगिटके सन्धि अर्थात् टखनेका जोड़ सन्धि मर्मनाम दो अंगुलके रुजाकरहैं । उनमें पीड़ा और पैरका जकड़ना तथा लूलापन होताहै ॥ दो मणिबन्ध अर्थात् हाथके पीचेका जोड़ मणिबन्ध नाम सन्धि मर्म दो अंगुलके पीड़ा करनेवाले हैं । उसमें हाथकी चेष्टा बन्द होजातीहै ॥ कूर्च शिर । पैरके जोड़के नीचे दोनों तरफ एक पैरमें दो और दूसरेमें दो इस प्रकार चार स्नायु मर्म एक अंगुलके पीड़ा करहैं । उनमें मीड़ा आर मूजन होतीहै ॥

उत्क्षेपौ स्थायनीचैव विशल्यग्रं विकम्मतम् ॥

(ख) उत्क्षेपौ शङ्ख यांरुपरिकेशायावत् । स्नायु म-
र्मणी अर्द्धाङ्गुल नयाविद्व्याः म शल्याजीवेन्याका
न्यतनि शल्यावा उद्वनशल्यस्तु म्रियेन ।

भा० उत्क्षेप दो और एक स्थायनी ये नाम विशल्यग्र हैं ॥

अतएव विशल्य मुहूर्ते शल्यं हन्तीति विशल्यघ्नं मर्म-
स्थापनी । एका भ्रुवोर्मध्ये शिरा मर्ममदमर्द्धाङ्गुलसं
विशल्यघ्नम् ॥

भा० (क) शल्य के ऊपर के शतक उत्क्षीपनाम दो स्नायु मर्मों की अंगु-
ल के हैं । उनके कटने में विशल्यजीता है अर्थात् जब तक कांटा फंसा
रहना है तब तक जीता है ॥ अथवा पाकसे काटा गिर पड़ता है ।
और कांटे के उखड़ने मर जाता है । इसी वास्ते विशल्यघ्न अर्थात् निका-
ला हुआ शल्य मारता है इसे विशल्यघ्न कहते हैं । मर्मस्थापनी ।
एक भ्रुवों के बीच में यह शिरा मर्म अर्द्धाङ्गुल का विशल्यघ्न है ॥

सप्त रात्रान्तरे हन्युः सद्यः प्राणहराणि हि ।

कालान्तरं प्राणहरं पक्षे मासे च मारकम् ॥ १५६ ॥

सद्यः प्राणहरज्ज्वान्ते विद्धं कालेन मारयेत् ॥

कालान्तरे प्राणहरं मर्मे विद्धन्तु दुःखदम् ॥ १६० ॥

(अन्ते मर्मसमीपे)

मर्मोपायधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छन्ति कार्ये

विविधा नराणाम् ॥ प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति

वेद्येन यत्नैरपि साध्यमानाः ॥ १६१ ॥

भा० सद्यः प्राणहर मर्म सात दिन के बीच में नाश करते हैं । और
कालान्तरं में प्राणहरने वाले मर्म महीने में या पंद्रह दिन में मार
क हैं ॥ १५६ ॥ सद्यः प्राणहर मर्म पास बिन्धने से कालान्तर
में मारते हैं ॥ कालान्तर प्राणहर मर्म निकट विधे जुवे
दुःख देते हैं ॥ १६० ॥ अन्त अर्थात् मर्म के समीप । मनुष्यों
के शरीर में मर्मों के ऊपर जो नाना प्रकार के विकार होते हैं ।

वाह विकार प्रायः वैद्योंके द्वारा यत्नसे भी प्रतीकार किये गये अत्यन्त कष्टसाध्य होते हैं ॥ १६१ ॥

(अथ सन्धयः) । ते [द्विविधाश्चेष्टावन्तः स्थिराश्च ।]

शाखास्तु हन्व्योः कट्पाच्च चेष्टावन्तो भवन्ति हि ।

शोधास्तु सन्धयः सर्वे स्थिरास्तज्जने रुदाहताः ॥ १६२ ॥

कथिता देहिनां देहे सन्धयो द्वे शते दश ॥ शाखास्तु

नेऽष्टषष्टिश्च कोष्ठे त्वेको न षष्टिकाः ॥ १६३ ॥

ग्रीवायां ऊर्ध्वदेशेन व्यशीतिस्ते प्रकीर्तिताः ॥ प्रथ

मं परिगणयन्ते तेषु शाखागतां बह ॥ १६४ ॥

भा० अनन्तर सन्धि कहते हैं । वे सन्धियों के प्रकार की होती हैं । चेष्टा-वाली और स्थिर । हाथ पावों में और जवाड़ों में तथा कमर में चेष्टा वाली सन्धियाँ हैं । और बाकी सब स्थिर । उनके जानने वालों ने कहा है । ॥ १६२ ॥ प्राणियों के देहमें दो सन्धयः २१० सन्धियाँ अर्थात् जोड़ू कहे गये हैं । वे जोड़ू हान पावा में अड़सठ (६०) और कोष्ठ में उनसठ (१६३) । और गले के ऊपर के भाग में वे जोड़ू अस्सी (८०) कहे गये हैं । उन में पहिले यहाँपर हाथ पावों में के जोड़ू गिनि माने हैं ॥ १६४ ॥

(क) एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्वयस्त्वयो द्वावङ्गुष्ठे ते चतुर्दश । गुणफ जानु वन्तरीष्वेकैक मेवं समदश एकस्मिन् सकथिनि भवन्ति ॥

(ख) गतनेतर सकथि वाह च व्याख्याता । एवमष्टषष्टि शाखास्तु । [अथ कोष्ठगतानाह ।]

(ग) त्रयः कटीकपालेषु चतुर्विंशतिः पृष्ठवंशे नावन्त एव पाश्वयोः रक्षावुरसि एवमेकोनषष्टिः कोष्ठे ॥

भा० (क) एक एक पैर की उंगलियों में तीनतीन ३३। और दो दो अंगुठों में इस प्रकार दो जोड़ चौदह १४) होते हैं। दम्बना और धुटना तथा पूर्वोक्त वंश ए इनमें एक एक इस प्रकार सत्रह १७) एक पांच में होते हैं ॥
(ख) इसी हिसाब से दूसरे पांच में और दो नोहायों में कही गई है। इस प्रकार हाथ पांच में अठसठ जोड़ होते हैं। अनन्तर कोष्ठ के जोड़ों को कहते हैं ॥ (ग) तीन कमर में ३। पीठ के बांस में चौबीस २४। उतनी ही पसलियों में आठ छाती में इस प्रकार उनसठ कोष्ठ में ॥

[अथ ग्रीवाद्भगता नाह ।

(घ) अधो ग्रीवायां त्रयः कण्ठ नाड्यो हृदयत्कोमफुफु
सनिबद्धास्त्वष्टादश । द्वाविंशदन्तमूलेषु एकः कण्ठम-
णौ नासायाञ्च एकैकः द्वौ द्वौ वर्न्मभण्डलगराडकरा
शङ्खेषु द्वौ हनुसन्धौ हावुपरिष्ठात् भ्रुवोः शङ्खयोश्चो
परिष्ठात् पञ्चशीघ्रकपालेष्वेको मूर्द्धाति कण्ठमणौ
धण्डकेति प्रसिद्धे एते सन्धयोऽष्टविधा भवन्ति ॥

भा० [अनन्तर गले के ऊपर के जोड़ों को कहते हैं।
आठ गले में ८) तीन कंठ में ३) हृदय कोम से बन्धी ऊर्ध्व नाडियों में
अठारह १८। बत्तीस दाँतों की जड़ में ३२। कंठ मणि में एक १। नाक में
एक १। आँखों की गोलाई में दो २। गालों में दो २। कानों में दो २। शंख
में दो २। जबाहों में दो २। भ्रूओं के ऊपर दो २। शिर के ऊपर दो २। खोप-
ड़ी में पाँच ५। शिर में एक १। कंठ मणि अर्थात् धण्डिका जिसका घोंट
भी कहते हैं। ये जोड़ आठ प्रकार के होते हैं ॥ [ते यथा ।]

कोरो दुखल सामुद्राः प्रतरस्तुन्नसेविनी । काकतुंडं मंडले च शं-
खावर्त्तीऽष्टसन्धयः ॥ १६५ ॥ (क) कोरोगर्तः । नलिकेत्यन्ये
उदुखलः प्रसिद्धः समुद्रः संपुटः समुद्र एव सामुद्रः अत्र स्वा-
र्थे अण् । प्रतान्यनेनेति प्रतरौ बेलकः नूनस्येव नूनीरस्य सेवि

नी स्तूनी स्तूनसेविनी । काकतुंडं काकमुखं । मण्डलं प्रसिद्धं
 शांखावर्तः शङ्खवर्तः । एते यथानाम प्रकृतयः सन्ध-
 यो भवन्तोत्यर्थः । (स्व) एषामङ्गुलि मणिबन्ध गुलफ
 जानुकुण्डेषुः कोरः सन्धयः । कक्षा वंदरण दन्तेषु दुख-
 लाः अंस पीठ गुद भग नितम्बेषु सामुद्राः ॥ ग्रीवा दृष्ट
 वंशयोक्त प्रतराः शिरः कटी कपालेषु तु न सेविन्यः ।
 हृन्ध्या रुभयतः काकतुण्डाख्याः कराव हृदयक्षोम
 नाडीषु मण्डलाख्याः । शिर श्रोत्रः शृङ्गाटकषु शांखावर्ताः

आ- [ये जैसे] कोर उदरवल सामुद्र प्रतर तुन सेविनी काकतुंड मंडल
 और शांखावर्त ये जाठ सन्धियों के भेद हैं ॥ १६५ ॥
 (क) कोर अर्थात् सूरखवार और लोग जलिका भी कहते हैं ॥ उदरवल
 अर्थात् ऊरुवल के मानिंद सामुद्र अर्थात् छकना संघट समुद्र ही सामुद्र
 इस अर्थमें अणु प्रत्यय होता है । चलनी है इससे वह प्रतर अर्थात्
 बेल । तुन में रहनेवाला ही तुनी इसकी सेविनी अर्थात् सूई तुनी तुन से
 विनी । काकतुण्ड अर्थात् चौबेका मुख । मण्डल प्रसिद्ध अर्थात्
 गोल । शांखका आवर्त अर्थात् प्रवर । ये जैसे नाम वैसे रूप जोड़ हैं ॥
 (ख) इनमें से उङ्गुलि पाँचा दखने घुटना कहनी इनमें कोर सन्धि
 है । काख वंशरा और दांतों में उदरवल जोड़ है । अंस पीठ गुदा भग
 नितम्ब इनमें सामुद्र सन्धि है । गरदन और पीठ के बांस में प्रतर संधि
 है । शिर कटी कपाल में तुन सेवनी । जबड़े के दोनों तरफ काक मु-
 ख । कठ हृदय क्षोम नाडी में मण्डल । श्रोत्र शृङ्गाटक में शांखावर्त ।

अस्यां तु सन्धयो ह्येते केवलाः समुदाहृताः ॥ पे

श्रीस्नायु शिरारणान् सन्धिसंख्या न विद्यते ॥ १६६ ॥

[अथ शिरा माहः]

सन्धिबन्धन कारिराया दीपधार्तवहाः शिराः ॥

नाभ्यां सर्वाणि बद्धा स्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः ॥ १६७ ॥
 शरीरं सकलञ्चै तच्छिराभिः पोष्यते सदा ॥ प्रणा-
 लीभि रिवारामाः कुल्याभिः दोषधान्यवन ॥ १६८ ॥
 (क) अत्र प्रणालीभिः कुल्याभिरिति दृष्टान्तद्वयं स्थूल
 सूक्ष्म शिराभेदान् ॥

भा० केवल जस्थियों के जोड़ इनने कहे गये हैं । पेशी स्नायु और शिरा इनकी सन्धि संख्या नहीं है ॥ १६६ ॥ अनन्तर शिरा कहते हैं ॥ जोड़के बन्धन को करनेवाली और दोषधानु को धारण करनेवाली रगे होती हैं ॥ वो सब नाभिसे बन्धी हुई आस पास फैली हैं ॥ १६७ ॥ यह शरीर सर्वदा शिराओं से पोषया किया जाता है । जैसे नाली से बाग और छोटी नहर से खेत का धान नैय्यार किया जाता है ॥ १६८ ॥ (क) यहां पर नाली और छोटी नहर यह दो दृष्टान्त छोटी बड़ी तनों के भेद से कही गई हैं ॥

प्रसारणाकुञ्चनादि क्रियाभिः सततं ततो ॥ शि-
 रा एवोपकुर्वन्ति ताः स्युः सप्तशतानि तु ॥ १६९ ॥
 यथा द्रुमदले साक्षान् दृश्यन्ते प्रतताः शिराः ॥
 तथैव देहिनो देहे वर्तन्ते सकले शिराः ॥ १७० ॥
 नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणाच्चाभिरुपाश्रिता ।
 शिराभिरावृता नामिष्वक्र नाभिरिवारकैः ॥ १७१ ॥

भा० फैलना सिकुड़ना इत्यादिक क्रियाओं से निरन्तर शरीर में शिराही उपकार करती है । वोह सात से है ॥ १६९ ॥ जैसे वृक्ष के फले में फैली हुई साफ रंग दिखती हैं । वैसेही मनुष्य के सब शरीर में शिरा रहती हैं ॥ १७० ॥ प्राणियों के प्राण नाभिस्थ हैं और नाभि प्राणों के पालन नि-
 ली हुई हैं ॥ तथा शिराओं से शिरा हुई नाभि हैं जैसे जूक अपनी जीवात्मा से

चक्रं नाभिके मानिन्द ॥ १७१ ॥

(क) तद्यथा तासां खलु मूल शिरा चत्वारिंशत् ॥ तासां दश वातवहाः दश पित्तवहाः दश श्लेष्मवहाः दश रक्तवहाः तासां खलु वातवहाना वातस्थानगतानां सपञ्च सप्तति शतानि भवन्ति ॥ तावन्त्य एव पित्तवहाः पित्तस्थानगताः । श्लेष्मवहाः ताः श्लेष्मस्थानगताः रक्तवहा यकृत स्नीहगताः एवं शिराः सप्तशतानि भवन्ति ।

भा० वा जैसे । उनमें प्रधान शिरा चत्वारिंशत् हैं । उनमें दश वातवहा, दश पित्तवहा, दश कफवहा, दश रक्तवहा । इस प्रकार चत्वारिंशत् हैं । वातस्थान में प्राप्त उन वातवहों के एकसे पचहत्तर १७५ हैं । जिन ही पित्तस्थान में प्राप्त पित्तवहा और श्लेष्मस्थान में प्राप्त श्लेष्मवहा भी एकसे पचहत्तर १७५ ॥ तथा यकृत स्नीहमें प्राप्त रक्तवहा एकसे पचहत्तर १७५ इस प्रकार सानसे शिरा ॥

नत्र वातवहाः एकस्मिन् सकथिनि पञ्चविंशति एतेनेतर सकथि वाहूच व्याख्यातो । विंशपतः कोष्ठे चतुस्त्रिंशत् तासां श्रोण्या गुदमेढ्रा श्रिता अष्टौ । द्वे द्वे पार्श्वयोः । षट् एष्टे द्वे तावन्त्य एवोदरे द्वे दश वक्षसि १० एकं चत्वारिंशद् जत्रुणाः ऊर्ध्वस तासां चतुर्दश १४ । ग्रीवायां ४ चतस्रः कर्णयोः ८ नव शिखायां ९ षट् नासिकायां ८ अष्टौ नेत्रयोः ॥

भा० उसमें वातवहा एक सकथिमें २५ पचीस इसी हिसाब से दूसरी

सकृदि और दोनोंबात व्याख्या किये गये अर्थात् दो सकृदि और दोबात मिलके सौ १०० । ३६ । विशेषकरके कौष्टमे चौतीस ३५ उनमें श्रोणी पुद्गलिंग इनके आश्रित आठ । १८ । दो २ पसलियों में छ पाठमें उतनेही उदरमें दशवहस्थल में इसप्रकार ३४ एक नालीस जत्रुके ऊपर उनमें ग्रीवामें चौदह कानोंमें ४ नी जिह्वामें छ नाकमें आठ आंखोंमें ऐसे ४९

(ख) एवं चान्तवहानां सपञ्च सप्तनिशानं भवन्ति । एवं

विभागः पित्तवहानामपि विशेषस्तु पित्तवहा नैत्रयो-

दश १० करणीयोर्द्वे २ एव रक्तवहा श्लेष्मदहास्तु (पी

डश १६ ग्रीवायां करणीयोर्द्वे २) एवं शिराणां सप्तशाना

नि व्याख्यानानि ॥ २५

क्रियाणां सप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्मणाम् ॥ क

रोत्यन्यान् गुणोश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन् १९२

भा० (ख) इसप्रकार चान्तवहा एकसौ विचहतर है । इसप्रकार पित्तवहोंका भी विभाग है । परन्तु विशेषकरके पित्तवहा आंखमें दश कानों में दो । इस प्रकार रक्तवहा और श्लेष्मदहा है ॥ इस प्रकार सान्त सौ शिरा व्याख्या की गई हैं । अथनी शिरामें विचरता हुआ वायु क्रियाओं अप्रतिघात अर्थात् नष्ट नहीने देना और ज्ञानेन्द्रियोंका अमोह अर्थात् मोह न होने देना इनको करना है ॥ १९२ ॥

(क) क्रियाणां प्रसारणाकुञ्चनादीनाम् । अमोहं

बुद्धिकर्मणाम् । बुद्धीन्द्रियाणां मनसो बुद्धेश्च स्वे

स्वे विषयं ज्ञानं करोतीत्यर्थः । अन्यान् गुणान् रसा-

दिव्यायनद्वारा शरीरपोषणादीन् ।

भा० (क) क्रियाणां अर्थात् फैलाना सुकड़ना इत्यादिकों का । अमोहं बुद्धिकर्मणां अर्थात् ज्ञानेन्द्रियोंका और मनका तथा बुद्धिका अपने अपने विषयोंमें ज्ञान करना है । और गुण अर्थात् रसादि घातुओंका

फैलाने के द्वारा शरीर पोषणदि कों को करता है ॥

यदा तु कुपितो वायुः स्वाः शिरः प्रतिपद्यते ॥ तदा

स्य विविधा रोगा जायन्ते वातसम्भवाः ॥ १७३ ॥

भ्राजिद्भुता मन्त्ररुचि मग्निदीप्तिमरोगताम् ॥ क

रोत्यन्यान् गुणान्श्चापि पित्तमात्मा शिराश्चरन् १७४

(क) अरोगतां पैत्तिक रोगानुत्पत्तिं करोति । अन्यान् गु-

णान् मेधा बुद्धि दर्शन शक्त्यादीन् ॥

भा० जब कुपित हुवा वायु अपनी शिरमें प्राप्त होता है तब इसके वात के नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७३ ॥ अपनी शिरमें विचरता

हुवा पित्त कान्ति और अन्नकी रुचि तथा दीप्ताग्नि और रोगका नहीना इनको करता है । तथा और गुणोंको करता है ॥ १७४ ॥

(क) अरोगताम् अर्थात् पैत्तिक रोगों को न उत्पन्न करना । और गुणों को अर्थात् मेधा बुद्धि और दर्शन शक्ति इत्यादिकों को उत्पन्न करता है ॥

यदा तु कुपितं पित्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदा

स्य विविधा रोगा जायन्ते पित्तसम्भवाः ॥ १७५ ॥

स्निहमद्भेषु सन्धीनां स्थैर्यं बलमरोगताम् ॥ क

रोत्यन्यान् गुणान्श्चापि बलासः स्वाः शिराश्चरन् १७६

(क) अरोगतां श्लेष्मिक रोगानुत्पत्तिं अन्यान् गुणान् बल

पुष्ट्यादीन् ॥

भा० जब कुपित हुवा पित्त स्ववहा शिरा में सेवते तब इसके पित्त के नाना प्रकारके रोग जायन्ते पित्तसम्भवाः ॥ १७५ ॥ स्निहमद्भेषु सन्धीनां स्थैर्यं बलमरोगताम् ॥ क रोत्यन्यान् गुणान्श्चापि बलासः स्वाः शिराश्चरन् १७६ (क) अरोगतां श्लेष्मिक रोगानुत्पत्तिं अन्यान् गुणान् बल पुष्ट्यादीन् ॥

करता है ॥ १७६ ॥ (क) ओषधी अर्थात् कफ के रोगों को न उत्पन्न करना ।
अन्यगुण अर्थात् बल पुष्टि आदिको करता है ॥

यदा तु कुपितः स्नेहमा स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥

तदास्य विविधा रोगा जायन्ते स्नेहसम्भवाः ॥ १७७ ॥

धानूनां पूरणं वर्णं स्पृणज्ञानं मसंशयम् ॥ स्वशि-
रास्तु चरदन्तं कुर्याच्चान्यान् गुणानपि ॥ १७८ ॥

(अन्यान् गुणान् बलपुष्ट्यादीन्)

यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदास्य
विविधारोगा जायन्ते रक्तसम्भवाः ॥ १७९ ॥

तत्रारुणा वातवहाः पूर्यन्ते वायुना शिराः ॥

पित्तदुष्णश्च नीलाश्च शीता गौर्यः स्थिराः कफात् ८०

अस्तृग्धरास्तु ता रक्ताः स्युः ध्वनान्युष्णा शीतलाः ॥

भा० जब कुपित हुआ कफ अपने शिराओं में प्राप्त होता है तब इसके कफ के नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७७ ॥ (क) अपनी पित्तों में विचरता हुआ रक्त धानुवा का भरना रंग और स्पृण का ज्ञान इनको अवश्य करता है तथा और गुणों को भी करता है ॥ १७८ ॥

(क) अन्य गुण अर्थात् बल पुष्टि आदिको भी करता है ॥ जब कुपित हुआ रक्त अपनी शिराओं में प्राप्त होता है तब रक्त संभव विविध रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७९ ॥ उसमें अरुण वर्ण की वातवह शिरा वायु में भर जाती है । और पित्त से गरम तथा नीले रंग की होती है । और कफ से स्थिर भारी ठंडी होती है ॥ १८० ॥ तथा रक्तवहों शिरा न बहुत गरम न ठंडी लाल रंग की होती है ।

[अथ स्नायुः । तव स्नायोः स्वरूपमाह ।]

मेदसः स्नेहमादाय शिरा स्नायुत्वमाशु यात् ॥

शिराणां हि मृदुः पाकः स्नायुनान्तु ततः स्वर ॥ १८१ ॥

स्नायवो बन्धनानि स्युर्देहमांसास्थि मेदसाम् ॥

सन्धाना मपि यत्तास्तु शिराभ्यः सुदृढाः स्मृताः ॥ १८२ ॥

नोर्यथा फलकास्तीर्णा बन्धनैर्बहुभिर्युता ॥ नि

युक्ताः गाधसलिले भवेद्भारसहा भृशम् ॥ १८३ ॥

एवमेव शरीरेऽस्मिन्यावन्नः सन्धयः स्मृताः ॥

स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धा स्तेन भारसहा नराः ॥ १८४ ॥

भा० अनन्तर स्नायुवों का स्वरूप कहने हैं ॥ शिरा मेदके विकना पनको लेकर स्नायु होजाती हैं । शिराओं का सुदृढपाक होना है और स्नायु वों का उस्से खर पाक होना है ॥ १८१ ॥ शरीर के मांस अस्थि और मेद इनके बन्धन स्नायु हैं । और सन्धियोंके भी बन्धन हैं । तथा वो स्नायु शिराओंसे दृढ़ किये गये हैं ॥ १८२ ॥ जैसे काष्ठकी पट्टियोंसे व्याप्त और बद्धन से बन्धनोसे युक्त नाव अथाह पानीमें छोड़ी बद्धन वोंके सहनेवाली होती है ॥ १८३ ॥ इसी प्रकार इस शरीरमें जितने स्नायु से बंधे हवे जोड़ कहे गये हैं । उसीसे भारको सहनेवाले मनुष्य होते हैं ॥ १८४ ॥

(फलकै काष्ठपट्टैः आस्तीर्णा व्याप्ताः ।)

शतानि नव जायन्ते शरीरे स्नायवो नृणाम् ॥

नासां विवरणं ब्रूमः शिष्याः । शृणुत यत्नतः ॥

शारवासु षट्शतानि स्युः कोष्ठे त्रिंशन् शतद्वयम् ॥

ग्रीवाया मूर्धदेशे तु स्नायूनां सप्तानिः स्मृताः ॥ १८६ ॥

भा० (क) फलक अर्थात् लकड़ियों की पट्टियोंसे व्याप्त । मनुष्यों के शरीर में नौसे स्नायु हैं ॥ उनका व्याख्यान कहने हैं । हे शिष्यों यत्न से सुनो ॥ १८५ ॥ शारवाओं में अर्थात् दोहाथ और दो पावों में छसे ६०० (स्नायु हैं) ॥ और कोष्ठ में दोसे तीस २३० (तथा ग्रीवा के ऊपर सत्तर कहे गये हैं) ॥ १८६ ॥

[तत्र शास्त्रागताः प्राह]

(क) सके कस्या पादाङ्गुल्या षट् षट् तस्त्रिंशत् । ताव
न्त्यखतलकूर्चगुलफेषु । तायन्त्यखजङ्घायां दश
जानुनि । चत्वारिंशदूरो । दशवङ्गणे । एवं सार्द्धं शत
मेकस्मिन् सकथिनिभवन्ति । एतेनेतरसकथि बाहू
च व्याख्यातो ।

भा० उस्में शास्त्रामें प्राप्त स्नायुवों को कहते हैं । (क) पांव की
सक २ अंगुलियों में छ २ हैं । इसतरह वो पांचों अंगुलियों में मिलके
तीस हैं । और उतनीही तलुव और कूर्च तथा टकनोंमें । उतनीही अ
थात् ३० दांगमें दस छुटनेमें चवालीस जंघामें दस वंक्षणमें इस प्रकार
१५० (एक सकथिमें है । इसी हिसाबसे दूसरी सकथि और दो बाहू
इनमें कहे गये हैं ॥

[अथ कोष्टगताः प्राह ।]

(ख) षष्ठिः कस्या तावन्त्यख पापर्वयोः । अशीतिः
ष्टष्टे त्रिंशदुरसि । [अथ ग्रीवोर्द्विगताः प्राह]

(ग) षट् त्रिंशद् ग्रीवायाम् । चतुस्त्रिंशन्मूर्द्धि एवं
स्नायूनां नवशतानि भवन्ति । [अथ धमन्यः]

धमन्यो नाभितो जाता अतुर्विंशति संख्यया ॥

दशोर्द्विग दशाधोगा शेषास्त्रिगताः स्मृताः ॥ १८॥

भा० अनन्तर कोष्ठमें प्राप्ता को कहते हैं ॥ (क) साठ कमर में उतनी
ही पतलियों में ६०) तीस ३० खानी में । इस प्रकार दो से तीस ३०) हैं
अनन्तर ग्रीवाके ऊपर प्राप्त ऊवों को कहते हैं ॥ (क) छत्तीस
ग्रीवामें ३६ (चौतीस ३६ मस्तक में । इस प्रकार नौसे स्नायु हैं ॥

पुरीषशुक्रार्तवादीनधोवहन्ति । तास्तु पित्ताशयङ्गना स्त्रि
धा जायन्ते तास्त्रिंशत् ।

भा० (स्व) तथा दोसेबोलतहि दोसे सीताहै दोसे जगताहै दो आँसू को धा-
रण करनेवाली और दो औरनों के दूधको धारण करती हैं स्तनसे मिली हुई
। और दोही पुरुष के शुक्रको स्तनों के द्वारा धारण करती हैं । ये तीस हैं ।
इनके द्वारा उदर पसलियाँ पीठ उरू कंधा ग्रीवा शिर और बाहू ये धारण
किये गये हैं । और हिलायेयी जाने हैं ॥ और अधोगत । दात मूत्र न
ल शुक्र आतेव इनको नीचेवी तरफ धारण करती हैं ॥ दो धमनीपित्ता
शयमें प्राप्तहुई तीन प्रकार होती हैं । वोतीस हैं ।

तासाम्मध्ये द्वे द्वे दानपित्त कफ शोशित रसान् वहनः ।

तादश द्वे अन्ववद्धे अन्त्राश्रिते द्वे त्वेयवहे द्वे चस्तिगते

मूत्रवहे द्वे शुक्रस्य प्रादुर्भावाय द्वे नाद्विसर्गाय ते एव

नारीणामार्तव प्रादुर्भावाय तेऽपि सृजतश्च । द्वे स्थूला-

न्व प्रतिबद्धे पुरीषं विसृजतः ।

भा० उन तीसों के बीचमें दो दो दान पित्त कफ रुधिर और रस इनको धा-
रण करती हैं । दो दस हैं । अन्त्रियों को धारण करनेवाली २ और आं-
तों से मिली हुई पानी को धारण करनेवाली दो २ । वस्ती में प्राप्त मूत्रको
धारण करनेवाली दो २ । शुक्र के उत्पन्न होनेके वाली २ । और उसके
त्यागके वाली दो २ । दोही औरनोंका आर्तव प्रादुर्भाव होनेके वाली और
उत्पन्न होनेके वाली भी । तथा दो मोटी आंतोंमें बंधीहुई मलको काड़ती हैं ।

अष्टावन्त्यास्तिर्यग्गताः स्वेदमपर्यन्ति । एतास्त्रिं

शत् एताभि रधोनाभेः पक्षाशय कटी मूत्र पुरीष

वस्ति गुदमेतद् सकयीनि धार्यन्ते चाल्यन्ते च ।

तिर्यग्गतानान्तु चतसृणामेकैकं शतधा सहस्र

धा चोत्तरोत्तरं विभज्यन्ते । (ग) तास्त्वसङ्ख्ययास्ता
भिरिदं शरीरद्वयाक्षितम् निबद्धमानतम् गवाक्षवत्
निबद्धमायनद्वयाक्षितं वानायनं यथा गवाक्षे बहूनि छि
द्राणि भवन्ति तथा अस्मिन् देहे जालवत् शिराः व्या
प्यतिष्ठन्तीति भावः निबद्धमायनद्वयाक्षितम् ।

भा० तिरछी गई हुई आठ पसीना देती हैं । ये नीस हैं । इन्होंने नाम
के नीचे पक्षाणाय कमर मूत्र मल बलि गुद लिंग और संकाय धारण की
गई हैं । और चलाई भी जाती हैं । और तिरछी-गई हुई चारों में से एक २
सौ नरह पर तथा हजार नरह पर उत्तरोत्तर अर्थात् एक के अनन्तर एक
इस क्रम से विभाग की गई हैं ॥ (ग) वो असीस्य हैं । उनसे शरीर
जरोखे के मानिन्द व्याप्त हुआ बनाया गया है । गवाक्ष के मानिन्द विस्तृत
रचा गया । गवाक्ष अर्थात् हवा आने की जगह । जैसे जरोखे में बज्जन से
छेक होते हैं उसी प्रकार इस शरीर में जाल के मानिन्द शिरा व्याप्त होकर
रहती हैं बना हुआ फैला करेखे के मानिन्द ॥

गवाक्षाकारान्त्रनिकरयुक्तं कृतमित्यर्थः । तासां मु
खानि रोमलग्नानि यैर्मुगैः स्वेदः स्रवति रसञ्चाभिस
त्तर्पयन्त्यन्तर्बहिश्च । तैरेवाम्यङ्गपरिपेकावगाहना
लेपनबीर्याणि त्वचि पक्षान्यन्तः प्रवेशयन्ति ।
तैरेव स्पर्शा शुभं अशुभं वा गृह्णन्ति यथा स्वभावतः
रवानि मृणालेषु विसृज्य च ॥

भा० अर्थात् जरोखे के आकार आने के समुदायो से युक्त किया हुआ
। उनके मुख रोमों से लगे हुं हैं । जिन मुखों से पसीना निकलना है ।
और उस भीतर बाहर आस पाम सींचा जाता है । और उन्हीं से अभ्यङ्ग

परिषेक अवगाहन आलेपन इनके पके इवेर्याय्य त्वचामे भीतर पहुँचाने हैं। तथा उन्हीसे अच्छाबुरा स्पर्श लिया जाता है। जैसे स्वभाव से कमल की फूलकी डुंडीमें छेक होते हैं।

धमनीनान्तथा खानि रसो ये रभितश्चरेत् ॥ १८८ ॥

पञ्चाभि भूतास्त्वय पञ्च कृत्वः पञ्चेन्द्रियम्यञ्च
सु भावयन्ति । पञ्चेन्द्रियम्यञ्चसु भावयित्वा पञ्च
त्वमायान्ति विनाशकाले ॥ १८९ ॥

(ख) धमन्यः कथं भूताः पञ्चाभि भूताः पञ्चभ्यः आ
काशादि महाभूतेभ्यः अभि समन्तान् भूताः उभयान्म
कं मनश्च यस्य तं पञ्चेन्द्रियं जीवात्मानम्यञ्चसु इन्द्रि
याधिष्ठानेषु श्रोत्रादिषु पञ्चकृत्वः पञ्चवारान् ॥

भा० जैसे धमनियों के छेक होते हैं। जिनके द्वारास आस पास घूमता है ॥ १८८ ॥

आकाशादि पंच महाभूत स्वरूप धमनी पंचेन्द्रिय अर्थात् जीवात्माकी श्रोत्रादिकोंमें पंचवार प्राप्त करती हैं। अर्थात् पर्यायसे एकबारही प्राप्त करती हैं। पञ्चेन्द्रियोंकी पाँचों में योजना करके विनाशकाल में पंचत्वकी प्राप्त होती है ॥ १८९ ॥

इसका यह अर्थ है कि धमनी कैसी हैं पाँचों से आस पास घिरी हैं। अर्थात् आकाशादि महाभूतोंसे आस पास घिरी हुई। उभयान्मक मनभी जिसके उस पंचेन्द्रिय अर्थात् जीवात्माकी पाँचों में अर्थात् इन्द्रियों के अधिष्ठान श्रोत्रादिकों में पंचवार अर्थात् पर्यायसे एक बारही प्राप्त करती हैं ॥

पर्यायेण त्वेकदैव भावयन्ति प्राययन्ति पञ्चेद्रि
यं पञ्चानामिन्द्रियाणां समाहारः पञ्चेन्द्रियं श्रोत्रा
दि नहुपलाक्षितं कर्मेन्द्रिय स्मनश्च । पञ्चम् एयि

व्यादिषु । बुद्धीन्द्रिय विषयेषु तदुपलक्षितेषु हस्ता
दिषु कर्मेन्द्रियविषयेषु । मन्तव्ये मनोविषये च भाव
यित्वा प्राप्य संयोज्येति यावत् । विनाशकाले पञ्चत्वं
आकाशादि भावं । आयान्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥

भा० पंचेन्द्रियं । पांचों इन्द्रियों का समाहार पंचेन्द्रिय श्रीत्रादि उत्स
करके उपलक्षित कर्मेन्द्रिय और मन भी ॥ पांचोंमें अर्थात् पृथि
व्यादिकोंमें । ज्ञानेन्द्रिय विषय और उसकरके उपलक्षित हस्तादि
कर्मेन्द्रिय विषयोंमें और मनन योग्य मनो विषयमें भी प्राप्त क
रके विनाश कालमें पञ्चत्वं अर्थात् आकाशादि भावको प्राप्त हो
ना है ॥

[अथ करडरा]

महत्यः स्नायवः प्रोक्ताः करडरास्तास्तु षोडश ॥

प्रसारणाकुञ्चनयोर्दृष्टं तासां प्रयोजनम् ॥ १६० ॥

चतस्रो हस्तयोस्तासां तावन्त्यः पादयोः स्मृताः ॥

शीवाया मपि तावन्त्यस्तावन्त्यः पृष्ठसङ्गताः ॥ १६१ ॥

(क) तत्र पादहस्तगतानां करडराणां नखाः प्ररोहाः

शीवानि बन्धनानामधो भागगतानां प्ररोहो मेढूः पृ

ष्ठ निबन्धानां प्ररोहो नितम्बसूक्ष्मरुद्वौः क्षस्तनयि

गदाः ॥

भा० अनन्तर करडरा । बड़ी स्नायुओं को करडरा कहते हैं । दो
सोलह हैं । पसारने और मिकोड़ने में उनका प्रयोजन देखा गया है
॥ १६० ॥ शो करडरा हातों में चार और उतनीही पैरोंमें कही गई है ॥
गर्दनमें भी चार और पीठमें लगी हुई भी चार हैं ॥ १६१ ॥

(क) उनमें से हात पैरोंमें प्राप्त हुई करडराओं के अंकुर नख हैं ।
गर्दनसे बन्धी हुई अधोभागमें प्राप्त हुई करडराओं के अंकुर शिग्रह हैं ।

और पीठ से लगी जुड़ के अंकुर चूतड़ सूर्य उरु वक्षस्तन पिंड हैं ।

[अथ रंघाणि ।]

नेत्रश्रवणनासानां द्वे द्वे रन्ध्रे प्रकीर्तिते ॥ मुख

मेहनपायूना मेकैकं रन्ध्रमुच्यते ॥ १६२ ॥

दशमं मस्तके प्रोक्तं रन्ध्राणीति नृणां विदुः ॥ स्त्री

णामन्यानि च त्रीणि स्तनयो गर्भवर्त्मनि ॥ १६३ ॥

भा० अनन्तर छिद्रोंको कहते हैं । आँख कान नाक इनमें दो २ छिद्र
कहे गये हैं । मुख शिग्रु गुदा इनमें एक २ छिद्र कहा है ॥ १६२ ॥
दसवां मस्तकमें कहा गया है । इस प्रकार भवुज्योंके छिद्र ज्ञाने गये हैं
स्त्रियोंके और तीन हैं । स्तनोंमें दो गर्भाशयमें एक ॥ १६३ ॥

[अथ स्त्रीतांसि ।]

मनः प्राणान्न पानीय द्रोष धातूप धातवः ॥ धा

नूलाञ्च मलामूत्रं मलमित्यादयः स्तनौ ॥ १६४ ॥

सज्ज्वरान्तर्हि यै र्भागै स्तानि स्त्रीतांसि सज्जगुः ॥

चह्नन्तानि संख्याय प्रावचन्ते नैव भाषितुम् १६५

भा० अनन्तर स्त्रीतोंको कहते हैं ॥ मन प्राण अन्न जल द्रोष धातु
और उपधातु । और धातुओंके मल मूत्र मल इत्यादिक तथा स्तन
हैं ॥ १६४ ॥ जिस भागसे ये संचार करते हैं उसको स्तन कहते हैं । वे
बहुत हैं उनकी संख्या नहीं कह सकें ॥ १६५ ॥

[अथ जालानि ।]

(क) निरन्तर रन्धानि करकलिनानि समाहितानि च
जालानी वजालानि ।

जालानि तु शिरास्त्रायुषां सांस्था मुह्वन्ति हि ॥

नानि चत्वारि चत्वारि सर्वान्येव च षोडश ॥ १६६ ॥
 (स्व) नानि मणिवन्धगुद संस्मृतानि परस्पर निबद्धानि
 परस्पर संमिलितानि परस्पर गवाक्षितानि चेति येगवा
 क्षितसिद्धं शरीरम् । अयमर्थः । एकास्मिन्मणिवन्धे
 । एकस्मिन्नालं शिरसाः । अपरं स्नायो स्तृतीयं मांसस्य
 चतुर्थमस्थः एवं चत्वारि जालानि ।

भा० (क) अनन्तर जालों को कहते हैं । निरन्तर छिन्न समूहों से बंधे
 हुये समाहित जालों के मानिन्द जाल । जाल शिरा स्नायु मांस अस्थि
 योंका उद्भव करती हैं । वो चार एक एक में होते हैं इस तरह पर वो
 सब सोलह है ॥ १६६ ॥ (स्व) वो मणिवन्ध गुदमें मिलि हुये प
 रस्पर बन्धे हुये और एक से एक मिलि हुये परस्पर गवाक्षित हैं । जिन्हें
 से यह शरीर गवाक्षित सा है । यह अर्थ है । एक मणिवन्ध में एक
 जाल शिराका । दूसरा स्नायुका । तीसरा मांसका । चौथा अस्थिका ।
 इस प्रकार चार जाल हैं ॥

एते नेतर मणिवन्धौ गुलफौ च व्याख्यातौ । गवाक्षि
 तं विरचितं निरन्तर जालाकार रन्ध्रं निकरं परिकल्पि
 तमित्यर्थः ॥ [अथ कूर्चः ।]

कूर्चः स्युर्हस्तयोर्द्वौ तु तावन्तो पादयोरपि । ग्रीवा
 यामेक एकस्तु मेढ्रे सर्वेऽपि षट् स्मृताः ॥ १६७ ॥

कूर्चा अपि शिरास्नायु मांसास्थि प्रभवाः स्मृताः ॥

भा० इसी तरह पर दूसरे मणिवन्ध में और गुल्फ में व्याख्यान किये ग
 थे । जरावे सा बनाया गया निरन्तर जाल के आकार किट्टोंका समुदाय
 से परिकल्पित है ॥ [अनन्तर कूर्चों को कहते हैं] कूर्च हानों में वो
 उन्नेही पैरों में भी गले में एक शिग्रु में एक इस प्रकार सब छः कहे १६७

कूर्चं भी शिरा स्नायु मांसं अस्थि प्रभव कहे गये हैं ॥

[अथ रज्जवः।] दृष्टवंशस्योभयतः महत्या मांस रज्जवः ॥

चतस्रो मांस पेशीनां बन्धनन्तन् प्रयोजनम् ॥ १६८ ॥

अथ सेवन्यः।] सेवन्यः सप्त तासान्तु भवेयुः पंच मस्तके।

एका श्लेफ सिजिह्वाया मेका विद्वेन्नता क्वचिन् ॥ १६९ ॥

अथ सङ्घातः।] (क) चतुर्दशास्थां सङ्घाताः तेषामन्वयो गुल्फ

फ जानु वंशरोषु। रग्नेनेतर संकथि बाहू च व्याख्यातौ।

त्रिकं शिरसो रेकैकम्। अत्रतु त्रिकपदेन बाहू ग्रीवास्थि

सङ्घात उच्यते।

भा० अनन्तर रज्जु कहते हैं] पीठके बांसके दोनों तरफ बड़े मांसकी रज्जु हैं। चार मांस पेशीयोंके बन्धन उनका प्रयोजन है ॥ १६८ ॥

अनन्तर सेवनी कहते हैं] सेवनी सानवी पांच मस्तक में हैं। एक शिग्र में जीममें एक इनके बंधसेकभी मृत्युही जाता है ॥ १६९ ॥ अनन्तर संघात

कहते हैं ॥ चौदह अस्थियोंके संघात हैं। (क) दो तीन गुल्फ जानू वंश

ता इनमें हैं। इसीतरह पर दूसरी संकथि और बाहू व्याख्या की गई। त्रिक और शिरमें एक एक हैं। यहाँपर त्रिकपदसे बाहू ग्रीवा अस्थि इनका संघात कहा है

अथ सीमन्ताः।] चतुर्दशैव सीमन्ताः कथिता मुनिपुङ्गवैः

सङ्घाताः क्षोभिता येस्तु सीमन्तान्ते प्रकीर्तिताः ॥ २०० ॥

(यै अस्थिभिः।) [अथ त्वचः।] क्षीरस्य पच्यमानस्य

यथा सन्तानिका भवेत् ॥ पच्यमानस्य शुक्रस्य रज

सश्च तथा त्वचः ॥ २०१ ॥ पूर्वोवभासिनी तासां मि

धमस्थानं च सा स्मृता ॥ [अथावभासिनी।]

भा० अनन्तर सीमंत कहते हैं। मुनीश्वरों ने चौदह सीमंत कहे हैं। जिनसे ध्यात को भित्त होते हैं उनको सीमंत कहा है। जिन अस्थियों से अनन्तर त्वचा कहते हैं ॥ परिपाक जुड़े सुगंधकी मलाई जैसे होती है वैसेही परिपाक एवं शुक्र की तथा रजकी त्वचा होती है ॥ १०१ ॥ पहिली अव भासनी नाम त्वचा है। वो सिध्यनाम कुष्ठका स्थान कही गई है ॥ अनन्तर अव भासनीको कहते हैं

(क) भ्राजकेन पिनेना वभासनात् । परिणाहेन विस्तारितस्य ब्रीहिर्विंशतिभागे ऽष्टादश भागः प्रमाणात्तस्याः ॥
ब्रीहिरत्र यवः ॥ सासिध्मपद्मकण्टकयोरधिष्ठाना ।
द्वितीया लोहिता ज्ञेया निलकालकजन्मभूः ॥

(ख) सा यव षोडश भागं प्रमाणा निलकालकन्यस्त व्यङ्गनामधिष्ठानम् ।

भा० भ्राजक पित्तके क्षणप्रकाश होनेसे। परिणाह से विस्तार किये हुये ब्रीहिका बीसवां भाग वा अठारहवां भाग उसका प्रमाण है। ब्रीहि यहां पर जब कहा गया है। वो सिध्मकंटकों की जगह है ॥ (ख) इसरी लोहित जाननी चाहिये। जो निलकालक की जगह है। वो जबके सोलेय हिस्से का प्रमाण है। और निलकालक तथा न्यस्त व्यङ्गों का अधिष्ठान है ॥

(ग) तृतीया तु भवेच्छूना स्थानव्दुर्मदलस्य सा ॥
सा यवद्वादशभागप्रमाणा चूर्मदलाजगल्लिका मशकानामधिष्ठानम् ।

तांश्च चतुर्थी विज्ञेया किलासश्चित्रभूमिका ॥

(यदाष्ट भाग प्रमाणाः)

पञ्चमी वेदिली नामा पञ्चभागा प्रमाणाः ॥

विसर्पकुष्ठाधिष्ठाना ज्ञेया षष्ठी तु लोहिता ॥ २०१ ॥

विख्याता रोहिणी षष्ठी ग्रन्थिगराडापची स्थितिः ।

ब्रीहिमात्र प्रमाणा सा ग्रन्थिगराडापची स्थितिः ॥ २०२ ॥

(क) ब्रीहि प्रमाणा ग्रन्थिपची गलगराव माला बुद्ध स्त्री

पदानामधिष्ठानम् ।

भा० (ग) नीसरी प्येता है वो चन्मीदल की जगह है । वो जबके बाहर वें भाग के प्रमाण है । चन्मीदल भद्रगल्लिका मशक इनकी जगह है ॥ (घ) चौथी तावाहें वो किलास और विन्नान कुण्डोकी जगह है । वो जबके आठवें भाग प्रमाण है ॥ पांचवी वेदनी नाम जबके पांचवें भाग प्रमाण है । छठी विसर्पकुष्ठ की जगह लोहित नामवासी है ॥ २०२ ॥ प्रतिष्ठ है छठी रोहिणी ग्रन्थिगंडापची की जगह है । वो ब्रीहिमात्र प्रमाणा ग्रन्थिगराडापची की जगह है ॥ २०३ ॥ ब्रीहि प्रमाणा वाली ग्रन्थि अपची गलगराव माला अ बुद्ध स्त्रीपद इनकी जगह है ॥

स्थूलात्वकं सप्तमी ख्याता विद्वध्यादेः स्थितिः अत्र सा ।

सा ब्रीहि द्वयप्रमाणा । तत्सर्वोक्तं शार्ङ्गधरेण स्थूला
ब्रीहि द्विमात्रयेति सप्तापि त्वचः समुदिता विंशति तमभा-
गो नष्ट इत्यत्र प्रमाणा । पश्यदप्रमाणात् अङ्गुष्ठोदरतु-
ल्यम् । यत उक्तम् । उदरेष्वङ्गुष्ठ प्रमाणां गाढ मय विध्य
दिति । एतन् प्रमाणं मांसलेषु स्थूलेषु बोद्धव्यम् । न तु
ललाटस्थूमाङ्गुल्यादिषु ॥

भा० स्थूलत्वचा सातवीं प्रतिष्ठ है वो विद्वधि आदिकी जगह है । वो दो ब्रीहिके प्रमाणा होती हैं । उसी से शार्ङ्गधरने कहा है ॥ स्थूल ब्रीहिकी दो माडा से । सात भी त्वचा कही गई । विंशति तम भाग अर्थात् बीसवें भाग से बहुत दान । न कि छ जबके प्रमाण । छ जबके प्रमाण मो

अंगुठे के उदर के तुल्य होता है । जिसे कि कहा है । उदर में अगुष्ट प्रमाण
वद्भूत न बंध करे ॥ यह प्रमाण भांसल स्थूल जगह में जानना चाहिये ।
न कि मग्नक मृदम अंगुलियों में ॥

[अथ लोमानि लोमकूपाश्च]

अस्थौ मलानि लोमानि असंख्यानि भवन्ति हि ॥

सन्निधावन्ति लोमाणि तावन्तो लोमकूपकाः ॥ २०४ ॥

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्दृतिः स्वभावादेव जायते ॥ सन्नि

वेशश्च गात्राणां नात्रास्ते कारणात्तरम् ॥ २०५ ॥

(क) निर्दृतिः सिद्धिः स्वभावात् ईश्वरात् । सन्निवेशो

रचनाविशेषः ॥

भा० अनन्तर लोम और लोमकूपों को कहते हैं ॥ हड्डियों के मल लो
म असंख्य हैं । जितने लोम हैं उतने ही लोमकूप हैं ॥ २०४ ॥ अंग और
प्रत्यङ्ग की निर्दृति स्वभाव से ही होती है । और गात्रों का सन्निवेश अ-
र्थात् कारीगरी भी इस ही में है कोई दूसरा कारण नहीं है ॥ २०५ ॥

(क) निर्दृतिः अर्थात् सिद्धिः स्वभाव से अर्थात् ईश्वर से सन्निवे-
श रचना विशेष ॥

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्दृतौ ये भवन्त्यगुणाः गुणाः ॥

ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्मा धर्मनिमित्तजाः ॥ २०६ ॥

दन्तानां पतनं जन्म पुनः पाते त्वत्सम्भवः ॥ तले

ष्वनुद्भवो लोम्नामेतत् सर्व्वं स्वभावतः ॥ २०७ ॥

गर्भे सासि सासि यद्भवति । तदाह ॥

भा० अंग प्रत्यङ्ग की निर्दृति में जो गुण दोष होते हैं वो वो गर्भक जान
ने चाहिये धर्म और अधर्म के निमित्त से होते हैं ॥ २०६ ॥ दांतों का गिर
ना और उत्पन्न होना तथा फिर से गिरने में न होना । और तलुवों में लोम

नहाना यह सब स्वभावमही है ॥ २०७ ॥ गर्भका महीने २ में जो होता है उसको कहते हैं ॥

गर्भाशये निपतितं यादृक् शुक्रं तथार्नवम् ॥ तादृ
गेव द्रवीभूतं प्रथमे भासि तिष्ठति ॥ २०८ ॥ मरुत्पि
नकफैर्भूतस्थः पच्यमाना द्वितीयके ॥ कलल-
स्थे महाभूतं समुदापी धनी भवेत् ॥ २०९ ॥

(क) अत्र मरुत्कफयोरपि पाकहनुत्वे तयोरप्युष्मणो
ऽनाधिकरत्वात् ॥ [यत उक्तं चरके।]

भा० गर्भाशय में जैसा शुक्र तथा रज गिरना है वैसाही गीलासा पहि-
ले महीने में रहता है ॥ २०८ ॥ दूसरे महीने में उस स्थानमें रहनेवाले
घ्नान पित्तकफ में पकाया गया कललमें रहनेवाला महाभूतों का समु-
दाय गाढ़ा होता है ॥ २०९ ॥ (क) यहा पर वायु कफको भी पाक
हेतुत्वमें उनका उष्माकार नहीने से । जैसे कि कहा है चरक में ।

भौमाप्याग्नेय वायव्याः पञ्चोष्माणाः सनाभसाः।
तृतीये भासि शिरसो हस्तयोः पादयोस्तथा ॥ २१० ॥
पिण्डिकाः पञ्च मिथ्यन्ति सूक्ष्माश्चा वयवास्तनोः ॥
सर्व्वारयङ्गान्युपाङ्गानि चतुर्थेः स्फुटानि हि ॥ २११ ॥
हृदयव्यक्तभावेन व्यज्यते चेतनापि च ॥ तस्मा
च्चतुर्थे गर्भस्तु नानावस्तूनि दान्छति ॥ २१२ ॥

भा० भूमिसम्बन्धि जलसम्बन्धि अग्निसम्बन्धि वायुसम्बन्धि आका-
शसम्बन्धि ये पांच उष्मा हैं ॥ तीसरे महीने में शिरको दोनों हाथोंकी
और पैरोंकी दूसनरहपर पांच पिण्डिकाहानी है और सूक्ष्म अन्यव हो
ते हैं ॥ २१० ॥ सम्पूर्ण अंग और उपांग चौथे महीने में प्रगट होते हैं ।

हृदय के प्रगट होने से चेतन भी स्पष्टमानुस होता है ॥ २११ ॥ इसी वास्ति चैषे
महीनि में गर्भ माना वस्तुओं की इच्छा धारता है । तिसी ही हृदयवाली औरत
होती है ॥ उस वास्ते दोहृदिनी कही है ॥ २१२ ॥

ततो हि हृदया यत् स्यान्नारी दोहृदिनी मता ॥ दोह
र्वा दक्षिणा कुञ्जकुनिषण्डञ्च वामनम् ॥ २१२ ॥
विकृताक्षमनसं वा पुनं नारी प्रसूयते ॥ यतः स्त्री
दोहृदं प्राप्य वीर्यवन्तं विरायुषम् ॥ पुनं प्रसूयते
तस्मात् न स्त्री वाञ्छितमर्पयेत् ॥ २१४ ॥ इन्द्रिया
णीस्तुती पान्थान्शोक्तु सिञ्चति गर्भिणी ॥ गर्भवा-
धा भयात्तासां भिषगा हृत्पदापयेत् ॥ २१४ ॥

भा० दोहृदके अवमान से कुञ्ज कुन्निषण्ड वाचना दुरी औरतवाला
या वे औरतवाला इस विराम के पुत्रको औरत जन्माती है ॥ २१३ ॥ और
जैसे स्त्री दोहृदकी पांकर पराक्रमी दीर्घायु ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ इस
वास्ते उसको वाञ्छित देंगे ॥ २१४ ॥ गर्भिणी जो जो खाने पीने और पहिरने
की वस्तु इच्छा करे उनको गर्भवाधा के भयसे वैद्य लाके दिवावे ॥ २१४ ॥

[योक्तु उपभोक्तु नित्यर्थः ।]

रा प्राप्तदोहृदा पुनं जनयेत् गुराण्वितम् ॥ अल
ब्ध दोहृदा गर्भे लभेत्तारमनि वा मयम् ॥ २१५ ॥
येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दोहृदे सावमानिता ॥ प्रसू-
यति सुतं सार्तिस्तस्मिन् सस्मिन् सदिन्द्रिये ॥ २१६ ॥

भा० भोक्तु अर्थात् उपभोगके अर्थ ॥ वो पाई हुई दोहृदवाली गुराणुक्त पुत्र
उत्पन्न करती है । और नैलामजुद् दोहृदवाली अपने में कुछ मयको प्रा
प्त करती है या गर्भ में कुछ मयको प्राप्त करती है ॥ २१५ ॥ वो दोहृदने जो

इन्द्रियके अर्थोंको अवमानकी गर्व अर्थात् खानेकी देखनेकी इत्यादिक वस्तुओं की चाहने पर सहीगर्ह वो उस उस इन्द्रियमें पीड़ाकरके युक्त पुत्रको जन्माती है ॥ २१६ ॥

[सार्त्ति सव्यथामदौ हृदस्थविशेष फलमाह ।]

राज सन्दर्शने यस्या दौ हृदं जायते स्त्रियः ॥ अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ २१७ ॥

दुकूल यह कौशेय भूषणादिषु दौ हृदात् ॥ अलङ्कारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ २१८ ॥

आश्रमे संयतान्मानं धर्मशीलं प्रसूयते ॥ देवता प्रतिमायन्तु प्रसूते पार्यदोयमम् ॥ २१९ ॥

भा० दौ हृदका विशेष फल कहते हैं ॥ जिन औरतों को राजाके देखने का दौ हृद होता है। वह बड़ी प्रारब्ध वाला द्रव्यवान् पुत्र को उत्पन्न करती हैं ॥ २१७ ॥ दुकूल यह कौशेय अर्थात् रेशमी कपड़ा और अलंकार इत्यादिकों के दौ हृद से अलंकार को चाहनेवाला सुंदर पुत्रको वो उत्पन्न करती हैं ॥ २१८ ॥ आश्रम में एकाग्र चित्तवाला धर्मशील जनती है। देवताके प्रतिमासा और प्रमथके सेसा पुत्र उत्पन्न करती हैं ॥ २१९ ॥

(क) आश्रमे तपस्विनामाश्रमे दौ हृदात् पार्यदोयमं प्रमथोयमम् ॥

दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ॥ रक्ताक्षं लोमशं शूरं महिषामिष दौ हृदात् ॥ २२० ॥

वाराहमांसे स्वसालुं शूरं संजनयेत् सुतम् ॥ मृ

गमांसे तु तच्छीलं विक्रान्तं वनचारिणम् ॥ २२१ ॥

भा० (क) आश्रम में अर्थात् तपस्वियों के आश्रम में। व्यालजानियों-

के दर्शन में अर्थात् सर्प व्याघ्रादिकों के देखने में हिंसा स्वभाववाला उत्पन्न होता है ॥ भैंस के मांस के दो हृद से लाल आंख वाला और बहुत रोवने वाला पृथक् ऐसे पुत्र को उत्पन्न करती है ॥ २२० ॥ सूँवर के भोंस के दो हृद से बहुत नींद वाला पुत्र को उत्पन्न करती है । मृग मांस में उसी का मांस स्वभाववाला विक्रान्त वन में घूमने वाला पुत्र उत्पन्न करती है ॥ २२१ ॥

अं नोऽनुक्तं पु या नारी दोहदं विदधाति हि ॥ शरी
राचार शीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥ २२२ ॥

पञ्चमे मानसं षष्ठे बुद्धिश्चाति प्रबुद्धते ॥ सर्वा

गयङ्गान्युपाङ्गानि भृशं व्यक्तानि मममे ॥ २२३ ॥

ओजोऽष्टमे सञ्चरति माता पुत्रो मुहुः क्रमात् ॥ ते

न तो म्लानमुदितौ स्यातां जातौ न जीवति ॥ २२४ ॥

भा० इसी जो कहा नहीं गया उसमें जो औरत दो हृद को धारण करती है वो शरीर के आचार और शील से समान को करेगी ॥ २२२ ॥ पांचवें महीने में मन छूटे महीने में बुद्धि मालूम होती है ॥ सातवें महीने में सब अंग और उपांग अच्छी तरह से प्रगट होते हैं ॥ २२३ ॥ आठवें महीने में जो जमाता और लड़के में बार २ संचार करता है ॥ उससे वो म्लान मुदित होते हैं । उसमें जवा बालक नहीं जीता ॥ २२४ ॥

अजीवंत्यष्टमे जानस्तत्रा जो नस्थिरं यतः ॥ तथा

नैर्ऋत्यभागत्वादापयेतद्वलिं ततः ॥ २२५ ॥

(नैर्ऋत्याय भागश्च बालेषु रुद्रेण दत्तः ॥)

[यत उक्तं कुमारतन्त्रे ।]

अष्टमे मासि नैर्ऋत्याय मासौदनं बलिं दापयेदिति ।

नवमे दशमे मासि नारी बालं प्रसूयते ॥ एकाद-

शो द्वादशे वा ततोऽव्यक्तं विकारतः ॥ २२६ ॥

भा० आठवें महीने में हुवा नहीं जीता क्यों कि उसमें ओज स्थिर नहीं रहता । उसी सनैऋत्य के भाग होने से उसका बलि दिवाविं ॥ २२५ ॥ नैऋत्य के अर्थ भाग वा नक्षत्र को रुद्रने दिया । जैसा कि कुमारतन्त्र में कहा है ॥

आठवें महीने में नैऋत्य के अर्थ मांसौदन बलि दिवाविं ॥ नवें दसवें महीने में औरत पुत्रको उत्पन्न करती हैं ॥ ग्यारहवें महीने या बारहवें महीने पुत्र जनती हैं । इसके ऊपर विकार से हुवा जानना चाहिये ॥ २२६ ॥

गर्भे यदङ्गं प्रथमं भवति ।- । तदाह- ।

शिरो भवति चाङ्गस्य पूर्वमित्याह शोणकः ॥ शिर

स्य वोप जायन्ते प्रधाना नीन्द्रियाणि यत् ॥ २२७ ॥

हृदयं जायते पूर्वं कृतवीर्योऽवदन्मुनिः ॥ बुद्धिश्च

मनसश्चापि यतस्तत् स्थानमीरितम् ॥ २२८ ॥

पाराशर्य्य इति प्राह पूर्वं नाभिसमुद्भवः ॥ प्राणी

यत्र स्थितो देहं वर्द्धयत्यूष्म संयुतः ॥ २२९ ॥

पाणिपादं भवेत् पूर्वं मार्कण्डेय मुनेर्मतम् ॥ देहि

नः सकलाः श्रेष्ठाः पाणिपादाश्रया यतः ॥ २३० ॥

भा० गर्भ में जो अंग पहिले होता है उसको कहते हैं ॥ अंग के पहिले शिर होता है ऐसा शोणक कहते हैं ॥ क्यों कि शिर में ही होनी हैं मुख्य इन्द्रियें ॥ २२७ ॥ पहिले हृदय होता है । ऐसा कृतवीर्य मुनि कहते हैं । क्यों कि बुद्धि और मनका भी वोही स्थान कहा गया है ॥ २२८ ॥ पाराशर्य्य ऐसा कहते हैं कि पहिले नाभि होती है । जिसमें प्राण उष्मा हुवा देहको बढ़ाता है ॥ २२९ ॥ हात पांव पहिले होते हैं ऐसा मार्कण्डेय मुनिका मत है । क्यों कि देह की संपूर्ण चेष्टा हाथ पावों के आश्रय होती है ॥ २३० ॥

प्रथमं जायते कोष्ठं ततः सर्वोङ्गसम्भवः ॥ एतच्च

कथयामास गौतमो मुनिपुङ्गवः ॥ २३१ ॥ सर्वो-

तद्यङ्गान्युपाङ्गानि युगपत् सम्भवन्ति हि ॥ सूक्ष्म
त्वान्नोपलभ्यन्ते मतं धन्वन्तरे रिदम् ॥ २३२ ॥
आमस्यानुफले भवन्ति युगपत् मांसास्थिमज्जादयो ।
लक्ष्यन्ते न पृथक् पृथक् तनुतया पुष्टास्तएव स्फुटाः ॥
एवं गर्भसमुद्भवे त्ववयवाः सर्वे भवन्त्ये कदा । लक्ष्याः
सूक्ष्मनयानि न ते प्रकटता मायान्ति वृद्धिङ्गताः ॥ २३३ ॥

भा० यहिले कोष्ट होता है क्यों कि उससे संपूर्ण अंगकी उत्पत्ति होती है इस प्र-
कार मुनिश्रेष्ठ गौतमजी महाराज ने कहा है ॥ २३१ ॥ सब अंग और उपां-
ग एक साथ ही उत्पन्न होने हैं । सूक्ष्म होने से नहीं मालूम होता यह धन्वन्त-
रिका मत है ॥ २३२ ॥ आमके छोटे फलमें एक साथ ही मांस अस्थिमज्जा
दिक् होते हैं । परन्तु अलग अलग नहीं मालूम होते बहून सूक्ष्म होने से । और
बाही पुष्ट होवे स्फुट मालूम होने हैं ॥ २३३ ॥

(क) मज्जादयः इत्यादि शब्देन त्वक्षेपार मज्जत्वगङ्गु-
र वृत्तानि गृह्यन्ते ॥ (ख) अथ शरीरे पितृज मातृ-
ज रज्जात्मजा भागा उच्यन्ते । तत्र-

केशाश्च लोमानि नखा दन्ताः शिरास्तथा ॥
धमन्यः स्नायवः शुक्रमेतानि पितृजानि हि ॥ २३५ ॥
मांसासृक् मज्जमेदांसि यकृन् सीहान्त्र नाभयः ॥
हृदयञ्च गुदञ्चापि भवन्त्येतानि मातृजः ॥ २३६ ॥

भा० ऐसे ही गर्भके उत्पन्न होने में सब अवयव एक साथ ही होते हैं । वे
नूतन होने से प्रकट नाकी नहीं प्राप्त होते और जब पुष्ट होने हैं तब देखने
योग्य होते हैं ॥ २३४ ॥ (क) मज्जादय इत्यादि शब्दसे त्वक्षा के शर मज्जा
अङ्गुदिक लिये गये हैं । (ख) अनन्तर शरीर में पितृज मातृज रज्ज आ-

त्मज भागों को कहते हैं ॥ उसमें केश श्यश्रु सोम नख चांत और शिरा तथा ध-
मनि स्त्रायु मुक्त ये पितृज हैं ॥ २३५ ॥ मांस रुधिर मज्जा मेद यकृत स्नि-
ह आंत नाभि हृदय गुदा ये माता से बनी हैं ॥ २३६ ॥

शरीरोपचयो वर्णो बलं देह स्थिति स्तथा ॥ रसादि-
तानि जायन्ते भिषजो मुनयो जगुः ॥ २३७ ॥ ज्ञानं
विज्ञानमायुश्च सुखदुःखादिकं तथा ॥ इन्द्रिया-
णि च सर्वाणि भवन्त्ये तानि चात्मनः ॥ २३८ ॥
(क) दुःखादिकमित्यादि शब्देन नाना योनिजन्मादिकं
मुच्यते । आत्मनः आत्मसन्निकर्षात् नत्वात्मनो जा-
यन्ते आत्मनो निर्विकारात् प्रकृतिभावानु पेतः ॥

भा० शरीर की इदि वर्ण बल और देह की स्थिति ये सभी से उत्पन्न होते हैं
ऐसा वैद्य मुनि कहते हैं ॥ २३७ ॥ ज्ञान विज्ञान आयु और सुख दुःख
तथा सम्पूर्ण इन्द्रिया ये अपनी हैं ॥ २३८ ॥ (क) सुख दुःखादि दु-
स्त शब्द से नाना योनिके जन्मादिक कहे हैं ॥ आत्मनः अर्थात् आत्मा
के सम्बन्ध से न कि आत्मा से उत्पन्न होता है । आत्मा का निर्विकार होने
से प्रकृति भाव से मिला हुआ है ॥

(गर्भस्य किं किं विशिष्टोपकारकं तत्त दाह ।)

अग्नी सोमो मही वायुर्नभः सत्त्वं रजस्तमः ॥ पञ्चै-

न्द्रियाणि भूतान्मा गर्भं सञ्जीवयन्ति हि ॥ २३९ ॥

(क) अग्निरत्न पाचका लोचक रज्जक आजक साधका
नाम् तथा पाञ्चभौतिकानां तथा सप्तधातु गतानामग्नी
नाम् । शक्तिरूपतया वास्थिती वाचाधिदेवत्वं प्राप्ति यो-

गर्भके बरा २ अधिक उपकार कहें उसको कहते हैं ॥ अग्नि चन्द्र एखी वा
यु आकाश और सत्त्व रज तम तथा पांच इन्द्रियां और भूतात्मा गर्भकी जिवानि
हैं ॥ २३६ ॥ (क) अग्नि यहाँपर पाचक आलाचक रंजक भ्राजक स्थाप
क इनकी तथा पंच महाभूत सम्बन्धियोंकी और सप्रधान अग्नियों की
शक्तिरूप करके ठहरा हुआ बाँचाके अधिदेवत्व की प्राप्तहुवा जानना चाहि
ये

इव्यः ॥ (ख) स पाचकादिकर्मणा जीवयति सोमश्च
पञ्चात्मकं प्लक्ष्म रस शुक्रादीनां सोमात्मकानां भावा-
नां रसेन्द्रियस्य च शक्तिरूपतया वस्थितो मनसश्चाधि-
दैवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः । (ग) स च सौम्यधातुरोजः प्र-
भृतेः पोषणेन पवनपाचकमंशुष्क भागस्याद्वेता विधा-
नेन जीवयतीति शेषः ।

भा० (ख) वो पाचकादि कर्म्मों से जिवानाहें । सोमभी पंचात्मक प्लक्ष्म
रस शुक्रादि सोमात्मक भावोंका रसेन्द्रियका भी शक्तिरूप कर
के ठहराहुवा मनके अधिदेवत्वकी प्राप्तहुवा जानना चाहिये ॥
(ग) वो सौम्य धातु ओज प्रभृतिका पोषणके द्वारा अर्थात् वायु अग्नि
से सके ऊँचे भागकी आर्द्रताके विधानसे पोषणकरनाहें ।

मही च जलेन क्लिप्तस्यापि कठिनविधानेन वपुर्दोष
धातुमलाङ्गे पाङ्गुदीनां सञ्चारणेनोच्छ्वास निःश्वा
साभ्यां मनोरूपतया परिणतं जीवात्मनः शरीरान्तरे
जीवनग्रहण मोक्षणे हेतुरिति तदपि जीवयति पञ्चे
न्द्रियाणि श्रोत्रत्वङ् नेत्रजिह्वा घ्राणानि प्राण्यदिग्रह-
णकर्मणा ॥

भा० पृथ्वी भी जलसे किन्न हवका भी कविन विधानसे शरीर के शेषधातु मल और अंगोपाङ्गों की संचारणा से तथा उच्छ्वास निष्वासां के द्वारा मनोऋप करके परिणाम की प्राप्त जीवात्मा के शरीर के बीच में जीवन प्रण मोक्षरा का हेतु है । वो भी जीवता है पंचेन्द्रियों की श्रोत्र त्वचा नेत्र जिह्वा घ्राणों को शब्दादियों के ग्रहण कर्मसे ॥

(घ) भूतात्मा कर्मपुरुषः स चाशेषस्यैव राशेश्चैत-
न्य हेतुर्जीवयतीति । [अपरं गर्भस्य जीवनोपायमाह]

गर्भस्य नाभिनाड्या तु नाडी रसवहा स्त्रियाः ॥

संलग्ना तेन गर्भस्य वृद्धिर्भवति नित्यशः ॥ २४० ॥

निःश्वासोच्छ्वास संक्षोभस्वप्नांशान् सांधिगच्छति ।

मातुर्निश्वासितोच्छ्वाससङ्गोभ स्वप्नसम्भवात् २४१

(क) सङ्गोभः सञ्चलनं माता निश्वासादिकाया श्रेष्ठाः
करोति तास्ता गर्भोऽपि करोतीत्यर्थः ॥

भा० (घ) भूतात्मा कर्मपुरुष वो सम्पूर्ण राशिका चैतन्य कारणा जी-
वन करता है । गर्भ के नाभिकी नाडिसे और तों की रसवहा नाडी मिली
है उसे प्रतिदिन गर्भकी वृद्धि होती है ॥ २४० ॥ माता के निष्वासश्वा-
स से और उच्छ्वास संचलन तथा स्वप्न इनके संभव से निःश्वास उच्छ्वा-
स संक्षोभ स्वप्नांश इनको वह प्राप्त होता है ॥ २४१ ॥

(क) अर्थात् माता के सांस लेने से गर्भ सांस लेता है उसके सोने से वो
सोता है उसके चलने फिरने से वह चलना फिरता है ॥ संक्षोभ अर्थात्
हिलना ॥

[अथ गर्भवृद्धेर्हेतुमुपायमाह ।]

गर्भस्य नाभिमध्ये तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम् ॥

तत्रा धमति वान्श्च देहस्तेनास्य वर्द्धते ॥ २४२ ॥

उद्योता संहितश्चापि दास्यत्यस्य मारुतः ॥ कर्तुं नि-

व्यगधस्ताच्च स्रोतान्ति तु यथा तथा ॥ २४३ ॥

(क) यथादास्यति विस्तारयति । तथा तथा देही वर्द्धयति इति पूर्वशान्वयः । दृष्टिरोम कूपानामवृद्धिमाह ।

दृष्टिश्च रोमकूपाय न वर्द्धन्ते कदाचन ॥ ध्रुवा-
रयितानि मर्त्यानामिति धन्वन्तरेर्मनम् ॥ २४४ ॥

भा० अन्तर गर्भवृद्धि के कारण उपाय की कहते हैं ॥ गर्भ की नाभि के बीच में ज्योतिस्थान कहा गया है । जब वायु उसकी धीकता है तब इसका देह बढ़ता है ॥ २४३ ॥ उष्ण करके सहित भी वायु ऊंचा नीचा तिरछा जैसे तैसे इसको दारण करता है ॥ २४३ ॥

(क) जैसे जैसे दारण करना है अर्थात् विस्तार करता है वैसे देह बढ़ती है । इस प्रकार पूर्व के साथ अन्वय है ॥ दृष्टि रोम कूपों की वृद्धि कहते हैं । दृष्टि और रोमकूप ये कभी भी नहीं बढ़ते । क्योंकि मनुष्यों के ये सदा से ही ऐसा धन्वन्तरि का मत है ॥ २४४ ॥

[नख केशानां सदा वृद्धिमाह]

शरीरे क्षीयमाणोऽपि वर्द्धते ह्यविमौ सदा ॥ स्वभा-
वं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥ २४५ ॥

(प्रकृतिं कृत्वा कारणं कृत्वा स्थिति मर्क्यादा) ।

[अचेतनान्यङ्गान्याह ।]

चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः ॥ केश-
लोमनखाग्रान्तर्मलद्रव्यगुरोर्विना ॥ २४६ ॥

भा० नख केशों की सदा वृद्धि कहते हैं । शरीर के क्षीय होने पर भी ये दो सदा बढ़ते हैं । स्वभाव प्रकृतिको करके अर्थात् कारण करके नख केश इस प्रकार रहते हैं ॥ २४५ ॥ अचेतन अंगों की कहते हैं ॥ चेतनों का अधिष्ठान मन और इन्द्रियों के साथ देह मलद्रव्य गुरों के बिना केश लोम नख

के अग्रपर्यन्त हैं ॥ २४६ ॥ गर्भको वानमलमूत्र के नकरने में कारण कहते हैं ॥

[गर्भस्य वानविणमूत्रोत्सर्गो कारणमाह]

वाताल्पत्वादयोगाच्च वायोऽपक्वाण्यस्य च ॥ वा
तमूत्रपुरीषाणि गर्भस्थो न विमुञ्चति ॥ २४७ ॥

(अयोगात् । दूषद्योगात् ।) गर्भोदने कारणमाह ।

जरायुणां मुखेच्छन्नेकगठे च कफवेष्टिते ॥ वायां
मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदति ॥ २४८ ॥

भा० पक्वाण्य के वात के अल्प होने में तथा वायु के थोड़े होने से वातमूत्र मलको गर्भमें रहनेवाला नहीं छोड़ना ॥ २४७ ॥ अयोगसे अर्थात् थोड़े योगसे ॥ गर्भके नरुनेका कारण कहते हैं । गर्भाण्यसे मुख छका रहने और कफसे कगठ वेष्टित होने में वायुका मार्ग रुकने से गर्भ में रहने वाला नहीं रोता ॥ २४८ ॥

[अथ गर्भवती कृत्याकृत्यानि ।]

गुर्विणी प्रथमा दहः महष्टा भूषिता शुचिः ॥ भवे

च्छुक्ताम्बरधरा गुरुविप्रार्च्चने रता ॥ २४९ ॥ भोज्य

न्तुमधुरप्रायं स्निग्धं हृद्यन्त्वं लघु ॥ संस्कृतं दीपनी

यन्तु नित्यमेवोपयोजयेत् ॥ २५० ॥ गुर्विणी नतु कु

र्वीन व्यायाम मयतर्पणम् ॥ व्यवायञ्च न सेवेत न

कुर्यादति तर्पणम् ॥ २५१ ॥

भा० अनन्तर गर्भवती के कृत्य और अकृत्यों को कहते हैं ॥ गर्भिणी पहिले दिनसे हर्षयुक्त भूषणोंसे युक्त पवित्र रहें और श्वेतवस्त्र की धारण करने

वाली तथा गुरु ब्राह्मणों की पूजा में तत्पर होवे ॥ २४६ ॥ और भोजन मधुर
प्राय स्निग्ध स्वादिष्ट हलका संस्कार किया हुआ और दोपनीय ऐसे भोजन
को निन्द्य उपयोग करें अर्थात् भोजन न करें ॥ २४७ ॥ गर्भिणी व्यायाम अर्थात्
न कसरत और उपनयण इनको न करे तथा व्यवाय अर्थात् मैथुन इसको
भी न करे और वज्रत वृत्ति भी न करे ॥ २४८ ॥

रात्रौ जागरणां शोकं ध्यानस्यारोहणं तथा ॥ रक्तमो
क्षं वेगगेधं न कुर्यादुत्कटासनम् ॥ २४९ ॥ दोषा
भिधातैर्गर्भिताया यो यो भागः प्रपीड्यते ॥ स स भा-
गः प्रारोक्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ २५० ॥ मलि-
नां विहृताकारां हीनाङ्गीनां स्पृशेत् स्त्रियम् ॥ न
निघ्नेदपि दुर्गन्धं न पश्येन्नयना प्रियम् ॥ २५१ ॥
वचामि नापि शृणुयात्करोयोरप्रियाणि च ॥ नान्न
पर्युषितं शुष्कं भुञ्जीत कथितं न च ॥ २५२ ॥

भा० रात्र में जागना शोक और सवारी का चढ़ना तथा कस्तूरी के चोदह वेगों
का एकना और उकड़ बैठना इनको भी गर्भिणी न करे ॥ २४९ ॥ दोष और
अभिधात से जो २ भाग गर्भिणी का पीड़ित होता है वो २ भाग उस गर्भ में
रहने वाले बालक का भी पीड़ित होता है ॥ २५० ॥ मलीन विहृत आ-
कार वाली हीन अंग वाली ऐसी स्त्री की स्पर्श न करे । दुर्गन्ध को न सूंघे
और नेत्र के अप्रिय को न देखे ॥ २५१ ॥ कानों की अप्रिय वाणी को भी
न सुने । बाली सूखा जोश दिया हुआ ऐसे भोजन को भोजन न करे ॥ २५२ ॥

चैत्यपमशानं वृक्षोश्च भावांश्चाप्ययशस्करान् ॥
वह्निर्निष्क्रमणं क्रोधं भूत्यागारज्ज्वर्जयेत् ॥ २५३ ॥
नैवेद्यः ब्रूयात्तत्कुर्याद् येन गर्भो विनश्यति ॥ नै

लाभ्यङ्गेदत्तनञ्च नात्यर्थं कारयेदपि ॥ २५७ ॥
 नामृदास्तरणं कुर्यान्नात्युच्चं शयनासनम् ॥ एतौ
 स्तु नियमान् सर्वान् यत्नान् कुर्वीत गुर्विणी ॥ २५८ ॥

भा० चैत्य श्मशान वृक्ष और अपशको करने वाले पदार्थ । तथा वा
 स्तर का जाना क्रोध और सूनेमकान, इनको त्यागदेवे ॥ २५६ ॥ उच्च
 स्तर से नबोले और उसको नकरे जिसमें गर्भ नष्ट होवे । तेलका लगाना उ
 चटना इनको बहुत नकरे ॥ २५७ ॥ चुभने योग्य विस्तरानकरे । तथा
 बहुत ऊँचे पर शयन आसन नकरे । इन सब नियमों को गर्भिणी यत्न से
 करे ॥ २५८ ॥

[अथ प्रसवमासानाह ।]

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते ॥ एकाद
 शे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ २५९ ॥

[अथ मृतिका गृहाकृतिः ।]

अष्टहस्तायतञ्चारु चतुर्हस्त विशालकम् ॥ आ
 चीद्वारमुदगृह्वारं विदध्यात् मृतिका गृहम् २६०

भा० अतन्तर बालक होनेके महीनोंको कहते हैं ॥ स्त्री नवम दशम मा
 स में बालक को जनती है ॥ अथवा ग्यारह बारह मासमें उ किं अन्य
 न्नकरती है । उसके ऊपर विकार से होता है ॥ २५९ ॥ अतन्तर मृति
 का गृहकी आकृति कहते हैं ॥ अष्ट हाथ चौड़ा चार हाथ लंबा सुन्दर
 घर उस दरवाजा ऐसा मृतिका घर बनावे ॥ २६० ॥

[असन्न प्रमवायाः लक्षणमाह ।]

यानि हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबन्धने ॥ मरु
 ले जयने नारी विज्ञेया प्रमवोन्मुका ॥ २६१ ॥ आ
 सन्न प्रमवायास्तु कटीष्ठस्तु सन्पथम ॥ भवेत्

सुहः प्रवृत्तिश्च मूत्रस्य च मलस्य च ॥ २६२ ॥

[अथासन्नप्रसवाया उपचारः।]

तैलेनाभ्यक्तगात्राणां संस्नाता मुष्णा वारिणा ॥ य

वागूम्याययेत् कौषां मात्रया घृत संयुताम् ॥ २६३ ॥

कृत्वापधानि मृदुभिर्विस्तीर्णे शयने शनैः ॥ आमु-

ग्नसकृदि चोत्ताना नारी तिष्ठे द्वयथान्विता ॥ २६४ ॥

भा० आसन्न बालक होने वाली का लक्षण कहते हैं ॥ कृष्ण के टीले होने में और हृदय बन्धन के छूटने में तथा कटिदेश में शूल होने में निकट प्रसव होने वाली स्त्री जानती चाहिये ॥ २६१ ॥ आसन्न प्रसव के कटि पीठ हस में पीड़ा और बार बार मल मूत्र की प्रवृत्ति ये होती हैं ॥ २६२ ॥

अनन्तर आसन्न प्रसवा का उपचार कहते हैं ॥ इसीर को तेल लगाकर गरम यानी से स्नान की हुई घृत से मिले डूबे कुछ गरम यवागू को मात्रा से पिला जावे ॥ २६३ ॥ जो यों को न सिकुड़ के उत्तान पीड़ा वार के युक्त स्त्री नह ॥

(आमुग्नसकृदि आसङ्गे चितोस्तु।) अथ जनयित्री।]

चतस्रोऽष्टाङ्गनीयाश्च स्नावने कुशलाहिताः ॥ २६५ ॥

परिचरे युक्ताः सम्यक् छिन्न नखाः स्त्रियः ॥ २६५ ॥

[अथ जनयित्री कृत्यम्।]

अपत्यमार्गे तैलेन समभ्यज्य समन्ततः ॥ सका तु

नास्तु सुभगे प्रवाहस्वेति नो वदेत् ॥ २६६ ॥

भा० अनन्तर दाई को कहते हैं ॥ चार अष्टाङ्गनीय और हित स्नावन में कुशल दूढ़ी और नख से रहित दो दाइयाँ सेवा करें ॥ २६५ ॥

[अनन्तर दाइयों का कृत्य कहते हैं।]

गर्भमार्गके आसपास तेल चुपड़के। एक अंगुली सुभगे प्रवाहरा कर ऐसा
उसको कहै ॥ २६६ ॥

अव्यथामा प्रवाहिषाः प्रवाहेषा व्यथा यदि ॥ प्रवा
हेषाः शनैः पूर्वं प्रगाढञ्च ततः परम् ॥ २६७ ॥ ततो
गाढतरं गर्भे योनिद्वारं मुपागते ॥ २६८ ॥ अपरास
हितो गर्भो यावन् पतति भूतले ॥ २६९ ॥

[व्यथारहितायाः प्रवाहराणामै गुण्यमाह ।]

मूकं वा बाधिरं कुब्जं श्वासं कासं क्षयाच्चितम् ॥

रूतं स्वस्तं तु बालमकाले तु प्रवाहरात् ॥ २६९ ॥

इति श्रीमिश्रलटकन तनय श्रीमन्मिश्रभाव वि
रचिते भावप्रकाशे गर्भप्रकरणं द्वितीयम् ॥ २ ॥

भा० प्रवाहरा अर्थात् पीछे से दबाना । व्यथा न होतो प्रवाहरा न करे । और यदि व्यथा होतो प्रवाहरा करे । पहिले धीरे २ प्रवाहरा करे उसके अनन्तर जोरसे करे ॥ २६७ ॥ और जब गर्भ योनि द्वारमें आ जावे तो उससे भी अधिक प्रवाहरा करे । जब तक बालक के साथ गर्भ भूमि पर गिरै तब तक प्रवाहरा खूब जोरसे करे ॥ २६८ ॥ व्यथा रहित के प्रवाहरा से जो नुकसान होता है उसको कहते हैं । गूझा या दबिरा कुबड़ा अथवा श्वास कास क्षयसे युक्त । अकाल के प्रवाहरा से इस प्रकार का और ध्वस्त शरीर बालक को उत्पन्न करती है ॥ २६९ ॥

इति श्रीमिश्रलटकन के पुत्र श्रीभावमिश्र का विरचित भावप्रकाश में दूसरा बालक का प्रकरण समाप्त ॥ २ ॥ *

[अथ बालस्य जन्मोत्तर विधिः]

अथ बाले समुत्पन्ने विदधीत विधिं ततः ॥ यथेव

कुलवृद्धा स्त्रीव्यवहार परम्परा ॥ १ ॥

[अथ प्रसूताया नियमानाह ।]

प्रसूता हितमाहारं विहारञ्च समाचरेत् ॥ व्यायामं
मैथुनं क्रोधं शीतमेवां विवर्जयेत् ॥ २ ॥ मिथ्याचा
रान् सूनिकाया थो व्याधिरुपजायते ॥ सकृच्छ्रसा
ध्योऽसाध्यो वा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ३ ॥

भा० अनन्तर बालक के जन्म होने के अनन्तर की विधी कहते हैं ॥ अनन्तर बालक होवे पर कुलकी वृद्ध स्त्री के

अनुसार विधिकरे ॥ १ ॥ [अनन्तर जन्मा के नियम कहते हैं]

जन्मा हित आहार और विहार को करे । श्रम मैथुन क्रोध
मेवन छोड़ देवे ॥ २ ॥ विरुद्ध आचार से जन्मा को जो व्याधि होती है ॥
वो कष्ट माध्य या असाध्य होती है । इस वास्ति पथ्य करे ॥ ३ ॥

[प्रसूताया नियम समयऽवधिमाह ।]

सर्वतः परिशुद्धा स्यात् स्निग्धं पथ्याऽल्पभोजना ॥

स्वेदाभ्यङ्ग परानित्यं भवेन्मासं मनन्दिता ॥ ४ ॥

(क) सर्वतः परिशुद्धा तु अवसृष्ट दुष्टरुधिरां अनन्दिता
सावधाना ॥

प्रसूता सार्द्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्त्तवे ॥ सूति

काना महीना स्यादिति धन्वन्तरिर्मतम् ॥ ५ ॥

भा० अनन्तर जन्मा के नियम समय की अवधि कहते हैं ॥ एक मास
पर्यन्त जन्मा का दुष्ट रुधिर निकले और माध्य घृत के हित भोजन करे ॥
तेल का लगाना पसीना सिवाना रोज करे और सावधान रहे ॥ ४ ॥ मर्द
नः परे शुद्धा अर्थात् निःस्वन दुष्ट रुधिरां अनन्दिता अर्थात् सावधान ।

यदि जन्मा डेढ़ महीने के बाद रजस्वला हो तो जन्मा पने से हीन होती है
वह धन्वन्तरि की मत है ॥ ५ ॥

व्युपद्रवां विशुद्धाञ्च विज्ञाय बरवर्णिनीम् ॥ ऊ-
र्द्धं चतुर्थ्यो मासेभ्यो नियमं परिहारयेत् ॥ ६ ॥

[अथ स्तन्यस्वरूपमाह।]

रसप्रसादो मधुरः पक्वाहार निमित्तजः ॥ कृतस्नादे
हान् स्तनो प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ ७ ॥

(रसप्रसाद रसस्य सारः।) [स्तन्यस्य प्रवृत्तिमाह।]

स्तन्यं विराज्वात् स्त्रीणां वा चतूरावादनन्तरम् ॥ प्र-
वर्तयन्ति विवृता धमन्यो हृदयेः स्थिताः ॥ ८ ॥

भा० सुहागवाली को उपद्रव से हीन और विशुद्ध देखके। चार महीने के बा-
द नियम खुड़ा देवे ॥ ६ ॥ [अनन्तर दूध का स्वरूप कहते हैं]

रस का सार मधुर पक्का आहार से उत्पन्न होता। सम्पूर्ण शरीर से स्तन में पहुँ-
चा दूध कहा जाता है ॥ ७ ॥ (रसप्रसाद अर्थात् रस का सार।) दूध के निक-
लने की कहते हैं। स्त्रियों का तुल्य तीन या चार दिन के बाद हृदय में रहने वा-
ली फैली हुई धमनियाँ निकालती हैं ॥ ८ ॥

[अथ स्तन्यप्रवृत्तिमाह।]

पयःपुत्रस्य संस्पर्शाद्दर्शनात् स्पर्शनादपि ॥ ग्रह-
णादप्यु रोजस्य शुक्रवत्सं प्रवर्तते ॥ ९ ॥ स्नेहो
निरन्तरः स्तस्य प्रवाहे हेतुरुच्यते ॥

[अथ स्तन्यस्याल्पतेहेतुमाह।]

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात् क्रीडादत्यय तर्पणात् ॥
स्त्रीणां स्तन्यं भवेत्स्वल्पं गर्भान्तर विधारणात् ॥ १० ॥

[अथ स्तन्यस्य वृद्धिहेतुमाह।]

भा० अनन्तर स्तन्यकी प्रवृत्ति को कहते हैं ॥ दूध पुत्रको छाती से लगाने से
देखने से । या छाती के पकड़ने से अथवा चूषियों को छूने से शुक्र के मानिंद नि
कलता है ॥ ८ ॥ प्रेम उसके निरन्तर निकलने में कारण कहा है ॥
अनन्तर दूध के उत्पन्न होने में कारण कहते हैं ॥ प्रेम के न होने से भय से
शोक से क्रोध से और तृप्ति के न होने से ॥ स्त्रियों का दूध अल्प होता है । अ
थवा दूसरे गर्भ को धारण करने से अल्प होता है ॥ ९० ॥

शालिषष्ठीक गोधूमान् मांस क्षुद्र यवानपि ॥ का
लशाक मलावृच्च नारिकरं कसेरु कम् ॥ ११ ॥

शृङ्गाटकं वरींचापि विदारिं कन्द मेव च ॥ लम्बुन
दुग्ध वृद्धौ स्त्री सेवेन सुमना भवेत् ॥ १२ ॥ कमल
मस्य तरण्डुलानां कल्कं या क्षीरं पेधितम् पिवन्ति ॥

सा भवति भृशं तरुणी क्षीरभरेणैव तुङ्गकुचयुगला ॥
॥ १३ ॥ [कलमो धान्यविशेषस्तस्य लक्षणमाह ।]

भा० अनन्तर दूध के बढ़ने का कारण कहते हैं । काल शाक इसका आरु
शाक भी कहते हैं ॥ और गोंड देश में भरिका मसिद्ध है । और कदू नारिकेल
कसेरु ॥ ११ ॥ सिंघाड़े शानावरी विदारिकन्द लम्बुन । इनको स्त्री दुग्ध
वृद्धि के अर्थ सेवन करे उसे और इवे स्नानवाली होती है ॥ १२ ॥ कलम
एक किसिम का कश्मीर में बड़ा धान होता है उसके सबलों को दूध से
पीसकर कलम को जो पीती है । वानरुणी अत्यन्त दूध के भार से ही उन्नत
दोनों कुचवाली होती है ॥ १३ ॥ कलम धान्य विशेष है उसका लक्षण
कहते हैं ॥

कलमः कलिविरज्याती जायते स च हृद्दने ॥

काश्मीरदेश एवोक्तो महानण्डुल संज्ञकः ॥ १४ ॥

विदारिकन्दस्य रसं पिवेत् स्तन्यस्य विवृद्धये ॥ त-

चूर्णं तस्य वृद्धये पिवेद्वा क्षीरसंयुतम् ॥ १५ ॥

कलमकलि नामसे प्रसिद्ध बोंबड़े वनमें होता है । काश्मीर देशमें महा तं
हुल नामसे कहते हैं ॥ १४ ॥ दुग्धकी दृष्टिके अर्थ विहारीकंद का रस
पीवे ॥ अथवा उसका चूर्ण दुग्धदृष्टिके अर्थ दुधके साथ पीवे ॥ १५ ॥

[अथ स्तन्यस्य दुष्टहेतुमाह ।]

धात्र्या गुरुभिराहारैर्विहारैर्दोषलैस्तथा ॥ देहे

दोषाः प्रकुप्यन्ति ततःस्तन्यं प्रदुष्यति ॥ १६ ॥

मिथ्याहार विहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः ॥

दुष्यन्ति पयस्तेन शरीरे व्याधयः प्रीणोः ॥ १७ ॥

भा० अनन्तर दुधके दुष्ट होनेका कारण कहते हैं ॥ गरीष्ट और दोषल
आहार विहारों से धायके शरीर में दोष प्रकोप की प्राप्त होती है । उस्से दु
ग्ध बिगड़ता है ॥ १६ ॥ विरुद्ध आहार और विहार वाली स्त्रीके दुष्ट वा
ताविक दुधको बिगाड़ते हैं । उस्से बालक के शरीर में रोग होते हैं ॥ १७ ॥

[अथ दुष्टस्तन्यस्य लक्षणमाह ।]

कषायं सलिलं स्रावि स्तन्यं मारुतं दूषितम् ॥ पिता

दम्बज्ज्व कटुकं रज्ज्याऽम्भसितु पीतिका ॥ १८ ॥

कफ दुष्टन्तु यतोये निमज्जति च पिच्छिलम् ॥ द्व

न्दजन्तु द्विलिङ्गं स्यात् त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ १९ ॥

भा० अनन्तर दुष्टदुग्ध का लक्षण कहते हैं ॥ कसैला पानीमें तैरने वाला
सेसा दुग्ध वायुसे दूषित होता है । पित्तसे खट्टा कड़वा जलमें डालनेसे पीली
लकीरें होती हैं ॥ १८ ॥ और तीव्र दुग्ध कफसे दुष्ट होता है वह पानीमें डूब जा
ता है तथा पिच्छिल होता है । और दोलक्षण वाला द्वन्द्वज तथा तीन ल
क्षण वाला सान्निपातिक होता है ॥ १९ ॥

[अनन्तर बिगड़े दुग्धकी शोधन विधि कहते हैं]

अथ दुष्टस्तन्यस्य शोधन विधिमाह ।

धात्री क्षीर विशुद्ध्यर्थं मुद्गयूष रसाशिनी ॥ भार्गीदा-
 रुषचा पिष्ट्वा पिवेत्साति विषास्तथा ॥ २० ॥ पाठा-
 मूर्ब्वाब्द भूनिम्बैर्दारु शुण्ठी कलिङ्गकैः ॥ सारि-
 वा मत्स्य पित्तास्थेः क्वाथः स्तन्यं विशोधनः ॥ २१

(मत्स्य पित्ता कटुकी)

पटोल निम्बासन दारु पाठा मूर्ब्वा गुडूची कटुरोहि-
 र्णीच ॥ सनागरज्ज्व कथितञ्च तौये धात्री पिवेत्
 स्तन्यं विशुद्धि हेतोः ॥ २२ ॥

भा० धाय दूध अच्छा होने के वास्ते मूँग का पानी और रसा भोजन करने
 वाली होवे । भार्गी दार हर्दी बच अतीस इनकी पीसके पीवे ॥ २० ॥
 पाठा मुरी नागर मोथा चिरायता दारहर्दी सोंठ करंजुवा । सारिवा कुटकी इन
 का क्वाथ दूध शोधक है ॥ २१ ॥ (मत्स्य पित्ता कुटकी । पटोल पत्र नि-
 म्ब आसन दारहर्दी पाठा मुरी गिलोय कुटकी और सोंठ जल में जीवा-
 के धाय पीवे दुग्ध शुद्धि के अर्थ ॥ २२ ॥

[अथ शुद्धस्य लेक्षणमाह ।]

नीरे स्तन्यं यदेकी स्याद्विवर्णं मतन्तुमत् ॥ पाण्डु-
 रं तनुशीतञ्च तद्गुग्धं शुद्धमादिशेत् ॥ २३ ॥

[धात्री लक्षणमाह ।]

पीताय यदि बालस्य विदध्या दुपसांतरम् ॥ सुवि-
 चार्य्यं गुणान्देधान् कुर्याद्वात्री तदेह शीम् ॥ २४

भा० अतन्तर शुद्धका लक्षण कहने हैं ॥ जब पानी में दूध मिल जावे और
 दधिसा वर्ण और तारसे रहित ॥ शुभ्र सूक्ष्म तथा शीत ऐसे दूधको शुद्ध
 कहते हैं ॥ २३ ॥ [धात्री अर्थात् धाय का लक्षण कहने हैं]

जब बालक को दूध पीने के वास्ते धाय रखते । तो गुरा दोषों को अच्छे प्रकार विचार करके तब इस प्रकार की धाय रखते ॥ २४ ॥

सवरांगी मध्यवयसां सच्छीलां मुदितां सदा ॥ शुद्ध

दुग्धांम्बुद्ग क्षीरां सवत्सामति वत्सलाम् ॥ २५ ॥

स्वाधीनामल्पसन्तुष्टां कुलीनां सज्जनात्मजाम् ॥

कैतवेना परित्यक्तां निजपुत्र दृशं शिष्टीं ॥ २६ ॥

भा० अपनी जात की बीचवयवाली अच्छे स्वभाववाली, सर्वदा हर्षयुक्त रहनेवाली शुद्धदुग्धवाली बहूतदुग्धवाली बचोंवाली बहूत प्रीतिवाली ॥ २५ ॥ स्वाधीन और थोड़ेमें सन्तोष होनेवाली कुलीन तथा अच्छे घर की बेटी और धूर्ततासे रहित बालक में निजपुत्र के समान दृष्टि रखनेवाली ऐसी धाय को करे ॥ २६ ॥

[अथ निषिद्धां धात्रीमाह ।]

शोकाकुला क्षुधार्ता च श्रान्ता व्याधिमती सदा ॥

अत्युच्चा नितरां नीचास्थूलानीव भृष्टादूष्णा ॥ २७ ॥

गर्भिणी जरिणी चापि लम्बोक्षत पयोधरा ॥ अजी-

र्णा भोजिनी चापि तथा पथ्य विवर्जिता ॥ २८ ॥

आसक्ता क्षुद्रकार्येतु दुःखार्ता चञ्चलापि च ॥

एतासां स्तन्यपानेन शिशुर्भवति सामयः ॥ २९ ॥

भा० अनन्तर निषिद्ध धात्री को कहते हैं । शोक से व्याकुल क्षुधा से पीड़ित थकी हुई और सदा की रोगवाली । बहूत जंजी और बहुत नीची या बहुत मोटी अथवा बहुत दुर्बल ॥ २७ ॥ गर्भिणी जरवाली बहूत लंबे और बहुत बड़े चूचेवाली अजीर्ण में भोजन करनेवाली तथा पथ्यसे रहित ॥ २८ ॥ क्षुद्र कार्य में आशक्त और दुःख से पीड़ित और चञ्चल । इनके दुग्ध पान से बालक व्याधियुक्त होता है ॥ २९ ॥

[अथ बालस्य स्तन्यपान विधिः ।]

तत्र माता प्रशस्ताङ्गी चारुवस्त्रा पुरो मुखी ॥ उपवि-
श्यासने संम्यग्दक्षिणां स्तनमम्बुना ॥ ३० ॥ प्रक्षाल्य
क्षत्परिस्त्राव्य मन्त्राभ्यामभिमन्त्रितम् ॥ उद-
ङ्मुखं शिशुं क्रोडे शनैः सन्धार्य पाययेत् ॥ ३१ ॥
(मातेत्युपलक्षणम् धात्रीच क्षत्परिस्त्राव्य।)

[अन्यथा वैयुण्यमाह।] सुश्रुतः।

अस्त्रावितं स्तनं बालः पिवन् स्तन्येन भूयसा ॥ पू-
रोश्चेत वमीकांस प्रवासै भवति पीडितः ॥ ३२ ॥

भा० मनन्तर बालक के दूधपान की विधि कहते हैं ॥ उसमें अच्छे अ-
गवाली और अच्छे कपड़ों की पहरी हुई माता अंग की तरफ मुख की हुई
आसन पर बैठकर अच्छी तरह पर दाईं चूची को घानी से धोकर ॥ ३० ॥
और थोड़ा सा दूध निचोड़के मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर उत्तर मुख बालक
को गोबर में लैके धीरे ३ पिलावे ॥ ३१ ॥ माता का यह उपलक्षण है भायमी
थोड़ा निचोड़के) इसके विरुद्ध करने से जो विगाड़ होता है उसको सुश्रुत
कहते हैं । वे निचोड़ी हुई चूची को बालक पीकर बहुत दूध से नाड़ियों
के सेत भरना वमन कांस आंस इनके द्वारा पीडित होता है ॥ ३२ ॥

[अभिमन्त्रणमाह।]

क्षीरनीर निधिस्तेतु स्तनचो क्षीर पूरकः ॥ सदैव शु-
भगो बालो भवत्येष महाबलः ॥ ३३ ॥ पयोऽमृत-
त समम्पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ॥ दीर्घमायुर
वाप्नोति देवाः प्राप्यामृतं यथा ॥ ३४ ॥

भा० अभिमन्त्रण को कहते हैं ॥ यह मंत्र था पर लिखे ॥

(क) मन्त्रोच पित्रान्येन ब्राह्मणेन पठनीयो)

यावन्मन्त्रं पाठस्तावन्मात्रा धात्र्या दक्षिणा हस्तेन स्पर्शः कार्यः ।

[अथ जनन्याः क्षीरभावे धात्र्याश्वालाभे प्रकारमाह ।]

क्षीरसात्मा तथा क्षीरमाजङ्गव्यमथापि वा ॥ दद्यादा

स्तन्यपर्याप्ते बालेभ्यो वीक्ष्य मात्रया ॥ ३५ ॥

(१४) क्षीरसात्म्यतयेति यतः शिशोः क्षीरमेवासात्मा म्भवति न त्वन्नादिकम् । स्तन्यपर्याप्ते रिति यावत् स्त्रियाः स्तन्यस्य सन्ततो भावेन प्राप्तिर्भवति । अथ यावत् स्तन्यपानस्य योग्यता तावदित्यर्थः ॥

भा. (क) यिस जौर ब्राह्मणों के द्वारा इन मन्त्रों को पढ़ावे । जब तक मन्त्र पाठ होवे तब तक मां या धाय हस्ति हाथ से स्पर्श करे । अनन्तर मां के दूध नहीने मे या धाय के नमिलनेमें प्रकार की कहते हैं ॥ क्षीर की सात्म्यता से दूध बकरों का गायका देवे । दूध पीने की योग्यता तक देखकर मात्रा से बालक के अर्थ देवे ॥ ३५ ॥

(ख) क्षीर सात्म्यता इति । क्यों कि बालक की दूध ही सात्म्य होता है । न कि अन्नादिक । स्तन्य पर्याप्तेः इति । अर्थात् जब तक स्त्रियों के दूध की निस्तर भावसे प्राप्ति होती है । अथवा । जब तक दुग्ध पान की योग्यता है तब तक इत्यर्थः ॥ [अथ बालस्यान्नप्राशनसमयः ।]

यथोक्तविधिना बालं मासि षष्टेऽष्टमेऽपि च ॥ अन्नं सम्प्राणयेत्किञ्चित्ततस्तद्वर्जयेत्कृत्वा ॥ ३६

[अथ बालस्य परिचर्याविधिः ।]

बालमङ्गुः सुखन्दद्यान्नचैव नन्तर्जयेत् क्वचित् ॥ सहसा बोधयेन्नैव नायोग्यमुपवेशयेत् ॥ ३७ ॥

भा० अनन्तर बालक का अन्नप्राशन समय कहते हैं ॥ बालक को खड़े या आठवें महीने में यथोक्त विधिसे । अन्नप्राशन करावे उसके अनन्तर थोड़ा २ क्रमके साथ बढ़ाके अन्नप्राशन करावे ॥ ३६ ॥ अनन्तर बालक को परिचर्या विधि कहते हैं ॥ बालक को गोद में सुलावे और इसकी कभी फिक्र नही । तथा सहमान जगावे और अयोग्य स्थान में न रखे ॥ ३७ ॥

[अयोग्य उपवेशना समयः]

मातृस्य स्थापयेत् क्रीडि न क्षिप्रं शयने क्षिपेत् ॥

रेखयेन्न तत्तत्कार्यं विधिमावश्यकं विना ॥ ३८

(क) आग्रह्य विधिः भोजनदान तैलाभ्यङ्गोद्घर्तनादिभिः ॥

तच्चित्तमनुवर्तनं न संदेबाद् मोक्षयेत् ॥ निम्नोच्च

स्थानं तत्रापि रक्षेद्दालं प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥

भा० अयोग्य अर्थात् उपवेशन के असमय । और बालक को खेंचके गोद में न लेवे तथा पीछे विस्तरे पर न डाल देवे । आवश्यक विधिके बिना किसी कार्य में तोषावे ॥ ३८ ॥

(क) आग्रह्य विधि अर्थात् औषधकारिना तैलका अभ्यङ्ग उबटना इत्यादिको विना ॥ उसके मनके अनुकूल चले और सदा उसकी व्यापक करे । और नीची ऊंची जगह से बालक को यत्रके साथ रखा करे ॥ ३९ ॥

[बालस्य स्वभावादिनान्याह ।]

अभ्यङ्गोद्घर्तनं स्नानं नैव योरञ्जनन्तथा ॥ वस-

नं मृदुयत् तच्च तथा मृद्वनुलेपनम् ॥ ४० ॥ ज-

न्य प्रभृति गृह्यानि बालस्यै तानि सर्वथा ॥

[बालस्य कवलादेः समयमाह ।]

कवलयः पञ्चमाहर्षादष्टमान्तस्य कर्मच ॥

विरक्तः षोडशाद्वर्षाद्विंशतिश्चैव मेथुनम् ॥ ४१ ॥

[बालादिरवमाह सुश्रुतः ।]

वयस्तु त्रिविधमाल्यं मध्यमं वा द्विकन्तथा ॥ ऊन

षोडश वर्षस्तु नरो बालो निगद्यते ॥ ४२ ॥ त्रिविधः

सोऽपि दुग्धाशी दुग्धान्नाशी तथा न्नधुक ॥ दुग्धाशी

वर्ष पर्यन्तं दुग्धान्नाशी शरद्वयम् ॥ ४३ ॥

भा० बालक को स्वभाव से जो हित है उसको कहते हैं ॥ तेल का स्नाना उबटना स्नान औरों में अञ्जन । और जो मृदु वमन है तथा मृदु श्रुतलेपन ॥ ४० ॥ बालक को ये सब जन्म से लेकर पथ्य है ॥ बालक के कवलान दिकों का समय कहते हैं ॥ बालक को पाँचवें वर्ष से ग्रास देवे और आठवें वर्ष में उसका कर्म । और सोलहें वरस से विरचन । तथा बीस वरस से मेथुन ॥ ४१ ॥ बालक आदिकी अवधिकहते हैं सुश्रुत । वय तीन प्रकार के हैं बालक नरुण और बृद्ध । सोलह वरस से कम मनुष्य बालक कहलाता है ॥ ४२ ॥ दो बालक भी तीन प्रकार के हैं । एक तो खाली दूध पीने वाले । दूसरे दूध और अन्न को खाने वाले । तीसरे अन्न खाने वाले । एक वर्ष का दुग्ध भोजी और दो वरस का दुग्धान्न भोजी ॥ ४३ ॥

तदुत्तरं स्वादन्नापां एव बालस्त्रिधा मतः ॥ म

द्ये षोडश सप्तत्यो मध्यमः कार्यतो बुधैः ॥ ४४

चतुर्धा मध्यमम्प्राह युवा द्वाविंशतो मतः ॥ च

त्वारिंशत्समा याव तिष्ठे दीर्याद पुरितः ॥ ४५ ॥

ततः क्रमेशात्तीर्णः स्या यावद्भवति सप्ततिः ॥

भा० उसके अनन्तर अन्न भोजी ऐसे बालक तीन प्रकार के कहें हैं ॥ सोलह और सत्तर के बीच में मध्य वय परिहृत तो नैक ही है ॥ ४४ ॥ चार प्रकार का मध्यम कहा है युवा बीस वरस तक । और जवतक बालक

स बरस होते हैं तब तक वीर्य से लेके रसादि संपूरित रहते हैं ॥ अनन्तर क्रमके साथ क्षीण होते हैं सत्तर बरस तक ॥ ४५ ॥ (क) वीर्य इत्यादि प्राणसे रसादि सर्वधातु इन्द्रिय बल उत्साह कहे हैं ।

(क) वीर्यादित्यादि प्राण्ये न रसादि सर्व धात्विन्द्रिय बलोत्साहा उच्यन्ते । क्षीणः सर्व धात्विन्द्रिय बलोत्साहे हीनः ॥

ततस्तु सप्ततेरूर्ध्वं क्षीण धातु रसादिकः ॥ क्षीय

माणोन्द्रिय बलः क्षीणरेता दिने दिने ॥ ४६ ॥

बलोपलित खालित्य युक्तः कर्मसु चाक्षमः ॥ का

सश्वासादिभिः क्लिष्टो वृद्धो भवति मानवः ॥ ४७

भा० क्षीण अर्थात् सब धातु इन्द्रिय बल उत्साह से हीन । अनन्तर सत्तर बरस के पुर क्षीण धातु रसादिक । और इन्द्रिय बलहीन तथा दिन २ क्षीण शुक्र होता है ॥ ४६ ॥ कुर्यात् सफ़ेद बाल सिरके बाल उड़ाना इनसे युक्त और काम करने में असमर्थ । तथा कास श्वास से पीड़ित वृद्ध मनुष्य होता है ॥ ४७ ॥

बाल्ये विवर्द्धते प्लेष्मा पित्तं स्यान्मध्यमे

ऽधिकम् ॥ वार्धके वर्द्धते वायुर्विचार्यैतदुपक्रमे-

त् ॥ ४८ ॥ (क) उपक्रमेत् चिकित्सेत् तन्त्वान्तरेत् ।

बाल्यं वृद्धिं प्लेक्षविर्मेधा त्वगृष्टिः शुक्र विक्रमो ॥

बुद्धिः कर्मेन्द्रियञ्चेतो जीवितन्द्रातो हसेत् ॥ ४९

भा० बाल अवस्था में कफ की वृद्धि होती है । तरुण में पित्त अधिक होता है तथा वृद्ध अवस्था में वायु बढ़ता है । इसको विचार करके चिकित्सा करे । ॥ ४८ ॥ (क) उपक्रम करे अर्थात् चिकित्सा करे ॥ बाल्यक पन धातुओं की वृद्धि प्लेक्ष विमेधा त्वगृष्टि शुक्र पराक्रम । बुद्धि और कर्मेन्द्रिय जोर ।

संज्ञा ये सर्व क्रमके साथ दस दस बारस उत्तरोत्तर में दीर्घता को प्राप्त होते हैं ४६

[अथ प्रकृतिलक्षणानि]

सप्त प्रकृतया नृणां वातापित्तकफाक्तथा ॥ सं

सर्गात्सन्निपाताच्च भवन्ति भिषजाम्मते ॥ ५० ॥

शुक्रशोणितसंयोगो यो दोषस्तूतकये भवेत् ॥

प्रकृतिर्जायते तेन तस्या लक्षणमुच्यते ॥ ५१ ॥

भा० अन्तर प्रकृतिके लक्षण कहते हैं ॥ वैद्यों के मतमें मनुष्यों की मात प्रकृति होती है । वात पित्त कफ से तीन संसर्ग से तीन और सन्निपात से एक । इस प्रकार सात ॥ ५० ॥ शुक्र रज के संयोग में जो दोष अधिक होता है । उसे प्रकृति होती है । उसका लक्षण कहता हूँ ॥ ५१ ॥

[वाग्भटे त्वात्रियादयः ।]

शुक्रा सृग्गर्भिणी भोज्य चेष्टा गर्भाशयान्तरे ॥ यः

स्यादोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सर्व्वथोदिता ॥ ५२ ॥

(क) सोऽपि दोषः स्वभावावस्थितो ननु दुष्टः दुष्टेन तु शुक्र

शोणितयोर्दुष्टा सुद्वगर्भासम्भवान् ।

भा० वाग्भटे में आत्रियादिकों ने कहा है ॥ शुक्र और आर्जव में तथा गर्भिणी के आहार विहार में और गर्भाशय के बीच में जो दोष अधिक रहता है उस करके प्रकृति होती है ॥ ५२ ॥ (क) वोही दोष स्वभाव से ही रहता है । न कि विगड़ा हुआ । क्योंकि दुष्ट करके शुक्र शोणित में दुष्ट और अशुद्ध गर्भ के असम्भव होने से ॥

जागरूकोऽल्पकेषाश्च स्फुटिताङ्गि करः कृशः ॥ श्री

घृगा बहुवायूतः स्वप्ने वियतिगच्छति ॥ ५३ ॥ एवं

विधः स विज्ञेयो वात प्रकृति को नरः ॥ पित्त प्रकृति

क्रोलेकोऽयादृशोऽयं निगद्यते ॥ ५४ ॥ अकालपति
 नागौरः क्रोधी स्वेदीन बुद्धिमान् ॥ बहु भुक्ताम्बने
 त्रश्च स्वप्ने ज्योतींषि पश्यति ॥ ५५ ॥ एवं विधो भ
 वेद् यस्तु पितृप्रकृतिको नरः ॥ श्यामकेशः क्ष
 मी स्थूलो बह्वीर्यो महाबलः ॥ ५६ ॥ स्वप्ने ज
 लाशया लोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ दृश्यते
 प्रकृतौ यत्र रूपं दोषद्वयस्य तु ॥ ५७ ॥ द्विसंसर्गे
 राजानीयान्सर्वं लिङ्गैः स्विदोषजम् ॥

भा० जागरण स्वभाव अर्थात् कम सोनेवाला । थोड़े केशवाला और जिस
 सके हाथ पाव अलग २ से निकले हों तथा कुछ घड़न चलनेवाला बहुत
 जोलनेवाला रूखे बदनवाला जो आकाश के समान देखे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार
 के मनुष्य को बात प्रकृति जानना चाहिये ॥ पितृ प्रकृतिवाला पुरुष जिस
 प्रकारका होता है उसको कहता हूं ॥ ५४ ॥ युवा अवस्था में केश पक जावें
 गौर वर्ण क्रोधी पक्षीना बहुत अवि बुद्धिमान् ॥ बहुत भोजन करेवाला ।
 रक्तनेत्र स्वप्ने में तेज देखे ॥ ५५ ॥ इस प्रकारका जो हो वाह पितृ प्रकृति म
 नुष्य है ॥ काले केश क्षमावाला मोटा बहुत वीर्यवाला बड़ा पराक्रमी ॥
 ५६ ॥ स्वप्ने में जलाशयों को देखनेवाला कफ प्रकृति मनुष्य है ॥ जिस प्रक
 र्ति में दो दो दोषों का लक्षण देखे ॥ ५७ ॥ उसको हृन्मन प्रकृति जाने । और
 सब लक्षणों से सन्निधान की प्रकृति जाने ॥

[वाग्भटेतु ।]

प्रायस्त एव पवना घृषिता मनुष्याः दोषात्मकाः
 स्फुटितधूसरकेशगात्राः ॥ शीतद्विषश्चलधृतिः
 स्मृतिबुद्धिबेष्टाः । सौहार्ददृष्टिगतयोऽतिबह्वप्र
 लापाः ॥ ५८ ॥ अल्पपितृकफजीविन निद्रा ।

सन्नशक्तबहुजर्जरवाचः॥नास्तिकाबहुभुजः स
 विलासा गीतहास्यमृगयाकेलिसुलोलाः॥५६॥
 मधुररस कंदूया सात्म्यकांक्षा कशंदीर्घा कृतयः
 मशब्दज्जाना नदद्वानजिनेन्द्रिया नवीर्याः न च
 कान्तादयिता बहु प्रजात्वा ॥ ६० ॥ अंगानि चैवाङ्ग
 रधूसराणि वृत्तान्यचारुणि मृतोपमानि । उन्मीलि
 ता नीव भवन्ति सुप्ते शैलद्रुमान्ते गगनं प्रयाति ॥ ६१ ॥
 अधन्या मत्सराध्माना सीनाः प्रोद्ध पिरिष्ठकाः ॥
 स्वप्ने मृगालोष्ट्र गृध्रास्तु काको लूकाश्च वातिकाः
 ॥ ६२ ॥

भा० बागमट में कहा है । प्रायः बोही आयु करके स्थित मनुष्य दोषवाले
 स्मृतिनगात्र और घूसरकेण तथा शीनसे द्वेष करने वाले । चञ्चल धृति स्मृ
 ति और बुद्धि की चेष्टा वाले । आँखों में शीलवाले बहुत बोलने वाले ॥ ५६ ॥
 अल्प पित्त कफ आयु और निद्रा करके युक्त अशक्ति बहुत निद्रा करने वा
 ला ॥ नास्तिक बहुत भोजन करने वाला विलास करके युक्त गन्ता हंस नाशि
 कार का खेलना इनमें नत्पर ॥ ५६ ॥ मधुर अम्ल कटु उष्ण इनकी सात्म्य
 इच्छा ॥ दुबला और लंबी आकृतिवाला ॥ शब्द के सहित समझने वाला ।
 दृढ़ न होना नजिनेन्द्रिय न आर्य न स्त्रीवाला । और न बहुत सन्नतिवाली
 स्त्रीवाला ॥ ६० ॥ इसका शरीर खर धूसर लंबा रुखा मृतोपय । सोने में आ
 ख खुली सी होती है । पहाड़ दल के ऊपर तथा आकाश में जाता है ॥ ६१ ॥
 नेकी जिसमें न हो दूसरे की दौलत पर हसद करके पैट फूला हुआ चौर । नि
 कली हुई मिंडली वाला स्वप्न में सियाग जंठ गिरु घोंड़ा कीवा वंशु ।
 इनको जो देखता है बोवात प्रकृति मनुष्य है ॥ ६२ ॥

पित्तवह्निवह्निजैवैतदस्मान्प्रिनोद्विक्तन्तीन्नृ
 णाबुभुस्तुः ॥ गोरोमणाङ्गस्तामहन्ताङ्घ्रिः सुगमः

शूरोमानी पिङ्गकेशोऽन्यरोमा ॥ ६३ ॥ द्रवितमाल्यविलेपनमण्डनः सुरचितः शुचिराश्रितवत्सलः । विभवसाहसबुद्धिवलान्वितो भवति भीष्मगतिः द्विषतामपि ॥ ६४ ॥ मेधावी प्रशियलितसन्धिवन्धमांसो । नारीणां मनभिमतोऽल्पशुक्रकामः ॥ आवासश्चलिततरङ्गनोरकेषु । भुक्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ ६५ ॥

भा० पित्र और अग्नितथा अग्निसे होनेवाले ये और इनसे पित्र वर्द्ध होवो वृद्धत तथावाला भूवा ॥ गौरा और उष्णा शरीरवाला लालीको लिये हाथ और पांव शूरो अभिमानी भूरेकेश थोड़े रोवेवाला ॥ ६३ ॥ प्रियमाल्यविलेपन इनसे भूषित सुन्दर पवित्र पुत्रसे युक्त ऐश्वर्य साहस बुद्धिबल करके युक्त और शत्रुओं को भयानक गति होता है ॥ ६४ ॥ क्रान्तिवाला ठीले नोड़ों के बन्ध और मांस स्त्रियों के प्रिय नहीं होता थोड़ा शुक्र और थोड़ी मैथुन शक्तिवाला । उठे तरंगवाला जलाशयमें रहना भोजनमें मधुर कषाय तिक्त और शीत अन्न ॥ ६५ ॥

धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगन्धि भूर्युच्चारक्रोधपानाशनैर्ष्यः । सुप्तः पर्येत कर्णिकारान् पलाशान् दिग्वाहोल्काविद्युदकी नन्नांश्च ॥ ६६ ॥ तनूनि पिङ्गानि चलानि वैषां तन्वल्पयत्माणि हिमप्रियाणि । क्रोधेन मर्षेण रवेश्च भासा रागं ब्रजन्त्या शुबिलोचनानि ॥ ६७ ॥

भा० धर्मका शत्रु वृद्धतपसीने आँव और जिममें बुरी वांस आँव हकलाके वाले क्रोधी भोजनकी ईर्ष्या करनेवाला । और सुपनेमें कनेर पलाश इनके रसोंको देख और दिग्वाह उल्का बिजली सूर्य अग्नि ये देखे ६६

इनके शरीर भूरे चंचल छोटी थोड़ी पलकें और शीत प्रिय । तथा क्रोध मृदु
और सूर्य के प्रकाश से शीघ्र रक्त वर्ण होते हैं मंसे मेव वाले ॥ ६७ ॥

मध्यायुषो मध्यवलाः परिडिताः केशभीरवः ॥

व्याघ्रायुः कपिमाज्जीर वृकालूताश्च पैतिका ॥ ६८ ॥

श्लेष्मामोमः श्लेष्मलस्तेन सौम्या गृह स्निग्ध स्नि

ष्टसम्यस्थिमांसः । क्षुत्तृदुःखलेशधर्मैस्तप्तो

बुद्धायुक्तः सात्विकः सत्यमन्धः ॥ ६९ ॥ प्रियङ्गु

दूर्वाशरकाण्ड दर्भगोरोचना पद्मसुवर्णा वर्णाः ॥

प्रलम्बबाहुः पृथुपीन वक्ताः महाललाटा धननी

ल केशः ॥ ७० ॥

भा० मध्य आयु मध्यबल पंडित लेशसे डर । व्याघ्र चूहा बन्दर विल्ली
भेड़िया मकड़ी इनके जो देखे सो पैतिका है ॥ ६८ ॥ कफ जल है उस कफ
के श्लेष्मल अर्थात् कफ प्रधान सौम्य गृह स्निग्ध मिली हृद् जाड़ों की ह
ड्डी और मांस ॥ क्षुधा तथा दुःख लेश इनके धर्मों से जो नहीं संनप्त हो
ता बुद्धि वा सात्विक सच्चा ॥ ६९ ॥ प्रियङ्गु दूर्वा सरकंडा दर्भ गोरोचना क
मल सोना इनका सावर्ण । मंसे बाघ चौड़ी और मांसल छाती बड़ा स्ति
धरे हंसे और काले केश ॥ ७० ॥

मृदङ्गः समस्त विभक्तः चारुदेहो वह्नीजा रतिर

स युक्त सपुत्र मृत्युः ॥ धर्मात्मा बदति न निष्ठुरं

च जानु प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरञ्च वैरम् ॥ ७१

समद्विदेन्द्र तुल्य पीनो जलवाम्भोधि मृदङ्गः श

ङ्ख घोषः ॥ स्मृतिमानभिषागवान्विनीतो न च वा

न्यः प्याति शेदनां न लोलः ॥ ७२ ॥

भा० मृदु और सम नथा अच्छे प्रकार विभक्त सुंदर शरीरवाला ॥ और बहुत
 ओजवाला रतिरसकरके युक्त पुत्र नथा भृत्योंकरके सहित ॥ धर्मात्मा और
 कदाचिन् भी जो कठोर नहीं बोलता तथा क्षिप्रवा और हृदयवान् कालनक्षत्र
 रकोधारण करता है ॥ ७० ॥ मदके सहित गजके समान तुल्य स्थूल मेघ समुद्र एवं
 शंख वृक्षके समान आवाज ॥ स्मृतिवाला अभियागवाला विनीत और वाल्य अवस्था
 में भी बहुत नरोत्तमवाला नचंचल ॥ ७१ ॥ निरुक्तपाय कटुक उष्ण और थो
 ड़ा भोजन करने पर बलवान् ॥ भीतर रक्तता अच्छे प्रकार सिग्ध विशाल दीर्घ
 सुव्यक्त शुक्ल और काले पलकवाले ऐसे चक्षु होने हैं ॥

निरुक्तपायं कटुकोषणं रुक्षं मल्पञ्च भुक्ते बलवान् स
 थायि ॥ रक्तान्त सुस्निग्ध विशाल दीर्घ सुव्यक्त शुक्ल
 सित पद्मलालः ॥ ७२ ॥ अल्पाहार क्रोधयानाशने
 हः प्रज्ञाविनो दीर्घसूत्री बदान्यः ॥ हृदम्भीरः स्थूल
 वक्ताः क्षमावाचिद्रालुम्ना सुबुद्ध हनः कृतज्ञः ॥

॥ ७४ ॥

भा० थोड़ा भोजन करने वाला क्रोधवान् और अणनमें इच्छावाला बुद्धि
 वान् द्रव्यवान् दीर्घसूत्री और उदार ॥ गम्भीर हृदयवाला स्थूलवक्ता क्षमा
 वाला निद्रालु अलुब्ध अर्थात् लोभी नहोना और कृतज्ञ ॥ ७४ ॥

ऋजुविपश्चिन् सुभगः सलज्जो भक्तो गुरुणां स्थिर
 सौहृदश्च ॥ स्वप्ने सपद्मान् सविहङ्गमालान्तोयाश
 यान् परयति तोयदांश्च ॥ ७५ ॥ त्रिषणु रुद्रेन्द्रवरुणा
 तार्क्ष्यं हंस गजाधिपिः ॥ श्लेष्म प्रकृतयस्तुल्यास्त-
 मां सिंहाश्च गोवृषैः ॥ ७६ ॥

भा० सीधा पंडित अच्छे भाग्यवाला सलज्ज गुरुओंका भक्त और स्थिर मि
 त्रतावाला स्वप्नमें कमलके सहित शालाशय पक्षियों की पक्षि तथा मय

इनके हेतु ॥१५॥ विषण रुद्ध चरणा इन्द्र गफुड हंस और गजेन्द्र इनके समान
स्वल्प प्रकृति वाले होते हैं ॥ तथा सिंह और सांढ इनके भी समान होते हैं ॥
॥ १६ ॥

(क) ननु प्रकृति हेतुना मध्ये योऽधिकः स स्वव्याधीन्
कथं न करोतीत्याशङ्कामाह ॥ विषजातो यथा की
येन विषेन प्रवाध्यते ॥ तद्वत् प्रकृतयो मर्त्यं शकु-
वन्ति न बाधितुम् ॥ १७ ॥ (ख) एतौ द्वौ न जावपी
षदर्थे तेन विशेषेण विषजदाहादिना ॥ इषत् प्र-
वाध्यते ननु भृशं तथाच प्रकृतयः ॥ प्रकृतिहेतु
वो दोषाः बाधितुं न शक्नुवन्ति ॥

भा० ननु प्रकाशते है कि प्रकृति कारणों के बीच में जो अधिक होता है वो
ह अपनी व्याधियों को कैसे नहीं करता । इस आशंका में कहते हैं ॥ जैसे वि-
ष से उत्पन्न हुआ विषसे बाधा नहीं पाना ॥ १७ ॥ (क) ये दो नजप में भी
इषवर्ष होते हैं उस विषजदाहादि विषेण करके । इषत् बाधा करता है
नकि बहुत उसी प्रकार प्रकृतिर्या भी ॥ प्रकृतिके कारण जो दोष बाधा नहीं
कर सके हैं ॥ कारचरण स्फुटि नन्वं स्वेद निद्राधिक्यादिना

इषद्वाधितुं शक्नुवन्त्येव । ननु ज्वरादिभिः ॥ प्रकोपो
वानभावो वा तमो वा नोपजायते ॥ प्रकृतीनां स्वभा-
वेन जायते तु गतायुषः ॥ १८ ॥

इति श्री मिश्र लटकन ननय श्रीमन्मिश्र भाव विरचिते भाव
प्रकाशे बाल प्रकरणे तृतीयम् ॥ ३ ॥ ❀ ॥

भा० हात पांशु स्फुटि नन्व स्वेद निद्रा की अधिक्यता आदिकरके थोड़ी
बाधा कर सक्ता है ॥ नकि ज्वरादिक । प्रकोप अथवा अन्य भाव या ह-
म नहीं होता ॥ प्रकृतियों के स्वभाव से गतायु होता है ॥ १८ ॥

इति श्री मिश्रलक्षकन के पुत्र श्रीमन् मिश्रभावन के विरचित भावप्रकाश में बाल
प्रकरण तृतीय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥ ❀ ॥

[अथ देशाः।]

भूमिदेशस्त्रिधानूपो जाङ्गलो मिश्रलक्षणाः॥

[तिवानूपलक्षणम्।] नदीपल्लवशैलाढ्यः फुल्लोत्पल

कुलैर्युतः ॥ ७८ ॥ हंससारसकारण्डचक्रवाकादिसेवि

तः ॥ शशवाराहमहिषरुरोहिकुलाकुलः ॥ ८० ॥

प्रभूतद्रुमपुष्पाढ्यो नीलशस्य फलान्वितः ॥ अनेक

शालिकेदारकदलीदुविभूषितः ॥ ८१ ॥ आनूपदेशो

ज्ञातव्यो वातश्लेष्मामयार्तिमानः॥

भा० अनन्तर देश कहते हैं ॥ भूमितया देश तीन प्रकारके होते हैं। आनूप जंगल और मिश्रलक्षणा ॥ ॥ उसमें अनूपकालक्षणा। नदी क्षुद्र जलाशय पर्वत इन करके युक्त प्रफुल्लित वृक्षनसे कमलोंसे युक्त ॥ ७८ ॥ हंस सारस जल कुङ्कुठ चक्रवा इत्यादि करके सेविन ॥ खर गोश शूकर महिष काला हरिण और वृक्ष ॥ इनके कुलोंसे व्याप्त ॥ ८० ॥ वृक्षनसे वृक्ष पुष्पोंसे भरे हरे नील धान्य फलों करके युक्त। वृक्षनसे धानोंसे युक्त खेन और केले ऊख इनसे शोभित ॥ ॥ ८१ ॥ इसको अनूपदेश जानना चाहिये। वात कफ के रोग पीड़ा वाला है ॥

[अथ जाङ्गल लक्षणम्]

आकाश शुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीयपादयः ॥ शमीक-

रीर विल्वार्क पीलु कर्कन्धु सङ्कुलः ॥ ८२ ॥ हरिणौ

गार्क्षं पृषत गोकर्णखर सङ्कुलः ॥ सुस्वावु फलवा-

न देशो वातलो जाङ्गलः स्मृतः ॥ ८३ ॥

भा० अनन्तर जंगल का लक्षण कहते हैं ॥ आकाश शुभ्र और ऊँचा भी थोड़ा जल और थोड़े वृक्ष ॥ शमी करीर बेल आंक पीलू वेर इन करके संकुल ॥ ८२ ॥ हरिण काला हरिण इत्यादि मृग और खर इनसे व्याप्त। अर्क

मधुरफलवाले देश और बानल को जंगल कहा है ॥ ८३ ॥

[तन्वान्तरत् ।] बहूदकनगोऽनूपः कफमारुत रोगवान् ॥

जाङ्गलोऽल्याङ्गशाखो च पिता सृङ्गारुतोत्तरः ॥ ८४ ॥

[साधारण लक्षणम् ।]

संमृष्टलक्षणो यस्तु देशः साधारणो मतः ॥ समासा

धारणो यस्माच्छीन वर्षोष्णमारुताः ॥ ८५ ॥ समता

तेन दोषाणां तस्मान् साधारणो वरः ॥ [सुश्रुतान् ।]

उचिते वर्तमानस्य नास्ति दुर्दृष्टजं भयम् ॥ आहार

स्वम चैष्टादौ तद्देशस्य कृते सति ॥ ८६ ॥

भा० मंत्रान्तर में कहते हैं ॥ बहूत जल और पर्वतका अल्प देश है और कफ वा-
यु के रोगवाला । और जंगल अल्प अंग तथा शाखवाला और पित्त रक्त मारुतो
नर होते हैं ॥ ८४ ॥ साधारण का लक्षण कहते हैं ॥ मिले हुए लक्षणों से युक्त
जो देश है वो साधारण कहा है ॥ जिस कारण साधारण में तीन वर्षों उष्ण चा-
यु सम होते हैं ॥ ८५ ॥ उस कारण से उस करके दोषों का साधारण श्रेष्ठ क-
हा गया ॥ सुश्रुतान् अर्थात् सुश्रुत से । उचित में करने वाले को दुष्ट देश
का भय नहीं होता ॥ उसी देश का भोजन सोना चेष्टा करने से दुर्दृष्टज भ-
य नहीं होता ॥ ८६ ॥

[दृढ वाग्भटः] यस्य देशस्य यो जन्तु सज्जन्तस्योषधं

हितम् ॥ देशादन्यत्र वसतस्तत्तुल्य गुणमौषधम् ॥ ८७

स्वे देशे निचिता दोषा अन्यस्मिन् कोपमागताः ॥

बलवन्तस्तथा नस्य जलजा स्थानजा न्तथा ॥ ८८ ॥

भा० दृढवाग भट्टने कहा है ॥ जिस देश का जो प्राणी है उसको उस देश में
उपन्न हुई ही औषधि हित है ॥ देश से अलग गन्ने जाने को उमी के तुल्य
गुण औषधि हित है ॥ ८७ ॥ अपने देश में संबद्ध वे बाय दूसरे में कोप की

प्राप्तहुँवे । उस प्रकार बलवान नहीं होते । जैसे जलज और स्थलज में होते हैं ॥ ८८ ॥ [अथ दिनादि चर्या ।]

मानवा येन विधिना स्वस्थस्तिष्ठति सर्वदा ॥ तमेव का
ख्ये द्वेद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम् ॥ ८९ ॥ दिनचर्या
निष्ठा चर्या ऋतुचर्या यथोदिताम् ॥ आचरन् पुरु
षः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथाः ॥ ९० ॥

भा० अनन्तर दिनचर्या कहते हैं ॥ मनुष्य जिस विधिकरके सर्वदा स्वस्थ
रहता है । उसीको वैद्य करावे क्यों कि स्वास्थ्य सर्वही इच्छित है ॥ ८९ ॥
दिनचर्या रात्रिचर्या और ऋतुचर्या जैसे कही है । उसको आचरन करने
वाला पुरुष सदाही स्वस्थ रहता है ॥ अन्यथा स्वस्थ नहीं रहता ॥ ९० ॥

[तत्र स्वस्थस्य लक्षणमाह ।]

सुश्रुतः । समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः ॥

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ ९१ ॥

(क) क्रियात्र कर्म तेन समक्रियः । शरीरानुरूपकर्मी । त

त्र दिनचर्यामाह ॥ ब्राह्मणमुहूर्ते बुद्धेयं स्वस्थो रक्षा-

र्थमायुषः ॥ तत्र दुःखार्तप्रान्तर्यं स्मरेद्दि मधुसूदनम् ॥

॥ ९२ ॥ दध्याज्यादशीसिद्धार्थं विल्वगोरेचना त्वजाम् ।

भा० उसमें स्वस्थ का लक्षण कहते हैं ॥ समदोष सम अग्नि समधातु सममल
और समक्रिया । प्राण इन्द्रिय मन इनकी प्रसन्नता वाले को स्वस्थ ऐसा कह
ते हैं ॥ ९१ ॥ (क) क्रिया यहाँ पर कर्म लेना चाहिये उसकरके समक्रियः ।
अर्थात् शरीर के अनुरूप कर्म करने वाला । उसमें दिनचर्या की कहने हैं ॥
स्वस्थ पुरुष आयु की रक्षा के अर्थ ब्राह्मणमुहूर्त में जागे । उसमें दुःख शान्तिके
अर्थ मधुसूदन की स्मरण करे ॥ ९२ ॥ दही घृत द्रवण सरसों बेल गीरेचन
मातृ इनका देखना स्पर्श करना

दर्शनं स्पर्शनं कार्यं प्रबुद्धेन शुभावहम् ॥ ८३ ॥ स्व
माननं घृते पश्यन् यदीच्छेत् चिरजीवितम् ॥ आयु
ष्य मुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ॥ ८४ ॥ तदव
कूजनाध्मानोदरगौरवचारणम् ॥ आदिशब्देन
वातमूत्रादीनां ग्रहरणम् ॥ ८५ ॥ आटोपशूलौ परि
कर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तंथोर्द्धवात ॥ पुरीषमा
स्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहतेनस्य ॥ ८६ ॥

भा० जगेद्देवपुरुषने करना चाहिये यह शुभावह है ॥ ८३ ॥ अपना मुख
घृतमें देखे चिरजीवित की इच्छा करे ॥ प्रातःकाल में यह आयुष्य कहा है ।
और मलादिका त्यागभी आयुष्य है ॥ ८४ ॥ वोह यहाँ पर पेटमें गुड़ गुड़ा शब्द ।
आध्मान उदर और भारीपन इनका दूर करने वाला है । आदि शब्दसे वात मू-
त्रादियोंका ग्रहरण है ॥ ८५ ॥ आटोपशूल गुदमें कटावसी पीड़ा मलन होना
और ऊर्ध्ववात अथवा मलके वेगसे अभिहत मनुष्यके मुखसे मलनिकलना है
॥ ८६ ॥

(क) परिकर्तिका । गुदे परिकर्त नवत्पीडा । पुरीषस्य सङ्गे
निरोधः । ऊर्ध्ववातः उद्गादवाहल्यम् ॥ ८७ ॥ वातमूत्रपुरी
षाणां सङ्गेऽध्मानं क्लमो रुजा । जठरे वातजाश्चान्ये
रोगाः स्युः वातनिग्रहान् ॥ ८८ ॥ वस्तिमेहनयोः शूलं
मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा ॥ विनामो चङ्गराणनाहः स्या
स्तिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥ ८९ ॥

भा० (क) परिकर्तिका गुदमें कैचीसे काटने कीसी पीड़ा । मलका
संग अर्थात् अवरोधपना । ऊर्ध्ववात अर्थात् उकारोंका अहत होना । वातमू-
त्रमूत्रोंका अवरोध आध्मान क्लम पीड़ा । और पेटमें वातज और रोगवातके

अवरोधमेहोतेहैं ॥ ८७ ॥ पेडु लिंगमें शूल मूत्रकृच्छ्र शिखमें पीड़ा । शरीरका
कुकाव वंशरा में आकर्षणके मानिन्द पीड़ा ये लक्षणा मूत्र निग्रहमें होने हैं ॥

(क) विनामः शरीरस्य नम्रता वङ्गुणानाहः । वङ्गुणस्या
कर्पणावत्पीडा ॥ न वेगिनीऽन्यकार्यः स्यान्न वेगानी

रयेद्बलात् ॥ काम शोक भयक्रोधान् मनावेगान्विधा
रयन्त ॥ ८८ ॥ गुदादि मलमार्गीणां प्रौचं कान्तिबल-

प्रदम् ॥ पवित्र करमारव्यातं मलक्ष्मीकलि पापहन् ॥

॥ १०० ॥ प्राक्षालनं मतं पारयोः पादयोः शुद्धिकारण

म् ॥ मलश्रम हरं दृष्यं चक्षुष्यं राजसापहम् ॥ १०१ ॥

भा० (क) विनाम अर्थात् शरीरकी नम्रता वंशराणाह अर्थात् वंशराणां की
आकर्षणके मानिन्द पीड़ा । वेगमें युक्तहुवा और कार्यन करे वेगोंको बल से
नरोके ॥ काम शोक भयक्रोधोंको और मनोवेगोंको नधारण करें ॥ ८८ ॥
गुद आदि मलके मार्गीकी शुद्धता कान्ति बलको देनेवाली है । और पवित्र को
करनेवाली कहा गया है । अलक्ष्मी कलि पापका नाशक है ॥ १०० ॥ हाथ
पावोंका धोना शुद्धिका कारण कहा है ॥ मल श्रमको दूर करनेवाला दृष्य व
क्षुष्य अर्थात् चक्षुका हित राजसका नाशक ॥ १०१ ॥

[दन्तकाष्ठविधिः]

भक्षयेद्दन्तपवनं द्वादशाङ्गुलमायतम् ॥ कनिष्ठिका

ग्रन्थं स्थूलमृज्वग्रन्थिनथाऽन्नरास ॥ १०२ ॥ एकैकं

घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकणात् ॥ दन्तशोधनं चूर्णेन

दन्तमांसान्यवाधयन् ॥ १०३ ॥ क्षौद्रविकटुकाक्तेन

नैलसिन्धुभवेन वा ॥ चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्ता

न्नित्यं विशेषयेत् ॥ १०४ ॥

दन्तवन की विधि वारह अंगुलका दन्तवन भक्षण करे । कनिष्ठिका के अग्रभाग समान स्थूल सीधा और बे गोंठ का तथा मूला से गहिरा ॥ १० ॥
 दन्तशोधन चूर्ण से दन्त मांसों का बाधा न देता जुवा ॥ मृदु कुर्वक से एक २ दाँतों को घिसे ॥ १० ॥ ग्राहत विकटके साथ अथवा तैल से धव से ।
 तेजोवती के चूर्ण से दाँतों को नित्य विशोधन करे ॥ १० ॥

(क) तेजोवती तेजवल्कल इति लोके प्रसिद्धा ॥

मधुको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा ॥ निम्ब

म्यात्तिकके श्रेष्ठः कषायखदिरस्तथा ॥ १०५ ॥

समयन्तु समालोक्य दोषञ्च प्रकृतिं तथा ॥ यथो

चित्ते रसेवीर्यं युक्तं द्रव्यं प्रयोजयेत् ॥ १०६ ॥ ते

नास्य मुखवैरस्य दन्ता जिह्वास्यजा गदाः ॥ रुचि

वैशद्यं लघुना न भवन्ति भवन्ति च ॥ १०७ ॥ अ-

र्कं वीर्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो भवेत् ॥

भा० (क) तेजोवती अर्थात् तेजकी छाल लोकमें प्रसिद्ध है ॥
 मधुर में मधुक श्रेष्ठ है । और कटुक में करंज श्रेष्ठ है ॥ तिक्त में निम्ब श्रेष्ठ है । तथा कषाय में खैर श्रेष्ठ है ॥ १०५ ॥ समय और दोष प्रकृति को देखकर । यथोचित रस वीर्य से युक्त द्रव्य को योजना करे ॥ १०६ ॥
 उस करके मुखकी बिरसना दन्त जिह्वा इनमें रोग नहीं होने और स्वच्छता हलकायन ये होते हैं ॥ १०७ ॥ आंक मंवीर्य वट में दीप्ति और करंज में विजय होता है ॥

लक्षे चैवार्थं सम्पत्तिं वदय्या मधुराशनम् ॥ १०८ ॥

खदिरं मुखसौगन्ध्यं विल्वे तु विषुलं धनम् ॥ उद

म्बरे तु वाकसिद्धिं राम्रे न्वारोग्यमेव च ॥ १०९ ॥

करम्बे तु धनिर्मथा चम्पके दृढवाक श्रुतिः ॥ शिरी

धे कीर्ति सोभाग्य आयुरा रोग्य मेव च ॥ ११० ॥ अपा
 मार्गे धृतिर्मधा प्रज्ञाशक्ति स्तथापने ॥ दाडिम्या
 सुन्दराकारः ककुभे कुटजे तथा ॥ १११ ॥ जाती
 तगर मन्दारैर्दुःस्वप्नञ्च विनश्यति ॥ गुजिका
 तालहिन्तालं केतकश्च दृढद्वरः ॥ ११२ ॥

भा० पाकर में अर्थ सम्यति बेर में मधुर भाजन ॥ ११० ॥ खदिर में सुस
 की सुगन्धिता वेल में विपुल धन गूलर में सिद्धि आम में आरोग्य ॥ ११० ॥
 कदम्ब में धृति मेधा चम्पक में दृढ बाणी और श्रुति । शिरीष में कीर्ति सो
 भाग्य तथा आयु आरोग्य भी ॥ ११० ॥ चिचिर में धृति मेधा प्रज्ञा शक्ति उ
 सी प्रकार शन में भी शक्ति ॥ दाडिम में सुन्दर आकार अर्जुन और कुटज
 में भी उसी प्रकार ॥ १११ ॥ चमेली तगर और पारिजात इनसे दुष्ट स्वप्न का
 नाश होता है ॥ चिभिदी ताल हिताल अर्थात् छोटे ताल के किसिम का द
 र के बड़ा सुपारी ॥ ११२ ॥

खर्जूरं नारिकेरञ्च सप्तेते तृणराजकाः ॥ तृणराज
 समुत्पन्नं यः कुर्याद् दन्तधावनम् ॥ ११३ ॥ नर-
 श्वागडाल योनिः स्याद्यावद्गङ्गा न पश्यति ॥ न स्वा-
 देद् गलताल्वोष्ठ जिह्वा दन्तगदेषु नत ॥ ११४ ॥
 मुखस्य पाके शोथे च श्वासकासवमीषु च ॥ दु-
 बेलो जीर्णभुक्तश्च हिक्का मूर्च्छा मदान्वितः ॥ ११५ ॥

भा० खर्जूर नारिकेल ये सात तृणराज हैं ॥ इन तृणराजों का दातवन जी
 मनुष्य करे ॥ ११३ ॥ वह मनुष्य बांडाल योनि होता है ॥ जीवनक गंगा
 जीका दर्शन न करे ॥ गला तालु होठ जीभ और दांत इनके रोगों में दातवन
 न करे ॥ ११४ ॥ मुख के पाक में शोथ में श्वास कास वमन में दुर्बल अतीर्ण

वाला हिचकी मूला और मदकरके युक्त ॥ ११५ ॥

पिरोरुजातस्तृपितः श्रान्तः पानक्तमान्वितः ॥ अ
र्हितः कर्णशूली च नेत्ररोगी नवज्वरी ॥ ११६ ॥ वर्ज्य
येदन्तकाष्ठन्तु हृदामययुतोऽपि च ॥

अजीर्णभुक्तः न जीर्ण भुक्तं यस्य सः ।
जिह्वानिर्लेखनं हैमं रजतं ताम्रजं तथा ॥ पाटितं मृ
दु तत् काष्ठं मृदु पत्रमयं तथा ॥ ११७ ॥

भा० शितकी पीड़ासे पीड़ित व्यासा यका मद्यपान की ग्लानिसे युक्त । अ-
र्हित रोगी कर्ण शूलवाला नेत्ररोगी नवज्वरवाला ॥ ११६ ॥ दन्तव्रत न करे
और हृदयरोगवाला भी न करे ॥ अजीर्ण भुक्तः अर्थात् जीर्ण नही हुवा
भोजन जिसका वोह ॥ जीभ साफ करनेकी वा सेनेकी या चौदीकी अथवा
नाम्बेकी ॥ अथवा मृदुकाष्ठ का चीरा हुवा अथवा मृदु पत्रा ॥ ११७ ॥

(तत् काष्ठं दन्तशोधनयोग्यं काष्ठम्)

दशाङ्गुलं मृदु स्निग्धं तेन जिह्वा लिखेत् सुखम् ॥ त-
ज्जिह्वा मलवैरस्य दुर्गन्धजडता हरम् ॥ ११८ ॥ गंडू-
षमपि कुञ्चीत शीतेन पयसा मुहुः ॥ कफतृष्णा म-
लहरं मुखान्तः शुद्धिकारकम् ॥ ११९ ॥ सुरवोषणो
दक गराडूषः कफ रुचि मलापहः ॥ दन्तजाड्य हर
श्रापि मुखलाघव कारकः ॥ १२० ॥

भा० तत् काष्ठ अर्थात् दानवन करने योग्य काष्ठ । द्रुप गंगुलका मृदु स्निग्ध
उत्से मुख पूर्वक जीभकी साफ करे ॥ वोह जीभका मल विरसता दुर्गन्ध जडता
इनका नाशक है ॥ ११८ ॥ शीत जलसे बारंवार कुञ्जीत भी करे । कफ तृष्णा
मलकानाशक और मुखके भीनरे शुद्धिकरनेवाला है ॥ ११९ ॥ मीनं गरम

जलका कुक्कुटा कफ अरुचि मलका नाशक है ॥ दानों के ठरेयन का नाशक और मुखका हलकापन करने वाला है ॥ १२० ॥

विषमूर्च्छा मदहर्तनां शोषिणां रक्तपित्तिनाम् ॥ कुपि-
नात्ति मलक्ष्मीणां सूक्ष्माणां स न शस्यते ॥ १२१ ॥

सुखोष्णोदक गण्डूषः ।

सुखप्रक्षालनं शीत पयसा रक्तपित्तजित् ॥ सुखस्य
पीडिका शोष नीलिका व्यङ्ग नाशनम् ॥ १२२ ॥ कुप्या
द्वापि कटूष्णो न पयसास्य विशेषधनम् ॥ कफवातहरं
स्निग्धं सुखशोष विनाशनम् ॥ १२३ ॥

भा० विषमूर्च्छा मदकरके पीड़ित शोषवाले रक्तपित्तीवाले ॥ कुपितनेव मल और क्षीण सूखे इनको बौह प्रशस्त नहीं है ॥ १२१ ॥ यह सुखोष्णोदक गण्डूष है । सुखका धोना शीतजल से रक्तपित्तको जीतता है । सुखकी पीडिका शोष नीलिका और व्यङ्ग इनको दूर करने वाला है ॥ १२२ ॥ कटु ऊष्ण जलसे सुखका पोषण करे । कफ वात का नाशक स्निग्ध सुख शोषका विनाशक है ॥ १२३ ॥

कटुतैलादि नस्यार्थे नित्याभ्यासेन योजयेत् ॥ प्रातः

श्लेष्मणि मध्याह्ने पिप्पे सायं समीरणे ॥ १२४ ॥

सुगन्ध वदनास्निग्ध निःस्वना विमलेन्द्रियाः ॥ नि

र्वली पलितव्यङ्ग भवेयुर्नस्य शीलिनः ॥ १२५ ॥

सौवीर मज्जनं नित्यं हितमक्षो स्ततो भजेत् ॥

(लोचने भवतस्तेन मनोज्ञं सूक्ष्मदर्शने ॥ १२६ ॥)

भा० कटुतैलादि नस्यके अर्थ नित्य अभ्यास से योजना करें । प्रातः काल कफ मध्याह्न पिप्पे सायंकाल वा न इनमें नस्य योजना करें ॥ १२४ ॥

सुगन्ध सुख स्निग्ध निःस्वन स्वच्छ इन्द्रिय ॥ कुपियों का नाशक व्यङ्ग इनसे

इतसे रहित नाम लेनेवाले होते हैं ॥ १२५ ॥ अथ सुरमें का अञ्जन मदानेत्रों का हित है तिससे सेवन करे ॥ उससे नेत्र सुन्दर और सुहृद दर्शन होते हैं ॥ १२६ ॥

(क) सौवीरं श्वेत सुरमा इति लोकं प्रसिद्धम् ॥

स्रोतोऽञ्जनं मतं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसम्भवम् ॥ दृष्टेः

काण्डमलहरं दाहक्षेद रुजापहम् ॥ १२७ ॥ अक्षरोग-

रूपावहञ्चैव सहते मारुता तपो ॥ नेत्रे रोगानजायन्ते

तस्मादञ्जनमाचरेत् ॥ १२८ ॥

(ख) श्रोतोऽञ्जनं कृष्णसुरमा इति लोके ॥ विशुद्धं शो-

धनं विनापि सिन्धुसम्भवम् । सिन्धुनामपर्वतः तत्र स-

म्भवम् ॥ रात्रौ जागरितः श्रान्तः कूर्हितो भुक्तो वा स्तथा ॥

भा० (क) सौवीर अर्थात् श्वेत सुरमा से मे लोकमें प्रसिद्ध है । काला सुरमा श्रेष्ठ है । और बिने सुधा पहाड़ी सुरमा प्रशस्त है ॥ दृष्टिकी स्वाज और मलकानाशक तथा बाहु क्षेत्र पीड़ाको दूर करनेवाला है ॥ १२७ ॥ नेत्रों का रूपावह और मरुत तथा आतपको सहते हैं ॥ वेदप्रयोग नहीं होते इसवासे अञ्जन का सेवन करे ॥ १२८ ॥

(ख) श्रोतोऽञ्जनं अर्थात् काला सुरमा से लोकमें कहते हैं ॥

विशुद्ध अर्थात् शोधनके बिनाही सिन्धुसम्भव अर्थात् सिन्धुनामपर्वत उसमें हुआ । रातका जागाथका वमन किया हुआ भोजन किया हुआ ॥

ज्वरातुरः शिरःस्नातो नक्ष्त्रोत्तरञ्जनमाचरेत् ॥ १२९ ॥

पञ्चरात्राक्षरप्रमथुकेशरोमाणि कर्तयेत् ॥ केश-

प्रमथु नखादीना कर्तनं सम्प्रसाधनम् ॥ १३० ॥

पौष्टिकं धनमायुष्यं शौचकान्तिकरं परम् ॥ १३१ ॥

भा० ज्वरमें पीड़ित और जिरसे स्नान किया हुआ आंखों सुरमा न होले ॥ १२९ ॥ पांचवदिन नख दाढ़ी केश रोम इनको कतरवावे ॥ केश दाढ़ी नख आदियों का कतरना शोभाको देनेवाला है ॥ १३० ॥ पौष्टिक और धन आयु के दिन तथा

शीघ्र कान्ति को अत्यन्त करने वाला है ॥ संप्रसाधनं अर्थात् शोभा को कर
ने वाला ॥ (ग) सम्प्रसाधनम् शोभाजनकम् ॥

उत्पादयेत्तलोमानि नासायाः न कदाचन ॥ तदु-

त्पादनतो दृष्टे दौर्वल्यं त्वरया भवेत् ॥ १३१ ॥ के-

शपाशे प्रकुर्वीत प्रसाधन्यातु साधनम् ॥ केश-

प्रसाधनं केश्यं रजोजन्तु मलापहम् ॥ १३२ ॥

भा० नाक के बाल कभी न उखड़ जावे । उसके उखड़ने से दृष्टि की दुर्बलता
शीघ्र होती है ॥ १३१ ॥ सिर के बालों में कंघी से सेकड़ाई करे ॥ केश की सफाई
के श को हित तथा मिट्टी धूल जूवा में ल डूबकी नाशक है ॥ १३२ ॥

आदर्श लोकेन प्रोक्तं माङ्गल्यं कान्तिकारकम् ॥

पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पापालक्ष्मी विनाशनम् ॥ १३३

लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्तं धनगावता ॥ दोष-

योऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥ १३४ ॥ व्या-

याम हृद्गान्त्रस्य व्याधिर्नास्ति कदाचन ॥ विरुद्ध-

वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते ॥ १३५ ॥

भा० शीघ्र का देखना शुभ और कान्तिकारक है । पौष्टिक बल के हित
आयु के हित तथा पाप और अलक्ष्मी इनको दूर करने वाला है ॥ १३३ ॥

हलकापन कर्म करने में सामर्थ्य विभक्त और धन शरीर का होना ॥ दोष
क्षय तथा अग्नि की वृद्धि ये सब कसरत करने से होता है ॥ १३४ ॥

व्यायाम से हृद्गान्त्रस्य व्याधि कभी नहीं होती ॥ विरुद्ध या विदग्ध
भोजन किया जवा सब शीघ्र पच जाता है ॥ १३५ ॥

भवन्ति शीघ्रं नैतस्य देहे शिथिलतादयः ॥ न चै-

न सहसा क्रम्य जरा समधिरोहति ॥ १३६ ॥ न चा-

स्ति सदृशान्तेन किञ्चित् स्थौल्यापकर्षकम् ॥

स सदा गुणमाधत्ते बलिनां स्निग्धभोजिनाम् ॥ १३७ ॥

वसन्ते शीतसमये सुतरां सहितो मतः ॥ अन्यदापि

च कर्तव्यो बलाद्धि न तथा बलम् ॥ १३८ ॥ हृदयस्थो

यदा वायुर्वक्तुं शीघ्रं प्रपद्यते ॥ मुखञ्च शोषं लभते

तद् बलाद्धिस्य लक्षणम् ॥ १३९ ॥ किं वा ललाटे ना-

साया गात्र सन्धिषु कक्षयोः ॥ यदा सञ्जायते खेदो

बलाद्धिन्तु तदादिशेन ॥ १४० ॥ भुक्तवान् कृतस-

म्भोगः कासो श्वासो कृशः क्षयी ॥

भा०-इसके शरीर में शिथिलता आदिक शीघ्र नहीं होते ॥ ब्रह्मा इव स्या

सहसा इसको घेर को नहीं चढ़ती ॥ १३६ ॥ उसके समान कृश भी स्थ

लता को घटाने वाला नहीं है ॥ वह सदा स्निग्ध भोजन करने वाले बलवानों

को गुण देता है ॥ १३७ ॥ वसन्त और शीत समय में बोल बद्ध रहित है ॥ शी

र समय में भी आधी कसरत करनी चाहिये ॥ १३८ ॥ जब हृदय में रुदने वा

जावायु शीघ्र मुख में प्रपन्न होना दे और मुख मखने लगता है बोल आधी कस

रत का लक्षण है ॥ १३९ ॥ भोजन किया हुआ खी से भोग किया हुआ

रक्त पित्री क्षतवाला शोषरोगवाला उसको कभी न करे ॥ १४१ ॥

आतन्यायामनः कामा ज्वरः छाह अमः क्रमः ॥ तृ-

प्यालक्ष्यः प्रतमका रक्तपित्तञ्च जायते ॥ १४२ ॥ अ-

भ्यङ्ग कारयेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषु पुष्टिदम् ॥

भा०-रक्तपित्री क्षतवाला शोषरोगवाला उसको कभी न करे ॥ १४१ ॥ व-

हुत कसरत करने से खांसी ज्वर वमन अम क्रम तथा क्षय प्रतमका श्वा

रा और रक्तपित्त ये होने हैं ॥ १४२ ॥ सब शरीर में नित्य अभ्यङ्ग करवावे पुष्टि

को देने वाला है ॥ शिरः कान पांव इनमें उसको विशेष करके करे ॥ १४३ ॥

शिरःश्रवणपदेषु न विशेषेण शीलयेत् ॥ ४३ ॥ सा

रपं गन्धतैलञ्च यत्तेन पुष्पवासितम् ॥ अन्यद्रव्य

युतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥ १४४ ॥ गन्धतैलम् ।

(क) गन्धद्रव्याणाम् गुर्वादीनामग्नियोगेन निष्काशितः

रत्नहः ॥ ॥ अभ्यङ्गे वात कफ हृच्छम शान्ति बलं सुख-

म् ॥ निद्रावर्णं मृदुत्वायुष्कुरुते देहपुष्टिकम् ॥ १४५ ॥

भा० सरसों का तैल गन्ध तैल या चमेली आरका तैल अथवा और द्रव्यों से युक्त तैल कभी दिगाड़ नहीं करता ॥ १४४ ॥ ॥ गन्धतैल ॥ (क) मुँह आदि गन्ध द्रव्यों का अग्नि संयोग से निकाला हुआ तैल । अभ्यङ्ग वात कफ का दूर करने वाला श्रमकी शान्ति करने वाला बल सुख को देने वाला निद्रावर्ण मृदुत्व आयु इनकी करता है और इसीको पुष्ट करने वाला है ॥ १४५ ॥

अभ्यङ्गः शीलितो मूर्द्धि सकलन्द्रियनर्पकः ॥ दृष्टि पु-

ष्टिकरो हन्ति शिरो भूमि गतान् गदान् ॥ १४६ ॥ केषा

नां बहतां दाह्य गृह्णादीर्घतां तथा ॥ कृष्णानां कुरु-

ते कुर्याच्छिच्छम पूर्णतामपि ॥ १४७ ॥ नकर्तारोगा

न्नमलं न च मन्था हनुग्रहः ॥ नेत्रैः श्रुतिर्न बाधिर्यं

स्थान्नित्ये कर्णप्रमाणम् ॥ १४८ ॥

भा० शिरमें अभ्यङ्ग किया हुआ मूर्ध्ना इन्द्रियों का नष्ट करने वाला है । और दृष्टि तथा पुष्टिको करने वाला है । ॥ और शिरमें अन्यत्र बाधियों की नाश करे ॥ १४६ ॥ केषा की अधिकता हृन्ता मृदुता तथा दीर्घता । ॥ कृष्ण रंग के केशों को नष्ट करे और पूर्णतामपि ॥ १४७ ॥ नकर्तारोगा न्नमलं न च मन्था हनुग्रहः ॥ नेत्रैः श्रुतिर्न बाधिर्यं स्थान्नित्ये कर्णप्रमाणम् ॥ १४८ ॥ निष्ककर्ण नेत्र मन्थ

से कर्णरोग मेल मन्यास्तंभ हवुग्रह । ऊँसे सुनना और बहिरापन ये नहीं होते ५१

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनान् प्राक् प्रशस्यते ॥ तैला-

द्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ १४६ ॥ पादाभ्य-

ङ्गश्च तन्स्थैर्यं निद्रादृष्टि प्रसादकम् ॥ पाद सुप्तिं

श्रमस्तम्भसङ्गे च स्फुटनं प्रणतम् ॥ १५० ॥ व्यायामं च-

रात्रपुषं पद्मो संमर्दितं तथा ॥ व्याधयो नोपसर्पन्ति

चेन ते यमिवोरगाः ॥ १५१ ॥

भा० रसादिकों का कानमें डालना भोजन के पहिले प्रशस्त है । तैलादिकों का कानमें डालना सायंकाल में प्रशस्त है ॥ १४६ ॥ पेशमें नेल का मलना पेशों का म जड़न और दृष्टि का प्रसाद करने वाला है ॥ पैरों का सो जाना श्रम स्तंभ संकोच और फूटना इनको नाश करना है ॥ १५० ॥ कसरत से कुंठे हों और पावों में मर्दित ऐसे शरीर के पास व्याधियाँ नहीं जाती जैसे सर्प गरुड़ के पास नहीं फटकते ॥ १५१ ॥

लोमकूपं शिराजालं धमनीभिः कलेबरे ॥ तर्पयं ह्य-

माधतस्नेहयुक्तोऽवगाहने ॥ १५२ ॥ अद्भिः संसिक्तमू-

लानां तरुणां म्यत्नवादयः ॥ वर्द्धन्ते हि तथा नृणां स्ने-

हसंसिक्त धातवः ॥ १५३ ॥ नवज्वरी भर्जारी च नाम्य-

क्तव्यः कथञ्चनः ॥ तथा विरिक्तो चान्तिश्च निरूढो य-

श्च मानवः ॥ १५४ ॥ (क) निरूढः दत्तो निरूढ वसि-

श्च यस्मै सः ॥ (क) ॥

भा० स्नेह युक्त शरीर के स्नान करने में धमनियों के द्वारा रोमरूप और शिराजाल वृषिकों प्राप्त होने हैं और बल को धारण करने हैं ॥ १५२ ॥ जैने वृद्धों की नृणों की पानी के सींचने से पल्लवार्थक बढ़ते हैं ॥ बैमली मनुष्यों को स्नेह से स-

सिक्त होने से धातु बढ़ते हैं ॥ १५३ ॥ नये ज्वर वाला और अजीरणा वाला ये कभी
अभ्यङ्ग भी न करें ॥ उसी प्रकार विरेच लिया हुआ वमन लिया हुआ और नीनि
रूढ़ मनुष्य ये भी न करें ॥ १५४ ॥ (क) निरूढ़ः । अर्थात् दीर्घ निरूढ़ व
स्ति जिसको बीह ।

पूर्वयोः कृच्छ्रता व्याधेरसाध्यत्वमथापिवा ॥

शो धारणा न त्विह प्रोक्ता बन्धि सादादयो गदाः ॥ १५५ ॥

(क) पूर्वयोः तरुणज्वरिणोऽजीर्णिनोश्च ॥

उद्धर्तनङ्गुफ हरं मेदोघ्न शुक्रदम्परम् ॥ बल्यं शो-

णितं कृच्छापि त्वक प्रसादमृदुत्वं कृत् ॥ १५६ ॥

मुखलेपात् दृढं चक्षुः पीनो गण्डस्तथाननम् ॥

कान्तमव्यङ्गं पिडकं भवेत्कमलसन्निभम् ॥ १५७ ॥

भा० तरुणज्वर और अजीर्ण इनके व्याधिकी कष्ट साध्यता अथवा असाध्य
ता होती है ॥ और शेष अग्निमान्द्यादिक रोग यहाँपर नहीं कहे हैं ॥ १५५ ॥

(क) पूर्वयोः अर्थात् तरुणज्वर और अजीर्ण वालों के ॥

उवटना कफ मेदका नाशक शुक्रकी बढ़ाने वाला ॥ और बलको करने वाला
रक्तको उत्पन्न करने वाला तथा त्वचाकी स्वच्छता और मृदुताको करने वाला है
॥ १५६ ॥ मुख लेपसे दृढ नेत्र और मांसलगल तथा मुख कान्ति युक्त पीठिका
और व्यङ्ग से रहित होता है तथा कमल के समान होता है ॥ १५७ ॥

दीपनं दृष्यमायुष्यं स्नानमोजो बलप्रदम् ॥ कण्ड-

मलश्रमः खेदतन्द्रा तृडदाहपाकचुत् ॥ १५८ ॥

वाद्यैश्च सेकैः शीताद्यैः रुष्मान्तर्यातिपीडितः ॥ न

रस्य स्नानमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः ॥ १५९ ॥ शी-

तेन ययसा स्नानं रक्तपित्तप्रशान्तिस्तृत् ॥ तदेवाधो-

न तोयेन वल्यं वातकफापहम् ॥ १६० ॥ शिरःस्नानमचक्षुष्यमत्युष्णानाम्बुना सदा ॥ वातश्लेष्मकं पितृ हितन्तश्च प्रकीर्तितम् ॥ १६१ ॥ अशीते नास्मि सास्त्रानं पथः पानन्नवास्त्रियः ॥ एतद्वा मानवाः ।

पथ्यस्निग्धमल्पज्वभोजनम् ॥ १६२ ॥

भा० स्नानदीपनदृष्य आयुके हित भोजन और बल का देने वाला है । और रखा जयेल पथम पसीना तन्हा तथा दाह याक इनका नाशक है ॥ १५८ ॥ अथवा वायु शीतादिकों के संकसे पीडित ज्वरों को उष्मा भीतर होती है स्नान मात्र किये ज्वर मनुष्य की अग्नि उसकरके दीप्त होती है ॥ १५९ ॥ शीत जल से स्नान रक्त पित्त का नाश करने वाला है । उष्ण जल से वही स्नान बल और वान कफ का नाशक है ॥ १६० ॥ संवा अति उष्ण जल से सिरका न्हाना नेत्रों के अहित है । और वही उष्ण जल वात कफ के प्रकोप में हित कहा है ॥ १६१ ॥ गरम जल का न्हाना दूध का पीना ज्वर और तथे मनुष्य के हित है । और स्निग्ध अल्प भोजन ॥ १६२ ॥ (हरिश्चन्द्र स्यतत ।)

यः सदा मलं स्नानं करोति सविनिश्चितम् ॥ वली पलित निर्मुक्ता जीवेद वषं शतवारः ॥ १६३ ॥

स्नानं ज्वरेऽतिसारे च नेत्रकर्णानिलाक्षिण्यु ॥ आध

मान पीनसा जीर्ण भुक्तवल्बु च गहितम् ॥ १६४ ॥

स्नानस्यानन्तरं सम्यग् वस्त्रेणाङ्गस्य मार्जनम् ॥

कान्तिप्रदं शरीरस्य कण्डुत्वगदोषनाशनम् ॥ १६५ ॥

भा० [हरिश्चन्द्र का यह है] जो सदा मल को पानी से स्नान करता है वली अधीन फुरियां सिर के बालों को पकना इनसे निर्मुक्त ज्वर मनुष्य सौ बार जी तो है ॥ १६३ ॥ स्नान ज्वर में अतिसार में नेत्र कर्ण और अनिल इनकी पीड़ा में तथा आधमान पीनसा अजीर्ण और भोजन किये ज्वर में निर्वित है ॥ १६४ ॥ स्नान के अनन्तर अच्छी तरह पर वस्त्र से शरीर को पूछे । शरीर की कान्ति को देने वाला स्नान वस्त्र का दोष नाशक है ॥ १६५ ॥

कौशेयोरिगिक वस्त्रञ्च रक्त वस्त्रन्तथैव च ॥ वात
रूतदम हरन्तत्तु शीतकाले विधारयेत् ॥ १६६ ॥

(कौशेयं पद्माम्बरम् टसर वस्त्रञ्च ।

मेध्यं सुशीतम्यत्तदं कषायं वस्त्रमुच्यते ॥ तद्धार
येदुष्णकाले तत्रापि लघु शस्यते ॥ १६७ ॥

कषायद्वे कर्मो इति लोके कषाय रागरक्तं वा ।

भा० रेशमी ऊनी तथा रक्तवस्त्र वातकफ कानाशक होता है ॥ उसको शीत
कालमें धारण करे ॥ १६६ ॥ कौशेय पद्माम्बर टसर वस्त्र भी । मेध्यं सुशीत
पित्त नाशक कषाय वस्त्र कहल है । उसको गरमी में धारण करे उसमें भी हल-
का प्रशस्त है ॥ १६७ ॥ कषायं कुकड़ इति लोकमें । या कषा रंग से रक्त ॥

शुक्लन्तु शुभदं वस्त्रं शीतातप निवारणम् ॥ नचोष्ण

नचवां शीतन्तत्तु वर्षासु धारयेत् ॥ १६८ ॥ यशस्य

ङ्गाम्यमा युष्यं श्रीमदानन्द वद्गनम् ॥ त्वचं वशीक

रं रुच्यं नवनिर्मल मम्बरम् ॥ १६९ ॥

(क) काम्यं कामोद्दीपकम् ।

कदापि न जनैः सद्भिः धार्य्यम्भलिन मम्बरम् ॥ तत्तु

कण्डू कर्मकर ग्लान्य लक्ष्मी करम्परम् ॥ १७० ॥

भा० शुक्ल वस्त्र शुभद और शीत आनपका निवारण है । नचोष्ण न शीत
उसको वर्षा में धारण करे ॥ १६८ ॥ यशस्य करने वाला काम्य आयुष्य मम्प
ति आनन्द की वद्गन वाला । त्वचा हिन वशीकर रुच्य नवीन स्वच्छ वस्त्र हो
ता है ॥ १६९ ॥ (क) काम्य अर्थात् कामोद्दीपक ।

म कभी भी मज्जना से धारण करने योग्य होना है मलीन वस्त्र ॥ बोह म
लीन वस्त्र - मज्ज कर्मकर और ग्लान अशाभा करने वाला है ॥ १७० ॥

(अलक्ष्मी अशोभादारिद्र्यञ्च ।

कुङ्कुमञ्चन्दनञ्चापि कृष्णागुरु च मिश्रितम् ॥ १९० ॥

प्राग्वात कफध्वंसि शीत काले तदिष्यते ॥ १९१ ॥ च

न्दनं घनसारिणं बलं केन च मिश्रितम् ॥ सुगन्धि

परमं शीत सुष्णकाले प्रशस्यते ॥ १९२ ॥

(घनसारः कपूरः, बालं ह्रीविरम् ।)

चन्दनं दुःसुराणोपेतं मृगनाभिसमायुतम् ॥ नचोष्णं

नचवा शीतं वर्षाकाले तदिष्यते ॥ १९३ ॥

भा० अलक्ष्मी अर्थात् अशोभा और दारिद्र्य भी ॥) केसरचन्दन कृष्णागुरु मिलाइवा । उष्ण वात कफका नाशक है । शीत कालों में वो प्रशस्त है ।

॥ १९१ ॥ चन्दन कपूर सुगंधवाला के साथ मिश्रित । सुगन्धि परम और त्रीत है वोह उष्ण काल में प्रशस्त है ॥ १९२ ॥ (गनसार कपूर बालं सुगन्धवाला ॥) चन्दन केसर करके युक्त और कस्तूरी के सहित । यह न उष्ण न शीत है इसवाले वर्षा काल में प्रशस्त है ॥ १९३ ॥

(घुसुराङ्कुङ्कुमम् । मृगनाभिः कस्तूरी ।)

अनुलेप स्तृष्या मूर्च्छा दुर्गन्धि स्वेद दाहजित् ॥ सौभा

ग्यतेजस्त्वावर्णां प्रीत्यौजोबल वर्द्धनः ॥ १९४ ॥ स

स्नानानर्हं लोकानामनुलेपोऽपि नो हितः ॥ सुगन्धि

पुष्प पत्राणां धारणं दुर्गन्ति कारकम् ॥ १९५ ॥ पाप

रक्षो ग्रह हरं कामदं श्रीविवर्द्धनम् ॥ भूपरौ भूयये

दङ्गं यथा योग्यं विधानतः ॥ १९६ ॥

भा० (घुसुरा मर्थात् केसर) मृगनाभि कस्तूरी) इनका अनुलेप तृष्या मूर्च्छा दुर्गन्धि पसीना दाह का जीतनेवाला है । सौभाग्य तेजस्विकाकी कान्ति प्रीति भोज बल इनका वर्द्धन करनेवाला है ॥ १९४ ॥ स्नान के अयोग्य पुरुषों को वोह

अनुलेप भी हित नहीं है ॥ सुगन्धि पुष्प पत्रों का धारण कान्ति कारक है ॥
१७५ ॥ पाप राक्षस ग्रह इनका हरने वाला कामका उत्पन्न करने वाला श्री
का बढ़ाने वाला है । यथा योग्य विधिसे शरीरको भूषणों से भूषित करे ॥

शुचि सौभाग्य सन्तोष दायकं काञ्चनं स्मृतम् ॥

ग्रह दृष्टि हरस्पृष्टि करं दुःखमनाशनम् ॥ १७७ ॥

पापदौर्भाग्य शमनं रत्नाभरण धारणम् ॥

माणिक्यन्तरेणः सुजात्यममलं मुक्ताफलम् शीत-

गो । मोहेयस्य च विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गा-

रुत्मकम् ॥ देवेयस्य च पुष्प रागमसुराचार्यस्य

वज्रं शनेः । नीलत्रिर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेद-

वेडूर्यके ॥ १७८ ॥

भा० स्वर्णी पवित्रता सौभाग्य सन्तोष का देने वाला कहा है । ग्रहों की दृष्टि
को हरने वाला पुष्टिकारक दुःखमनाशन है ॥ १७७ ॥ रत्नों के भूषणों का
धारण पाप दुर्भाग्यता का शमन है ॥ ॥ अच्छी जानका स्वच्छ माणिक
सूर्यका । मोती चन्द्रका । मृगा मंगल का कहा है । बुधका पद्मा । वृहस्पति का
पुखराज । शुक का हीरा । शनिकानीलम । राहु का गोमेद । और केतू का वेडूर्य
॥ १७८ ॥

वासः शृङ्गार रत्नानां धारणमप्रीति वर्द्धनम् ॥ रक्षो-

घ्न मर्त्यमोजस्यं सौभाग्यकरं सुत्तमम् ॥ सततं सि-

द्धमन्त्रस्य महौषध्यास्तथैव च ॥ रेचना सूर्यपादी

नां भाङ्गल्यानाञ्च धारणम् ॥ १८१ ॥

भा० कपड़ा आभूषण रत्नों का धारण प्रीति का बढ़ाने वाला है ॥ रक्षकों
का नाशक द्रव्य को देने वाला और को बढ़ाने वाला और उत्तम सौभाग्यको
करने वाला है ॥ १८० ॥ निरंतर सिद्ध मंत्र का तथा महौषधिका । और

गोरोचन सरसों इत्यादिकों का और मंगलको करने वालों का धारण ॥ १८१ ॥

आयुर्लक्ष्मी कारं रत्नोहरं मङ्गलदं शुभम् ॥ हिंसा
भय विध्वंसि वशीकरणा कारणम् ॥ १८२ ॥ ततो
भोजन वेलायां कुर्यान्माङ्गल्य दर्शनम् ॥ तस्य
प्रदर्शनं नित्यं मायु धर्म विवर्द्धनम् ॥ १८३ ॥
लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणा गोहताशनः ॥
पुष्पस्रक् सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः ॥ १८४ ॥

भा० आयुर्लक्ष्मीको करने वाला रत्नसों का नाशक मंगलको देने वाला ।
और शुभ है । तथा व्याघ्रादि हिंसकों का भयनाशक और वशीकरण का
हेतु है ॥ १८२ ॥ उसके अनन्तर भोजनके समय में मांगल्य दर्शन करे ।
उसका नित्यदर्शन आयु धर्मका बढ़ाने वाला है ॥ १८३ ॥ लोकमें आठ
वस्तु मंगल हैं । ब्राह्मण अग्नि गाय पुष्पमाला घृत स्वर्य जल राजा ये
आठ हैं ॥ १८४ ॥

पादुका रोहराङ्गुलीन् पूर्वभोजनतः परम् ॥ पाद
रोगहरं दृष्यं चक्षुष्यं ज्वायुषो हितम् ॥ १८५ ॥ शरीरे
जायते नित्यं वाञ्छा नृणाञ्चतुर्विधा ॥ बुभुक्षा च
पिपासा च सुषुप्ता च रतमृहा ॥ १८६ ॥ भोजनेच्छा
विधातात्पादङ्ग मर्दोऽरुचिः श्रमः ॥ नन्द्रालोचन
दौर्बल्यं धातुदाहो बलक्षयः ॥ १८७ ॥

भा० भोजन के प्रथम और पश्चात् खड़ाक पर चढ़े । पाद रोग को हरने वाला
दृष्य और चक्षुष्य तथा आयु के हित ॥ १८५ ॥ नित्य मनुष्यों के शरीर में चार
प्रकार की इच्छा होती है ॥ भोजन की इच्छा प्यास की इच्छा सोने की इ-
च्छा रतेच्छा ॥ १८६ ॥ भोजन की इच्छा के विघात से अङ्ग मर्द अरुचि श्रम

तन्द्रानेत्रकी दुर्बलता धातु बाह बलक्षय होता है ॥ १८७ ॥--

विघातेन पिपासाया शोषः कण्ठास्य यो भवेत् ॥ अ
वरास्यावरोधश्च रक्तशोषो हृदिव्यथा ॥ १८८ ॥ निद्रा
विघाततो जृम्भा शिरोलोचन गौरवम् ॥ अङ्ग मईस्त
था तन्द्रास्या दन्तापाक एव च ॥ १८९ ॥ बुभुक्षितो न
योऽश्नाति तस्या हरेन्धन क्षयात् ॥ म हो भवति का
याग्नि र्यथा चाग्नि निर्निधनः ॥ १९० ॥ आहारं यच-
ति शिखी दोषानां हार वर्जितः ॥

भा० प्यासके विघात से शोष कंठ और मुख का होता है ॥ अवराके अव-
रोध रक्तशोष हृदयमें पीड़ा होती है ॥ १८८ ॥ निद्राके विघात से जंभाई औ
र शिर नेत्र में भारीपन ॥ शरीर का सूटना तथा तन्द्रा अन्नका अपरि पाक
भी होता है ॥ १८९ ॥ जो बुभुक्षित भोजन नहीं करता उसके आहाररूपी दू-
न्धन के क्षय से ॥ कायाग्नि मन्द होती है जैसे बेदन्धन अग्नि मन्द होती है ॥
१९० ॥ अग्नि आहार को पकाता है ॥ और आहार वर्जित हुआ दोषों को
पकाता है ॥ यचति दोषक्षये च धातून् धातुक्षये च प्रा-

णान् ॥ आहारः प्रीणानः सद्यो बलं हृद्देह धारणः ॥
स्मृत्यायुः शक्तिवर्णजः सत्त्व शोभा विवर्द्धनः ॥ १९१ ॥
॥ यथोक्तगुण सम्यक् नरः सेवेन भोजनम् ॥

भा० तथा दोष के क्षय होने से धातुओं को पकाता है और धातु क्षय होने
में प्राणों को पकाता है ॥ १९१ ॥ आहार तर्पण और तत्काल बल को क
रनेवाला शरीर का धारण ॥ स्मृत्य आयु शक्ति वर्ण भोज सत्त्व शोभा का
बढ़ानेवाला ॥ १९२ ॥ यथोचित गुण से युक्त भोजन को ग्रहण करें ॥

विचार्य दोष कालादीन् कालयो रुभयोरपि ॥ १९३ ॥

(क) उभयोः कालयोः प्रातः सायञ्च । तथाच
 सायं प्रातः मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम् ॥ नान्तरा
 भोजनं दुःख्यादग्नि होत्र समो विधिः ॥ १८४ ॥ प्रातः ।
 (ख) प्रातः । प्रथम यामादुपरि द्वितीय यामादर्वाक तथा च ।
 याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुगमे न लङ्घयेत् ॥ याम
 मध्ये रसोत्पत्तिर्य्यामयुगमाद् बलक्षयः ॥ १८५ ॥ अन्यच्च
 क्षुत् सम्भवति पक्षेषु रसदोष मलेषु च ॥ काले वा
 यदि वा काले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ १८६ ॥

भा० प्रातः काल और सायंकाल में दोषकाल आदिकों को विचार करके भो-
 जनकरे ॥ १८३ ॥ (क) उभयोः कालयोः अर्थात् सायंकाल और प्रातः काल
 वैसे सुबह उठम मनुष्यों का भोजन श्रुति द्वारा कहा हुआ है ॥ और बीच में
 भोजन न करे अग्नि होत्र के समान विधि है ॥ १८४ ॥

(ख) प्रातः अर्थात् प्रथम पहर के ऊपर और दूसरे पहर के पहले उस प्रकार
 कहा है ॥ प्रथम पहर के बीच में भोजन न करना चाहिये । और दूसरे पहर को
 उत्पन्न न करे । अर्थात् दोपहर के बाद भोजन न करे ॥ प्रहर के बीच में रस
 उत्पत्ति होती है । और दूसरे पहर के अनन्तर बल का क्षय होता है ॥ १८५ ॥
 रसदोष मल के पाक होने में क्षुधा होती है ॥ समय पर अथवा समय के चाहर वो-
 ही अन्नकाल कहा है ॥ १८६ ॥ [रसादीनां पाक ज्ञानमाह]

उद्गार शुद्धिरुत्साहो वेगोऽन्सर्गो यथोचितः ॥ लघुता क्षु-
 त्पिपासा च जीर्णहारस्य लक्षणम् ॥ १८७ ॥ स्थानमाह]
 आहारन्तु नरः कुर्व्यान्निर्हारमपि सर्वदा ॥ उभाभ्यां
 लक्ष्युपेतः स्यात् प्रकाशो हीयते श्रियाः ॥ १८८ ॥
 निर्हारा मल मूत्रोत्सर्गः । अन्यच्च ।

भा० रसादियों के पाक का ज्ञान कहते हैं । शुद्ध उकार उत्साह मल मूत्र का यथोचित होना ॥ हलका पन शुधाप्यास यह आहार जीर्ण ज्वेका लक्षण है ॥ १६७ ॥ मनुष्य सकान्त में भोजन और मल मूत्र का त्याग करे । क्यों कि दोनों से शोभा करके शुक्त मनुष्य होता है । और मकाश में कत्ने से शोभा से हीन होता है ॥ १६८ ॥ निहोरः अर्थात् मल मूत्र का त्याग । और भी ।

(क) आहार निहोर विहार योगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेया ।

[भोजन पात्रमाह ।]

दोषहृष्टिदं पथ्य हैमं भोजन भाजनम् ॥ शैष्यं भवति चाक्षुष्यं पित्तहृत् कफवातकृत् ॥ १६९ ॥ कांश्यं बुद्धिप्रदं रुच्यं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ पैतलं वातकृद्द्रुतं मुष्णं हृमिकफप्रणुत् ॥ २०० ॥ आयसेकाचपात्रे च भोजनं सिद्धिकारकम् ॥ शोथपाण्डुहरं वल्यं कामलापहसुत्तमम् ॥ २०१ ॥ शैलेये मृणये पात्रे भोजनं श्रीनिवारणम् ॥ दारुद्रवे विशेषेण रुचिदं श्लेष्मकारितु ॥ २०२ ॥

भा० भोजन और मल मूत्र का त्याग और विहार इनका योग विद्वानों ने सदा ही निर्जन स्थानों में विधान किया है ॥ [भोजन के पात्रों को कहते हैं] दोषों का नाशक हृष्टिका देनेवाला और पथ्य सोने का पात्र होता है ॥ चांदी का पात्र नेत्र का हिन पित्तनाशक और कफवात को करनेवाला होता है ॥ १६९ ॥ कांसी का बुद्धि को देनेवाला अरुचिरक्त पित्त का प्रसादन होता है । पित्तल वा न का करनेवाला रुखा उष्ण और हृमिकफ का नाशक होता है ॥ २०० ॥ लोहे के और काच के में भोजन सिद्धिकारक है । शोथ पांडु को दूर करनेवाला नल्य कामल का नाशक होता है ॥ २०१ ॥ पथ्यर के और मर्ही के पात्र में भोजन श्रीनिवारण है ॥ खकड़ी के पात्र में विशेष करके रुचि को देनेवाला और कफकारी होता है ॥ २०२ ॥

पात्रं पत्रमयं रुच्यं दीपनं विषपापनुत् ॥ जलपात्रं ताम्रस्य तदभावे मृदोहितम् ॥ २०३ ॥ पवित्रं शीतं

लं पात्रं गठितं स्फटिकेन यत् ॥ काचेन रचितं तद्वत्
 या वैदूर्यं सम्भवम् ॥ २०४ ॥ भोजनाग्रे सदा पथ्यं
 लवणार्द्रक भक्षणम् ॥ अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वा
 कराढ विशेषधनम् ॥ २०५ ॥

भा० पत्तेका पात्र रुचिको करनेवाला दीपन विष और पापका नाशक होता है ॥ जलपात्र नाम्बेका हित है और यह न होना मिट्टीका हित है ॥ २०३ ॥ स्फटिक से जो गठित पात्र है वह सदा पवित्र है और प्रीतल है ॥ और जो कांच से रचित है उसीके सम्मान है नथा वै र्य से झुत्ता भी वैसा ही है ॥ २०४ ॥ भोजन के पहिले अद्रक और नोन का भक्षण सदा पथ्य है ॥ अग्निका दीपन रुच्य नथा निक्का कराढ का विशेषधन है ॥ २०५ ॥

(क) ननु लवणस्य पित्तजनकत्वाद्द्रकस्य कटुकत्वेन
 पित्तलत्वाद्दु भुक्षितस्य वृद्धपित्तस्य कथमग्रयमं लवणार्द्र
 क युचितम् । उच्यते । लवणं सैन्धवं ज्ञेयं चन्दनं रक्त चन्दन
 मिति वचनाल्लवणं मत्र सैन्धवं तत् त्रिविदोषघ्नं । यत आ
 ह । गुणग्रन्थे ।

भा० (क) ननु शंका करने हैं कि लवण को पित्तजनकत्व होने से और अद्रक कटुत्व करके पित्तलं होने से वृद्धिको प्राप्त हुवे पित्तवाले बुभुक्षितको कैसे अग्रयम लवण अद्रक का भक्षण उचित है ॥ कहते हैं ॥ लवण सैन्धव और चन्दन रक्त जानना चाहिये इस वचन से लवण यहां पर सैन्धव है जो त्रिविदोष नाशक है । जैसे कि कहा है । गुणग्रन्थमें ॥

सैन्धवं लवणं स्वादु दीपनम्याचनं लघु ॥ स्निग्धं रु
 च्यं हिमं वृष्यं सह्यं नेत्र्यं त्रिविदोषहृत् ॥ २०६ ॥

(ख) आद्रकं ननु कटुकमपि न पित्तविरोधि मधुरपाकिन्वा
 त् । यत आह । तत्रैव ॥ आद्रिका मेदिनी गुर्वी नीलोत्पी-

ष्णा दीपनी च सा ॥ कटुका मधुरा पाके सूक्ष्मा वात
कफापहा ॥ २०७ ॥ (क) अथ चान्यदपि लवणा मा-
र्द्रकञ्च नात्र पित्तविरोधि संयोगस्वभावान् । संयोगस-
भावे चैतादृशम् ॥ भोजनस्य पूर्व्वलक्षणा र्द्रक भक्षणा
बोधकवचनमेव प्रमाणायति ।

भा० सैन्धव लवणा स्वादु दीपन पाचनदलका ॥ त्रिगुण रुचिकारक औ-
त लवण सूक्ष्म नेत्रका हित और त्रिदोष का नाशक है ॥ २०६ ॥

(ख) अद्रक तो कटुक तवा भी पित्तका विरोधी नहीं है मधुर पाक के होने
से । जैसे कि कहा है उसी में ॥ अद्रक भक्षण करनेवाला भारी तीक्ष्ण उष्ण
दीपन ॥ कटु और पाकमें मधुर सूक्ष्म वात कफ का नाशक होता है ॥

२०७ ॥ (क) अनन्तर और भी लवणा अद्रक यहाँपर पित्तका विरोधी नहीं
है । क्यों कि संयोग स्वभाव होने से । संयोग स्वभाव तो इस प्रकार कहा है ॥
भोजनका पूर्व्वलक्षण अद्रक भक्षणा बोधक वचन ही प्रमाण करता है ॥

भोजनादौ दृष्टिदोष विनाशाय ब्रह्मादीन् स्मरेत् । त-

द्यथा अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः ॥

इतिसञ्चिन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न बाधते ॥ अञ्जनीग-

र्भं सम्भूतं कुमारं ब्रह्मचरिणम् ॥ दृष्टिदोष विनाश-

य हनुमन्तं स्मराम्यहम् ॥ ॥ अञ्जीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वे

तु मधुरं रसम् ॥ मध्येऽस्तु लवणो पश्चात् कटुतिक्तक-

षायकान् ॥ फलान्यादौ समञ्जीया हाडिमादीनि बुद्धि-

मान् । विनामोच फलान्दृष्टिर्जनीया च चर्कैरेव ॥ २११ ॥

भा० भोजनके आदिमें दृष्टिदोष विनाशके अर्थ ब्रह्मा दिकों को स्मरण करे ।
जैसे कि अन्न ब्रह्मा विष्णुरस भोक्ता देव महेश्वर ॥ इस प्रकार स्मरण कर
के भोजन करनेवाले को दृष्टिदोष बाधा नहीं करता ॥ २०८ ॥ अञ्जनीके गर्भ
में उत्पन्न हुआ कुमार ब्रह्मचारी । ऐसे हनुमान को दृष्टिदोषके विनाशके ल

र्थं ह्यमस्मिन्नस्मरणं करोतु ॥ २०८ ॥ तन्मनो ह्येके प्रथमं मधुरं रसको भोजनं करो ।
मध्यमे अम्लं लवणं और अन्तर्मे कटुतिक्तं कषायो को भोजनं करो ॥ २१० ॥
दाहिनं आदि फलों को आदिमें बुद्धिमान् भक्षणं करो ॥ केले के बिना और
ककड़ी को भी वैसे ही खाइ देवे ॥ २११ ॥

मृणाल विषा शालु ककन्देक्षु प्रभृतीनपि ॥ पूर्वमेव
हि भोज्यानि नतु भुक्त्वा कदाचन ॥ २१२ ॥ (क) मृणालं पद्मनालं विषाम्भिषाण्डकम् शालूककन्दं प्रसिद्धम् ।
गुरुपिष्टमयं द्रव्यं तण्डुलान् पृथुकानपि ॥ न ज्ञातु
भुक्तवान् खादेन्मात्रां खादेद्बुभुक्षितः ॥ २१३ ॥ घृत-
पूर्वं समश्रीयात् कठिनं प्राक् ततो मृदु ॥ अन्ते पुन
द्रवाशी तु बलात् रोगेण मुञ्चति ॥ २१४ ॥

भा० कमल की डंडी और कुमुदादिकों की जड़ का कन्द तथा करव प्रभृति यों
को भी । प्रथम ही भोजन करना चाहिये और भोजन करके कभी न भक्षण
करना चाहिये ॥ २१२ ॥ (क) मृणाल अर्थात् पद्मनालं विसम्भि सण्ड
क शालूककन्द प्रसिद्ध है ॥ भारी पिट्टी की चीज़ और चावल बिड़वे इन
को भोजन किया हुआ कभी न खावे और बुभुक्षित थैसा खावे ॥ २१३ ॥
प्रथम कठिन घृत के साथ भोजन करे ॥ उसके बाद मृदु ॥ पुनः अन्त में प
तली वस्तु का भोजन करने वाला होवे ॥ इस प्रकार करने से बलात्कार
से रोग करके मुक्त होना है ॥ २१४ ॥

मृणाल विषा शालु ककन्देक्षु प्रभृतीनपि ॥ पूर्व
मेव हि भोज्यानि नतु भुक्त्वा कदाचन ॥ २१५ ॥
(क) अयमर्थः । प्राक् घृत पूर्वं कठिनं समश्रीयात् ।
यथा काश्यादि वासिनः । (ख) प्रथमं सव्यज्जनाद्

तत्पूर्वो रोटिका म्मुञ्जन्ते । ततो मृदु ससूपादि मोदनम्
 ७ज्जन्ते । अन्ते पुनर्द्रवाशी ॥ भोजनान्ते दधि तक्र दुग्धादि
 भुञ्जन्ते । यद्यत् स्वादुतरन्तद्दि दद्यादुत्तरोत्तरम् ॥ भुक्त्वा
 यत् प्रार्थ्यते भूयस्तदुक्तं स्वादु भोजनम् ॥ २१६ ॥

भा० (क) यह अर्थ है कि प्रथम घृतके साथ कठिन वस्तु भक्षण करें । जैसे
 काशीके रहनेवाले ॥ (ख) प्रथम व्यंजन के सहित घृतके साथ रोटीकी खाते
 हैं ॥ उसके अनन्तर दालके साथ चावल भोजन करते हैं । अन्तमें पुनः
 द्रवाशी होंगे ॥ अर्थात् भोजनके अन्तमें दही मद्धा दूध इत्यादि भोजन करते हैं ।
 जो जो बहुत मीठा हो उसको उत्तरोत्तर भोजन न करें जो फिरसे चाहे सो स्वादु भो-
 जन कहा है ॥ २१६ ॥

स्वादुन्नस्य गुणमाह ।

सौमनस्य बलम्पुष्टिं मुत्साहं वृद्धिं मायुषः । स्वादु स-
 ७जनयत्यन्नं मस्वादुच विपर्ययम् ॥ २१७ ॥ अत्युष्णं
 न्नं बलं हन्ति शीत शुष्कञ्च दुर्जरम् ॥ अतिक्लिनं
 ग्लानिकरं युक्त्ययुक्तं हि भोजनम् ॥ २१८ ॥ अतिदु-
 ताशिताहारे गुणान्दोषान्न विन्दति ॥ भोज्यं शीत
 महद्यञ्च स्याद्विलम्बित मश्नुतः ॥ २१९ ॥

भा० स्वादु अन्नके गुण कहते हैं । सौमनस्य बलपुष्टि उत्साह और आयुकी
 वृद्धि । इनको स्वादु अन्न उत्पन्न करता है ॥ और अस्वादु इसके विपरीतको
 करता है ॥ २१७ ॥ अतिउष्ण अन्न बलको नाश करता है । और शीत शुष्क
 दुर्जर वंशत गलाइता ग्लानिको करता है । तथा युक्ति करके अयुक्त भोजन भी
 ग्लानि करता है ॥ २१८ ॥ आहारके अतिशीघ्र भोजन करने में गुण नहीं होता ।
 किन्तु दोष होता है ॥ शीत भोजन अप्रिय होता है । और देरमें भोजन करने से अ-
 रुच्य होता है ॥ २१९ ॥

[गुरु त्रिविधन्तनिवारयन्नाह ।]

मन्दानलो नरोद्वयं मात्रागुरु विवर्जयेत् ॥ स्वभावत
 म्प्र गुरुयत् तथा संस्कार तो गुरुः ॥ २२० ॥ मात्रागुरु

स्तु मुद्गादिः माषादिः प्रकृतेर्गुरुः ॥ संस्कार गुरु
पिष्टान्नं प्रोक्त मित्युप लक्षणम् ॥ २२१ ॥ आहा
रं षड् विधञ्चूष्यं पेयं लेह्यं नथैव च ॥ भोज्य
मभक्ष्यन्तथा चर्व्यं गुरु विधानं यथोत्तरम् ॥ २२२ ॥

भा० भारी तीन प्रकारका होता है उसको दूर करके कहते हैं ॥ मन्दाग्नि
वाला मनुष्य मात्रा गुरु स्वभाव गुरु और संस्कार गुरु सेसे द्रव्यको तज देवे।
जो स्वभावसे भारी है या संस्कार से भारी है ॥ २२० ॥ मात्रा गुरु मृग इत्यादि
क होते हैं। और उड़द इत्यादिक स्वभाव से गुरु होते हैं ॥ तथाच पिष्टी इत्या-
दिकी संस्कार गुरु कहा है यह उपलक्षण है ॥ २२१ ॥ आहार छः प्रकार
का होता है। चूष्य पेय लेह्य ॥ भोज्य तथा अभक्ष्य चर्व्य ये उत्तरोत्तर गुरु
जाने ॥ २२२ ॥ [चूष्यं द्रक्षु हाडिमादि ।]

(क) पेयम् पानक शर्करोदकादि लेह्यं रसाला क्वाथि-
तादि क्वथिता कढ़ी इति लोके । भोज्यं भक्त सूपादि ।
भक्ष्यं लडुकं मण्डुकादि चर्व्यञ्चिपिटञ्चणाकादि स्व-
भाव गुरु संस्कार गुरुणोः स्वभाव लघुता अभक्ष्यस्य भो-
जन परिमाणमाह ॥

भा० चूष्य ऊँस हाडिमादिक पेय पानक शर्वत इत्यादिक लेह्य रसाला क
ढ़ी इत्यादिक। क्वथिता अर्थात् कढ़ी। भोज्य दाल चावल। मस्य लडु मी
रस इत्यादिक। चर्व्य चिड़वा चना इत्यादिक। स्वभाव गुरु और संस्कार
गुरु का स्वभाव लघुता से अभक्ष्यका भोजन परिमाण कहते हैं ॥ (कं) ॥

गुरुणा मर्द्धं सौहित्यं लघूनां नृप्तिरिष्यते ।

(ख) अयमर्थः माष पिष्टान्नादिभिर्द्धं सौहित्यं कर्त्त-
व्यं मुद्गादिभिः स्वभावादेव लघुभिर्मात्रया नृप्तिः कर्त्तव्ये

त्यर्थः ॥ द्रवो द्रवोत्तरश्चपि न मात्रा गुरुरिष्यते ॥

(ग) द्रवः पेयादि द्रवोत्तरः तत्राद्यधिक ओदनादिः मात्रातोऽधिकोऽपि मात्रा गुरुर्न मन्तव्यः । पेयस्य सर्वतो लघुत्वान् । उक्तञ्च सुश्रुतेन ।

(घ) पेयलेह्यादि भक्ष्याणां गुरुर्विद्यात् यथोत्तर मिति । पेयम्पेयादि । लेह्यं रसालादि । आदिशब्दान् भोज्य मोदन सूपदि । भक्ष्यम्मोदकादिः ।

द्रव्याढ्य मपि शुष्कन्तु सम्यगेवोपपद्यते ॥ विशुष्क मन्न मभ्यस्तं न पाकं साधु गच्छति ॥ २२३ ॥

भा० गुरु पदार्थों की आधितृप्ति और लघु पदार्थों की पूर्णातृप्ति द्रव्य है ॥ यह अर्थ कहा है कि उड़द पिट्टी वगैरों की आधितृप्ति करनी चाहिये ॥ स्वभाव से ही हलके मूंग वगैरों की मात्रा करके शरीर की तृप्ति करनी चाहिये । द्रव अर्थात् द्रवोत्तर भी मात्रा गुरु इष्ट नहीं है ॥ (ग) द्रव अर्थात् पेयादि द्रवोत्तर अर्थात् द्रवादि अधिक ओदनादिक । मात्रासे अधिक को भी मात्रा गुरु न मानना चाहिये । पेयका सर्वतः लघु होने से । कहा है सुश्रुत ने भी । (घ) पेय लेह्यादिक भक्ष्य पदार्थों को यथोत्तर गुरुजाने ॥ पेय अर्थात् पेयादि लेह्य अर्थात् रसालादिक । आदि शब्दसे भोज्य चावल दाल इत्यादिक । भक्ष्यमोदकादिक । शुष्क भी द्रव्यसे भरा हुआ अच्छी तरह पाक को प्राप्त होता है ॥ और बड़न सूकाड़ा अन्नसेवन किया । अच्छे प्रकार पाक को नहीं प्राप्त होता ॥ २२३ ॥

(क) अयमर्थः शुष्कमपि स्वोत्तरोधकमपि द्रव्याढ्यं सम्यक् पाकं याति । केवलस्य शुष्कान्नस्य दोषमाह । विशुष्कमन्नमित्यादि । [अपक्वन्तत्किम्मवतीत्यपेक्षायामाह । पिराडीकृतमसं क्लिप्तं विदाहमुपगच्छति ॥

[पिण्डीकृतम् । अष्टीलावदुद्धृतम् ।]

(ख) असं क्लिन्नं न सम्यगादौ । विदाह मुपगच्छति विदग्धं भवतीत्यर्थः । शुष्कादीनां वैगुण्यमाह ।

शुष्कं विरुद्धं विष्टम्भि वह्निव्यापद कृद्भवेत् ॥

(ग) शुष्कञ्चिपिठकादि । विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि । विष्टम्भि चराकमसूरादि वह्निमान्द्यङ्गुर्यान् ॥

न भुक्त्वा न सदम्बित्वा न निशायां न वा वहन् ॥ न

जलान्तरितानद्भिः सक्तू नद्यान्न केवलान् ॥ २२४ ॥

पुनर्दानं पृथक्पानं सामिषम्ययसा निशि ॥ दन्त

च्छेदनमुष्णाञ्च संप्त सक्तुषु वर्जयेत् ॥ २२५ ॥

भा० यह अर्थ है । कि शुष्क भी खोत का करनेवाला भी गधरेधे से भरा हुआ अच्छी तरह पर पाक को प्राप्त होता है । केवल शुष्क अन्न का दोष कहने है । विशुष्क अन्न इत्यादि । अपक्व बोह अन्न का होना है इस अपेक्षामें कहते हैं ॥ पिंडसाहवा नगलाहवा ऐसा अन्न विदाह को प्राप्त होता है । पिंडी कृत अर्थात् अष्टीला के मानिंद उठा हुआ । असं क्लिन्न अर्थात् अच्छे प्रकार जो आर्द्र नहीं । विदाह को प्राप्त होता है । अर्थात् विदग्ध होता है ॥ शुष्कादियों का वैगुण्य कहते हैं ॥ शुष्क विरुद्ध विष्टम्भिये यथार्थ अग्निमान्द्य को करने वाले होते हैं ॥ (ग) शुष्क अर्थात् चिड़वा इत्यादिक । (विरुद्ध) दूध गळली इत्यादि । (विष्टम्भि) चना मसूर आदिक । अग्निमान्द्य करते हैं ॥ न भोजन करके न दानों को छीलके न सायंकाल में न वेगों का धारण करता हुआ । न नल करके व्यवहित सक्तू पानी के साथ केवल न भक्षण करे ॥ २२४ ॥ फिर से देना खाली पीना मांस के साथ पानी से सायंकाल में दन्त च्छेदन और गरम ये सान सक्तु में छोड़ देवे ॥ २२५ ॥

सुशुनः । पाकूनाभाशुजीर्णेन मृदुतादवलेहि के ॥

[विषमाशनस्य लक्षणमाह ।]

आलस्य गौरवा दोष षण्दंश्च कुरुतेऽधिकम् ॥ ही-
नमात्रं तनोः कार्श्यं करोति च बलक्षयम् ॥ २२६ ॥

(क) अधिकं अन्नम् । अकाले मुक्तस्य दोषमाह ।

अप्राप्तकाले भुञ्जानो ह्यसमर्थः तनुर्नरः ॥ तां

स्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणञ्चाधि गच्छति ॥ २२७ ॥

भा० सश्रुतने कहा है । शीघ्र जीर्ण होने करके मृदु होने से सत्त्व का प्रबलेह प्रशस्त है ॥ विषमाशन का लक्षण कहते हैं ॥ अधिक मात्रा आलस्य भारियन गुड़ गुड़ा शब्दों को भी करती है ॥ और हीन मात्रा शरीर की कृशता और बल क्षय को भी करती है ॥ २२६ ॥ (क) अधिक अन्न । अकाल में भोजन किये का दोष कहते हैं ॥ अप्राप्त काल में भोजन करने वाला असमर्थ शरीर मनुष्य होता है ॥ उन २ व्याधियों को पाता है । और मरण को भी पतञ्जल जाता है ॥ २२७ ॥

(ख) अप्राप्तकालः कालादति प्राक् भुञ्जानः असमर्थ

शरीरो भवति । तथा सति तां स्तान् व्याधीन् शिरो व्यथा
विस्तृचिकालसक विलम्बिकादीन् प्राप्नोति ।

तेषामाधिक्ये मरणमपि प्राप्नोतीत्यर्थः ॥

कालेऽतीतेऽश्रतो जन्तो वायुनोपहतेऽनले । कृच्छ्रा

द् विपच्यते मुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनः स्पृहा ॥ २२८ ॥

भा० (क) (अप्राप्तकाल) समय से बहुत प्रथम भोजन करने वाला असमर्थ शरीर होता है । वैसे होने से उन २ व्याधियों को अर्थात् शिरपीड़ा विस्तृचिका अलसक विलम्बिकादि व्याधियों को पाता है ॥ उनके बढ़ जाना में मरण को भी प्राप्त होता है ॥ बहुत अवसर में भोजन करने वाले मनुष्य को वायु से नष्ट हुई अग्नि में भोजन किया हुआ कष्ट से पाक होता है । और फिर से भोजन की इच्छा नहीं होती ॥ २२८ ॥

कुक्षेर्भाग द्वयं भोज्यैः स्तुतीये वारि पूरयेत् ॥ वायोः
 सञ्चारणार्थोय चतुर्थं मवशेषयेत् ॥ २२६ ॥ रसे
 नान्नस्य रसना प्रथमे नोपतर्पिता ॥ न तथा स्वा-
 दुमाप्नोति ततः शोध्याम्बु नान्तरा ॥ २३० ॥ अन्त्य
 म्बुपानान्न विपच्यतेऽन्न मनम्बुपानाञ्च स एव दो-
 षः ॥ तस्मान्नरो वह्निविवर्द्धनाय मुहर्मुह्वोरि पि-
 वेद्भूरि ॥ २३१ ॥ भुक्तस्यादौ जलम्पीतं कार्पण्यं मन्दा
 ग्निदोषकृत् ॥ मध्येऽग्नि दीपनं श्रेष्ठ मन्ते स्थौल्य
 कफप्रदम् ॥ २३२ ॥ (अन्यच्च ।) समस्थू-
 लरुशामुक्त मध्यान्तः प्रथमांम्बुपां । (इति वाग्भटः ।)

भा० कूरु के दो हिस्से भोज्यपदार्थों से भरे । और तीसरे में पानी भरे ।
 तथा चौथा हिस्सा वायुके अग्निजिनके वास्तेवांकी छोड़े ॥ २२६ ॥
 अन्न के रस से जिन्हा पहले तृप की हुई ॥ वैसी स्वादु नहीं होनी तिससे ज-
 ल करके भीतरसे शोधन करनी चाहिये ॥ २३० ॥ वह्न जलके पानसे
 अन्न परिपाक नहीं होता । और जलके न पीनेसे भी अन्न परिपाक नहीं हो-
 ना ॥ तिससे मनुष्य अग्निकी दृष्टिके अर्थ बार २ छोड़ा जल पीवे ॥ २३१ ॥
 भोजन के पहिले जल पीनेसे रुग्णता और मन्दाग्नि दोष होता है ॥ और
 मध्य ने जल पीनेसे अग्नि दीपन होता है इसवासे श्रेष्ठ है ॥ तथा अन्न में
 स्थूलता और कफकारी होता है ॥ २३२ ॥ और भी । भोजन के मध्य ज-
 ल पीनेवाला सभ अन्नमें पीनेवाला स्थूल प्रथममें पीनेवाला रुपा इसप्रकार

(भुक्तं भोजनं) नृषितस्तु भवेद् गुल्मी क्षुधितस्तु जलो-
 दरी ॥ २३३ ॥ (क) ननु पिष्टा भोजनान्ते दुग्धं पिबन्ति
 तत्कथमुचितं । यतस्त्रिधा विभक्तस्य भोजन काल
 स्य प्रथमो भागो वानस्य द्वितीयः पित्तस्य तृतीयः

कफस्य अतएवाह ॥ अप्नीयात् तन्मना भूत्वा पूर्व
 नुमधुरं रसम् ॥ मध्येऽम्ल लवणौ पश्चात् कटु

तिक्त कषायकान् ॥ ११४ ॥ [अस्यायमाभिप्रायः।]

भा० होते हैं। ऐसा वाग्भटने कहा है ॥ (भुक्तं) भोजन। प्यासा भोजन न करे। और क्षुधित जल न पीवे ॥ तृधित जलके पीने से शुल्म रोगवाला होता है। और क्षुधित जलोदर रोगवाला होता है ॥ ११३ ॥ (क) ननु प्रंका करते हैं कि शिष्ट लोग भोजन के अन्त में दूध पीते हैं। तो कैसे उचित है। क्योंकि तीन प्रकार विभागे किये जावे भोजन काल का प्रथम भाग बात का।

और दूसरा पित्तका तीसरा कफका ॥ इसी वास्ते कहते हैं ॥ स्वस्थ चित्त होकर प्रथम मधुर रस भोजन करे। बीच में खट्ट और नोनका भोजन करे। अन्त में कटुवा तीताकसैला अन्न भोजन करे ॥ ११४ ॥ (क) इसका यह अभिप्राय है ॥

(क) भोजने पूर्व भुक्तो मधुरो रसो बुभुक्षितस्य वातपित्तयोः शमको भवति भोजनमध्ये भुक्तावस्तु लवणौ पित्ताण्ये च वन्ति वृद्धिकुरुतः। भोजनान्त समये भुक्ताः कटु तिक्त कषायरसाः कफं शमयन्तीति। अथ भोजनावसान समयस्य कफकालत्वान्न तत्र कथं श्लेष्मजनकं दुग्धं पातुमुचितं भवति ॥ यत उक्तम्।

भा० भोजन में खाया जावा मधुर रस बुभुक्षित के वात पित्त का शमन करता है। भोजन के बीच में भक्षणा किये जावे अम्ल लवण पित्ताण्य में अग्नि की वृद्धि करने हैं। भोजन के अन्त समय में भक्षणा किये जावे कटु तिक्त कषाय रस कफको शमन करते हैं ॥ अनन्तर भोजन के अन्त का समय कफका समय होने से उसमें कैसे कफको उत्पन्न करने वाले दुग्धको पीना उचित है ॥

ऐसोके कहा है।

दुग्धं स्वादु रसं स्निग्धं ओजस्य धातु बर्द्धनम् ॥ वात .

पित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलद्रुग्णं शीतलम् ॥ २३५ ॥

इति उच्यते । विदाहीन्यन्नपानानि यानि मुंक्ते हिमान

वः ॥ तद्विदाह प्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयःपिबेत् ॥

॥ २३६ ॥ [तथाच ब्रह्मपुराणे ।]

कुर्यात् क्षीरान्तमाहारं न दध्यन्त कदाचनेति ॥

लवणान् कटूष्णानि विदाहीन्यति यानि तु ॥

तद्वोषं हर्तुमाहारं मधुरेण समापयन् ॥ २३७ ॥

भा० दुग्धं मधुर रस स्निग्ध ओजको करनेवाला धातु की वृद्धि करनेवाला ॥ वात पित्तका नाशक वृष्य कफको करने वाला भारी शीतल ये गुण हैं ॥ २३५ ॥ इस प्रकार कहा है ॥ मनुष्य जो विदाही अन्न पानों को भोजन करता है ॥ उसके दाह शमन के अर्थ भोजन के अन्तमें दुग्ध पीवे ॥ २३६ ॥ उस प्रकार ब्रह्मपुराण में कहा है ॥ अन्न में दुग्ध भोजन करे ॥ और अन्न में दही कमी भोजन न करे ॥ लवण अम्ल लवण कटु उष्ण और जो बद्ध त विदाही है ॥ उसका दोष निकालने के लिये मधुर रस से अर्दीर करें । अर्थात् अन्न में मधुर भोजन करे ॥ २३७ ॥

(क) भोजनावसान समये दुग्धादि मधुर भोजनेनैव प
क्षितः कफो लवणान् कटुभीजनजनित पित्तस्य द्रोहं वि
नाशयति पित्तवृद्धिं विनाशनेन कफस्यापि वृद्धिस्तु क्षी
णा भवति । क्षीणा कफवृद्धिरग्निमान्द्यादीन् व्याधी
नुत्पादयितुं न शक्नोति ॥ १ ॥ ख) ननु प्रातर्नाशनेन
शत्रु हन्तुं वृद्धिं दृश्यते ननु क्षीणातां ततः कथं कफः क्षीणा

इति । उच्यते । बलवच्छत्रु विनाशनेन शत्रु हन्तुः दृश्य
ते । तथाच । नाशनान् प्रत्यनीकस्य स्वयं व क्षीयते
यथा ॥ वह्नि सन्तमलाहस्य तमता नाशयेज्जलम् ॥ २३८ ॥

भा० (क) भोजन के अन्त समयमें दुग्धाही भक्षुर भोजन से ही बड़ा डबा कफ
स्रवण अग्न कटु भोजन से उत्पन्न हुवे पित्त की वृद्धि को नाश करता है । पित्त वृद्धि
के बिनाश से कफ की सी वृद्धि क्षीण होती है ॥ क्षारा इई कफ की वृद्धि अग्नि
मान्द्रादि व्याधियों को नहीं उत्पन्न कर सकती ॥ (ख) ननु शंका करते हैं
कि शत्रु के नाश से शत्रु नाश करनेवाले की वृद्धि देखनी है । न कि क्षीणता न
ब कैसे कफ क्षीण होता है ॥ कहते हैं । बलवान् शत्रु के नाश से शत्रु ना
श करनेवाले की क्षीणता देखनी है । उस प्रकार कहा है । शत्रु के नाश से
आपक्षीण होता है ॥ जैसे आग से सन्तमल ज्वे नेहफी तमता जल नाश करता है

२३८ ॥

(क) ननु भोजनावसान समये भुक्ताः कटु तिक्त
कपायाः रसाः कफ शमयिष्यन्ति वातस्य वृद्धिं विधा
स्यान्ति इति चेत् ॥ तन्न कट्वादीनां क्षीणशक्तिकत्वात् ।
[तथाच] यदेकं नाशयेद्दोषं तन्नान्यं वर्धयेत् कुतः ॥ ना
शने ह्येक दोषस्य यनस्तत् जीणाशक्तिक मिति ॥ २३९
(ख) वस्तु नोय एवरसः प्राबुध्यता सुक्तलभ्येव सर्वे रसा
वशामवन्ति ॥ [यत आहः सुश्रुतः ॥

भा० (क) ननु शंका करते हैं कि भोजन के अवसान के समयमें भक्षण किये
हुए कटु तिक्त कपाय रस कफ का शमन करेंगे और वात की वृद्धि को भी क
रेंगे । सी ही कह नहीं ॥ क्यों कि कटु आदियों की क्षीण बल होने से । उस न
रह पर कहा है ॥ जो एक दोष को नाश करता है वो दूसरे को कैसे नहीं व
दाता । क्यों कि एक दोष के नाशमें ही क्षीण बल होता है ॥ २३९ ॥
(ख) वस्तुन जोहां रस अधिक करके भक्षण किया गया है उसी के वश

सर्व रस होते हैं ॥ (ख) ॥ जैसे कि कहा है सुश्रुत ने ॥

जग्धाः सर्वेऽपि गच्छन्ति बलिनो वश्यतो रसाः ॥

यथा प्रकुपिता दोषाः वशं यान्ति बलीयसः ॥ २४० ॥

(बलिनः रसस्य बलीयसः दोषस्य ।)

एवं भुक्ता समाचासेदृक्षग्रहणपूर्वकम् ॥ भोजने

दन्तलग्नानि निर्हृत्या च मने चरेत् ॥ २४१ ॥ दन्तान्तर

गतं चाक्षं शोधनेनाहरेत् शनैः ॥ कुर्यादनिर्हृतं त

द्वि मुखस्यानिष्टगन्धताम् ॥ २४२ ॥ दन्तलग्नम

निर्हृत्यै लेपं मन्ये तदन्तवत् ॥

भा० भक्षण किये हुवे सब रस बलिके वश होते हैं ॥ जैसे प्रकोप को प्राप्त हु-
वे दोष बलवान् दोष के आधीन होते हैं ॥ २४० ॥ (बलिनः रसका । (ब-
लीयसः) दोष का) ॥ इस प्रकार कहकर रुद्धवस्तु को लेकर अंचवे ॥
भोजन में दांतों से लगे हुवे को निकालकर कुत्ते करे ॥ २४१ ॥ दांतों के
भीतर लगे हुवे अन्न को सींक से धीरे २ निकाले ॥ उसके न निकालने से
मुख में बुरी गन्ध होती है ॥ २४२ ॥ दांतों पर जमा हुवा — लेपन निका-
लना चाहिये क्योंकि उसका नाशक है ॥

न तत्र वह्मशः कुर्यात् यत्नं निर्हरणं प्रति ॥ २४३ ॥

आचम्य जल युक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषीं स्पृशेत् ॥

भुक्ता च संस्मरेन्नित्यमगस्त्यादीन् सुखावहान् ॥ २४४ ॥

विष्णुरात्मा तथा चान्नं परिणामश्च वै यथा ॥ सत्ये

न तेन मद्भुक्तं जीर्यत्वन्न मिदन्तथा ॥ २४५ ॥

भा० उसको निकालने के वास्ते बहुत यत्न न करे ॥ २४३ ॥ आचमन क-

रके जलसे युक्त हातों से नेत्रों को स्पर्श करे ॥ भोजन करके सुख को देने वाले अगस्त्य आदियों को नित्य स्मरण करे ॥ २४४ ॥ जैसे विष्णु आत्मा वैसे ही अन्न परिणाम भी ॥ उस सत्य करके यह मेरा भोजन किया हुआ अन्न परिपाक हो ॥ २४५ ॥

अगस्तिरग्निर्बड़वानलश्च भुक्तं ममानं

ज्वलयत्व शेषम् ॥ सुखञ्च येन तत्परिणाम सम्भवम् ।

यच्छृन्ते रोगं मम चास्तु देहम् ॥ २४६ ॥ अङ्गारकमग

स्तिञ्च पावकं सूर्यमश्विनौ ॥ पञ्चैतान् संस्मरेन्नि

त्यं भुक्तं तस्याशु जीर्यति ॥ २४७ ॥ इत्युच्चार्य स्वह-

स्तेन परिमार्ज्य तथोदरम् ॥ अनायास प्रदायेनि ।

कुर्यात् कर्म्मण्यतन्द्रितः ॥ २४८ ॥

भा० अगस्ति अग्नि और बड़वानल भी भोजन किया हुआ मेरा सस्फूर्ण अन्न भस्म करे ॥ मुझे उसके परिणाम से उत्पन्न हुआ सुख भी देओ और मेरा देह अरोग रहो ॥ २४६ ॥ मंगल अगस्ति अग्नि सूर्य अश्विनी कुमार ॥ इन पाँचों को जो नित्य स्मरण करे उसका भोजन किया हुआ शीघ्र पच जाता है ॥ २४७ ॥ इस प्रकार उच्चारण करके अपने हान से उदरका परिमार्जन करके परिश्रम को न देने वाले कर्मों को सावधान होके करे ॥ २४८ ॥

(क) अतन्द्रितः निरन्तरं जाग्रत तिष्ठेन्न तु स्वप्यात् । भुक्तं

मात्रस्य तु स्वप्नाद्दुन्यग्निं कुपितः कफः इति च चनान् ।

जीर्णोऽन्नेर्बद्धते वायुर्विदग्धे पित्तमेधते ॥ भुक्तमात्रे

कफश्चापि क्रमोऽयं भोजनोपरि ॥ २४९ ॥

भा० (क) अतन्द्रित अर्थात् निरन्तर जाग्रत होके रहै न कि सोवे ॥ भोजन करके सोने से कोप को प्राप्त हुआ कफ अग्नि को नाश करता है इस वचन से । अन्न के पच जाने पर वायु बद्धता है और विदग्ध में पित्त तथा भोजन करने मात्र में कफ ये क्रम भोजन के ऊपर होता है ॥ २४९ ॥

(ख) विदग्धे किञ्चित् पक्के किञ्चिद्वपक्के । भुक्तमात्रे स
ज्ज्ञातस्य कफस्य प्रतीकारमाह ।

धूमेनापोह्य हृद्यैर्वा कषाय कटुतिक्तकैः ॥ पूग क
र्पूर कस्तूरी लवङ्ग-सुमनः फलैः ॥ २५० ॥ फलैः क
टुकषायैर्वा मुखवैशद्यकारिभिः ॥ ताम्बूलयत्न स-
हितैः सुगन्धैर्वा विचक्षणाः ॥ २५१ ॥

भा० (ख) विदग्ध अर्थात् कुछ पका और कुछ कच्चा । भुक्त मात्र में उत्पन्न
ह्वे कफकी विकिन्ता कहते हैं । अगुरु आदिके धूमे से हृदय के कषाय क
टु तिक्त ॥ सुपारी कपूर कस्तूरी लवङ्ग-जायफल अथवा कटु कषाय मुख
को सफा करनेवाले फलों से सुगन्ध पानके सहित बुद्धिवान् कफको दूर कर
के ॥ २५१ ॥

(क) धूमेन अगुर्वादि धूमेन । अपोह्य कफं
दूरीकृत्य कषाय कटुतिक्तकैः फलैः कर्पूर कस्तूरी लवङ्ग
दिभिः । पूगेः क्रमुकैः सुमनः फलैः जातीफलैः सलाहरीत
क्यादिफलैः ॥ रती सुप्तोन्मिने स्नाते भुक्ते वान्ते च सङ्ग
रे ॥ सभायां विदुषां राज्ञां कुर्यात्ताम्बूल चर्वणम् ॥ ५२
ताम्बूलमुक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनन्तु वरम् सरम् ॥ तिक्तं
क्षारोष्णं कामरक्तपित्तकरं लघु ॥ २५३ ॥

भा० (क) धूमेन अर्थात् अगुरु आदिक के धूम से ॥ अपोह्य अर्थात् कफ
को दूर करके । कषाय कटु तिक्तफल कपूर कस्तूरी लवङ्ग आदियों से ।
पूग अर्थात् सुपारी सुमनफल अर्थात् जायफल । इत्यायत्ती हृद् आदिक
के फल से ॥ भेषुन में सोके उठने पर स्नान करने पर भोजन करने पर वमन
करने पर युद्ध में ॥ पंडित और राजा की समामें ताम्बूल का चर्वण करे ॥
॥ ५२ ॥ ताम्बूल तीक्ष्ण उष्ण रोचन कसेला सर ॥ तीता क्षार कटु और का
मरक्तपित्त को करनेवाला लघु ॥ २५३ ॥

वयं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यं मलवातश्रमा पहम् ॥ सु
 खवैशद्यसौगन्ध्यकान्ति सौष्ठवकारकम् ॥ २५४ ॥
 हनुदन्तमलध्वंसि जिह्वेन्द्रियविशोधनम् ॥ मुख
 प्रसेकशमनं गलाग्रयविनाशनम् ॥ २५५ ॥ नवं
 तदेव मधुरं कषायायु रसंगुरु ॥ बलासजननं प्रा-
 यः पत्रशाकगुणं स्मृतम् ॥ २५६ ॥ वङ्गदेशोद्भवं
 पर्णपरं कटुरसं सरम् ॥ पाचनं पित्तजनकमुष्णं
 कफहरं स्मृतम् ॥ २५७ ॥ पर्णपुराणमकटुखु-
 ल्लकन्तनुपांडुरम् ॥ विशेषादगुणवद्द्वेद्यमन्य
 हीनगुणं स्मृतम् ॥ २५८ ॥ [ताम्बूलगुणम्]

भा० वयं कफमुखकी दुर्गन्धता और मलवात श्रम इनका नाशक ॥ मुख
 की स्वच्छता और सुगन्धता तथा कान्ति और अच्छापन इनका कारक ॥
 २५४ ॥ जवाड़ा और दान इनके मलका नाशक तथा जिह्वेन्द्रियका शो-
 धन ॥ मुखके लारका शमनकरनेवाला तथा गलेके रोगका नाशक ।
 कहा है ॥ २५५ ॥ वही नया पान मधुर और पीछेसे कपायरस भारी ॥ क-
 फका उत्पन्न करनेवाला और प्रायः पत्रशाकके समान गुण कहा है ॥
 २५६ ॥ वङ्गला पान अत्यन्त कटुरस और सर ॥ पाचन पित्तका उत्प-
 न्न करनेवाला उष्ण कफका नाशक कहा है ॥ २५७ ॥ पुराणा पान मीठा
 छोटा पतला सफ़ेद ॥ विशेष करके गुणवाला जानना चाहिये । और दू-
 सरा हीन गुण कहा है ॥ २५८ ॥ [ताम्बूलके गुण कहते हैं]

पूगं गुरु हिमं रुक्षं कषायं कफपित्तनुत् ॥ मोह
 नं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्य नाशनम् ॥ २५९ ॥
 पूगं स्याद्दृढमध्यं यत्खिन्नं वाषि त्रिदोषनुत् ॥
 सरसं गुर्वभिष्यन्दि तद्भृशं बन्धिनाशनम् ॥ २६० ॥

खदिरः कफपित्तघ्नं चूर्णं वात बलासनुत् ॥ संयोग
तस्त्रिदोषघ्नं सौमनस्यं करोति च ॥ २६१ ॥ मुख वैश
द्यसौगन्ध्यकान्ति सौष्ठवं कारकम् ॥ प्रभाते पूर्य म
धिकं मध्याह्ने खदिरं तथा ॥ २६२ ॥ निशासु चूर्णम
धिकं ताम्बूलं भक्षयेत् सदा ॥ आयुरग्रे यशो मूले ल
क्ष्मी मध्ये व्यवस्थिता ॥ २६३ ॥ तस्मादग्रं तथा मूलं
मध्यं परांस्य वर्जयेत् ॥ परांमूले भवेद्वाधिः परां
ग्रेऽपायसम्भवः ॥ २६४ ॥

भा० सुपारी मारी शीत रूखी कफ पित्तकी नाशक ॥ मोहन दीपन रुचिका
रक और मुखकी विरसना की नाशक ॥ २६१ ॥ जो सुपारी कैंडी नहीं होती और
र चिकनी होती है वोह त्रिदोष नाशक होती है । जो कुछ हरी होती है वोह भारी
और अभिष्यन्दी तथा अत्यन्त अग्निनाशक होती है ॥ २६० ॥ कथ्या कफ पि
त का नाशक और चूना वात कफ का नाशक होता है ॥ संयोग से त्रिदोष ना
शक और अच्छे यत्न की भी करता है ॥ २६१ ॥ मुखकी शुद्धि सुगन्धना का
न्ति और सुन्दरता को कलने वाला होता है ॥ प्रातःकाल में सुपारी अधिक औ
र मध्याह्न में कथ्या अधिक ॥ २६२ ॥ तथा सायंकाल में अधिक चूना इस
प्रकार ताम्बूल सदा भक्षण करे ॥ इसके अग्रभाग में आयु और जड़मे यश
और बीचमे लक्ष्मी रहे है ॥ २६३ ॥ इसवास्ते पानका अग्र और मूल न्यागदेवे
॥ पानके जड़ में रोग होता है ॥ और पानके अग्रभाग में पापकी उत्पत्ति होती है ।
॥ २६४ ॥

चूर्णं परां हरत्यायुः शिरावृद्धिं विनाशिनी ॥ आद्यं
धिपोषमं पीतं द्वितीयं भेदि दुर्जरम् ॥ २६५ ॥ तृतीया

दनु पातव्यं सुधानुल्यं रसायनम् ॥

भा० चूना और पान आयुको हरता है और शिरावृद्धि नाशनी है ॥ पहिला स
नेसे दिषके सजान होता है । और दूसरा भेदन करने वाला दुर्जर ॥ २६५ ॥

तीसरे को पिलाके पीछेसे खाना चाहिये वोह अमृतके समान रसायन होता है ॥

ताम्बूलं नातिसेवेत न विरिक्तो बुभुक्षितः ॥ २६६ ॥

देहदृक् केश दन्ताग्नि श्रोत्रवर्गी बलक्षयः ॥ शोषः

पित्तानिलास्त्रं स्यादिति ताम्बूलचर्वणम् ॥ २६७ ॥

ताम्बूलं न हितं दन्तदुर्बलेक्षणा रोगिराणाम् ॥ विष

मूर्च्छा मदार्तानां क्षयिणाम् रक्तपित्तिनाम् ॥ २६८ ॥

भुक्ता शानपद गच्छेच्छने स्तेन तु जायते ॥ अङ्गस

ङ्गान शैथिल्यं ग्रीवा जानु कटी मुखम् ॥ २६९ ॥ भुक्तो

पविशस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता ॥ आयुश्च क्रम

माराणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ २७० ॥

भा० विरेचन लियाङ्गुरा और बुभुक्षित ये ताम्बूल को बङ्गनन सेवन करें ॥

॥ २६६ ॥ बङ्गन ताम्बूलके चर्वणसे शरीरदृष्टि केश दन्त अग्नि कर्ण और

वर्गी नद्या बल इनका क्षय ॥ शोष पित्त और वातरक्त होता है ॥ २६७ ॥

ताम्बूल दन्त दुर्बल नेत्र रोगियोंको ॥ और विषमूर्च्छा मद करके पीड़ितकी

नद्या क्षय रोगवाला और रक्तपित्ती इनको हित नहीं है ॥ २६८ ॥ भोजन क

रके धीरे २ सीकदम चले बङ्गन चलनेसे शरीरका संघात और गर्दन घुटनाक

मर नद्या मुख इनमें शैथिल्य होता है ॥ २६९ ॥ भोजन करके बैठनेवालेको

तन्द्रा और सीनेवालेको पुष्टता नद्या टहलनेवालेको आयु ये प्राप्त होने हैं ।

और दौड़नेवालेके पीछे मृत्यु दौड़ना है ॥ २७० ॥

(चक्रममाराणस्य पदशतं शनैर्गच्छतः ।)

श्वासानष्टौ समुत्तानस्तान द्विः पार्श्वे तु दक्षिणे ॥ नत

स्तद्विगुणान् वामे पश्चात् स्वप्याद् यथा सुखम् ॥

२७१ ॥ वामदिशाया मनलो नामेरुद्धं स्तिजन्तूनाम् ॥

(क) तस्मात्तु वामपार्श्वे शयीत भुक्तं प्रयाकार्यम् ।
 त्रिदोषशमनी खट्वा तूली वातकफापहा ॥ भूशय्या
 चंद्रहरी वृष्या काष्ठपटीतु वातला ॥ २७२ ॥ [अन्यः पुन
 सह] भूशय्या वातलानीव रूक्षा पित्तास्रनाशिनी ॥
 भूशय्या शयनं हृत्पुष्टिनिद्रा धृतिप्रदम् ॥ २७३ ॥
 अमानिल हरं वृष्यं विपरीतमर्तोऽन्यथा ॥ सम्बाह
 नं मांसं रक्तत्वक् प्रसादकरं परम् ॥ २७४ ॥

भा० चंक्रमं मारास्य अर्थात् सौकरदम् धीरे २ चलनेवालेका) सीधा सो
 कर आठ इवास्स लेवे और दोनों करवट में उन इवासो को लेवे ॥ दहिनी कर
 वट सोलह और बायें करवट चत्तीस इवासलेवे पश्चात् जैसा चाहे ऐसा सो
 रहे ॥ २७१ ॥ प्राणियों के बायें तरफ नाभिके ऊपर अग्नि है ॥

(कं) निस्से बायें करवट से वो भोजन किया हुआ शीघ्र पाक होनेके अर्थ ।
 तोषक बिछी खाट त्रिदोषको शमन करनेवाली और वात कफ की नाश करके
 ॥ और जमीनकी शय्या वंहण पुष्ट होती है ॥ तथा नरबनेकी शय्या वातकी
 करनेवाली होती है ॥ २७२ ॥ दूसरा फिरसे कहते हैं ॥ एध्वीकी शय्या
 वातका करनेवाली और बज्जनरूक्षा तथा रक्त पित्त की नाश करनेवाली है
 ॥ अच्छी शय्यापर सोना हृद्य पुष्टि निद्रा धैर्य इनको देनेवाली है ॥ २७३
 अमं वातका दूर करनेवाला वृष्य होता है और कुशय्या का सोना बूसे विप
 रीत होता है ॥ २७४ ॥

प्रीति निद्राकरं वृष्यं कफ वात श्रमा

पहम् ॥ प्रवात रौद्र्य वैवर्ग्य स्तम्भकहाह पित्तगुत् ॥
 ॥ २७५ ॥ स्वेद मृच्छी पियासाप्न मप्रवातमर्तोऽन्य
 था । सुखं प्रवातं सेवेत ग्रीष्मे शरदि चान्नरा ॥ २७६ ॥
 निवीस मायुषे सेव्य मारोग्याय च सर्वदा ॥ पूर्वोऽ
 निला गुरुः सोष्णः स्निग्धः पित्तास्रदूषकः ॥ २७७ ॥

भा० संवाहनमांस रक्त त्वचा हलकी अत्यन्त प्रसन्नता करनेवाला ॥ २७४ ॥
 प्रीति और निद्राका करनेवाला दृष्य कफ वात श्रम इनका नाशक होता
 है ॥ प्रवात रुक्षता वैवर्ण्य सन्महूनको करनेवाला और दाह पित्तका ना
 शक होता है ॥ २७५ ॥ यसीना मूर्च्छा नृषा इनका नाशक है और मन्द वात
 इसे विपरीत होता है ॥ ग्रीष्म और शरद में अच्छी तरह पर प्रवात का से
 वन करे ॥ २७६ ॥ निर्वात आयु के अर्थ और आरोग्य के अर्थ सर्वदा सेवन
 करना चाहिये ॥ पूर्वका वायु भारी कुछ गरम स्निग्ध पित्त रक्त का बिगाड़
 नेवाला ॥ २७७ ॥

विदाही वातलः श्रान्ति कफ शोष वतां

हितः ॥ स्वादुः पदुरभिष्यन्दी न्वग्दोषाणो विषकृमीन् ॥

॥ २७८ ॥ सन्त्रियातं ज्वरं श्वास सामवानज्ज्व कोपयेत् ॥

(क) (स्वादुर्भक्ष्य द्रव्येषु वाहल्येन मधुर रसजनकः)

दक्षिणाः पवनः स्वादुः पितरक्तहरे लघुः ॥ वीर्य्येण

शीतलो बल्यश्चक्षुष्यो नतु वातलः ॥ यश्चिमः प

वन स्तीक्ष्णः शोषणो बलहल्लघुः ॥ मेदः पित्तक-

फध्वंसी प्रमज्जनविवर्द्धनः ॥ २८० ॥

भा० विदाही वातल होता है थका व कफ वाले को शोष वाले को हित है ॥
 और स्वादु लवण अभिष्यन्दि होता है ॥ त्वचा का दोष बवासीर विषकृमि
 ॥ २७८ ॥ तथा सन्त्रिपात ज्वर श्वास और आमवात को भी करता है ॥

(क) (स्वादु अर्थात् खाने के पदार्थों में अधिक करके मधुर रसको उत्प
 न्न करनेवाला) दक्षिणा का वायु स्वादु पितरक्त को दूर करनेवाला हलका
 ॥ वीर्य्य करके शीतल पुष्ट नेत्र का हित होता है वातल नहीं होता ॥ २७९ ॥
 ॥ यश्चिम का वायु तीक्ष्ण शोषण बल का हरेनेवाला हलका ॥ मेद पि
 त्त कफ का नाशक । और वात बढ़ानेवाला होता है ॥ २८० ॥

उत्तरो मारुतः शीतः स्निग्धो दोष प्रकोपकृन् ॥ २८१ ॥

दनः प्रकृतिस्थानां बलदो मधुरामृदुः ॥ २८१ ॥

(दोषप्रकोपकान् आनुराणाम् ।)

अग्नियो दाहकद्रुक्षो नैर्ऋतो न विदाहकान् ॥ वायु

व्यस्तु भवेत्तिक्तः ऐशान कटुकः स्मृतः ॥ २८२ ॥

विष्वग्वायुरनायुष्यः प्राणिनां बहुरोगकान् ॥ अत

स्तेनैव सवत सेवितः स्यान्न शर्मणो ॥ २८३ ॥ व्यज

न स्यान्नलो दाह स्वेद मूर्च्छा श्रमापहः ॥ तालघ्नन्त

भवोवात स्विदोषशमको मतः ॥ २८४ ॥

भा० उत्तर की वायु ज्ञीत स्निग्ध और दोषों को प्रकोप करनेवाला क्षेदन और प्रकृतिस्थों को बल देनेवाला मधुर तथा मृदु होता है ॥ २८१ ॥ (दोषप्रकोप करनेवाला ऐशियों का) अग्निकोण का वायु दाह करनेवाला रुक्ष होता है । और नैऋतवाला विदाह करनेवाला नहीं है । वायुकोण का वायु तीक्ष्ण होता है ॥ और ईशान विषाका कटुवा कहा गया है ॥ २८२ ॥ तन्दीवायु आयु के अहि त और प्राणियों के बहुत रोग करनेवाली होती है ॥ इसवास्ते उसको न सेवन करे ॥ यदि सेवन करे तो कल्याण के अर्थ नहीं होता ॥ २८३ ॥

वंशव्यजनजस्त्रूणां रक्तपित्तप्रकोपणः ॥ चामरो व

स्त्रसम्भूतो मायूरो वेत्रजस्तथा ॥ २८५ ॥ सनेदोषजि

तावाताः स्निग्धाः हृद्याः सुपूजिताः ॥ दिवास्वाषं न

कुर्वन्ति यतोऽसौ स्यात् कफावहः ॥ २८६ ॥ ग्रीष्मव

र्ज्येषु कालेषु दिवा स्वप्ने निविध्यये ॥

भा० पंखे की हवा दाह स्वेद मूर्च्छा और श्रम की नाशक होती है ॥ ताड़ के पंखे की हवा त्रिदोष शमक होती है ॥ २८४ ॥ चांस के पंखे की वायु उष्ण रक्त पित्त को प्रकोप करनेवाली होती है ॥ चदर की कपड़े की मोरछल बेंत के पंखे की ये वायु ॥ २८५ ॥ दोष को जीतनेवाली स्निग्ध हृद्य और श्रेष्ठ है ॥ दिन में अथन

ग्रीष्मसेरहिन कालमें दिनका शयन निषेध किया है ॥

उचितो हि दिवास्वप्नो नित्यं येषां शरीरिणाम् ॥ २८७ ॥

वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपत्तां दिवा ॥

व्यायाम प्रमदाध्ववाहनरतान् क्लान्ताननीसारिणः

शूलश्वासवत्स्तृषा परिगतान् हिक्का मरुत्पीडितान् २८८

क्षीणान् क्षीणकफान् शिथूलान् मदहतान् वृद्धान् रसा

जीर्णान् । रात्रौ रज्ज्वारितान्नरान्निशानान् कामं दिवा स्वाप

येन् ॥ २८९ ॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रासात्मी कृता तु

यैः ॥ न तेषां स्वपत्तां दोषो जाग्रतां चोपजायते ॥ २९० ॥

(स्वपत्तां दिवा । जाग्रतां रात्रौ ।)

भा० जिन प्राणियों की नित्य दिनमें सोना उचित है ॥ २८७ ॥

उनको दिनमें न सोनेसे वातादिक प्रकोपको प्राप्त होते हैं ॥ कसरत स्त्री मार्ग-
वाहन इनमें आसक्त श्रमसे पीड़ित अतिसार वाले ॥ शूल श्वासवाले तृषा
रोगवाले हिचकी और वानसे पीड़ित ॥ २८८ ॥ क्षीण तथा क्षीणकफ वाले
क मदकरके पीड़ित वृद्ध और रसाजीर्णवाले तथा रातमें जागि उठे लंघन करने
वाले इनको दिनमें अवश्य सुलावे ॥ २८९ ॥ जिन्होंने दिनमें या रातमें सोनेकी
आदतकी है ॥ उन सोनेवालोंको दोष नहीं होता ॥ और जागनेवालोंकी इन्प
न होता है ॥ २९० ॥ (दिनमें सोनेवालोंको और रातमें जागनेवालोंकी)

भोजनानन्तरं निद्रा वातं हरति पित्तहृत् ॥ कफं करो

तिवपुषः पुष्टिं सौख्यन्त नीति हि ॥ २९१ ॥ शयनं पि

त्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम् ॥ वमनं कफनाशाय

ज्वरनाशाय लङ्घनम् ॥ २९२ ॥ आसीनं चूर्णितं यत्तु

नामिष्यन्दि नरुक्षणात् ॥ [अपानप्युदरेऽन्नस्य संस्था-
पनहेतूनाह ।] शब्दान् स्पर्शाश्च रूपाणि रसान् गन्धा-
न् मनः प्रियान् ॥ भुक्तवानपि सेवेन तेनान्नं साधु तिष्ठति
॥ २६३ ॥ (उदरे इति विशेषः ।)

[अन्नस्योदरे स्थितिहेतूनाह ।] शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं
रसो गन्धो जुगुप्सितः ॥ भुक्तमप्रयतञ्चान्नं मतिहा
स्यञ्च वामयेत् ॥ २६४ ॥ (अप्रयतं मयवित्रम् ।)

[अन्यदपि वर्जनीयमाह ।] शयनं चासनञ्चाति न भजे
न्न द्रवाधिकम् ॥ नाग्न्यातपो न स्तवनं न यानं नापि
वाहनम् ॥ २६५ ॥ (क) स्तवनं ब्राह्म्यां जल प्रतर
णं यानं मार्गे चलनम् वाहनमश्वदि ।

भा० भोजनके अनंतर निद्रावातकी हरती है । और पित्तकी नाशक है ॥ कफ
की करती है और शरीर को शुद्ध तथा सौख्य को भी करती है ॥ २६१ ॥ पित्तकी
नाश करनेके अर्थ शयन और वातकी नाश करनेके अर्थ मर्दन ॥ कफनाश
के अर्थ वमन और ज्वरनाशके अर्थ लघन हैं ॥ २६२ ॥ बैठना और मर्दन न-
अमिष्यन्दि है न रुक्ष है ॥ औरभी उदरमें अन्नके संस्थापनका हेतु कहने हैं ।
मनके प्रिय शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनको । भोजन किया हुआ सेवन करे ।
उत्से अन्न अच्छा रहना है ॥ २६३ ॥ उदर में यह शेष है ॥ उदर में अन्नके न ठ-
हरने के हेतु वों को कहने हैं । निन्दित शब्द स्पर्शरूप रस गन्ध ॥ और अप-
वित्र भोजन किया हुआ अन्न तथा वृद्धन हसना भी वमन करता है ॥ २६४ ॥
(अप्रयत । अपवित्र) और भी वर्जनीयों को कहने हैं । वृद्धन सोना वृद्ध
तबैठना और वृद्धन पतला इनको न सेवन करे ॥ आग धूप नैरना सवामी औ-
र वाहन इनको भी वृद्धन न सेवन करे ॥ २६५ ॥ (क) (स्तवन) हानों से
पानी में नैरना । (यानं) मार्ग में चलना । (वाहन) घोड़ा इत्यादिक ।

व्यायामञ्च व्यावायञ्च धावनं यानमेव च । युद्धं

गीतञ्च पाठञ्च मुहूर्त्तं भुक्तवांस्यजेत् ॥ २६६ ॥
 [परिवर्जनार्थं मजीरीस्य हेतूनाह ।] अत्यम्ल पानादि
 विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ॥ कालेऽपि
 सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ २६७ ॥
 ईर्ष्या भयक्रोधसमन्वितेन लुब्धेन रुदैव्य निपीडितेन ॥
 विद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति
 ॥ २६८ ॥ (सन्धारणात् । अधोवातमलमूत्रादीनाम् ।)

[अध्यशन लक्षणा माह ।] अजीर्णं भुज्यते यत्तु तदध्यशनमु-
 च्यते ॥ [तन्निवारनाह ।]

प्राग्भुक्ते चानले मन्दे द्विरन्धो न समाहरेत् ॥

भा० कसरत मैथुन बौड़ना सवारी युद्ध गाना पाठ इनको भोजन किया हुआ
 दो घड़ी न करे ॥ २६६ ॥ त्यागके अर्थ अजीर्ण के हेतुओं को कहते हैं ॥
 बड़न पानी पीनेसे विषम भोजनसे वेगोंके धारण करनेसे सोनेके विपर्यय
 से भी ॥ समयपर सात्म्य हलका भी भोजन किया हुआ अन्न मनुष्यके अच्छी
 तरहपर पाक नहीं होता ॥ २६७ ॥ ईर्ष्या भय क्रोध इन करके युक्त लोभी रोग
 और दीनता करके पीड़ित ॥ तथा जो विद्वेष करके सेवन किया गया अन्न अ-
 च्छे प्रकार पाक को नहीं प्राप्त होता ॥ २६८ ॥ (संधारण) अधोवात मलमू-
 त्रोंका ।) अध्यशन का लक्षण कहते हैं । अजीर्ण में जो भोजन किया जाता
 है उसको अध्यशन कहते हैं ॥ [उसके दूर करने को कहते हैं] प्रातः का
 ल भोजन करने में अजीर्ण होवे तो फिरसे दिनमें दूसरी बार भोजन न करे ॥

(क) अरयायमर्थः प्रातर्भुक्तेऽजीर्णे सति । अहन्येव पुन-
 र्न भुञ्जीत इत्यर्थः । रात्रौ पुनस्तस्यापि सति भुञ्जीतैव ।
 [यत आह सुश्रुत एव ।] प्रातराणे त्वजीर्णे तु सायमा-
 शेव दुष्यतीति ॥ पूर्वभुक्ते विदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति

पावकान् ॥ २८६ ॥ (ख) अस्य त्वयमर्थः । पूर्वं भुक्ते
रात्रि भुक्ते अन्ने विदग्धे किञ्चित् पक्वे किञ्चिदपक्वे वा
तर्भुञ्जानः पावकं हन्तीत्यर्थः । [यत्न आह] सायमाशौ
त्वजीर्णेतु प्रातर्भुक्तं विषोपममिति ।

भा० (क) इसका यह अर्थ है कि प्रातःकाल भोजन करने में अजीर्ण हो
तो दिनमें ही फिरसे न भोजन करे । रातमें फिरसे वेसेही होतौ भोजन अवश्य
करे ॥ जैसे कि तुष्टुतनेही कहा है ॥ प्रातःकालके भोजन कियेमें अजीर्ण हो
तो सायंकाल के भोजनमें रोप होता है । पहिले भोजन कियेहुँवे विदग्ध अन्नमें
भोजन करनेवाला अग्निको नष्ट करता है ॥ २८६ ॥ (ख) इसका यह अर्थ
है कि । पूर्वं भुक्ते) रातके भोजन किये अन्नमें । (विदग्धे) कुछ पक्वे और क-
छ कच्चेमें । सर्वे भोजन करनेवाला अग्निको नष्ट करता है । जैसे कि कहा है]
सायंकालके भोजन कियेहुँवे अजीर्ण में प्रातःकालका भोजन किया विष कैसे
मान होता है ॥

[सायमाशाजीर्णे भोजनोपायमाह ।]

भवेद्यदि प्रातरजीर्णशङ्कान् तदाभयां नागरसैन्धवाभ्याम् ।
विचूर्णितां शीतजलेन भुक्तां भुञ्जीत चाक्षं मितमन्नका-
ले ॥ ३०० ॥ आयुःक्षयभयादिद्वान्दिह सेवेत कामिनीम्

भा० सायंकालके भोजन कियेहुँवे अजीर्णमें भोजनका उपाय कहते हैं ॥
जो प्रातःकालमें अजीर्णकी शंका होतौ हड़ सोढ सैन्धव लवण इनके चूर्ण को
शीतलजलसे भक्षणाकरके भोजनके समयपर थोड़ासा अन्न भोजन करे ॥
॥ ३०० ॥ आयु क्षयके भयसे विद्वान् दिनमें कामिनी को नहीं भोग करते ॥

अवश्यो यदि सेवेत तदा ग्रीष्मवसन्तयोः ॥ ३०१ ॥

(अवशः अजितेन्द्रियः ॥) आस्यावर्णकफस्थौल्य
सौकुमार्यः सुखप्रदाः ॥ अध्वावर्णकफस्थौल्य सौ

कुमार्य विनाशनः ॥ ३०२ ॥ यत्तु चंक्रमणं नाति देह
पीडाकरं भवेत् ॥ तदायुर्वल मेधाग्नि प्रद मिन्द्रियबो
धनम् ॥ ३०३ ॥ उष्णीषं कान्तिरुत्कृष्टं रजोवात क
फा पहम् ॥ लघु तच्छस्यते यस्माद गुरु पिताक्षि रोग
हृत् ॥ ३०४ ॥ उपानद्वाराणं नेत्र्य मायुष्यं पादरोगहृत्
॥ सुखप्रचार भोजस्यं वृष्यञ्च परिकीर्तितम् ॥ ३०५ ॥

भो० यदि अवश अर्थात् जितेन्द्रिय नहो तब भीष्म और वसन्तमें सेवन करें
॥ ३०१ ॥ (अवश) जितेन्द्रिय नहोना । बहुत बैठे रहना कफ स्थूलता सु
कुमारता और सुख इनको देनेवाला है ॥ वज्र मार्ग का चलना कफ स्थूलता
और सुकुमारता इनका नाश करने वाला है ॥ ३०२ ॥ जो भ्रमरा शरीर को बड़े
त पीड़ा करनेवाला नहीं होता ॥ वो भ्रमरा आयु बल बुद्धि और आग्निको देने
वाला और इन्द्रिय का बोधन है ॥ ३०३ ॥ पगड़ी कान्ती को करनेवाली केश
के हित धूलवायु कफ की नाशक है ॥ वोह पगड़ी हलकी अच्छी है क्योंकि
भारी पित्त और नेत्र रोग को करनेवाली है ॥ ३०४ ॥ जूते का पहिरना नेत्र का
हित आयु को हित और पांव के रोग का नाशक है ॥ अच्छी सवारी भोज को
देनेवाली वृष्य भी कही गई है ॥ ३०५ ॥

पादाभ्यामनुपांनद्व्यां सदा चंक्रमणं नृणाम् ॥ अना
रोग्य मनायुष्यमिन्द्रियघ्न महष्टिदम् ॥ ३०६ ॥ छत्र
स्य धारणं वर्षा तपवातरजोऽपहम् ॥ हिमघ्नं हिन
मज्जणीञ्च माङ्गल्यमपि कीर्तितम् ॥ ३०७ ॥ सत्वोत्सा
ह वलस्थैर्य धैर्य तेजो विवर्द्धनम् ॥ अवष्टम्भकर
ञ्चापि भयघ्नं दण्ड धारणम् ॥ ३०८ ॥ ऊर्ध्वच्छाद
न संयुक्ता शिविका सर्ववल्लभा ॥ तस्यामारोहरां
नृणां त्रिदोषशमकं मतम् ॥ ३०९ ॥

भा० मनुष्यों को सर्वदा विनशूने पैरों से घूमना ॥ आरोग्य को न करने वाला आयु के अहित इन्द्रियका नाशक दृष्टि को न देने वाला है ॥ २०६ ॥ छत्रका धारण वर्धा शीत धूप धूर गुबार का नाशक है ॥ शीत नाशक नेत्रका हित और रमंगलकारक भी कहा है ॥ ३०३ ॥ सन्ध उत्साह बल स्थिरता धैर्य और नेत्रका बढ़ाने वाला है ॥ (अवष्टम्भ अर्थात् कुक्षियत को करने वाला और भयका नाशक दंड का धारण है ॥ २०८ ॥ ऊपर कंपड़े से मंदी हर्ष पालकी सबके दिल पर सन्द होती है । मनुष्यों को उसमें सवार होना विदोष शमक कहा है ॥ २०९ ॥

वातप्लेष्म मदार्ताना महिता भ्रम कृत्तरिः ॥ पित्तानि-
लकरोहस्ती लक्ष्म्यायुः पुष्टिबर्द्धनः ॥ ३१० ॥ घोटक्य
रोहरां वात पित्ताग्नि श्रम कृन्मत्तम् ॥ मेदोवर्णा कफ
घ्नञ्च हितं तद्वलिनां परम् ॥ ३११ ॥ आतप स्वेदमूर्च्छी
स पित्तनृणां क्लमश्रमान् ॥ दाहं विवर्णातां कुप्यीदे
तान् छाया व्यपोहति ॥ ३१२ ॥ दृष्टिर्वृष्या हिमा बल्या
निद्रालस्य विधायिनी ॥ भयावहा मोहकरी कुहेतिः
कफचातला ॥ ३१३ ॥ (कुहेतिः कुहेरा इति लोके ।)

भा० नाँव वात कफ के रोग से पीड़ितों को अहित और भ्रम करने वाली होती है ॥ स्त्री पित्तवात को करने वाली और लक्ष्मी तथा आयु पुष्टि को बढ़ाने वाली है ॥ ३१० ॥ घोटके की सबारी वात पित्त अग्नि और श्रम घटाने करने वाली है ॥ मेद वर्णा और कफ को नाशक है ॥ और वोह बलवानों को परम हित है । ॥ ३११ ॥ धूप परीना मूर्च्छी रक्त पित्त तथा क्लम श्रम दाह विवर्णाता इनको करती है ॥ और इनको छाया नाश करती है ॥ ३१२ ॥ दृष्टि वृष्य शीत बल्य और निद्रा तथा क्लालस्य को करने वाली ॥ भयावह मोहको करने वाला कुहेरा होता है ॥ ३१३ ॥ (कुहेतिः) कुहेरा इति लोक में प्रसिद्ध है ॥

अग्निवात कफस्तम्भ शीतवैपथ्यनाशनः ॥ आमा

भिष्यन्दि शमनो रक्तपित्त प्रकोपसः ॥ ३१४ ॥ सद्यः
श्लेष्मकरो धूमो नेत्रयो रहितो मृशाम् ॥ शिरो गौरव
कृच्छापि वात पित्तञ्च कोपयेत् ॥ ३१५ ॥ [अथाचारः]
मैत्रौ सद्भिः समं कुर्यात् स्नेहं सत्सु तु सर्वथा ॥ संसर्गे सा
धुभिः कुर्याद सन्सङ्गं परित्यजेत् ॥ ३१६ ॥

(क) सत्सु सर्वथा सज्जनेषु मनोवाक्कर्मभिः— ॥

सेवेन देव भूदेव दृढवैद्य नृपानिधीन् ॥ विमुखान्ना-
र्थिनः कुर्यान्नावमन्येत कानपि ॥ ३१७ ॥ गुरुणां
सन्निधौ तिष्ठेत् सदैव विनयान्वितः ॥ याद प्रसारणा
दीनि तत्र नैव समाचरेत् ॥ ३१८ ॥

भी० गरमवायु कफ अकड़वाव शीत कंप इनका नाशक है ॥ आम अभिष्य
न्द इनका शमन और रक्त पित्तका प्रकोप करने वाला ॥ ३१४ ॥ धूँवाँ तत्काल
कफ को करने वाला और नेत्रोंका अत्यन्त अहिन ॥ शिरके भारी पन को
करने वाला और वात पित्तको भी बिगाड़ता है ॥ ३१५ ॥ अनन्तर आचारको
कहते हैं ॥ मित्रता सज्जनोंके साथ करे और प्रीति सत्पुरुषोंमें अवश्य करे
। साधुओंके साथ मेल करे तथा असत्पुरुषोंका संग न करे ॥ ३१६ ॥

(क) सत्सु अर्थात् सज्जनोंमें मनवाणीकर्म से ॥
देव ब्राह्मण दृढ वैद्य राजा अतिथि इनकी सेवा करे ॥ भिक्षुका विकोंको वि-
मुख न करे और अपमान किसीका भी न करे ॥ ३१७ ॥ सर्वदा ही विनय कर
के युक्त गुरुके पास रहे ॥ पैरोंका फैलाना वहाँपर विलकुल न करे ॥ ३१८

अपकार परेऽपि स्यादुपकार परः पुमान् ॥ आत्म-
वत् सकलान् पश्ये द्वैरिणो वृत्तो वसेत् ॥ ३१९ ॥
न किञ्चिदात्मनः शत्रुत्तात्मानं कस्यचिद्विषुम् ॥
प्रकाशयेन्नापमानं न च निस्नेहतां प्रभोः ॥ ३२० ॥

नात्मानमुदके पश्येन्न मग्नः प्रविशेज्जलम् ॥ तथा
 नाज्ञानगाम्भीर्यं न हिंस्रप्राणिसेवितम् ॥ ३२१ ॥
 काले हितं मितं सत्यं सम्वादि मधुरं वदेत् ॥ भुञ्जीत
 मधुरप्रायं स्निग्धं काले हितं मितम् ॥ ३२२ ॥ नरात्रौ
 दधि भुञ्जीत न च निर्लेवरां तथा ॥ ना मुद्गसूपम्वा
 क्षौद्रं न चाप्यधृतशर्करम् ॥ ३२३ ॥ जनस्याशयमालक्ष्य
 यो यथा परितुष्यति ॥

भा० बुराई करनेवाले परभी मनुष्य भलाई करता रहे ॥ अपने सासबको देखे
 । और शत्रु से दूर रहे ॥ ३२१ ॥ अपने शत्रु को ज़राभी ज़ाहिर न करे और अपने को
 भी किसी का दुश्मन ज़ाहिर न करे ॥ तथा अयमान और मालिक की नाराज़गी को
 भी ज़ाहिर न करे ॥ ३२२ ॥ अपने को जल में न देखे और जल में नंगा होके न धुसे ।
 तथा गम्भीरता प्रसिद्ध है और हिंसा करने वाले जीवों का पालन न करे ॥ ३२३ ॥
 परस्पर भाषण करने समय पर हितकम तथा सत्य और मधुर बोलें ॥ समय पर
 अक्सर मधुर स्निग्ध थोड़ा भोजन करे ॥ ३२४ ॥ रत में दही न भोजन करे और
 लवण के बिना भी न भोजन करे ॥ और मूँग की दाल के बिना और ग्राहक के बिना
 तथा घोचीनी के बिना दही न खावे ॥ ३२५ ॥ दूसरे की सेवा में चतुर खरूप जन
 का आशय देखकर जो उसे खुश होवे उसको साथ बैठे ही बर्ते ॥ ३२६ ॥

त तथैवा नुवर्तते पराधाधनपरिहृतः ॥ ३२७ ॥ नैकः
 सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शङ्कितः ॥ नोद्यमे वि
 रमेत् क्वापि हेतुर्विषेत फलेन तु ॥ ३२८ ॥ (हेतौ फ-
 लहेतौ । उद्यमे फले धनादौ ।) वेगान् न धारये
 ज्ञातु मेनो वेगान्विधारयेत् ॥ न यो दुयेदिन्द्रियाणि
 न चैतानति लालयेत् ॥ ३२९ ॥

भा० अकेला आपही सुखी नहोवे और सबपर विश्वास नकरे तथा सब पर शंका युक्त भी नहोवे ॥ कहीं भी उद्यम में विराम नकरे ॥ और कारण में ईर्ष्या करे फलमें नकरे ॥ ३२५ ॥ (हेतु) फलहेतु में । उद्यम फलमें अर्थात् धनादिक में ॥ मलमूत्रादिक चौदह वोगों को कभीभी नधारण करे । किंतु मनके वे गोंको धारण करे ॥ इन्द्रियोंको बहुत पीड़ा नदेवे । और उनको बहुत प्यार भी नकरे ॥ ३२६ ॥

वर्षातपादिषु च्छत्नी दराडी रातौ भयेषु च ॥ सोपा न
त्कस्तनुं रक्षेत् विचरेद्युगमात्रदृक् ॥ ३२७ ॥

(क) युगमात्रदृक् अग्रतो हस्त चतुष्टयमितां भूमिं पश्यन् ।
नदीन्तरेन बाहुभ्यान्नाग्निस्कन्धमभिब्रजेत् ॥ सन्दिग्ध
नावं दृक्ष्वाञ्च नरोहेद् दुष्टयानकम् ॥ ३२८ ॥

(दुष्टयानं दुष्टगजघोटकादि ।)

नासंवृतं मुखं कुर्यात् सभायाञ्च विचक्षणः ॥ कासं
श्वासं तथोद्गारं जृम्भणं क्षवथुं तथा ॥ ३२९ ॥ नासि
कां न विकुष्णीयाच्चासीतोत्कटकः क्वचित् ॥ नोर्ध्वा
नुचिरन्तिष्ठेन्न नरेन लिखेद्भुवम् ॥ ३३० ॥

३३० वरसात और गरमी में छत्रको धारण करे रातमें तथा भयमें दंड धारण करे । जूता पहिनके शरीरकी रक्षा करे ॥ तथा चार हात भूमिको आगे देख कर चले ॥ ३२९ ॥ (क) युगमात्र दृक् । आगे चार हात प्रमारा भूमिको देख कर । दो नदियों के बीच में बाहु से नैरे ॥ जहाँ आग लगी हो उसके सामने न जावे ॥ दुष्ट सब रीके मानिंद खतरे वाली नाव तथा वृक्ष पर न चढ़े ॥ ३२८ ॥ (ख) दुष्ट न आधौ न दुष्ट घोड़ा हाथी इत्यादिक । पंडित सभा में मुखेलों न बैठे ॥ खासी सांस उकार जंभाई तथा झींक या थूंकना ये भी सभामें न करे ॥ ३२९ ॥ नाकको न कुरे दे । और कहीं भी उकड़ होके न बैठे । घुटनेको ऊपर कतके बहुत देर तक न ठहरे ॥ तथा भूमिको न खसे न कुरे दे ॥ ३३० ॥

सम्भार्जनी रसो नैव देहे दद्यान् कदाचन । न नखेन
 तृणां च्छिन्द्यात्तोच्छिष्टे ब्राह्मणं स्पृशेत् ॥ ३३१ ॥
 नोपरक्तं न चोद्यन्तं नास्तं वार्तं दिवाकरम् ॥ सर्वथा
 न समीक्ष्येन न जले प्रतिविम्बितम् ॥ ३३२ ॥ नैक्ष्ये त
 सननं सूक्ष्मं दीप्ता मेष्ठ्या प्रियाणि चं ॥ पौरन्दरं धनु
 नैव दर्शयेन् कसपि क्वचित् ॥ ३३३ ॥ नैच्छेत् बलव
 ता युद्धं न भारं शिरसा बहेत् ॥ गात्रं न वा दयेत् क्लेशा
 न हस्तेन धनुष्यान्न च ॥ ३३४ ॥

भा० भांडू और धूल को कभी भी शरीर में न लगावे ॥ नख से तृण को न काटे
 और जूठा ब्राह्मण को न छुवे ॥ ३३१ ॥ ग्रहण लगे हुवे उदय होत हुवे तथा
 अस्त होत हुवे सूर्य को । कभी न देखे और जल में प्रातःविम्ब पड़े हुवे को भी
 न देखे ॥ ३३२ ॥ निरन्तर सूक्ष्म को न देखे । दीप्त अमेध्य और अप्रिय दूत को
 भी न देखे । कौह भी इन्द्र के धनुष को न देखे ॥ ३३३ ॥ अपने से बलवान के सा
 थ युद्ध करे । और शिर पर बोझा न उठावे । शरीर को न बजावे और क्षेत्रों की
 हाथ से न चावे ॥ ३३४ ॥

न गच्छेत् पूज्ययोर्मध्ये दम्पत्यारन्तरौ च ॥ रिपोर्ज्ज
 न भुञ्जीत गणिकां नमपि क्वचित् ॥ ३३५ ॥ प्रतिभूर्न
 भवेत् क्वापि न च साक्षी वृथा भवेत् । (प्रतिभूः जामिनः)
 स्थागीन्न धारयेज्ज्ञातु द्यूतं दूरात्परित्यजेत् ॥ ३३६ ॥
 (स्थागी धाती ।) विश्वासं नाचरेत् स्त्रीणान्ताः स्वतन्त्रा
 श्च नाचरेत् ॥ रक्षणीयाः सदा यत्ना द्यौवनेतु विशेषतः ॥
 ॥ ३३७ ॥ न भिन्ने शयने सुष्या घ्राणेक विवरेऽपि च ॥ नै
 को देवालये नैव रात्रौ तरुतलेऽपि च ॥ ३३८ ॥

भा० पूज्यों के बीच में से न जावे। नथा खाविन्द और न के बीच में से न जावे। शुक्रा अन्न न भोजन करे नथा वेद्या का अन्न भी न भोजन करे ॥ ३३५ ॥

(क) कहीं पर भी ज़ामिन न होवे और भूही गवाही न देवे ॥ (प्रतिभूः) ज़ामिन। थानी की कभी न धारण करे। और जूँव को दूर से छोड़ देवे ॥)

(स्थायी अर्थात् धानी। स्त्रियों का विश्वास न करे। और उनको सन्तान भी न करे ॥ यत्न के साथ सर्वदा रक्षणीय हैं परन्तु यौवन में विशेष करके रक्षणा करनी चाहिये ॥ ३३६ ॥ जुँदे विस्तर पर न सोवे। और अनेक छेक वाले विस्तर पर भी न सोवे। अकेला देवालय में न जावे। रात में वृक्ष के नीचे भी अकेला न जावे ॥ ३३७ ॥

एवं दिनानि गमयेत् सदाचारः परः सदा ॥ न

तो रात्रि प्रयुक्तानि कुर्व्यात् कर्माणि मानवः ॥ ३३८ ॥

इत्याचारं समासेन भाषितं यः समाचरेत् ॥ स विन्द

त्यायु रारोग्यं प्रीतिं धर्मं धनं यशः ॥ ३३९ ॥

[अथ सन्ध्यायां निषिद्धाणि कर्माण्यहः।]

एतानि पञ्च कर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेद्बुधः ॥ आ

हारं मैथुनं निद्रां सम्पाठङ्गति मध्वनि ॥ ३४० ॥ भोज-

नाज्जायति व्याधि मैथुनाङ्गर्भ वैकृतिम् ॥ निद्रायाः निः

स्वता पाठादायुर्हानि गते भयम् ॥ ३४१ ॥

भा० इस प्रकार सदाचार पर जवा दिनों को निरन्तर गुज़ारे ॥

उसके अनन्तर मनुष्य रात में कहे जूँव कर्मों को करे ॥ ३३८ ॥ इस प्रकार संक्षेप से कहे जूँव आचार को जो करे ॥ वोह आयु आरोग्य प्रीति धर्म धन और यश इनको पाता है ॥ ३३९ ॥ अनन्तर सायंकाल में जो निषिद्ध कर्म हैं उनको कहते हैं। पण्डित इन पाँच कर्मों को सायंकाल में न करे ॥ भोजन मैथुन निद्रा याद करना और रास्ते का चलना ये पाँच कर्म ॥ ३४० ॥ भोजन से व्याधि उत्पन्न होती है ॥ मैथुन विगाड़ ॥ सोने से निरुत्साहता पाठ में आयु की हानि ॥ ३४१ ॥

[अथ रात्रिचर्यामाह ।]

ज्योस्त्रा शीता स्मरानन्द प्रदा वृद्ध पित्तदाहहृत् ॥ ततो
हीनगुराः कुर्याद्वप्रयायोऽनिलङ्कफम् ॥ ३४२ ॥
तमोभयावहं मोह दिष्टोह जनकम्भवेत् ॥ पित्तह
त्कफहत कामवर्द्धनं क्षमकृच्च तत् ॥ ३४३ ॥ रात्रौ
च भोजनदुर्ग्यान् प्रथमं ग्रहणन्तरे ॥ किञ्चिद्गूढं स
मश्रीयात् दुर्ज्जरन्तत्र वर्ज्येत् ॥ ३४४ ॥ शरीरे जा
यते नित्यं देहिनः सुरतस्पृहा ॥

भा० चान्दनी शीत और कामके आनन्दको देनेवाली है । तथा लूणा दाह
पित्त को देनेवाली है ॥ उसे हीन गुरा पाला है वान कफको करता है ॥ ३४२ ॥
अन्धेरा भयको देनेवाला और मोह तथा दिष्टा भ्रम को करनेवाला होता है ॥
वोह पित्तका नाशक कफ को दूर करनेवाला और कामका बढ़ानेवाला तथा
विना परिश्रमको थकन को करनेवाला है ॥ ३४३ ॥ रात को पहिले पहरके बीच
में भोजन करे । कुछ कम भोजन करें उसमें खराब जलेको छोड़ दें ॥ ३४४ ॥
मनुष्यके शरीरमें नित्य मैथुन की इच्छा होती है ॥

अव्ययायान्मेह मेदो वृद्धिः शिथिलता तनोः ॥ ३४५ ॥
वालेति गीयते नारी यावद्व्याणि षोडशः ॥ ततस्तु नर
रागी ज्ञेया द्वात्रिंशद्वत्सरावधि ॥ ३४६ ॥ तद्वद् मधिरू
ढास्यान् पञ्चाशद्वत्सरावधि ॥ वृद्धा नत्परतो ज्ञेया
सुरतोन्स विवर्जिता ॥ ३४७ ॥

भा० कसरत न करनेसे प्रेमह मेदकी वृद्धि शरीरकी शिथिलता होती है ॥ ३४५ ॥
॥ सोलह वरस तक स्त्री वाला इस प्रकार कही जाती है ॥ उसके ऊपर वर्त्तमान
वरस तक नर रागी जाननी चाहिये ॥ ३४६ ॥ उसके ऊपर पचास वरस तक अ
धिरूढा अर्थात् अथेह होती है ॥ उसके बाद सुरतोन्सव से रहित बुद्धा माने ॥ ३४७ ॥

(अधिरूढ़ा (क) प्रौढ़ा।) निदाघशरदो बाला हिता
विषयिणां मता ॥ तरुणी शीत समये प्रौढ़ा वर्षाव
सन्तयोः ॥ ३४८ ॥ नित्यम्बाला सेव्यमाना नित्यं व-
र्धयते बलम् ॥ तरुणीं ह्रासयेच्छक्तिं प्रौढ़ोद्भावयते
जराम् ॥ ३४९ ॥ सद्यो मांसं न वञ्चान्नं बाला स्त्री क्षीर
भोजनम् ॥ घृतमुष्णोदके स्नानं सद्यः प्राणहराणि
षट् ॥ ३५० ॥

भा० (अधिरूढ़ा) प्रौढ़ा। प्रौढ और शरदमें अय्याशों को बाला हित
कही है ॥ शीत कालमें तरुणी और वर्षा वसन्त में प्रौढ़ा प्रशस्त है ॥ ३४८॥
नित्य सेवन की हुई बाला प्रतिदिन बल को बढ़ाती है। तरुणी शक्ति को
घटाती है ॥ और प्रौढ़ा वृद्धावस्था को उत्पन्न करती है ॥ ३४९ ॥ तत्काल का मां
स नवीन अन्न बाला स्त्री दुग्ध भोजन घृत उष्णोदक में स्नान ये छः तत्काल
बल को करने वाले हैं ॥ ३५० ॥

पूति मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्क स्तरुणो दधि ॥ प्रभाते
मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ॥ ३५१ ॥ (क) प्राण
शब्दोऽत्र बलवाचकः बालार्कः कन्यार्कः।)

वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा तरुणत्वमवाप्नुयात् ॥ वयोऽधि
कां स्त्रियङ्गत्वा तरुणाः स्थविरायते ॥ ३५२ ॥ आयुष्म
न्तो मन्दजरा वयुर्वेरी बलान्विताः ॥ स्थिरोपचित मां-
साश्चा भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ ३५३ ॥

भा० सड़ा मांस वृद्धा स्त्री कन्या का सूर्य तरुण का जमाया दही प्रातः काल
में मैथुन और निद्रा ये छः तत्काल बल को हरने वाले हैं ॥ ३५१ ॥
(क) प्राण शब्द यहाँ पर बलवाचक है। (बालार्क) कन्या का सूर्य ॥

भा० वृद्धभी तरुणी के साथ भोग करने से तरुणांता को प्राप्त होता है ॥ और
तरुणा पुरुष अपने से बयमें अधिक स्त्री के साथ भोग करने में हृद होता है
॥ ३५२ ॥ स्त्री से रुके ऊँचे पुरुष आयु वाले अल्पवृद्धता युक्त शरीर की कान्ति
और बल करके युक्त । कठिन और बड़े ऊँचे मांस वाले होते हैं ॥ ३५३ ॥

सेवेन कामतः कामं बलाद्वाजीकृतो हि मे ॥ प्रक्ता
मन्तु निषेवेन मैथुनं शिशिरागमे ॥ ३५४ ॥ त्वं हा
हसन्त शरदोः पक्षात् दृष्टि निदाघयोः ॥ (सुश्रुतस्तु
विभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समेयात्प्रमदान्नरः ॥ सर्वे
ष्वृतुषु धर्मेषु पक्षात्पक्षाद्भजेद्बुधः ॥ ३५५ ॥

(क) (समेयात् सङ्गच्छेत् धर्मे ग्रीष्मे ।)

शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्ते तु दिवानिशि ॥ वर्षा
सुवारिदध्वानि शरत्सु स्वरसः स्मरः ॥ ३५६ ॥

भा० शीत में बाजीकरण की औषधि किया हुआ इच्छा से बल के साथ नैतु
न करे । और शिशिर ऋतु में बहुत मैथुन करे ॥ ३५४ ॥ वसन्त और शरद
में तीसरे दिन संभोग करे । तथा वर्षा और ग्रीष्म में पन्द्रह दिन मैथुन क
रे ॥ (सुश्रुत ने कहा है) । तब ऋतुओं में पुरुष तीसरे २ दिन स्त्री के पास
जावे ॥ और ग्रीष्म में पन्द्रह २ दिन में चतुर पुरुष स्त्री के पास जावे ॥ ३५५
(क) (समेयान्) सङ्गकर । (धर्मे । ग्रीष्म में) शीत ऋतु में रात को ग्री
ष्म में दिन को और वसन्त में दिन तथा रात को ॥ वर्षा ऋतु में मेघ के गर
जने पर और शरत् में स्वरस में काम होता है ॥ ३५६ ॥

उपेयात् पुरुषो नारीं सन्ध्ययो नैव पर्व्वतु ॥ गोस
र्गैर्चाह्ने च तथा मध्य दिनेऽपि च ॥ ३५७ ॥ विहा
रम्भार्थं या कुर्व्याद्देशोऽति शयसंज्ञते ॥ ३५८ ॥

व्याङ्गनागाने सुगन्धे सुखमारुते ॥ देशे गुरु जनाम
 के विह्वलेऽतिव्यापारे ॥ ३५८ ॥ श्रूयमाणे व्यथाहे
 तु वचने नरमेतनाः ॥ स्नातश्चन्दन लिप्ताङ्गः सु
 गन्धः सुमनोऽन्वितः ॥ ३५९ ॥

भा० पुरुष स्त्रीके पास प्रातःकाल और सायंकाल की सन्धित पर्वमें न जा
 वे ॥ रातके पिछले पहरमें आधी रात में तथा दोपहर दिनके मध्यमें ॥ ५९
 ॥ स्त्रीके साथ विहार वज्रत वन्द जगह में करे ॥ मनोहर सुनने के योग्य अ
 ङ्गना के गान में सुगन्ध अच्छे वायुमें ॥ गुरुजन के पास खुले झवे वज्रत शर
 मर्का जगह में ॥ ३५८ ॥ व्यथाके करने वाले वचनों के सुनने में पुरुष न
 रमरा करे ॥ स्नान किया चन्दन शरीर में लगाये जवा सुगन्ध पुष्पांकरके यु
 क्त ॥ ३५९ ॥ भुक्तदृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतः ॥

ताम्बूल वदनः पट्या मनुरक्तो धिकः स्मरः ॥ ३६० ॥

पुत्रार्थी पुरुषो नारी मुपेयाच्छयने शुभे ॥ अत्याशि

तोऽधितिः क्षुद्धान् सव्यथाङ्गः पिपासितः ॥ ३६१ ॥

बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तं स्यजे द्रोगी च मैथुनम् ॥

(क) (रोगी मैथुन सम्बर्द्धनीय रोग युक्तः) ॥

भाय्या रूपगुणोपेतां तुल्यशीलां कुलोद्भवाम् ॥ अ

निकामोऽभिकामान्तु हृष्टो हृष्टा मलङ्कृतम् ॥ ३६२ ॥

भा० गुणादि पदार्थोंको भोजन किया जवा अच्छे वस्त्र पहिरे जवा अच्छे
 स्तिवास वाला आभूषणों से युक्त ॥ पान खाये जवा पत्नी में वज्रत प्रीतिवा
 ला अधिक कामयुक्त ॥ ३६० ॥ ऐसा पुत्रार्थी पुरुष अच्छे शयन पर स्त्रीके
 साथ सो रहे ॥ वज्रत भोजन किया जवा अधीरज वाला क्षुधित शरीर में
 पीडा वाला प्यासा ॥ ३६१ ॥ बालक वृद्ध और मलादि वेगों से पीड़ित और
 रोगी ये मैथुन न करे ॥ (रोगी) मैथुन को बढ़ाने वाले रोग से युक्त ॥
 रूप गुणों से युक्त सुशील अच्छे कुल में उत्पन्न हुई ॥ प्रीतिवाली हर्षयुक्त

ऐसी स्त्रीको वाजीकरण औपधियों से चंद्हित अधिक कामदेववाला हर्ष युक्त पुरुष युक्ति के साथ भोग करे ॥ ३६२ ॥

सेवेन प्रमदा युक्त्या वाजीकरणं चंद्हितः ॥ रजस्वला
मकामाञ्च मलिना मप्रियान्तथा ॥ ३६३ ॥ वर्णा वृद्धा
वयोवृद्धा तथा व्याधिप्रपीडिताम् ॥ हीनाङ्गीं गर्भिणीं
द्वेष्यां योगिरोग समन्विताम् ॥ ३६४ ॥ समीपान् रूप
जीञ्च तथा प्रव्रजितामपि ॥ नाभिगच्छेत्पुमान्कारी
भूरिवैगुण्यं शङ्क्या ॥ ३६५ ॥ रजस्वलाङ्गुत वनो नर
स्यासंयतात्मनः ॥ दृष्ट्वायु स्नेजसां हानि रधर्मश्च त
नो भवेत् ॥ ३६६ ॥ लिङ्गिनीं गुरुपत्नीञ्च सगोत्रा म
य पर्वसु ॥ वृद्धाञ्च सन्ध्योश्चापि गच्छतो जीवन
क्षयः ॥ ३६७ ॥ (क) (लिङ्गिनीं प्रव्रजिताम् ।)

भा० कपड़ों से वैठी हुई जिसका कामदेव नज्जागा हो मलीन अप्रिय ॥ ३६३ ॥
जान में बड़ी उमर में बड़ी तथा व्याधि से पीड़ित ॥ हीन अंगवाली गर्भिणी कर्कशा
योगि रोग से युक्त ॥ ३६४ ॥ सगोत्रा और गुरुकी स्त्री तथा फकीरन के पास भी
वृद्धत विकार की शंका होतौ पुरुष स्त्री के पास न जावे ॥ ३६५ ॥ रजस्वला के पा
स सोने वाले अजितेन्द्रिय पुरुषकी दृष्टि और आयु तथा नेज की हानि होती है ।
और उससे अधर्म भी होता है ॥ ३६६ ॥ वृद्धाञ्च सन्ध्योश्च की धारण करनेवाली और
गुरुकी स्त्री तथा अपने गोन की और वृद्धा इनके साथ भोग करने से और पर्वों
में मैथुन करने में । अथवा सायं प्रातः संध्या में मैथुन करने से आयु का क्षय हो
ता है ॥ ३६७ ॥ (क) नपस्विनी)

गर्भिण्यां गर्भपीडा स्याद्वाधितायां वलक्षयः ॥ हीनाङ्गीं
मलिनां द्वेष्यां क्षामाम्बन्ध्या मसं वृते ॥ ३६८ ॥ देशोऽभि

गच्छतो रेनः क्षीणं ग्लानं मनो भवेत् ॥

(क) गर्भिणी गर्भवास दिवसात् द्वितीये मासि गर्भस्थिते र
निश्चिते यथोक्त नक्षत्रादि लाभ भवे वा तृतीये मासि पुं
संयुते कृते नाभिगच्छेत् ॥

आ० गर्भणी के साथ सोनेसे गर्भमें पीड़ा होती है और रोगवाली के पास सोने
से बलका क्षय होता है ॥ हीन अंगवाली मैली द्वेष करनेवाली दुर्बल बाँक
इनके पास सोनेवाले का और बेपइदे की जगह सोनेवाले का शुक क्षीण होता
है ॥ ३६८ ॥ तथा मन भी ग्लानि युक्त होता है ॥ (क) गर्भ रहे हवे दिन से दू-
सरे नहीने में गर्भ रहनेका निश्चय न होनेमें अथवा यथोक्त नक्षत्रादिकों के न
मिलने में तीसरे महीने में पुंसवन करने पर न सोवे ॥

.. [यथा पुंसवनानन्तरमाह व्यासः।]

तनस्त्यजेन्नदीतीरं देव खातोदकं तथा ॥ भर्तुः शय्यां

मृतापत्यां तथैवामिष भोजनम् ॥ ३६९ ॥ [अन्यच्च]

आमिषस्याशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेत् ॥ देवारां

म नदीयानं प्रयोगं पुरुषस्य चेति ॥ ३७० ॥ क्षुधितः

क्षुब्ध चिन्तश्च मध्याह्ने तृषितोऽबलः ॥ स्थितस्त्यहा

निं शुक्रस्य वायोः कोपञ्च विन्दति ॥ ३७१ ॥

आ० जैसे कि पुंसवनके अनन्तर कहा है व्यासने ॥ पुंसवनके अनन्तर नदी
का किनारा देवता तथा गढ़े का पानी पत्तिकी शय्या जिसके लच्छे हो के मरने
को स्त्री तथा मांस भोजन इनको त्याग देवे ॥ ३६९ ॥ और भी ।

मांसका भोजन देवस्थान बाग नौका और मैथुन इन हों गर्भवती स्त्री न
त्र पूर्वक छोड़ देवे ॥ ३७० ॥ मध्याह्न में क्षुधित प्यासा क्षीणको मांस हवे
क्षितवाला दुर्बल ये स्थित शुक्रकी हानि और वायु के कोप को माने हैं ॥ ३७१ ॥

व्याधितस्य रुजा शीहा मूर्च्छा मृत्युश्च जायते ॥ प्रत्यूषे

चाहै रात्रि च वातपिते प्रकुप्यतः ॥ ३७२ ॥ तिर्यग् यो
 नावयो नौ वा दुष्ट योनौ तथैव च ॥ उपदंशा
 स्तथा वायोः कोपः शुक्र सुखदायः ॥ ३७३ ॥ उच्चारिते
 मूत्रिते च रेतसंश्च विधारणे ॥ उत्ताने च भवेत् शीघ्रं
 शुक्राणमर्थास्तु सम्भवः ॥ ३७४ ॥ मर्त्य मेत न्यजेत
 स्माद् यतो लोक ह्याहितम् ॥ शुक्रं नूपास्थितम्भो
 हान्न सन्धाव्यं कदाचन ॥ ३७५ ॥ स्नानं सशर्करं दीरं
 भक्ष्यं भैक्षव संस्क्रांतम् ॥

भा० आधीरात में और दो घड़ी के तड़के में वात पित्त प्रकोप हुवे रोगी को पीड़ा
 पिलही मूर्च्छा और मौन भी होती है ॥ ३७२ ॥ तिर्यग योनि में या अयोनि में अथ
 वा दुष्ट योनि में मैथुन करने में उपदंश होते हैं ॥ और वायु का कोप तथा शुक्र
 और सुख का क्षय होता है ॥ ३७३ ॥ मल मूत्र किये हुवे में शुक्र के धारण करने
 में और उत्तान में मैथुन करने से शुक्राश्मरी का सम्भव होता है ॥ ३७४ ॥ उस कार
 ण दोन सब को त्याग करे क्योंकि वह लोक और परलोक में भी अहित है ॥ नि
 कलने को तैयार हुवे शुक्र को मोहके बस होके कभी न रहे ॥ ३७५ ॥ स्नान
 शर्करा के सहित दूध मिष्टान को पीव ॥

पानं मांसरसः स्वप्नो सुरतान्नेहिता अमी ॥ ३७६ ॥ मू
 लकास ज्वरश्वास कार्श्य पाण्ड्यामयश्च ॥ अति
 व्याध्याज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ॥ ३७७ ॥ रा
 त्रौ जागरणं रूक्षं कफदोष विषातिर्निजिन् ॥ निद्रा
 तुं सेविता काले धातु साम्यमनन्दिताम् ॥ ३७८ ॥
 पुष्टि वर्णा चलोत्साह वन्दिदीप्तिं करोति हि ॥

भा० मांस रसका पीना और सोना ये मैथुन के अन्त में हित हैं ॥ ३७६ ॥
 मूल कांस स्वांस ज्वर कृशता पांडुरोग क्षय और आक्षेपका दिक वृद्धत
 मैथुन से होते हैं ॥ ३७७ ॥ रात का जागना रुद्धि और कफ श्लेष्म विष पीड़ा
 का जीननेवाला है ॥ समय पर नींद लेने से धातु की साम्यता और सावधान-
 ता होती है ॥ ३७८ ॥ युष्टि वर्ग चल उन्साह अग्नि दीप्ति को भी करती है ॥

यो लेहि शयन समये मधुमिश्रं वीज पूरदल चूरीम् ॥

स तुलज्जाकरं वात प्रसरनिरोधात् सुखं स्वपिति ॥

३७६ ॥ सवितुः समुदयकाले प्रसृतौः सलिलस्य पि

वेदथौ ॥ रोगजरापरिमुक्तौ जीवेद्वत् सरशतं साग्रम् ॥

३७७ ॥ (क) अस्य जल पानस्योपक्रमकाले रात्रे श्वतु

र्यं ग्रहरे प्रवेशः ॥ [तथा च भोजः।]

भा० जो मधुष्य शयन के समय में मधु के साथ विजैरे के पत्ते का चूरी खा
 वे ॥ वा लज्जाकर वात प्रसर निरोध से सुख पूर्वक सोता है ॥ ३७६ ॥ सू-
 र्योदय काल में आठ तुल्लू पानी पीवे ॥ रोग और बुढ़ापे से मुक्त जवा पूरे
 सौ चरस जीता है ॥ ३७७ ॥ इस जल पान के उपक्रम काल में रात के चौथे प-
 हर का प्रवेश कहा है ॥ उस प्रकार भोजन कहा है ॥

पिवति पर्युषितं जलमन्वहन्ति मिरशीचरसे ग्रहरे यदि।

एतज्जलपान काल मर्यादा सूर्योदयाति सन्निहित प्रा

तः कालः । [तथा च तन्वान्तरे।] अम्भसः प्र-

सृतौ रक्षोरवावनुदिते पिवेत् ॥ वात पित्त कफान् जि-

त्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी इति ॥ ३७९ ॥

(क) सलिलस्यात्र पर्युषितं ग्रहणं भोजवचनानुरोधान् ।

अर्शः शोथ ग्रहणयो ज्वर जठरजरा कुष्ठ मेदो विकारः ॥
 मूत्राघातास्त पित्तश्रवणगल शिरः श्रोणि शूलान्ति
 रोगाः ॥ ३८२ ॥

भा० रक्तके चौथे पहर में प्रतिदिन जो बासी पानी पीताहैं ॥ ये जलपात्र
 काल मर्यादा सूर्योदय वह सन्निहित प्रातः काल है ॥ उस प्रकार त-
 न्त्वान्तर में कहा है ॥ आठ अञ्जुलपानी सूर्योदय के पहिले पीवे । तो
 वात पित्त कफ इनको जीतकर सुख पूर्वक सौ बारस जीता है ॥ ३८२ ॥
 (क) जलका यहाँपर बासी का ग्रहण है ॥ भोजनवन के अनुयेध से ॥
 अर्श शोथ ग्रहिणी ज्वर जठर कुष्ठ मेदका विकार ॥ मूत्राघात रक्त पित्त
 कर्णगल शिर श्रोणि और नेत्र शूल ॥ ३८२ ॥

ये चान्य चातपित्त क्षतज कफ कृता व्याधयः सन्ति
 जन्तो स्तां स्तान्नाभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते
 निशायाः ॥ ३८३ ॥ विगत घननिशीथे प्रातरुत्थाय
 नित्यम् । पिवति खलु नरो यो घ्राण रन्ध्रेण वारि ॥
 स भवति मति पूर्णश्चक्षुषां तार्क्ष्य तुल्यो । बलि प-
 लितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ ३८४ ॥

भा० जो और वात पित्त क्षतज कफ कृतरोग मनुष्य के हैं । उन २ रोगों को
 अभ्यास के योग से रक्तके अन्तमें पियातुवा धूनाश करता है ॥ ३८३ ॥ रा-
 तका बहुत अंधर निवृत्त होनेपर प्रातः काल में उठकर निन्य जो मनुष्य ना-
 क से पानी पीता है । वह पूर्ण धुस्वान् होता है और गिरु के समान दृष्टिवाला
 होता है । तथा जुर्गवालों की सुफेदी इनसे रहित और सब रोगों से विमुक्त
 होता है ॥ ३८४ ॥

(क) (निशोयोऽत्र निशान्धकारः ।)

पातव्यं नासया नीरं प्रसूतिवय मावया ॥ व्यङ्गं चली
 पलितघ्नं पीनमवैश्वर्यं काश शोथहरम् ॥

रजनीक्षयेऽसु नस्यं रसायनं दृष्टि सञ्जनम् ॥ ३८५ ॥
 स्नेहे पीते क्षणे शुद्धावाध्माने स्तिमितोदरे ॥ हिक्का
 यां कफवातोत्थे व्याधौ तद्वारि वारयेत् ॥ ३८६ ॥

(क) (तद्वारि नासापेयम् ।) [अथर्त चर्या ।]

चय कीप शमा यस्मिन् दोषाणां सम्भवन्ति हि ॥ ऋ
 तुषट्कं तदारब्धातं खेराशिषु सङ्गमात् ॥ ३८७ ॥ ग्री
 ष्मो मेष वृषौ प्रोक्तः प्राचुरिमथुन कर्कटौ ॥ सिंह क
 न्ये स्मृता वर्षा तुला वृश्चिकयोः शरत् ॥ ३८८ ॥

भा० (क) निशीथ यहाँपर रानका अन्धेरा समझना चाहिये । तीन चुल्लू पा
 नी नाकसे पीना चाहिये ॥ प्रातःकालमें पानीकी नास मुखपर कांधवा रु
 री बालकी सुंफेदी इनका नाशक और पीनस स्वरमंगकास सञ्जन इनका
 दूर करनेवाला । रसायन और दृष्टि उत्पन्न करनेवाला है ॥ ३८५ ॥ स्नेह पान
 कियेमें क्षत रोग में वमन विरचन करनेपर आध्मान में पेटके भारीपनमें ।
 और हिक्कीमें और कफ वात से उत्पन्न ज्वरे गेगमें नाकसे पानी न पीवे ॥ ३८६
 ॥ ॥ अनन्तर ऋतु चर्या कहते हैं ॥ दोषोंका संचय प्रकीप और प्रमन जि
 समें होता है और राशिपर सूर्यके घूमनेसे । वैद्यः ऋतु कहते हैं ॥ ३८७ ॥
 मेष वृष में ग्रीष्म, मिथुन कर्क में प्राचट् । सिंह कन्या में वर्षा, तुला वृश्चिक
 में शरत् ॥ ३८८ ॥

धनुर्ग्रीही च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः ॥

(क) मेष वृषौ रविणा सङ्गनन्तौ । एवं मिथुन कर्कटा वि
 त्यादि ॥ [अन्ये तु] शिशिरः पुष्यसमयो ग्रीष्मा वर्षा
 शरदिमाः ॥ माघादिमासयुग्मेऽस्य ऋतवः षट्क्र
 मादमी ॥ ३८९ ॥ गङ्गनद्यादक्षिण देशे वृष्टेर्वहुलभा
 वतः ॥ उभौ मुनिभिराख्यातौ प्राचट् वर्षाभिधावत् ॥ ३९० ॥

भा० धन मकर में हेमन्त, और कुम्भ मीन में वसन्त इस प्रकार छ क्रतु कहें हैं ॥ और आचार्य कहते हैं । शिशिर वसन्त ग्रीष्म वर्षा ऋतु हिम ॥ ये छ क्रतु माघसे लेकर दो महीने में क्रमके साथ होते हैं ॥ ३८६ ॥ गंगाके दक्षिण देशमें वर्षा के बहुत होने से मुनियों ने प्राच्य वर्षा दो ऋतुके नाम कहे हैं । ३८७

उत्तरायणमाद्यै स्तैः परैः स्यादक्षिणायनम् ॥ आद्य

मुष्णं बलहरं ततोऽन्यद् बलदं हिमम् ॥ ३८९ ॥ हेमन्तः

शीतलः स्निग्धः स्वादुर्ज्ज्वर वह्निहृत् ॥ शिशिरः शी

तलोऽतीव रूक्षो वाताग्निवर्द्धनः ॥ ३९० ॥

(क) हेमन्तः स्वादुः प्रायेण द्रव्येषु स्वादूरसजनकः एव म

न्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥ ॥ वसन्तो मधुरः स्निग्धः श्लेष्म

वृद्धि करश्च सः ॥ ग्रीष्मो रूक्षोऽनिकटुकः पित्तहृत्क-

फ नाशनः ॥ ३९३ ॥

भा० पहिले तीन ऋतुओं से उत्तरायण और अन्तकी तीन ऋतुओं से दक्षिणायन होता है । पहिला उत्तरायण वर्षा और बल को हरनेवाला तथा उस्से दूसरा अर्थात् दक्षिणायन शीत और बल को देनेवाला है ॥ ३८९ ॥ हेमन्त शीतल स्निग्ध स्वादु और उदराग्नि को करनेवाला है ॥ शिशिर अधिक शीत रूखा वात और अग्नि को करनेवाला है ॥ ३९० ॥ (क) हेमन्त स्वादुः अर्थात् प्रायः कर के पदार्थों में मधुर रस को उत्पन्न करनेवाला । इस प्रकार औरों में भी जानना । वसन्त मधुर चिकना और कफ को बढ़ानेवाला है ॥ ग्रीष्म रूखा बहुत कटु पित्त को करनेवाला और कफ का नाशक है ॥ ३९३ ॥

वर्षा शीता विदाहिन्या वह्निमान्धानिलप्रदाः ॥ शर

दुष्णा पित्तकर्त्री नृणां मध्यबलावहा ॥ ३९४ ॥ चय

प्रकोपोपशमा वायो ग्रीष्मादिषु त्रिषु ॥ वर्षादिषु च

पित्तस्य श्लेष्मराः शिशिरादिषु ॥ ३९५ ॥

भा० वर्षा शीत विदाह को करने वाली अग्नि मान्य और वात को देने वाली है ॥ शरत् उष्ण पित्त को करने वाली और मनुष्यों के मध्यबल को देने वाली है ॥ ३६४ ॥ वायु का संचय प्रकोप और श्रमन श्रीष्म से आदि लेके इन तीन ऋतुओं में होता है ॥ वर्षा में आदि लेके तीन ऋतुओं में पित्त का और शिशिर से आदि तीन में कफ का संचय प्रकोप श्रमन होता है ॥ ३६५ ॥

चीयते लघुरुक्षाभि रौषधीभिः समीरणाः ॥ तद्विधं
स्तद्विधे देहे कालस्योष्णान्न कुप्यति ॥ ३६६ ॥

(क) तुल्येऽपि काले स्निग्धे तद्विधो रूक्षो लघुश्च तद्विधेरू-
क्षे लघौ च ॥ अद्भिरम्ल विपाकाभिरौषधीभिश्च तादृ-
शम् ॥ पित्तं याति च यं कीपं न तु कालस्य शैत्यतः ॥
॥ ३६७ ॥ (तादृशम् अम्लविपाकम् ।)

भा० हलकी रूखी औषधियों से वायु संचय होता है ॥ हलका रूखा वायु हलकी रूखी देह में काल को उष्णता से प्रकोप को नहीं प्राप्त होता ॥ ३६६ ॥ अम्ल विपाक को करने वाली औषधी और यानी से उस प्रकार ॥ पित्त संचय को प्राप्त होता है ॥ तथा काल के शीत होने से कीप को नहीं प्राप्त होता ॥ ३६७ ॥

चीयते स्निग्ध शीताभिरुदकीषधिभिः कफः ॥ तु-
ल्ये च काले देहे च क्लिन्नत्वान्न प्रकुप्यति ॥ ३६८ ॥
(ख) तुल्येऽपि काले स्निग्धे शीतले च । (क्लिन्नत्वात्
देहे शुष्कत्वात् ।) हिमे याति शमं पित्तं वायुः स्लेष्मा
च चीयते ॥ स वायुः शिशिरे कीपं यात्येवोपहतः
कफः ॥ ३६९ ॥ हेमन्ते सञ्चितः स्लेष्मा शिशिरे त्व-
ति चीयते ॥ शीतस्निग्ध गुरुद्रव्यैः शैत्यक्लिन्नो न कु-

प्यति ॥ ४०० ॥ (क) क्लिन्नः काठनीभूतः।

इति कालस्वभावोऽयं महारादिवशान् पुनः ॥ चया

दीन् यान्ति सद्योऽपि दोषाः काले विशेषतः ॥ ४०१

भा० चिकनी शीत औषधी और जल से कैफ सञ्चय होता है ॥ काल के समान होने पर भी देह में गीलापन होने से कोप नहीं होता ॥ ३९८ ॥ हिम में पित्त शमन होता है । और वायु कफ सञ्चय होते हैं ॥ वो नष्ट हुवा वायु और कफ शिथिल में कोप का प्राप्त होते ही हैं ॥ ३९९ ॥ हेमन्त में सञ्चय हुवा कफ शिथिल में वज्रत सञ्चय होता है ॥ शीत स्निग्ध और भारी पदार्थों से शीतता और गीला हुवा प्रकोप को नहीं प्राप्त होता ॥ ४०० ॥

(क) (क्लिन्न) कठिनीभूत) इस प्रकार यह कालस्वभाव है पुनः आहारादि वश से दोषकाल में विशेष करके तत्काल चय कोप शमन को प्राप्त होने हैं।

(क) चय कोप समाः पूर्यन्ते वसन्तस्य लिङ्गं मध्यान्ते ग्रीष्मस्य अपरान्ते पावृषः प्रादीपे वार्षिकम् ॥ शरदमर्द्धरात्रे प्रत्यूषसि हेमन्तमुपलक्षयेत् ॥ (ख) एवमहारात्रमपि वर्षामिव शीतोष्णवर्षादोषोपचयप्रकोपोपशमाः जानीयादिति सुश्रुतः ॥

चय कोप समा दोषा विहारहार सेवनैः ॥ समानैर्योन्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥ ४०२ ॥

भा० (क) पहले पहर में वसन्त का चिह्न मध्याह्न में ग्रीष्म का अपरान्ह में पावृष का । और सायंकाल में वर्षा का ॥ आधीरात में शरद का और पछली रात में वसन्त का ॥ लक्षण जान लेवे ॥ (ख) इस प्रकार रात दिन की भी वर्षा की नाईं शीत उष्ण वर्षा और दोषों सञ्चय प्रकोप शमन जाने । इस प्रकार सुश्रुत ने कहा है ॥ समान आहार विहार के सेवन से दोष अपने काल में सञ्चय प्रकोप शमन होते हैं ॥ और विपरीत आहार विहार से काल में भी विपरीत सञ्चय प्रकोप शमन होते हैं ॥ ४०२ ॥

(क) समानैः तुल्यैः चयादि योग्यैरिति यावत् । विपर्यय
कालेऽपि वैपरीत्यं बोध्यम् । [स्वंचय लक्षणमाह सुश्रुतः
स्वस्थानस्थस्य दोषस्य वृद्धिः स्याच्छ्रावकोष्ठता ॥ यी
तावभासता वह्नि मन्दता चाङ्ग गौरवम् ॥ ४०३ ॥ आ
लस्यञ्चय हेतौ तु द्वेषश्च चय लक्षणम् ॥ सञ्चयोप
हृता दोषा लभन्ते नोत्तरां गतिम् ॥ ४०४ ॥

भा० इस प्रकार चय लक्षण कहा है सुश्रुत ने ॥ अपने स्थान में रहनेवाले दो
ष की वृद्धि में कोठे का कालापना ॥ ज़रूरी अग्नि मन्दता शरीर का भारीपना होता है
॥ ४०३ ॥ सञ्चय के निदान में आलस्य और चय के लक्षण में द्वेष होता है । संच
य में दूर किये हुये दोष उत्तर गति अर्थात् प्रकोप को नहीं प्राप्त होते ॥ ४०४ ॥

ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवन्तराः ॥ वर्षासु प्रवलो
वायुस्तस्मान्मिष्टादयस्त्रयः ॥ ४०५ ॥ रसाः सेव्या वि
शेषेण पवनस्योपशान्तये ॥ (मिष्टादयस्त्रयः मधु
राम्ल लवणाः) भवेद्वर्षासु वपुषः क्लिन्नत्वं यद्विषेय
तः ॥ तत्क्लेशशान्तये सेव्या अपि कट्वादयस्त्रयः ॥
॥ ४०६ ॥ (कट्वादयस्त्रयः कटु तिक्त कषायाः ।)

स्वेदनं मर्दनं सेव्यं दध्युष्णं जाङ्गलमिषम् ॥ गोधूमाः
शालयो माषा जलं कोपं जलं च्युतम् ॥ ४०७ ॥

भा० वैप्रकोप में वृद्धत बलवान् होते हैं । वर्षा में वायु प्रवल होता है । उसका
रस मधुर अम्ल लवण ये तीन रस ॥ ४०५ ॥ वात की शान्तिके अर्थ विशेष
करके सेवन करने चाहिये ॥ वर्षा में जो शरीर का गीलापन अधिक होता है
। उस क्लेश की शान्तिके अर्थ कटु तिक्त कषाय ये तीन रस सेवन करने चा
हिये ॥ ४०६ ॥ पसीना लिवा ना मलना दधि उष्ण जांगल मांस ॥ गंधुं चावल
उद्दद कुवेका पानी अथवा चुवाया पानी इनका सेवन करे ॥ ४०७ ॥

न भजेत् पूर्वे पवनं वृष्टिं घर्मं हिमं अमम् ॥ नदी नीरं दि
वा स्वमं स्नानं नित्यञ्च मैथुनम् ॥ ४०० ॥ सर्पिः स्वादु
कपाय निक्त करसा यच्छीतलं यत्नधु ॥ क्षीरं स्वच्छ
सितेक्षवः पदुरसः स्वल्पं पलं जाङ्गलम् ॥ ४०१ ॥ गो
धूमा यव मुद्गशालिसहिता नादेय मंशूदकम् ॥ चन्द्र
श्रन्दन मिन्दु राजिरजनी माल्यं पटो निर्मलः ॥ ४१० ॥

भा० सामने की वायु वृष्टि शीत घूप अम । नदी का नीर दिन का सीना
रूखा पदार्थ नित्य मैथुन इनको न सेवन करे ॥ ४०० ॥ घन मधुर कपाय निक्त
रस और जो शीत अथवा लघु ॥ दूध सफ़ेद चीनी गन्ना लवण रस थोड़ा जांग
ल मांस ॥ ४०१ ॥ गेहूं जव मूंग चावल नदी का पानी और अंशूदक कपूर
चन्दन चान्दनी रात माला स्वच्छ वस्त्र ॥ ४१० ॥

विश्रामः सहृदां गणेषु मधुरावाचः सरः क्रीडनम् ॥ पि
तानाञ्च विरेचनं बलवतो युक्तं शिरा मोक्षराम् ॥ ४११ ॥
सतान्यत्र घनावसानसमये पथ्यानि मुञ्चेद्दधि ॥ व्या
यामास्त कटूष्ण नीक्षणादिवस स्वमं हिमञ्चातपम् ॥ ४१२ ॥
[अंशूदक लक्षणा माह ।] दिवसेऽर्कं करैर्जुष्टं निशि शी
तकरांशुभिः ॥ ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रया पहम्
॥ ४१३ ॥ (क) अत्र समग्र प्राप्त्यर्थे दिवस दिवा पादद्वये नि
शापादन्व । चन्द्रः कपूरः ॥

भा० मित्रों की सभा में मधुर वाणी के साथ विश्राम । नालाव में क्रीड़ा करना ।
पित्तों के विरेचन बलवान की फ़स्त खुलाना ॥ ४११ ॥ ये शब्द ऋतु में पथ्य हैं
॥ और दही कसरत खटाई कड़वी उष्ण नीरवी वस्तु तथा दिन का माना शीत
और घूप इनको छोड़ देवे ॥ ४१२ ॥ अंशूदक का लक्षण कहा है ॥

दिनमें सूर्य की किरणों से सेवित और रात में चान्द की किरणों से सेवित जो जल उसको अंशूदक जाने । वो स्निग्ध और नीनों दूधों का नाशक है ॥ ४१३ ॥
(क) यहाँपर संपूर्ण दिवस प्राप्त है इसवास्ते दिन दो हिस्से और रात एक हिस्से होनी चाहिये ॥

इक्षवः शालयो मुद्गा सरोऽम्भः कथितं पयः ।

शरद्येतानि पथ्यानि प्रदोषे चेन्दु रश्मयः ॥ ४१४ ॥

प्रातर्भोजन मम्ल मिष्ट लवणानभ्यङ्ग घर्मश्रमान् ॥

गोधूमे क्षवशालि मापपिशितं पिष्टं नवान्नं तिलान् ॥

४१५ ॥ कस्तूरी वरकुङ्कुमा गुरु युता मुषणाम्बु प्रौचं

तथा ॥ स्निग्धं स्त्रीषु सुखं गुरुणा वसनं सेवेत हेमन्त

के ॥ ४१६ ॥ शिशिरे शीतमधिकं रौद्र्यं वा दानकाल

जम् ॥ विशेषतस्ततस्तव हेमन्तस्य मती विधिः ॥ ४१७

भा० गन्ने चावल मूंग नदीका पानी और दूध । और सायंकाल में चांदनी के शरदकालमें पथ्य हैं ॥ ४१४ ॥ अम्ल मधु लवण इन रसों का प्रातःकाल में भोजन तेल का लगाना घर्म श्रम ॥ गेहूं गन्ना चावल उडद मांस पीठी नया अन्न तिल ॥ ४१५ ॥ कस्तूरी कर्पूर का केसर मलया गिरका काला चन्दन जौवमें गरम पानी । स्निग्ध पदार्थ मैथुन भारी गरम कपड़ा इनको हेमन्त ऋतु में सेवन करे ॥ ४१६ ॥ शिशिर में शीत अधिक होता है आदानकाल की रूखाता होती है । इसवास्ते उसमें विशेष करके हेमन्त की विधि प्रशस्त है ॥ ४१७ ॥

वान्तिं नस्य मथाभयाच्च मधुना व्यायाम मुदूर्त्तनम् ॥

सं सेवेत मधौ कफघ्नकवलं प्रूल्यं पलज्जाङ्गलम् ॥ ४१८ ॥

गोधूमान् बहू शालिभेद सहितान्मुद्गान् यवान् षष्टिका

न् । लेपश्चन्दन कुङ्कुमा गुरु कृतं रूक्षाङ्कूदूषां लघु ॥ ४१९

मिष्टमम्लं दधिस्निग्धं दिवा स्वप्नञ्च दुर्ज्जरम् ॥ अवश्या

य मपि प्राज्ञो वसन्ते परिवर्जयेत् ॥ ४२० ॥ स्वादु स्नि-
 ग्ध हिमं लघु द्रवमयन्द्रव्यं रसालां सिताम् ॥ शङ्कु क्षी-
 रदशाङ्गुलानि सितया शालिं रसं मांसजम् ॥ ४२१ ॥
 शानांशं शयनं दिवा मलयजं शीतम्पयः पानकम् ।
 सेवेतोष्णदिनेत्य जेतुं कटुक क्षाराम्लधर्मश्रमान् ॥
 ॥ ४२२ ॥ ऋतुष्वेषु य एतेषु विधिभिर्वर्तते नरः ॥ दो-
 षान्नु कृतानैव लभते स कदाचन ॥ ४२३ ॥

इति श्रीलटकनमिश्र तनय श्रीमन्मिश्र भाव विरचिते भाव
 प्रकाशे दिनचर्य्यं तु प्रकरणञ्चतुर्थम् ॥ ४ ॥

भा० वमनहलास और मधुकेसाय हृष्ट तथा कसरत उबटना इनको वसन्त में
 सेवन करे । और कफ नाशक यास तथा जांगल मांस का कवाच इनको भी सेव-
 न करे ॥ ४१० ॥ गेहूं वज्रतकिसम के चावल और भूंग जब तथा सार्दी चावल । च-
 न्दन केसर कृष्णागरु और रूक्षा कटु तथा लघु इस प्रकार की बनाया इवालेप
 इनको भी वसन्त में सेवन करे ॥ ४१६ ॥ मधुर अम्ल दधि स्निग्ध दिनका सोना
 जला भुना इनको सुखिवान् शिणिर और वसन्त में न्यागदेवे ॥ ४२० ॥ मधुर
 स्निग्ध शीत लघु और पतली वस्तु तथा शिकरन चीनी ॥ सत्त दूध दमो अंगुली
 चमेली से भूयित चावल शोरुवा ॥ ४२१ ॥ चान्दनी दिनका सोना मलया गिर
 को चन्दन ठंडा पानी पपानक अर्थात् पन्ना इनको गरमी की ऋतु में सेवन करे ।
 और कटु क्षार अम्ल धूप श्रम इनको न्यागदेवे ॥ ४२२ ॥ जो मनुष्य ऋतु
 बों में इस विधि से चलता है । उसे मनुष्य ऋतु रून दोष कभी नहीं होते ॥ ४२३ ॥

इति श्री लटकनमिश्र के पुत्र श्री भावमिश्र के रचित भाव
 प्रकाश में दिनचर्य्या और ऋतु प्रकरण चतुर्थं समाप्त इवा ॥ ४ ॥

[अथ व्याधेर्लक्षणम् । तत्र वाग्भटः ।]

रोगस्तु दोष वैषम्यं दोष साम्य मरोगता ॥ रोगा दुः

स्वस्य दातारो ज्वर प्रभृतयो हि ते ॥ १ ॥ ते च स्वाभाविकाः केचित्केचिदागन्तवः स्मृताः ॥ मानसाः केचिदाख्याताः कथिताः केऽपि कायिकाः ॥ २ ॥

(तत्र स्वाभाविकाः शरीर स्व भावादेव जाताः ॥)

(क) क्षुत्पिपासा सुषुप्त्या च जगृमृत्यु प्रभृतयः अथवा स्व स्वभाविका दुत्यन्ते जीजा स्वाभाविकाः सहजा इति यावत् ।

(ख) ते च जन्मान्धत्वादयः आगन्तवोऽभिघातादि जनिताः । अथवा जन्मोत्तर भाविनः । कामक्रोध लोभ मोह भयाभिमानं दैन्य पैशुन्य शोक विषादिष्वी सूयां मात्सर्य्य प्रभृतयः ।

अथवा उन्मादापस्मार मूर्च्छा श्रममोह तमः संन्यास प्रभृतयः ।

भा० अनन्तर व्याधिका लक्षण अष्टाङ्ग हृदय में चाग्भट ने कहा है । दोषों की विषमताएँ हैं और दोषों की समानता आरोग्य है ॥ वे ज्वर आदि रोग दुःख के देने वाले हैं ॥ १ ॥ वे रोग कोई रोग स्वाभाविक और कोई आगन्तुक कहे गये हैं । और कोई मानसिक तथा कोई कायिक इस प्रकार कहे गये हैं । ॥ उन्मेस्वभाविक शरीर में स्वभाव से ही उत्पन्न हैं) (क) क्षुधा तृष्णा निद्रा जगृमृत्यु आदि । अथवा अपने स्वभाव से ही उत्पन्न हुवे ही स्वाभाविक अर्थात् साध होने वाले । (ख) वे जन्म का अन्धापन इत्यादिक । आगन्तुक चोट से उत्पन्न हुवे । अथवा जन्म के पश्चात् होने वाले । कामक्रोध लोभ मोह भय अभिमान दीनता चुगली शोक खेद ईर्ष्या और शत्रुता मत्सरता आदि । अथवा उन्माद अपस्मार अर्थात् मिरगी मूर्च्छा श्रम मोह अन्धेरी और अचेतता इत्यादिक ।

कायिकाः पाण्डुरोग प्रभृतयः कर्मजाः कथिताः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे ॥ कर्म दोषोद्भवाश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ॥ ३ ॥ (क) तत्र कर्मजाः व्याधयः ।

यत्प्राक्तनदुष्कर्म प्रबलङ्केवल भोगनाशयम् । प्रायश्चित्त
तनाशयं वा ततो जाताः ननु दुष्ट वातादि दोषेण जनितास्त
था ॥ ॥ यथा शास्त्रन्तु निर्णीतो यथा व्याधिचिकित्सितः ।

नशमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥ ४ ॥

भा० कायिक पांडुरोग आदि । कर्मज को कहेंगे यै हैं । और कोई दोषज हैं ।
और कोई कर्म दोषों से उत्पन्न इस प्रकार तीन तरह की व्याधि कही है ॥ ३ ॥
(क) उनमें कर्मज व्याधि जो पूर्व जन्म के दुष्कर्म से प्रबल हुवा और भोग वा
राही नाश होनेवाला अथवा प्रायश्चित्त से नाश होनेवाला उसे उत्पन्न हुवा ।
न कि वातादि दोष से हुवा उस प्रकार । शास्त्र के अनुसार निश्चय हुई और
पथ्य व्याधि चिकित्सा से जो व्याधि शमन को नहीं प्राप्त होती है उसको यंडित
कर्मज कहते हैं ॥ ४ ॥

[दोषजाः मिथ्याहार विहार प्रकुपित वात पित्त कफजाः ।]

(क) ननु मिथ्याहार विहारिणा मपि प्राक्तनं दुष्कर्मैव कारणम्
ज्यं दृश्यते एव । ततो दोषजेष्वपि प्राक्तनं दुष्कर्मैव कारणम्
तत्कथं दोषजा इत्युच्यते । दोषजेष्वपि वस्तुतः । आदि
कारणं दुष्कर्म वर्तते एव किन्तु तत्र मिथ्याहार विहार दू
षिता दोषा हेतवो दृश्यन्त इति दोषजा इत्युच्यन्त इति समा
धिः । [कर्मदोषोद्भवाः ।]

भा० [दोषज] मिथ्या आहार और विहार से यकोय को प्राप्त ज्ञेय वात पित्त
कफ से उत्पन्न हुई ॥ (क) ननु शंका । मिथ्या आहार विहार वालों को भी
पूर्व जन्मान्तर के सुकृत कर्म से ही आरोग्यता होनी है । उसे दोषज में भी पूर्व
जन्मान्तर का दुष्कर्म ही कारण है । तो कैसे दोषज कहते हैं । यथार्थ में तो दो
षज में भी आदिकारण दुष्टकर्म ही रहना है । लेकिन उसे मिथ्या आहार
विहार से दूषित दोष कारण देखे जाता है । इसे दोषज कहते हैं ये समाधान है ।

[कर्मदोषोऽस्य उत्पन्नत्वं को कहते हैं।]

स्वल्पदोषा गरीयांस स्ते ज्ञेयाः कर्मदोषजाः ॥

(ख) अत्र कारणां दुष्कर्म प्रबलं यतो दोषाल्पत्वेऽपि व्याधेर्गरीयस्त्वन्तत्कर्म क्षयादेव क्षीणं भवति । दोषाः स्वल्पा अपि निदानत्वे नोक्ता दृश्यन्त एवेति दोषाणां कारणाता मन्यन्त इति । कर्मक्षयात् कर्म क्षाता दोषजाः स्व स्व भेषजैः ।

कर्मदोषोद्भवा यान्ति कर्मदोष क्षयाक्षयम् ॥

भा० श्रोत्रे दोषबहुत भारी हो जावे उसको कर्मदोषज जानना ।

(क) यहाँ पर कारण दुष्टकर्म प्रबल है । जैसे कि अल्पव्याधिमें बहुत बड़े हवे दोष कर्मक्षय से ही क्षीण होते हैं । दोष स्वल्प भी निदान करके कहें हवे देखे जाते ही हैं और दोषों की कारणाता मानते हैं । कर्म के क्षय से कर्मक्षत दोष अपनी २ ओषधि से । कर्मदोषों से उत्पन्न हवे कर्मदोष के क्षय से क्षय को प्राप्त होते हैं ॥

(ग) दोषजाः स्व स्व भेषजैरिति दोषजेष्वदिकारणं ॥ दु-

ष्कर्म तद्वेषजार्थं द्रव्य क्षयादि जनित दुःख भोगेन कटुति-

क्त कषायाद्य हृद्य भक्षणदि जनित दुःख भोगेन च क्षयं

यान्ति । येषां दुष्टा हेतवो दोषास्ते स्व स्व भेषजैः क्षयं या-

नीत्यर्थः ॥ साध्या याप्या असाध्याश्च व्याधयः स्त्रिवि-

धास्मृताः ॥ सुखसाध्यः कष्टसाध्यो द्विविधः साध्यः

उच्यते ॥ ५ ॥

[याप्य लक्षणा माह ।]

भा० (क) दोषज अपने २ ओषध से इति । दोष से उत्पन्न हवे में अधिक कारण दुष्टकर्म और उसके ओषध के अर्थ द्रव्य क्षयादि से हवे दुःख भोग करके ही कटु तिक्त कषादि अप्रिय भक्षण से उत्पन्न हवे दुःख से नाश को प्राप्त होते हैं ।

शंष इष्ट कारणा वेदोष । अयने २ औषध सेनाशंका प्राप्त होने हैं । साध्य या
प्य असाध्य तीन प्रकार की व्याधि कही गई है ॥ सुखसाध्य तथा कष्टसाध्य
दो प्रकार का साध्य कहते हैं ॥ ५ ॥ याप्य का लक्षण कहा है ।

यापनीयन्तु तं विद्यात् क्रिया धारयते हि यम् ॥ क्रिया
यान्तु निवृत्तायां सद्यो यश्च विनश्यति ॥ ६ ॥ प्राप्ता क्रि
या धारयति सुखिनं याप्यमातुरम् ॥ प्रपतिष्य दिवा
गारं स्तम्भो यत्नेन योजितः ॥ ७ ॥ साध्या याप्यत्वमा
यान्ति याप्यश्चासाध्यनान्तया ॥ घ्नन्ति प्रारणानसाध्या
स्तु नराणामक्रियावताम् ॥ ८ ॥

भा० यापनीय उसकी जानना चाहिये जिसकी क्रियाने पकड़ रखा है । क्रिया
के निवृत्त होने में जो तत्काल नाश का प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ प्राप्त क्रिया जिस सुखि
याप्य आतुर को धारण करती है । वो गिरे हूँ वे भवन में चाँद लगाये हूँ वे की मा
निन्द है ॥ ७ ॥ साध्य रोग याप्य होते हैं और याप्य असाध्यता को प्राप्त होते हैं
पथ्यादिक न करने वाले पुरुषों के प्रारण को असाध्य रोग नाश करते हैं ॥ ८ ॥

(क) अक्रियावतां चिकित्सा रहितानाम् । [अथोपद्रवस्य ल
क्षणम् ।] रोगास्सकं दोषस्य प्रकोपाद्युपजायते ॥ योऽ
न्यो विकारः स तु धैर्यपद्वय इहोदितः ॥ ९ ॥

[अथारिष्टस्य लक्षणा माह ।] रोगिरोगो मरती यस्य द
वश्यम्भावि लक्ष्यते ॥ तत्तक्षण मरिष्टं स्याद्विष्टं च
पि तदुच्यते ॥ १० ॥ [अथ चिकित्साया लक्षणमाह ।]

भा० (क) चिकित्सा से रहितों की । अनन्तर उपद्रवों का लक्षण कहते हैं ।
रोग को आरंभ करने वाले दोषों के प्रकोप से जो मृत्युविकार उत्पन्न होना है
उसको पंडित यहाँ पर उपद्रव कहते हैं ॥ ९ ॥ अनन्तर अरिष्ट का लक्षण

कहनेहैं ॥ रोगिका अवश्य होनेवाला मरण जिसे जाना जाता है । वोह अक्षरा
अरिष्ट होता है और रिष्ट भी उसको कहनेहैं ॥ अनन्तर चिकित्साका लक्षण
कहनेहैं ॥ १० ॥

यां क्रिया व्याधि हरणी सा चिकित्सा निगद्यते ॥ दोष
धातु मलानां या साम्यकृत सैव रोगहन्त ॥ ११ ॥

(क) क्रियात्र कर्म व्याधिर्हन्यते नयेति व्याधि हरणी
करणाधिकरणयोश्चेति सूत्रेण करणार्थल्युट् तथा च ।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः सप्ताः ॥ सा चि
कित्सा विकारणां कर्म तद्विषजाम्मतम् ॥ १२ ॥ या

ह्युदीरणी शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ॥ सा क्रि
या न तु व्याधिं हरत्यन्य मुदीरयेत् ॥ १३ ॥

(क्रियात्र चिकित्सा ।) तथा चामर सिंहः ।

भा० जो क्रिया व्याधिको दूर करनेवाली होती है उसको चिकित्सा कहनेहैं ।
दोष धातु मल इनकी समानता करनेवाली जो है वोही रोग नाशक है ॥ ११ ॥

(क) क्रिया यहाँ पर कर्म व्याधिनाशकी जाती है इसे वो व्याधिहरणी है ।
करणधिकरणयोश्चेति इस सूत्रसे करण अर्थ में ल्युट् है । उस प्रकार कहा
है ॥ जिस क्रियासे शरीरमें धातु सम होनेहैं । वो चिकित्सा है । और विकारों
का वोह कर्म वैद्योंके सम्मन है । प्रकोप हवैको शमन करती है और दूसरी
व्याधिको नहिं करती । वो क्रिया है । तथा जो एक व्याधिको दूर करे और दूस
रीकी उत्पन्न की वो क्रियानहीं ॥ १३ ॥ (क) क्रिया यहाँ पर चिकित्सा ।
उस प्रकार अमर सिंहने कहा है ॥

आरम्भी निष्कृतिः शिला पूजनं सम्प्रधारणम् ॥ उपा
यः कर्म चेष्टा च चिकित्सा च नव क्रिया इति ॥ १४ ॥

[अथ चिकित्साविध्यु पदेशः ।

ज्ञातमात्रः चिकित्स्यः स्यान्नोपेत्योऽल्पतया गदः ॥

वन्निशत्रु विषेस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोन्यसौ ॥ १५ ॥

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ॥ ततः क

र्मभिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वसमाचरेत् ॥ १६ ॥

भा० आरंभ निष्ठाति शिक्षा पूजन संप्रधारण ॥ उपाय कर्म चेष्टा और चिकित्सा येनव क्रियाके पर्याय है ॥ १४ ॥ अनन्तर चिकित्सा की विधि का उपदेश है । उत्पन्नमात्रही रोग चिकित्सा योग्य है । घोड़ाभी रोग उपेक्षा करने योग्य नहीं होता ॥ आग शत्रु विष इनके समान अल्पभी विकारकी करता है ॥ १५ ॥ प्रथम रोगकी परीक्षा करे उसके अनन्तर औषधि करे । उसके अनन्तर वैद्य पश्चात् कर्म ज्ञान पूर्वक करे ॥ १६ ॥

(क) [अयमर्थः] भिषक् आदौ रोगं परीक्षेत विचारयेत् ।

ततः पश्चाद्दोगौषधविचारानन्तरं ज्ञानपूर्वसावधानो न त्ववज्ञाय कर्म चिकित्सा मौषधदानादिरूपां समाचरेदित्यर्थः । रोगाज्ञानेन चिकित्सा करणे दोषमाह ।

भा० (क) यत् अर्थ है ॥ वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षा करे । अर्थात् विचार करे । उसके पश्चात् अर्थात् रोग औषधि विचार के अनन्तर सावधान होके । न कि वैसे समके कर्म अर्थात् चिकित्सा अर्थात् औषधि दान रूप को करे ॥ रोग के विन ज्ञाने चिकित्सा करने में दोष कहते हैं ।

यस्तुरोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् । अथो

षधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥ १७ ॥

(ख) स्वेरितया सिद्धिर्भवति नापि भवतीत्यर्थः । अन्यच्च

भेषजं केवलं कर्तुं योजानाति न चामयम् ॥ वैद्य क

र्म सचेत कुर्याद् बधमर्हति राज्ञतः ॥ १८ ॥

(क) [रोगज्ञाने भेषजाज्ञाने दोषमाह ।]

यस्तु केवल रोगज्ञो भेषजेष्व विचक्षणाः ॥ न वैद्यं
प्राप्य रोगी स्याद्यथा नौर्नादिकं विना ॥ १८ ॥

भा० जो वैद्य औषधि का जाननेवाला रोग को बिनाजनि चिकित्सा करता है
उसकी सिद्धि अपनी खुशी की है अर्थात् कभी होती है कभी नहीं भी होती ॥
१७ ॥ और भी, जो वैद्य केवल औषध बनाना जानते हैं और रोग को नहीं जान
ते ॥ वैद्य कर्म करते तो रजा से बध होने योग्य हैं ॥ १८ ॥ रोग का ज्ञान
और औषध का न ज्ञान इसमें रोग को कहने हैं ॥ जो केवल रोग का जानने
वाला है और औषधि में अविचक्षणा ॥ उस वैद्य को पाकर रोगी उस प्रकार
का होता है जैसे मज्जाह के बिना नाव ॥ १८ ॥

(क) नादिकं कर्णधारं विना यथा नौ सङ्ग्रे पतति तथा
रोगीत्यर्थः । [अन्यच्च]

यस्तु केवल शास्त्रज्ञः क्रियास्वकुशलो भिषक् ॥

समुद्यत्यातुरं प्राप्य यथा भीरुरिवाहवम् ॥ २० ॥

[रोगौषधयोर्ज्ञानं गुणमाह ।] यस्तु रोगविशेषज्ञः स
र्वभेषजकोविदः । देशकालविभागज्ञस्तस्य सिद्धि
र्न संशयः ॥ २१ ॥ आदावन्ते रुजां ज्ञाने प्रयतेत वि
दित्सकः ॥ भेषजानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकि
त्सितम् ॥ २२ ॥ (क) चिकित्सितं विन्यून भावेक्तः ।

भा० (क) जैसे मज्जाह के बिना नाव संकट में पड़ती है वैसे रोगी इत्यर्थः ।
और भी । जो वैद्य केवल शास्त्र का जाननेवाला है । और क्रिया में अकुश
ल है । वह रोगी को पाकर मोह को प्राप्त होने है । जैसे संग्राम में डरपोक मोह
को प्राप्त होता है ॥ २० ॥ रोग और औषध के ज्ञान में गुण को कहते हैं ।
— रोग विशेष का जानने वाला है । और संपूर्ण औषधियों को भी जानता है
विभाग को जानता है उसकी सिद्धि अनपेक्ष्य होती है ॥ २१ ॥

वैद्य आदि अन्तरोगके ज्ञान होने पर प्रयत्न करे ॥ उसके अनन्तर औषधके विधानसे चिकित्सा करे ॥ २२ ॥

(क) चिकित्सित इस प्रकार यहाँपर भावमें कृत होना है ॥

रा विकारं गामकुशलो न जिह्नीयात् कदाचन ॥ न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥ २३ ॥

(क) न जिह्नीयात् न लज्जेत् । ध्रुवा नियता ।

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्यात्तस्माच्चिकित्सकः ॥

अनुक्तामपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिसुपाचरेत् ॥ २४ ॥

येन कुर्वन्त्यसाध्यानां चिकित्सां ते भिषग्वराः ॥ अतो

वैद्यैः श्रमः कार्यः साध्यासाध्यपरीक्षणो ॥ २५ ॥

भा० विकारोंके जाननेमें अकुशल कभीन शरमवि । क्यों कि सम्पूर्ण विकारोंके नामसे नियत स्थिति नहींहोती ॥ २३ ॥ (क) जिसकारण विना दोषोंके रोग नहीं होता । उसकारणवैद्य दोषोंके लक्षणोंसे नकी हूवे रोगका भी इलाज करे ॥ २४ ॥ जो असाध्यरोगोंकी चिकित्सा नहींकरते । वे श्रेष्ठ वैद्य हैं ॥ इसवास्ते साध्य असाध्यकी परीक्षामें वैद्योंको श्रमकरना चाहिये ॥ २५ ॥

रोगज्ञानोपाया अग्रे वक्ष्यन्ते । शीते शीत प्रतीकारमुष्णो नूषण निवारणम् । कृत्वा कुर्यात् क्रियां प्राप्तां

क्रियाकालं न हासयेत् ॥ २६ ॥ अप्राप्ते वा क्रियाकाले

प्राप्ते वा न क्रिया कृता ॥ क्रियाहीनानिरिक्ता च सा

ध्येष्वयं न सिद्ध्यति ॥ २७ ॥ (क) [अयमर्थः ।]

काले चिकित्साऽवसरे । अप्राप्तेऽनागते । या क्रिया चिकित्सा । यथा ज्वरे जीर्णनामप्राप्ते नरुण एव कथा यदानक्रिया न सिद्ध्यति ।

भा० रोग ज्ञान के उपाय आगे कहें हैं ॥ शीत में शीत का इलाज । और उष्ण में उष्ण का निवारण करके प्राप्त क्रिया की करें और क्रिया काल की न त्याग करें ॥ २६ ॥ अप्राप्त क्रिया काल में जो चिकित्सा की जाती है और जो प्राप्त काल में नहीं की जाती ॥ तथा हीन क्रिया या और की और क्रिया भी बहुसाध्य रोग में भी नहीं सिद्ध होती ॥ २७ ॥ (क) यह अर्थ है कि चिकित्सा का समय नज्द नेपर । जो चिकित्सा । जैसे जीर्णता को न प्राप्त ह्वे ज्वर में अर्थात् तरुण ज्वर में कषायदान क्रिया नहीं सिद्ध होती ॥

(ख) या च क्रिया चिकित्सावसरे प्राप्तेन कृत्वा । 'अधीन पश्चात् कृता । (ग) यथादाहे कथञ्चिच्छान्ते पश्चाच्छीतलानुलेपनादिक्रिया । तथा हीनातिरिक्ता च क्रिया साध्येष्वपि न सिद्ध्यति ॥ अतिरिक्तां हीनां च क्रिया वर्ज्यन्नाह विकारेऽल्पे महत् कर्म क्रिया लघ्वी गरीयसी ॥ छ यमेतद् कौशल्यं कौशल्यं युक्त कर्मता ॥ २८ ॥ क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्या प्रयोजयेत् ॥ पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रिया सङ्करोहितः ॥ २९ ॥

(क) भिन्नरूपाभिस्तु क्रियाभिः साङ्कर्यमपि न दोषाय ।

भा० (ख) जो क्रिया चिकित्सा का अवसर प्राप्त होने में नहीं की गई । अर्थात् पीछे से की गई ॥ (ग) जैसे दाह किसी न किसी तरह शान्त होने में पीछे से शीतल अनुलेपनादि क्रिया । उसी प्रकार हीन और अतिरिक्त क्रिया साध्य में भी नहीं सिद्ध होती ॥ अतिरिक्त और हीन क्रिया को त्यागने ह्वे कहते हैं ॥ अन्य विकार में बड़ी क्रिया और बड़े विकार में हीन क्रिया । ये दोनों ही अकुशला हैं । और उचित कर्म ही कुशल ना है ॥ २८ ॥ क्रिया का गुण न प्राप्त हो तो दूसरी क्रिया करे ॥ पहिली क्रिया से शान्त वेग होने में क्रिया संकर हित नहीं होती है ॥ २९ ॥ (क) भिन्न रूप क्रिया से जो सांकर्य हित होता है वो दोष के अर्थ नहीं है ॥ जैसे कि कहा है ।

(क) [यत आह] क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिर्न क्रियासङ्क-
रोहितः ॥ ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः साङ्ख्य्येनैव दु-
ष्यति ॥ ३० ॥ [अतस्त्वोक्तम्] लङ्घनं बालुकास्वे-
दो नस्यं निषोदनं तथा ॥ अवलेहोऽञ्जनञ्चापि ।
प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ३१ ॥ [ज्वर इति शेषः ।]
नचैकान्ते न निर्दिष्टे शास्त्रे निविशते बुधः ॥ स्वय-
मप्यत्र भिषजा तर्कनीयं चिकित्सना ॥ ३२ ॥

[यत आह] उत्पद्यते च सावस्था दोषकाल बलम्प्रति ।
यस्या कार्यमकार्यं स्यात् कर्मकार्यं विवर्जित-
म् ॥ ३३ ॥ (क) विवर्जितं कर्म कर्तव्यं भवतीत्यर्थः ।

भा० नुल्यरूप क्रियाओं से जो संकर होता है वो हित नहीं है । भिन्नरूप
उनसे जो संकरना होती है । वो दोष नहीं करती ॥ ३० ॥ इसी वास्ते कहा है
॥ लंघन बालूका स्वेदनास कुल्ला । तथा अवलेह और अंजन भी इन
को त्रिदोषसे उत्पन्न होने में पहिले देना चाहिये ॥ ३१ ॥ ज्वर येह शेष ए
कान्त करके कहे हवे शास्त्र पर पंडित नहीं रहते ॥ यहाँ पर वैद्य को खु-
द भी चिकित्सना । विचारनी चाहिये ॥ ३२ ॥ जैसे कि कहा है ॥
दोषकालबल में वो अवस्था उत्पन्न होती है । जिसमें करने के योग्य
कर्म अकार्य होता है अर्थात् करने के अयोग्य होता है ॥ और का-
र्य कर्म छोड़ा जाना है ॥ ३३ ॥ (क) विवर्जित कर्म करने के
योग्य होता है ॥ [अथ चिकित्सायां फलमाह ।]

क्वचिदर्थं क्व चिन्मैत्री क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः ॥
कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सानास्ति निःफलम्
॥ ३४ ॥ आयुर्वेदोदिता युक्तिं कुर्वीणा विहिताश्च ये ।

पुण्यायुर्दृष्टिसंयुक्ता निरोगाश्च भवन्ति ते ॥ ३५ ॥

नैव कुर्वीत लोभेन चिकित्सा पुण्यविक्रियम् ॥

इंश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थन्तु वृत्तये ॥ ३६ ॥

चिकित्सितं शरीरं यौ न निष्क्रीणाति दुर्मतिः ॥

स यत्करोति सुकृतं सर्व्वं तद्विषगञ्चते ॥ ३७ ॥

न देशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः ॥ ततः

सर्व्वत्र वैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः ॥ ३८ ॥

(अस्य चिकित्साया अङ्गानि ।)

भा० अनन्तर चिकित्साका फल कहते हैं ॥ कहींपर अर्थ कहीं मैत्री अर्थात् मित्रता कहीं धर्म और कहीं यश । तथा कहींपर कर्मका अभ्यास इस प्रकार चिकित्सा निष्फल नहीं होती ॥ ३५ ॥ जो आयुर्वेद में कही हुई विहित युक्ति को करने वाले हैं ॥ वे पुण्य आयु की दृष्टि से युक्त इवे नियो गी होते हैं ॥ ३५ ॥ लोभ से चिकित्सा तथा पुण्य का विक्रिय न करे ॥ वृत्ति के अर्थ राजा और धनाढ्यों के द्रव्य को चाहे ॥ ३६ ॥ चिकित्सा किये इवे शरीर को जो दुर्मति शुद्ध नहीं करता ॥ वो जो सुकृत करता है उसको वैद्य भक्षण करना है ॥ ३७ ॥ मनुष्यों के हीन कोई देश नहीं है और रोग से रहित कोई मनुष्य नहीं है ॥ तिससे सब जगह वैद्यों की सुसिद्ध ही वृत्तियां हैं ॥ ३८ ॥ अनन्तर चिकित्सा के अंगों को कहते हैं ॥)-

रोगी दूतो भिषग्दीर्घ मायुर्द्वयं सुसेवकः ॥ स दौष

धं चिकित्सायाम् इत्यङ्गानि बुधा जगुः ॥ ३९ ॥

[तत्र रोगिणो लक्षणं माह ।] रोगो यस्यास्ति रोगी स स चिकित्स्यस्तु यादृशः ॥ यादृशश्चाचिकित्स्योऽपि वक्ष्यमाणो निषाम्यताम् ॥ ४० ॥ [तत्र चिकित्स्यः ।]

भा० रोगी दूत वैद्य दीर्घ आयु द्रव्य अच्छा सेवक ॥ और अच्छी दवा इस प्रकार चिकित्सा के ये अंग पंडितों ने कहे हैं ॥ ३८ ॥ उसमें रोगी को लक्षणा कहते हैं ॥ रोग जिसको है वो रोगी वोह जिस प्रकार चिकित्सा योग्य होता है और चिकित्सा के अयोग्य अंगे कहे हुएों को सुनिये ॥ उसमें चिकित्सा के योग्य को कहते हैं ॥

निज प्रकृति वर्णाभ्यां युक्तः सत्वेन चक्षुषा ॥ चि-

कित्स्यो भिषजां रोगी वैद्य भक्तो जिनेन्द्रियः ॥ ४१ ॥

(क) सत्वं व्यसनाभ्युद्य क्रियादिष्वविह्वलताकरं तेन युक्तः चक्षुषा चक्षुरूपलक्षितेन । ततोऽन्येनापीन्द्रियेण चिकित्स्यः रोगान् मोचयितव्यः ॥ [अन्यत्र]

आयुष्मान् सत्त्ववान् साध्यो द्रव्यवान् मित्रवानपि ।

चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्य वाक्य रुदास्तिकः ॥ ४२ ॥

आयुर्वेदोऽस्तीति मतिर्यस्य । आस्तिकः । (अथाचिकित्स्यः) चरडः साहसिको भीरुः कृतघ्नो व्यग्र एव च ।

शोकाकुलो सुमूर्खश्च विहीनः करौश्च यः ॥ ४३ ॥

भा० स्वभाविक प्रकृति और वर्ण से युक्त और बल युक्त तथा चक्षु से हीन न हुआ हो ॥ वैद्य का भक्त और जिनेन्द्रिय इस प्रकार का रोगी वैद्य के चिकित्सा योग्य होता है ॥ ४१ ॥ (क) व्यसन और अभ्युद्य की क्रिया आदि में विह्वलता को न करने वाला उस करके युक्त । चक्षु के उपलक्षण से उसे अन्य इन्द्रियों करके । चिकित्सा योग्य होता है ॥ और भी ।

आयु वाला बल वाला द्रव्यवान् और मित्रों करके युक्त ॥ तथा वैद्य के कथनानुसार चलने वाला आस्तिक इस प्रकार का रोगी वैद्य के द्वारा चिकित्सा करने योग्य है ॥ ४२ ॥ आयुर्वेद है इस प्रकार की बुद्धि है जिसकी वोह आस्तिक ॥ अनन्तर चिकित्सा के अयोग्य को कहते हैं ॥ क्रोधी साहस को करने वाला भीरु कृतघ्न और व्यग्रचित्त शोक में पीड़ित मरने

वाला और जो सामग्री सेहीन ॥ ४३ ॥

वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनश्च शङ्कितः ॥ भिषजा

मविधेयाः स्युर्नोपक्रम्याः भिषग्विधाः ॥ ४४ ॥

एतानुपाचरन्वैद्यो बहून् दोषान् वासुधात् ॥

(क) चण्डोऽन्यन्त क्रोधशीलः । साहसिकः अविचार्यका

री भीरुर्मयशीलः । कृतघ्नो वैद्यकृतोपकार लोपकः ।

अग्रो व्याकुलः । विहीनः करणैश्च यः जितेन्द्रियशक्ति

रहितः । वैरी न चिकित्स्यः कदाचिद्रोगो द्रुके अपवाद

भयान् । वैद्यविदग्धो वैद्यधूर्तः । तथा च सुश्रुत ॥

भा० वैरी वैद्यकी बुराई करने वाला श्रद्धाहीन तथा शंकायुक्त ॥ वैद्यों के अविधेय अर्थात् चिकित्सा करने के अयोग्य होने हैं और जो वैद्य के किसिम से हैं वोह भी असाध्य है ॥ इनका उपचार करने से वैद्य बहून् दोषों को प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ (क) अन्यन्त क्रोधस्वभाव । बिना सोचे करने वाला । डरपोक । वैद्य के किये हुए उपकार को न मानने वाला । व्याकुल । सामग्री से रहित जितेन्द्रिय शक्तिरहित । वैरी । चिकित्सा करने के अयोग्य । कदाचित् रोग के उद्देक में अपवाद के भयसे । वैद्यधूर्तः । उस प्रकार सुश्रुत ने कहा है ॥

सन सिद्धातिवैद्यस्तु गृहे यस्य न पूज्यते ।

(क) शङ्कितो वैद्य विश्वासरहितः । भिषजामविधेयाः ।

वैद्यवचनाविधायिनः । भिषग्विधाः वैद्यतुल्याः एते

नोपक्रम्याः ॥ न चिकित्स्याः । [अथ दूनस्य लक्षणम्]

यश्चिकित्सकमानेनं याति दूनः सकल्प्यते ॥ स च

यादृक् समुचित स्तादृगत्र निर्गच्छते ॥ ४५ ॥

भा० जिस रोगी के घरमें वैद्य इज्जत नहीं किया जाता। वोह असाध्य होता है ॥ (क) वैद्य के विश्वास से रहित। वैद्य के कहने को न करने वाले। वैद्य के समान। ये चिकित्सा करने के योग्य नहीं हैं ॥ अनन्तर दूत का लक्षण कहते हैं ॥ जो वैद्य को लाने के वास्ते जाना है उसको दूत कहते हैं। वोह जिस प्रकार का उचित है उसको यहाँ पर कहते हैं ॥ ४५ ॥

दूताः सुजातयोः व्यङ्गाः पटवो निर्मलाम्बराः। सु
खिनोः खट्वा रुद्धाः शुभ्र पुष्प फलैर्युताः ॥ सजा
तयः सुवेष्टाश्च सजीव दिशिसङ्गता ॥ भिषजं
समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥ ४७ ॥

स जातयः रोगिसमान जातयः।

यस्यां प्राणमरुद्धानि सानाड़ी जीव संज्ञिता ॥

[अथ दूतस्य यात्रायां शकुन विचारः।]

भा० दूत अच्छी जात का ब्यंग से रहित चतुर निर्मल वस्त्र के युक्त ॥ सुखी अम्ब वृष पर आरूढ़ तथा शुभ्र पुष्प फल से युक्त ॥ ४६ ॥ अपने जात का अच्छी चेष्टा वाला वह जीव दिशामें संगत समय पर वैद्य के प्राप्त जवा रोगी के सुख हेतु होना है ॥ ४७ ॥ रोगी के समान जानवा ला ॥ जिस नाड़ी में प्राण वायु चलना है वो जीव संज्ञा वाली नाड़ी है। अनन्तर दूत की यात्रा में शकुन विचार कहते हैं ॥

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ॥ न

शुभं सौम्य शकुनं प्रदीप्तन्तु सुखावहम् ॥ ४८ ॥

(क) प्रदीप्तमग्निः दूतो रोगी च रिक्तहस्तो वैद्यं न प
श्येत्। [अथ च] रिक्तहस्तो न पश्येत्तु राजानं भिष
जं गुरुमिति ॥ [अथ वैद्यस्य लक्षणम्]

भा० रोगी के अर्थ वैद्य को बुलाने के वास्ते जानेवाले दूत के सौम्य शकुन शुभनहीं होता और प्रदीप्त शकुन सुखावह होता है ॥ ४८ ॥
 (क) दीप्त अग्नि दूत रिक्त हस्त रोगी वैद्य को न देखे ॥ और खाली हान राजा को वैद्य को और गुरू को भी खाली हाथ न देखे ॥

चिकित्सां कुरुते यस्तु सचिकित्सक उच्यते ॥ स
 च यादृक् समीचीन स्नादशोऽपि निगद्यते ॥ ४९ ॥
 तत्वाधिगत शास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयङ्कुती ॥ लघु
 हस्तः शुचिः शूरः सज्जो यस्कर भेषजः ॥ ५० ॥
 प्रत्युत्पन्नमतिर्द्दामान् व्यवसायो प्रियम्बदः ॥ स
 त्यधर्मयरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥ ५१ ॥

भा० जो चिकित्सा को करता है उसको वैद्य कहने हैं ॥ वह जिस प्रकार अच्छा होता है उस प्रकार के वैद्य को कहने हैं ॥ ४९ ॥ अच्छी प्रकार पढ़ा हुआ है शास्त्र का अर्थ जिसने कामों को देखा हुआ आप ही किया हुआ। हलके हाथ वाला यवित्र शूर अच्छे औषध और शास्त्रादिक के सुक्त ॥ ५० ॥ तर्क बुद्धिवाला बुद्धिवान व्यवसायवाला प्रियबोलनेवाला ॥ सत्य धर्म में तत्पर इस प्रकार का जो वैद्य है वह प्रशस्त है ॥ ५१ ॥

(क) दृष्टकर्म्मो दृष्टा यरेण कृता चिकित्सा येन सः स्वयङ्कु-
 ती स्वयं चिकित्साकुशलः। लघुहस्तः सिद्धि मद्भस्तः।
 [अथ निषिद्धो वैद्यः।] कुचैलः कर्कशस्तब्धो ग्रामीणः
 खयमागनः ॥ पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरि स
 मा यदि ॥ ५२ ॥ कर्कशः अप्रियवादी स्तब्धः सा-
 भिमानः। ग्रामीणः व्यवहार चतुरः।

भा० (क) देखी है दूसरे की की हुई चिकित्सा जिसने। आप चिकित्सा में

कुशल हाथकी सिद्धिवाला ॥ अनन्तर निषिद्धवैद्य को कहते हैं ॥
 मैले कपड़े पहननेवाला । अप्रिय भाषण करनेवाला । मूर्ख गंवार और
 विन बुलाये आनेवाला । ये पांच प्रकारके वैद्य धन्वन्तरि के समान दुये भी
 नहीं पूजन किये जाते हैं ॥ ५२ ॥ (क) अप्रियवादी । अभिमानी । व्यव
 हार में मूढ़ ॥

[अथ वैद्यस्य कर्माह ।]

व्याधेस्तत्त्व परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वै
 द्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५३ ॥

[अस्यायमर्थः] (क) व्याधेः सम्यक् परिचयो व्यथा शान्ति
 करणं वैद्यस्य कर्म न तु वैद्य आयुषः प्रभुरित्यर्थः । अप
 रे त्वेवं व्याचक्षते । व्याधेस्तत्त्वतः परिचयो वेदनायाः शान्ति
 करणञ्च । एतदेव वैद्यस्य वैद्यत्वं किन्तु वैद्य आयुषः
 प्रभुः आगन्तु मृत्युशान्तिहरणान् ।

तथा च सुश्रुते धन्वन्तरिः ॥

भा० अनन्तरवैद्यके कर्म कहते हैं । रोगके तत्त्वका ज्ञान । और वेद
 नाका अवरोध । ये वैद्यका वैद्यपना है वैद्य आयुका स्वामी नहीं है ॥ ५३ ॥
 (क) इसका यह अर्थ है । रोगका ज्ञान । पीड़ाकी शान्ति । ये वैद्यका कर्म
 है न कि वैद्य आयुका प्रभु है ॥ दूसरे इस प्रकार व्याख्या करते हैं ॥
 व्याधिका तत्त्वसे परिचय और वेदनाकी शान्ति करनी भी । ये ही वैद्यका
 वैद्यत्व नहीं है किन्तु वैद्य आयुका स्वामी है । क्यों कि आगन्तुक शान्ति
 मृत्यु के हरण करने से । इस प्रकार सुश्रुतमें धन्वन्तरि ने कहा है ॥

एकोत्तरं मृत्युशान्ति मथर्वाणः प्रचक्षते । तत्रैकः

कालसंज्ञः स्यात् शेषास्त्वागन्तवः स्मृतः ॥ ५४ ॥

[अयमर्थः] अधर्वाणः अथर्था तत्त्वज्ञत्वेनाथर्व नुत्याः ।

मृत्युमेकोत्तरं शतं प्रवदन्ते । तत्रैको मृत्युः कालसंयुक्तः ।
 । काल आयुषोऽन्ते शरीरिणामवश्यं संहर्ता । सर्वैरु-
 पायैर्निवारयितु मशक्यः । स ब्रह्मादीनां युषोऽन्ते सं-
 हरति । यत आह लिङ्गपुराणे । कार्तिकेयं प्रति महा-
 देवः । (ख) ममायुर्ग्रसते कालः कुनः पुत्र । रसा-
 यनमिति । तेन कालेन संयुक्ता । संहारय नियुक्तः
 सोऽवश्यं भावी । शेषाः शतं मृत्यवः आगन्तवः ।
 आगन्तुरूपहेतु जन्मानः कार्यकारणयो रभेदोपचारा-
 त् । आगन्तवो हेतवो यथा ॥

भा० एक से एक (१०१) मृत्यु अथर्ववेदके जाननेवालोंने कहे हैं ।
 । उसमें एक की काल संज्ञा है वाकी आगन्तुक कहे गये हैं ॥ ५४ ॥
 (क) इसका यह अर्थ है । अथर्ववेदके जानने से अथर्व के समा-
 न । मृत्यु एक से एक कहे हैं । उसमें एक मृत्यु काल करके युक्त ।
 है । काल आयुके अन्तमें मनुष्यों का अवश्य संहार करता है । अर्थात्
 सब उपायोंसे दूर करने की । अथर्व । वह ब्रह्मादिकों की आयुके
 अन्तमें संहार करता है । जैसे कि लिङ्गपुराण में कार्तिक स्वामी से
 महादेव ने कहा है ॥ (ख) हे पुत्र मेरी आयु की काल ग्रसना है ।
 तब रसायन कहा ॥ उस काल से संयुक्त । संहारके अर्थ नियुक्त
 वह अवश्य हेतुवाला है । वाकी १०० मृत्यु आगन्तुक हैं । आगन्तु-
 र्पकारण जन्मवाले । कार्य और कारण के अभेदोपचार से । आग-
 न्तुक हेतु जैसे ॥

विषभक्षणा मजीरीणांऽत्यन्त भोजनञ्च दुर्देशजलपा-
 नम् । तथाऽतिबलवैरि व्याघ्र वनमहिष मत्तमातंगा

दि भिर्युद्धम् ॥ दन्द्शूकेन क्रीडनमत्युच्चवृक्षाग्रारे
हरणम् बाहुभ्याम् । महान्तरङ्गिणीतरणामेकाकिनो रा-
त्रौ दुर्गमार्गे गमनम् ॥ ५६ ॥ इत्यादि । आगन्तु हेतुजा
मृत्यवो दुर्निमित्ता भाविभावनावलवत्त्वादायुषि सत्यपि
मारयन्ति । यथा मस्त्रिका तैलवर्तिवह्निषु विद्यमानेषु
वायुना दीपं नाशयति । तथा च ।

तथा सत्यपि तैलादौ दीपं निर्वापयेन्मरुत् ॥ एव
मायुष्यहीनेऽपि हिंसन्त्यागन्तुमृत्यवः ॥ ५७ ॥

भा० विभक्षण अजीर्ण बहुतभोजन दुष्टदेशका जलपान । उसी प्रकार बहुत
बलवाले वैरी व्याघ्र जंगली मेंढा और मल्लहाथी इनके साथ युद्ध ॥ ५५ ॥
दो नोकदार पदार्थों के खेलना और बहुत ऊँचे वृक्षकी चोटी पर चढ़ना
और हाथों से । बड़ी तरंगवाली नदीमें तैरना । भकेला रातमें अथवा किले
में और मार्ग में जाना ॥ ५६ ॥ इत्यादि । आगन्तु हेतु से उत्पन्न हुए दुर्निमित्त
भावी भावनाके चलसे आयुके रहने पर भी मार डालने हैं ॥ जैसे दीवेमें ते
सबत्ती और आग रहने परभी वायुसे दीप नाश होता है । उस प्रकार कहा है
। उस प्रकार होने पर भी तैल लेकर आदिमें दीवेको वायु बुझावता है ।
इसी प्रकार आयुके हीन नहोने परभी आगन्तुक मृत्यु नाश करते हैं ॥ ५७ ॥

(क) किन्तु आगन्तु निमित्तानि निवारयितुञ्च शक्यन्ते ।

यत आह सुश्रुते धन्वन्नरिः ।

दोषागन्तु निमित्तेभ्यो रसमन्त्र विशारदौ ॥ रक्षेतां

नृपतिं नित्यं यत्नाद्विद्य पुरोहितौ ॥ ५८ ॥

(ख) वैद्यमन्त्रिणौ नृपतिं नित्यं यत्नाद्वक्षेताम् । कुतः

दोषागन्तु निमित्तेभ्यः दोषा निषिद्धाहार विहार भूयिता

वानपित्तकफ रोगोत्पादकाः । आगन्तव- निषिद्धा विहा-
रा अतिबलवैरि विग्रहादयः । ते निमित्तानि येषान्तेभ्यः
शानमृत्युभ्यः । ननु वैद्य पुरोहितौ कथं शानं मृत्युं निवारयि-
तुं शक्नोत तद्वाह । (ख) यतस्तौ रसमन्त्र विंशारदौ प्रथ-
मं वैद्ये दिनचर्या रात्रिचर्यार्तुचर्योक्ताहार विहारभ्यां
वानपित्तकफ धातुमलान् समानेव रक्षति ॥

भा० (क) किन्तु आगन्तु निमित्त रोगों को दूर कर सके हैं । जैसा सुश्रुत में
धन्वन्तर ने कहा है । रस और मंत्र में नियुक्त ऐसे वैद्य और पुरोहित दोष
और आगन्तु निमित्तों से सदा राजा की रक्षा करें ॥ ५८ ॥ (ख) वैद्य और
मंत्रशास्त्री राजा को नित्य यत्न से बचावें । कैसे । दोष अर्थात् निषिद्ध आ-
हार विहार से दूषित वानपित्तकफ इन रोगों का उत्पन्न करने वाला । आ-
गन्तुक अर्थात् निषिद्ध विहार अतिबलवान्ते शत्रु के साथ लड़ाई । वे हैं
निमित्त जिनके उन शानमृत्यु आदियों से । (ननु) शंका । वैद्य पुरोहित
क्योंकर शानमृत्यु को निवारण कर सकें हैं । उसको कहने हैं । (ख) क्यों
कि वे दोनों रसमन्त्र में चतुर होते हैं । प्रथम वैद्य दिनचर्या रात्रिचर्या औ-
र ऋतुचर्या इनमें कहे हुये आहार विहारों से समान वानपित्तकफ औ-
र धातुमल इनको ही रक्षा करना है ॥

ततो रसज्ञत्वा द्रुसैर्मृत्युं जयादिभिर्निषिद्धाहारं विहारं
दूषितदोषजनिगान् विकारान् मृत्युहेतून् पहरति ।
मन्त्री च सद्बुद्धिदानेन मृत्युहेतुभ्यो निषिद्धविहारभ्यो
नृपतिं निवारयति । तत आगन्तुमृत्यवो निवारयितुं
शक्या नत्ववश्यम्भा विनः । [अथायुर्विचारः ।]

भिषगादौ परीक्षेन रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः ॥ ततः

आयुषि वीस्तीर्णो चिकित्सा सफला भवेत् ॥ ५९ ॥

भा० और उसके जाननेके कारण मृत्यु को जय करनेवाले रसों से निषिद्ध आहार विहारों से दूषित दोषों से उत्पन्नहुवे मृत्युके कारण विकारों को दूर करनहीं। तथा मंत्री भी अच्छी बुद्धि देनेके द्वारा मृत्युके हेतु निषिद्ध विहारों से राजाको दूरनहीं। उस कारण आगन्तु मृत्युकों को दूर करनेको समर्थ हैं। और न कि अवश्य होनेवालोंको ॥ अनन्तर आयुका विचार कहते हैं ॥ सैद्य पहले यत्नके साथ रोगीकी आयु परीक्षा करे ॥ क्यों कि आयु बहुत होनेमें चिकित्सा सफल होती है ॥ ५६ ॥

[तत्र दीर्घायुषो लक्षणानि।]

सौम्या दृष्टि र्भवेद् यस्य श्रोत्रं चक्कन्नथैव च ॥ स्वा
दुङ्गन्धं विज्ञानाति स साध्यो नात्र संशयः ॥ ६० ॥

पाणिपादौ च यस्यौष्णो दाहः स्वल्पतरा भवत ॥ जि

ह्वा तु कोमला यस्य स रोगी न विनश्यति ॥ ६१ ॥

स्विदहीनो ज्वरो यस्य श्वासो नामिक या चरेत् ॥ क

ण्ठश्च कफहीनः स्यात् स रोगी जीवति ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

यस्य निद्रा सुखेन स्यात् प्रारीरं धृति मद्भवेत् ॥ इ-

न्द्रियाणि प्रसन्नानि स रोगी नैव नश्यति ॥ ६३ ॥

भा० उसमें दीर्घायु का लक्षण कहते हैं ॥ जिसकी दृष्टि और कर्ण तथा मुख सौम्य होते हैं ॥ और मधुर तथा गन्ध को जो जानता है वो रोगी साध्य है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६० ॥ जिसके हाथ पैर गरम और दाह थोड़ा होता है। और जिसकी जिह्वा कोमल होती है वह रोगी नहीं मरता ॥ ६१ ॥ जिसको बिना पसीने ज्वर होता है। और नाकसे सांस चलता है। तथा कंठ कफसे हीन हो वह रोगी अवश्य ही जीता है ॥ ६२ ॥ जिसको नींद सुखसे आती है और प्रारीर कानिवाला है। और जिसकी इन्द्रिये प्रसन्न हैं वह रोगी मरना ही नहीं ॥ ६३ ॥

[अथ स्वल्पायुषो लक्षणानि ।]

शरीर शीलयो यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत् ॥ तद
रिष्टं समासेन व्यासतश्च निबोध मे ॥ ६४ ॥ शृणो
ति विविधान् शब्दान् विपरीतान् शृणोति च । यो
न शृणोति चाकस्मात्तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ६५ ॥
'यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णञ्च शीतवत् ॥
उष्णगात्रोऽतिमात्रं यो भृशं शीतेन कम्पते ॥ ६६ ॥
(तमपि गतायुषं वदन्तीत्यन्वयः)

भा० अनन्तर अल्पायुका लक्षण कहने हैं ॥ जिसका शरीर और स्वभाव बदल जाता है संक्षेपसे वही अरिष्ट है विस्तार पूर्वक कहना है ॥ ६४ ॥ जो नाना प्रकार के शब्दों को सुनता है और जो विपरीत सुनता है तथा जो अकस्मात् नहीं सुनता उसको गतायु कहने हैं ॥ ६५ ॥ जो शीत को गरम के सदृश ग्रहण करता है और जो उष्ण को शीत के सदृश ग्रहण करता है और जिसका शरीर बड़न गरम है अथवा बड़न शीत से कांपता है उसको भी गतायु कहने हैं ॥ ६६ ॥

प्रहारं नैव जानाति यो गच्छेदन्यथापि वा ॥ पांशुनै
वाव कीर्णानि यश्च गात्रानि मन्यते ॥ ६७ ॥ वर्ण
न् यथा वा राज्यो वा यस्य गात्रे भवन्ति हि ॥ स्नाता
बुलिप्तं यज्वापि भजन्ते नीलमालिकाः ॥ ६८ ॥ वि
परीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् ॥ यो वा
रसान्नसेवेन तं गतासुगन्धवदने ॥ ६९ ॥ सुगन्धं
वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धञ्च सुगन्धवत् ॥ गृह्णाति यो
ऽन्यथा गन्धं शान्ते दीपे निरामयः ॥ ७० ॥

भा० जिसको चोट नहीं मालूम होती या उलटा चलना है । और जिसका शरीर धूल लगी हुआ है उसको गतायु कहते हैं ॥ ६७ ॥ जिसके शरीर में वरुण और का और हो जाता है । अथवा लकीरें पड़ जाती हैं ॥ और जिस स्नान करके लेप किये झूठे पर नीले भ्रमर बैठते हैं ॥ ६८ ॥ और जो उपयोग किये झूठे रसों को विपरीत अथवा जो रसों को न सेवन करे उसको गतायु कहते हैं ॥ ६९ ॥ जो निरोगी सुगंध को दुर्गंध माने और दुर्गंध को सुगंध ॥ इस प्रकार जो अन्यथा गन्ध को ग्रहण करना है और दीबे के शान्त होने में देखता है ॥ ७० ॥

रात्रौ सूर्यं ज्वलन्तं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् ॥ ७१ ॥

ज्योतींषि यश्चापि ज्वलिता नीव पश्यति ॥ ७२ ॥

(क) दिवा वा चन्द्रवर्चसम् । सूर्यमित्यन्वयः । ज्योतींषि

नक्षत्राणि । विद्युत्वन्तोऽसितल्लेघान् गगने निर्धने घना

न ॥ विमानयान प्रासादैर्यश्च सङ्कुलमम्बरम् ॥ ७३ ॥

यश्चानिलं मूर्तिमन्तमन्तरीक्षेऽवलोकते ॥ धूमनी

हार वासो भिरावृतामिव मेदनीम् ॥ ७४ ॥ प्रदीप्तमि

व यो लोकं यो वास्तु नमिवाम्भसा ॥ भूमिमष्टाय

राकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ ७५ ॥ यो न पश्य

ति ऋक्षाणि यश्च देवी मरुन्धतीम् ॥ ध्रुवमाका

शगङ्गाञ्च तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ७६ ॥

भा० या रात्रि में प्रकाशमान सूर्य अथवा दिन में प्रकाशित चन्द्र को और दिन में आग लगने के समान नक्षत्रों की देखना है उसको गतायु कहते हैं ॥ ७१ ॥ (क) दिन में चन्द्रमा प्रकाश । रात्रि में सूर्य इस प्रकार अन्वय है । (ज्योतींषि) अर्थात् नक्षत्र । साफ आस्मान में विजलीवाले का लेमघों की । और विमान अस्त्रचारी इनसे घिरे झूठे आकाश को जो

देखता है ॥ ७२ ॥ और जो आकाशमें मूर्तिवाले वायुको देखता है । तथा धूम
और कुहेरा इन करके वस्त्रोंसे वेष्टित हृद् के मानिन्द देखता है उसको गतायु
कहते हैं ॥ ७३ ॥ जो लोकोंको जलने झुके के समान देखता है । अथवा पानी
से डूबने के समान देखता है । या लकड़ों से अष्टकोण हृद् के मानिन्द देख
ता है उसको गतायु कहते हैं ॥ ७४ ॥ जो नक्षत्रोंकी नहीं देखता और अरु
न्धनी देवीको भी नहीं देखता । तथा ध्रुव और आकाश गङ्गाको भी नहीं
देखता उसको गतायु कहते हैं ॥ ७५ ॥

आदर्शोऽम्बुनि घर्मे वा छायां यश्च न पश्यति ॥ प
श्यत्येकाङ्ग हीनां वा विहतां वान्य सन्वजाम् ॥ ७६ ॥
श्वकाक कङ्क गृध्राणां प्रेतानां यन्तरक्षसाम् ॥ आतु
रो लभते मृत्युं स्वस्था व्याधि मवाप्नुयान् ॥ ७७ ॥
ह्रीं ध्रियौ न पश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृति प्रभा (प्रतिभा)
। अकस्माच्च भजन्ते यं स गतासु रसं शयम् ॥ ७८ ॥
यस्याधरोष्ठौ पतितौ क्षिप्तश्चोर्ध्वं तथोत्तरः ॥ उभौ
वाजाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ ७९ ॥
आरक्ता दशना यस्य एयावा वास्युः पतन्ति वा । ख
ञ्जन प्रतिभा वापि तं गतायुषमादिशेत् ॥ ८० ॥

भा० जो पीपे। में जलमें धूपमें छायाको नहीं देखता ॥ और जो देख
ता है तो एक अंग से हीन विह्वल और जीवोंकी सी ॥ ७६ ॥ कुत्ता की
वा गिरा और प्रेतोंकी तथा यक्षराक्षस । इनकी छाया जो देखता है वो री
गी मृत्युको प्राप्त होता है और स्वस्थ रोगी हो जाना है ॥ ७७ ॥ अकस्मात्
जिसकी लज्जा और कान्ति नष्ट हो जाती है । तथा तेज ओज स्मृति प्रभा
ये जिसके अकस्मात् हो आते हैं । उसकी अवश्य गतायु कहना चाहिये
॥ ७८ ॥ जिसके नीचे ऊपर के होठ लटक पड़ते हैं तथा उत्तंडाल में से

ऊपर होजाता है ॥ और दोनों जामन के समान काले पड़ जाते हैं उसका जीवनादुर्लभ है ॥ ७६ ॥ जिसके दाँम आस पास लाल हों अथवा काले हों या गिरपड़ें अथवा खंजन के समान कान्ति हो । उसको गतायु कहते हैं ॥ ८० ॥

कृष्णा तथा बुलिष्ठा च जिह्वा शूना च यस्य

वै ॥ कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून्

॥ ८१ ॥ कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य ना

स्तिका ॥ अवस्फूर्जति भग्ना वा स न जीवति मान

वः ॥ ८२ ॥ (स्फूर्जति एवासवेगेनेच्चैः शब्दं करो

नीत्यर्थः ।) सङ्क्षिप्ते विषमे स्तब्धे रुद्धे सास्त्रे च लो-

चने ॥ स्यातां परित्युते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवंश ॥ ८३ ॥

भा० काली तथा लिसीझड़ या कांटे से युक्त जिसकी जीभ होती है ॥ अथ

वा कर्कशा होती है बौह शीघ्र प्राणों को त्याग करता है ॥ ८१ ॥ देढ़ीफदी

सी या शुष्क या भग्नझड़ जिसकी नाक धोंकनी के मानिन्द धोंकनी है ।

बोमनुष्य नहीं जीता ॥ ८२ ॥ (श्वास के वेग से उच्च शब्द करती है ।)

भीतर की धसीझड़ या छोटी बड़ी अथवा पथरार्द्ध झड़ तरकी रक्त के स

हिम बहनीझड़ इस प्रकार की जिसकी आँखें होती हैं बोमनुष्य निश्चय

गतायु है ॥ ८३ ॥

केशाः सीमन्तिनो यस्य सङ्क्षिप्ते विनते भ्रुवौ ॥ लु

ठन्ति चाक्षिपद्माणि सोऽचिराद्याति मृत्यवे ॥ ८४ ॥

(लुठन्ति पतन्ति ।) नाहरत्यन्नमास्यस्थं नवा

रयति यः शिरः ॥ स काय दृष्टि मूढात्मा सद्यः प्रा

णम् विमुञ्चति ॥ ८५ ॥ उत्थाप्य मानो बहुशः सं

भोहं कोऽपि गच्छति ॥ बलवान् दुर्बलो वापि तं —

भिषगादिशेत् ॥ ८६ ॥ निद्रा निरन्तरं यस्य यो जाग
 र्ति च सर्वदा ॥ मुखे द्वा वक्रु कामश्च प्रत्याख्येयः
 स जानता ॥ ८७ ॥ उत्तरोष्ठञ्च यो लिह्यादुत्तरांश्च
 करोति यः ॥ प्रेतैर्वा भाषते सायं प्रेतरूपं तमादिशे
 त् ॥ ८८ ॥ (उत्तरान् हस्त पादादि विक्षेपान् ।)
 रेभ्यश्च रोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते ॥ पुरुष
 स्या विषार्तस्य स सद्यो जीवितं त्यजेत् ॥ ८९ ॥ स
 म्यक् विकित्स्यमानस्य विकारो योऽभिवर्द्धते ॥ प्र
 क्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद् गतायुषः ॥ ९० ॥

भा० जिसके सिरके बाल उ डगये हों या छोटी जुकी भवे जिसकी हो
 जावे ॥ और आंख की पलकें गिरपड़े वोह छोड़े ही काल में मरजाता है ॥
 ८४ ॥ जिसके मुखमें का अन्न नीचे नहीं उतरता और जिसका सिर नीचे
 गिर पड़ता है ॥ एकाम्र दृष्टि किया हुआ स्वस्थ इस प्रकार कारोगी नत्काल
 लक्षणोंकी त्याग करता है ॥ ८५ ॥ उठने से जो बड़न से मोहको प्राप्त हो
 ता है ॥ बलवान हो सुर्वल हो उसको वैद्य असाध्य कह देवे ॥ ८६ ॥
 जो निरन्तर सोता है अथवा सर्वदा जागता है ॥ तथा बोलने की इच्छा कर
 ना हुआ मोहको प्राप्त होता है ॥ वो बुद्धिमान वैद्यके द्वारा जवाब देने योग्य है
 ॥ ८७ ॥ जो रोगी नीचे ऊपरके होठों को चाटे तथा जो हाथ पैरोंको पीटता है
 ॥ अथवा सायंकालमें प्रेतोंके साथ भाषण करता है उसके प्रेतरूप कह
 ते हैं ॥ ८८ ॥ विषसे पीड़ित न हो ऐसे जिसपुरुषके मूं आंख कान इत्यादि
 छिद्रोंमेंसे अथवा रोमकूप से रक्त निकलता है ॥ वोह नत्काल मरता है
 ॥ ८९ ॥ अच्छी तरह इलाज किये कामी जो रोग बढ़ता है । और कमजोर त
 था दुबले का जो रोग बढ़ता है वोह गतायु कालक्षण है ॥ ९० ॥

भूता प्रेताः पिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ॥

मरणाभिसुरवं जन्तुमुपसृत्य च नित्यशः ॥ तानि धे
 यजवीर्यशोणि प्रतीच्छन्ति जिघांसया ॥ ६१ ॥ तस्मा
 त्मोघाः क्रियाः सर्वा भवन्त्येव गतायुषः ॥

(क) नन्वायुषि सति चिकित्सायाः साफल्यमुक्तम् । आ
 युष्येदस्ति तदा तदेव जीवनहेतुः ॥ किं चिकित्सावि
 धानं तत्रोच्यते ॥ (ख) आयुषिसति चिकित्सायाः फ
 लं वेदनानिग्रहः । (उक्तञ्च)

आयुष्मान् पुरुषो जीवेत् सव्यथा भेषजं विना ॥
 धेयजेन पुनर्जीवेत् स एव हि निरामयः ॥ ६२ ॥

भा० भूत प्रेत पिशाच और नाना प्रकारके राक्षस । प्रतिदिन मरण के सम्म
 खड़े वे रोगी के पास जाकर उन औषधियों के बीर्यों को नष्ट करने हैं ॥ ६१ ॥
 उस कारण गतायु की सब क्रिया निष्फल होती हैं ॥ (क) (ननु शंका)
 आयु के रहने पर चिकित्सा की सफलता कहीं । आयु होने होती है तब
 वोही जीवन का हेतु है । क्या चिकित्सा का विधान उसमें कहा है ॥
 (ख) आयु के होने पर चिकित्सा का फल वेदना का निग्रह है । कहा है ।
 विना औषध के आयु वाला पुरुष व्यथा के सहित जीता है ॥ और जो औ
 षध करके फिर से जीवे वोही निरोगी है ॥ ६२ ॥

(क) किञ्च । आयुषि सत्यापि रोगी चिकित्सां विना उत्था
 तुं न शक्नोति । यत आह चरकः ।

सति चायुषि नोपायं विनोत्थातुं क्षमो रजो ॥ दर्शि
 तश्चात्र दृष्टान्तः पङ्क्तुं लग्ने यथा गजः ॥ ६३ ॥

किञ्च । चिकित्सां विना युष्मानप्यवसीदति ।

भा० (क) आयु के होनेपर भी रोगी चिकित्सा के बिना अच्छा नहीं हो सकता। जैसे कि कहा है चरक ने। रोगी आयु होनेपर भी चिकित्सा के बिना ठ ठ नहीं सकता ॥ इसमें दृष्टान्त दिखाया है। कि जैसे दल में फसा गज ॥ ६३॥ चिकित्सा के बिना आयु वाला भी पीड़ित होता है ॥

यत आह सएव।

सति चायुषि नष्टः स्या दामयैश्चा चिकित्सितः ॥

यथा सत्यपि तैलादौ दीपो निर्व्याति वात्यया ॥ ६४ ॥

अत एवोक्तम् । साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्या

गच्छन्त्य साध्यताम् ॥ घ्नन्ति प्राणान साध्यास्तु

नराणाम क्रियावतामिति ॥ ६५ ॥ चिकित्सा

तु अनिश्चितायुषोऽपि कर्त्तव्या । यत आह ।

भा० जैसे कि कहा है वोही । आयु के रहनेपर भी चिकित्सा न किया हुआ पुरुष रोगों से मर जाता है ॥ जैसे तैल के रहनेपर भी आँधी से दी वायुल हो जाना है ॥ ६४ ॥ इसी वास्ते कहा है ॥ साध्य रोग याप्य होते हैं । और याप्य असाध्य हो जाते हैं ॥ वे इलाज वाले मनुष्यों को असाध्य रोग नाश करते हैं ॥ ६५ ॥ इलाज तौ अनिश्चित आयु वाले की भी करनी चाहिये । जैसे कि कहा है ।

तावत्प्रतिक्रिया कार्या यावच्छसिति मानवः ॥

कदाचित् दैवयोगेन दृष्टाऽरिष्टोऽपि जीवति ॥ ६६ ॥

(क) इति तु यस्या साध्यत्वं सन्दिग्धं तं प्रत्युक्तम् ॥

येषु त्वसाध्यता प्राखेरणानु भवेन विनिश्चिताः ते पु नर्त्त चिकित्सा । यत उक्तम् ।

सद्वैद्यास्तेन ये साध्या नारमन्ते चिकित्सितु मिति

। अथ द्रव्यम् । सर्वे द्रव्य मपे क्षन्ते रोगी प्रभृतयो यतः ॥

विनाचितं न भैषज्यं चिकित्साङ्गं नतो धनम् ॥ ६७ ॥

अथ परिचारकस्य लक्षणम् ।

स्निग्धोऽनुगुप्सु बलवान् युक्तो व्याधिरक्षणे ॥ वैद्य

वाक्य कृदशान्तो युज्यते परिचारकः ॥ ६८ ॥

भा० तब तक चिकित्सा करनी चाहिये जब तक मनुष्य श्वास लेता है ।
क्यों कि कदाचित् हृदययोगसे मरण बिन्दु वाला भी रोगी जीवता है ॥ ६६ ॥

(क) यह तो जिसकी असाध्यता सन्देह युक्त है उसके प्रति कहिए ॥ जिनमें
असाध्यता शास्त्र सेवा अनुभवसे निश्चय की गई वे फिरसे चिकित्सा कर
ने के योग्य नहीं हैं । जैसे कि कहा है ॥ वे सदैव नहीं हैं जो साध्य की चिकि-
त्सा शुरू नहीं करने ॥ अनन्तर द्रव्य कहने हैं ॥ रोगी आदि सब द्रव्य चाहते
हैं । क्योंकि बिना द्रव्य चिकित्साका अंग औषध नहीं होता इसवासे धन
चाहिये ॥ ६७ ॥ अनन्तर भैषज्य कालक्षण कहने हैं ॥ प्रीतिवाला अ नि-
न्दक बलवान् रोगी की रक्षा करने में युक्त । वैद्यके कहने के अनुसार बल-
वान् । मेहनती इस प्रकार का परिचारक होना चाहिये ॥ ६८ ॥

(क) स्निग्धः प्रीतः अनुगुप्सुः अनिन्दकः । अथ भैषज्यस्य ल-
क्षणम् ॥ वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्रव्यं प्रोक्तमौषधम् ॥

तद्यादृशमवश्यं स्याद्द्वौ गघन्तादृशं भवे ॥ ६९ ॥

[तत्रौषधग्रहणपरिभाषा ।]

प्रशस्तदेशे सज्ज्ञातं प्रशस्तेऽहनि चोद्धतम् ॥ अल्प

मात्रं बहुगुरां गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ७० ॥

भा० अनन्तर औषधका लक्षण कहने हैं । वैद्य जिसके द्वारा व्याधिको
दूर करता है उसवस्तुको औषध कहने हैं । वोह जिस प्रकारकी रोग नाशक
अवश्य होनी चाहिये वैसे को कहने हैं ॥ ६९ ॥ उसमें औषध लेने के नि-
यम को कहने हैं । अच्छे देशमें उत्पन्न हुई अच्छे दिन उखड़ी । थोड़ी मा-

त्रा करके युक्त बद्धतगुण वाली गन्धवर्ण रसकरके युक्त ॥ १०० ॥

दोषघ्नमग्लानि करमधिकं न विकारि यत् ॥ सभी

द्व्य काले दत्तञ्च भेषजं स्यादुष्णवहम् ॥ १०१ ॥

आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिम गिरिः स्मृतः ॥

अतस्तदौषधानि स्युः स्वरूपाणि हेतुभिः ॥ १०२ ॥

(क) आग्नेयाः अधिकाग्न्यांशः सौम्यः अधिकसौमां

शः ॥ औषधयोः सौवैषधानि । अत्र स्यादर्थे अण् ।

भा० दोषनाशक ग्लानि न करने वाली न बद्धत विकार को करने वाली ।

देखकर समय पर दीर्घदुर्लभ प्रकार की औषधी गुणा वह है ॥ १०१ ॥

विन्ध्याचलादिक पर्वत आग्नेय अर्थात् अधिक उष्ण गुण हैं ॥ और हि

मालय पर्वत सौम्य अर्थात् अधिक शीत गुण कहा गया है ॥ इस वास्ते उ

न में के औषध कारण के सहस्र होते हैं ॥ १०२ ॥

(अवरूपाणि सदृशानि ।)

अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूप वनेषु च ॥ गृहीया

त्तानि सुमना शुचिः प्रातः सुवासरे ॥ १०३ ॥ आदि

त्य सम्मुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ॥ साधारण

धराद्रव्यं गृहीयादुत्तराश्रितम् ॥ १०४ ॥

(कं) साधारण धराद्रव्यं । सर्वभूमि भवन्द्रव्यम् । उत्तरा

श्रितं स्वस्मात् उत्तरदिग्भवम् ॥

चल्मीक कुत्सितानूप श्मशानोष रमार्गजाः ॥

जन्तुवन्हि हिमव्याप्ता नौपध्यः कार्यसाधिकाः ॥ १०५ ॥

भा० औरभी बाग जंगलेंमें उत्पन्न होती हैं । यवित्र और स्वस्थ चित्त होकर अच्छे दिन प्रातःकालमें उनको ग्रहण करे ॥ १०३ ॥ सूर्यके सन्मुख मोन धारण करके हृदयमें शिवका ध्यान कर और नमस्कार करके उत्तर दिशाकी साधारण भूमिसे औषधका ग्रहण करे ॥ १०४ ॥

(क) सब भूमिमें उत्पन्न हुवे द्रव्योंको । जपने से उत्तर की तरफ जड़ वृक्षोंको । कुत्सित वृक्षन पानीकी जगह प्रमथान कसर और सोमें होनी वाली । नया जीव जन्तु आग पाला इनसे व्याप्त औषधिकाव्य साधक नहीं होती ॥ १०५ ॥

शरदाखिल काव्यार्थ ग्राह्यं सरसमौषधम् ॥ वि

रेक वमनार्थन्तु वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ १०६ ॥

(क) वसन्तान्ते वसन्त मध्ये समाहरेत् संगृहीयान् ।

अतिस्थूल जटायास्त्युःस्तासां ग्राह्या त्वचो ध्रुवम् ।

गृहीयान् सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् १०७

अन्यच्च । महान्नि येषां मूलानि काष्ठगर्भाणि सर्व्वतः ॥

तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि सर्व्वशः ॥ १०८ ॥

न्यग्रोधादे त्वचो ग्राह्या सारः स्याद्बीजकादितः ॥

तालीसादिष्व पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः ॥ १०९ ॥

भा० शरदकालमें संपूर्णकार्य के अर्थ रस करके युक्त औषध लेनी चाहिये । वसन्तमें वमन और विरेचन के अर्थ लावे ॥ १०६ ॥ जो वृक्ष मोठी जटावाली औषधी हैं उनकी छाल लेनी चाहिये ॥ और छोटे मूलवाली सबकी जड़ बुद्धिमान लेवे ॥ १०७ ॥ औरभी । जिनकी बड़ी जड़ चारों तरफ काष्ठ से भरी हैं ॥ उनकी छाल और छोटी जड़वालोंकी जड़ लेनी चाहिये ॥ १०८ ॥ अगर दिहनोंकी त्वचा लेनी चाहिये और विजयसारा दिकोंका सार लेना चाहिये । तालीसादिकों के पत्र और त्रिफलादिकों के फल लेने चाहिये ॥ १०९ ॥

क्वचिन्मूलं क्वचित्कन्दः क्वचित्पत्रं क्वचित्फलम् ॥

क्वचित्पुष्पं क्वचित्सर्व्वं क्वचित्सारः क्वचित्त्वचः ॥

॥ ११० ॥ चित्रकं सूररां निम्बो वासाच त्रिफला क्रमान् ॥

धानकी करटकारी च खदिरः क्षीरपादपः ॥ १११ ॥

क्वचिन्निम्बस्य गृह्णीयान् पत्राभावे त्वचामपि ॥

बालंफलन्तु विल्वस्य पक्कमारग्वधस्य च ॥ ११२ ॥

भा० कहींपर जड़ कहींकन्द कहींपत्ते कहींफल ॥ कहींपुष्प कहींसब कहींसार और कहींछाल कहीहै ॥ ११० ॥ क्रमसे चित्रकामूलसूररा का कन्द निम्बके पत्ते और वांसेके भी पत्ते त्रिफलाके फल धायका फूल कटेलीका सब अंग खदिर का सार और वटादिकों की छाल लेनी चाहिये ॥ १११ ॥ कहींपर नीमके पत्तोंकी जगह छालभी लेवे ॥ बेलका कच्चा फल और अमलनास का पका फल लेवे ॥ ११२ ॥

अङ्गुःऽनुक्ते जटा ग्राह्या भगिऽनुक्ते ऽखिलं समम् ॥ पा

त्रैऽनुक्ते मृदः पात्रं कालेऽनुक्ते त्वह सुखम् ॥ ११३ ॥

नवान्येवहि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥ वि

ना विडङ्गः कृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाहिकैः ॥ ११४ ॥

(धान्यमन्त्र) पुराणन्तु प्रशस्तं स्यात्ताम्बूलङ्गज्जिक

नथा ॥ शुष्कं नवीनद्रव्यन्तु योज्यं सकलकर्मसु ॥ ११५ ॥

भा० जहाँपर औषधिका अंग न कहा हो तौ वहाँ जड़ लेनी चाहिये और भाग न कहा हो तौ सब समभाग लेवे ॥ पात्र न कहा हो तौ महीका पात्र लेवे और समय न कहा हो तौ प्रातःकाल लेना चाहिये ॥ ११३ ॥ सब कामों में नवीनही द्रव्य योजन करना चाहिये ॥ वायु विडङ्ग पीपल गुड धान मृत् पाहन इनको छोड़के बाकी सब नवीन होनी चाहियें ॥ ११४ ॥ ८ धान्य अर्थात् अन्न) पुराने पान और कांजी अच्छी होनी हैं ॥ सब कामोंमें सूकी और

नवीन औषध योजना करनी चाहिये ॥११५॥

आर्द्रन्तु द्विगुणं युज्या देष सर्वत्र निश्चयः ॥ गुड़

ची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च पानावरी ॥ ११६ ॥

अश्वगन्धा सहचरो शत पुष्पा प्रसारणी ॥ प्रयोक्त

व्याः सदैवार्द्रा द्विगुणं नैव कारयेत् ॥ ११७ ॥

(क) सहचरः कुरारकः कट्सरै आ इतिलोके ॥

वासानिम्ब पटेलकेतकचला कूष्माण्डकेदीवरी ।

वर्षाभूः कुटजाश्च कन्द सहिता सा पूति गन्धास्मृता ॥

॥ ११८ ॥ सेन्दीनाग वला कुरारक पुरोछत्राभृता सर्व

दा ॥ सार्द्रा एव तु तत् क्वचित् द्विगुणिता कार्थ्येषु योज्या

बुधैः ॥ ११९ ॥

भा० गीलीदवा दूनी देनी चाहिये यह सब जगह निश्चय है ॥ गिलोय कुरै
व्या वांसा पेठा सनावर असगन्ध कट्सरैया सोंफ गं प्रसारणी ॥ इनको
सदा गीलीही प्रयोग करनी चाहिये और दुगनी न करे ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ वांसा
नीम पटेल केवड़ा वरियारा पेठा सनावर । गहपूरना ॥ कुरैया कन्द सहित
वो गन्ध प्रसारणी कही है ॥ ११८ ॥ इन्द्रायन गुल शकरी पीले फूल की कट
सरैया गुल सोंफ गिलोय सदा ॥ इनको गीलीही योजना करे और पं
डित कहीं पर दुगनी भी योजना करे ॥ ११९ ॥

(क) सेन्दी इन्द्र वारुणी । वरी पानावरी । पूतिगन्धा ।

गन्ध प्रसारणी नागवला गुल शकरी ।

कुरारकः पीन पुष्प कट्सरै आ पुरोगुगुलः ॥

घृतं तैलञ्च पानीयं कषायं व्याज्जनादिकम् ॥

पक्वा शीती घृतं चोष्णं तत सर्वं स्याद्विषोपमम् ॥ १२० ॥

भा० घननैल जलकाढ़ा और दाल तरकारी इत्यादिकों को ॥ पकाके श्री
नहुवेको गिरसे गरम करेते। वोह सब विपके समान होता है ॥ १२० ॥

[अथ द्रव्याणां परीक्षा ।]

सूक्ष्मास्थिमांसला पथ्या सर्व्वकर्मणि पूजिता ॥

क्षिप्तान्भसि निमज्जेद्या भस्मातक्य सथोत्तमा ॥ १२१ ॥

वराह मूर्द्ध वत्कन्दो वाराही कन्द संज्ञकः ॥ शीवर्च

लन्तु काचाभं सैन्धवं स्फटिक प्रभम् ॥ १२२ ॥ सुव-

र्णं च्छदिकं ज्ञेयं स्वर्णं गालिकं सुत्तमम् ॥ इन्द्र गो

पप्रतीकाक्षं मनो ह्वा चैत्तमा मता ॥ १२३ ॥ घेष्टं

शिला जतुक्षेपं प्रक्षिप्तं न विशीर्यते ॥ तोय पूर्णं कां

स्थपाने प्रतानेन विवर्द्धते ॥ १२४ ॥ कर्पूरः स्तुवरः

स्निग्धः एला सूक्ष्म फलावरा ॥ श्वेतचन्दनं मन्य

न्तं सुगन्धिगुरु पूजितम् ॥ १२५ ॥

भा० अन्तर द्रव्यों की परीक्षा कहने हैं ॥ छोटी गुठलीवाली गूदेदार और

पानी में लालने से जो डूब जाती है इस प्रकार की हड़ सब कामों में अच्छी है

॥ उसी प्रकार का भिलावा भी अच्छा होता है ॥ १२१ ॥ सूवर के सिरके सह

प्राज्ञो कन्द होता है ॥ उसको वाराही कन्द कहने हैं । कांच के समान संचल

। और सैन्धव स्फटिक के समान होता है ॥ १२२ ॥ सोने की सी रंगत वाली को

अच्छी सोना माखी जाननी चाहिये । वीरवह्नी की सी रंगत वाली मैं सि

ल अच्छी होती है ॥ १२३ ॥ अच्छी शिलार्जिन उसको जानना चाहिये कि

जो फेका हुआ नहीं बिखरता । और पानी में डूबे कांसे के कटोरे में वे

ल सूत के समान जो बढ़ता है ॥ १२४ ॥ कसेला चिकना कर्पूर अच्छा हो

ता है । छोटे फलवाली इलायची अच्छी होती है । और स्वेतचन्दन बहुत

सुगन्ध करने के युक्त और भारी अच्छा होता है ॥ १२५ ॥

रक्तचन्दनमन्यन्तं लौहितं म्पवरं मनम् ॥ काक

तुण्डा निभः स्निग्धो गुरुः श्रेष्ठो गुरुर्मतः ॥ १२६ ॥
 सुगन्धि लघु रूक्षञ्च सुरदारु वरं मतम् ॥ सर
 लं स्निग्धमत्यर्थं सुगन्धि च गुणावहम् ॥ १२७ ॥
 अति पोता प्रशस्तातु ज्ञेया दारुनिशा बुधैः ॥ जा
 तीफलं गुरु स्निग्धं समं शुभ्रान्तरं वरम् ॥ १२८ ॥
 मृद्धोकासोत्तमा ज्ञेया यो स्वाद्वोस्तनसन्निभाः ॥
 करमर्द्ध फलाकारा मध्यमा सा प्रकीर्तिता ॥ १२९ ॥

(क) गोस्तनसन्निभाः मुनक्का इतिलोके । करमर्द्ध फला
 कारा । करोन्दीदारु इतिलोके ।

भा० लालचन्दन ब्रह्मन लाल अच्छा होता है ॥ और अगर कौन्दा
 ठी के समान रंगतवाला चिकना भारी अच्छा होता है ॥ १२६ ॥ सुगन्धयु
 क्त हलका रूखा देवदार अच्छा होता है । और दूसरी किसम का देवदार
 ब्रह्मन चिकना सुगन्धि गुणाकारक होता है ॥ १२७ ॥ ब्रह्मन पीली दार
 वरकी अच्छी होती है ॥ जायफल भारी चिकना सम भीतर मुफेद अ
 च्छा होता है ॥ १२८ ॥ जो मुनक्का गायके घनों की सी होनी है वो अच्छी
 है । करोन्दी के फल के आकार जो मुनक्का होती है वो मध्यम कही गई
 है ॥ १२९ ॥

खण्डन्तु विमलं श्रेष्ठं चन्द्रकान्त समप्रभम् ॥ ग
 व्याज्य सदृशं रुच्यं गन्धं मधु वरम्मतम् ॥ १३० ॥
 अथ स्वभावतो हितानि ।

शालीनां लोहितः शालिः यष्टिकेषु च यष्टिका ॥
 शूकधान्ये प्वपि यवो गोधूमः प्रवरो मतः ॥ १३१ ॥
 शिन्धिधान्ये वरो मुद्गो मसूरश्चादृको तथा ॥ रसे

धु मधुरः श्रेष्ठो लवणेषु च सैन्धवः ॥ १३२ ॥ दाडि
मा मलकन्द्राक्षा खर्जूरञ्च परुषकम् ॥ राजादनं
मातुलुङ्गं फलवर्गेषु प्रस्यते ॥ १३३ ॥ (क)

परुषकं फारसा इतिलोके ॥ राजदनं खिरणी इतिलो-
के । मातुलुङ्गं विजउरा इतिलोके ।

पत्रशाकेषु चास्तुकं जीवन्ती पोतिका वरा ॥ पटो
ल फलशाकेषु कन्दशाकेषु सूरणम् ॥ १३४ ॥

एणाः कुरङ्गे हरिणी जाङ्गलेषु प्रशस्यते ॥ पक्षि
णां तित्तिरिलोको दूरो मत्स्येषु रोहितः ॥ १३५ ॥

भा० चन्द्रकान्त के समान स्वच्छ खाँड अच्छी होती है ॥ गो घृत के
समान रुचिकर और सुगन्ध इस प्रकार कामधु श्रेष्ठ कहा है ॥ १३० ॥
अनन्तर स्वभाव से जो हित वस्तु हैं उनकी कहते हैं ॥ धानों में लाल धान
और साठी चावलों में साठ दिन में होने वाले श्रेष्ठ हैं ॥ और शूक धानों में
भी जो गेहूं श्रेष्ठ कहे हैं ॥ १३१ ॥ शिंवी धान्य अर्थात् सेम वाले धान्य में
मूंग मसूर अरहर श्रेष्ठ है ॥ रस में मधुर रस श्रेष्ठ है । और खरों में से
धा श्रेष्ठ है ॥ १३२ ॥ अनार आंवले दारु खजूर फालसे । खिरनी विजौरा
नींबू ये फलवर्ग में प्रशस्त हैं ॥ १३३ ॥ सागों में बथुवा जीवन्ती पोई अ-
च्छे हैं ॥ फल शाक में परवल और कन्द शाकों में ज़िमीकन्द । प्रश-
स्त है ॥ १३४ ॥ जंगल मांस में एणा कुरङ्ग हरिण प्रशस्त है । पक्षियों
में नीतर बटेर श्रेष्ठ है । और मछलियों में रोहू मछली अच्छी है ॥ १३५ ॥

हरिण स्नात्रवर्णः स्या देणः कृष्णतयामतः ॥ कु-

रङ्गस्ताम्र उद्दिष्टो हरिणः कृकिकी महान् ॥ १३६ ॥

जलेषु दिव्यं दुग्धेषु गव्यमाज्येषु गो भवम् ॥ तैले-

षु तिलजनेल मैदवेषु सिताहिता ॥ १३७ ॥

[अथ स्वभावादहितानि ।]

शिखीषु माषान् ग्रीष्मर्तौ लवणेष्वोषरं त्यजेत् ।

फलैषु लकुचं शाकं सार्वपं न हितम्मतम् ॥ १३८ ॥

गोमांसं ग्राम्य मांसेषु न हितं महिषीवसा ॥ मेघी

पयः कुसुम्भस्य तैलन्याज्यञ्च फाणितम् ॥ १३९ ॥

इक्षुरसः परिपक्वो योऽर्द्धघनफाणितम् ॥

(क) तद्विच्छेद्याराव इति लोके । अथ संयोग विरुद्धानि ।

भा० हरिण लालवर्णी होता है । और एण काला हिरन कहा गया है । और कुरंग लाल वर्णी कहा गया है । तथा हिरन के समान आकृतिवाला और बड़ा होता है । १३६ ॥ जलों में आकाशका जल दूधों में गायका दूध घृतों में गो घृत । तेलों में तिलकानेल । गुड़ आदि यों में चीनी श्रेष्ठ है । १३७ ॥ अनन्तर स्वभाव से अहित वस्तुओं को कहते हैं ॥ शिंवी धान्यों में उड़द । ऋतुवों में ग्रीष्म । लवणों में पांगलवण । इनको त्याग करे और फलों में बदल शाकों में सरसोंका शाक ये वस्तु अहित कही हैं ॥ १३८ ॥ ग्राम के मांसों में गोमांस और भैंसकी चरबी हित नहीं है ॥ मेढीका दूध, कुसुम्भतैल अर्थात् करड़कानेल, और राव इनको त्याग करना चाहिये ॥ १३९ ॥ गन्नेके रसको पंकाके जो आधा गढ़ा किया जाना है उसको राव कहते हैं । अनन्तर संयोग से अहित करनेवाली वस्तुओं को कहते हैं ॥

मत्स्यमानूप मांसञ्च दुग्धयुक्तं विवर्जयेत् ॥ कयो

नं सर्पपस्त्रेहं भर्जितम्परिवर्जयेत् ॥ १४० ॥ मत्

स्यानिक्षौर्विकारेण तथा क्षौद्रेण वर्जयेत् ॥ शान्

न्मांसपयोयुक्ता नृष्यैर्दधि विवर्जयेत् ॥ १४१ ॥

उष्यैर्नभोऽम्बुना क्षौद्रं पायसं रुशरन्वितम् ॥

रम्भाफलं त्यजेत् तक्रं दधिविल्वफलान्वितम् ॥१४२॥
 दशाह सुषितं सर्पिः कांस्ये मधुघृतं समम् ॥ कृता
 चञ्च कषायञ्च पुनरुष्णीकृतं त्यजेत् ॥१४३॥ ए
 कत्र बज्र मांसानि विरुध्यन्ते परस्परम् ॥ मधुसर्पिर्व
 सा तैलं पानीयं वा पयस्तथा ॥१४४॥

भा० मछली और अनुपमांसको भी दूधके सहित न सेवन करे ॥ और सर
 सोंके तैलसे भुनेइये कबूतर के मांसको न सेवन करे ॥ १४० ॥ तथा मीठे
 के या शहत के साथ मछलियों को न भक्षण करे ॥ मांस रस के साथ सचूके
 और उष्ण दधि इनको भी त्यागदे ॥ १४१ ॥ उष्ण या आकाशका जल इन
 के साथ मधु और खिचड़ी के साथ दूध इनको भी त्यागदे ॥
 मीठे के साथ केला और दही वेलफल के साथ त्यागदेवे ॥ १४२ ॥ कांसे के बर्तन
 में दसदिनका रक्ताहुवा घी और बराबर घी सहनको भी न सेवन करे ॥
 १४२ ॥ सिद्ध किया अन्न और कषाय इनको फिरसे गरम करके न सेवन करे
 । एक जगह कई किस्म के मांसोंको मिलाके न सेवन करे ॥ १४३ ॥ मधुघ
 त चरबीनेल जल दूध इनको आपसमें मिलाके न सेवन करे ॥ १४४ ॥

[अथ भेषज ग्रहणासङ्केतः।] लवणं सैन्धवं प्रोक्तं चन्द
 नं रक्तचन्दनम् ॥ चूर्णलेहाः सवस्नेहाः साध्या धवलच
 न्दनैः ॥ १४५ ॥ कषायलेपयोः प्रायोऽयुज्यते रक्तचन्द
 नम् ॥ अंतःसम्भार्जने ज्ञेया ह्यजमोदा यवानिका ॥
 ॥ १४६ ॥ वहिःसम्भार्जने सैव विज्ञातव्याजमोदिका ॥
 पयः सर्पिः प्रयोगेषु गन्धमेव हि गृह्यते ॥ १४७ ॥

सहस्रसो गोमयकं मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥

भा० अनन्तर औषधोंके ग्रहण करनेका संकेत कहने हैं ॥ लवण कहा
 हे विलेही सैन्धव और चंदन की जगह रक्तचंदन जानना चाहिये ॥ चूर्णलेह
 आसव घृत तैलादि ये स्नेहचन्दनसे सिद्ध करने चाहिये ॥ १४५ ॥ कषाय

और लेपमें प्रायः रक्तचन्दन मिलाया जाता है ॥ खनि पीनेमें अजवायन लि-
खी होती अजमोद लेनी चाहिये ॥ १४५ ॥ और लेपादिकमें वोही अजवाय-
न लेनी चाहिये ॥ योगमें दूध और घी लिखाही तो गायका ही लेना चाहि-
ये ॥ १४६ ॥ गोबर का रस हैवे तो गायका और भूत गोमूत्र लेना चाहिये ॥

[प्रतिनिधिः] चित्तका भावतो दन्ती क्षारः शिखरि जी
थवा ॥ अभावे धन्वया सस्य प्रक्षेप्या तु दुरालभा ॥

॥ १४८ ॥ (शिखरी अयामार्गः ।) तगरस्याप्यभा-

वे तु कुष्ठं दद्याद्विषग्वरः ॥ मूर्वाभावे त्वचो ग्राह्या

जिह्मिनी प्रभवा बुधैः ॥ १४९ ॥ अहिं स्वाया अभा-

वे तु मानकन्दः प्रकीर्तितः ॥ लक्षणाया अभावे

तु नीलकराट शिखा मता ॥ १५० ॥

भा० चबले में देनेकी वस्तुओंको कहते हैं ॥ चित्रक के अभावमें जमाल
गैरिकी जड़ अथवा आंगेका खार लेवे ॥ बीसेके अभावमें जवासा लेवे ॥
१४८ ॥ वैद्य तगरके अभावमें कूठ देवे । मरोड फलीके अभावमें मजीठ की
छाल । मालकंगनीके अभावमें मानकेवूँको लेवे ॥ लक्षणा के अभा-
वमें मोरशिखा देवे ॥ १५० ॥

बकुला भावतो देयं कलहारोत्पल पङ्कजम् ॥ नीलो

त्पलं स्याभावे तु कुसुमं देयमिष्यते ॥ १५१ ॥ जानीपु

ष्पं न यत्रास्ति त्वङ्गं तत्र दीयते ॥ अर्कपर्णादिष्व

सो ह्यभावे तदसौ मतः ॥ १५२ ॥ पीष्करा भावतः

कुष्ठं तथा लाङ्गुल्य भावतः ॥ स्थैरोग्य कस्यां भा-

वे तु भिषगुभिर्वीर्यते गदः ॥ १५३ ॥ चविष्ठा गज पि

प्लव्यो पिप्पली मूलवत् स्मृतौ ॥ अभावे सोमराज्यां

स्तु प्रपुन्नाटफलं मतम् ॥ १५४ ॥ यदि न स्याद्दारु
निशा तदा देया निशा बुधैः ॥

भा० मौलसरी के अभावमें खेतकामल । नीलोफर के अभावमें लाल क
वल देना चाहिये ॥ १५१ ॥ चमेली फूल जहां न मिले वहां लवंग देना चाहि
ये ॥ आकवगैरह का बुध न मिलनेमें उसी कारसे ॥ १५२ ॥ पुष्कर मूल
के अभावमें कलहारी के अभावमें कूट देवे ॥ ककरोदे के अभावमें भीवे
द्य कूट देने हैं ॥ १५३ ॥ चाव और गजपीपल पीपलांमूल के समान कहे ग
ये हैं ॥ बकची के अभावमें चकोड़ के बीज देवे ॥ १५४ ॥ जहां दारु हलदी
न मिले वहां हलदी देवे ॥

(क) सोमराजी वाकुची । प्रपुन्नाटफलं चक्रमर्दफलम् ।
दारुनिशा दारुहरिद्रा निशा हरिद्रा ।

रसाञ्जनस्या भावे तु सम्यग्दार्वी प्रयुज्यते ॥ सौरा
ष्ट्रपभावतो देया स्फटिका नहुणा जनैः ॥ १५५ ॥

(ख) सौराष्ट्री सौरदीमाटी इतिलोके । स्फटिका फटिका
री इतिलोके ॥ तालीस पत्रका भावे स्वर्णताली

प्रशस्यते ॥ भार्ग्य भावे तु तालीसं कराटकारी जवाय
वा ॥ १५६ ॥ रुचका भावतो दद्यान्नवरं पांशुपूर्वकम् ।
अभावे मधुयष्टास्तु धातकीञ्च प्रयोजयेत् ॥ १५७ ॥

भा० रसौन के अभावमें अच्छी दारु हरी देवे ॥ सौरदीमाटी के अभावमें फ
टकरी देवे । वो उसी के गुणवाली है ॥ १५५ ॥ तालीस पत्र के अभावमें स्
र्णतालीस पत्र देवे ॥ भार्ग्य के अभावमें तालीस पत्र अथवा कटेली कीज
उ देवे ॥ १५६ ॥ सांचल के अभावमें खारीनमक देवे ॥ मुलहठी के अभावमें
धावेका फूल देवे ॥ १५७ ॥

(क) रुचकं चौहार इतिलोके पांशुलवरां खारी अथवा रेह ।

इति लोके । अम्लवेतसका भावे चुक्रं दातव्यमिष्यते ॥
 ब्राह्मणं यदि न लभ्येत प्रदेयं काष्मरीफलम् ॥ १५८ ॥
 तयोरभावे कुसुमं बन्धूकस्य मतं बुधैः ॥ लवङ्गकुसु-
 मंदेयं नखस्याभावतः पुनः ॥ १५९ ॥ कास्तूर्य भावे
 कङ्कोलं क्षेपणीयं विदुर्बुधाः ॥ कङ्कोलस्याप्यभावे
 तु जातीपुष्पं प्रदीयते ॥ १६० ॥

भा० अम्लवेत के अभाव में इमली देवे । और यदि दासन मिले तो कुंभेर का फल देवे ॥ १५८ ॥ वे दोनों न मिले तो दुपहरिया का फल देवे । नख न मिले तो लवंग देवे ॥ १५९ ॥ कस्तूरी के अभाव में कंकाल देनी चाहिये ॥ ऐसा पंडित कहते हैं ॥ और कंकाल भी न मिले तो चमेली के पुष्प डाले ॥ १६० ॥

सुगन्धिसुस्तकं देयं कर्पूराभावतो बुधैः ॥ कर्पूराभा-
 वतोऽयं ग्रन्थिपर्णो विशेषतः ॥ १६१ ॥ कुङ्कुमाभा-
 वतो दद्यात् कुसुम्भकुसुमं नवम् ॥ श्रीखण्डच-
 न्दनाभावे कर्पूरं देयमिष्यते ॥ १६२ ॥ अभावे त्वेतयो-
 र्वैद्यः प्रक्षिपेत् रक्तचन्दनम् ॥ रक्तचन्दनका भावे
 नवोशीरं विदुर्बुधाः ॥ १६३ ॥ सुस्ताचातिविषाभा-
 वे शिवाभावे शिवामता ॥ अभावे नागपुष्पस्य य-
 द्भकेसरमिष्यते ॥ १६४ ॥

भा० कर्पूर न मिले तो नागरमोथा देना चाहिये ॥ और कर्पूर के अभाव में उकरीदा विशेषकर के देना चाहिये ॥ १६१ ॥ केसर के अभाव में नवीन कुसुम के फूल डालने चाहिये ॥ श्रीखण्डचन्दन के अभाव में कर्पूर देवे ॥ १६२ ॥ इनके अभाव में वैद्य रक्तचन्दन देवे रक्तचन्दन के अभाव में नवीन खस देवे ॥ १६३ ॥ अनीस के अभाव में मोथा सूत के अभाव में औष-
 ता नागकेसर के अभाव में यद्भकेसर डाले ॥ १६४ ॥

मेदा जीवककाकोली ऋद्धिद्वन्द्वेऽपि वा सति ॥ वरी
 विदार्य्य श्वंगन्धा वाराही च क्रमान् क्षिपेत् ॥ १६५ ॥
 (वरी शातावरी ।) वाराह्याश्च तथाभावे चर्मकारालुको
 मतः ॥ वाराहीकन्द संज्ञस्तु पश्चिमे गृष्टि संज्ञकः ॥ १६६ ॥
 वाराही कन्द एवांन्यश्चर्मकारालुको मतः ॥ अनूप
 सम्भवे देशे वराह इव लोमवान् ॥ १६७ ॥ भल्लान्
 का सहत्वे तु रक्तचन्दन मिष्यते ॥ भल्लान् भावनश्चि
 त्तं नलश्वे क्षीर भावतः ॥ १६८ ॥ सूवर्णाभावतः स्व
 र्णमालिकं प्रक्षिपेत् बुधः ॥ श्वेतन्तुमालिकं ज्ञेयं
 बुधैः रजतवत् ध्रुवम् ॥ १६९ ॥

भा० मेदा जीवककाकोली ऋद्धि और रूद्धि इनके न मिलनेमें भी । सतात्र
 र विदारीकन्द असर्गंध वाराहीकन्द इनको कमसे डाले ॥ १६५ ॥ वाराहीक
 न्दके अभावमें जंगली आलू को डाले ॥ वाराहीकन्दका नाम पश्चिमदेश
 में ग्रष्टि कहते हैं ॥ १६६ ॥ और लोग वाराहीकन्दको चर्मकारआलू कह
 ते हैं ॥ अनुपदेश में वाराह के मानिन्द रोमवाला होता है ॥ १६७ ॥ मिलाने
 के नहीं सहन होनेमें रक्तचन्दन देवे ॥ मिलावेके अभावमें चित्रक और गन्ने
 के अभावमें नर्कट देवे ॥ १६८ ॥ स्वर्णके अभावमें बुद्धिमान सोना मखी
 डाले ॥ रूपा मखी को चाँदीके समान पंडितों ने कहा है ॥ १६९ ॥

माक्षिकस्याप्यभावेन प्रदद्यात् स्वर्णगैरिकम् ॥ सु
 वर्णमथवा रौप्यं मृतं यत्र न लभ्यते ॥ १७० ॥ तत्र
 कान्ते न कर्म्मणि भिषकुर्ग्याद्विचक्षणाः ॥ का
 न्ताभावे नीक्षणा स्नाहं योजयेद्देय संतमः ॥ १७१ ॥

अभावे मौक्तिकस्यापि मुक्ताणुक्तिं प्रयोजयेत् ॥ मधु
यत् न लभ्येत तत्र जीर्णगुडो मतः ॥ १७१ ॥ मत्स्य
राडा भावतो दद्युर्भिषजः सितशर्कराम् ॥ असम्भवे
सितायास्तु ब्रुधैः खराडं प्रयुज्यते ॥ १७२ ॥ क्षीराभावे
रसो मौद्धो मासूरो वा प्रदीयते ॥ अत्र प्रोक्तानि वस्तू
नि यानि तेषु च तेषु च ॥ १७४ ॥

भा० रूपा माखी के अभावमें सुनहरी गेरू देवे ॥ जहाँ पर सोने का या चांदी का
भस्म नहीं मिलता ॥ १७० ॥ वहाँ पर चतुर्वैद्य कानि सार से काम करे ॥ और
जहाँ पर कानि सार न मिले वहाँ तीक्ष्ण लोह को वैद्यवर योजना करे ॥ १७१ ॥
मोती के अभावमें भी मोती की सीप देवे ॥ ग्रहन जहाँ पर नहीं मिलता वहाँ सु
राना गुड़ देवे ॥ १७२ ॥ वैद्य मिश्री के अभाव में सफ़ेद चीनी देवे और सफ़ेद चीनी
भी न मिले तो खंड देवे ॥ १७३ ॥ दूध के अभावमें मूंग का या मसर का पानी दे
ते हैं ॥ यहाँ पर कही जड़ जो वस्तु है उन २ में ॥ १७४ ॥

योज्यमेकतराभावे परं वैद्येन जानता ॥ रसवीर्यविपा
काद्यैः समद्रव्यं विविन्य च ॥ १७५ ॥ युज्याद्विविधस्य
न्यद्वाद्रव्यानान्तु रसादिवित् ॥ योगे यदप्रधानं स्यात्त-
स्य प्रतिनिधिर्मतः ॥ १७६ ॥ यत्तु प्रधानं तस्यापि स
दृशं नैव गृह्यते ॥ व्याधिर्युक्तं यत्तु द्रव्यं गणोक्तमपि
तत् त्यजेत् ॥ १७७ ॥ अनुक्तमपि युक्तं यत्तु योजयेत्
तद्रसादिवित् ॥

भा० जानने वाले वैद्य के द्वारा एक के अभावमें दूसरे को देना चाहिये ॥ रस
वीर्य विपाक आदि इन करके समद्रव्य को विचार करके ॥ १७५ ॥ किस्म २
के और भी द्रव्यों को योजना कर रसों के जाने वाला योगमें जो अप्रधान है उ
सकी प्रतिनिधी कही गई है ॥ १७६ ॥ और जो प्रधान है उसके सदृश को नहीं

ही ग्रहण करने ॥ व्याधि के अयुक्त जो द्रव्य हो वोह गण में कहा हुआ भी त्याग देवे ॥ १७७ ॥ और न कहा हुआ भी जो युक्त है उसके रसादिक के जोत्रे वा जो जना करे ॥ [इतस्तु द्रव्यगतपञ्च पदार्थ कर्माग्याह ।]

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥ पदार्थः

पञ्च तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्वन्ति कर्म च ॥ १७८ ॥

(तत्र वाग्भटः ।) रसः स्वाद्वस्त्रलवणतिक्तोषण कषायकाः ॥ षट् द्रव्यमाश्रितास्ते च यथा पूर्व्वं बलाव-

हाः ॥ १७९ ॥ (ऊषणाः कटुः) तत्राद्या मारुतं

घ्नन्ति स्त्वयस्तिक्तादयः कफम् ॥ कषायतिक्तम

धुराः पित्तमन्ये तु कुर्वन्ते ॥ १८० ॥

भा० यहाँपर द्रव्यमें प्राप्त पांच पदार्थों के कर्म को कहते हैं ॥ द्रव्यमें रस गुण वीर्य विपाक शक्ति ये पांच पदार्थ रहते हैं और अपने-अपने कर्मों को भी करते हैं ॥ १७८ ॥ उसमें वाग्भट ने कहा है [मधुर अम्ल लवण कटु कषाय तिक्त ये छः रस द्रव्य के आश्रित रहते हैं वे एक से एक पहले बल को देते वा लेते हैं ॥ १७९ ॥ उनमें पहले तीन वायु को नाश करते हैं । और अंके तिक्तादि तीन कफ को नाश करते हैं ॥ कषाय तिक्त मधुर पित्त को नाश करते हैं ॥ और मधुर कफ अम्ल पित्त को कटु वायु को इस प्रकार से करते हैं ॥ १८० ॥

ये रसा वातशमनाः भवन्ति यदि तेषु वै ॥ रौक्ष्यला

घवशैल्यानि न ते हन्युः समीरणम् ॥ १८१ ॥ ये रसाः

पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै ॥ तीक्ष्णोष्णलघु

ता चैव न ते तत्कर्मकारिणः ॥ १८२ ॥ ये रसा श्लेष्म

शमना भवन्ति यदि तेषु वै ॥ स्नेह गौरवं शैल्यानि

न ते हन्युः कफं तदा ॥ १८३ ॥

भा० जोरसवात के शमन करनेवाले हैं यदि उनमें ॥ सूक्ष्मता हलकापन और शीता है तो वे वायु को नहीं नाश करते ॥ १८१ ॥ जोरस पित्त के शमन करनेवाले हैं यदि उनमें ॥ तीक्ष्णता उष्णता और स्रग्धुता है तो वे उस कर्म को करानेवाले नहीं होते ॥ १८२ ॥ जोरस कफ को शमन करनेवाले हैं यदि उनमें ॥ चिकनापन भारीपन और शीतलता होवे तो वे कफ को नहीं नाश करते ॥ १८३ ॥

[तत्र मधुरसस्य गुणाः ।] मधुरो हि रसः शीतो धातुस्तन्यबलप्रदः ॥ चक्षुष्यो वातपित्तघ्नः कुर्यात् स्थूलमलक्रिमीन् ॥ १८४ ॥ रसेषु प्रवरश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषो हितः ॥ [अथाति युक्तस्य मधुरसस्य गुणाः ॥] बालवृद्धक्षतक्षीणवर्णकेशेन्द्रियोजसाम् ॥ प्रशस्तो बृहणः कण्ठो गुरुः सन्धानकृत् मतः ॥ १८५ ॥ विषघ्नः पिच्छिलश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषो हितः ॥ सोऽतियुक्तो ज्वरश्वासगलगण्डार्बुदकृमीन् ॥ १८६ ॥ स्थौल्यग्निमान्द्यमेहांश्च कुर्यात् मेदः कफामयान् ॥

भा० उसमें मधुर रसका गुण कहने हैं ।] मधुर रस शीत रसाविक धातु दूध और बल को देनेवाला है ॥ चक्षु के हित वात पित्त का नाशक और स्थूलता मल कृमी इनको करता है ॥ १८४ ॥ रसों में प्रेष्ठ भी है और स्निग्ध प्रीति आयु के हित है ॥ अनन्तर बज्रत सेवन किये जवे मधुर रसका गुण कहने हैं ।] बालक वृद्ध क्षत क्षीण वर्ण केशेन्द्रिय और ओज इनको प्रशस्त है ॥ धातुओं के बढानेवाला कंठका हित भारी संधान करनेवाला कहा गया है ॥ १८५ ॥ और विषका नाशक चेषदार चिकना प्रीति आयु के हित भी है ॥ बौह बज्रत सेवन किया जवा ज्वर श्वास गलगण्ड अर्बुद कृमी ॥ १८६ ॥ स्थूलता अग्निमान्द्य प्रमेह मेद और कफ के रोगों को करता है ॥

[अथाति युक्तस्य गुणाः ।] रसोऽस्त्रः पाचनो रुच्यः पित्तघ्नः

प्यासुदो लघुः ॥ लेखितोष्णो वहिः शीत क्लेदनः पवन
 पहः ॥ १८७ ॥ स्निग्धस्तीक्ष्णः सरः शुक्र विवन्धानाह
 दृष्टिहा ॥ हर्षणो रोमदन्तानामक्षिभू विनिकोचनः ॥
 ॥ १८८ ॥ लेखितः लेखनः वहिः शीतः स्पर्शः शीतः वि
 निकोचनः सङ्कोचनः । [सथातियुक्तस्यान्त्यस्य गुणाः ।]
 सोऽतियुक्तो भ्रमं कुर्यात् तद् दाहतिमिरज्वरान् ॥
 कण्डू पाण्डुत्ववी सर्पणोश्च विस्फोटकुष्ठकृत् ॥ १८९ ॥

भा० अनन्तर अम्लका गुण कहते हैं ॥ पाचन रुचिको करनेवाला पित्त क
 फ रक्त इनको करनेवाला हलका ॥ लेखन उष्ण स्पर्श में शीत क्लेदन वायुका
 नाशक अम्ल रस होता है ॥ १८७ ॥ स्निग्ध तीक्ष्ण रेचन शुक्र विवन्ध आना और
 दृष्टि इनका नाशक ॥ तथा रोम दंत इनका हर्षण और आंख की भवों का
 सुकड़नेवाला होता है ॥ १८८ ॥ अनन्तर अतियुक्त अम्लका गुण कहते हैं
 ॥ वो अतिसेवन किया हुआ भ्रम तृषा दाहतिमिर और ज्वर इनको करता
 है ॥ तथा कण्डू पाण्डुता विसर्प शोथ विस्फोट और कुष्ठ इनको करनेवाला है
 ॥ १८९ ॥ [अथ लवणस्य गुणाः ।]

लवणः शोधनो रुच्यः पाचनः कफपित्तदः ॥ पुं
 स्त्ववातहरः कायघौघिल्यमृदुताकरः ॥ १९० ॥
 चक्षुर्नासास्यजलदः कपोलगलदाहकृत् ॥

भा० अनन्तर लवण के गुण कहते हैं । शोधन रुचिको करनेवाला पाचन
 कफ पित्तको करनेवाला । पुरुषत्व और वानका नाशक पारीरकी शिथि
 लता तथा मृदुता इनका करनेवाला ऐसा लवण होता है ॥ १९० ॥
 चक्षु नासिका मुख इनमें पानी को देनेवाला और रक्त नृषा, गले में दाह
 को करनेवाला होता है ॥

[अतियुक्तस्य लवणस्य गुणाः ।] सोऽतियुक्तोऽक्षिपाका

स्र पित्तकोष्ठक्षतादिहृत् ॥ बली पलितखालित्यं कुष्ठ
 वीसर्प्य तृदप्रदः ॥ १८१ ॥ कोठो वरटाकृतदंश शो
 थवत् । पलितं केशशुक्लता । खलित्यं शिरसि केशनाशः
 ॥ [अथ कटुगुणाः ।] कटुरुष्णश्च तीक्ष्णश्च विशदो वा
 त पित्तहृत् ॥ श्लेष्म हल्लघु राग्नेयः किमिकण्डू
 विषापहः ॥ रूक्षस्तन्य हरश्चापि मेदः स्थौल्यापक
 र्षणः ॥ अश्रुदो नासिकास्याक्षि जिह्वाग्रोद्देजको मतः
 ॥ १८३ ॥ दीपनः पाचनोरुच्यो नासिकाशोषणो भृश
 मृ । क्लेद मेदो वसा मज्जा शकृन् मूत्रोप शोषणः ॥ १८४
 स्नानः प्रकाशको रूक्षो मेध्यो वर्चो विबन्धकृत् ॥

भा० बहुतसेवन कियेजवे लवणका गुण कहनेहैं ॥ बोह अति सेवन कि
 याज्जवा नेत्रपाक रक्तपित्तचकते और क्षतादि को करताहै । कुरियां बालों
 की सफ़ेदी गंजापन कोहू विसर्प और नृषा इनको देताहै ॥ १८१ ॥

मय कटुके गुण कहनेहैं ॥ कटु उष्ण तीक्ष्ण विशद और वात पित्तके करने
 वाला होताहै ॥ कफकानाशक हलका अग्निगुणवाला किमि कण्डू विषका
 नाशक होताहै ॥ १८२ ॥ रूक्ष दूधकानाशक मेद और स्थूलता का घटानेवा
 ला । आंसुवोंके देनेवाला नासिका सुखनेत्र और जिह्वाके अग्रभागमें क्लेप
 करने वाला कहागयाहै ॥ १८३ ॥ दीपन पाचन रुचिके योग्य नासिकाका अती
 शोषण करनेवाला क्लेद मेद वसा मज्जा मलमूल इनका सुकानेवालाहै ॥
 १८४ ॥ श्रोतोंका प्रकाश करनेवाला रूक्ष मेध्य मलका रोकनेवालाहै ॥

आग्नेयः अधिकाग्न्यांशः । मेध्यो मेधायैः हितः । वर्चो
 विबन्धकृत् । मलवद्धं करोति । [अतियुक्तस्य कटुरस
 स्य गुणाः ।] सोऽतियुक्तो भ्रान्निदाहमुखताल्वोष्ठ शोष

कृत् ॥ कण्ठादि पीडा मूर्च्छान्तर्दाहदो बलकान्तिहृत् ॥

१८५ ॥ [अथ तिक्त रसस्य गुणाः।] तिक्तः शीत स्तृ

षामूर्च्छा ज्वर पित्त कफान् जयेत् ॥ कृमि कुष्ठ विषो

नृक्लेद दाह रक्त गदापहः ॥ १८६ ॥ रुच्यः स्वयं मरो

चिष्णुः कण्ठ स्तन्य विषो धनः ॥ वातलोऽग्नि करोना

सा शोषणो रूक्षणो लघुः ॥ १८७ ॥

भा० अति सेवन किये ज्वर कटु रसका गुण कहने हैं ॥] अति सेवन किया ज
वा मुख तालु होंठ इनका शोषण करने वाला । कंठादिमें पीडा मूर्च्छा अन्तरदा
ह इनको करने वाला और बलकान्तिका नाशक होता है ॥ १८५ ॥

अनन्तर तिक्त रसका गुण कहने हैं ।] तिक्त रस शीत तृषामूर्च्छा ज्वर पित्त क
फ इनको जीतता है ॥ कृमि कुष्ठ विष उक्लेद दाह रक्त इन रोगोंको नाश कर
ता है ॥ १८६ ॥ रुचिके दिन आप अरुचि करने वाला और कंठ दुग्ध इनको शो
धन है ॥ वातको करने वाला अग्नि को करने वाला नासिकाका शोषण करने
वाला रूक्ष और हलका होता है ॥ १८७ ॥

रुच्यः अन्येषु वस्तुषु रुचिमुत्पादयति । स्वयं मरो चिष्णुः य

था निम्बः स्वयन्न रोचते ॥ अन्येषु वस्तुषु रुचिं करोति ।

[अतियुक्तस्य तिक्तस्य गुणाः।] सोऽतियुक्तः शिरः शूल

भन्या स्तम्भ श्रमार्ति हृत् ॥ कम्प मूर्च्छा तृषा कारी

बल शुक्लक्षय प्रदः ॥ १८८ ॥ [अथ कषाय गुणाः।]

कषायो रोपणो ग्राही स्तम्भनः शोधनस्तथा ॥ लेख

नः पीडनः सौम्यः शोषणो वातकोपनः ॥ १८९ ॥

कफ शोषण पित्तघ्नो रूक्षः शीतो लघुर्मनः ॥ त्वक्

प्रसाधन मामस्य स्तम्भनो विशदो मतः ॥ २०० ॥ जि
ह्वाया जाड्यकृत कण्ठस्रोतसाञ्च विवन्धकृत ॥

(क) शोषणः ब्रणस्य स्तम्भनो गात्राणां शोधनो ब्रणस्य से
खनो ब्रणाद्युत सन्नर्मांसस्य शोषणो ब्रणमज्जादीनाम्
पीडनो हृदयस्य वातकारित्वात् सौम्यः सोमादुत्पन्नः ॥

भा० अति सेवन किये हुवे तिकरसका गुण कहते हैं ।] वोह अति सेवन
किया हुवा सिर पीड़ा ग्रन्था स्तम्भ, अमपीडा इनको करना है ॥ कभ्य मूर्छा दृष्टा
का करनेवाला । बल युक्त वृत्तका क्षय करनेवाला होता है ॥ १९८ ॥

अनन्तर कषाय के गुण कहते हैं ।] कषाय भरलानेवाला ग्रही स्तम्भन तथा
शोधन होता है । और लेखन पीड़ा को करनेवाला सौम्य शोषको करनेवाला
वातको कुपित करनेवाला होता है ॥ १९९ ॥ कफ रक्त पित्तका नाशक रहते ।
शीत लघु कहा है ॥ त्वचा का स्वच्छ करनेवाला आँवका रोकनेवाला और
विषाद कहा है ॥ २०० ॥ जिह्वा की जड़ना को करनेवाला कण्ठ के सोनों कारो
कनेवाला होता है ॥ (क) शोषण शरीर का स्तम्भन मांसों को शोधन दृष्टा का
लेखन दृष्टादिसे ऊपर उठे हुवे मांसका शोषण दृष्टा मज्जादिकों का पीड़न
हृदय का वातकारी होनेसे सौम्य अर्थात् सोमसे उत्पन्न ॥

[अतियुक्तस्य कषायस्य गुणाः ।] सोऽतियुक्तो गृहाध्या
न हृत्पीडाक्षेपणादिकृत ॥ मधुरादीनामपरे विशेषः ॥
मधुरं श्लेष्मणं प्रायो जीर्णं शालिं यवाहते ॥
मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात् सिताया जाङ्गला मिषात् ॥
२०१ ॥ अम्लं पित्तकरं प्रायो विना धात्वीन्व दाडिमीम् ॥

भा० अति सेवन किये कषाय का गुण कहते हैं ।] वोह अतियोजना किया
हुवा गृह अधमान हृद पीडा और आक्षेपणादिकरना है । मधुरादियों का दूस
रा विशेष गुण है ॥ मधुर कफको करनेवाला है प्रायः पुराने चावल और ज
वों के सिवा ॥ मृग गेहूं शहत बीनी और जांगल मांस इनके सिवाभी ॥ २०१ ॥

अम्ल प्रायः पित्तको कनिवाला होता है सिवा आँवले और अनारके ॥

लवणं प्रायशो द्वेषि नेत्रयोः सैन्धवं विना ॥ २०२ ॥

प्रायः कटु तथा तिक्त मृदुष्यं वातकोपनम् ॥ शुण्ठी

कृणारसोनानि पटोलममृतं विना ॥ २०३ ॥

[चरकेऽपि ।] पिप्पली नागरं चृष्यं कटु चाचृष्यमुच्यते ॥

प्रायशः स्तम्भनं प्रोक्तं कषायमभयां विना ॥ २०४ ॥

सामान्ये नात्र निर्दिष्टा गुणाः षड्रससम्भवाः ॥ रसा

नां योगतस्तु स्यादन्य एव गुणोदयः ॥ २०५ ॥

भा० लवण प्रायः नेत्रके अहित है सैन्धव के विना ॥ २०२ ॥ कटुरस और ति

क्तस प्रायः अष्टुष्य तथा वातको कुपित करने वाला होता है ॥ सोंठ पीपल सह

सन परबल और गिलोय इनके विना ॥ २०३ ॥ चरक में भी कहा है ॥ पीपल से

उचृष्य और कटुरस अचृष्य होता है ॥ कषाय रस प्रायः स्तम्भन होता है परंतु

हरितकी के विना ॥ २०४ ॥ यहाँ पर सामान्य चरके षड्रसों से उत्पन्न द्रव्य गुण

कहे गये हैं ॥ रसों के संयोग से और गुणों का उदय होता है ॥ २०५ ॥

संयोगाद् विषतां याति समाम्ये न माक्षिकम् ॥ अ

मृतत्वं विषं याति सर्पदष्टस्य वै यथा ॥ २०६ ॥

[अथ गुणाः ।] लघुर्गुरु स्नग्धा स्निग्धा रूक्षस्तीक्ष्णा इति क

मान् ॥ नभोभृवरिवातानां चन्द्रे रते गुणाः स्मृताः ॥

२०७ ॥

[अथ लघ्वादि गुणवर्तनं गुणाः ।]

लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकि च ॥ लघु द्रव्यम्

भा० संयोग से विष होता है । घृत और मधु की समता से ॥ और विष अमृत

त्वको प्राप्त होता है जैसे साँप के काटे को ॥ २०६ ॥ अनन्तर गुण कहते हैं ॥

हल्का भारी चिकना रूखा तीखा ये क्रम से ॥ आकाश पृथ्वी जल वायु और

अग्नि इनके ये गुण कहे गये हैं ॥ २०७ ॥ अनन्तर लघु आदि गुणों के गुण

कहते हैं । लघु परम पत्न्य कहा गया है और कफका नाशक तथा शीघ्र पाक होनेवाला भी कहा गया है ॥ लघु अर्थात् द्रव्य ॥

एवं गुर्वादि तथा चोक्तम् ॥ गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथि
व्यादौ रसाश्रये ॥ रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्य्योपचा

रतः ॥ २०८ ॥ गुरुवानहरं पुष्टिं श्लेष्मकृच्चिरपाकि
च ॥ स्निग्धं वानहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम् ॥

२०९ ॥ रूक्षां समीरणाकरं परं कफहरं मतम् ॥ तीक्ष्णं

पित्तकरं प्रायो लेखनं कफवानहत् ॥ २१० ॥ सुश्रुते

तु गुणा एते विंशतिस्तान् ननु वे शृणु ॥ गुरुर्लघुः स्नि

ग्ध रूक्षौ तीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः ॥ २११ ॥

भा० इसी प्रकार गुरु आदि । उस प्रकार कहा है ॥ पृथ्वी आदि रसके आश्रय द्रव्यमें गुरुवादि गुण । और रसमें साहचर्य्य के उपचार से जाने जाते हैं ॥

२०८ ॥ गुरुवानका नाशक पुष्टि कफ को करनेवाला चिरपाकवाला भी कहा है ॥ और चिकनावान नाशक कफकारी वृष्य बल को देनेवाला है ॥

२०९ ॥ रूक्ष वायु को करनेवाला और अत्यन्त कफका नाशक होता है ॥ तीखा पित्तका करनेवाला और प्रायः लेखन तथा कफवान नाशक भी है ॥

२१० ॥ सुश्रुत में ये गुणा दीस कहे हैं उनको कहनाइं सुनों ॥ भारी हलका स्निग्ध रूक्षां तीखा चिकुरा स्थिर रेचन ॥ नेपदार विषाध प्रीतल उष्म मृदु और कर्कश ॥ २११ ॥

पिच्छिलो विषादः पीत उष्णश्च मृदु कर्कशी ॥ स्थू

लः रूक्षो द्रवः शुष्कः आगुर्मेघः स्थूला गुणाः ॥

तत्र गुरु लघु स्निग्ध रूक्ष तीक्ष्णा गुणा उक्ता एव २१२ ॥

श्लक्ष्णाः स्नेहं विनापि स्यात् कठिनोऽपि हि चिकुराः

। स्थिरीवान् भलस्तम्भी सरस्तेषां प्रवर्तकः ॥ पिच्छि-

लस्तन्तुलो वल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः ॥ २१४ ॥
 सन्धानो भग्नस्य । क्लेदच्छेदकरः रव्यातो विशदो जरा
 रोपराः ॥ शीतसुल्हादनः स्तम्भी मूर्च्छा तृट् स्वेददा
 हनुन् ॥ २१५ ॥ उष्णो भवति शीतस्य विपरीतश्च या
 चनः ॥ (क) ल्हादनः सुखजनकः स्तम्भी रक्तातिप्र
 वृत्त्यादीनाम् उष्णः शीतस्य विपरीतस्तेन असुखजन
 कः रक्तातिप्रवृत्त्यादीनाम् स्तम्भनः । मूर्च्छा तृट् स्वेद
 दाहकृत् पावनो जरादीनाम् । मृदु कर्कशौ प्रसिद्धौ ।

भा० तथा स्थूल सूक्ष्म द्रव्यशुष्क आशुकारी और मंद ये बीस गुण क
 हे गये हैं ॥ २१२ ॥ श्लेष्मण विगंध के बिना भी होता है ॥ और कठिन भी
 विकृण होता है ॥ स्थिर वात मलका स्तम्भन करने वाला और सर उनका
 प्रवर्तक होता है ॥ पिच्छल नारको घेने वाला बलका हितु जुड़ाने वाला ।
 कफकारी और भारी होता है ॥ २१४ ॥ सन्धान अर्थात् दूढ़े दूध के जोड़ने वा
 ला । क्लेद छेदन करने वाला कहा गया है । और विशद घावकी भरने वाला
 होता है ॥ शीतलं खुशीकी घेने वाला स्तम्भन करने वाला और मूर्च्छा तथा य
 सीना दाह इनका नाशक होता है ॥ २१५ ॥ उष्ण शीत के विपरीत और या
 चन होता है ॥ (क) ल्हादन अर्थात् सुखको उत्पन्न करने वाला स्तम्भी
 अर्थात् रक्तादिकी अनिप्रवृत्तिका स्तम्भन । मूर्च्छा तथा स्वेद दाहका क
 रने वाला पावन वृणादिकोंका । मृदु और कर्कश प्रसिद्ध है ॥

स्थूलः स्थौल्यं करो देहे स्रोतसामवरोधकृत् ॥

देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेषतः यत् सूक्ष्ममुच्यते ॥ २१६ ॥

द्रवः क्लेदकरो व्यापी शुष्कस्तद विपरीतकः ॥ आ

शुक्राशुक्रो देहे धावत्यम्भसि तैलवत् ॥ २१७ ॥

मन्दः सकलकार्येषु शिथिलोऽल्पोऽपि कथ्यते ॥

[अथ गुणप्रस्तावे दीपनादयो गुणाः । स लक्षणा लिख्येते]

पचेत्रामं वह्निं कृद्य दीपनं तद्यथा भिसिः ॥

(क) वह्निं कृद्य वह्निं दीप्तिं कृतम् । ननु यद्वह्निं प्रदीपयति त
दामङ्ग्यं न पचेदित्या शङ्कयामुच्यते । दीपनद्रव्यन्ताव
न्तं वह्निं प्रदीपयति । तथा अत्र भोक्तुमिच्छामुत्पादय
ति नत्वामं पक्तुं क्षमः यथा सूक्ष्म दीपाग्निं रूपात्तं करोति
ननु वह्निं स्थालीस्थान् तराडुला नोदनं कर्तुं क्षमः ।

भा० स्थूलस्थूलता को करनेवाला और देहमें सोतों का अवरोध करनेवाला
है । शरीर के सूक्ष्म छिद्रों में जो तावे उसकी सूक्ष्म कहते हैं ॥ २१६ ॥ ब्रत
क्षौद्र के करनेवाला और व्यापि होता है । तथा शुष्क उस्के विपरित करनेवा
ला होता है ॥ आशुशीघ्र करनेवाला शरीर में होता है ॥ जैसे पानी में तेल दौड़
ने के मानिन्द ॥ २१७ ॥ मन्द सब कामों में शिथिल और अल्प भी कहा गया है ॥

[अनन्तर गुणप्रस्ताव में दीपनादिक गुणलक्षण के सहित लिखे हैं ॥

आमको न पचवे और अग्निको करे उस्को दीपन कहते हैं जैसे सोंफ ॥

(क) वह्निं कृतम् अर्थात् अग्निको दीपन करनेवाला । (ननु) शंका प्रोवन्ती
को दीपन करता है बोह आमको क्यों नहीं पचाता इस शंका को कहते हैं । दीप
न द्रव्य उत्तरी वह्नि को दीपन करता है । जैसे अन्न में भोजन करने की वृत्त्या उ
त्पादन करता है न कि आमको पका सक्ता है जैसे सूक्ष्म वीच की अग्नि प्रकाश
को करती है न कि बड़े घरनन में के चावलों को पका सकती है ॥

पचत्यामन्नं वह्निञ्च कुर्याद्यत्तद्वि पाचनम् ॥ नाग

केशरवद्विद्या चित्रो दीपनपाचनः ॥ २१८ ॥

(क) ननु यद्वह्निं न दीपयति न दामं कथं पचतीत्या शङ्कयामु
माह । पाचनं वह्निदीप्तिमकुर्वीणमप्याम्यचति । यथा
गन्धाधानीस्थाऽङ्गारसमूहोऽन्यम्यचति ॥ ननु दीपवत्सर्व

तः प्रदीपयति ॥ न शोधयति यत् दोषान् समाक्षोदी
 रयत्यपि ॥ समीकरोति विषमान् शमनन्तद् यथा मृता
 ॥ २९६ ॥ (क) यत् द्रव्यन्दोषत्रयं न शोधयति नोर्द्धाधो मा
 र्गोभ्यामानयति ॥ समान् दोषान्नोदीरयति न वर्द्धयति ।
 शमनं तत् ॥ कृत्वा पाकम्भलानाञ्च भित्वा बन्धमधो
 नयेत् ॥ तच्चानु लोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ २९७ ॥

भा० जो आमको पचाना है और अग्निको नहीं करता वो पाचन है । जैसे नाग के
 मर और चित्रक दीपन पाचन है ॥ २९८ ॥ (क) अनुश्रंका) जो अग्निको दी
 पन नहीं करता वोह आमको कैसे पचाता है । इस आशका में कहते हैं ।
 पातन अग्नि दीपन न करना ज़वाभी आमको पचाता है । जैसे जल में का
 अंगार समूह अन्नको पचाता है । न किं दीप की मानिद सब तरफ मकाश
 करता है ॥ जो दोषों को नहीं शोधन करता और समदोषों को नहीं बढ़ाना । न
 या विषम दोषों को सम करता है वोह शमन है । जैसे गिलोय ॥ २९६ ॥
 (क) जो द्रव्य तीनों दोषों को नहीं शोधन करता अर्थात् ऊपर नीचे से नहीं ले
 जाता । और समदोषों को नहीं बढ़ाता वोह शमन है ॥
 जो मलों का पाक करके और सुर्हों को फोड़के नीचे ले जाता है ॥ उसको अनु
 लोमन जानना चाहिये जैसे हरीतकी कहते हैं ॥ २९७ ॥

(क) मलानाम् । अपक्वानां वातपित्त श्लेष्मणां बन्धं वा
 युबन्धं भित्वा अधीनयेत् । मलानधः पातयति ।
 पक्तव्यं यद् पक्तेव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ॥ नय
 त्यधः र्खं सनन्तद् यथा स्यात् कृतमालकम् ॥ २९९ ॥
 मलादिकम् आदि शब्दान्कफ पित्ते । कृतमालः धन ख
 हेरा इतिलोके ॥ मलादिक मवद्यं यद्वहं वा पिरिङ्गं

मलैः ॥ भित्वाधः पातयति यद्भेदनं कर्तुमीयथा ॥ २२२ ॥

(क) अवहं शिथिलम्बद्धगुदं मलैः दोषैः तत्रापि चातैः ॥

बहुत्वमाधिक्यबोधनार्थनैः पिण्डितम् । गुटिकीकृतम् ॥

विपक्वं यदपक्वं वा मलादिद्रवतानयेत् ॥ रेचयत्य

पित्तजलेयं रेचनन्विहता यथा ॥ २२३ ॥

रेचयत्यपि । अधः पातयति च । विहताप निलरा ।

भा० (क) मलोंका अर्थात् अपक्व वान् पित्तकफोंका बंध अर्थात् वायुके बंधकों फोड़कर नीचे लेजाता है । अर्थात् मलोंको नीचे गिराना है । कोठे में लुगके ठहरे ऊँचे पकनेके योग्य मलादि कोंको बिना पकाये ही ॥ नीचे लेजाता है उसको स्वसंकोते है जैसे अमलनास ॥ २२१ ॥ मलादिक । आदि शब्द से कफ पित्त जानने चाहिये ॥ ढीला मल अथवा बंधा हुआ या सुष्टु इनको जो । फोड़कर नीचे गिराना है वगैर भेदन है जैसे कुटकी ॥ २२२ ॥ (क) अवह्व अर्थात् ढीला बद्ध अर्थात् सरल मल अर्थात् दोषों से उसमें वातसे । पिण्डित अर्थात् गुठलीके समान । बहुत्व पके ऊँचे अथवा कच्चे मलादिकोंको ढीला करके निकाले ॥ उसको रेचन कहने हैं जैसे निसोत ॥ २२३ ॥ विन पके ऊँचे पित्तकफ अथको बलात्कार से ऊपर जो लेजावे ॥

अपक्वं पित्तं प्लेष्मार्चं बलादूर्द्धं नयेत्तु यत् ॥ वम

नन्तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ २२४ ॥

(ख) ऊर्द्धं नयेत् सुख मार्गेण वहिष्कुर्यात् । मदनस्य फलं मयन फल मिति लोके,

स्थानाद्वहि नयेदूर्द्धं मधीवा मल सञ्चयम् ॥ देहे

संशोधनन्तत् स्या देवदाली फलं यथा ॥ २२५ ॥

(ग) देवदाली सोनेप्रा इति लोके ॥

भा० उसको वृमन जानना चाहिये जैसे मैं फल ॥ २२४ ॥

(ख) उपर लेजावे अर्थात् मुंहसे बाहर निकाले । शरीरमें संचयज्वे मलको स्थानसे बाहर नीचे या ऊपर लेजावे । उसे संशोधन कहते हैं । जैसे देवदाली फल ॥ २२५ ॥ (ग) देवदाली को लोकमें सोनईया कहते हैं ॥

दीपनम्याचनं यत् स्या दूषात्वाद्द्व शोधकम् ॥ आ

ही तच्च यथा शुराठी जीरकङ्गज पिप्पली ॥ २२६ ॥

रौदयाच्छेत्त्यात्कषायत्वा लघु पाकाच्च यद्भवेत् ॥

वातकृत् स्तम्भनन्तत् स्याद् यथा वत्स कटु रादुको ॥

॥ २२७ ॥ वातकृत् प्रतिलोम वातकृत् । स्तम्भनं अ

धोगामि मलादीनाम् । वत्सक कुरै आदुण्डक सो

ना पाठा । श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति

यद्बलात् ॥ छेदनन्तत् यथा क्षार मरिचानि शिलाज

तु ॥ २२८ ॥

भा० जो दीपन याचन उष्णत्वसे रक्तवत को सुकानेवाला है । वोह याही है जैसे सोंठ जीरा और गज पीपल ॥ २२६ ॥ रूक्षता से शीतलता से कषायसे और लघु पाक से जो वायु को करनेवाला होना है ॥ वोह कंभन है जैसे कुरै या और सोना पाठा ॥ २२७ ॥ जो श्लिष्ट कफादि दोषों को बलात्कार से उखेड़ता है ॥ उसको छेदन कहते हैं जैसे जवारवार काली मिर्च और शिलाजीत ॥ २२८ ॥

[क्षार यवक्षारदयः।

धातून्मलान् वा देहस्य विशोष्येत्लेखयेच्च यत् ॥ ले

खनन्तद् यथा क्षौद्रं नीर मुख्यां वचा यवा ॥ २२९ ॥

[उल्लेखयेत् कृशी कुप्यीत् । लेखनं कृशीकारकं क्षौद्रं म

धु । यवा इन्द्र यवाः । यस्माद्बुध्याद्भवेत् स्त्रीषु हर्षोवाजी

हितत ॥ यथाश्व गन्धा मुशली पाक्वेरा च शतावरी ॥

॥ २३० ॥ हर्षा रन्तुं समुत्साहः ।

भा० शरीर के धातु अथवा मलोंको सुकाके कृश करे उसको लेखन कहते हैं । जैसे शहत गरम पानी वच और इन्द्रजी ॥ २२६ ॥ जिस द्रव्यसे स्त्री में हर्ष होता है उसको वाजी करण कहते हैं ॥ जैसे असगन्ध मूसली शर्करा और शतावर ॥ २३० ॥

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं हिनदुच्यते ॥ य

था नाग बलाद्याः स्युर्वीजज्व कपिकच्छुजम् ॥ २३१ ॥

नागबला गुलसकरी ।) दुग्धं माषाश्च भल्लान फलमज्जा

मलानि च ॥ एतानि जनकानि स्युः रेचकानि च रेत्सः ॥

॥ २३२ ॥ (क) जनकानि प्रभावाच्छीघ्रमेव रसाद्युत

पादन पूर्व्वकं शुक्रज्जनयन्ति । (ख) रेचकाणि आधि

क्यात् प्रवर्तयन्ति च ।

भा० जिससे शुक्रकी वृद्धि होती है उसके शुक्रल कहते हैं ॥ जैसे गुलसकरी आदिक और किचांचका बीज ॥ २३१ ॥ दूध उद्द भिखावे के फलकी गिरी आंवलि । ये शुक्र के उत्पन्न करने वाले और शुक्र के रेचक भी हैं ॥ २३२ ॥

(क) प्रभाव से शीघ्र ही रसादियों को उत्पन्न करके कको उत्पन्न करते हैं ।

(ख) अधिकता से निकालते हैं । स

प्रवर्तनी स्त्रीशुक्रस्य रेचनं दहती फलम् ॥ जानीफलं

स्तम्भकं स्यात् कालिङ्गः क्षयकारि च ॥ २३३ ॥

(क) स्त्री स्मरण कीर्तन दर्शन सम्भाषण स्पर्शन बुन्धना

लिङ्गन निधुवनैः समस्तैर्व्यस्तैश्च शुक्रस्य प्रवर्तिनी ।

प्रवर्तिनी प्रवृत्तिकारिणी रेचनी । बृहती फलम् ।
 बृहत्करादकारी फलमपि शुक्रस्य रेचकम् प्रवर्तकम् ।
 कालिङ्गं कलिन्दफलम् ।

रसायनन्तु तज्ज्ञेयं यत् जराव्याधिनाशनम् ॥ यथा ।

हरीतकीरुदन्तीच गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ २३४ ॥

पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकञ्च गच्छति ॥ व्यवा

यि तद यथा भङ्ग फेनञ्चाहि समुद्रवम् ॥ २३५ ॥

(क) अन्यद्रव्यं पक्वन्तद्गुणं करोति व्यवायितु अपक्वं मेव
 खगुरौः सकल शरीरं व्याप्य पाकं याति । अहि समुद्रव
 फेनम् अफीम् । सान्धिवन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति
 विकाशितम् ॥

भा० स्त्री शुक्रकानिकालनेवाला कटेलीका फल है । और जायफल स्तम्भक
 है । तथा क्षय करनेवाला मतीरेका फल है ॥ २३३ ॥ (क) स्त्रीका स्मरण या
 कीर्तन दर्शन सम्भाषण स्पर्श चुम्बन आलिंगन और मैथुन इन सबोंसे या
 एक २ से शुक्रकी प्रवृत्ति होती है । प्रवर्तिनी अर्थात् प्रवृत्तिकारिणी रेचनी
 कटेलीका फल । बड़ी कटेलीका फल भी रेचक है और शुक्रको क्षय करनेवाला
 तरबूज ॥ जो जराव्याधिका नाश करनेवाला है उसको रसायन जानना चाहिये
 । जैसे । हरीतकी रुद्रवंती गुग्गुलु और शिलाजीत ॥ २३४ ॥ जो पहले संपूर्ण श
 रीर में व्याप्त होकर पश्चात् पाक होता है उसको व्यवायी कहते हैं जैसे भांग औ
 र अफीम ॥ २३५ ॥ (क) और द्रव्य पक्व उस गुणको करना है और व्यवा
 यी तो बिन पके ही अपने गुणोंसे संपूर्ण शरीर में फैलकर पाकको प्राप्त होता
 है । जो जोड़ों के बन्धनों को शिथिल करता है वोह विकाशी है ॥

विषोष्यो जश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवौ ॥ २३६ ॥

धातुभ्यः सकल शरीरस्थेभ्यो दोषेभ्यः । ओजः उपधा

तु विशेषम् विषोष्यः क्रमुकम् पूगफलम् ।

बुद्धिं क्षुम्यति यत्तं द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥ तमो गुण

प्रधानञ्च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २३७ ॥

मदकारि मादकम् । व्यवायि च विकाशि स्यात् श्लेष्म

छेदि मदावहम् ॥ आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं

विषम् ॥ २३८ ॥

भा० और ओज धातुओं को शोषण करता है जैसे कीदों और सुपारी ॥ २३६ ॥ जो द्रव्य बुद्धि को संश्रम करे और तमोगुण प्रधान हो उसको मदकारी कहने हैं जैसे मद्य और सुरादिक ॥ २३७ ॥ व्यवायी और विकाशी कफ के नाशक और रक्षण करने वाले होते हैं ॥ उष्ण और योगवाही शरत् के नाशक रहे गये हैं ॥ जैसे विष ॥ २३८ ॥

(क) व्यवायि सकलकाय गुणव्यापन पूर्वक पाकगमन शी

लम् । विकाशि ओजः शोषणपूर्वक सन्धिवन्ध शिथिली

करण शीलम् । मदावहम् । तमो गुणाधिक्येन बुद्धि विध्वं

सकम् । आग्नेयं अधिकाग्निगुणम् योगवाहि संसर्गि गु-

णग्राहकम् विषं लक्ष्यं दृष्टान्तो वत्सनाभ प्राक्तु कादिभिः ।

निजवीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतेभ्यो दोष सञ्चयम् ॥ नि

रस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २३९ ॥

भा० (क) व्यवायी अर्थात् सम्पूर्ण शरीर में गुण को फैला कर पाक होने वाला । मद करने वाला अर्थात् तमोगुण की अधिकता से बुद्धि को नाशक । आग्नेय अर्थात् अधिक अग्निगुण । योगवाही अर्थात् संसर्गी के गुण को ग्राहण करने वाला यहाँ पर विपलक्ष है । दृष्टान्त वत्सनाभ प्राक्तु कादि । जो द्रव्य अपने वीर्य से दोषों के संचय को स्रोतों से निकालता है उसको प्रमाथी कहने हैं, जैसे मरिच, वचा ॥ २३९ ॥

(दोषावातादयः ।)

पैच्छिल्याज्जौरवा द्रव्य रुद्धा रसवहाः शिरा । धत्ते यद्

गौरवं न तस्यादभिष्यन्दि यथादधि ॥२४०॥ (गौरवं शरीरे)

विदाहि द्रव्यमुद्गार मलं कुर्यात् तथा तृषाम् ॥ हृदि दा

हञ्च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥ २४१ ॥

(क) गृह्णाति योगवाहि द्रव्यं संसर्गिवस्तु गुणान् । पच्यमानं
तथैतन्मधु जलतैलाज्यसूतलोहादि अथ वीर्यम् । तत्र वाग्
भटः । उष्ण शीत गुणोत्कर्षात् बुधैः वीर्यम् द्विधा स्मृ-

तम् ॥ यत्सर्वमग्नि सौमीयं दृश्यते भुवनत्रयम् ॥ २४२ ॥

(अथ तद्गुणः) उष्णं वातकफौ हन्याच्छीतन्नु ननु जराम् ।

शीतं वातकफात्कृणु कुरुते पित्तहृत्परम् ॥ २४३ ॥ अन्यच्च]

भा० पिच्छिलतासे और गौरवसे जो द्रव्य रसको लेजानेवाली शिराओंको रोक
कर गुरुताको धारण करता है वोह अभिष्यन्दि है जैसे वही ॥ २४० ॥ विदाही द्रव्य
खट्वी उद्गार और तृषाको करता है । और हृदयमें दाहको भी उत्पन्न करता है तथा
देरमें वोह पकाता है ॥ २४१ ॥ (क) योगवाही द्रव्य संसर्गिवस्तु के गुणोंको ग्रह
ण करता है । पकाइता जैसे यह मधु जलनेल घृत सूत लोह आदि । अनन्त
र वीर्यको कहते हैं । उस्मेवाभट ने कहा है । ऊष्ण और शीतकी अधिकता
से पंडितोंने दो प्रकारका वीर्य कहा है । वोह सब तीनों भुवनोंमें गरम शीत
दिखाई देता है ॥ २४२ ॥ अनन्तर उस्के गुण कहते हैं ॥ उष्ण वात कफ को
नाश करता है । और शीत जराको बढ़ाता है । शीत वात कफ के रोगोंको कर
ता है और अत्यन्त पित्तका नाशक है ॥ २४३ ॥

तत्रोष्णं भ्रमत्तट्ग्लानि स्वेददाहाशु पाकताम् ॥ शम

ञ्च वातकफयोः करोति शिपिरं पुनः ॥ २४४ ॥ ह्ला

दनं जीवनं स्तम्भं प्रसादं रक्तपित्तयोः ॥ [अथ त्रिपाक्ः]

जाठरेणाग्निना योगाद्यबुदेति रसान्तरम् ॥ रसानां

परिमान्ते स विपाक इति स्मृतः ॥ २४५ ॥ मिष्टः पटुः
 श्व मधुर मम्लोऽम्लं पच्यते रसः ॥ कटु तिक्त कषाया
 रणं पाकः स्यात् प्रायशः कटुः ॥ २४६ ॥ (तथा च वा-
 ग्मटः।) त्रिधा रसानां पाकः स्यात् स्वादु म्ल कटु कात्म-
 कः ॥ प्रायः पदेन त्रीहिः स्यात् स्वादु रस रवि पाकतः ॥
 २४७ ॥ (क) शिवा कषाया मधुरा पाके सुराठी कटु का
 मधुर पाके न्यादि । [अथ विपाकानां गुणाः।]

भा० उष्मेऽक्ष्म भ्रम नृषा ग्लानि पसीना दाह और शीघ्र पाक । तथा वायु
 और कफ का शमन करना है पुनः शीतल ॥ २४४ ॥ हृयं जीवन स्तंभ और रक्त
 पित्त की स्वच्छता इनको करना है ॥ अनन्तर विपाक को कहने हैं ॥ उदर अग्नि
 के योग से रसों के परिणाम के अन्त में जो रसान्तर उत्पन्न होना है उसको विपा-
 क कहने हैं ॥ २४५ ॥ मधुर और लवण रस का मधुर पाक होता है । तथा अम्ल
 का अम्ल पाक होता है । और कटु तिक्त कषाय इनका प्रायः कटु पाक होता है ।
 ॥ २४६ ॥ इस प्रकार वाग्मट ने कहा है ॥ तीन प्रकार रसों का पाक होता है ॥
 मधुर अम्ल कटु ॥ प्रायः पद के धान्य अविपाक से स्वादु और
 अम्ल होता है ॥ २४७ ॥ (क) हड़ कसेली है परन्तु पाक में मधुर होती है ॥ उसी प्र-
 कार सोंठ कटु है और पाक में मधुर होती है इत्यादि ॥

प्लेष्म कृन्मधुरः पाको वात पित्त हरो मतः ॥ अम्लस्तु
 कुरुते पित्तं वात प्लेष्म गदायहः ॥ २४८ ॥ कटुः क्षरो-
 ति पवनं कफं पित्तञ्च नापायेत् ॥ विशेष रग्वरसतो
 विपाकानां निदर्शितः ॥ २४९ ॥ [अथ प्रभावः।]

रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम् ।

दन्तीरसाद्यैः तुल्यापि चित्रकस्य विरेचनी ॥ मधु-

कस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्य दीपनम् ॥ २५० ॥

भा० अनन्तर विपाकों के गुण कहते हैं ॥ मधुर पाक कफ को करता है । औ
 वान पित्त का नाशक है । अम्ल पाक पित्त को करता है । और वान कफ के
 रोगों का नाशक है ॥ २४७ ॥ कटु पाक वायु को करता है । और कफ पि
 त्त को नाश करता है ॥ रस से ही विपाकों का विशेष कहा गया है ॥ २४८ ॥
 अनन्तर प्रभाव को कहते हैं ॥ रसादियों की समता में जो अधिक कर्म है उसको
 प्रभावज्ञ कहते हैं ॥ जैसे चित्रक के रसादि करके समान भी दुर्बुजमालगोटे
 की जड़ विरेचन करने वाली है ॥ २४९ ॥ और महुवे के समान रस से मुनक्कानथ
 दूध के समान घृत दीपन है ॥ २५० ॥

प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः ॥ समापि
 कुरुते दोष त्रितयस्य विनाशनम् ॥ २५१ ॥ क्वचित्तु
 केवलं द्रव्यं कर्मकुर्यात् प्रभावतः ॥ ज्वरं हन्ति शि
 रो बद्धा सह देवी जटा यथा ॥ २५२ ॥

तथा नानौषधियोगेषु फलं प्रति स्वभाव एवाश्रयणी
 यो न तु तत्र रसादिरूपहेतु विचारः कर्तव्यः ।

ह [यत आह सुश्रुतः ।]

भा० जैसे प्रभाव बड़ेल के रसादि से तुल्य भी आवले तीनों दोषों के नाश को
 करते हैं ॥ २५१ ॥ कहीं पर केवल द्रव्य प्रभाव से कर्म को करता है ॥ जैसे सह
 देवी की जटा सिर में बांधने से ज्वर को नाश करती है ॥ २५२ ॥

(क) निस्से नाना औषधी के योग के फल में स्वभाव ही को आश्रयण करना
 चाहिये । न कि उस रसादि रूप कारण का विचार करना चाहिये । जैसा कि सु-
 श्रुत ने कहा है ॥

अमी सामान्य चिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥ आ
 गमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ २५३ ॥ प्रत्य
 क्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः ॥ नौषधीर्ह
 तुभिर्विद्वान् परीक्षेत कदाचन ॥ २५४ ॥ विरुद्धगुण

संयोगे भूयसाल्यं हि जायते ॥ रसं विपाकस्तौ वीर्यं
प्रभावस्तान् व्यपोहति ॥ २५५ ॥ (क) इति रसगुण
वीर्यविपाकप्रभावाणां स्वरूपाण्यभिधाय कुत्र द्रव्यके
रसगुण वीर्यविपाकप्रभावाः सन्तीति बोधयितुं द्रव्य
गतान् रसगुण वीर्यविपाकप्रभावानाह । तत्र प्रथमं
हरीतक्या उत्पत्तिनाम लक्षणागुणानाह ।

भा० चतुर्विधा के द्वारा शास्त्र से उपयोग करने योग्य प्रसिद्ध येह औषध रस
भाषसे सामान्य करके विचार करने के योग्य होने हैं ॥ २५३ ॥ स्वभावसे प्रत्यक्ष
लक्षणाफलको करने वाली प्रसिद्ध । औषधियों विद्वानकमी भी तर्कके द्वारा परि
क्षाकरे ॥ २५४ ॥ विरुद्धगुणके संयोगमें बहुत भी थोड़ा होता है ॥ जैसे विपा
करसको और उन दोनोंको वीर्य तथा उनको प्रभावनाश करता है ॥ २५५ ॥
(क) इस प्रकार रसगुण वीर्य विपाक और प्रभावोंके स्वरूपको कहकर किस
द्रव्यमें कौन से रसगुण वीर्य विपाक और प्रभाव हैं उनको जानने के बाले द्रव्य
में के रसगुण वीर्य विपाक प्रभावोंको कहते हैं ॥ उसमें प्रथम हरीतकीकी उत्प
त्तिनाम लक्षणा और गुण इनको कहते हैं ॥

दत्तं प्रजापतिं स्वस्थ मग्निं नौ वाच च मूचतुः ॥ कुतो

हरीतकी जाता तस्यास्तु कति जातयः ॥ २५६ ॥ रसाः

कति समाख्याताः कति चोपरसाः स्मृताः ॥ नामानि

कति चोक्तानि किं वा तासाञ्च लक्षणम् ॥ २५७ ॥

केच वर्णा गुणाः केच काचकुत्र प्रयुज्यते ॥ केच

द्रव्येण संयुक्ता कांश्च रोगान् व्यपोहति ॥ २५८ ॥

भा० स्वस्थ प्रजापतिसे अग्नि कुमारांने पूछा । कहाँ से हरीतकी उत्पन्न
हुई और उसकी कितनी किसे हैं ॥ २५६ ॥ नष्ट रस कितने और उपरस कितने
कहे गये हैं ॥ नाम कितने कहे गये और उनका लक्षण क्या है ॥ २५७ ॥ कितने
वर्ण और कितने गुण हैं और किसको कहाँ पर देनी चाहिये ॥ कौन से द्रव्यके

साथ देने से कौन से लोगों को नाश करती है ॥ २५८ ॥

प्रश्नमनह यथा पृष्टं भगवन् । वक्तुमर्हसि ॥ अश्विनो
वचनं श्रुत्वा दक्षो वचनमब्रवीन् ॥ २५९ ॥ पयात वि
सृमेदिन्यां शक्रस्य पिवतोऽमृतम् ॥ ततो दिव्यान् स
मुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीनकी ॥ २६० ॥ हरीनक्य भया प
थ्या कायस्था पूतना मृता ॥ हेमवत्य व्यथा चापि चेत
की श्रेयसी शिवा ॥ २६१ ॥

भा० जैसे यह प्रश्न मैंने पूछा है, इसको आप कह सकेंगे हो ॥ अश्विनी कुमारों का
यह वचन सुनकर दक्ष प्रजापति बोले ॥ २५९ ॥ वृद्ध के अमृत पीते हुवे में एक
विन्दु पृथ्वी पर गिरा ॥ उस अमृत से सात जात की हरीनकी पैदा हुई ॥ २६० ॥
हरीनकी, अभया, कायस्था, पूतना, अमृता ॥ हेमवती, अव्यथा, चेतकी,
श्रेयसी, शिवा ॥ २६१ ॥

वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥ विजया
रोहिणी चैव पूतना चामृता भया ॥ २६२ ॥ जीवन्ती चे
तकी चेति विज्ञेयाः सप्तजातयः ॥ अत्राबुद्धता विज
या वृत्तासा रोहिणी स्मृता ॥ २६३ ॥ पूतना स्थिमती
सूक्ष्मा कथिता मांसला मृता ॥ पञ्चरेखा भया प्रो
क्ता जीवन्ती स्वर्गावरिणी ॥ २६४ ॥ त्रिरेखा चेतकी
ज्ञेया सप्ताना मियमाकृतिः ॥ विजया सर्वरोगेषु रो
हिणी व्रारोहिणी ॥ २६५ ॥

भा० वयस्था, विजया, जीवन्ती, और रोहिणी, ये नाम हड़के हैं ॥ विजया
रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया ॥ २६२ ॥ जीवन्ती, चेतकी, ये सात जा
॥ मूखी के समान गोल विजया होती है ॥ और वोह गोल रोहि
॥ २६३ ॥ छोटी गुठली वाली पूतना और गूदेदार अमृता

कही गई है ॥ पांच लकीरोंवाली अभया और सौनेके रंगकी सदृश जीवन्ती होती है ॥ २६४ ॥ तीन लकीरोंवाली चेतकी सातों हठोंका ये स्वरूप है ॥ सब रोगोंमें विजया । घावोंके भरनेमें रोहिणी देनी चाहिये ॥ २६५ ॥

प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता ॥ अक्षिरो
गेऽभया शस्ता जीवन्ती सर्वरोग हन् ॥ २६६ ॥ चूर्णार्थे
चेतकी शस्ता यथा युक्तं प्रयोजयेत् ॥ चेतकी द्विविधा
प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः ॥ २६७ ॥ षडङ्गुलाय
ता शुक्ला कृष्णा त्वेकाङ्गुला स्मृता ॥ काचिदा स्वाद
मात्रेण काचिद् गन्धेन भेदयेत् ॥ २६८ ॥

भा० लेपमें पूतना और शोधनके अर्थ अमृता अच्छी है । नेत्रके रोगमें अभया और जीवन्ती सर्वरोगोंकी नाशक है ॥ २६६ ॥ चूर्णमें चेतकी अच्छी होती है । योगके अनुसार योजनाना करे ॥ चेतकी रंगमें दो प्रकारकी कही है सफ़ेद और काली ॥ २६७ ॥ सुपेद छः अंगुल सन्धी और काली एक अङ्गुल की कही गई है ॥ कोई स्वाने मात्रसे ही दस्तोंको करती है । और कोई संघने से दस्त लाती है ॥ २६८ ॥

काचित् स्पर्शेन दृष्ट्या न्या चतुर्धा भेदयच्छिवा ॥ चेत
की पादयच्छाया मुपसर्ष्यन्ति ये नराः ॥ २६९ ॥ भिद्य
न्ते तत्क्षणादेव पशु पक्षि मृगादयः ॥ चेतकी तु धृता
हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः ॥ २७० ॥ तावद्भिद्येत वेगैस्तु
प्रभावान्नात्र संशयः ॥ न धार्यं सुकुमारराणां कृशा
नां भेषज द्विषाम् ॥ २७१ ॥

भा० कोई छूनेसे और कोई देखनेसे दस्त लाती है ऐसे चार प्रकारकी हठें होती हैं ॥ जो मनुष्य चेतकीके दृष्टकी साया में जाते हैं ॥ २६९ ॥ उनको उसी क्षणमें दस्त लगते हैं । और पशु पक्षी मृगादिकों को भी दस्त लगते हैं ॥ मनुष्य चेतकीको जव

तक धारण करने हैं ॥ २७० ॥ तब तक उसके प्रभाव से दस्त लगने हैं इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ सुकमार रूद्र और औषध के शत्रु इनके धारण करने योग्य नहीं होती ॥ २७१ ॥

चेतकी परमा शस्ता हिता सुख विरेचनी ॥ सप्तानाम
पि ज्ञातीनां प्रधानं विजया स्मृता ॥ २७२ ॥ सुख प्रयो
ग सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते ॥ हरीतकी पञ्चरसा
लवणानु घरा परम् ॥ २७३ ॥ रूक्षोष्णा दीपनी मे
ध्या स्वादुपाका रसायनी ॥ चक्षुष्या लघु राक्षुष्या
तृहणी चालुलोमिनी ॥ २७४ ॥ श्वासकास प्रमेहा
र्शकुष्ठ शोथोदर कृमीन् ॥ वैस्वर्य ग्रहणी रोग वि
बन्ध विषम ज्वरान् ॥ २७५ ॥

भा० चेतकी बद्धत अच्छी सुख विरेचन में होती है ॥ सान जातों में विजया प्रधान करी गई है सुख पूर्वक प्रयोग में देने योग्य होती है और सुलभ सब रोगों में प्रशस्त होती है ॥ हरीतकी पांच रसों से युक्त और लवण से रहित तथा बद्धत कसैली होती है ॥ २७३ ॥ रूखी गरम अग्नि की दीपन करने वाली पवित्र मधुर पाक वाली रसायनी होती है ॥ नेत्रों के हिन हलकी आशु के हि त तृहणी तथा वायु और मल की नीचे करने वाली होती है ॥ २७४ ॥ श्वास कास प्रमेह बवासीर कीट सूजन उदर रोग कृमी ॥ स्वरभंग ग्रहणी रोग विबन्ध अर्शोन् कृबल और विषम ज्वर ॥ २७५ ॥

गुल्माध्मान तथा च्छर्दि हिक्का कण्डू हृदामयान् ॥
कामलां शूलमानार्हं स्त्रीहानज्व यक्षतथा ॥ २७६ ॥
अश्मरी मूत्र रुच्यं मूत्रा घानज्व नाशयेत् ॥
स्वादुनिक्त कषायत्वात्पित्तहृत्कफहन्तु सा ॥ २७७ ॥

कटुतिक्तकषायत्वा दम्भत्वाद्वातहृच्छिवा ॥ पित्तक
कटुकास्त्वत्वाद्वातकृन्न कथं शिवा ॥ २७८ ॥ प्रभा
वाद्दोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत् प्रकाशयते ॥ हेतुभिः पि
ष्यबोधार्थं न पूर्व्वं कथ्यते धुना ॥ २७९ ॥ कर्म्मान्य
त्वं गुणैः साम्यं दृष्टमाश्रयभेदनः ॥ यतस्ततो नेति चि
न्त्यं धात्रीलकुचयोर्यथा ॥ २८० ॥

भा० वायुगोला आध्मान तथा वमन हृचकी खुजली हृद्रोग ॥ कामला धूल
अफार पित्तही तिह्नी ॥ २७६ ॥ पथरी मूत्ररुच्छ और मूत्राघात इनको नाश
करती है ॥ मोटा तीखा और कसैले पनसे बोह पित्तनाशक और कफनाशक
होती है ॥ २७७ ॥ कटु तिक्त कषाय इनसे और खट्टे पनसे हरीत की वातकी ना
शक है ॥ कटुवे और खट्टे पन से पित्तको करनेवाली हड़ है तब बानको कर
नेवाली क्यों नहीं है ॥ २७८ ॥ प्रभाव से जो दोषकी नाशकता सिद्ध है उसको
कहते है ॥ शिष्य बोधके अर्थ प्रथम हेतुओं से नहीं कहा अब ॥ २७९ ॥ आ
श्रय के भेद से गुणोंकी समता और कर्माण्यता देखी ॥ जिसे तिसे चिंतन क
र लेके योग्य नहीं है जैसे आंवले बड़लोंकी ॥ २८० ॥ ५६

पथ्याया मज्जनि स्वादुः स्नाय्वावहो व्यवस्थितः ॥ दृ
ते तिक्तस्त्वचि कटु रस्थिलुतुवरो रसः ॥ २८१ ॥ नवा
स्त्रिधा घनावृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च याम्भसि ॥ निमज्जेत्
सांश्रशस्ता च कथितातिगुणप्रदा ॥ २८२ ॥ नवादि
गुणयुक्तत्वं नथैकत्वं द्विकर्पता ॥ हरीतक्याः फले यत्र
द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते ॥ २८३ ॥

भा० हड़की मज्जा में मधुर आयु में अम्ल रहना है ॥ पड़दे में तिक्तता छिलके में
कटु और अस्थि में कसैला रस होना है ॥ २८१ ॥ नवीन त्रिधा घन गोल भाग
और पानी में डालने से डूबे बोह अच्छी और गुणको देनेवाली कही गई है ॥ २८२ ॥

नवादि गुणकरके युक्त और वैसेही रक्त जगह रोगोले की श्रेष्ठ है ॥ और जहां हरीन-
की के दो फल जुड़े ऊँचे हैं वोह श्रेष्ठ है ॥ २८३ ॥

चर्विता बर्हयत्यग्निं पेयि ना मल शोधिनी ॥ खिन्ना

संघ्राहिणी पथ्या मृष्टा मोक्ता त्रिदोषनुत् ॥ २८४ ॥

उन्मीलिनी बुद्धिबले न्दियाणां निर्मूलिनी पित्तकफा

निलानाम् ॥ विस्रंसिनी मूत्र शक्नु गलानां हरीन की

स्यात् सह भोजनेन ॥ २८५ ॥ अन्न पान कृतान् दोषा

न वात पित्त कफोद्भवान् ॥ हरीन की हरत्याश्च भुक्त स्यो

परि योजिता ॥ २८६ ॥

भा० चर्वण की ऊँच आग्निको बढ़ाती है पीसी ऊँच मलको शोधन करने वा
ली है ॥ और तली ऊँच संग्रहणी तथा भुनी ऊँच त्रिदोष नाशक कही गई है ॥

२८४ ॥ बुद्धि बल इन्द्रियों को प्रकाश करने वाली और पित्त कफ वायु को नाश
करने वाली ॥ तथा मूत्र मल दोषों को निकालने वाली हरीन की होती है भोजन
नके साथ ॥ २८५ ॥ वात पित्त कफ से उत्पन्न ऊँचे दोष और अन्न पान से ऊँचे रोगों
को ॥ भोजन के उपरांत योजना की ऊँच हरीन की शीघ्र नाश करती है ॥ २८६ ॥

लवणो न कफं हन्ति पित्तं हन्ति शर्करा ॥ घृतेन वा

तज्जान् रोगान् सर्वरोगान् गुडान्विता ॥ २८७ ॥ मिथू

त्य शर्करा शुरांठी करणा मधुगुडैः क्रमात् ॥ वर्षादि

ष्वभयां प्राण्या रसायन गुरोषिणा ॥ २८८ ॥ अध्वा

तिखिन्नो बलवर्जितश्च रुक्षः कृशोः लंघनकर्षित

श्च ॥ पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्त रक्तस्त्व

भयान्नखादेत् ॥ २८९ ॥

भा० लवण के साथ कफ को नाश करती है और शर्करा के सहित पित्तको

घनके सहितवानके रोगों को और गुड़के साथ हरीनकी सब रोगों को नाश करती है ॥ २८७ ॥ सैन्धव लवण पार्कशं शुंठी पीपल मधु और गुड़ कमसे इनके साथ हरीनकी । वर्षादि ऋतुओं में रसायन के गुण चाहनेवालों ने प्राशन अर्थात् खानी चाहिये ॥ २८८ ॥ मार्ग से अति खिन्न हुआ बल से रहित रूखा हुआ लघन से दुर्बल हुआ ॥ पित्त अधिकवाला गर्भवती स्त्री और फल लिया हुआ घेस व हरीनकी को नखावे ॥ २८९ ॥

[अथ विभीतकस्य नामानि गुणाश्च ।]

विभीतक स्त्रीलिङ्गः स्यान्नादाः कर्पफलस्तु सः ॥

कालिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः ॥ २९० ॥

विभीतकं स्वादु पाकं कपायं कफपित्तनुत् ॥ उष्णवी

र्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम् ॥ २९१ ॥ रुक्षं नेत्र

हितं केश्यं कृमिवैस्वर्यं नाशनम् ॥ विभीतमज्जा तृट्

च्छर्द्दि कफवातहो लघुः ॥ २९२ ॥ कपायो मदक

चाथ धात्रीमज्जापि तद्गुणः ॥

भा० अनन्तर बहेड़े के नाम और गुण कहने हैं ॥ विभीतक त्रिलिङ्ग अक्ष कर्प फल ॥ कालिद्रुम भूतवास कलियुगालय । येह बहेड़े के नाम हैं ॥

२९० ॥ बहेड़ा पाक में मधुर कसेला कफ पित्त का नाशक ॥ उष्ण वीर्यवाला स्पर्श में शीतल भेदन कास का नाशक ॥ २९१ ॥ रुखा नेत्र के हित केश की श्वर भंग का नाशक होता है ॥ बहेड़े की गिरी मृदा व मनकफ वा न इनकी नाश करनेवाली और हलकी ॥ २९२ ॥ तथा कसेली नष्ट करने वाली गीहीमी है । और आंवले की गिरी भी इसीके समान गुण को करती है ॥

[अथामलक्या नामानि गुणाश्च ।]

त्रिदायलक्यं गारव्यान् धात्री विषफला मृता ॥ ह

रीतली गन्धर्वाची मालं किन्तु विशेषतः ॥ २९३ ॥

रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं दृष्यं रसायनम् ॥ हन्तिवातं तद
 म्भत्वात् पित्तं माधुर्य्यशैत्यतः ॥ २८४ ॥ कफं रुक्क्ष
 कषायत्वात् फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् ॥ यस्य य
 स्य फलस्येह वीर्य्यं भवति यादृशम् ॥ २८५ ॥ त
 स्य तस्यैव वीर्य्येण भज्जानमपि निर्दिशेत् ॥

भा० अनन्तर आंवलेके नाम और गुण कहने हैं ॥ तीनों आंवलों में धात्री आम
 लक प्रसिद्ध है और तीनों में वे फलवाली अमृता प्रसिद्ध है ॥ हरीन के समान
 गुण धात्री फल का है किन्तु विशेष करके ॥ २८३ ॥ रक्त पित्त और प्रमेह की ना
 शक और अत्यन्त दृष्य तथा रसायन होनी है ॥ वोह खड़े पन से वायु को नाश
 करता है ॥ और मधुरता और शीतता से पित्त को नाश करता है ॥ २८४ ॥
 रुखे और कसेले पन से कफ को करता है ॥ ऐसे आंवला त्रिदोष के कीतने
 वाला है ॥ यहां पर जिस २ के फल का वीर्य्य जैसे होना है ॥ २८५ ॥ उस २ के वीर्य्य
 से मज्जा को भी जान लेवे ॥

अथ त्रिफलाया लक्षणानाम गुणाः ।] यथ्याविभी
 तधात्रीनां फलैः स्यात् त्रिफलासमैः ॥ फलत्रिक
 च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता ॥ २८६ ॥ त्रिफला
 कफ पित्तघ्नी मेह कुष्ठहरा सरा ॥ चक्षुष्या दीपनी
 रुच्या विषमज्वर नाशिनी ॥ २८७ ॥

भा० अनन्तर त्रिफला के लक्षण और नाम तथा गुण कहने हैं ॥ हड़ बहे
 डा और आंवला इनके सम फलों से त्रिफला होती है । फलत्रिक त्रिफला औ
 र वोह वराह भी कही गई है ॥ २८६ ॥ त्रिफला कफ पित्त की नाशक प्रमेह कु
 ष्ट की नाशक और दस्तावर नेत्र के हिन अग्निके दीपन करने वाली रुचिके क
 रने वाली और विषम ज्वर नाशक है ॥ २८७ ॥

[अथ शुण्ठ्या नामानि गुणान्ध्र ।]

शुण्ठी विष्ठा च विष्वक्च नागरं विष्वभेषजम् ॥ ऊष

रांकटु भद्रञ्च शृङ्गवेरं महौषधम् ॥ २६८ ॥ सुराहीरु
 व्यामवानघ्नी पाचनी कटुका लघुः ॥ स्निग्धोष्णा म
 धुरा पाके कफवात विवन्धनुत् ॥ २६९ ॥ चृष्या सख्यी
 वमिश्वास शूलकास हृदामयान् ॥ हन्ति श्लीपद रोग
 धार्षी आनाहोदरभारुतान् ॥ ३०० ॥ आग्नेय गुणा भूर्य
 ष्टं तोयां शम्पारेणोपि यत् ॥ संगृह्णाति मलं तत्तु ग्राहि
 ष्वरत्पादयो यथा ॥ ३०१ ॥ विवन्धभेदनी यातु साकं
 ग्राहिणी भवेत् ॥ शक्तिर्विवन्धभेदे स्यात् यतो न मल
 पानने ॥ ३०२ ॥

भा० अनन्तर सोंढके नाम गुणा कहते हैं ॥ शृङ्गी विम्बा विम्ब नागर विष्व
 भेषज ॥ कृपण कटुभद्र शृङ्गवेर महौषध येह सोंढके नाम है ॥ २६८ ॥ सोंढ
 रुचिको करनेवाली आमवान की नाशक पाचन कड़वी हलकी ॥ चिकना ग
 रम पान में मधुर कफवात और कृवजियन को नाश करनेवाली है ॥ २६९ ॥
 चृष्य मलकी अतुलोमन करनेवाली वामन श्वास शूल खांसी हृदय के
 रोग ॥ श्लीपद सूजन ववासीर अफार इदर रोग और घात इनको नाश करती
 है ॥ ३०० ॥ बड़न गरम जलके अंशको शोषण करनेवाली जो ॥ वोह मलकी
 वाधनी है ॥ जैसे ग्राही सुरत्पादिक ॥ ३०१ ॥ विवन्धको भेदन करनेवाली जो
 है वोह कैसे ग्राहणी होती है ॥ विवन्ध भेदमें शक्ति है क्यों कि मल पानन में
 नहीं ॥ ३०२ ॥

[अथार्द्रकस्य नामानि गुणाश्च ।]

आर्द्रकं शृङ्गवेरं स्यात् कटुभद्रं तथा र्द्रिका ॥ आर्द्रि
 का भेदिनी शुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मता ॥ ३०३ ॥
 कटुका मधुरा पाके रुक्षा वात कफा पहा ॥ ये गुणाः
 कथिताः सुंठ्या स्तेऽपि संत्यार्द्रकेऽपि त्वलाः ॥ ३०४ ॥
 भोजनाग्रे सदापथ्यं लवणार्द्रकं भक्षणम् ॥ अग्नि

सन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठ विप्रोधनम् ॥ कुष्ठ पा-
रङ्गामये कृच्छ्रे रक्त पित्ते ज्वरो ज्वरे ॥

भा० अनन्तर अदरक के नाम और गुण कहते हैं ॥ आर्द्रक शृंगवेर क
डुमद्र आर्द्रिका यह नाम हैं ॥ अदरक भेदन करनेवाला भारी तीखा
गरम दीपन कस्ता गया है ॥ ३०३ ॥ कड़वा पाक में मधुर रूखा वात कफ
का नाशक है ॥ जो गुण सोंठ में कहे गये हैं वोह सब अदरक में है ॥ ३०४ ॥
भोजन बोपहले नमक और अदरक का खाना सदा पथ्य है ॥ अग्निका
दीपन रुचि करनेवाला जीभ कण्ठ इनका विप्रोधन है ॥ ३०५ ॥ कुष्ठ पांडुरो
ग और मूत्र कृच्छ्रे रक्त पित्त ज्वरम और ज्वर इनमें भी पथ्य है ॥

दाहं निदाघ शरदो नैव पूजितमार्द्रकम् ॥ ३०६ ॥

[अथ पिप्पल्या नामानि गुणाश्च ।

पिप्पली मागधी कृषणा वैदेही चपला करणा ॥

उपकुल्योषणा शीणडी कोला स्यात् तीक्ष्णा तराडु
ला ॥ पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादु पाका रसायनी

॥ अनुषाणा कटुका स्निग्धा वातप्लेष्म हरी लघुः ॥

३०७ ॥ पिप्पली रेवनी हन्ति प्रसासकासोदर ज्वरान् ॥

कुष्ठप्रमेह गुल्मार्शः स्तीह शूलाममारुतान् ॥ ३०८ ॥

आर्द्रा कफप्रदा स्निग्धा शीतला मधुरा गुरुः ॥ पित्त

प्रशमनी सा तु शुष्का पित्त प्रकोपिणी ॥ ३०९ ॥

भा० दाह में ग्रीष्म और शरद में अदरक अच्छा नहीं होता ॥ ३०६ ॥

[अनन्तर पिप्पली नाम और गुण कहते हैं ॥ पिप्पली, मागधी, कृषणा,
वैदेही, चपला, करणा, उपकुल्याः उष्मा, शीणिड, कोला, तीक्ष्णा, तरा
ला, यह पीपल के नाम हैं ॥ ३०७ ॥ पीपल दीपन और कुष्ठ पाक में मधुर
रसायन ॥ ज्वर, कफ, मूत्र कृच्छ्रे रक्त पित्त ज्वर ॥ और दातकफ को दूर करने

वाली तथा हलकी होती है ॥ ३०८ ॥ पीपल दंस्तावर होती है और श्वास कास उदर
रोग तथा ज्वर इनको नाश करती है ॥ कोढ़ प्रमेह वायगोला बचासीर सिही शूल
ग्राम्भवात ॥ ३०९ ॥ इनको नाश करती है गीली पीपल कफ को करने वाली चिकनी
शीतल मधुर भारी ॥ पित्त की शमन होती है । और बोह बहन सूखी ऊई पित्त को
प्रकीर्ण करने वाली होती है ॥ ३१० ॥

पिप्पली मधुसंयुक्ता मेद कफ विनाशिनी ॥

श्वास कास ज्वरहरा वृष्या मेध्याग्निवर्द्धिनी ॥ ३११ ॥

जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुड पिप्पली ॥ कासा

जीर्णोरुचिश्वास हृत्पाण्डु कृमिरोगनुन् ॥ ३१२ ॥ द्विगु

णः पिप्पली चूर्णाद् गुडोऽत्र भिषजां मतः ॥

[अथ मरिचस्य नामानि गुणाश्च ।

मरिचं वेल्गजं कृष्ण मूषणं धर्मपत्तनम् ॥ मरिचं कटु

कं तीक्ष्णं दीपनं कफवातजित् ॥ ३१३ ॥ उष्णं पित्त

करं रुक्षं श्वास शूल हृत्मीन हरेत् ॥ तदाई मधुरं पा

कं नात्युष्णं कटुकं गुरुः ॥ ३१४ ॥ किञ्चि तीक्ष्ण गु

णं श्लेष्मप्रसेकि स्याद पित्तलम् ॥

भा० मधुके सहित पीपल मेद कफ इनको विनाश करने वाली ॥ श्वास कास

ज्वर इनकी नाशक उष्ट बुद्धि को बढ़ाने वाली अग्नि बढ़ाने वाली होती है ॥ ३११

जीर्ण ज्वरमे और भन्वाग्निमें गुड पीपल अच्छी होती है ॥ कास अजीर्ण अरुची

श्वास इनको नाश करने वाली और पांडु रोग और कृमि रोग इनको नाश करने

वाली होती है ॥ ३१२ ॥ पीपल के चूर्णसे गुड युग्मना वैद्यों के सम्मत है ॥

अनन्तर मरिच के नाम और गुण कहने हैं ॥ मरिच, वेल्गज, कृष्ण, पण, धर्म

पत्तन, येह मरिच के नाम हैं ॥ मरिच कटु बीतीक्ष्ण दीपन कफ वात की नाशक

होती है ॥ ३१३ ॥ उष्ण पित्त को करने वाली सूखी श्वास शूल रुमि इनको नाश

करती है ॥ बोह गीली पाकमें मधुर होती है । और न बहन गर्भ कटवी भारी होती

हैं ॥ ३१४ ॥ कुछ तीखी गुणवाली कफको निकालने वाली पित्तको करनेवाली होती है ॥

[अथ त्रिकटुक नाम लक्षणगुणाः।]

विश्वोपकुल्या मरिचं त्रयं त्रिकटु कथ्यते ॥ कटु त्रिक
लु त्रिकटुं त्र्यूषणं व्योष उच्यते ॥ ३१५ ॥ त्र्यूषणं दीप
नं हन्ति श्वासकास त्वगामयान् ॥ गुल्ममेह कफस्थौ
ल्य मेद श्लीपद पीनसान् ॥ ३१६ ॥

भा० अनन्तर त्रिकटु के नाम और लक्षण तथा गुण कहने हैं ॥ सोंठ, पीपल, निच, इन तीनोंको त्रिकटु कहने हैं ॥ कटु त्रिक, त्रिकटु, त्र्यूषण, व्योष, यह त्रिकटु के नाम हैं ॥ ३१५ ॥ त्रिकटु दीपन है श्वासकास त्वचाके रोग इनको नाश करता है ॥ गुल्म प्रमेह कफ स्थूलता मेद श्लीपद पीनस इनको भी नाश करता है ॥ ३१६ ॥

[अथ पिप्पलीमूलस्य नामानि गुणाश्च।]

ग्रन्थिकं पिप्पलीमूल मूषणं चटकाशिरः ॥ दीपनं पि
प्पली मूलं कटूषणं पाचनं लघु ॥ ३१७ ॥ रूक्षं पित्तकरं
भेदि कफ वातोदरा पहम् ॥ आनाह स्निह गुल्मघ्नं क्षमि
श्वासक्षया पहम् ॥ ३१८ ॥

भा० अनन्तर पीपलामूल के नाम और गुण कहने हैं ॥ ग्रन्थिक, पीपलामूल, कपरा चटकाशिर यह पीपलामूल के नाम हैं ॥ पीपलामूल दीपन कटु वा उष्ण पाचन हलका होता है ॥ ३१७ ॥ रूखा पित्तको करनेवाला भेदन करनेवाला कफ वात उदर रोग इनका नाशक ॥ अफारा स्निही वायुगोला इनका नाशक तथा क्षमि श्वास क्षय इनका नाशक है ॥ ३१८ ॥

अथ चतुरूषणस्य लक्षणगुणाः। त्र्यूषणं सकरा
मूलं कथितं चतुरूषणम् ॥ व्योषस्यैव गुणाः प्रोक्ता
अधिक्ताश्चतुरूषणोः ॥ [चव्यगुणाः] भवेच्चव्यन्तु च

विक्ता कथिता सा नथोपराणा ॥ कर्णो मूलं गुणं च व्यं
विशेषात् गुदजापहम् ॥ ३२० ॥

[अथ गजपिप्पल्या नामानि गुणाः ।] चविकायाः फः
गजः लं प्राज्ञैः कथिताः पिप्पली ॥ कपिवल्ली कीलवल्ली
श्रेयसी च शिरश्च सा ॥ ३२१ ॥ गजरुष्णा कटुर्वा
त स्लेष्महृद्बहिर्बहिर्नी ॥ उष्णानिहन्यती सारं
श्वासकरा मयः कृमीन् ॥ ३२२ ॥

भा० अनन्तर चतुर्गुण के लक्षण और गुण कहते हैं ॥ उष्ण अर्थात् त्रिक
टु पीपला मूल के सहित चतुर्गुण कहा गया है ॥ त्रिकटु कहीं अधिक
गुण चतुर्गुण में कहे गये हैं ॥ ३२० ॥ अनन्तर चाव्य के गुण कहते हैं ॥
चाव्य, चरिक, नथा उष्णा, कही गई है ॥ पीपल का गुण चाव्य में है विशेष
करके बवासीर का नाशक होता है ॥ ३२१ ॥ अनन्तर गजपीपल के नाम
और गुण कहते हैं ॥ चाव के फल को बुद्धिवानों ने गजपीपल कहा है ॥
कपिवल्ली, कीलवल्ली, श्रेयसी, वशिर ॥ ३२१ ॥ यह गजपीपल के नाम हैं ॥
गजपीपल कड़वी वात कफ को नाशक अग्निको बढ़ाने वाली ॥ उष्म है
और अनीमार श्वासं करेगा कृमि इनको नाश करती है ॥ ३२२ ॥

[अथ चित्रकम्य नामानि गुणाश्च ।] चित्रकोऽनलं ना
मा च पीठी व्यालस्तथोपराः ॥ चित्रकः कटुकः
पाके बन्धि कृत्वा चनो लघुः ॥ ३२३ ॥ रूक्षोष्णा ग्र
हणी कुष्ठ शोथार्थः कृमिकासनुत् ॥ वातस्लेष्म
हने ग्राही वानार्थ स्लेष्मपित्तहत ॥ ३२४ ॥

भा० अनन्तर चित्रक के नाम और गुण कहते हैं ॥ चित्रक, अग्निके नाम ना
ला, पीठ व्याल, स्तथा, ये चित्रक के नाम हैं ॥ चित्रक पाक में कटु वा अग्नि
ने रुग्ने लाना गचन और हलका होता है ॥ ३२३ ॥ रूखा उष्म है ग्रहणी ।

कोष्ठ सृजन बवासीर कृमि और कास इनका नाशक भी है ॥ चातकफका नाश
क ग्राही वायुकी बवासीर को और कफ पित्त को नाश करना है ॥ ३२४ ॥

अथ पञ्चकोलस्य लक्षणा गुणाः । पिप्पली पिप्पली
मूलं च व्यचित्रक नागैः ॥ पञ्चभिः कोलमात्रं य
त्यञ्चकोलं तदुच्यते ॥ ३२५ ॥ पञ्चकोलं रसे पाके
कटुकं रुचिकृतं मतम् ॥ तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं
दीपनं कफवातनुत् ॥ ३२६ ॥ गुल्महृद्दीपना
ह शूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥

भा० अन्नान्तर पञ्चकोल के लक्षण और गुण कहते हैं ॥ पीपल, पीपल
मूल, चाब, चित्रक, सोंठ ॥ इन पाँचों के ८ भासे को पञ्चकोल कहते हैं
३२५ ॥ पञ्चकोल रसमें और पाकमें कटुवा और रुचिकरने वाला है ॥ ती
खा उष्ण पाचन बलान् अञ्छा दीपन और कफ वात के नाश करने वाला
है ॥ ३२६ ॥ गुल्म वायु गोलास्तिही उदररोग अफारा और शूल इन
का नाशक पित्त कुपित करने वाला है ॥

अथ षड्धृषणस्य लक्षणा गुणाः । पञ्चकोलं स
मरिचं षड्धृषणं मुदा ह तम् ॥ पञ्चकोल गुणान्त
तु रुक्षसुष्णं विषापहम् ॥ ३२७ ॥

अथ यवान्या नामानि गुणाः । यवानिकोऽप्रगंधा
च ब्रह्मदर्भाऽजमोदिका ॥ सैवोक्ता दीप्यका दीप्या
मथा स्याद्यवसा ह्वया ॥ ३२८ ॥ यवानी पाचनी
रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुका लघुः ॥ दीपनी च तथा
निक्ता पित्तला शुक्र शूलहृत् ॥ ३२९ ॥

भा० अनन्तर षडुपराणके लक्षण और गुण कहते हैं ॥ और बोह पंचकोलके
समान गुणवाला है ॥ तथा रूखा ऊष्ण विषका नाशक भी है ॥ ३२३ ॥
अथ अजवायन के नाम और गुण कहते हैं ॥ यवानिका, उषगन्धा, ब्रह्म
दर्भा, अजमोदिका, और बोही कही गई है दीपिका, दीप्या तथा यवसाह्वया
येह अजवायन के नाम हैं ॥ ३२७ ॥ अजवायन पाचन करने वाली रुचि
के हिन तीखी उष्ण कड़वी हलकी ॥ अग्निको दीपन करने वाली तथा तिक्त
पित्तको करने वाली शुक्र और मूलकी नाशक होती है ॥ ३२८ ॥

वातश्लेष्मोदरानाह गुल्म स्त्रीह कृमि प्रणुत् ॥

अथाजमोदायाः नामानि गुणाश्च ।] अजमोदा खराश्वा
च मयूरो दीप्यकस्तथा ॥ तथा ब्रह्मकुशा प्रोक्ता काखे
ली च समस्तका ॥ ३३० ॥ अजमोदा कटुस्त्रीक्ष्णा दीप
नी कफवातनुत् ॥ उष्णा विदाहिनी हृद्या दृष्या च
लवरी लघुः ॥ ३३१ ॥ नेत्रामयकफच्छर्दि हिक्का
चस्ति रुजोहरेत् ॥

भा० वातकफ अफारा वायगोला सहो कृमि इनकी नाशक भी है ॥ अनन्तर
अजमोदा के नाम और गुण कहते हैं ॥ अजमोदा, खराश्वा, मयूर, दीप्यक
॥ तथा ब्रह्मकुशा, काखेली, समस्तका, यह अजमोद के नाम हैं ॥ ३३० ॥
अजमोद कड़वी तीखी दीपन कफवातकी नाशक ॥ उष्ण विदाहको करने
वाली हृद्य दृष्य बल करने वाली और हलकी होती है ॥ ३३१ ॥ नेत्र रोगकफ
को चमन हिचकी पेहकी पीड़ा इनको दूर करती है ॥

अथ खरासानी यवानी गुणाः ।] पारसीक यवानी तु
यवानी सहशी गुणैः ॥ विशेषान् पाचनी रुच्या या
हिरणी मादिनी गुरुः ॥ ३३२ ॥ अथ सुक्तजीरा कृष्य
जीरा कलौजी एषां नामानि गुणाश्च ।]

जीरको जरणो जाजी कणास्या दीर्घ जीरकः ॥ हृष्याजी

रः सुगन्धश्च तथैवो जाजर शोधनः ॥ ३३३ ॥ कालाजी

जी त सुषवी कालिका चोप कालिका ॥ पृथ्वीका कार

वो पृथ्वी पृथु रुषोप कुञ्जीका ॥ ३३४ ॥ उपकुञ्जी च

कुञ्जी च वह जीरक इत्यपि ॥ जीरक वितयं रुहं कद्र

यां दीपनं लघु ॥ ३३५ ॥ संग्राहि पित्तलं मेध्यं गर्भा

शय विशुद्धि कृत् ॥ ज्वरं पाचनं रुच्यं बल्यं रुच्यं

कफापहम् ॥ ३३६ ॥ चक्षुष्यं पवनाध्मान गुल्म छ

द्योतिसार हन् ॥

भा० अनन्तर खुरासानी अजवायन के नाम और गुण कहने हैं । खुरासानी अजवायन गुणों में अजवायन के सदृश होती है ॥ विशेष करके पाचन रुचि को करने वाली ग्राहणी नशकने वाली भारी होती है ॥ ३३२ ॥ अनन्तर सफेद जीरका चर्मीरा तथा कलौजी इनके नाम और गुण कहने हैं ॥ जीरक, जरण, अजानी, कणा, दीर्घ जीरक, यह सफेद जीरके नाम हैं ॥ हास्य जीरक, सुगन्ध तथा उद्गार शोधन ॥ ३३३ ॥ कालाजी, सुषवी, कालिका, उपकालिका पृथ्वीका कारवी पृथ्वी, पृथु, रुषा, उपकुञ्जिका, ये हस्याह जीरके नाम हैं ॥ ३३४ ॥ उपकुञ्जी, कुञ्जी, वह जीरक, ये भी जीरके नाम हैं ॥ तीनों जीरके रुखे कड़ेवे, उष्ण दीपन हलके ॥ ३३५ ॥ संग्राही पित्त को करने वाले बुद्धि को बढ़ाने वाले गर्भाशय की शुद्धि को करने वाले हैं ॥ ज्वर के नाशक पाचोपद्रवी को करने वाले बल को देने वाले रुचि को करने वाले और कफा के नाशक हैं ॥ ३३६ ॥ नेत्र के हिन वायु पेट का फूलना वायुगोला दमन श्रुतीसार इसके नाशक हैं ॥

[अथ धान्यकस्य नामानि गुणाश्च ।

धान्यकं धानकं धान्यं धान्ना धानियकं तथा ॥ कुन

दी धेतुक्ता छत्रा कुस्तुम्बुरु दितुन्नकम् ॥ ३३७ ॥ धा

न्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु ॥ निक्तं कद्रुषा

वीर्यं ज्व दीपनं पाचनं स्मृतम् ॥ ३३८ ॥ ज्वरघ्नं रेषकं
 याही स्वादु पाकि विदोषं नुत् ॥ नृणां दाह वमिषं वा
 स कास काश्यं क्रिमिप्रणत् ॥ ३३९ ॥ आर्द्रं नु तद्गुणं
 स्वादु विशेषान् पित्तनाशितम् ॥

भा० अनन्तर धनिये के नाम और गुण कहते हैं ॥ धान्यक, धानक, धान्य,
 धाना, धनियक, ॥ कुन्दी, घेसुका, छवा, कुसुम्बरु, विनुन्नक, येह धनिये
 के नाम हैं ॥ ३३७ ॥ धनियों कसेली चिकनी पुरुषत्व को नाश करने वाली भूत
 को लाने वाली हलकी ॥ निक्कड़वी उष्ण वीर्यवाली दीपन पाचन कर्हा गर्द है
 ॥ ३३८ ॥ ज्वर की नाशक रुचिकी करने वाली दस्त को बंद करने वाली ॥ पाक में
 मधुर विदोष की नाशक ॥ निषा दाह वमन काम म्वास दुर्बलता और रुमी दस्त
 की नाशक है ॥ ३३९ ॥ गीली उसी के समान गुणवाली मधुर विशेष करके पित्त
 के नाश करने वाली होती है ॥

अथ सौंफिसो आतयोर्नामानि

गुणाश्च ॥ शतपुष्पा शनाह्वा च मधुरा कारवी मिसिः ।

अतिलम्बी सितछत्रा संहिता छत्रिकापि च ॥ ३४० ॥

च्छत्रा शालेय शालीनी मिश्रेया मधुरा मिसिः ॥

शतपुष्पा लघुस्त्रीक्ष्णा पित्तकृत् दीपनी कटुः ॥ ३४१ ॥

उष्णा ज्वरानिल प्लेष्मं व्रणभूलक्षि रोगहृत् ॥

मिश्रेया तद्गुणा प्रोक्ता विशेषाद्योनि भूलनुत् ॥ ३४२ ॥

भा० अनन्तर सौंफ और सीवा उनके नाम और गुण कहते हैं ॥ शतपु-
 ष्पा, शताह्वा, मधुरा-कारवी, मिसि, ॥ अतिलम्बी, सितछत्रा, संहि-
 ता, छत्रिका, यह सौंफ के नाम हैं ॥ ३४० ॥ छत्रा, शालेय, शालीन, मि-
 श्रेया, मधुरा, मिसि, यह सीवा के नाम हैं ॥ सौंफ हलकी तीखी पित्त को
 करने वाली दीपन कड़वी है ॥ ३४१ ॥ उष्ण ज्वर घानकफ क्षया भूल
 और नेत्ररोग इनकी नाशक है ॥ सीवा उसी समान गुणवाला कहा गया
 है विशेष करके घोनिभूलका नाशक है ॥ ३४२ ॥

अग्निमान्द्यहरी हृद्या बहु विट्कमि शुक्रहृत् ॥ रू-
क्षोष्णा पाचनीकासवमि श्लेष्मानिलान्हरन् ॥ ३४३ ॥

[अथमेथी वनमेथी नामगुणाः।]

मेथिका मिथिनि मेथि दीपनी बहुपत्रिका ॥ बोधि-
नी बहुबीजा च जातिगन्धफला तथा ॥ ३४४ ॥

बल्लरीक्षा कामन्या मिश्रपुष्पा चकैरवी ॥ कुञ्चि-
का बहुपर्णी च पित्तजित् वायुनुत् द्विधा ॥ ३४५ ॥

मेथिका वातशमनी श्लेष्माघ्नी ज्वरनाशिनी ॥ ततः
स्वल्पगुणाः बल्या वाजिनां सातु पूजिता ॥ ३४६ ॥

[अथ चन्द्रशूरगुणाः।]

भा० अग्निमान्द्यको नाश करनेवाली हृद्य कृद्धियन कमि शुक्र इनको नाश
करनेवाली ॥ रूखी उष्ण पाचनकास वमन कफनाश इनको नाश करनी है
॥ ३४३ ॥ अनन्तर मेथी वनमेथी के नामगुण कहने हैं ॥ मेथिक, मिथिनी, मे-
थी, दीपनी, बहुपत्रिका ॥ बोधिनी, बहुबीजा, जातिगन्ध, फला, ॥ ३४४ ॥
बिल्वरी, कामन्या, यह मेथी के नाम हैं। मिश्रपुष्पा, पैरवी, कुञ्चिका, बहुपर्णी, पित्त-
जित्, वायुनुत्, यह दो प्रकार की ज्वरमेथी होती हैं ॥ ३४५ ॥ मेथी
वातको शमन करनेवाली कफकी नाशक और ज्वरको दूर करनेवाली होती है
॥ उसे स्वल्प गुणवाली बलको देनेवाली और घोड़ोंको बोह अच्छी होती है
॥ ३४६ ॥ अनन्तर चन्द्रशूर के नाम और गुण कहने हैं ॥

चन्द्रिका चर्महन्त्री च पशुमेहनकारिका ॥ नन्दिनी
कारवी भद्रा वासपुष्पा सुवासरा ॥ ३४७ ॥ चन्द्रशूरं
हितं हिक्का वातश्लेष्मानिसारिणाम् ॥ अस्तृवात ग-
दहेषि दलपुष्टि विवर्द्धनम् ॥ ३४८ ॥

भा० चन्द्रिका चर्महन्त्री पशुमेहनकारिका ॥ नन्दिनी कारवी भद्रा वासपुष्पा

सुवासय, येह चन्द्रशूरके नाम हैं ॥ ३४३ ॥ चन्द्रशूर हिचकी वातकफ अतीसार
में हिन करता है ॥ रक्तचात रोग को दूर करनेवाला बलसुप्तिको बढ़ानेवाला ही
ना है ॥ ३४४ ॥ [अथ चारदाना ।]

मेथिका चन्द्रशूरश्च कालाजाजीयवानिका ॥ एतच्च
तुष्टयं युक्तं चतुर्वीजमिति स्मृतम् ॥ ३४६ ॥ तच्चूरीं भ
क्षितं नित्यं निहन्ति पचनामयम् ॥ अजीर्णीं शूलमाध्मा
नं पार्श्वशूलं कटिव्यथाम् ॥ ३५० ॥

[अथ हिङ्गुः ।] सहस्रवेधिजतुकं बाल्मीकं हिङ्गुं रामठम् ॥
हिङ्गुणां पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातबलासहन् ॥ ३५१ ॥
शूलगुल्मोदरानाहं कृमिघ्नः पित्तवर्धनः ॥

भा० अनन्तर चारदाना मेथी-चन्द्रशूर-स्याहजीश भर्जवायन ॥ यह चर्से मि
लकर चतुर बीज कहा गया है ॥ ३४६ ॥ उसके चूर्ण को नित्य भक्षण करने से
वातके रोग नाश होते हैं ॥ और अजीर्ण शूल पेटका फूलना पसलीका शूल
कमरकी पीड़ा इनको दूर करता है ॥ ३५० ॥ अनन्तर हींग के नाम और गु-
ण कहते हैं ॥ सहस्रवेधि, जतुक, बाल्मीक, हिङ्गु, रामठ ॥ येह हींग के नाम
हैं ॥ हींग गरम पाचन रुचिको करनेवाला तीखा चातकफका नाशक है ॥
३५१ ॥ शूलगुल्म वायुगोला उदर रोग अफारा और कृमीइनका नाशक ।
पित्तका बढ़ानेवाला है ॥ [अथ वचनामानि गुराण्यश्च ।]

वचोय गन्धा षड् ग्रन्था गीलीमी शानपर्विका ॥ क्षुद्र
पत्री च मङ्गल्या जदिलोग्राच लोमशा ॥ ३५२ ॥ वचो
यगन्धा कटुका निक्तीषाणा वान्ति वन्दिहन् ॥ विबन्धा
ध्मानशूलघ्नी प्राकृन् मूत्रविशोधिनी ॥ ३५३ ॥ अप-
स्मारकफौन्माद् भूतजनन्व निलान् हेत ॥

भा० अनन्तर वचके नाम और गुण कहने हैं ॥ वच, उग्रगन्धा, घृष्टगन्धा, गो
लोमि, शतपर्विका ॥ क्षुद्रपत्री, मंगल्या, जटिली, उग्रा, यह वचके नाम हैं ॥
३५२ ॥ वच कड़वी तिक्त उष्ण है ॥ और वमन अग्निको करनेवाली ॥ ककु
पेटका फूलना और शूल इनको नाश करनेवाली तथा मूल मूत्रको विशेष
न करनेवाली है ॥ ३५३ ॥ [अथ खुरासानी वचा ।]

पारसीक वचा शुक्ला प्रोक्ता है मवती निसा ॥ हैमवन्त्युदि
ता तद्वद्वातं हन्ति विशेषतः ॥ ३५४ ॥

अथ महाभरी वचा ।] यस्या लोके कुलिञ्जन इति नामा
न्तरम् ॥ सुगन्धाऽप्युग्रगन्धाच्च विशेषात् कफको

सनुत् ॥ सुस्वरत्नकरी रुच्या हृत्कराठ मुखशीथिनी
॥ ३५५ ॥ अपरा सुगन्धा ।] स्थूलग्रन्थिः यस्यालो

के महाभरी इति नाम ॥

भा० भरी, कफ, उन्माद, मूत्र, कृमी, खून इनको नाश करती है ॥
अनन्तर खुरासानी वचके नाम और गुण कहने हैं ॥ पारसीक वचा, शुक्ला, है
मवती, ॥ हैमवन्त्युदिता, यह खुरासानी वचके नाम है ॥ वह विशेषकर
के वातको नाश करती है ॥ ३५४ ॥ अनन्तर कुलिञ्जन के नाम और गुण क
हने हैं ॥ सुगन्धा और उग्रगन्धा ये दोनों विशेषकर के कफ कास के नाशक
हैं ॥ और अच्छा स्वर तथा अच्छी लवचा करनेवाली रुचिकार करनेवाली हृद
कराठ मुख इनके शोधन करनेवाली है ॥ ३५५ ॥ दूसरी सुगन्धा मोटीगांठ
की जिसको लोकमें महाभरी कहते हैं ॥

स्थूलग्रन्थिः सुगन्धास्यात् नतो हीनगुणा स्मृता ॥

अथ चोवचीनीनि लोकेन प्रसिद्धा नस्या गुणाः ॥

हीनान्तर वचा किञ्चिन्निष्क्रोषणा वह्निदीप्ति कृत ॥

विद्वज्जामान शूलघ्नी शकनं मूत्र विशोधिनी ॥ ३५६ ॥

वातव्याधी नयस्यार सुन्मादं तनुवेदनाम् ॥ व्यपो
हति विशेषेण फिरङ्गं मय नाशिनी ॥ ३५७ ॥

अथ हौहवेर द्वयम् ।] तन्मध्ये प्रथमं फलं मत्स्य
सदृशं विस्वगन्धं द्वितीय मम्बवत्यफलसदृशं मत्स्य
गन्धं तयोर्नामानि गुणाश्च ॥

भा० मोदी गांठ की वच सुगंध होती है और उसे कम गुणवाली कही गई है ॥ अनन्तर चौबचीनी के नाम और गुण कहते हैं ॥ अन्य दीपकी वच कुछ निक्त और उष्ण होती है तथा अग्निको दीपन करने वाली है ॥ कृत्त पेटका फूलना और शूल इनको नाश करनेवाली और मल मूत्र को रोधन करनेवाली है ॥ ३५६ ॥ चानरोग घृणी उन्माद शरीरकी पीड़ा ॥ इनको नाश करती है ॥ और विशेष करके फिरंग रोग का नाश करने वाली है ॥ ३५७ ॥ अनन्तर दोनों हौवेर के नाम और गुण कहते हैं ॥ उसमें पहलेका फल मछलीके सदृश कच्चा मांस के गंधवाला होता है ॥ दूसरे पीपलके फल सदृश मछलीके गंधसदृश होता है ॥

हवुषा पुष्पवस्ता च पराम्बवत्य फला मता ॥ मत्स्य
गन्धा स्त्रीह हन्त्री विषघ्नी ध्वांक्षनाशिनी ॥ ३५८ ॥

हवुषा दीपनी निक्ता मृदूष्णा तु वरा गुरुः ॥ पित्तो
दर समीराग्ने ग्रहणी गुल्म शूलहन ॥ ३५९ ॥
पराम्बे तद्गुणा प्राक्ता रूप भेदी द्वयोरपि ॥

भा० हवुषा पुष्पवस्ता और दूसरा अम्बवत्य फला कही गई है ॥ मत्स्य गन्धा, स्त्रीह हन्त्री, विषघ्नी, ध्वांक्षनाशिनी, ये हौवेर के नाम हैं ॥ ३५८ ॥ हौवेर दीपन निक्त मृदु उष्ण कसेली भारी होती है ॥ पित्तोदर वायु की वचा सीर संग्रहणी वायुगोला और शूल इनको नाशक है ॥ दूसरी भी इसी प्रकार की गुणवाली कही गई है ॥ और दोनों के नक्षत्र के भेद भी कहे गये हैं ॥ ३५९ ॥

[अथ वायुभृङ्ग इति श्लोके ।]

पुंसि क्लीवे विडङ्गः स्यात् कृमिघ्ना जन्तुनाशनः ॥ त
 एडुलश्च तथा चैल्ल ममोघा चित्रतराडुला ॥ ३६० ॥ वि
 डङ्गं कटु तीक्ष्णोष्णं रुक्षं हृन्धिकरं लघु ॥ शूलार्धमा
 नोदर श्लेष्म कृमिवात विबन्धनुत् ॥ ३६१ ॥

[अथ तुम्बुरु फलम् ।] तुम्बुरुः सौरभः सौरो वनजः सा
 नुजोऽन्धकः ॥ तुम्बुरु प्रथितं तिक्तं कटु पाकेऽपितत्क
 टु ॥ ३६२ ॥ रूक्षोष्णं दीपनं तीक्ष्णं रुच्यं लघु विदाहि च ।
 वात श्लेष्माक्षि कर्णोष्ठ शिरोरुक् गुरुता कृमीन् ॥
 ३६३ ॥ कुष्ठ शूलारुचिश्वास स्त्रीह कृच्छ्राणि नाशयेत् ॥

भा० अनन्तर बायविडंग को कहते हैं ॥ युस्मिङ्ग और नपुंसक लिंग में बायविडंग
 होता है ॥ कृमिघ्न जन्तुनाशक । तराडुल चैल्ल अमोघ चित्रतराडुल ॥ ३६० ॥
 ये बायविडंग के नाम हैं । बायविडंग कटुवातीरवा उष्ण रूखा अग्निको करने
 वाला हलका । शूल आध्मान उदररोग कफ कृमिवात कब्ज इनका नाश करने
 वाला है ॥ ३६१ ॥ [अनन्तर तुम्बुरु फलके नाम कहते हैं ॥ तुम्बुरु सौर
 भ सौरवनज । सानुज अंधक । ये तुम्बुरु फलके नाम हैं ॥ तुम्बुरु तिक्त कहा
 गया है । और कटु तथा पाकमें भी कटु कहा है ॥ ३६२ ॥ रूखा उष्ण दीपन तीक्ष्ण
 रुचिको करने वाला हलका विदाही ॥ वात कफ के रोग और नेत्र कर्ण शिर होंठ
 इनमें की पीड़ा और गुरुता कृमी ॥ ३६३ ॥ कुष्ठ शूल अरुचि श्वास पित्तही तथा मू
 त्र कृच्छ्र इनको नाश करता है ॥

[अथ वंशलोचन नामगुणाः ।] स्याद्वंशरोचना वांशी तुगा
 क्षीरा तुगाशुभा ॥ त्वक्क्षीरी वंशजा शुभ्रा वंशदीरी
 च वैणवी ॥ ३६४ ॥ वंशजा दृंहणी दृष्या बल्या स्वाही
 च शीतला ॥ तृष्णा कास ज्वर श्वास क्षय पित्तास्र का
 मलाः ॥ ३६५ ॥ हरेत्कुष्ठं व्रणं पाण्डुं कपायं वात कृच्छ्रजित्

भा० अनन्तर वंशलोचन के नाम और गुण कहते हैं ॥ वंशरोचन वंशी तुगादी
री० तुगा शुभा ॥ तुगादीरी० शुभा० वंशलोचनी० वैरागी० येह वंशलोचन के नाम हैं
॥ ३६४ ॥ वंशलोचन शुक्रको बढ़ानेवाला पुष्ट मलको देनेवाला मधुर शीतल
तृण० कांस० ज्वर० श्वास० क्षय० रक्तपित्त० कामला० इनको नाश करनेवाला है ॥ ३६५
कुष्ठ० ज्वरा० पांडुरोग० और वातके मूत्ररुच्छको कषाय को जीतता है ॥

[अथ समुद्र फेनः]

समुद्र फेनः फेनश्च डिण्डीरीऽब्धिकफ स्तथा ॥ समुद्र
फेन चक्षुष्यो लेखनः शीतलश्च सः ॥ ३६६ ॥ कषा-
यो विष पित्तघ्नः कर्णरुक्कफ हृल्लघुः ॥

[अथाष्टक वर्गस्य लक्षणं गुणाः।] जीव कर्षभकौ मेदेका
कोल्यौ ऋद्धि वृद्धिके ॥ अष्टवर्गीऽष्टभिर्द्रव्यैः कथित
श्चरकादिभिः ॥ ३६७ ॥ अष्टवर्गो हिमः स्वादुः चंहणः
शुक्रलोगुरुः ॥ भग्न सन्धान् कृत्काम वलास वलव
र्द्धनः ॥ ३६८ ॥ वात पित्तास्रनृद दाह ज्वरमेह क्षयापहः ॥

भा० अनन्तर समुद्र फेन के नाम और गुण कहते हैं ॥ समुद्र फेन-फेन-डिण्डी
रीऽब्धिकफ। येह समुद्र फेन के नाम हैं ॥ समुद्र फेन नेत्रको हित लेखन शीतल
होता है ॥ ३६६ ॥ और कसैला विष पित्तका नाशक और हलका होता है ॥

[अनन्तर अष्टवर्गकालक्षण और गुण कहते हैं]

जीवक ज्ञेयभक मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली। ऋद्धि वृद्धि। येह अ
ष्टवर्गके नाम हैं आठ द्रव्यों से चरकादि मुनियों ने कहा है ॥ ३६७ ॥ अष्टवर्ग शीतल
मधुर धातुओंकी वृद्धि करनेवाला शुक्रको उत्पन्न करनेवाला भारी है ॥ बूटे दाढ़को
जोड़नेवाला कामदेवकफ और घन इनको बढ़ानेवाला है ॥ ३६८ ॥ वात पित्त
रक्त पाण्डू ज्वर प्रमेह क्षय इनका नाशक है ॥

[तत्र जीवकर्षभकयोरुत्पत्ति लक्षणं नामगुणाः]

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रि शिखरोद्भवौ ॥ रसो न क-

न्दवत् कन्दी निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ ॥ ३६६ ॥ जीवकः

कूर्चकाकार ऋषभो वृषशृंगवत् ॥ जीवकोःमधुरः पृ

ष्ठो ह्रस्वाङ्गः कूर्चशीर्षकः ॥ ३७० ॥ ऋषभो वृषभो धी

रो विषाणी द्राक्ष इत्यपि ॥ जीवकर्षभकौ बल्यौ शी

तो शुक्रकफप्रदौ ॥ ३७२ ॥

भा० उस्में जीवक, ऋषभक, इन दोनों की उत्पत्ति लक्षण नाम और गुण इन को कहने हैं ॥ जीवक, ऋषभक, ये दोनों हिमाचल पर्वत पर होते हैं ॥ लहसुन के कन्द सदृश कन्दवाले होते हैं ॥ और सार रहित छोटे पत्तेवाले होते हैं ॥ ३६६ ॥ कूर्च के आकार जीवक होता है । और ऋषभक बैल के सींग के सदृश होता है ॥ जीवक, मधुर, शृंग, ह्रस्वाङ्ग, कूर्च, शीर्षक, ये ह जीवक के नाम हैं ॥ ३७० ॥ ऋषभ वृषभ, धीर, विषाणी, द्राक्ष, ये ह ऋषभक के नाम हैं ॥ जीवक, ऋषभक, बल को देने वाले शीत शुक्रकफ को करने वाले होते हैं ॥ ३७२ ॥

मधुरौ पित्तदाहाच्च कार्श्यवात क्षया पौ ॥

[अथ मेदा महामेद योरुत्पत्ति लक्षण नाम गुणः ।]

महामेदाभिधः कन्दो मोरङ्गदो प्रजायते ॥ महामेदा

ग्वनो मेदा स्यादित्युक्तं मुनीश्वरैः ॥ ३७२ ॥ शुक्लाद्रि

कनिभः कन्दो लताजातः सुपाण्डुरः ॥ महामेदा

भिदो ज्ञेयो मेदा लक्षणमुच्यते ॥ ३७३ ॥

भा० और मधुर पित्त दाह रक्त कृशता वात क्षय इनके नाशक हैं ॥ अनन्तर मेदा महामेदा इन दोनों की उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहने हैं ॥ महामेदा नामक, कन्द मोरङ्ग में उत्पन्न होता है ॥ महामेदा और मेदा खान में होती है । ऐसे मुनीश्वरों ने कहा है ॥ ३७२ ॥ श्वेत और गीला सा कन्द सनासे होता है । और वृद्धत शुभ्र भी होता है । ऐसे कन्द की महामेदा जानना चाहिये ॥ और मेदा का लक्षण कहने हैं ॥ ३७३ ॥

शुक्लकन्दो नखच्छेद्यो मेदो धातु मिव स्रवेत् ॥ यः
 स मेदेति विज्ञेयो जिज्ञासातत्परैर्जनेः ॥ ३७४ ॥
 शल्पपर्णी मरिचिच्छिद्रा मेदा मेदो भवा ध्वरा ॥ महा
 मेदा वसुच्छिद्रा त्रिदन्ती देवता मरिः ॥ ३७५ ॥
 मेदायुगं गुरु स्वादु वृष्यं स्तन्य कफा वह्म ॥ दृंह
 रां शीतलं पित्त रक्त वातज्वर प्रणुत् ॥ ३७६ ॥

इवेः

भा० स्वेतकन्द नखसे छेदने में से जो धातु के सदृश जिसेमें श्राव होता है।
 उसको मेदा कहते हैं। जानने की इच्छामें नन्यर ज्वे मनुष्य ॥ ३७४ ॥ शल्प
 पर्णी मरिचिच्छिद्रा मेदा मेदो भवा अध्वरा यह मेदा के नाम हैं ॥ महा मेदा
 वसु छिद्रा त्रिदन्ती देवता मरि यह महा मेदा के नाम हैं ॥ ३७५ ॥ दोनों मेदा
 भारी मधुर पुष्ट दूध की उत्पन्न करने वाले कफ की उत्पन्न करने वाले दृंह रा
 शीतल पित्त रक्त वातज्वर इनके नाशक होते हैं ॥ ३७६ ॥

[अथ काकोली क्षीरकाकोल्यो रूपान्ति लक्षणानाम गुणाः।]

जायते क्षीरकाकोली महा मेदोद्भव स्थले ॥ यत्न
 स्यात् क्षीरकाकोली काकोली तत्र जायते ॥ ३७७ ॥
 पीवरी सदृशः कन्दः क्षीरं स्रवति गन्धवान् ॥ स
 प्रोक्तः क्षीरकाकोली काकोली लिङ्गं मुच्यते ॥ ३७८ ॥
 यथा स्यात् क्षीरकाकोली काकोल्यपि तथा भवेत् ॥
 एषा किञ्चिद्भवेत् कृष्णा मेदोऽयमुभयोरपि ॥ ३७९ ॥

भा० अनन्तर काकोली क्षीरकाकोली के उत्पत्ति लक्षणानाम गुणा कहते
 हैं ॥ महा मेदा के उत्पन्न होने की जगह में क्षीर काकोली उत्पन्न होती है ॥
 और जहाँ पर क्षीर काकोली उत्पन्न होती है वहाँ पर काकोली भी उत्पन्न होती
 है ॥ ३७७ ॥ स नावर के सदृश कन्द होता है और उसमें से सुगंधयुक्त दूध निक

लता है ॥ उसको क्षीर काकोली कहा है ॥ काकोली कालक्षरण कहने हैं ॥ ३७८ ॥
जैसे क्षीर काकोली होती है उसी प्रकार काकोली भी होती है । यह कुछेक काली
होती है दोनों में यही भेद है ॥ ३७९ ॥

काकोली वायसोली च वीरा कायस्थिका तथा ॥ सा शु-
क्ला क्षीर काकोली वयस्था क्षीर वल्लिका ॥ ३८० ॥
कथिता क्षीरिणी धारा क्षीर शुक्ला पयस्विनी ॥ काको-
ली युगलं शीतं शुक्रलं मधुरं गुरु ॥ ३८१ ॥ वृहरां वा
न दाहास्र पित्त शोषज्वर पथम् ॥

भा० काकोली वायसोली वीरा कायस्थिका । यह काकोली के नाम हैं और
वो ज्वर होती है ॥ वयस्था क्षीर वल्लिका क्षीर काकोली ॥ ३८० ॥ क्षीरिणी धारा
क्षीर शुक्ला पयस्विनी यह क्षीर काकोली के नाम हैं ॥ दोनों काकोली शीतल
शुक्रको बढ़ाने वाली मधुर भारी होती है ॥ ३८१ ॥ धातुओं को बढ़ाने वाली वा
न दाह रक्तपित्त शोषज्वर इनको नाश करने वाली है ॥

[अथाद्वि वृद्धौ रुत्यन्ति लक्षण नाम गुणाः ।] ऋद्धि वृ-
द्धिश्च कन्दोद्वौ भवतः कोशं यामले ॥ शीतलो मान्वि-
तः कन्दो लताज्जातः सुरन्ध्रकः ॥ ३८२ ॥ सख्य ऋद्धि
वृद्धिश्च भेद मप्येतयोर्बुधे ॥ स्थूल ग्रन्थि समा ऋद्धि
वीमा वर्त्त फलाचसा ॥ ३८३ ॥ वृद्धिस्तु दक्षिणा वर्त्त फला
प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ ऋद्धिर्युग्मं सिद्धि लक्ष्म्या वृद्धे रप्याह
या इमे । ३८४ ॥ ऋद्धिर्मत्स्या विदोषघ्नी शुक्रला मधुरा गु-
रुः ॥ प्रारौ श्वर्य्य करी सूच्छी रक्त पित्त विनाशिनी । ३८५ ॥

भा० [अनन्तर ऋद्धि और वृद्धि इनकी उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहने हैं ।]
ऋद्धि और वृद्धि यह दो कन्द यामल देश में होते हैं । ज्वर लोभकार को युक्त कण्ड । ३८६

के सहित लनामें उत्पन्न होता है ॥ ३८२ ॥ उसीको ऋद्धि और वृद्धि कहते हैं ॥ उनके भेदोंको भी कहता हूँ ॥ मेघर की गाँठके समान वामावर्त फलवाली चर ऋद्धि होती है ॥ ३८३ ॥ महर्षियों ने दक्षिणावर्त फलवाली वृद्धि कहा है ॥ दोनों ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, यह नाम ॥ ऋद्धि भी है ॥ ३८४ ॥ ऋद्धि विदोषकी नाशक शुक्रको उत्पन्न करनेवाली ॥ मधुर भारी होती है ॥ और प्राण स्वेष्ट्य इनको करनेवाली तथा मूर्च्छा रक्त पित्त इनको नाशक है ॥ ३८५ ॥

वृद्धि गर्भप्रदा शीता वृंहणी मधुरा स्मृता ॥ वृष्या पित्ता
स्वशमनी क्षतकास क्षया पहा ॥ ३८६ ॥ राज्ञा मध्यष्ट
वर्गास्तु यतोऽयमतिदुर्लभः ॥ तस्मादस्य प्रतिनिधिर्गु
ह्नीयात्तद्गुणं भिषक् ॥ ३८७ ॥

(मुख्यः सहशः प्रतिनिधिः) [गुणस्य प्रतिनिधिमाह ।]

मेदा जीवक काकोली ऋद्धि वृद्धेऽपि चासती ॥ वरी
विदार्य्य अश्वगन्धा वाराही अक्रमात् क्षिपेत् ॥ ३८८ ॥

भा० (क) मेदा महामेदा स्थाने शतावरी मूलम् जीवक कर्पभक
स्थाने विदारी मूलम् ॥ काकोली क्षीर काकोली स्थाने
अश्वगन्धा मूलम् । ऋद्धि वृद्धि स्थाने वाराही कंदं गुणैस्तनुत्य

भा० वृद्धि गर्भको करनेवाली शीतल पुष्ट मधुर कही गई है ॥ पुरुषत्व को बढ़ाने वा
लो रक्त पित्तकी नाशक क्षतकास क्षय इनकी नाशक है ॥ ३८६ ॥ जिस कारण यह
अष्टवर्ग राजाओं को भी अति दुर्लभ है ॥ जिस कारण इसकी प्रतिनिधि उसी गुणवाली
को वैद्य ग्रहण करे ॥ ३८७ ॥ इसके प्रतिनिधि को कहते हैं ॥ मेदा जीवक काकोली
ऋद्धि इनके नमिलनेमें शतावरी विदारी कंद अश्वगन्ध वाराही कंद इनको क्र
म के साथ डाले ॥ ३८८ ॥ (क) मेदा महामेदा की जगह में शतावरी की जड़ ॥
जीवक ऋषभक की जगह में विदारकी जड़ । काकोली क्षीर काकोली की जगह में
अश्वगन्ध की जड़ । ऋद्धि वृद्धि की जगह में वाराही कंद को डाले । यह गुण में उन

के समान है ॥

[अथ जेठी मधु ।] यष्टी मधु तथा यष्टी मधुकं

क्लीतकं तथा ॥ अन्यत् क्लीतनकन्तत् भवेत्तोये मधूलि

का ॥ ३८८ ॥ यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णा

कृत् ॥ सुस्निग्धा शुक्ला केश्या स्वर्या पित्तानिलास्रजि

त् ॥ ३८९ ॥ ब्रगा शोथ विषच्छर्दि तृष्णा ग्लानि क्षया

पहा ॥ [अथ कम्बीला ।] काम्पिल्लः कर्कशश्च

न्द्रे रक्ताङ्गो रोचनोऽपि च ॥ काम्पिल्लः कफ पित्तास्र

कृमि गुल्मोदर व्रणान् ॥ ३९१ ॥ हन्ति रेची कटूष्णश्च

मेहानाह विषाश्मनुत् ॥

भा० अनन्तर मुलहठी को कहते हैं ॥ यष्टी, मधुक, क्लीतक ॥ और दूसरा क्लीत नक, जलमं होता है उसको मधूलिका कहते हैं ॥ ३८८ ॥ मुलहठी शीतल भारी म धुर नेत्रोंको हित करने वाली और बल वर्णको करने वाली होती है ॥ अच्छी स्नि ग्ध शुक्रको करने वाली केशके हित स्वरके हित पित्त वानरक्त इनको जीनने वाली हो ती है ॥ ३८९ ॥ ब्रह्म सृजन विष धमन मृपा ग्लानी क्षय इनकी भी नाशक होती है ॥ अनन्तर कम्बीला के नाम और गुण कहते हैं । काम्पिल्ल कर्कश चन्द्र रक्तांग रोचन यह शुक्लला के नाम हैं ॥ शुक्लला कफ रक्त पित्त कृमी वायु गोल उदर रोग अस्रव इनको नाश करती है ॥ ३९१ ॥ दस्तावर कड़वी गरम होती है । और ममेह अफारा विष पथरी इनकी नाशक है ॥

[अथ धनवहेरा ।]

आरग्वधो राजरक्षः शम्पाकश्च तुरङ्गुलः ॥ आरवे-

तो व्याधिघानः कृतमालः सुवर्णकः ॥ ३९२ ॥ कर्ण

कारो दीर्घफलः स्वर्णाङ्गः स्वर्णभूषणः ॥ आरग्वधो

गुरुः स्वादुः शीतलः स्वंसनो मृदुः ॥ ३९३ ॥ ज्वर हृद्दोग

पित्तास्र वातोदावर्तं शूलनुत् ॥ तत्फलं स्वंसनं रु
 च्यं कुष्ठपित्तकफापहम् ॥ ३६४ ॥ ज्वरेतु सततं प
 थ्यं कोष्ठशुद्धि करं परम् ॥ [अथ कटुकी ।]
 कटी तु कटुका तिक्ता कृष्णाभेदा कटुम्भरा ॥ अणो
 का मत्स्य शकला चक्राङ्गी शकुलादनी ॥ मत्स्यपि
 ता काण्डरुहा रोहिणी कटु रोहिणी ॥ कट्वी तु
 कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघुः ॥ ३६६ ॥
 भेदिनी दीपनी हृद्या कफपित्तज्वरापहा ॥ प्रमे
 ह श्वासकासास्र दाह कुष्ठ कृमि प्रणुत् ॥ ३६७ ॥

भा० अनन्तर अमलतासके नाम और गुण कहते हैं ॥ आरग्वध राज
 रक्ष शंयाक चतुरंगुल ॥ आरवेत् व्याधिघान कृतमाल सुवर्णक ॥
 ३६२ ॥ कर्णिकार दीर्घफल सुवर्णीया वर्णाभूषण । यह अमलतासके
 नाम हैं ॥ अमलतास भारी मधुर शीतल दस्तावर मुल्यायम ॥ ३६३ ॥
 होना है । ज्वर हृद्वीग रक्तपित्त वातको उदावर्त शूल इनका नाशक होता है
 ॥ इसका फल दस्तावर रुचिको करनेवाला कुष्ठ पित्त कफ इनका नाश
 क होता है ॥ ३६४ ॥ ज्वर में सदा पथ्य होता है । और अत्यन्त कोष्ठको शु
 द्ध करता है ॥ अनन्तर कटुकी के नाम और गुण कहते हैं । कटी, कटु
 का तिक्ता कृष्ण भेदा कटुम्भरा ॥ अणिका मत्स्य शकला चक्राङ्गी, शकुला
 दनी ॥ ३६५ ॥ मत्स्यपित्ता, काण्डरुहा, रोहिणी, यह कटुकी के नाम हैं ॥ कुरकी
 कट्वी और पाकमे तिक्त रूखी पीतल हलकी ॥ ३६६ ॥ भेदन करनेवाली दी
 पन हृद्य कफ पित्त ज्वरकी नाशक ॥ प्रमेह श्वासकासर रक्त पित्त दाह कुष्ठ क
 र्म इनकी नाशक है ॥ ३६७ ॥

[अथ चिरादता ।] किरात तिक्तः कैरातः कटु तिक्तः कि
 रातकः ॥ काण्ड तिक्तो नार्य तिक्तो भूनिम्बो रामसेनकः
 ॥ ३६८ ॥

किरातकोऽन्यो नैपालः सोऽद्वितिको ज्वरान्तकः ॥ कि-
 रानः सारकोरूक्षः शीतल स्निक्तको लघुः ॥ ३८६ ॥
 सन्निपात ज्वरश्वास कफ पित्तास्रदाहनुत् ॥ कास शो-
 थ तृषा कुष्ठ ज्वर व्रण कृमिप्रणुत् ॥ ४०० ॥

भा० अनन्तर चिरायतेके नाम और गुण कहने हैं ॥ किरान, तिक्त, कैरान, कटु
 तिक्त, किरानक, ॥ काण्डतिक्त नारीतिक्त भूनिम्ब रामसेनक ॥ ३८६ ॥ दूसरा चि-
 रायता नेपाली बोह कुछ कडुवा होना है ज्वरान्तक यह चिरायतेके नाम हैं ॥ चिरा-
 यता सारक रूक्ष शीतल तिक्त लघु होता है ॥ ३८६ ॥ और सन्निपात ज्वर श्वास
 कफ पित्त दाह इनका नाशक होता है ॥ कास सूजन तृषा कुष्ठ ज्वर व्रण कृमी इन
 का नाशक है ॥ ४०० ॥ [अथ इन्द्रयवः ।]

उक्तं कुटजबीजन्तु यव मिन्द्रयवं तथा ॥ कलिङ्गञ्चापि
 कालिङ्गं तथा भद्रयवा अपि ॥ ४०१ ॥

[इति धन्वन्तरिः प्राह अमरे प्राह ।]

कचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तदभिधायकम् ॥ फलानीन्द्र-
 यवास्तस्य तथा भद्रयवा अपि ॥ ४०२ ॥ इन्द्रयवं त्रिदोष-
 घ्नं संग्राहि कटु शीतलम् ॥ ज्वरान्तीसार रक्ताग्निः वमि-
 वीसर्प कष्टनुत् ॥ ४०३ ॥ दीपनं गुद कीलास्र वातास्र-
 श्लेष्म शूलजित् ॥

भा० अनन्तर इन्द्रयवके नाम और गुण कहने हैं ॥ कुटजबीज यव इन्द्रयव ।
 कलिङ्ग कान्तिङ्ग भद्रयव यह इन्द्रयवके नाम हैं ॥ ४०१ ॥ -
 इस प्रकार धन्वन्तरि ने कहा है और अमर में कहा है तथा इन्द्रके नाम पर उसके ना-
 म कहे गये हैं ॥ इन्द्रयव त्रिदोष नाशक संग्राही कटु शीतल ॥ होता है और ज्वर
 अतीसार खुनी गवासीर वमन विसर्प कुष्ठ इनका नाशक भी है ॥ ४०२ ॥ दीपन

गुदकील रक्तवात कफ शूल इनको जीतनेवाला है ॥

[मयन फलम्] मदनं पृथुर्दनः पिण्डीनटः पिण्डीतक

स्तथा ॥ करहाटो मरुवकः शल्यको विषपुष्पकः ॥ ४०४ ॥

मदनो मधुरस्तिक्ता वीर्यघोषो लेखनी स्लघुः ॥ वान्ति ह

इ विद्रधिहरः प्रणिश्याय अणान्तकः ॥ ४०५ ॥ रुक्षः

कुष्ठ कफानाह शोथ गुल्मव्रणायहः ॥

अथ रासना ।] रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहारसना रसा ॥

रलापर्णी च सुरसा सुगन्धा श्रेयसी तथा ॥ ४०६ ॥ रा

स्नामपाचिनी तिक्ता गुरुणा कफवानजित् ॥ शोथ

श्वाससमीरास्त वातशूलोदरापहा ॥ ४०७ ॥ कास

ज्वर विषाणीति वानिकामय हिध्महत् ॥

भा० अनन्तर मेनफल के नाम और गुण कहते हैं ॥ मदनं पृथुर्दनं पिण्डीनटं
पिण्डीतकं ॥ करहाटं मरुवकं शल्यकं विषपुष्पकं । यह मेनफल के नाम हैं

॥ ४०४ ॥ मेनफल मधुर तिक्त वीर्यमें उष्ण लेखन हलका होता है ॥ और वमन
को करनेवाला विद्रुधिका नाशक तथा जुकाम और ज्वरम का भी नाशक होता
है ॥ ४०५ ॥ रुक्षं कुष्ठ कफ अकार गुल्म शोथ व्रण इनका भी नाशक है ॥

अनन्तर रास्ना के नाम और गुण कहते हैं ॥ रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहारसना
रसा ॥ रलापर्णी सुरसा सुगन्धा श्रेयसी ॥ ४०६ ॥ यह रास्ना के नाम हैं ॥

रास्ना आमपाचन करनेवाली तिक्त भारी उष्ण कफवान को जीतनेवाली । शो
थ श्वास वात रक्त वात शूल उदररोग इनको नाश करनेवाली है ॥ ४०७ ॥ और
कास ज्वर मिष अस्तीबात के रोग हिध्म इनको नाश करनेवाली है ॥ २भी

अथ रास्नाभिदनाद् इतिलोके ॥ नाकुली सरसा नागसुग

न्धा गन्धनाकुली ॥ नकुलेष्टा भुजङ्गक्षी सर्पाङ्गी विष

नाशिनी ॥ ४०८ ॥ नाकुली तुवरा तिक्ता कटुकोष्णा विना-
शयेन ॥ भोगीत्वूना दृष्टिकाखु विषज्वर क्षमि व्रणान्
॥ ४०९ ॥ [अथ माचिका ।] (पश्चिम देश मोड़ आ इ-

नि लोके प्रसिद्धो दृक्ष विशेषः ।)

माचिका प्रस्थिकाम्बुषा तथा वा म्बालिकाम्बिका ॥

मयूर विदला केशी सहस्रा बालमूलिका ॥ ४१० ॥

माचिकाम्बु रसे पाके कषाया शीतला लघुः ॥ पक्का

तीसार पित्तास्र कफ कण्ठ भया पहा ॥ ४११ ॥

भा० अनन्तर रास्त्रा का भेद जिसको लोकमें नाई कहते हैं ॥ नाकुली सरसा
नागसुगंधा गंधनाकुली ॥ नकुलेष्टा भुजंगाक्षी सर्पक्षी विषनाशिनी, येह
नाकुली के नाम हैं ॥ ४०८ ॥ नाकुली कसैली तिक्त कटु उष्ण होती है ॥
और सर्प विच्छेद मकड़ी मूसा इनके विषको और ज्वर क्षमि व्रण इनको नाश क-
रती है ॥ ४०९ ॥ अनन्तर किमाच के नाम और गुण कहते हैं ॥ पश्चिम देश में
मोड़ आ इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध दृक्ष विशेष है ॥ माचिका अस्थिका अम्ब-
ष्टा अम्बलिका ॥ मयूर विदला केशी सहस्रा बालमूलिका येह किमाच के
नाम हैं ॥ ४१० ॥ किमाच रसमें अम्ल पाकमें कषैला शीतल हलका होता है
॥ पक्का तीसार रक्तपित्त कफ कण्ठ रोग इनको नाश करने वाला है ॥ ४११ ॥

[अथ तेजवती ।] तेज वल्कल क्षुति च । तेजस्विनी तेज-

वती तेजो ह्वा तेजनी तथा ॥ तेजस्विनी कफ प्वास

कासास्थामय वानहन् ॥ ४१२ ॥ पाचन्युषा कटुस्ति

क्ता रुचि वन्धि प्रदीपिनी ॥

भा० अनन्तर तेजवती के नाम और गुण कहते हैं ॥ तेजस्विनी तेजवती
तेजो ह्वा तेजनी येह तेजवती के नाम हैं ॥ तेजवती कफ प्रदास कास शूल
रोग इनको नाश करती है ॥ ४१२ ॥ पाचन उष्ण कटु तिक्त रुचिको
वन्धी को दीपन करने वाली है ॥

[अथ अभिजिनीमालकाङ्गुनी इति वा ।]

ज्योतिष्मती स्यात् कटभी ज्योतिष्का कङ्गुनीति च ॥

पारावत पदी परया लता प्रोक्ता ककुन्दनी ॥ ४१३ ॥

ज्योतिष्मती कटुस्त्रिक्ता सरा कफ समीर जित् ॥

भा० अनन्तर मालकङ्गनी के नाम और गुण कहते हैं ॥ ज्योतिष्मती कटु भी ज्योतिष्का कङ्गनी ॥ पारावत, पदी, परया । येह मालकङ्गनी के नाम हैं ॥ उसकी लता को ककुन्दनी कहते हैं ॥ ४१३ ॥ मालकङ्गनी कड़वी निक्त खर कफ वातको जीतने वाली है ॥

अत्युष्णा वामनी मोक्षणा वन्ति बुद्धिस्पृति प्रदा ॥ ४१४ ॥

अथ कूटः ।] कुष्ठ रोगा ह्वयम्बायं पारिमव्यन्तथोत्पलम् ॥

कुष्ठ मुष्णाङ्गुद स्वादु शुक्रलन्तिककं लघु ॥ ४१५ ॥

हन्ति वातासदी सर्प कास कुष्ठ मरुत्कफान् ॥

अथ कुष्ठभेद पुष्कर मूलम् ।] उक्तं पुष्कर मूलन्तु यौष्क

रं पुष्करञ्च तत् ॥ पद्मपत्रञ्च काशमीरं कुष्ठ भेद

मिमं जगुः ॥ ४१६ ॥ यौष्करं कटुकन्तिकं मुक्तं वात

कफज्वरान् ॥ हन्ति शोष्मारुचि श्वासान्विशोषात्या

श्वं शूलानु ॥ ४१७ ॥

भा० बहुत गरम वमन कराने वाली नीरवी और अग्नि बुद्धि स्पृति इनको दे ने वाली है ॥ ४१४ ॥ अनन्तर कूट के नाम और गुण कहते हैं ।] कुष्ठ रोगा ह्वयवाय पारिमव्य उत्पल येह कूट के नाम हैं ॥ कूट गर्म कड़वा मधुर शुक्र को बढ़ाने वाली निक्त और हलका होता है ॥ ४१५ ॥ नद्यावान रक्त येद सब कास कुष्ठ वात कफ इनको नाश करना है ॥

अनन्तर कूटका भेद उस्तागुणा और नाम कहते हैं ॥ पुष्करमूल यौष्कर पुष्कर । पद्मपत्र काशमीर येह कुष्ठ के नाम कहे हैं ॥ इसको क्रूरका भेद कहे हैं

॥ ४१६ ॥ पुष्करमूल कडवा तिक्त कहहि और वानकफ ज्वरको । नाश करता है ॥
तथा शोथ अरुचि स्वास विशेष करके पार्श्वमूलको नाश करता है ॥ ४१७ ॥

अथ चोक ।] कटुपर्णी हैमवती हैमक्षीरी हिमावती ॥ हेमा
ह्वा पीतदुग्धा च तन्मूलञ्चोक मुच्यते ॥ ४१८ ॥ हेमाह्वा
रेचनी तिक्ता भेदिन्युत् क्लेषाकारिणी ॥ रुधिराण्ड वि
षानाह कफ पित्तस्रक्पुष्टवृन् ॥ ४१९ ॥

अथ काकरा शृङ्गी ।] शृङ्गी कर्कटशृङ्गी च स्थान् कुलीर
विषाणिका ॥ अजशृङ्गी च वक्त्रा च कर्कटारव्या च की
र्तिता ॥ ४२० ॥ शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफघ्न क्षय
ज्वरान् ॥ श्वासोर्ध्व वानतृकास हिक्कारुचि वमीन हरेत् ॥ ४२१ ॥

भा० अनन्तरचोकके नाम और गुण कहने हैं ॥ कटुपर्णी हैमवती हैमक्षीरी हिमा
वती हेमाह्वा पीतदुग्धा येह चोवदस के नाम हैं ॥ और उसके मूलको चोवत्कहने हैं
॥ ४१८ ॥ चोकदस्तावर तिक्त भेदन करनेवाली और मतलीको करनेवाली होती है
॥ तथा रुधिरवृजली विष अफारा कफमूल रुधिररूपित कुष्ठ इनकी भी नाशक
है ॥ ४१९ ॥ अनन्तरकाकडासोंगी के नाम और गुण कहने हैं ॥ शृङ्गी कर्कटशृङ्गी
कुलीर विषाणिका ॥ अजशृङ्गी वक्त्रा कर्कटारव्या येह काकडासोंगी के नाम हैं ॥
४२० ॥ काकडासोंगी कसेली तिक्त कफघ्न क्षय ज्वरोंको ॥ और श्वास उर्ध्व वान
तृका कास ज्वरकी अरुचि वमन इनकी दूर करती है ॥ ४२१ ॥

अथ कायफरस्य नाम गुणाः ॥] कटुफलः सोमवत्क्षेत्रं
कैटव्यः कुम्भिकाऽपिच ॥ श्रीपरीका कुमुदिका भ
द्रा भद्रवतीति च ॥ ४२२ ॥ कटुफल सुवरस्तिक्तः कटु
वीत कफज्वरान् ॥ हन्ति श्वास प्रमेहार्शः कासकराण
मयारुचीः ॥ ४२३ ॥ [अथ भार्गीवभनेटी इति च ।]

भा० अनन्तर कायफल के नाम और गुण कहने हैं ॥ कटुफल सोमघल्क कै
 द्रव्यं कुम्भिका ॥ श्री पर्याक कुमुदिका भद्रा भद्रवती । यह काय फल के नाम हैं ॥
 ॥ ४२२ ॥ कायफल कैसेला निक्त कटुबा होता है । और वान कफ ज्वरों की नाश
 करता है ॥ तथा श्वास प्रमेह बवासीर कास कंठ के रोग अरुचि इनको भी नाश क
 रता है ॥ ४२३ ॥ अनन्तर भारंगी के नाम और गुण कहने हैं ॥

भारङ्गी भृगुभवा पद्मा फञ्जी ब्राह्मणायष्टिका ॥ भार्गी
 रूक्षा कटुस्तिक्ता रुच्योष्णा पाचनी लघुः ॥ ४२४ ॥ दीप
 नी तुवरा गुल्म रक्तजन्नाशयेद् ध्रुवम् ॥ शोथकास क
 फ श्वास पीनसज्वर मारुतान् ॥ ४२५ ॥

अथ पाषाणभेदः ।] पाषाणभेद कोऽश्मघ्नी गिरिभिद्रि
 न्नयाजनी ॥ अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो वस्ति शो
 धनः ॥ ४२६ ॥ भेदनो हन्ति दोषार्शो गुल्म रुच्छाश्म हृद्बु
 जः ॥ योनिरोगान् प्रमेहांश्च स्त्रीहृल्लघ्नानि च ॥ ४२७ ॥

भा० भारंगी भृगुभवा पद्मा फञ्जी ब्राह्मणायष्टिका ॥ यह भारंगी के नाम हैं ॥
 भारंगी रूखी कटुवी निक्त रुचिको करनेवाली उष्म पाचन हलकी होती है ॥ ४२४ ॥
 और दीपन कैसेली होती है ॥ तथा रक्तका वायुगोला इसके निश्चय नाश करती है
 ॥ और शोथकास कफ श्वास पीनसज्वर वायु इनको भी नाश करती है ॥ ४२५ ॥
 अनन्तर पाषाण भेद के नाम और गुण कहने हैं ॥ पाषाण भेदक अश्मघ्नी गि
 रभित मित्रयाजनी । यह पाषाण भेद के नाम हैं ॥ पाषाणभेद पीनल निक्त क
 सेला वस्ति शोधन होता है ॥ ४२६ ॥ और भेदन है । तथा शोथ बवासीर गुल्म
 मूत्ररुच्छ पथरी हृदयकी पीड़ा ॥ योनिरोग प्रमेह मितही शूल व्रण इनको भी
 नाश करता है ॥ ४२७ ॥

अथ धावर्द्ध ।] धातकी धानुपुष्पी च नाम्नपुष्पी च कुञ्ज
 रा ॥ सुभिन्ना बह्वपुष्पी च बन्धिज्वाला च सास्मृता ॥ ४२८ ॥

धातकी कटुकाशीता मृदुकुचुरा लघुः ॥ दृष्टान्ती
 सार पित्तास्र विष कृमि विसर्पजित् ॥ ४२६ ॥
 अथ मज्जिष्ठा ॥ मज्जिष्ठा विकसा जिह्वी समङ्ग कालमे-
 षिका ॥ मण्डूकपरिणी भण्डीरी भण्डी योजन वल्ल्यपि ॥
 ॥ ४३० ॥ रसायन्यरुण काला रक्ताङ्गी रक्तयष्टिका ॥
 भण्डीतकी च गण्डीरी मज्जूषा वस्त्ररज्जिनी ॥ ४३१ ॥
 मज्जिष्ठा मधुरा तिक्ता कषाया स्वर वर्णकृन् ॥ गुरु
 रुषणा विष प्रलेष्म प्रोथयोन्यक्षिकरीरुक् ॥ ४३२ ॥
 रक्तातीसार कुष्ठास्र वीसर्प्य व्रणमेहनुन् ॥

भा० अनन्तर धव के नाम और गुण कहने हैं ॥ धातुकी धातुपुष्पी नासपुष्पी कुं-
 जर ॥ सुमिक्षा बहुपुष्पी वह्निज्वाला । येह धव के नाम कहें गये हैं ॥ ४२७ ॥ धव
 कड़वी शीतल सुलायम करने वाली । कर्षली और हलकी होती है ॥ तथा दृष्टा अ-
 तीसार रक्तपित्त विष कृमि विसर्प । इनको जीतने वाली है ॥ ४२८ ॥
 अनन्तर मज्जिष्ठा के नाम और गुण कहने हैं ॥ मज्जिष्ठा विकसा जिह्वी समङ्ग काल-
 मेषिका ॥ मण्डूकपरिणी भण्डीरी भण्डी योजन वल्ली ॥ ४३० ॥ रसायनी अरुण काला
 रक्ताङ्गी रक्तयष्टिका ॥ भण्डीतकी गण्डीरी मज्जूषा वस्त्र रज्जिनी । येह मज्जिष्ठा के
 नाम हैं ॥ ४३१ ॥ मज्जिष्ठा मधुर तिक्त कषैली होती है ॥ और स्वर वर्ण को करने वा-
 ली । तथा भारी उष्ण होती है और विष कफ प्रोथयोन्यक्षिकरीरुक् ।
 ॥ ४३२ ॥ रक्तातीसार कुष्ठ रक्तपित्त विसर्प व्रण प्रमेह । इनको नाश करने वा-
 ली है ॥

[अथ कुसुम्भ ।]

स्यान् कुसुम्भम्बन्धि शिखं वस्त्रं रज्जक मित्यपि ॥ कु-
 सुम्भवातलं कृच्छ्रं रक्तपित्त कफापहम् ॥ ४३३ ॥
 अथ लाहरी । लाक्षापलं कषालक्तो यावो दक्षामयो जनुः ॥

लाक्षा वर्या हिमा बल्या स्निग्धा च तुवरा लघुः ॥

॥ ४३४ ॥ ब्राह्मण्यङ्गर वल्ली च स्वरशाका च हन्त्रिका ॥

का ॥ अनुषाण कफ पितास्य हिक्का कास ज्वर प्रणत ॥

॥ ४३५ ॥ ब्रशोरः क्षत वीसर्प्य रुमि कुष्ठ गदापहा ॥

अलक्तको गुणैः स हृदि शेषाद् व्यङ्ग नाशनः ॥ ४३६ ॥

भा० अनन्तर कुसुंभ के नाम और गुण कहते हैं ॥ कुसुंभ बन्धि शिरः, चखरंजक, यह कुसुंभ के नाम हैं ॥ कुसुंभ वातज है और मूत्र कृच्छ्र रक्तपित्त कफ इनका भी नाशक है ॥ ४३३ ॥ ३

अनन्तर लाही के नाम और गुण कहते हैं ॥ लाही पलंकषा, लक या बट्टा मय जंतु। यह लाही के नाम हैं ॥ लाही वर्या कोकरनिवा सी शीतल बलको देनवाली चिकनी कसैली और हलकी होती है ॥

४३४ ॥ ब्राह्मणी अंगार वल्ली स्वरशाका हन्त्रिका ॥ यह भारंगी के नाम हैं ॥ भारंगी शीतल कफ रक्तपित्त इनकी कास ज्वर इनकी नाशक है ॥

४३५ ॥ और जरवम जरवम विसर्प रुमि कुष्ठ इन रोगों की भी नाशक है। लाही गुण करके इसी के समान है। लेकिन विशेष करके व्यङ्ग की नाशक है ॥ ४३६ ॥

[अथ हरिद्रा।]

हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाख्या वर चरिणीनी ॥ रुमि

घ्ना हलदी योषित प्रिया हृद् विलासिनी ॥ ४३७ ॥

हरिद्रा कडुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफ पित्त भुत ॥ व

र्या त्वदोष मेहास्य शोथ पाण्डु अणापहा ॥ ४३८ ॥

कर्पूर हरदि ।] दावी भेदास्रगन्धा च सुरभी दारु दारु च ।

कर्पूरा पद्म पत्रा स्यात् सुरीमन् सुरतारका ॥ ४३९ ॥

भा० अनन्तर हरिद्रा के नाम और गुण कहते हैं ॥ हरिद्रा, काञ्चन, पीता निशाख्या, वरचरिणीनी, ॥ रुमिघ्ना, हलदी, योषित प्रिया, हृद्, विलासि

नी ॥ ४३७ ॥ यह हलदी के नाम हैं । हलदी कड़वी तिक्त रुक्ष उष्ण कफ पित्तकी नाश
प्रदाहंती है ॥ वर्ण को करने वाली त्वचा के दोष प्रमेह रक्त शोथ पांडुरोग और
शुण्डन को नाशक है ॥ ४३८ ॥ कपूर हलदी के नाम और गुण कहने हैं ॥
दारवी भेदा आम्रगंधा सुरभि दारुदारु ॥ कर्पूर पद्मपत्रा सुरी मत्सुरनारिका
॥ यह कपूर हलदी के नाम हैं ॥ ४३९ ॥

अथ वनहरदी ।] अरण्यहलदी कन्दः कुष्ठ वातास्त्र नाशनः ।

आम्रगन्धि हरिद्रा या सा शीता वानला मता ॥ ४४० ॥

पित्तहन्मधुरा तिक्ता सर्वकण्डू विनाशिनी ॥

दारुहरिद्रा ।] दार्वी दारु हरिद्रा च पर्जन्या पर्जनीति च ॥

कटंकटेरी पीता च भवेत्सैव पचम्पचा ॥ ४४१ ॥ सैव

कालीयकः प्रोक्तस्तथा कालेयकोऽपि च ॥ पीतद्रु

श्च हरिद्रुश्च पीतदारु कपीतकम् ॥ ४४२ ॥ दार्वी नि

शागुणा किन्तु नेत्रकर्णीस्य रोगनुत् ॥

भा० अनन्तर वनहलदी के नाम और गुण कहने हैं ॥ अरण्यहलदी कन्द ये
कुष्ठ वातरक्त को नाश करने वाली है ॥ और कपूर हलदी शीतल वर्ण को करने
वाली कही गई है ॥ ४४० ॥ और पित्त को नाश करने वाली मधुर तिक्त सम्पूर्ण
खुजलियों को नाश करने वाली है ॥ दारु हलदी के नाम और गुण कहने हैं ॥
दारवी दारुहरिद्रा पर्जन्या पर्जनी ॥ कटंकटेरी, पीता, पचंपचा ॥ ४४१ ॥
कालीयक कालेयक पीतद्रु हरिद्रा पीतदारु कपीतक यह दारु हरदी के नाम
हैं ॥ ४४२ ॥ दारु हरदी हरदी के गुण के सदृश होती है । इनको विशेष करके
नेत्र कर्ण मुख धून के रोगों को नाश करने वाली है ॥

[रसाञ्जनम् ।]

दार्वी काथसमं क्षीरं पादम्यक्ता यथा धनम् ॥ तदा

रसाञ्जनारव्यन्तन् नेत्रयोः परमं हितम् ॥ ४४३ ॥ रस

ञ्जनन्तार्द्य शैलं रसगर्भञ्च तार्द्यजम् ॥ रसाञ्जनवद्भुः

दु श्लेष्म विषनेत्र विकारनुत् ॥ ४४४ ॥ उष्णं रसायननि
 क्तं छेदनं व्रणदोषहन् ॥ [अथ वक्त्रची ।] अवलगुजी
 वाकुची स्यात् सोमराजी सुपरिणिका ॥ शशिलेखा कृष्ण
 फला सोमा पूत फलीति च ॥ ४४५ ॥ सोमवल्ली काल
 मेधी कुष्ठघ्नी च प्रकीर्तिता ॥ वाकुची मधुरा तिक्ता कटु
 पाका रसायनी ॥ ४४६ ॥ विष्टम्भहृद्भिमा रुच्या सराश्ले
 ष्मास्र पित्तनुत् ॥ रूक्षा हृद्या श्वासकुष्ठ मेहज्वर कृमि
 प्राणुत् ॥ ४४७ ॥ तन् फलं पित्तलं कुष्ठ कफानिलहरं क
 टु ॥ केश्यन्वच्यं वमिश्वास कास शोथामपाण्डुनुत्
 ॥ ४४८ ॥ [अथ चक्रमर्हः ।]

हे ॥ ४४४ ॥ और उष्ण रसायन निक्त छेदन व्रणदोष कानाशक है ॥
 अनन्तर वक्त्रची के नाम और गुण कहते हैं ॥ अवलगुज वाकुची सोमराजी
 सुपरिणिका शशिलेखा कृष्णफला सोमा पूतफली ॥ ४४५ ॥ सोमवल्ली का
 लमेधी कुष्ठघ्नी । ये वक्त्रची के नाम कहते हैं ॥ वक्त्रची मधुर तिक्त पाकमें कटु
 रसायनी ॥ ४४६ ॥ विष्टम्भ को नाश करनेवाली शीतल रुद्धि को करनेवाली ।
 दस्तावर कफ और पित्त को नाश करनेवाली है ॥ रूक्ष हृदय के प्रिय श्वास
 कुष्ठ प्रमेहज्वर कृमि । इनको नाश करनेवाली है ॥ ४४७ ॥ इसका फल पित्त
 को करनेवाला । कुष्ठ कफ वात इनका नाशक कटुवा ॥ कैमर्क हिनन्वाचके
 अच्छा करनेवाला वमन श्वास कास सूजन पाण्डुरोग इनका नाशक है ॥ ४४८

चक्रमर्हः प्रपुत्राटो दद्रुघ्नी मेघलोचनः ॥ पश्चाटः स्या

देड गजश्चक्री पुच्छाट इत्यपि ॥ ४४८ ॥ चक्रमर्द्दो लघुः
 स्वादु रूक्षः पित्तानिलापहः ॥ हृद्यो हिमः कफश्वास
 कुष्ठदद्गु कृमीन् हरेत् ॥ ४५० ॥ हन्युष्णान्त फलं कु
 ष्ट कण्डू दद्गु विषानिलान् ॥ गुल्मकास कृमिश्वास
 नाशनं कटुकं स्मृतम् ॥ ४५१ ॥ [अथ अनीसः।]
 विषा त्वतिविषा विश्वा शृङ्गी प्रतिविषारुणा ॥ शुक्ल
 कन्दा चोपविषा भङ्गुरा घृणावल्लभा ॥ ४५२ ॥ विषा सो
 षणा कटु स्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत् ॥ कफ पित्तानि
 साराम विषकासवमि कृमीन् ॥ ४५३ ॥

भा० अनन्तर चकोड़ के नाम और गुण कहते हैं ॥ चक्रमर्द्द प्रपुच्छाट ददुष्म
 मेपलोचन पच्छाट ॥ डगज चकोड़ पुच्छाट ॥ येह चकोड़ के नाम हैं ॥ ४४८ ॥
 चकोड़ हलका मधुर, रूखा पित्तवायुका नाशक ॥ हृदय का प्रिय शीतल
 कफ श्वास कुष्ठ दाद कृमी इनकी नाश करना है ॥ ४५० ॥ इसका फल बड़
 नगरज होता है और कुष्ठ कंडू दाद विष वान ॥ वायगोला कास कृमि श्वास
 इनका नाशक है ॥ और कडुवा कहा गया है ॥ ४५१ ॥
 अनन्तर अनीस के नाम और गुण कहते हैं ॥ विषा त्वतिविषा विषवाभृंगी
 प्रतिविषा अरुणा ॥ शुक्ल कन्दा उपविषा भङ्गुरा घृणावल्लभा ॥ येह अनी
 सके नाम हैं ॥ ४५२ ॥ अनीस कुछ गरम कड़वी निक्त पाचन दीपन होती
 है ॥ और कफ पित्त अनिसार आम विष कास वमन कृमी इनकी नाश कर
 ती है ॥ ४५३ ॥

अथ सावरलोधः पटिआ लोध इति लोके ।] लोधस्ति
 रीटक श्वैव शावरी मालवस्तथा ॥ द्वितीयः पटिका
 लोधः क्रामुकः स्थूल बल्कलः ॥ ४५४ ॥ जीर्ण पट्टो
 दह त्वः पट्टी लाक्षा प्रसादनः ॥ लोधो ग्राही लघुः

शीत श्वेतपित्तः कफपित्तनुत् ॥ ४५५ ॥ कषायो रक्त

पित्तात्तृणज्वरातीसार शोथहृत् ॥ [अथ लशुनः ।]

भा० लशुनस्तु रसोनः स्यादुग्रगन्धो महौषधम् ॥ अरिष्टो

स्नेच्छकन्दश्च यवनेष्टो रसोनकः ॥ ४५६ ॥

भा० अनन्तर लोध और पठानी लोधके नाम और गुण कहने हैं ॥ लोध कि
रीटक ग्रावर मालव । यह लोधके नाम हैं ॥ और दूसरी पट्टिका लोध हम्बिक
स्पूल बल्कल ॥ ४५४ ॥ जीर्णपत्र दहन्यत्र पट्टी लाक्षा प्रसादन येह पठानी
लोधके नाम हैं ॥ लोध ग्राही अल्प शीतल चबुकेहीन कफ पित्तकी नाशक है
॥ ४५५ ॥ और कसेली रक्त पित्त ज्वर अनीसार शोथ । इनकी नाशक है ॥
अनन्तर लहसुन के नाम और गुण कहने हैं ॥ लहसुन रसोन उग्रगन्ध महौषध
॥ अरिष्ट स्नेच्छकन्द यवनेष्ट रसोनक येह लहसुन के नाम हैं ॥ ४५६ ॥

तदा ततोऽप्यनद्वित्युः सरसोनोऽभवद् भुवि ॥ यज्व

भिश्च रसेयुक्तो रसेवान्धेन वर्जितः ॥ ४५७ ॥ तस्मा

द्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः ॥ कटुकश्चा

पिमूलेषु निरुक्तपत्रेषु संस्थितः ॥ ४५८ ॥ नाले कषा

य अदिष्टो नालाग्रे लवणः स्मृतः ॥ बीजे तु मधुरः

प्रोक्तो रसस्तद्गुण वेदिभिः ॥ ४५९ ॥ रसोनो वृंह-

णो वृष्यः स्निग्धोष्णः पाचनः सरः ॥ रसे पाके

च कटुक स्निग्धो मधुर की मतः ॥ ४६० ॥

भा० जब उसे वृद्धी पर बृन्द गिरी वो लहसुन जवा ॥ पांच रसों से यु
क्त और अम्ल रस से रहित होता है ॥ ४५७ ॥ इसवाले द्रव्यों के गुण
नगर नेवालों ने रसोन ऐसा कहा है ॥ मूल में कटुवा और पत्र में
निरुक्त रहना है ॥ ४५८ ॥ नाल में कसेला और नालके अग्रभाग में

वरा ऐसा कहा गया है । बीजमें मधु इस प्रकार रस इसके गुण जानने वालों ने
 कहे हैं ॥ ४५६ ॥ लहसुन धातुओं के बढ़ाने वाला और पुरुषत्व को बढ़ाने
 वाला । त्रिग्ध उष्ण पाचन दस्तावर होता है तथा रस और पाक में कड़ुवा
 तीक्ष्ण उष्ण और मधुर भी कहा गया है ॥ ४६० ॥ टटे हाड़ को जोड़ने वाला कं
 ठ के हिन भारी रक्त पित्त को बढ़ाने वाला । बल वर्ण को बढ़ाने वाला है ॥

बलवर्ण करो मेधा हितो नेत्र्यो रसायनः ॥ ४६१ ॥

हृद्दोग जीर्णज्वर कुक्षि शूल विबन्ध गुल्मारुचिका

स शोफान् ॥ दुर्नाम कुष्ठानलसाद जन्तु समीरण

श्वास कफांश्च हन्ति ॥ ४६२ ॥ मद्यं मांसं तथा स्लज्च

हिनं लशुनसेविनाम् ॥ व्यायाम मानयं रोष मतिनीरं

पयो गुडम् ॥ ४६३ ॥ रसोन मश्नन् पुरुषस्त्यजे देता

निरन्तरम् ॥

भा० टटे हाड़ का जोड़ने वाला कंठ के हिन भारी रक्त पित्त को बढ़ाने वाला ॥

बलवर्ण को बढ़ाने वाला कान्तिके हिन नेत्र के हिन रसायन होता है ॥ ४६१ ॥

और हृद्दोग जीर्णज्वर कूष के शूल को विबन्ध वायु गला अरुचि का स शोथ

दुर्नाम कुष्ठ अग्नि मांस क्षीम वान श्वास और कफ इनको नाश करता है

॥ ४६२ ॥ लहसुन के सेवन करने वाले को मद्य मांस और खटवई ये ह हिन है

॥ और कसरत घृण क्रोध बह्न जल दूध गुड ॥ ४६३ ॥ इनको लहसन खा

ने वाला पुरुष निरन्तर त्याग देवे ॥

[अथ पित्राज्ञः ।]

पलाण्डुर्य वनेष्टश्च दुर्गन्धो मुखदूषकः ॥ पलाण्डुस्तु

गुरौ ज्ञेयो रसोन सदृशो गुरौः ॥ ४६४ ॥ स्वादु पाके र

सोऽनुषाः कफ रुचानि पित्तलः ॥ हरते केवलं वानं

बलवीर्यं करो गुरुः ॥ ४६५ ॥

भा० अनन्तर प्याजके नाम और गुण कहने हैं ॥ पलां द्वे वनेष्ट दुर्गन्ध
सुखदृषक । ये प्याजके नाम हैं ॥ प्याज सहस्रानुके सहस्रगुण हैं ॥ ४६४
॥ पाकमें मधुर रस शीत कफ को करनेवाला और बहुत पित्त करनेवाला
नहीं ॥ केवल वात को नाश करना है । और बलवीर्य को करनेवाला है ।
नथा गुरु है ॥ ४६५ ॥

अथ मेला ।] भल्लानकं त्रिषु प्रोक्त मरुष्कोऽरुष्करोऽग्नि

कः ॥ तथैवाग्निसुखी भल्ली वीरदृक्षश्च शोफरुन् ॥

॥ ४६६ ॥ भल्लानक फलं पक्वं स्वादु पाकरसं लघु ॥ क

षायं पाचनं स्निग्धं तीक्ष्णोष्णं च्छेदि भेदनम् ॥ ४६७

॥ मेध्यं वह्निकरं हन्ति कफ वातत्रणोदरम् ॥ कुष्ठार्शो

ग्रहणी गुल्म शोफानाह ज्वर क्षमीन् ॥ ४६८ ॥

भा० अनन्तर भिलावे के नाम और गुण कहने हैं ॥ भल्लानक, नीनों में
कहा गया है । मरुष्क अरुष्कर अग्निक । यह भिलावे के नाम हैं ॥ उसी
प्रकार अग्निसुखी भल्ली वीरदृक्ष शोफरुन् । यह भी कहे गये हैं ॥ ४६६ ॥
भिलावे का फल पका हुआ पाकमें मधुर रस हलका ॥ कसेला पाचन स्निग्ध
तीखा उष्ण छेदन करनेवाला । और भेदन करनेवाला होता है ॥ ४६७ ॥
और कान्तिको करनेवाला अग्निको करनेवाला होता है । कफ वात दृष्ट
और उदर रोग इनको नाश करना है ॥ नथा कुष्ठ बवासीर संग्रहणी वाय
गोला शोथ अफारा ज्वर क्षमि इनको भी नाश करना है ॥ ४६८ ॥

तन्मज्जा मधुरो दृष्यो रंहणी वातपित्ता ॥ दृत्त मा

रुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केष्यमग्निरुन् ॥ ४६९ ॥ भल्ला

नकः कषायोष्णः शुक्रलो मधुरो लघुः ॥ वातश्ले

ष्मोदरानाह कुष्ठार्शो ग्रहणी गदान् ॥ ४७० ॥

हन्ति गुल्मज्वरशिवत्र वान्हेमान्द्य क्रिमिब्रणान् ॥

उसकी गिरी मधुर पुरुषत्व की बढ़ानेवाली ॥ बलके देनेवाली वान पित्त की नाशक होती है । मोल भिलावा मधुर पित्तका नाशक केश अग्नि को करनेवाला होता है ॥ ४६८ ॥ भिलावा कसेला है गरम शुक्र को करनेवाला मधुर हलका होता है । वानकफ उदर रोग अफारा कुष्ठ बवासीर संग्रहणी इनको नाश करता है ॥ ४६९ ॥ और वायगोला ज्वर स्नेहकुष्ठ अग्निमान्द्य कृमि व्रण इनको भी नाश करता है ॥ [अथ भङ्गा ।]

भङ्गा गज्जा मातुलानी मादिनी विजया जया ॥ भ

ङ्गा कफ हरी तिक्ता ग्राहणी पाचनी लघुः ॥ ४७१ ॥

नीलशोषणा पित्तला माह मन्दवाग्निर्वर्द्धिनी ॥

[अथ पोस्ता ।] निलभेदः स्वसनिलः कास श्वास हरः

स्मृतः ॥ स्यात्वा स्वसफलोद्भूतं बल्कलं शीतलं ल

घु ॥ ग्राहि तिक्तं कषायज्व वातकृत् कफा स्रहन् ॥

धानूनां शोषकं रुक्मं मदकृद् वाग्विवर्द्धनम् ॥ ४७३ ॥

सुहर्मोहकरं रुच्यं सेवनान् पुंस्त्व नाशनम् ॥

भा० अनन्तर भांग के नाम और गुण कहने हैं ॥ भङ्गा गज्जा मातुलानी मादिनी विजया जया । यह भांग के नाम हैं ॥ भांग कफ को करनेवाली तिक्ता ग्राहणी पाचन हलकी ॥ नीला उष्ण होती है और पित्त को करनेवाली मोह मन्दवागी मन्दाग्नि इनको बढ़ानेवाली होती है ॥ ४७१ ॥ अनन्तर पोस्त के नाम और गुण कहने हैं ॥ निल भेद स्वसनिल । यह पोस्त के नाम हैं ॥ और कास श्वास के नाशक कहे गये हैं ॥ पोस्त के फल में उत्पन्न हुआ बल्कल शीतल हलका ॥ ग्राही तिक्त कसेला वात को करनेवाला कफ रक्त का नाशक ॥ धानुओं का शोषक रुखा नष्ट करनेवाला वाणी को बढ़ानेवाला ॥ ४७३ ॥ बारं बार मोह को करनेवाला रुचि को देनेवाला होता है । और सेवन से पुरुषत्व को नाश करनेवाला है ॥ [अथ अफ्रीम ।]

अनन्तर अफीम के नाम और गुण कहते हैं ॥

उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकम् ॥ आफूकं
शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वानपित्तलम् ॥ ४७४ ॥ तथा
खसफलोद्भूतवल्कल प्रायमिन्यपि ॥

अथ खारवसदान ।] उच्यन्ते खसबीजानि ते खारवस नि
ला अपि ॥ खसबीजानि वल्यानि वृथाणि सुगुरूणि
च ॥ ४७५ ॥ जन्यन्ति कफम् तानि शमयन्ति समीर
णम् ॥ [अथ सैन्धव ।] सैन्धवोऽस्योशीन शिवं
माणिमन्यञ्च सिन्धुजम् ॥ सैन्धवं लवणं स्वादु दीप
नं पाचनं लघु ॥ ४७६ ॥ सिग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं
नेत्र्यं विदोषहन् ॥

भा० पोस्त के फल के दूध को अफूक और अहिफेनक कहा है ॥ अफीम
सुकाने वाली ग्राही कफ को नाश करने वाली वान पित्त को करने वाली होती है
॥ ४७४ ॥ तथा पोस्त के फल से उत्पन्न हुये वल्कल सदृश प्रायः गुण में होती है
॥ अनन्तर खस खस के नाम और गुण कहते हैं ॥ पोस्त के बीजों को खारवस-
तिल भी कहते हैं ॥ खस खस बल को देने वाली पुष्ट भारी होती है ॥ ४७५ ॥
और कफ को उत्पन्न करती है । तथा वान को शमन करती है ॥
अनन्तर सैन्धव के नाम और गुण कहते हैं ॥ सैन्धव शीत शिव माणिमंथ
सिन्धुज यह सैन्धव के नाम हैं ॥ सैन्धव लवण स्वादु दीपन पाचन हलका
होता है । चिकना रुचिको देने वाला शीतल पुरुषत्व को करने वाला सूक्ष्म
नेत्रका हिन और विदोषका नाशक होता है ॥ ४७६ ॥

[अथ शाकम्भरि ।] शाकम्भरीयं कथितं गुडारव्यं रोमकन्त
था ॥ गुडारव्यं लघु वानघ्नं मत्स्युषां भेदि पित्तलम् ॥

॥ ४७७ ॥ तीक्ष्णोष्णञ्चापि सूक्ष्मञ्चाभिष्यान्दि कटु पाकि च

[अथ पाङ्ग ।] समुद्रं यत्तु लवणा मन्तारं वशाञ्च तत् ॥ सा
मुद्रं सागरजं लवणो दधि सम्भवम् ॥ ४७८ ॥ समु
द्रं मधुरव्याके सत्तितं मधुरञ्जु ॥ नान्येषां दीपनं मे
हि सत्तार मविदाहिव ॥ ४७९ ॥ श्लेष्मलं वाततु नित्त
यरूक्षं नातिशीतलम् ॥

भा० अनन्तर सांभर नामक के नाम और गुण कहते हैं ॥ सांभर नामक पुष्प तथा रौमक । ये सांभर नामक के नाम कहे गये हैं ॥ सांभर हलका वातका नाशक बहुरंगम् मेदी पित्तको करने वाला ॥ ४७७ ॥ नीला उष्ण रुक्ष अभिष्यन्दि पाकमें कटु होता है ॥ अनन्तर पाङ्ग के नाम और गुण कहते हैं ॥ समुद्र जो लवणा होता है वोह क्षार रहित होता है ॥ उस्को वषार कहते हैं ॥ समुद्रज सागरज उदधिसम्भव । ये पाङ्ग लवणा के नाम हैं ॥ ४७८ ॥ पाङ्ग पाकमें मधुर कुछ तित्त मधुर भारी । अति उष्ण दीपन रोही कुछ क्षार और अविदाही होता है ॥ ४७९ ॥ और कफको करने वाला वातका नाशक तित्त क्षिण्य न अतिशीतल होता है ॥

अथ विरेश्वा सोचर इति । विड्याकञ्च कतकं तथा
द्राविडं मासुरम् ॥ विडं सत्तार मूर्द्धाधः कफवानातु
लोमलम् ॥ ४८० ॥ (क) (ऊर्ध्वं कफमधोवातं सत्तारये
दित्यर्थः ।) दीपनं लघु तीक्ष्णोष्णं रुक्षं रुच्यं व्याधिन्द ॥
विवन्धानाह विष्टम्भ हृदयक गौरव शूलतुत् ॥ ४८१ ॥

भा० अनन्तर विड के नाम और गुण कहते हैं ॥ विड पाक कतक तथा द्राविड अण्डर । ये नाम विड के हैं ॥ विड कुछ क्षार ऊर्ध्व अप कफ वात का अनुलोमन करने वाला है ४८० ॥ (क) ऊपर कफ और नीचे वात इनको निकालता है ॥ दीपन हलका तीक्ष्ण उष्ण रुखा रुचिको करने वाला व्याधिन्द होता है । और विवन्ध अफाण विष्टम्भ हृदयकी पीड़ा भारीपन और शूल । इनका नाशक होता है ॥ ४८१ ॥

[अथ चोहार कीड़ा इति च ।] सौवर्चलं स्यादुचकमन्धपा
 कञ्च तन्मतम् ॥ रुचकं रोचनम्भेदी दीपनम्याचन
 म्यरम् ॥ ४८२ ॥ सुस्नेहं वातनुनाति पित्तकं विषहं
 लघु ॥ उद्गार शुद्धिदं सूक्ष्मं विबन्धा नाह शूलजित्
 ॥ ४८३ ॥ (रेह गह गया प्रभृति ।) ओद्भिदं प्यांशु
 लवणं वज्जातं भूमितः स्वयम् ॥ क्षारङ्गुरु कटु स्नि
 ग्धं शीतलं वातनाशनम् ॥ ४८४ ॥

भा० अनन्तर सौचर के नाम और गुण कहने हैं ॥ सौवर्चल रुचक प्र-
 त्यपाक । ये सौचर के नाम हैं । सौचर रुचिको करने वाला भेदी दीपन अ-
 न्यन्न पाचन होता है ॥ ४८२ ॥ चिह्नरा वातकानाशक और न अतिपित्त
 को करने वाला विषघ्न हलका होता है ॥ और उद्गार को शुद्ध करने वाला
 सूक्ष्म विबन्ध अफारा और शूल हनका जीतने वाला है ॥ ४८३ ॥
 अनन्तर कचलो न के नाम और गुण कहने हैं ॥ ओद्भिद प्यांशु लवण
 येह कचलो न के नाम हैं ॥ जो भूमि से स्वयं उत्पन्न होता है ॥ क्षार भारी
 कड़वा स्निग्ध शीतल वातकानाशक है ॥ ४८४ ॥

अथ चराकलोनी । चराका स्लक मत्पुष्पा दीपनं नन्दन

हर्षणम् ॥ लवणानुरसं रुच्यं शूलाजीर्ण विबन्ध
 नुत् ॥ ४८५ ॥ [अथ यवक्षारः सानी सौर ।]

पाकाः क्षारो यवक्षारो यावशूको यवाग्रजः ॥ स्व
 र्जिकापि स्मृतः क्षारः कापोतः सुखवर्चकः ॥ ४८६
 कथितः स्वर्जिका भेदो विशेषज्ञो सुवर्चिकः ॥ यव
 क्षारो लघुः स्निग्धः सुसूक्ष्मो बन्धि दीपनः ॥ ४८७ ॥

भा० अनन्तर चने के खार को कहने हैं ॥ चने का खार वज्जत गर्म दी-
 पन । रंजनों को रंजने वाला होता है । और लवण के अनुरास रुचिको
 करने वाला । तथा शूल अजीर्ण विबन्ध । इनका नाशक है ॥ ४८५ ॥

अनन्तर जवारवार, सज्जी, शोग, इनके नाम और गुण कहने हैं ॥ पाकारवार, य
वाक्षार यविकयवाग्रज येह यवारवार के नाम हैं ॥ सज्जी भी क्षार कही गई है
कापोत सुखवर्चक ॥ ४८६ ॥ येह सज्जीका भेद बुद्धिवानोंने सुवर्चिक कहा है।
जवारवार हलका क्षिग्धवह्न स्रक्ष्म अग्निको दीपन करने वाला है ॥ ४८७ ॥

निहन्ति शूलवाताम श्लेष्म श्वास गलामयान् ॥ पा

ण्डुशो ग्रहणी गुल्मा नाह स्नीह हृदमयान् ॥ ४८८ ॥

स्वर्जिकाल्पगुण तस्माद्विशेषाद् गुल्म शूलहन् ॥

सुवर्चिका स्वर्जिका वद् बोद्धव्या गुणतो जनेः ॥ ४८९ ॥

[अथ सोहागा ।] सौभाग्यं टङ्कुरं क्षारो धातुद्रावकमुच्यते ॥

टङ्कुरं वह्निः कृद्गुहं कफहृद् वान पित्तहन् ॥ ४९० ॥

भा० और शूल वान आमकफ श्वास गलेके रोग इनको नाश करना है ॥
नथा पांडुरोग ववासीर संग्रहणी वायुगोला अफाण स्नीह हृदयके रोग इन
को भी नाश करता है ॥ ४८८ ॥ सज्जी उसे अल्पगुण वाली है । और विशेष
करके वायुगोला को नाश करती है । और शोरा सज्जीके समान गुण से क्षोग
कहने हैं ॥ ४८९ ॥ अनन्तर सुहागे के नाम और गुण कहने हैं ॥ सौभाग्य
टंकुरा क्षार धातुद्रावक कहने हैं ॥ सुहागा अग्निको करने वाला और रु
खा कफका नाशक वान पित्तको करने वाला होता है ॥ ४९० ॥

अथ क्षारद्वयं क्षार यवम् ॥ स्वर्जिका यावशूकश्च क्षार ह्

यमुदाहृतम् ॥ टङ्कुरोऽनं सुतं न तु क्षारत्रयमुदीरितम् ॥

॥ ४९१ ॥ मिलितसूक्त गुणव दिशेषा दुल्महृत्परम् ॥

[क्षाराष्टकं] पलाशवज्जीशिखरिचिञ्चार्क निलनालजाः ॥

यवनः स्वर्जिका चेति क्षाराष्टकमुदाहृतम् ॥ ४९२ ॥ क्षा

रा रतेऽग्निना तुल्या गुल्म शूलहरा मृशम् ॥

भा० अनन्तर क्षारद्वय और क्षारत्रय को कहते हैं ॥ सज्जीरवार ज्वारखार इन को क्षारद्वय कहा है ॥ सुहागे से युक्त वोह क्षारत्रय कहा गया है ॥ ४६१ ॥ वोह मिलेहुसे उक्तगुण को करनेवाले हैं ॥ विशेष करके अन्यन्त वायुगोला के नाशक हैं ॥ अनन्तर क्षाराष्टक को कहते हैं ॥ पलास धूतर चिचिरा इमली आक तिल ॥ जब और सज्जी इन आठ खारों को क्षाराष्टक कहा है ॥ ४६२ ॥ येह क्षार आग के समान हैं और वायुगोला और शूल इनके अन्यन्त नाशक हैं ॥

[अथ चूक्रम् ।] चूक्रं सहस्रवेधि स्याद्रसाम्लं शुक्लमित्यपि ॥

चूक्रमत्यम्लमुष्णञ्च दीपनं पाचनं परम् ॥ ४६३ ॥

शूलगुल्मविवन्धामवातश्लेष्महरं सरम् ॥ कृमि

तृष्णास्यचैरस्य हृत्पीडावन्निमान्द्यहत् ॥ ४६४ ॥

भा० अनन्तर चोकर के नाम और गुण कहते हैं ॥ चूक्र सहस्रवेधि रसाम्ल, शुक्ल येह चोकर के नाम हैं ॥ चोकर बहुत खटा गर्म दीपन पाचन होता है ॥ शूल वायुगोला विबन्ध आमवात कफ इनका नाशक और दस्तावर होता है ॥ कृमि तृष्णा मुखकी विरसता हृदयपीडा अग्निमान्द्य इनका नाशक है ॥ ४६४ ॥

इति श्री मिश्रलटकन तनय श्रीमिश्रभाव विरचिते भावप्रकाशे हरीनक्यादि वर्गः ॥

अथ कर्पूरादि वर्गः । [तत्रादौ कर्पूरस्य नामगुणाश्च]

पुंसिल्लीवेचकर्पूरः सिताश्रो हिमवाल्मुकः ॥ घ

नसारश्चन्द्र संज्ञः हिमनामापि सस्मृतः ॥ १ ॥

कर्पूरः शीतलो वृष्यश्चक्षुष्यो लेखनो वधुः ॥ सु

रभिर्न्मधुरस्तिक्तः कफपित्तविषादहः ॥ २ ॥

भा० इति श्री मिश्रलटकन के पुत्र श्रीभावमिश्रका विरचित भावप्रकाश में हरीनक्यादि वर्ग समाप्त ॥

अनन्तर कर्पूरादि वर्गः] उससे प्रथम कर्पूर के नाम और गुण कहते

नेहैं ॥ पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिंगमें भी कर्पूर सिनाभ्र हिमवालुक ॥ घनसार चन्द्र संज्ञा हिम नामवाला भी बोह कहा गया है ॥ १ ॥ कर्पूर शीतल है वृष्य चक्षुके हिन लेखन हलका ॥ सुगन्धयुक्त मधुर निक्त होता है । और कफ पित्त विष इनका नाशक है ॥ २ ॥

दाह तृष्णास्य वैरस्य मेदो दौर्गन्ध्य नाशनः ॥ कर्पूरो
द्विविधः प्रोक्तः पक्का पक्क प्रभेदतः ॥ ३ ॥ पक्का तर्कपू
रतः प्राङ्ग रपक्कं गुणवत्तरम् ॥ [अथ चिनीआ कर्पूरः]
चीनाक संज्ञः कर्पूरः कफ क्षय करः स्मृतः ॥ कुष्ठ क
ण्डू वमिहर स्तथा निक्तरस म्र सः ॥ ४ ॥

अथ कस्तूरी ।] मृगनाभि मृगमदः कथितस्तु सहस्रभि
न् ॥ कस्तूरिका च कस्तूरी वेधमुख्या च सा स्मृता ॥ ५ ॥
काश्मरी कपिलच्छाया कस्तूरी त्रिविधा स्मृता ॥ काम
रूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली मध्यमा भवेत् ॥ ६ ॥

भा० दाह तृष्णा मुखकी विरसता मेद दुर्गन्धता इनका भी नाशक है ॥ कर्पूर दो प्रकारका कहा गया है कच्चा और पक्का इस भेदसे ॥ ३ ॥ पक्के कर्पूरसे कच्चा कर्पूर गुणमें अधिकतर कहा है ॥ अनन्तर चिनियां कर्पूर । चिनाक संज्ञा चिनियां कर्पूर की है बोह कफ क्षय करनेवाला कहा गया है । कुष्ठ खुजली वमन इनका नाशक तथा निक्त रसवाला बोह होता है ॥ ४ ॥ अनन्तर कस्तूरी के नाम और कहने हैं ॥ मृगनाभि मृगमद सहस्रभिन् येह कस्तूरी के नाम कहे हैं ॥ और कस्तूरिका कस्तूरी वेद मुख्या बोह कही गई है ॥ ५ ॥ काश्मरी कपिलच्छाया कस्तूरी । ऐसे तीन प्रकारकी कही गई हैं ॥ कामरूप में उत्पन्न होनेवाली श्रेष्ठ और नैपाल में होने वाली मध्यम होती है ॥ ६ ॥

कामरूपोद्भवा रुष्मा नैपाली नीलवर्णा युक् ॥ काश्मी
रदेश सम्भूता कस्तूरी ह्यधमा मता ॥ ७ ॥ कस्तूरिका

कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्ललागुरुः॥ कफवात वि
पच्छर्द्दि शीतदौर्गन्ध्य शोषहन् ॥ ८ ॥

अथ मुसुकदना ।] लता कस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वीर्यव्याहि
मालघुः ॥ चक्षुष्या च्छेदिनी श्लेष्म तृष्णावस्त्या स्य
रोगहन् ॥ ९ ॥

भा० काफरु में होनेवाली काली और नैपाल की नीली होती है । काश्मीर दे
श में उत्पन्न होनेवाली कस्तूरी अधम कही गई है ॥ ७ ॥ कस्तूरी कड़वी ति-
क्त क्षार उष्ण धुक् को करनेवाली मारी होती है ॥ और कफ वात विषयम
न शीत दुर्गन्धिता शोष हन की नाशक भी है ॥ ८ ॥ [अनन्तर मुसुकदना।]
फरकूरिका लता तिक्त मधुर पुष्ट शीतल हलकी होती है ॥ चक्षु के हिन के
दन करनेवाली कफ तृषा और पेडू मुख के रोग की नाशक है ॥ ९ ॥ -

अथ गौरासाखभेद आण्डी इति लोके ।] गन्धमान्जीर
वीर्यन्तु वीर्यहान् कफवात हन् ॥ कराडू कुष्ठ हरं
नेत्र्यं सुगन्धं खेद गन्धनुत् ॥ १० ॥ [अथ चन्दनः ।]
श्रीखण्डं चन्दनं नस्ती भद्रः श्रीस्तैलपरिणिकः ॥ ग
न्दसारो मलयजस्तथा चन्द्रद्युतिश्च सः ॥ ११ ॥

भा० अनन्तर गौरासाखभेद आण्डी इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ गन्धमा-
जीर वीर्य तो येह बल करने वाला कफ वात का नाशक है ॥ और कराडू कु-
ष्ठ इनका नाशक नेत्रकाहित सुगन्ध पसीना की गन्ध को नाश करनेवाला है
॥ १० ॥ इसकी विहीली लोहना भी कहते हैं ॥ अनन्तर चन्दन श्रीखण्ड चं-
दन भद्र श्रीस्तैलपरिणिक । गन्धसार मलयज तथा चन्द्रद्युति येह चन्दन
के नाम हैं ॥ ११ ॥

स्वाद्वे तिक्तं कषे पीतं च्छेदे रक्तं तनौ सितम् ॥ ग्रन्थि
कोट रसं युक्तं चन्दनं श्रेष्ठं मुच्यते ॥ १२ ॥ चन्दनं शीत-

लंरूक्षं तिक्तमाह्लादनं लघु ॥ अम शोष विषश्लेष्म नृषणा
पित्तास्र दाहनुत् ॥ १३ ॥

भा० स्वादु में तिक्त घिसनेमें पीत और काटनेमें लाल और शरीरके लगाने
में प्वेन होना है ॥ तथा गांठ और खोड़से युक्त चंदन श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ चन्दन री
नलरूक्षतिक्त हर्षको देने वाला होता है और हलका है ॥
और अम शोष विषकफ नृषारक्त पित्तदाह इनका नाशक है ॥ १३ ॥

अथ पीतचन्दनम् ।] (कलम्बक इति लोके ।)

कालीयकन्तु कालीयं पीताभं हरिचन्दनम् ॥ हरि
प्रियंकालसारं तथा कालानुसार्यकम् ॥ १४ ॥ काली
यकं रक्तगुणं विशेषाद्वाङ्गनाशनम् ॥

अथ रक्तचन्दनम् ॥ रक्तचन्दनमारख्यातं रक्ताङ्गं क्षुद्र
चन्दनम् ॥ तिलपर्णं रक्तसारं तन्प्रवालफलं स्मृतं
म् ॥ १५ ॥ रक्तं शीतं गुरु स्वादु छर्द्दि नृषणा पित्तहन् ॥
तिक्तं नेत्रहितं दृष्यं ज्वरघ्नं विषापहम् ॥ १६ ॥

भा० अनन्तर पीतचन्दन । कलम्बक वृक्षप्रकार लोकमें कहते हैं ॥ काली
यक कालीय पीताभ हरिचन्दन ॥ हरिप्रिय काल सार तथा कालानुसा र्य
क । यह पीतचन्दनके नाम हैं ॥ १४ ॥ पीतचन्दन रक्तचन्दनके समान गुण
में है विशेष करके मुखपर कीजाईको नाशकरना है ॥ अनन्तर रक्तचंदन ।
रक्तचन्दन रक्तांग क्षुद्रचंदन कहा गया है ॥ और तिलपर्ण रक्तसार प्रवा
लफल कहा गया है ॥ १५ ॥ रक्तचंदन लाल शीतल भारी मधुर चमन नृषार
क्तपित्त इनका नाशक है ॥ और तिक्त नेत्रका हिन दृष्य होता है ॥ तथा ज्वर ज
राम विष इनका नाशक भी है ॥ १६ ॥

[अथ वकम् ।] पतङ्गं रक्तसारञ्च सुखं रज्जनं तथा ॥ प
ट्टरज्जकमारख्यातं पट्टरज्जं कुचन्दनम् ॥ १७ ॥

अनन्तर पतंग के नाम और गुण कहते हैं ॥ यत्कसार पतंग सुरंग रञ्जन ॥ पटं
रंजक कहा गया है । और पचूर कुचन्दन । ये ह भी पतंग के नाम हैं ॥ ये ह च
न्दन की किस्म से होता है ॥ १७ ॥

पतङ्गं मधुरं शीतं पित्तश्लेष्मघ्नं रणस्रनुत् ॥ हरिचन्द
नवद्देहं विशेषाद्दाहनाशनम् ॥ १८ ॥ चन्दनानि तु
सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः ॥ गन्धेन तु विशेषाः स्ति
पूर्वः श्रेष्ठतमो गुरौः ॥ १९ ॥

भा० पतंग मधुर शीतल पित्तकफघ्न रणरक्त इनका नाशक ॥ और हरीचन्द
न के सदृश जानना चाहिये और विशेषकरके दाहका नाशक है ॥ १८ ॥
सब चन्दन रसादिकरके समान होते हैं ॥ और गन्धसे विशेष है उनमें पहले गु
णों से श्रेष्ठ होते हैं ॥ १९ ॥ [अथ अगर ।]

(कृष्णा गुरु अगुरु सत ।) अगुरु प्रवरं लोहं राजार्हं यो
गजं तथा ॥ वशिष्कं कृमिजं वापि कृमिजग्ध मना
र्यकम् ॥ २० ॥ अगुरुषां कटु त्वच्यं निक्तं तीक्ष्णञ्च पि
तलम् ॥ लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीत बाल कफ प्रणुत् ॥
॥ २१ ॥ कृष्णं गुणाधिकं तनु लोहवद्धारि मज्जति ॥
अगुरु प्रभवः स्नेहः कृष्णा गुरु समस्मृतः ॥ २२ ॥

मस्तदारु द्रुक्लिमं क्लृप्तिमं सुरभूरुहः ॥ २३ ॥ देवदारु
 लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटु पाकिच ॥ विबन्धाध्मा
 नशोथाम तन्द्राहिक्का ज्वरास्त्रजिन् ॥ २४ ॥ प्रमेह
 पीनस श्लेष्म कास कण्डू समीरनुत् ॥

[अथ धूप सरलः ।] सरलः पीतवृक्षः स्या तथा सुरभिदारु
 रुकः ॥ सरसो मधुरस्तिक्तो कटु पाकरसो लघुः ॥ २५ ॥
 स्निग्धोष्णः कर्ण कण्ठाक्षिरो गरक्षो हरः स्पृष्टः ॥ क
 फानिल स्वेददाह कास मूर्च्छा व्रणा पहः ॥ २६ ॥

भा० अनन्तर देवदारु के नाम और गुण कहने हैं ॥ देवदारु, दारुमद्र, दारवी, इन्द्रदारु ॥ मस्तदारु, द्रुक्लिमं क्लृप्तं सुरभूरुह, येह देवदारु के नाम हैं ॥ २३ ॥ देवदारु हलका चिकना तिक्त उष्ण पाक में कटु होता है । विबंध अधिमान सूजन तन्द्रा हिचकी ज्वर रक्त इनको जीतने वाला है ॥ २४ ॥ और प्रमेह पीनस कफ कास खुजली वात इनका भी नाशक है ॥ दूसरी किस्म के देवदारु के नाम और गुण ॥ सरल पीतवृक्ष सुरभि दारु रुक येह दूसरी किस्म के देवदारु के नाम हैं ॥ देवदारु मधुर तिक्त पाक में कटु रस होता है ॥ २५ ॥ और स्निग्ध उष्ण तथा कर्ण कंठ नेत्र रोग और राक्षस इनका नाशक कहा गया है ॥ और कफ पसीना दाह कास मूर्च्छा व्रण इनका भी नाशक है ॥ २६ ॥ [अथ तगरः ।]

कालानुसार्यं तगरं कुटिलं नघुपं ननम् ॥ अपरं पि
 ण्डतगरं दण्ड हस्ती च वर्हिणम् ॥ २७ ॥ तगर द्वय सु
 ष्णं स्यान् स्वादु स्निग्धं लघु स्मृतम् ॥ विषा पस्मार
 शूलक्षि रोगक्षेप तथा पहम् ॥ २८ ॥

भा० अनन्तर तगर को कहने हैं ॥ कालानुसार्यं तगरं कुटिलं नघुपं ननम् । येह तगर के नाम हैं ॥ और दूसरे तगर को पिण्डतगर दण्ड हस्ति वर्हिणम् कहने हैं ॥ २७ ॥ दोनों तगर गर्भ हैं और मधुर चिकने हलके कहे

गयेहै ॥ तथा विष विरणी मूल नेत्ररोग और विदोष इनका नाशक है ॥ २८ ॥

अथ पद्माकः । पद्मकं पद्मगन्धि स्यात्तथा पद्माब्धयं स्मृतम् ॥ पद्मकन्तु परन्तिकं शीतलं वातलं लघु ॥ २९ ॥
वीसर्पदाह विस्फोट कुष्ठ प्लेष्मास्र पित्तनुत् ॥ गर्भ संस्थापनं दृढ्यं वमिद्वरण नृषा प्रणत् ॥ ३० ॥

अथ गुग्गुलुः । गुग्गुलुर्देव धूपश्च जटायुः कौशिकः पुरः ॥ कुस्तान्मूलं लकं लीवे महीषाक्षः पलङ्कषः ॥ ३१ ॥
महीषाक्षो महानीलः कुमुदः पद्म इत्यपि ॥ हिरण्यः पञ्चमोज्ञेयो गुग्गुलोः पञ्च जातयः ॥ ३२ ॥ भृङ्गाञ्जनं सवर्णस्तु महिषाक्ष इति स्मृतः ॥ महानीलस्तु विज्ञेयः स्वनाम समलक्षणः ॥ ३३ ॥

भा० अनन्तर पद्मकाष्ठ को कहते हैं ॥ पद्मक पद्मगन्धि तथा पद्माब्धये पद्मकाष्ठ के नाम कहें हैं ॥ पद्मकाष्ठ कसेला निक्त शीतल वातको करनेवाला हलका है ॥ २९ ॥ और विसर्प दाह विस्फोट कुष्ठ कफ रक्त पित्त इनका नाशक भी है ॥ तथा गर्भको करनेवाला रुचिके हित तथा वमन दृढ नृषा इनका भी नाशक होता है ॥ ३० ॥

अनन्तर गुग्गुलु के नाम और गुण कहते हैं ॥ गुग्गुलु देवधूप जटायु कौशिक पुर । कुस्तान्मूल खलक येह गुग्गुलु के नाम नपुंसक लिंगमें कहें हैं ॥ और महिषाक्ष पलंकष येह भी गुग्गुलु के नाम हैं ॥ ३१ ॥ महिषाक्ष महानील कुमुद पद्म ॥ और पांचवा हिरण्य भी येह गुग्गुलु पांच जात हैं ॥ ३२ ॥ भौरे के सदृश स्याह रंगवाला महिषाक्ष कहा गया है ॥ और महानील अपने नाम के समान लक्षणवाला जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

कुमुदः कुमुदामः स्यात्त पद्मो मार्गक्य सन्निभः ॥
हिरायाक्षस्तु हेमामः पञ्चानां लिङ्ग मोरितम् ॥ ३४ ॥

महिषाक्षो महानीलो गजेन्द्राणां हिता वृभो ॥ हया
 नां कुमुदः पद्मः स्वस्त्यारोग्य करौ परौ ॥ ३५ ॥ वि
 शेषेण मनुष्याणां कनकः परिकीर्तितः ॥ कदाचि
 न्महिषाक्षश्च यतः कैश्चि नृणामपि ॥ ३६ ॥ गुग्गुलु
 निशदस्तिक्तो वीर्योष्णः पित्तलः सरः ॥ कषायः
 कटुकः पाके कटू रूक्षो लघुः पुरः ॥ ३७ ॥ भग्न स
 न्धान रुद्ध दृष्यः सूक्ष्मः स्वर्यो रसायनः ॥ दीपनः
 पिच्छिलो बल्यः कफवान व्रणापचीः ॥ ३८ ॥

भा० और कुमुद स्नेह कमल के समान तथा पद्म माणिक के सदृश होता
 है ॥ हिरण्याक्ष सुवर्ण के सदृश होता है । इस प्रकार पाँचों कालक्षरा क
 हा है ॥ ३५ ॥ महिषाक्ष और महानील येह दोनों गजेन्द्रों के हिन होते
 हैं । और घोड़ों को कुमुद तथा पद्म येह दोनों अत्यन्त अरोग्य करने वाले
 हैं ॥ ३६ ॥ विशेष करके मनुष्यों को कनक हिन है ऐसा कहा गया है । क
 दाचिन् मनुष्यों को भी महिषाक्ष हिन होता है ॥ ३६ ॥ गुग्गुलु विषद तिक्त
 वीर्य में उष्ण पित्त को करने वाला सर ॥ कसेला कटुवा और पाक में क
 टु रूखा और बज्जन हलका होता है ॥ ३७ ॥ दृढ हाड को जोड़ने वाला पुष्ट
 सूक्ष्म स्वर को अच्छा करने वाला रसायन ॥ दीपन चैपदार बल को कर
 ने वाला होता है और कफ वान व्रण अपची ॥ ३८ ॥

मेदो मेहाश्म वातांश्च क्षौद्र कुष्ठा ममारुतान् ॥ पिडि
 का ग्रन्थि शोफार्णः गरुडमाला रुमीन् जयेत् ॥ ३९ ॥
 माधुर्याच्छमये दानं कषायत्वाच्च पित्ता ॥ ति
 क्तत्वात् कफजित्तेन गुग्गुलुः सर्व्वदोषहा ॥ ४० ॥
 सनवो दृंहणी दृष्यः पुराण रूत्वति लेखनः ॥ स्नि
 ग्धः क्षान्धन सङ्गणः पक्व जम्बू फलो यमः ॥ ४१ ॥

आ० मेद प्रमेह पथरी चान्नेद पुष्ट आमवान इनको तथापि डिका ग्रन्थि स्र
जन ववासी गंडमाल कर्म इनको जीनता है ॥ ३९ ॥ मधुरता से यानको श
मन करता है । रुसैले पनसे पित्त नाशक है । और तिक्त पनेसे कफको जीनने वा
ला है ॥ उसकरके गुग्गुल सर्व दोष नाशक कहा गया है ॥ ४० ॥ वह गुग्गुल न
या ध्रुव को बढ़ाने वाला पुष्ट होता है । और पुराना वज्रन लेखन होता है ।
चिकना सुवर्ण के सदृश अथवा पक्षे जामन के सदृश होता है ॥ ४१ ॥

नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिव्यस्तु पिच्छिलः ॥ शु
ष्को दुर्गन्धकश्चैव त्यक्त प्रकृति वर्णकः ॥ ४२ ॥ पुरा
णः सनु विज्ञेयः गुग्गुलुर्वीर्य्यं वर्ज्जितः ॥ अम्लं ती
क्ष्णामजीर्णञ्च व्यवयं श्रममातपम् ॥ ४३ ॥ मद्यं
रोषन्यजेत् सम्यगुपराधी पुरसेवकः ॥

आ० नया गुग्गुलु सुगन्ध चोपदार कहा गया है । शुष्क
दुर्गन्धके करने वाला तथा स्वभाविक वर्णसे रहित ॥ ४२ ॥ पुराना बोह जान
ना चाहिये जो गुग्गुलु वीर्य्य से रहित है ॥ खदाई भिर्व अजीर्ण मैथुन श्रम
श्रम ॥ ४३ ॥ मद्य क्रोध इनको गुग्गुलुका सेवन करने वाला उपराधी त्याग
देवे ॥

[अथ सरलनिर्यासगुग्गुलुः ।]

श्रीवासः सरलश्चावः श्रीवेष्टो वृक्षधूपकः ॥ श्रीवा
सो मधुरस्तिक्तः क्षिग्धोऽप्यगस्तवरः सरः ॥ ४४ ॥ पि-
तलो वान मूर्च्छाक्षि स्वर रोग कफापहः ॥ र्होघः स्वे
ददौर्गन्धः यूका कण्डू श्रण प्रणुत् ॥ ४५ ॥

आ० अनन्तर अर्घान देवदारु का किस्म उसके गोंदको गुग्गुलु कहते हैं ॥
श्रीवास सरलश्चाव श्रीवेष्ट वृक्षधूपक । यह सरलके नाम है ॥ सर-
ल मधुर तिक्त क्षिग्ध उष्ण कसेला सर होता है ॥ ४४ ॥ और पित्तको
घारने वाला तथा चान्नेद स्त्रि नेत्र स्वर इनके रोग और कफ इनका नाशक

है । और रक्तों का नाशक तथा मसीना दुर्गन्धना जूआं खुजली घाव इन का भी नाशक है ॥ ४५ ॥

[अथ रालः]

रालस्तु शालनिर्व्यासस्तथा सर्जरसः स्मृतः ॥ दे
वधूपो यक्षधूपस्तथा सर्वरसश्च सः ॥ ४६ ॥ रालो
हिमो गुरु तिक्तः कषायो ग्राहको हरेत् ॥ दोषास्व
स्वेद वीसर्प ज्वर व्रण विपादिकाः ॥ ४७ ॥ ग्रह भ-
ग्नाग्निदग्धाश्च शूलतीसार नाशनः ॥

(अथ कुन्दुरु सुगन्ध द्रव्य शूलकी निर्व्यासः) कुन्दु-
रुस्तु मुकुन्दः स्यात् सुगन्धः कुन्द इत्यपि ॥ कुन्दुरु
मधुर तिक्त नीदरास्त्वच्यः कटु हरेत् ॥ ४८ ॥ ज्वर
स्वेद ग्रहालक्ष्मी मुखरोग कफाऽनिलान् ॥

भा० अनन्तर रालको कहने हैं ॥ राल शाल निर्व्यास तथा मर्जरस । कहा
गया है । और देवधूप यक्षधूप तथा सर्जरस यह रालके नाम हैं ॥ ४६ ॥
राल शीतल भारी तिक्त कसेली ग्राहक है ॥ और दोष रक्त मसीना विसर्प
ज्वर घाव विपादिक इनको नाश करती है । और शूल अतीसार यह भी ना-
श करती है । ग्रह और दूधहाड़ की तथा आग से जले हुए को नाश करती है ॥
अनन्तर कुन्दुरु नाम सुगन्ध द्रव्य सोना वरुण का गोंद है उसके नाम और
गुण कहने हैं ॥ कुन्दुरु मुकुन्द सुगन्ध कुन्द । यह कुन्दुरु के नाम हैं ॥ कुन्दुरु
मधुर तिक्त नीदरास्त्वच्य के हित और कटु होता है ॥ ४८ ॥ और ज्वर स्वेद
ग्रह अलक्ष्मी मुखरोग कफ वायु इनको नाश करता है ॥

अथ शिलारसः ।] सिलहकस्तु नुरुष्कः स्याद्यतो यवन
देशजः कपिनैलज्ज संख्यातास्तथा च कपिनामकः
॥ ४९ ॥ सिलहकः कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः शुक्रका-

निहन्त ॥ दृष्यः कराग्रः स्वेद कुष्ठ ज्वर दाह ग्रहा पहः ॥ ५० ॥
 अथ जायफलः ।] जातीफलं जातिकोशं मालतीफलमित्य
 पि ॥ जातीफलं स्ते निक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु ॥ ५१ ॥
 कटुकं दीपनं ग्राहि स्वर्ध्वं श्लेष्मानिलापहम् ॥ निह
 न्ति मुखवैरस्वं मद्यदौर्गन्ध्यकृष्णताः ॥ ५२ ॥ कृमि
 कास वमि श्वास शोथ पीनस हृद्भुजः ॥

भा० अनन्तर शिलारसको कहने हैं ॥ सिल्हक तुरुष्क यवनदेशज ॥ कपि
 ल तथा कपिनामक येह शिलारस के नाम हैं ॥ ५० ॥ शिलारस कड़वा
 मधुर चिकना शुक्र कान्ति को करनेवाला पुष्ट ॥ कंठ के हिन और पसीना
 कुष्ठ ज्वर दाह यह इनका नाशक है ॥ ५० ॥

अनन्तर जायफल के नाम गुण कहते हैं ॥ जातिफल जातिकोश मालतीफ
 ल । येह जायफल के नाम हैं ॥ जायफल रसमें निक्त तीक्ष्ण उष्ण रुचिको करने
 वाला हलका ॥ ५१ ॥ कड़वा दीपन ग्राही स्वर्को अच्छा करनेवाला ॥ कफ
 वात का नाशक है । और मुखकी विरसता मद्यकी दुर्गन्धना और कृष्णता घून
 का भी नाशक है ॥ ५२ ॥ तथा कृमि कास वमन श्वास शोथ पीनस और हृद्
 की पीडा । इनको भी नाश करता है ॥

अथ जावत्री ।] जातीफलस्य त्वक् प्रोक्ता जातीपत्री भिष
 ग्वैः ॥ जातिपत्री लघुः स्वादुः कटूष्णारुचिवर्णकृत् ॥
 ५३ ॥ कफ कास वमि श्वास तृषणा कृमिविषा पहा ॥
 अथ लवङ्गः ।] लवङ्गं देवकुसुमं श्रीसंज्ञं श्रीप्रसूनकम् ॥
 लवङ्गं कटुकं निक्तं लघु नेत्र हिनं हिमम् ॥ ५४ ॥ दीप
 नं पाचनं रुच्यं कफ पित्तास्र नाशकृत् ॥ तृषणां छादं
 तथा ध्मानं शूलमाशु विनाशयेत् ॥ ५५ ॥ कासं
 श्वासञ्च हिक्काञ्च क्षयं क्षययति ध्रुवम् ॥

आ० अनन्तर जावित्री के नाम और गुण कहने हैं ॥ वैद्य बरने जायफल की छाल को जावित्री कहा है ॥ जावित्री हल की मधुर कड़वी उष्ण रुचि वर्ण इन को करने वाली है ॥ ५३ ॥ कफ कास वमन श्वास नृषा कृमि विष इन की नाश करी ॥ [अनन्तर लवङ्ग के नाम और गुण कहने हैं ॥ लवङ्ग देवकुसुम श्री संज्ञा श्री प्रसूनक ये लोण के नाम हैं ॥ लोण कड़वी तिक्त हल की नेत्र के हिन शीतल है ॥ ५४ ॥ दीपन पाचन रुचिके देने वाली कफ रक्त पित्त इन के नाश करने वाली है ॥ और नृषा वमन ये द फूलना शूल इन को शोघ नाश करती है ॥ ५५ ॥ और कास श्वास हिच की क्षय इन को भी नाश करती है ॥

[अथ इलायची पूरवी ।]

एला स्थूला च बड़ला पृथ्वी का त्रिपुटापि च ॥ भ

द्रैला दृहदेला च चन्द्रवाला च निष्कृतिः ॥ ५६ ॥ स्थू

लैला कटुका पाके रसे चानल क्लृप्तधुः ॥ सूक्ष्मोष्ण

प्लेष्मपित्तास कण्डू श्वास नृषा यहा ॥ ५७ ॥ हृस्वास

विष वस्त्यास्य शितो रुग् वमि कासनुत् ॥ ५८ ॥

अथ एला गुजराती ।] सूक्ष्मोपकुञ्चिका तुच्छा केरङ्गी

द्राविडी वृष्टिः ॥ एला सूक्ष्मा कफ श्वास काशाशो मू-

त्ररुच्छहन् ॥ ५९ ॥ रसेन कटुका शीता लघ्नी वानहरी

मता ॥

छोटी इलायची कफ श्वास कास ववासीर मूत्र रुच्छ इन्को नाश करती है ॥
५६॥ रसमें कड़वी शीतल हलकी चानकी नाशक कही गई है ॥

अथ नज ।] त्वक् पत्रञ्च वराङ्गः स्याद् भृङ्गचोदन्तयोक्

वम् ॥ त्वचं लघूणां कटुकं स्वादु निक्तञ्च रुक्षकम्

॥ ६० ॥ पित्तलं कफवानघ्नं कण्डूमारुचि नाशनम् ॥

हृद्घस्ति रोग वातार्शः ह्रमि पीनस शुक्रहृत् ॥ ६१ ॥

दालचीनी ।] त्वक् स्वादीनु तनुत्वक् स्यात् तथा दारुसिता

मता ॥

अनन्तर दारचीनी के नाम और गुण कहते हैं ॥ त्वक् पुत्र,
वरान्द भृङ्ग उचन्त उत्कट येह दारचीनी के नाम हैं ॥ दारचीनी हलकी गर्म क
ड़वी मधुर निक्त रुखी ॥ ६० ॥ पित्तको उत्पन्न करनेवाली कफवानकी नाशक
और खुजली आम अरुचि इनकी नाशक है ॥ और हृदय पेड़ इनका रोग और
वातववासीर ह्रमि पीनस शुक्र इनकी नाशक है ॥ ६१ ॥ अनन्तर कलसी दाल
चीनी को कहते हैं ॥ त्वक् तनुत्वक् तथा दारुसीता येह कलसी दारचीनी के
नाम हैं ॥

उक्ता दारुसिता स्वाद्री निक्ता चानिल पित्तहृत् ॥ सुर

भिः शुक्रला वर्या मुखशोष तृषापहा ॥ ६२ ॥

अथ पत्रकम् ।] पत्रन्तमालपत्रञ्च तथा स्यात् पत्रवाम

कम् ॥ पत्रकं मधुरं विजिह्वीक्षणीयं पिच्छिलं ल

घु ॥ ६३ ॥ निहन्ति कफ वातार्शो हल्लासा रुचि पीनसा

न् ॥

भा० दारचीनी मधुर और निक्त तथा वात पित्तको नाश कर
नेवाली कही गई है ॥ ६२ ॥ सुगन्धयुक्त शुक्रको बढ़ानेवाली रंगको अच्छा
करनेवाली है ॥ और मुख शोष तृषा इनकी नाशक हैं ॥

अनन्तर पत्रक ॥ पत्र ममालपत्र तथा पत्रनामक येह नेत्र पान के नाम हैं ॥ नेत्र
पान मधुर रुख नीदर उष्ण चेपदम हलका होता है ॥ ६३ ॥ और कफ वात

बवासीर मनली अरुचि पीनसरोग इनको नाशकरता है ॥

अथ नागकेशरः ।] नागपुष्पः स्मृतो नागः केशरो नाग
केशरः ॥ चाम्पेयो नागकिञ्जल्कः कथितः काञ्च
नाह्वयः ॥ ६४ ॥ अयं पुष्येन ह्रीवि ।] नागपुष्पं
कषायोष्णं रूक्षं लघुम पाचनम् ॥ ज्वर कण्डू तृ
षा स्वेद च्छर्दि हृत्तास नाशनम् ॥ ६५ ॥ दौर्गन्ध्य कु
ष्ठ वीसर्प कफ पित्त विषापहम् ॥

भा० अनन्तर नागकेशर ॥ नागपुष्प नाग केशर नागकेशर चाम्पेय नाग
किञ्जल्क काञ्चनाह्वय येह नागकेशर के नाम हैं ॥ ६४ ॥ येह पुष्यमै नपुंसक
है ॥ नागकेशर कसैला गर्म रूखा हलका आमका पाचन है ॥ और खुजली
तृषा पसीना वमन मनली इनको नाश करता है ॥ ६५ ॥ और दुर्गन्धता कुष्ठ
विसर्प कफ पित्त विष इनका नाशक है ॥

अथ विज्ञातचतुर्जातके ।] त्वर्गला पत्रकैस्तुल्यै स्त्रिषु
गन्धि विज्ञातकम् ॥ नागकेशर संयुक्तं चतुर्जातक
मुच्यते ॥ ६६ ॥ तद् द्वयं रेचनं रूक्षं तीक्ष्णोष्णं मुख
गन्धहृत् ॥ लघु पित्ताग्नि हृद्घ्नरंथ कफ वात क्षिपाप
हम् ॥ ६७ ॥

भा० अनन्तर विज्ञातचतुर्जातक ॥ दारचीनी इलायची पत्रक इनके समान
भागको त्रिसुगन्धि विज्ञातक कहते हैं ॥ यथा नागकेशर से संयुक्त हुआ चतु
र्जातक कहा है ॥ ६६ ॥ वोह दोनों रेचन रूक्ष तीक्ष्ण उष्ण और मुखकी दुर्गन्ध
ताके नाशक हैं ॥ और लघु पित्त अग्निको करनेवाला वर्गीको अच्छा करने
वाला कफ वात विषका नाशक है ॥ ६७ ॥

अथ कुङ्कुमम् ।] कुङ्कुमं घस्तरां रक्तं काश्मीरं पीतकं व
रम् ॥ सङ्गोचं पिशुनन्धारं बाह्वीकं शोणितमिध
म् ॥ ६८ ॥ काश्मीर देशजे स्तेवे कुङ्कुमं यद्गन्धि तत् ॥

सूक्ष्मकेशर मारुतं पद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥ बाह्लीक
 देशसज्जातं कुङ्कुमं पाराङ्ग रम्मतम् ॥ केतकी गन्ध
 युक्तन्तन्मध्यमं सूक्ष्मकेशरम् ॥ ७० ॥ कुङ्कुमम्या
 रसीके यत् मधुगन्धि तदीरितम् ॥ इषत् पाराङ्ग र
 वर्णं तदधमं स्थूलकेशरम् ॥ ७१ ॥ कुङ्कुमं कडुके
 स्निग्धं शिरोरुग्जरा जन्तुजित् ॥ तिक्तं वमिहरं
 चार्यं व्यङ्गदोष चयापहम् ॥ ७२ ॥

भा० भनन्तरकेशर । कुङ्कुम घसरा रक्त काश्मीर पीतक वर ॥ संकोच,
 पिशुनधीर बाल्लीक शोणिताभिध । येह केशर के नाम हैं ॥ ६० ॥ काश्मीर दे
 श में जो केशर होता है वोह । सूक्ष्मकेशर रक्तवर्ण पद्मके सदृश गन्धवाला
 होता है ॥ बाह उन्नम है ॥ ६६ ॥ बाल्लीक देश अर्धान् वलरह देश में उत्पन्न हु
 वा केशर खेततोता है । वोह केवड़े के गन्धके समान गन्धवाला सूक्ष्मकेशर
 होता है वोह मध्यम है ॥ ७० ॥ जो केशर पारस में होता है उसको मधुगन्धि
 कहा गया है । कुङ्कुमवर्ण और स्थूलकेशर होता है । वोह मध्यम है ॥ ७१
 केशर कडुवा चिकना सिरके रोग जस्त्रम कृमि इनको जीतने वाला है ॥ और
 तिक्त वमनका नाशक रंगको अच्छा करनेवाला और कौड़े तीनों दोष इन
 का नाशक है ॥ ७२ ॥

[अंथ गोरोचना ।]

गोरोचना तु मङ्गल्या वन्द्या गौरी च रोचना ॥ गोरोच
 ना हिमा तिक्ता वषट्का मङ्गल कान्तिदा ॥ ७३ ॥ विषा
 लक्ष्मी ग्रहोन्माद गर्भस्त्राव क्षतास्र हन् ॥

अथ नख नखी गन्धद्रव्यम् ।] नखं व्याघ्रनखं व्याघ्रा ।

युधन्त चक्रकारकम् ॥ नखं स्वल्पं नखी प्रोक्ता हनु
 र्हेह विलासिनी ॥ ७४ ॥ नखद्रव्य ग्रह प्रेक्ष्य वाता

स्व ज्वरं कुष्ठं हन् ॥ लघूणां शुक्लं वर्यं स्वादु ब्रण
विषापहम् ॥ ७५ ॥ अलक्ष्मी मुखदौर्गन्ध्य हन्त्या कर
सथोः कटुः ॥

भा० अनन्तर गोरोचना ।] गोरोचना मंगल्या वन्धा गोरी रोचना येह गोरोच
न के नाम हैं ॥ गोरोचन शीतल तिक्त वश करनेवाला और मंगल और कानि
इनको देने वाला है ॥ ७३ ॥ तथा विष अलक्ष्मी ग्रह उन्माद गर्भश्राव स्तन रक्त
इनको दूर करनेवाला है ॥ [अनन्तर नख नखी सुगन्ध द्रव्य ।
नख व्याघ्रनख व्याधायुध चक्रकारक ॥ छोटे नख को नखी और हनु हृह
बिलासिनी कहा है ॥ ७४ ॥ नख द्रव्य यत् कफ वानरक्त ज्वर कुष्ठ इनका ना
शक है ॥ हलका शुक्ल को उत्पन्न करनेवाला वरी को अच्छा करनेवाला मधुर
नखम तथा विष इनका नाशक है ॥ ७५ ॥ और अलक्ष्मी मुखकी दुर्गन्धि इन
का नाशक है तथा पीक और रसमें कटु होता है ॥

अथ सुगन्धवाला ।] बालं ह्रीवेर वहिष्ठो दीच्यङ्केशाम्बु

नाम च ॥ बालकं शीतलं रुक्षं सधु दीपन पाचनम्

॥ ७६ ॥ हृत्पासा रुचि वीसर्प हृद्रोगा माति सारजित् ॥

अथ वीरणम् ।] स्याद् वीरणं वीर तरु वीरञ्च वहु भूल

कम् ॥ वीरणं म्पाचनं शीतं वान्ति हल्लघु तिक्तकम् ॥

७७ ॥ स्तम्भनं ज्वरनुद् वान्ति मदजित् कफ पित्तहत् ।

॥ तृष्णा सविष वीसर्प कृच्छ्र दाह ब्रणापहम् ॥ ७८ ॥

भा० अनन्तर सुगन्धवाला ॥ बाल ह्रीवेर वहिष्ठ उदीच्य केश अम्बुना
म येह सुगन्धवाला के नाम हैं ॥ सुगन्धवाला शीतल रुखा दीपन हलका
पाचन ॥ ७६ ॥ और मनली अरुचि विसर्प हृद्रोग आमातिसार इनको दूर
करनेवाला है ॥ [अनन्तर वीरण अर्थात् जिसकी जड़ खस है ॥ वीरण
वीर तरु वीर वहु भूलक येह वीरण के नाम हैं ॥ वीरण पाचन शीतल वमन
इनका नाशक हलका तिक्त है ॥ ७७ ॥ और स्तम्भन ज्वरका नाशक वान्ति मद

इनका दूर करने वाला । कफ पित्त का नाशक । और मृषारक्त विष विसर्प
मूत्र कच्छ दाह ब्रण इनका नाशक है ॥ ७७ ॥

[अथ उशीर ।]

वीरणास्य तु मूलं स्यादुशीरं नलदंष्ट्र तत् ॥ अमृणा
लञ्च सेव्यञ्च समगन्धिक मित्यपि ॥ ७८ ॥ उशी
रम्पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम् ॥ मधुरं
ज्वर हृद्धानि मदनुत् कफ पित्त हृत् ॥ ७९ ॥ तृषणा
सर्वविष वीसर्प दाह कच्छ ब्रणापहम् ॥

भा० अनन्तर रस वीरणा की जड़ रस है उसको नलद उशीर ॥ अमृ
णाल सेव्य संगन्धिक भी कहते हैं ॥ ७८ ॥ रस पाचन शीतल स्तम्भन
हलका तिक्त मधुर ज्वर का नाशक वमन मूत्र का नाशक और कफ
पित्त का नाशक है ॥ ७९ ॥ और मृषारक्त विष विसर्प दाह मूल कच्छ
ब्रण इनका नाशक है ॥

अथ जटामांसी ।] जटामांसी भूतजटा जटिला च तपस्वि
नी ॥ भांसी तिक्ता कषाया च मेध्या कन्तिबलप्रदा
॥ ८० ॥ स्वाद्वी हिमा त्रिदोषाश्च दाह वीसर्प कुष्ठनुत्
॥ अथ भूरच्छरील इति लोके ॥] शैलेपन्तु शिला पु
ष्यं वृद्धङ्गलानु सार्यकम् ॥ शैलेयं शीतलं हृद्यं
कफ पित्त हरं लघु ॥ ८१ ॥ कराडू कुष्ठाश्मरी दाह
विष हंजुद रक्त हृत् ॥

भा० अनन्तर जटामांसी । जटामांसी भूतजटा जटिला तपस्विनी । ये
जटामांसी के नाम हैं ॥ जटामांसी तिक्त कषेत्ती पवित्र कान्ति और बल
को देने वाली ॥ ८० ॥ मधुर शीतल त्रिदोष रक्त दाह विसर्प कुष्ठ इन
की नाशक है ॥ [अनन्तर भूरच्छरील इस प्रकार लोक में
प्रसिद्ध है ॥ शैलेय शिला पुष्य वृद्ध कालानुसार्यक ये बालक के

नामहैं ॥ बाल छड़ु शीतल हृदय का प्रिय कफ पित्त का नाशक हलका होता है ॥ ८२ ॥ तथा खुजली कुष्ठ पथरी दाह विष इनका नाशक और गुदा के रक्त का नाशक है ॥

मोथा नागर मोथा ।] मुस्तकं न स्त्रियां मुस्तं त्रिषु वारिद

नामकम् ॥ कुरु चिन्द असंख्यातोऽपरः क्रोडु कसेरु

कः ॥ ८३ ॥ भद्र मुस्तञ्च गुन्द्रा च तथा नागर मुस्तकः

॥ मुस्तं कटु हिमं ग्राहि तिक्तं दीपन पाचनम् ॥ ८४ ॥

कषायं कफ पित्तास्र तृट्ज्वरा रुचिजन्तुहन् ॥ अनूप

देशो यज्जातं मुस्तकं तत् प्रशस्यते ॥ ८५ ॥ तथापि मु

निभिः प्रोक्तं वरं नागर मुस्तकम् ॥

भा० मोथा और नागर मोथा ।] मुस्तक मुस्त वारिद नामक कुरुचिन्द संख्या न दूसरा क्रोडु कसेरु क ॥ ८३ ॥ भद्र मुस्त गुन्द्रा तथा नागर मुस्तक ये नागर मोथा के नाम हैं ॥ मोथा कटु वा शीतल इलको रोकने वाला तिक्त दीपन पाचन ॥ ८४ ॥ कसेला कफ रक्त पित्त तृपाज्वर असुचि कुमि इनका नाशक है ॥ अनूप देश में जो नागर मोथा उत्पन्न होता है वोह अच्छा है ॥ ८५ ॥ उसमें भी मुनियोंने नागर मोथा श्रेष्ठ कहा है ॥ [अथ कर्चूर ।]

कर्चूरा वैधमुख्यश्च द्राविडः कल्पकः शटी ॥ कर्चूरो

दीपनो रुच्यः कटुकस्तिक्त एव च ॥ ८६ ॥ सुगन्धिः

कटुपाकः स्यात्कुष्ठाशी ब्रणकासनुत् ॥ उष्णो ल

घुः हरेच्छासं गुल्मवानकफ हृमीन् ॥ ८७ ॥

भा० अनन्तर कर्चूर ॥ कर्चूर वैधमुख्य द्राविड कल्पक शटी येह कर्चूर के नाम हैं ॥ कर्चूर दीपन रुचिको करने वाला कटु वा और तिक्त भी होता है ॥ ८६ ॥ सुगन्धि युक्त और दाढ़ में कटु होता है । तथा कुष्ठ चवासीर धाव कास इनका नाशक ॥ और गरम हलका होता है ॥ और श्वास वायु गोला वान कफ हृग्नि इनको नाश करता है ॥ ८७ ॥

अथ सकागी ।] मुरीगन्ध कटी है न्या सुरभिः शालपर्णिका ॥

मुरानिका हिमा स्वाद्वी लब्धी पिना निलायहा ॥ ८८ ॥

ज्वरा सृगभूत रक्षोघ्नी कुष्ठकास विनाशिनी ॥

अथ गन्ध पलाशी ।] (सुगन्ध द्रव्यं काश्मीरं प्रसिद्धा ।)

शटी पलाशी षड् ग्रन्था सुव्रता गन्ध मूलिकाः ॥ गन्धा

रिका गन्ध बधू र्वधूः पृथु पलाशिका ॥ ८९ ॥ भवेद्गन्ध

पलाशी तु कथाया ग्राहिणी लघुः ॥ तिक्ता तीक्ष्णा च

कटुका उष्णास्य मलनाशिनी ॥ ९० ॥ श्रेष्ठ कासप्रणा

शवास शूलहिध प्रहापरा ॥

भा० अनन्तर सकागी ॥ मुरी गन्ध कटी है न्या सुरभि शालपर्णिका । देर
मरोड फली के नाम हैं । मरोड फली तिक्ता शीतल पथुर हलकी और पि
त्र वानको नाश करने वाली है ॥ ८८ ॥ और ज्वर रक्त भूत राक्षस इनकी
नाशक तथा सुष्ठु कास इनकी भी नाशक है ॥ [अनन्तर गन्ध पलाशी
॥ यह सुगन्ध द्रव्य काश्मीर में प्रसिद्ध है । शटी सुन्दर के त्रिस्मर होना है ।
शटी पलाशी षड् ग्रन्था सुव्रता ॥ गन्ध मूलिका गन्धारिका गन्ध बधू
वधू पृथु पलाशिका । यह गन्ध पलाशिके नाम हैं ॥ ८९ ॥ गन्ध पलाशी
कसेली दल के रोकने वाली हलकी होती है ॥ और तीक्ष्ण कटु उष्ण सु
ख के मल प्रेक्षक करने वाली ॥ ९० ॥ और सूजन कास घाव शवास शूल
हिध प्रहा इनकी नाशक है ॥

[अथ प्रियङ्गु गन्ध प्रियङ्गु ।

प्रियङ्गुः फलिनी कान्ता लता च महिला ह्वया ॥ गुन्द्रा

गुन्द्र फला प्यामा विष्वक्सेनाङ्गना प्रिया ॥ ९१ ॥

प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता पुवरा निल पित्रहत् ॥ रक्ता

नियोग ह्यैर्गन्ध स्वेद दाह ज्वरापहा ॥ ९२ ॥ गुल्फ

नट्ट विषमोहघ्नी तद्वद्गन्ध प्रियङ्गुकाः ॥ तत् फली

मधुरं रूक्षं कपायं शीतलद्रुम् ॥ ६३ ॥ विवन्धाध्मा
न बलवान् संयाहि कफपित्तजित् ॥

भा० अनन्तर प्रियङ्गु गन्ध प्रियङ्गु ॥ प्रियङ्गु फलनी कान्ता लता महिला
हुया ॥ शुद्धा शुद्धफलाश्रयामा विष्वक्सेना श्रंगनाधिया ये प्रियंगु के
नाम हैं ॥ ६१ ॥ प्रियंगु शीतल निरुक्तसेला वानपित्तका नाशक ॥ और
रक्तका अतियोग दुर्गन्धना पसीना दाहज्वर इनका नाशक है ॥ ६२ ॥ औ
र वायुगोला तथा विष मोह इनका नाशक है ॥ उसीके समान गन्ध प्रियङ्गु
भी है ॥ उसका फल मधुर रूक्ष कसेला शीतल भारी ॥ ६३ ॥ विवन्ध पेटका फ
लना और बल इनको करनेवाला तथा मलका अवरोध करनेवाला तथा
कफ पित्तका दूर करने वाला है ॥ [अथ रेणुका मरिच सदृशा ।]

रेणुका राजपुत्री च नन्दिनी कपिला द्विजा ॥ भस्म
गन्धापाराङ्गु पुत्री स्मृता कौन्ती हरेणुका ॥ ६४ ॥ रेणुका
कडुका पाके तिक्तामुष्णा कटुर्लघुः ॥ पित्तला दीपनी
मेध्यापाचिनी गर्भपातिनी ॥ ६५ ॥ बलासवात हृच्चै
व तृट्कण्डू विषदाहनुन् ॥

भा० अनन्तर रेणुका यह मरिचके सदृश सुगन्धद्रव्य होता है ॥ रेणुका,
राजपुत्री नन्दिनी कपिला द्विजा ॥ भस्मगन्धा पाराङ्गु पुत्री कौन्तीय हरेणुका
येह रेणुका के नाम हैं ॥ ६४ ॥ रेणुका पाक में कड़वी तिक्त उष्ण कटु हलकी
होती है और पित्तको करनेवाली दीपन बुद्धि के बढ़ानेवाली पाचन गर्भ को
गिरानेवाली है ॥ ६५ ॥ और कफ वान को करनेवाली तथा तथा खुजली वि
ष दाह इनकी नाशक है ॥ [अथ ठिवन ।]

ग्रन्थिपर्णं ग्रन्थिकञ्च काकपुच्छञ्च पुच्छकम् ॥
नीलपुष्पं सुगन्धञ्च कथितनैल पर्णकम् ॥ ६६ ॥
ग्रन्थिपर्णं निक्त नीलां कटूणां दीपनं लघुः ॥ कफ
वान विष प्रवास कण्डूदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ ६७ ॥

अनन्तर ठीविन । ग्रन्थिपर्ण ग्रन्थिक काकपुच्छ पुच्छक नीलपुष्प ,
सुगन्ध नैलपर्णक येह भटोरा के नाम हैं ॥ ६६ ॥ भटोरा तिक्त नीला ,
कटु उष्ण दीपन लघु है । और कफ वान विष श्वास करण दुर्गन्ध
ना इनका नाशक है ॥ ६७ ॥

(अथ ग्रन्थिपर्णस्यैव भेद

ईषत्सुगन्धः स्थौरोयं थनेर इति लोके प्रसिद्धम् ।)

स्थौरोयकं बहिर्वह शुक्र बर्हज्व कुकुरम् ॥ शीर्ष

रोम शुक्रञ्चापि शुष्क पुष्पं शुक्रच्छदम् ॥ ६८ ॥

स्थौरोयकं कटु स्वादु तिक्तं स्निग्ध त्रिदोष नाशकम् ॥

मेधा शुक्र कां रुच्यं रक्तोष्णं ज्वरजन्तु जित् ॥ ६९ ॥

हान्ति कुष्ठान् तृड् दाह दौर्गन्ध्यं तिलकालकान् ॥

भा० अनन्तर भटोराही भेद कुछ सुगंधवाला स्थौरोय अर्थात् थनेर
इस प्रकार लोक में प्रसिद्ध है । स्थौरोयक बहिर्वह शुक्र बर्ह कुकुर (शी
र्ष रोम शुक्र) शुक्रपुष्प शुक्रच्छद येह ककरोंदा के नाम हैं ॥ ६८ ॥
थनेर कड़वा मधुर तिक्त स्निग्ध त्रिदोष नाशक ॥ और बुद्धि शुक्र इन
के करनेवाला रुचिकेहिन रक्त रोगों का नाशक और ज्वर नष्टा कर्मि इनको
भी दूर करनेवाला है ॥ ६९ ॥ और कुछ रक्त वृषा दाह दुर्गन्ध तथा तिल
कालक इनको नाश करता है ॥

[अथ ग्रन्थिपर्णस्यैव भेदः भटे उर इति नेपालदेशे भ-

वति ।] निशाचरो धनहरो कितवो गणहालकः ॥

रोचको मधुरसिक्तः कटु पाके कटु लघुः ॥ ७० ॥

तीक्ष्णो दृढो हिमो हान्ति कुष्ठं कण्डू कफानिलान् ॥

रक्षाश्रीस्वेदमेदोऽस्त्रज्वरगन्ध विषत्रणान् ॥ ७१ ॥

भा० अनन्तर कुकुरोंदे के किससे भटे उर इस नाम से नेपाल देश में

होता है ॥ निशाचर धनहर कितव गणनाशक यह भटेउर के नाम हैं ॥ भटेउर रुचिके करने वाला मधुर निक्त पाकमें कटु और कटु तथा हलका होता है ॥ १०० ॥ और नील्लण हृदय के प्रिय शीतल होता है ॥ तथा कुष्ठ कण्डु कफ वान इनको नाश करता है ॥ और रातस कान्ति पसीना मेद रक्तज्वर गंध विषत्रण इनको भी नाश करता है ॥ १०१ ॥

[अथ भूम्यामलकी सदृश। स्नालीसः।] नालीस
सुक्तम्पत्राढ्यं धानृपत्रञ्च नत्स्मृतम् ॥ नालीसं
लघु तीक्ष्णोष्णं श्वासकासकफनिजान् ॥ १०२ ॥
निहन्य रुचिगुल्मामबन्धिमान्धक्षयामयान् ॥
अथ कङ्गोलं सुगन्धद्रव्यम् । सीतल चीनीनि लोके ।
कङ्गोलकोलकम्प्रोक्तं तथा कोशफलं स्मृतम् ॥
कङ्गोलं लघु तीक्ष्णोष्णं निक्तं हृद्यं रुचिप्रदम् ॥ १०३ ॥
आस्यदौर्गन्ध्यहृद्दोगकफवानामयान्धहन् ॥

भा० अनन्तर भूमि आवले के सदृश नालीसपत्र होता है ॥ नालीस पत्राढ्य धात्रीपत्र उल्के कहा है ॥ नालीसपत्र हलका नीरवा उष्ण श्वास कास कफ वान इनको नाश करता है ॥ १०२ ॥ और अरुचि गुल्म भग्नि मान्ध क्षयरोग इनको भी दूर करता है ॥ अनन्तर कङ्गोल सुगन्धद्रव्य । जिस्को लोकमें सीतल चीनी कहने हैं ॥ कंकोल तथा कोशफल येह कंकोल के नाम हैं । कंकोल हलका नीरवा उष्ण निक्त हृदय का प्रिय और रुचि इनको देने वाला है ॥ १०३ ॥ और सुखकी दुर्गन्धता हृद्दोग कफ वानरोग अन्धापन इनको नाश करता है ॥

[अथ गन्धकोकिला ।] गन्धमालती । स्निग्धोष्णा
वाफहृत्तिक्ता सुगन्धा गन्धवो किला ॥ गन्धको

किलया तुल्या विज्ञेया गन्धमालती ॥ १०४ ॥

[अथ लामज्जकमुशीरवत् पीतच्छवि नृण विशेषः।]

लामज्जकं सुनालं स्यादभृणालं लयं लघुः ॥ इष्ट

का पथकं सेव्यं नलदञ्चा वदानकम् ॥ १०५ ॥ ला

मज्जकं हिमं नित्तं लघुदोष त्वया त्वजित् ॥ त्वगा

मय स्वेद छच्छ दाह पितास्र रोगनुत् ॥ १०६ ॥

भा० अनन्तर गन्ध कीकिला और गन्धमालती को कहने हैं ॥ येह च मेली की किससे सुगन्ध युक्त होती है ॥ स्निग्ध उष्ण कफको दूर करने वाली नित्त सुगन्ध इत प्रकार गंध कीकिला होती है । और कीकिला के सदृश गन्धमालती को जानना चाहिये ॥ १०४ ॥

अनन्तर लामज्जक खसके सदृश पीली घास होती है ॥ लामज्जक सुनाल अभृणाल लयं येह लामज्जक के नाम हैं ॥ और इष्टिका पथक सेव्य नलद अवदानक येह भी लामज्जक के नाम हैं ॥ १०५ ॥ लामज्जक पीतल नित्त हलकी विदोष नाशक है ॥ और त्वचा के रोग पसीना मूलवृक्ष दाह रक्तपित्त इनका भी नाशक है ॥ १०६ ॥

[अथ सलवालुकं कङ्कौल सदृशं कुष्ठगन्धिः।] सलवा

लुकं मैलेयं सुगन्धि हरिवालुकम् । सलवालुकं

मैलालु कपित्थं पत्रमीरितम् ॥ १०७ ॥ सलवालु क-

टुकं पाके कषायं शीतलं लघु ॥ हन्ति कण्डू ब्र-

णच्छर्दि तृट् कालारुचि हृद्भुजः ॥ १०८ ॥ बलास

विष पितास्र कुष्ठ मूल गद रुमीन् ॥

भा० अनन्तर सलवालुक येह सीतलचीनी के सदृश कटके गन्ध युक्त होता है । इसके बालुक कङ्कौ भी कहने हैं । सलवालुक, मैलेय, सुगन्धि हरिवालुक सलवालुक सलालु कपिध पत्र येह सलवालुक के नाम हैं ॥ १०७ ॥ सलवालुक कटुवा पाकमें कसैला शीतल हलका

होना है ॥ और खुजली घाव बमन तथा कास अरुचि इनका नाशक ॥
१०८ ॥ और पीड़ा कफ विष पित्त रक्त कुष्ठ मूत्ररोग कृमि । इनको नाश
करना है ॥ [कोसची मोथा]

गुड़ तजी इति च इयन्तु वितुन्नक नाम्ना वृक्षस्य त्वक् सु
स्ताकृतिः । कुटन्नटं दासपुरं बालेयं परिपेलवम् ॥

स्रव गोपुरगो नर्द कैवर्ती मुस्तकानि च ॥ १०९ ॥

मुस्तावत्येलवं पुष्टं शुक्राभं स्याद्वितुन्नकम् ॥ वि
तुन्नकं हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम् ॥ ११० ॥

कफ पित्तास्र वीसर्प कुष्ठ कण्डू विष प्रणुत् ॥

भा० अनन्तर जल मोथा के नाम ॥ कुटन्नट, दासपुर, बालेय, परिवेलव
स्रव, गोपुर, गोनर्द, कैवर्ति मुस्तक, ॥ १०९ ॥ मोथा के सदृश पेलव,
पुष्ट शक्राभ वितुन्नक यह जल मोथा के नाम हैं ॥ जल मोथा शीतल
तिक्त कसैला कड़वा कान्ति के देनेवाला होता है ॥ ११० ॥ और कफ
रक्त विसर्प कुष्ठ खुजली विष इनका नाशक है ॥

[अथ सृक्का सुगन्धिद्रव्यं शाक विशेषः । लङ्गे इक पु-
रीनि लोके च ।] सृक्का सृक् ब्राह्मणी देवी मरुन्माला
लता लघुः ॥ समुद्रान्ता वधूः कोटि वर्षा लङ्गे
पिके न्यपि ॥ १११ ॥ सृक्का स्वादी हिमा वृष्या तिक्ता
निखिल दोषनुत् ॥ कुष्ठ कण्डू विष स्वेद दाहास्र
ज्वर रक्त हन् ॥ ११२ ॥

भा० अनन्तर सृक्का यह एक सुगन्धिद्रव्य शाक विशेष है ॥ इस्को
पिंडित शाक कहते हैं ॥ सृक्का सृक् ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता ।
समुद्रान्ता वधूः कोटि वर्षा लङ्गे पिका यह सृक्का के नाम हैं ॥ १११ ॥

स्पर्शको मधुर शीतल धानुवों को बढ़ानेवाली निक्त सम्पूर्ण दोषों की नाश
कहे ॥ और कुष्ठ खुजली विष पसीना दाह रक्तज्वर और रक्त इनकी
नाशक है ॥ ११२ ॥

अथ पर्यटी इति प्रसिद्धं पद्मावती इति च । उत्तर देशे
सुगन्धिद्रव्य ।] पर्यटी रज्जना कृष्णा जनुकाजन
नी जनी ॥ तु कृष्णाग्नि संस्पर्शा जनु कचक्र
वर्तिनी ॥ ११३ ॥ पर्यटी नुवरा निक्ता शिशिरा चर्षा
कलघु ॥ विष व्रण हरी कराडू कफ पित्तास्र कुष्ठ
नुत् ॥ ११४ ॥

भा०- अनन्तर पर्यटी इस प्रकार प्रसिद्ध है और पद्मावती इस नाम से
उत्तर देश में प्रसिद्ध है । और मालवों में चकवन् कहने हैं । पर्यटी रज्जना
कृष्णा जनुका जनी जनी जनु कृष्णा अग्नि संस्पर्शा जनु कचक्र चक्र
वर्तिनी ॥ ११३ ॥ पापड़ी कसैली निक्त शीतल रंगकी अच्छा करनेवाली
हस्तकी होती है ॥ और विष नखम को दूरनेवाली तथा खुजली कफ
रक्त पित्त कुष्ठ इनकी नाश करनेवाली है ॥ ११४ ॥

अथ नलिका उत्तरापथे प्रसिद्धा । सुगन्धा वला इति
र्यवारी इति च क्वचिन् प्रसिद्धा ॥

नलिका विद्रुमलना कपोत चरणा नदी ॥ धम
न्यज्जन केशी च निर्मध्या सुषिरा नली ॥ ११५ ॥
नलिका शीतला लघ्वी चक्षुष्या कफ पित्त हृत् ॥
कृच्छ्राश्म वान नृणांस्त्र कुष्ठ कराडू ज्वर पहा ॥ ११६ ॥

भा०- अनन्तर नलिका को कहने हैं । उत्तर देश में प्रसिद्ध है । सुगन्ध
वस्थारे के क्रिसिम से है ॥ और यवारी इस नाम से प्रसिद्ध है ॥
नलिका विद्रुमलना कपोत चरणा नदी ॥ धमनी अन्जन केशी

निर्मध्या सुषिरा नली यह नड़के नाम हैं ॥ ११५ ॥ नड़ शीतल हलका
नेत्रके हिन और कफ पित्तका नाशक है तथा मृत्त कृच्छ्र पथरी वान
नृषा रक्तकुष्ठ खुजली ज्वर इनका नाशक है ॥ ११६ ॥

अथ प्रपौण्डरीकं सुगन्धद्रव्यं पुण्डेरी इति लोके प्रसि-
द्धम् ॥ प्रपौण्डरी पौण्डर्यं चतुष्यं पौण्डरीयकम् ॥

पौण्डर्यं मधुरं तिक्तं कषायं शुक्रलं हिमम् ॥

॥ ११७ ॥ चतुष्यं मधुरं पाके वार्यं पित्तकफप्रणुन

॥ ॥ इति भावप्रकाशे कर्पूरादि वर्गः ॥ ॥

भा० पुण्डेरीके नाम । यह सुगन्धद्रव्य है । प्रपौण्डरीक-पौण्डर्यं-चतुष्यं
-पौण्डरीयक-यह पुण्डेरीके नाम हैं ॥ अनन्तर प्रपौण्डरीक यह सुगन्ध
द्रव्य और पुण्डेरी इस नाम से लोक में प्रसिद्ध है । पुण्डरी मधुर तिक्त कसै-
ली शुक्रको उत्पन्न करनेवाली शीतल ॥ ११७ ॥ चतुके हिन पाक में
मधुर वर्णको अच्छा करनेवाली पित्तकफकी नाशक है ॥

॥ ॥ इति भावप्रकाशे कर्पूरादि वर्ग समाप्त ॥ ॥

[अथ गुडूच्यादि वर्गः।

[तत्रादौ गुडूच्या उत्पत्तिर्नामानि गुणाश्च ।]

अथ लङ्केश्वरो मानी रावणो रत्नसाधियः ॥ राम

पत्नीं बलात् सीतां जहार मदनातुरः ॥ ११८ ॥ त

तस्तं बलवान् रामो रिपुं जाप पहारिराम् ॥ बालो

चावरसैन्येन जघान रण मूर्खनि ॥ ११९ ॥

भा० अनन्तर गुडूच्यादि वर्गः ॥ इसमें पहले गुडूची अर्थात् भिल्लोय
की उत्पत्ति और नाम और गुण कहने हैं ॥ अभिमान वाला रत्नसाधक
राजा लङ्केश्वर रावण मदनातुर हुआ रामपत्नी सीता को बलानकारसे
बुरा ले गया ॥ ११८ ॥ उसके अनन्तर बलवान रामने पत्नी के चुरानेवाले

शत्रू को वानरों की सेनासे रणमें मारा ॥ ११८ ॥

हने नस्मिन्सुरारानौ रावणे वल गर्विने ॥ देवराजः
सहस्राक्षः परि नुष्टोऽति राघवे ॥ ११७ ॥ तत्र ये वान-
राः केचिद्राक्षसैर्निहिता रणे ॥ तानिन्दो जीवया मा
स संसिच्या मृतवृष्टिभिः ॥ ११९ ॥ ततो येषु प्रदे-
शेषु कपिगत्वात् परिच्युता ॥ पीयूष विन्दवः पे-
तु तेभ्यो जाना गुड चिका ॥ १२२ ॥

भा० वल करके गर्विन देवताओंका शत्रू उस रावणके मलेमें ॥ देवता
ओंका राजा इन्द्र रामपर बहान प्रसन्नहुवा ॥ ११७ ॥ उस रणमें राक्षसोंके
द्वारा जो मारे गये ॥ उनके इन्द्रने अमृतकी वर्षासे सींचकर जिवाया ॥
॥ ११९ ॥ जिस देशमें वानरोंके शरीर से जो अमृतकी बूंद गिरी उनसे गिले
या उत्पत्ति हुई ॥ १२२ ॥

गुडूची मधुपरी स्याद् मृताऽमृतबल्ली ॥ छिन्ना छि-
न्नरुहा छिन्नोद्भवा वत्सादनीति च ॥ १२३ ॥ जीवन्ती
नन्त्रिका सोमा सोमवल्ली च कुरण्डली ॥ चक्रलक्ष-
णिका धीरा विशल्या च रसायनी ॥ १२४ ॥ चन्द्र-
हासी वयस्था च मण्डली देव निर्मिता ॥ गुडूची क-
ण्डका निक्ता स्वादुपाका रसायनी ॥ १२५ ॥ संग्राहि-
णी कषायोष्णा लघ्वी बल्याग्नि दीपनी ॥ दोषत्रया
मनूद्दाह मेहकासांश्च पाण्डुताम् ॥ १२६ ॥ काम-
ला कुष्ठवानास ज्वर रुमि वमीनहरेत् ॥ प्रमेह-
प्रवास कासार्ष कृच्छ्र हृद्रोग वाननुत् ॥ १२७ ॥

भा० गुडचोमधुपर्णिका अमृता अमृतवल्लरी छिन्ना छिन्नरुहा छिन्दोद्भवा
मत्स्यादनी ॥१२३॥ जीवती नन्धिका सोमा समवल्ली कुंडली ॥ चक्रल
क्षणिका धीरा विशल्या रसायनी ॥१२४॥ चन्द्रहासी वयस्था मंडली
देवनिर्मिता ॥ यह गिलायके नाम हैं ॥ गिलोय कड़वी तिक्त पाकमें म
धुर रसायनी ॥१२५॥ संग्राहणी कसैली उष्ण हलकी बलकी करने वा
ली अग्निके दीपन करने वाली ॥ तीन दोष आम तृषा दाह प्रमेह कास
पण्डुरोग ॥१२६॥ कामला कुष्ठ वातरक्त ज्वर कृमि वमन इनको नाश
करती है ॥ आर प्रमेह श्वास कास बवासीर मूत्रकृच्छ्र हृदरोग वात इन
की नाशक है ॥१२७॥ [अथ पान ।]

नाम्बूल वल्ली नाम्बूली नागिनी नागवल्लरी ॥ ना
म्बूलं विशदं रुच्यं तीक्ष्णोष्णं तुवरं सरम् ॥१२८॥
वश्यं तिक्तं कटुक्षारं रक्तपित्तकरं लघुः ॥ बल्यं
श्लेष्मास्य दौर्गन्ध्य मलवानश्रमा यहम् ॥१२९॥

[अथ बेल ।] विल्वः शारिडल्य शैलूषी मालूर श्रीफ
लावपि ॥ श्रीफल सुवरस्त्रिक्तो ग्राही रुक्षोऽग्निपि-
तहन्त ॥१३०॥ वातप्लेष्मद्वेगो वल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः

भा० अनन्तर पान । नाम्बूल वल्ली नाम्बूली नागिनी नागवल्लरी । यह
पान के नाम हैं ॥ पान विशद रुचिको करने वाला तीक्ष्ण उष्ण कसै-
ला सरहोता है ॥१२८॥ और चशीकरणा तिक्त कटु क्षार तथा रक्त
पित्तकी करने वाला हलका ॥ बलको करने वाला तथा कफ सु-
खकी दुर्गन्धना मल वात श्रम इनका नाशक है ॥१२९॥ अनन्तर बेल
विल्व शारिडल्य शैलूष मालूर श्रीफल यह बेलके नाम हैं । बेल कसै-
ला तिक्त ग्राही रुखा अग्नि पित्तको करने वाला है और वात कफ का नाश
रक्त बलको करने वाला हलका उष्ण पाचन है ॥

[अथ गम्भारी ।]

गम्भारी भद्रपर्णी च श्रीपर्णी मधुपर्णिका ॥

काशमीरी काश्मेरी हीरा काश्मर्यः पीनरोहिणी ॥

१३१ ॥ कृष्णावृन्ता मधुरसा महाकुसुमिकापि च ॥

काश्मरी तुवरा तिका वीर्य्येष्णा नधुरा गुरुः ॥ १३२ ॥

दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी अमशेषजित् ॥ दो

ष तृणामशूलार्शो विषदाह ज्वरा पहा ॥ १३३ ॥

तत् फलं दृहरां दृष्यं गुरु केश्यं रसायनम् ॥ वा

तपित तृषा रक्त क्षय मूत्र विवन्धनुत् ॥ १३४ ॥

खादु पाके हिमं स्निग्धं तुवरान्न विष्टुद्रिकत् ॥ ह-

न्यादाह तृषावान रक्तपित्त क्षतक्षयान् ॥ १३५ ॥

भा० अनन्तर गम्भारी ॥ गम्भारी भद्रपरिणी श्रीयर्णी मधुपरिणी काकाशमी
री काश्मरी हीरा काश्मर्य पीनरोहिणी ॥ १३१ ॥ कृष्णावृन्ता मधुरसा महाकु
सुमिका यह गम्भारी के नाम हैं । कुम्भेर कसैली तित्त वीर्यमें उष्ण मधु
र भारी होती है ॥ १३२ ॥ और दीपन पाचन कांनिको बढ़ानेवाली भेदनकर
नेवाली अम शेषको जीननेवाली दोष तृषा आम शूल बवासीर विष
दाह ज्वर इनकी नाशक है ॥ ३३ ॥ उस्का फल उष्ट श्रुकको उत्पन्नक
रनेवाला रसायन है ॥ वात पित्त तृषा रक्त क्षय मूत्रका बंद होना इनकी ना
श करता है ॥ ३४ ॥ पाक में मधुर शीतल चिकना कसैला खटा सुझी की
करनेवाला है ॥ और दाह तृषा वानरक्त पित्त क्षत क्षय इनकी भी नाश
करता है ॥ १३५ ॥

[अथ पाराडरिकराठपाराडरि ।]

पाटलिः पाटला मेधा मधुदूती फलेरुहा ॥ कृष्णावृ

न्ता कुवेराक्षी कालस्थाल्यलि वल्लभा ॥ १३६ ॥ ताम्र

पुष्पी च कथिता परास्यात् पाटला सिता ॥ मुष्कको

मोक्षको घण्टा पाटलिः काष्ठपाटला ॥ १३७ ॥

(कालस्थालीत्यत्र काचस्थाली न्येके।)

पाटला तु वरुणिका बुध्वा दोषत्रया यहा ॥ अरुचि
शवास शोथश्च रुद्धिं हिक्का तृषा हरौ ॥ १३८ ॥ पुष्पं
कषायं मधुरं हिमं हृद्यं कफास्त्रनुत् ॥ पित्तानि सार
हृत्करं फलं हिक्काश्च पित्तहृत् ॥ १३९ ॥

भा० अनन्तर पाटला काष्ठ पाटला ॥ पाटलि पाटला मोघा मधुदूती
फलेरुहा ह्यष्टादन्ता जुवेराक्षी कालस्थाली अलि बल्लभा ॥ १३८ ॥ नाम
पुष्पो येह पाटला के नाम कहै हैं ॥ और दूसरी पाटला सिता । मुष्कक
मोक्षक घरादा पाटली काष्ठ पाटला येह कट पाटल के नाम हैं ॥ १३९ ॥
काचस्थाली यंत्रांपर कोई काचस्थाली भी कहने हैं ॥ पाटला कसैली
निक्त शीतल गीनों दोषों का नाश करने वाली अरुचि शवास शोथ रक्त
वमन ज्वर की तृषावन की नाशक है ॥ १३८ ॥ उस्का पुष्प कसैला मधुर
शीतल हृद्य की हित करने वाला कफ रक्त का नाशक ॥ पित्तानि सार काना
शक करण को अच्छा करने वाला है और उस्का फल ज्वर की रक्त पित्त क
फ वन का नाशक है ॥ १३९ ॥

[अथ अग्रेय गनिआरि इति च ।] अग्निमन्यो जयः

स स्याच्छ्रीपर्णी गरिकाकारिका ॥ जया जयन्ती नर्का-
री नादेयी वैजयन्तिका ॥ १४० ॥ अग्निमन्यः श्वय-
थुनुर्दीर्घोष्णः कफवानहन् ॥ पाण्डुनुत् कटुक
स्तिक्त स्तुवरो मधुरोऽग्निहः ॥ १४१ ॥

भा० अनन्तर अग्रेय जिसको गनियारी भी कहने हैं ॥ अग्निमन्य जयः
श्रीपर्णी गरिकाकारिका जया जयन्ती नर्कारी नादेई वैजयन्तिका । येह अ
रनी के नाम हैं ॥ १४० ॥ अरनी शोथ की नाशक दीर्घ में उष्ण कफ वान
को दूर करने वाली पाण्डुरोग की नाशक कड़वी निक्त कसैली मधुर अग्नि
को करने वाली है ॥ १४१ ॥

[अथ सोनापाठा ।]

स्यानाकः शोषणश्च स्यान्नटकद्वज्जुः पुराटुकः ॥

मण्डकपर्णी पत्रोर्णी शुकनाशकुटञ्जदा ॥ १४२ ॥ दी-
र्घचन्तो रत्नश्चापि पृथुशिवः कटम्बरः ॥ स्योना
को दीपनः पाके कटुक स्तुवरो हिमः ॥ १४३ ॥ ग्राही
नित्तोऽनिलः श्लेष्मपित्तकासप्रणाशनः ॥ दुग्दु-
कस्य फलं बालं रुद्धं वानकफोपहम् ॥ १४४ ॥ ह-
ृद्यं कषायं मधुरं रोचनं लघुदीपनम् ॥ गुल्मार्शः
कृमिहत्यौढं गुरुवानप्रकोपणम् ॥ १४५ ॥

भा० अनन्तर सोनापाठा ॥ स्योनाक शोषण नद कटुङ्ग हृन्तुक ॥ मण्ड-
कपर्णी पत्रोर्णी शुकनाश कुटञ्जद ॥ १४२ ॥ दीर्घचन्त अरलू प्रथुशिवः
कटम्बर । यह सोनापाठाके नाम है ॥ सोनापाठा दीपन पाकमेकटु कषै-
ला शनिल है ॥ १४३ ॥ और दस्तकोयंद करनेवाला नित्तमान कफ पित्त का
स इनका नाशक है ॥ और सोनापाठा का कच्चा फल रुद्धा वान कफका ना-
शक होता है ॥ १४४ ॥ तथा हृदयका हिन कसैला मधुर रुचिको करनेवाला
हल्का दीपन होता है । वायुगोला बवासीर कृमि इनका नाशक है ॥ तथा
पक्का फल भारी वानका प्रकोप करनेवाला है ॥ १४५ ॥

[अथ वृहत्पञ्च मूलस्य लक्षणं गुणाः ।]

श्रीफलः सर्वतो भद्रा पाटला गणकारिका ॥ स्योना
कः पञ्चभिर्धैतैः पञ्चमूलं महन्मनम् ॥ १४६ ॥
पञ्चमूलं महन्निक्तं कषायं कफवाननुन् ॥ म-
धुरं स्वास कासघ्नं सुषणं लघुग्निदीपनम् ॥ १४७ ॥

भा० अनन्तर वृहत्पञ्च मूलका लक्षण और गुण कहने हैं ॥ कृष्ण पाट-
ला अरणी सोनापाठा । इन पांचों से वृहत्पञ्च मूल होता है ॥ १४६ ॥
पञ्चमूल निक्त कसैला कफ वानका नाशक है ॥ और मधुर स्वास का
रुक्ता नाशक । उष्ण हृन्तुका अग्निका दीपन होता है ॥ १४७ ॥

अथ सरिवन] शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी
पीवरी गुहा ॥ विदारि गन्धा दीर्घाङ्गी दीर्घपात्रां
शुमन्त्यधि ॥ १४८ ॥ शालिपर्णी गुरुच्छदी ज्वर
श्वासानिसारजित् ॥ शोष दोषत्रय हरी दृहण्यु
क्ता रसायनी ॥ १४९ ॥ तिक्ता विष हरी स्वादुःक्ष-
न कास कृमि प्रणुत् ॥

भा० अनन्तर सरिवन । शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी पीवरी । वि-
दारिगन्धा दीर्घाङ्गी दीर्घपात्रा अंशुमती येह सरिवन के नाम हैं ॥ १४८ ॥
सरिवन भारी होता है और वमन ज्वर श्वास अनीसार इनको दूर करता
है । शोष त्रिदोष इनका नाशक धातुओं का सृष्ट करने वाला रसायन है
॥ और तिक्त विषका नाशक मधुर क्षन कास कृमी इनका भी नाशक
है ॥

[अथ पिठवन ।]

पृष्णिपर्णी पृथक्पर्णी चित्रपर्ण्य हि रथ्य पि ॥
क्रोष्टु विन्ना सिंह पुच्छी कलणी द्वा वनिगुहा ॥ १५० ॥
पृष्ठिपर्णी त्रिदोषघ्नी दृष्योष्णा मधुरा सरा ॥ हन्ति
दाह ज्वर श्वास रक्तानीसार नृड् वमीः ॥ १५१ ॥

भा० अनन्तर पिठवन ॥ प्रष्णिपर्णी प्रथक्पर्णी चित्रपर्णी हि रथ्य पि
क्रोष्टु विन्ना सिंह पुच्छी कलशी धावनी गुहा ॥ १५० ॥ येह पिठवन के
नाम हैं । पिठवन त्रिदोषकी नाशक धातुको सृष्ट करने वाली उष्ण मधुर
सर होती है ॥ और दाह ज्वर श्वास रक्तानिसार तथा वमन इनको नाश कर-
ती है ॥ १५१ ॥

[अथ वरहराट्वा ।]

वार्ताकी क्षुद्र भण्डाकी महती दृहती कुल्ली ॥ हिङ्गु-
ली राष्ट्रिका सिंही महोष्ट्री दुःप्रधर्षिणी ॥ १५२ ॥
दृहती प्राहिणी हृद्या पाचनी कफ वान हन् ॥

कटु निक्तास्य वैरस्य मलारोचकं नाशिनी ॥ १५३ ॥

उष्ण कुष्ठं ज्वरश्वास शूलकासाग्निमान्द्यजित् ॥

[अथ भटकठैव्रा रोगिणी इति च ।]

कण्टकारी न दुःस्पर्शा क्षुद्रां व्याघ्री निदिग्धिका ॥ क

गठालिका कण्टकीनि धावनी वहनी तथा ॥ १५४ ॥

उभे च वहन्यौ । यत आह सुश्रुतः ।

भा० अनन्तर बड़ी कटेली ॥ वानोकी क्षुद्र भण्टाकी महती वहनी कुली ।
हिंगुली राक्षिका सिंही महोष्ठी बुधधर्षिणी ॥ १५२ ॥ यह बड़ी कटेली के
नाम हैं ॥ बड़ी कटेली का बिना हृदय के हित पाचन कफ वानोकी नाशक
है ॥ और कड़वी निक्त सुखकी विरसता मल अरुचि इनकी नाशक है ॥
१५३ ॥ और उष्ण होती है तथा कुष्ठ ज्वर प्रवास शूलकास अग्निमान्द्य इन
को जीतने वाली है ॥ ॥ अनन्तर छोटी कटेली कण्टकारी दुस्पर्शा क्षु
द्रा व्याघ्री निदाधिका । कण्टालिका कण्टकीनी धावनी वहनी यह छोटी
कटेली के नाम हैं ॥ १५४ ॥ दोनों कटेली । जैसे कि कहाँ है सुश्रुत ने ॥

क्षुद्राया क्षुद्र भद्राख्या वहनीति निगद्यते ॥ श्वेता

क्षुद्रा चन्द्रहासा लक्ष्मणा क्षेत्तवृत्तिका ॥ १५५ ॥

गर्भदा चन्द्रभा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियङ्गुरी ॥ कण्ट-

कारी सरा निक्ता कटुका दीपनी लघुः ॥ १५६ ॥ रूक्षो

ष्ण पाचनी कास प्रवास ज्वर कफा निलान् ॥

निहन्ति पीनसं प्रवास पार्श्व पीडा हृदामयान् ॥ १५७

भा० छोटी कटेली और बड़ी कटेली इनकी वहनी ऐसा कहते हैं ॥ और
मुफेद कटेली को चन्द्रहासा लक्ष्मणा क्षेत्तवृत्तिका ॥ १५५ ॥ गर्भदा,
चन्द्रप्रभा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियङ्गुरी ऐसा कहते हैं ॥ कटेली सर निक्त
कड़वी दीपन हलकी ॥ १५६ ॥ रूखी गर्भ पाचन कास प्रवास ज्वर कफ

वान इनको नाश करती है ॥ और का स श्वास पसली की पीड़ा हृदयेग ।
इनको भी नाश करती है ॥ १५७ ॥

नयो फलं कटुरसे पाके
च कटुकं भवेत् ॥ शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पिप्पला
ग्नि कृत्स्नघु ॥ १५८ ॥ हन्यान् कफ मरुत् कण्डू का-
स भेद कृमिज्वरान् ॥ तद्वन्धोक्ता सिताक्षुद्रा विशे-
षान् गर्भ कारिणी ॥ १५९ ॥

भा० इनका फल रसमें कड़वा और पाकमें भी कड़वा होता है ॥ शुक्र का
रेचक भेदन करनेवाला तिक्त पित्त अग्निकी करनेवाला हलका होता है
१५८ ॥ और कफ वायु खुजली कास भेद कृमिज्वर इनको नाश करता है
॥ उसी प्रकार सुक्रेद कटेलीके भी गुण हैं विशेष करके गर्भ को करने वा-
ली है ॥ १५९ ॥

[अथ गोक्षुर ।]

गोक्षुरः क्षुरकोऽपि स्यात् त्रिकण्टः स्वादु कण्टकः ।
गोकण्टको गोक्षुरको च न शृङ्गाट इत्यपि ॥ १६० ॥
फलं कषाश्वं दंष्ट्रा च तथा स्याद्विस्तृ गन्धिका ॥
गोक्षुरः शीतलः स्वादुर्बलहाद् वस्ति शोधनः ॥
॥ १६१ ॥ मधुरो दीपनो दृष्यः पुष्टिदश्चाश्मरी हरः ॥
प्रमेह श्वास कासारं कृच्छ्र हृद्रोग वाननुत् ॥ १६२ ॥

भा० अनन्तर गोरख ॥ गोक्षुर क्षुरक त्रिकण्ड स्वादुकण्टक ॥ गोकण्टक गो-
क्षुरक वनशृङ्गाट ॥ १६० ॥ पनङ्गुय श्वदंष्ट्रा इक्षुगन्धिका । यह गोरख
के नाम हैं ॥ गोरख रू शीतल मधुर बलको करनेवाला वस्ति शोधक ॥
१६१ ॥ मधुर दीपन शुक्र जो बढ़ानेवाला पुष्टिको देनेवाला अश्मरी का नाश
करे ॥ और प्रमेह श्वास कास स्वामीर मूत्रकृच्छ्र हृदयेग वान का
नाशक है ॥ १६२ ॥

[अथ लघु पञ्चमूलस्य लक्षणं द्रुणाश्च
 शालिपर्णी पृष्ठपर्णी वार्ताकी कराटकारिका ॥
 गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतेः कनिष्ठं पञ्चमूलकम् ॥ १६३
 पञ्चमूलं लघु स्वादु वल्यम्पित्तानिलापहम् ॥
 नात्युष्णं दंष्ट्रां ग्राहि ज्वर श्वास श्मरी प्रणतम् ॥ १६४

[अथ दशमूलस्य लक्षणं द्रुणाश्च ।

उभाभ्यां पञ्चमूलाभ्यां दशमूलमुदाहृतम् ॥ द-
 शमूलं त्रिदोषघ्नं श्वासकासशिरोरुजः ॥ १६५ ॥

तन्द्राशोथज्वरानाह पार्श्वपीडा रुचिहरेत् ॥

भा० अनन्तर लघु पंचमूल के लक्षण और गुण ॥ सरिखन पिठवन
 दोनों कटेली ॥ गोखरु इन पांचों से लघु पंचमूल हीना है ॥ १६३ ॥ पंच
 मूल हलका मधुर बलको देनेवाला पित्त वात का नाशक है । और न
 बहुत गरम धातु को बढ़ानेवाला का विज है और ज्वर श्वास पथरी इन
 का नाशक है ॥ १६४ ॥ ॥ अनन्तर दशमूल का लक्षण और गुण ।
 दोनों पंचमूलों से दशमूल कहा गया है ॥ त्रिदोष का नाशक और श्वास
 कास सिरकी पीडा ॥ १६५ ॥ तन्द्रा शोथ ज्वर अफारा पसली की पीडा अ
 रुचि इनको नाश करता है ॥

[जीव इति शाक विशेषः । शर्करावन्मधुर पुष्पा व्रततिः ।]

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुस्रवा ॥ मङ्गल्या

नामधेया च शाकं श्रेष्ठा पयस्विनी ॥ १६६ ॥ जीव-

न्ती पीनला स्वादुः स्निग्धा दोषत्रयापहा ॥ रसाय-

नी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघुः ॥ १६७ ॥

भा० जीवन्ती शाक विशेष है । शर्करा के सहित मधुर पुष्पवाली व्रतति
 है । जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुस्रवा । मङ्गल्या
 नामधेया शाक श्रेष्ठा पयस्विनी यह जीवन्ती के नाम हैं ॥ १६६ ॥ जीवन्ती

शीतल मधुर चिकनी विदोषनाशक ॥ रसायन बलको करनेवाली चतुर्के
हिन कीविज्ञ हलकी होती है ॥ १६७ ॥ [अनन्तर वन मृग ।]

अथ मुद्गपर्णी ।] मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्यपर्ण्य लिप-
का सहा ॥ काक मुद्गा च सा प्रोक्ता तथा मार्जार गंधिका

॥ मुद्गपर्णी हिमा रूक्षा तिक्ता स्वादुश्च शुक्रला ॥ च
क्षुष्या क्षत शोथघ्नी ग्राहिणी ज्वर दाह नृत् ॥ १६८ ॥
दोषत्रयहरी लघ्नी ग्रहण्यर्शोऽतिसार जित् ॥

अथ माषपर्णी ।] माषपर्णी सूर्यपर्णी काम्बोजी हय
पुच्छिका ॥ पाण्डु लोमषपर्णी च कृष्णवृन्ता म
हा सहा ॥ १७० ॥ माषपर्णी हिमा तिक्ता रूक्षा शु-
क्र बलास्वकृत् ॥ मधुरा ग्राहिणी शोथ वान पित्त
ज्वरस्रजित् ॥ १७१ ॥

भा० अनन्तर वन मृग ॥ मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्यपर्णी अल्पिका स
हा काक मुद्गा मार्जार गंधिका । ये वन मृगों के नाम हैं ॥ १६७ ॥ वन मृग
शीतल रूक्ष तिक्त मधुर शुक्रको उत्पन्न करनेवाला ॥ चक्षु के हिन क्षत
शोथ कानाशक काविज्ञ ज्वर दाह कानाशक ॥ १६८ ॥ तीनों दोषों को दृ-
र करनेवाला हलकी है और संग्रहणी बवासीर अतिसार इनको जीतने वा-
ला है ॥ अनन्तर वन उड़द ॥ माषपर्णी सूर्यपर्णी काम्बोजी हयपु-
च्छिका पाण्डु लोमषपर्णी कृष्णवृन्ता महासहा ॥ १७० ॥ ये वन उ-
ड़द के नाम हैं ॥ वन उड़द शीतल तिक्त रूक्ष शुक्र और बलको करने
वाला मधुर काविज्ञ है ॥

और शोथ वान पित्त ज्वर रक्त इनको जीत-
ने वाला है ॥ १७१ ॥

[अथ जीवनीय गणस्य लक्षण गुणाश्च ।]

अष्टवर्गः सयष्टीको जीवन्ती युद्धपरिणता ॥ माषपरी
 गरीष्यन्तु जीवनीयगणः स्मृतः ॥ १७२ ॥ जीवनी
 मधुरश्चापि नाम्ना स परिकीर्तितः ॥ जीवनीयगणः
 प्रोक्तः शुक्रदृढं हृंहणो हिमः ॥ १७३ ॥ गुरुगर्भं प्रद
 स्तन्य कफरुन् पित्ररक्तहृन् ॥ नृणां शोषं ज्वरं
 दाहं रक्तपित्तं व्यपोहति ॥ १७४ ॥

भा० अनन्तर जीवनीय गणका लक्षण और गुण ॥ अष्टवर्ग । सुलह ठीके
 साथ और जीवन्ती वनमृग । वन उड़द ये जीवनीय गण कहा है ॥ १७२ ॥
 जीवन और मधुर भी नाम से बोह कहा गया है ॥ जीवनीय गण शुक्र की
 करनेवाला धातु को बढ़ानेवाला शीतल ॥ १७३ ॥ भारी गर्भ को देनेवा-
 ला दूध और कफ को करनेवाला पित्तरक्त का नाशक है ॥ मृषा शोष
 ज्वर दाह रक्त पित्त इनको नाश करता है ॥ १७४ ॥

[अथ शुक्लरक्तैरण्डः ।]

शुक्ल एरण्ड आमण्डु श्विबो गन्धर्वहस्तकः ॥
 पञ्चाङ्गुलो वर्द्धमानो दीर्घदण्डोऽप्यदण्डवः ॥ १७५ ॥
 वानारि स्तरुणश्चापि रुवूकश्च निगद्यते ॥ रक्तोऽपरो
 रुवूकः स्याद्रुवूको रुवूस्तथा ॥ १७६ ॥ व्याघ्रपु
 ष्ठश्च वानारिश्च ज्वरुत्तानपत्रकः ॥ एरण्ड युग्मं
 मधुरमुष्णं गुरु विनाप्रायेत ॥ १७७ ॥

भा० अनन्तर स्वेत अरुण्ड ॥ अरुण्ड ॥ आमण्डु चित्रगन्धर्वहस्तक । पं
 चांगुल वर्द्धमान दीर्घदण्ड अदण्डव ॥ १७५ ॥ वानारि स्तरुण रुवूक ये
 ह एरण्ड के नाम हैं ॥ दूसरा वाला एरण्ड ॥ उरुवूकरुवू ॥ १७६ ॥ व्या
 घ्रपुष्ठ वानारि चैव उत्तानपत्रक ये ह लाल । एरण्ड के नाम हैं ये ह
 दोनों एरण्ड मधुर उष्ण भारी होते हैं ॥ १७७ ॥

शूल शोथ कटीवस्ति शिरः पीडाक्षर ज्वरान् ॥ ब्रध्म

श्वास कफा नाह कास कुष्ठा ममारुतान् ॥ १७८ ॥
 सरण्ड पत्रं वानघ्नं कफ कृमि विनाशनम् ॥ मूत्र
 कृच्छ्र हरञ्चापि पित्तरक्त प्रकोपणम् ॥ १७९ ॥
 वानार्य्य ग्रहलं गुल्मं वस्तिशूल हरं परम् ॥ कफ
 वान कृमीन् हन्ति वृद्धिं सप्त विधामपि ॥ १८० ॥
 सरण्ड फल मन्थुषां गुल्म शूला निलायहम् ॥
 यक्षत् स्त्रीहोदराणोघ्नं कटुकं दीपनं परम् ॥ १८१ ॥
 तहन्मज्जा च विड् भेदी वान श्लेष्मोदरा पहः ॥

भा० शूल शोथ तथा कमर पेड़ सिर इनको पीड़ा उदररोग ज्वर बद्ध
 श्वास कफ अफार कास कुष्ठ आमवात इनको नाश करना है ॥ १७८ ॥
 अंडीका यत्ना वान नाएक कफ कृमि को दूर करने वाला ॥ और मूत्र
 कृच्छ्र का नाशक तथा पित्त रक्त को प्रकोप करने वाला है ॥ १७९ ॥
 अंडीका अग्रदल वायगेला पेड़ का शूल इनका अन्यन्त नाशक है ।
 कफ वान कृमि और सात प्रकार की अंडवृद्धि इनको भी नाश करना है
 ॥ १८० ॥ अंडीका फल वृहत् गरम होता है और वायगेला शूल
 वान इनका नाशक तथा यक्षत् स्त्री उदर बवासीर इनका नाशक
 कटु अन्यन्त दीपन ॥ १८१ ॥ होता है उसी प्रकार उत्कौमिरी भलकी
 भेदन करने वाली वान कफ उदर की नाशक होती है ॥

[अथ शुक्ल रक्तार्क इति लोके ।]

अलर्को गुणरूपः स्यान्मन्दारो वसुकोऽपि च ॥ श्वेत
 पुष्पः सदापुष्पः सवालार्कः प्रतीपसः ॥ १८२ ॥ र
 क्तोयरोर्कं नामा स्याद्वर्क पर्यो विकीरणः ॥ रक्त पु
 ष्पः शुक्ल फल स्यात्स्फोटः प्रकीर्णितः ॥ १८३ ॥

अर्कद्वयं सरं वान कुष्ठ कण्डू विषत्रणान् ॥ निहान्ति
 स्त्रीह गुल्मार्शं प्लेष्मोदर प्राकृत कृमीन् ॥ १८४ ॥
 अलर्क कुसुमं दध्यं लघु दीपन पाचनम् ॥ अरोच
 क प्रसेकार्शः कास श्वास निवारणम् ॥ १८५ ॥
 रक्तार्क पुष्यं मधुरं सतिक्तं कुष्ठ कृमिघ्नं कफनाश
 नञ्च । अर्थो विषं हन्ति च रक्तपित्तं सग्राहि गुल्मे
 श्वयथौ हितं नन् ॥ १८६ ॥ तीरमर्कस्य निक्तोष्णं
 क्षिग्धं सलवणं लघु ॥ कुष्ठ गुल्मोदर हरं श्रेष्ठ मेत-
 द् विरेचनम् ॥ १८७ ॥

भा० अनन्तर सफेद और लाल आक को कहने हैं ॥ अलर्क गुणरूप
 मंदार वलुक ॥ श्वेत पुष्य सदा पुष्य सर्वाचार्य प्रतीयस । यह सफेद
 आक के नाम हैं ॥ १८२ ॥ दूसरा लाल सूर्य के नाम वाला होता है । और
 अर्कपल विकीर्ण । रक्त पुष्य शुक्ल फल तथा स्फोट यह नाम कहें हैं ॥
 ॥ १८३ ॥ दोनों आक सरवान कुष्ठ कण्डू घाव विष । इनको नाश कर
 ता है । और लही वाय गोला बवासीर कफ उदर मल कृमि इनको भी
 नाश करता है ॥ १८४ ॥ आक का फूल धानू को बढ़ाने वाला हलका बी
 यन पाचन होता है । और अरुचि प्रसेक बवासीर कास श्वास । इनका
 दूर करने वाला है ॥ १८५ ॥ लाल आक का फूल मधुर निक्त होता है ।
 और कुष्ठ हानि इनका नाशक और कफ का भी नाशक है ॥ बवासीर
 निष इनको नाश करता है और रक्त पित्त का भी नाशक है । और का-
 बिज तथा वाय गोला सूजन में भी रोह हित है ॥ १८६ ॥ आक का दूध
 निक्त उष्ण चिकना लवण के सहित होता है हलका ॥ तथा कुष्ठ गुल्म
 उदर इनका नाशक और यह श्रेष्ठ रेचन है ॥ १८७ ॥

[अथ सेङ्गरुडः] सेङ्गरुडः सिंह नुण्डः स्या द्वज्जी वज्रद्व
 मोऽपि च । सुधासमन्त दुग्धा च स्तुक स्त्रियां स्या
 न् स्नुही गुडा ॥ १८८ ॥ सेङ्गरुडो रेचन स्त्रीदणो दीपनः

कटको गुरुः ॥ शूलमष्टिलिका अध्मानः कफगुल्मे
 दरा निलान् ॥ १८८ ॥ उन्माद मोह कुष्ठार्शः शोथ
 भेदोऽश्म पाण्डुताः ॥ व्रण शोथ ज्वर स्तीह विष
 दूर्वा विषं हरेन् ॥ १८९ ॥ उष्ण वीर्यं स्नुही क्षीरं स्नि
 ग्धञ्च कटुकं लघु ॥ गुल्मिनां कुष्ठिनाञ्चापि नथे
 वौदर रोगिणाम् ॥ १९० ॥ हितमेतद्विरेकार्थं ये च
 न्ये दीर्घ रोगिणः ॥

भा० अनन्तर शूहर ॥ सेहगड सिंह तुण्ड व्री वज्रद्रुम । सुधा समंत
 दुग्धास्त्रुक स्नुही गुडा येह शूहर के नाम हैं ॥ १८८ ॥ थोहर रेचन नी
 क्षण दीपन कटु भारी होता है और शूल अष्टिलिका आध्मान कफ वा
 य गोला उदर वात ॥ १८९ ॥ उन्माद मोह कुष्ठ ववासीर शोथ भेद पथ
 री पांडुरोग व्रण शोथ ज्वर स्तीह विष दूर्वा विष इनको नाश करना है ॥
 १९० ॥ शूहर का दूध उष्ण वीर्य स्निग्ध कटु लघु होता है । और गुल्म
 वाले और कुष्ठ रोग वाले तथा उदर रोग वाले इनको ॥ १९१ ॥ यह विरे
 चन के अर्थ हित है तथा और दीर्घ रोगियों को हित है ॥

[अथ सेहगड भेदः ।] शानला अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा ।]

शानला सप्तला सारा विमला विदुला च सा ॥ तथा
 निगदिना भूरिफेना चर्मकषेत्यपि ॥ १९२ ॥ शान-
 ला कटुका पाके वानला शीतला लघुः ॥ तिक्ता
 शोथ कफानाह पित्तादावर्त्त रक्तजिन् ॥ १९३ ॥

भा० अनन्तर थोहर भेद । शानला इस नामसे प्रसिद्ध है । शानला सप्त
 ला सारा विमला विदुला तथा भूरिफेना चर्मकषा येह सीका काई के
 नाम हैं ॥ १९२ ॥ सीका फाई पाक में कटु यायु को करने वाली शीतल
 हलकी होती है ॥ और तिक्ता होती है । तथा शोथ कफ अफारा पित्त
 उदावर्त्त रक्त इनको जीतने वाली है ॥ १९३ ॥

अथ करिहारी ।] कलिहारी तु हलिनी लाङ्गली शक्रपुष्पी
 प्ययि ॥ विशाल्याग्निं शिरवानन्ता वह्निवक्त्रा च गर्भ-
 र्भवन् ॥ २६४ ॥ कलिहारी सरकुष्ठ शोफाशो व्रणा
 शूलजित् ॥ सक्षारा श्लेष्मजित्क्ता कड्कानुवरापि
 च ॥ २६५ ॥ नीलोष्णा कृमिहृत्स्वघ्नी पित्ताग्नौ
 पानिनी ॥

भा० करिहारी कलिहारी हलिनी लाङ्गली शक्रपुष्पी विशाल्या अग्निशि-
 खा अनन्ता वह्निवक्त्रा गर्भवन् येह कलिहारी के नाम हैं ॥ २६४ ॥
 कलिहारी सरकुष्ठ शोफ बवासीर व्रणा शूल इनको जीतने वाली है ।
 कुष्ठेक क्षारवाली कफको जीतने वाली तिक्त कड़वी कसैली भी होती
 है ॥ २६५ ॥ नीलोष्णा उष्ण कृमिको नाश करने वाली हलकी पित्तको उ-
 त्पन्न करने वाली गर्भकी गिराने वाली होती है ॥

अथ श्वेत रक्त करवीरः ।] करवीरः श्वेतपुष्पः शत
 कुम्भोऽथ मारकः ॥ द्वितीयो रक्तपुष्पश्च चण्डा
 नीलगुडस्तथा ॥ ^{॥ २६६ ॥} करवीर द्वयं तिक्तं कषायं कड्क
 श्वेतम् ॥ व्रणालाघव कृन्नेत्र कोपकुष्ठव्रणाप-
 हम् ॥ २६७ ॥ वीर्य्योष्णं कृमिकण्डूघ्नं भक्षितं वि-
 षवन्मतम् ॥

भा० अनन्तरमुफेद और लालकनेरको कहते हैं ॥ सफेद फूलके कनेरको ।
 शतकुम्भ अथ मारक कहते हैं ॥ और दूसरे लालफूलके कनेरको चंडात-
 लगुड कहते हैं ॥ २६६ ॥ दोनों कनेर तिक्त कसैले कड़वे होते हैं और जलम
 हननका करनेवाले और नेत्रको कुष्ठ व्रणा इनके नाशक होते हैं ॥ २६७ ॥
 नया वीर्य्यमें उष्ण कृमि खुजली इनकी नाशक है ॥ और खानेसे विषको
 समान होते हैं ॥

अथ धनूरः।] धनूर धूर्त धनूरा उन्मत्तः कनकाह्वयः॥

देवता कितवचूरी महामोही शिवप्रियः॥ १९८॥

मातुलो मदनश्चास्य फले मातुलपुत्रकः॥ धनूरी

मदवर्णाग्निं वानकृज्ज्वर कुष्ठनुन॥ १९९॥ कषा

यो मधुरस्तिक्तो युकालिप्ता विनाशकः॥ उष्णो

गुरुर्जरां श्लेष्मं कण्डू कृमि विषा पहः॥ २००॥

भा० अनन्तर धनूर ॥ धनूर धनूरा उन्मत्त स्वर्णके नामवाला दिवना कि
तवचूरि महामोही शिवप्रिया ॥ १९८॥ मातुल मदन येह धनूरे के ना
म है । और इसके फलको मातुल पुत्रक कहते हैं ॥ धनूरा मद अग्निवा
न इनको करनेवाला ज्वर कुष्ठ का नाशक ॥ १९९॥ कसैला, मधुर, तिक्त,
होना है जूवां लीक इनका नाशक । गरम भारी होता है । दण कफ खुजली
कृमि विष । इनका नाशक है ॥ २००॥

अथ भरुसा।] वासको वाशिका वासा भिषङ्माता च

सिंहिका ॥ सिंहास्थो वाजिदन्ता स्यादाट रूषोऽट रू

षकः॥ २०१॥ आट रूषो दृषस्ताम्रः सिंहपर्णश्च स

स्मृतः॥ वासको वानकृत् स्वर्ग्यः कफ पितास्त्र ना

पानः॥ २०२॥ तिक्त स्तुवरको हृद्यो लघुः शीत स्तु

डर्तिहृत् ॥ प्रवास कासज्वर च्छर्दि मेह कुष्ठ क्षया

पहः॥ २०३॥

[अथ दवन् वायरा।]

अनन्तर वांसा।] वासक वांशिका वासा भिषङ्माता सिंहिका ॥ सिंहास्थ

वाजिदन्ता आट रूष अट रूषक ये वांसे के नाम हैं । और दृष नाम सिंह

पर्ण वांसा वानकी करनेवाला स्वरको अच्छा करनेवाला कफ रक्त पित्त

इनका नाशक ॥ २०१॥ तिक्त कसैला हृदयको अच्छा करनेवाला हलक

शीत नृपा पीड़ा इनको नाश करनेवाला । प्रवास कास ज्वर वमन प्रमेह

कुष्ठ और क्षय इनका नाशक होता है ॥ २०३ ॥ [पित्तपापड़ा]

पर्यटोचर निक्तश्च स्मृतः पर्यटकश्च सः ॥ कथिनः
पांशु पर्यायस्तथा कचच नामकः ॥ २०४ ॥ पर्यटो

हन्ति पित्तास्र भ्रमनृषा कफ ज्वरान् ॥ संग्राही
शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः ॥ २०५ ॥

अथ निम्बः ।] निम्बः स्यात् पिचुमर्दश्च पिचुमन्दश्च
त्रिक्तकः ॥ अरिष्टः पारिभद्रश्च हिङ्गु निर्व्यास इत्यपि
॥ २०६ ॥ निम्बः शीतो लघुग्राही कटु पाकोऽग्नि वात

नुत् ॥ अहृद्यः श्रमनृद् कासज्वररुचि कृमिप्रणुत्
॥ २०७ ॥ व्रण पित्तकफ हृदि कुष्ठहृत्पास मेहनुत् ॥

निम्बपत्रं स्मृतं नेत्र्यं कृमि पित्त विषप्रणुत् ॥ २०८ ॥

वातलं कटु पाकञ्च सर्वाशोचक कुष्ठनुत् ॥ निम्ब

फलं रसे तिक्तं पाकेन कटु भेदनम् ॥ २०९ ॥ स्नि

ग्धं लघूष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शः कृमि मेहनुत् ॥

भा० अनन्तर पित्तपापड़ा ॥ पर्यट वरनिक्त पर्यटक पांशुपर्याय कच
च नामक । येह पित्तपापड़ेके नाम हैं ॥ २०४ ॥ पित्तपापड़ा पित्त भ्रम
नृषा कफ ज्वर इनको नाश करता है । और क्वाचिन शीतल निक्त

दाह इनको नाश करने वाला वातको करने वाला हलका ॥ २०५ ॥

[अनन्तर नीबू के नाम और गुण ।] नीबू पिचुमर्द पिचुमन्द तिक्तक
अरिष्ट पारिभद्र हिङ्गु निर्व्यास । येह नीबू के नाम हैं ॥ २०६ ॥ नीबू शी
तल हलका क्वाचि पाकमेकटु अग्निवायु को करने वाला हृदय का
अप्रिय श्रमनृषा कासज्वर अरुचिकृमि इनका नाशक है ॥ २०७ ॥

और व्रण पित्तकफ भ्रमन कटु हृत्पास प्रमेह इनका नाशक है ॥ नीम का

पत्ता आंखों को हिन कृमि पित्त विष इनका नाशक ॥ २०८ ॥ और वायुको करने वाला पाकमें कटु सम्पूर्ण अरुचि कुष्ठ इनका नाशक है ॥ और निम्बोली रसमें तिक्त और पाकमें तिक्त तथा कड़वी भेदन होती है ॥ २०९ ॥ चिकनी हलकी गरम तथा कुष्ठ की नाशक वायुगोला ववासीर कृमि प्रमेह इनका नाशक है ॥

अथ वकाइन ।] महानिम्बः स्मृतो द्वेका रम्यको विषमु-

ष्टिकाः ॥ केशा मुष्टि निम्बकश्च कार्मुको जीव इत्य-

पि ॥ २१० ॥ महानिम्बो हिमोरुस्स स्तिक्तो याही कपा

यकः ॥ कफ पित्त भ्रमच्छर्दि कुष्ठ हृल्लास रक्तजित्

॥ २११ ॥ प्रमेह श्वास गुल्मापेण मूषिका विष नाश

नः ॥ [अथ फरहद ।] पारि भद्रो निम्बनरुर्मन्दा-

रः पारिजातकः ॥ पारि भद्रोऽनिल म्लेष्म शोथ

भेदः कृमिप्रणुत् ॥ २१२ ॥ पत्रं पित्तरेगघ्नं कर्ण-

व्याधि विनाशनम् ॥

भा० अनन्तर वकाइन । महानिम्ब उद्रेक अरम्यक विषमुष्टिक । केशा मुष्टि निम्बक कार्मुक जीव येह वकाइन के नाम हैं ॥ २१० ॥ वकाइन शीत लरुक्ष निक्त काबिज्ञ कसैला ॥ कफ पित्त भ्रमचमन कुष्ठ हृल्लास रक्त इन को जीतने वाला है ॥ २११ ॥ प्रमेह श्वास वायुगोला ववासीर मूषेके विषका नाशक है ॥ ॥ अनन्तर फरहद ।] पारिभद्र निम्बनरु मंदार पारिजातक । येह जलनीम के नाम हैं ॥ जलनीम वात कफ शोथ भेद कृमि इनका नाशक है ॥ २१२ ॥ और इसका पत्र पित्तरेग का नाशक और कर्णरेग का भी नाशक है ॥

अथ कचनारः ।] काञ्चनारः काञ्चनको गरुडारिः शो

णपुष्पकः ॥ [अथ कचनार भेदः ।] कोविदारश्च

मरिकः कुहलो युगपत्रकः ॥ कुण्डली ताम्रपुष्पश्च

स्मनकः स्वल्पकेशरी ॥ २१३ ॥ काञ्चनारी हिमो ग्रा-
ही त्वर श्लेष्म पित्तनुत् ॥ कृमिकुष्ठ गुदभ्रंश ग-
ण्डमाला व्रणा पहः ॥ २१४ ॥ कोविदारोऽपि नद्वत्स्या
तयोः पुष्पं लघु स्मृतम् ॥ रूखं संग्राहि पित्तास्र प्रद-
र क्षय कासनुत् ॥ २१५ ॥

भा० अनन्तर कचनार ॥ काञ्चनार काञ्चनक गंडारी शोणसुष्यक । येह
कचनार के नाम हैं ॥ [अनन्तर दूसरी कचनार के नाम ।] कोविदार मरिक्
कुहाल युगपत्त्वक ॥ कुंडली नाम्नस्य अस्मनक स्वल्पकेशरी ॥ २१३ ॥
यह दूसरी किसकी कचनार के नाम हैं ॥ कचनार शीतल क्राविज कसैला
कफ पित्तका नाशक ॥ कृमिकुष्ठ गुदभ्रंश गंडमाला व्रण इनका नाशक हैं
॥ २१४ ॥ दूसरे किसका कचनार भी उतांके समान होता है ॥ और उनका फूल
हलका होता है ॥ रूखा क्राविज रक्तपित्त प्रहर क्षय कास इनका नाशक
है ॥ २१५ ॥

अथ सहिज्जन प्रथमः श्वेत रक्तश्च ॥ शोभाज्जनः

शिशु नीक्षो गन्धका क्षीवमोचकः ॥ तद्दीप्तं श्वेत
मखिं मधु शिशुः सलोहितः ॥ २१६ ॥ शिशुः कटुः
कटुः पाके नीक्षोष्णो मधुरो लघुः ॥ दीपनो रोचनो
रूक्षः क्षारस्त्रिक्तो विदाहकन् ॥ २१७ ॥ संग्राही शु-
क्रलोह्यो पित्तरक्तप्रकोपनः ॥ चक्षुष्यः कफ
वानघ्नो विद्रधि प्रवयथु कृमीन् ॥ २१८ ॥

भा० अनन्तर सहजना काला सुफैद लाल ॥ शोभाजन शिशु नीक्षा गं-
धक आक्षीव मोचक । उस्का दीप्त सफैद मिस्वके समान है । मधुर
सहजना कुल्लाल होता है ॥ २१६ ॥ सैजना कटुवा पाकमें कटु नीक्षा
उष्ण मधुर हलका दीपन रोचन रूक्ष क्षार त्रिक्त विदाहकी करने वाला ।
॥ २१७ ॥ क्राविज शुकको उन्पन्न करने वाला हृदयको अच्छा करने वाला
पित्तरक्ताका कोप करने वाला चक्षुके हिम कफ वानका नाशक विद्रधी

सृजन कृमि । इनको नाश करता है ॥ २१८ ॥

मेदो पची विषस्त्रीह गुल्म गण्ड व्रणान् हरेत् ॥ श्वे-

नः प्रोक्त गुणो ज्ञेयो विशेषाद्दाह कृद्भवेत् ॥ २१९ ॥

स्त्रीहानं विद्रधिं हन्ति व्रणघ्नः पित्त रक्त हन् ॥ मधु

शिशुः प्रोक्त गुणो विशेषाद्दीपनः सरः ॥ २२० ॥

शिशु वल्कल पद्माराणं खरसः परमार्तिहन् ॥ चक्षु-

ष्यं शिशुजं बीजं नीक्षोष्णं विषनाशनम् ॥ २२१ ॥

अवृष्यं कफ वानघ्नं तन्त्रस्येन शिरोर्निनुत् ॥

भा० मेद अपचि विषभिल्ली चायंगोला गण्ड व्रण इनको नाश करता है । सुफेद कहे हुवे गुण के समान जान लेना । विशेष करके दाह को करना है ॥ २१९ पित्तही विद्रधी को नाश करता है व्रणका नाशक है पित्त रक्त को दूर करता है ॥ सहेजन का बीज कहे हुवे गुणवाला विशेष करके दीपन

॥ २२० ॥ सहेजन की छल पत्र इनका खरस अत्यंत पीड़ा को नाश करनेवाला है और चक्षुकाहिन सहजने का बीज नीखा उष्ण विषका नाशक है ॥ २२१ ॥ घालुको वक्षीण करनेवाला कफ वान का नाशक और बौह नास लेने से सिरकी पीड़ा को नाश करता है ॥

[अथ श्वेतपुष्पा नीलपुष्पा अपराजिता ।] आस्फोता

गिरिकर्णो स्या द्विषणुकान्ता पराजिता ॥ अपराजि

ते कटु मेध्ये शीते कण्ठ्ये सुहृदि दे ॥ २२२ ॥ कुष्ठ

मूत्र त्रिदोषाम शोथ व्रण विषापहे ॥ कषाये कटु

के पाके तिक्ते च स्मृति बुद्धि दे ॥ २२३ ॥

भा० अनन्तर सुफेद फूल और नीले फूल की विष्णुकान्ता ॥ आस्फोता गिरिकर्णी विष्णुकान्ता अपराजिता यह विष्णुकान्ता के नाम हैं ॥ विष्णुकान्ता कड़वी और बुद्धी के उत्पन्न करनेवाली शीतल कंठ को अच्छा कर

नेवाली ॥ २२२ ॥ अच्छी दृष्टि को देनेवाली कुष्ठ मूत्रदोष आम शोथ व्रण विष इनकी नाशक ॥ कसैली कड़वी पाकमें तिक्तभी । और स्मृतिबुद्धी को देनेवाली है ॥ २२३ ॥

अथ मेउडी सम्भालू । सिन्दुवार इति च ।] सिन्दुवा-

रः खेतपुष्पः सिन्दुकः सिन्दुवारकः ॥ नीलपु-

ष्पी तु निर्गुण्डी शोफाली सुबहा च सा ॥ २२४ ॥

सिन्दुकः स्मृतिदस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः ॥

केश्या नेत्रहितो हन्ति शूल शोथा ममारुतान् ॥

२२५ ॥ कृमि कुष्ठारुचि श्लेष्मज्वरान्नीलापि नदिधा ।

सिन्दुवारदलं जन्तु वानश्लेष्म हरं लघु ॥ २२६ ॥

भा० अनन्तर मेउडी सम्भालू ॥ सिन्दुवार इस प्रकार भी कहने हैं ॥ सिन्दुवार खेतपुष्प सिन्दुक सिन्दुवारक नीलपुष्पी निर्गुण्डी शोफाली सुबहा ये हैं मेउडी के नाम हैं ॥ २२४ ॥ मेउडी स्मृति को देनेवाली तिक्त कसैली कड़वी हलकी ॥ केशको अच्छा करनेवाली । नेत्र को हित होती है ॥ और शूल शोथ आम वायु इनको नाश करती है ॥ २२५ ॥ कृमि कुष्ठ अरुचि कफज्वर इनको नाश करती है ॥ बौह नीली भी दो प्रकार की होती है । मेउडी का पत्र कृमि वान कफ इनका नाशक हलका होता है ॥ २२६ ॥

अथ कीरैश्चा ।] कुटजः कूटजः कीटी वन्सको गिरिम

ल्लिका ॥ कालिद्रुः शक्र शाखी च भल्लिका पुष्प

इत्यपि ॥ २२७ ॥ इन्द्रो यवफलः प्रोक्तो वृक्षकः पा-

दु रज्जुमः ॥ कुटजः कटुको रूक्षो दीपनः स्नुवरो

हिमः ॥ २२८ ॥ अर्शोऽग्निसारं पितास्य कफवृण्ण

मकुष्ठवुर ॥

भा० अनन्तर कुरैया कुट्ज कुट्ज कीटी वत्सक गिरि मल्लिका कालिंग
शक्र शाक मल्लिका पुष्य । येह कुरैया के नाम हैं ॥ २२७ ॥ और इन्द्रयव
फल वत्सक पांडुर डुम पहमी कुरैया के नाम हैं । कुरैया कडवी रूखी दीप
न कसैली ठंठी ॥ २२८ ॥ होनी है । और बवासीर अनारसार रक्त पित्त हवा
आम कुष्ठ इनकी नाशक है ॥

अथ कण्टकरेजा करञ्ज घोर

करञ्ज ॥ करञ्जो नक्त मालश्च करञ्जश्चिर विल्व-
कः ॥ घृतपूर्ण करञ्जोऽन्यः प्रकीर्यः पूतिकोऽपि च
॥ २२९ ॥ स चोक्तः पूति करञ्जः सोमवल्कश्च स
स्मृतः ॥ करञ्जः कटुक स्त्रीक्ष्णो वीर्योष्णो योनि
दोषहन् ॥ २३० ॥ कुष्ठोदावर्त गुल्मार्शो ज्वर कृमि
कफापहः ॥ तत्पत्रं कफवानार्शः कृमि शोथहरं
परम् ॥ २३१ ॥ भेदनं कटुकं पाके वीर्योष्णं पित्त-
लं लघु ॥ तत्फलं कफवानघ्नं मेहार्शः कृमि कु
ष्ठजित् ॥ २३२ ॥ घृतपूर्ण करञ्जोऽपि करञ्ज
सदृशो गुणैः ॥

भा० अनन्तर कण्टकरेजा करंज घोर करंज को कहते हैं ॥ करंज नक्त
माल चिर विल्वक घृतपूर्ण और दूसरा करंज प्रकीर्य पूतिक भी
कहते हैं ॥ २२९ ॥ वोह पूतिकरंज कहा गया है ॥ और वही सोमवल्क
क भी कहा गया है ॥ करंजवा कडुवा तीखा उष्ण वीर्य में उष्ण योनि
दोषका नाशक है । और कुष्ठ उदावर्त गुल्म बवासीर ज्वर कृमिकफ
घूनका नाशक है ॥ उस्का पत्र कफ वान्त बवासीर कृमि सूजन इन
का नाशक है ॥ २३१ ॥ भेदन कडुवा पाक में वीर्य में उष्ण पित्तको कर
नेवाला ॥ हलका होता है ॥ उस्का फल कफ वान्तका नाशक प्रमेह बवा
सीर कृमिकुष्ठ इनको जीतनेवाला ॥ २३२ ॥ घृतपूर्ण नाम दूसरा करंजवा

भी करंजवे के सदृश गुणमें है ॥ [अथ अरारि ।]

उदकीर्य स्मृतीयोऽन्यः षड्ग्रन्था हस्तिवारुणी ॥

मर्कटी वायसी चापि करंजी करभञ्जिका ॥ २३३ ॥

करंजी स्तम्भनी तिका तुवरा कटु पाकिनी ॥ जी-

व्योषणा वमि पित्तार्शः कृमिकुष्ठ प्रमेह जित् ॥ २३४ ॥

अथ श्वेत रक्त गुञ्जा ।] श्वेता रक्तोच्चटा प्रोक्ता कृष्णाला-

चापि सा स्मृता ॥ रक्ता सा काक चिञ्ची स्यात् का-

कानन्ता च रक्तिकः ॥ २३५ ॥ काकादनी काकपी-

लुः सा स्मृता काकवल्लरी ॥ गुञ्जा द्वयन्तु केश्यं

स्यात् वात पित्तज्वरा पहम् ॥ २३६ ॥ मुख शोष

श्रम श्वास नृणा मद विनाशनम् ॥ नेत्रामय हरं

वृष्यं वल्यं कण्डू व्रणं हरेत् ॥ २३७ ॥ कृमीन्द्रलु-

प्त कुष्ठानि रक्ता च धवलापि च ॥

भा० अनन्तर डार करंज । उदकीर्य और तीसरा करंजवा हस्ति वारुणी षड्ग्रन्था ॥ मर्कटी वायसी करं जी करभञ्जिका येह डार करंज के नाम हैं ॥ २३३ ॥ डार करंज स्तम्भन करनेवाली तिका कसेली कटु पाकवाली । जीव्य में उष्ण होती है ॥ और वमन पित्तकी वसीसीर कृमिकुष्ठ प्रमेह इनको जीतनेवाली होती है ॥ २३४ ॥

अनन्तर सुफेद और लाल चिरमिठी को कहते हैं ॥ सफेद और लाल को उच्चय और कृष्णला भी कहा है ॥ और लालको काकचिञ्ची का तानन्ता रक्तिक ॥ २३४ ॥ काकादनी काकपीलू काकवल्लरी । येह लाल चिरमिठी के नाम हैं ॥ दोनों चिरमिठियां केशको हिन करती हैं और वात पित्त ज्वरकी नाशक हैं ॥ २३६ ॥ नया मुख शोष श्रम श्वास नृणा इनकी नाशक है ॥ और नेत्र रोग को दूर करनेवाली पुष्टव रक्तकोर

न वाली तथा कण्डू व्रण इनको भी नाश करती है ॥ २३७ ॥ और कृमि
कुष्ठ कुष्ठ लाल सुफेद भी इनको नाश करती है ॥

कपिकच्छू रात्रि गुप्ता वृष्या प्रोक्ता च मर्कटी ॥ अज-
रा कण्डू राव्यङ्गा दुःस्पर्शा प्रावृषायणी ॥ २३८ ॥
लाङ्गली शूकसिम्बी च सैव प्रोक्ता महर्षभिः ॥ क-
पिकच्छू मृशं वृष्या मधुरा वृंहणी गुरुः ॥ २३९ ॥
निक्ता वानहरी वल्वा कफ पिताम्व नाशिनी ॥ नद्धी-
जे वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम् ॥ २४० ॥

भा० अनन्तर किमांश ॥ कपिकच्छू आत्म गुप्ता वृष्या मरकटी ॥ अज-
रा कण्डू राव्यङ्गा दुस्पर्शा प्रावृषायणी ॥ २३८ ॥ लाङ्गली शूक सिम्बी
येह किमांश के नाम महर्षियों ने कह हैं ॥ किमांश अन्यन्त धातुको बढा-
वाली मधुर पुष्ट भारी होती है ॥ २३९ ॥ और निक्ता वानकी नाशक बल-
करनेवाली कफ रक्त पित्तकी नाशक होती है । और उसका बीज वात का
नाशक होता है अत्यन्त वाजीकरण कहा गया है ॥ २४० ॥

अथ रोहिणी । मांस रोहिण्य निरुहा वृत्ता चर्मकारी
कृशा ॥ प्रहारवल्ली विकशा वीर वन्यपि कथ्यते ॥
॥ २४१ ॥ स्यान्मांसरोहिणी वृष्या सरा दोषत्रयाप-
हा ॥ [अथ चिलह ।] चिलहको वातनिर्हारी श्लेष्म-
घ्नी धातुपुष्टिहन् ॥ आग्नेयो विषवद्यस्य फलम-
तस्य निषूदनम् ॥ २४२ ॥

भा० अनन्तर रोहिणी ॥ मांसरोहिणी अनिरुहा वृत्ता चर्मकारी कृ-
प्रहारवल्ली विकशा वीरवनी येह रोहिणी के नाम हैं ॥ २४१ ॥ मांस-
हणी पुष्ट सर दोषत्रयकी नाशक होती है ॥ [अनन्तर चिलह ।

चिल्हक वातनिरहम् श्लेष्मघ्न । येह चीलूके के नाम हैं ॥ चीलू श्लेष्म
का नाशक धातू का खण्ड करने वाला ॥ और उष्ण तिस्का फल विष के स
मान मछरी का नाशक होता है ॥ २४२ ॥ [अथ टङ्गुरि ।]

टङ्गुरि वातजित्तिक्ता श्लेष्मघ्नी दीपनी लघुः ॥
शोथोदर व्यथा हन्ती हिता पीठ विसर्पिणाम् ॥
॥ २४३ ॥ [अथ वेतसः । वेतसा नम्रकः प्रोक्तो
वारीरो बज्जुलस्तथा ॥ अम्रपुष्पश्च विदुलो र-
थ शीतश्च कीर्तितः ॥ २४४ ॥ वेतसः शीतलो दाह
शोथार्शो योनिरुक् प्रणुत् ॥ हन्ति विमर्ष कच्छा-
स्र पितामर कफानिलान् ॥ २४५ ॥

भा० अनन्तर टंकारी ॥ टंकारी वात को जीतने वाली कफ नाशक दीपन
हलकी ॥ शोथ उदर व्यथा इनकी नाश करने वाली और पीठ विसर्प रोग वा
लों को हित होती है ॥ २४३ ॥ अनन्तर वेतस । वेतस नम्रकः वारीर बज्जु
ल अम्रपुष्प विदुल रथ शीत येह वेत के नाम हैं ॥ २४४ ॥ शीतल दाह
शोथ ववासीर योनि पीड़ा इनको नाश करने वाली है ॥ और विसर्प कृत्
कच्छू रक्त पित्त अमरी कफ वायु इनको नाश करता है ॥ २४५ ॥

अथ जलवेतसः । [निकुञ्चकः परिव्याधो नादेयो ज-
लवेतसः ॥ जलजो वेतसः शीतः कुष्ठहृद्वातकोप-
नः ॥ २४६ ॥ [अथ इज्जल समुद्र फल इति लोके]

इज्जलो हिज्जलश्चापि निबुलश्चाम्बुजस्तथा ॥

जलवेतसवद्देद्यो हि ज्जलोऽर्थ विषापहः ॥ २४७ ॥

भा० अनन्तर जलवेतस ॥ निकुञ्चक परिव्याध नादेय जलवेतस येह नाम
जलवेत के ॥ जलवेत शीतल कुष्ठ का नाशक वात का प्रकोप करने वाला
है ॥ २४६ ॥ अनन्तर इज्जल समुद्र फल ऐसा लोक में । इज्जल हिज्जल

ल निचुल अम्बुज । येह समद्रफल के नाम हैं ॥ जलवेत के समान दूस्कोज
नना चाहिये । येह विषका नाशक है ॥ २४७ ॥

अथ देरा । अङ्गोटे दीर्घकीलः स्यादङ्गोलश्च निको-
चकः ॥ अङ्गोटकः कटुस्तीक्ष्णः सिग्धोष्णस्तुवरो
लघुः ॥ २४८ ॥ रेचनः कृमिशूलाम शोफग्रह वि-
षां पहः ॥ विसर्पकफ पित्तास्र मूषकाहि विषां प-
हः ॥ २४९ ॥ तत् फलं शीतलं स्वादु श्लेष्मघ्नं वृं-
हणं गुरु ॥ चल्यां विरेचनं वात पित्तदाह क्षयास्र-
जित् ॥ २५० ॥

भा० अनन्तर अंकोट ॥ अंकोट दीर्घकी अंकोल निकोचक येह हिङ्गोट
के नाम है ॥ हिङ्गोट कड़वा तीक्ष्ण चिकना उष्ण कसैला हलका ॥ २४८ ॥
रेचन कृमि शूल आंव शोथ ग्रह विष इनका नाशक है ॥ विसर्पकफ रक्त
पित्त चूहा सर्प इनके विषका नाशक है ॥ २४९ ॥ उस फल शीतल मधुर
कफका नाशक धातुको बढ़ानेवाला भारी ॥ बलको करनेवाला रेचक
वात पित्त दाह क्षय रक्त इनका जीतनेवाला है ॥ २५० ॥

(अथ वरि आर सहदेवी ककहिआ गुलसकरी । इति
वलाचतुष्टयम् ।)

वाद्या वाद्यालिका वाद्या सैव वाद्यालका अपि च ॥
महाबला पीतधुष्या सहदेवी च सा स्मृता ॥ २५१ ॥
ततोऽन्यातिबला ऋष्यप्रोक्ता कङ्कनिका च सा ।
गाङ्गेरुकी नागबला ह्येषा ह्रस्वा गवेधुका ॥ २५२ ॥
वलाचतुष्टयं शीतं मधुरं बलकान्ति कृत् ॥ स्नि-
ग्धं ग्राहि समीरास्र पित्तास्रक्षत नाशान्मू ॥ २५३ ॥

बला मूलस्तवच मूर्णी पीतं स क्षीरशर्करम् ॥ मूत्रा
तिसारं हरति दृष्टमेतन्न संशयः ॥ २५४ ॥ हरेन्म-
हाबला कृच्छ्रं भवेद्वातानुलोमनी ॥ हन्यादति ब-
ला मेहं पयसा सितया समम् ॥ २५५ ॥

२३

भा० अनन्तर वरिया सहदेई कहि या गुलशकरी येह बला चें छूय है ॥
वाद्या वाद्यालिक ॥ येह वरियरि के महाबला शीतपुण्या सहदे
यो येह सहदेई के नाम हैं ॥ २५१ ॥ और उस्से दूसरी ककनिका अति-
बला येह ककरैया के नाम करियोंने कहे हैं ॥ गाङ्गेरुकी नागबला ह-
श्वाग वेधुका येह गुल शकरी के नाम हैं ॥ २५२ ॥ येह चारों शीत मधु-
र बलकान्ति को कनेवाली ॥ चिकनी काविज्ज वातरक्त पित्त रक्त क्षत
इनको नाश करनेवाली है ॥ २५३ ॥ वरियारे की जड़के छालके चुरण
को दूध और शर्कर के साथ पीनेसे मूत्रानीजार को नाश करता है । यह
देखा है इसमें संशय नहीं ॥ और महाबला मूत्र कृच्छ्र को नाश करती
है ॥ और वातको अनुलोमन करनेवाली है ॥ और गुल शकरी दूध और
चीनी के साथ पीने से प्रमेह को नाश करती है ॥ २५४ ॥

और वरिया के वाद्या नाम भी कहते हैं ।

अथ लक्ष्मणा । पुत्रकाकार रक्ताल्प विन्दुभिली-
ज्जिता सदा ॥ लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धा
कृतिर्भवेत् ॥ २५६ ॥ कथिता पुत्रदा वषयं लक्ष्म-
णा मुनिपुङ्गवैः ॥ [स्वर्गावल्ली] ॥
स्वर्गावल्ली रक्तफला काकायुः काकवल्लरी ॥ स्व
र्गावल्ली शिरः पीडां त्रिदोषान् हन्ति दुग्धदा ॥ ५७

भा० अनन्तर लक्ष्मणा ॥ पुत्रकाकार रक्तअल्प विंदुओंसे लांछित
होती है लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धा ॥ २५६ ॥ पुत्रदा येह लक्ष्मणा
के नाम हैं ॥ मुनि श्रेष्ठोंने लक्ष्मणा अवश्य पुत्रको देनेवाली है ऐसा

कहा है ॥ [अनन्तर स्वर्णवल्ली] स्वर्णवल्ली रक्तफला कर्कायु काकवल्ली ॥ स्वर्णवल्ली सिरकी पीड़ाको और विदोषको नाश करती है । और दुग्धको करनेवाली है ॥ २५७ ॥

अथ कपास] कार्पासी तुरण्डकेरी च समुद्रान्ता च कथ्यन्ते ॥ कर्पसकी लघुः कोष्णा मधुरा वान नाशनी ॥ २५८ ॥ तत्पलाशं समीरघ्नं रक्तकन्मू-
त्ववर्द्धनम् ॥ तत्कर्णपीडकानादपूयाश्चावविनाशनम् ॥ २५९ ॥ तद्बीजं स्तन्यदं दृष्यं स्निग्धं कफकरं गुरु ॥

भा० अनन्तर कपास । कार्पासी तुरण्डकेरी समुद्रान्ता । येह कपासके नाम हैं- कपास हलका कुछ गरम मधुर वान नाशक है ॥ २५८ ॥ उसका पत्ता वानकानाशक रक्तको करनेवाला और मूत्रका बढ़ानेवाला है । और कर्णपीड़ा नाद पूयकाश्चाव इनका भी नाशक है ॥ २५९ ॥ उसका बीज दूधको बढ़ानेवाला शुक्रेको उत्पन्न करनेवाला कफ करनेवाला भारी होता है ॥

अथ वंश ।] वंशस्त्वक् सारकर्मी र त्वचिसारः तृण-
ध्वजः ॥ शतपर्वा शतफली वेणुमस्कर तेजनाः ॥
॥ २६० ॥ वंशः सरो हिमः स्वादुः कषायो वस्तिशो-
धनः ॥ छेदनः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्त्ररणशोथ-
जित् ॥ २६१ ॥ तत् करीरः कटुः पाके रसे रूक्षो गु-
रुः सेरः ॥ कषायः कफकृत् स्वादुर्विदाही वात-
पित्तलः ॥ २६२ ॥ तद्यवास्तु साररूक्षाः कषायाः
कटुपाकिनः ॥ वातपित्तकरा उष्णा बहूधूनाः

कफापहाः ॥ २६३ ॥ [अथ नलः ।]

नलः पोटगलः शून्य मध्यश्च धमनस्तथा ॥

नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायः कफ रक्तजित् ॥ २६४ ॥

उष्णो हृद्दस्ति योन्यर्त्तिदाह पित्तविसर्प हृत् ॥

भा० अनन्तर वांस । वंश त्वकसार करपार नृणध्वज ॥ शतपर्वा, शतफली वेणु मस्कर तेजन, येह वांस के नाम हैं ॥ २६० ॥ वांस वायु को अनुलोम करनेवाला शीतल मधुर कसैला वस्त्रिका शोधन ॥ छेदन कफ पित्तका नाशक कुष्ठ रक्त घाव शीथ इनको जीतनेवाला है ॥ २६१ ॥ उष्ण अङ्गुर पाकमें कड़वा रसमें कड़वा रसवा भारी दस्तावर ॥ कसैला कफको करनेवाला मधुर विदाही वातपित्तको करनेवाला होता है ॥ २६२ ॥ उसके जी वायुको अनुलोम करनेवाले रूखे कसैले कटुपाकवाले ॥ वात पित्तको करनेवाले उष्ण मूत्रको रोकनेवाले कफ के नाशक होते हैं ॥ २६३ ॥

अनन्तर नडु । नल पोटगल शून्य मध्य धमन येह नरकट के नाम हैं ॥ नरकट मधुर तिक्त कसैला कफ रक्तको जीतनेवाला होता है ॥ २६४ ॥ उष्ण हृदय वस्ति योनि इनकी पीड़ा दाह पित्त विसर्प इनका नाशक है ॥ [अथ रामशर ।] (शरपत इति वा ।

भद्र मुञ्जः शरैवाणः तेजनश्चक्षु वेष्टनः ॥

अथ मुञ्जः । मुञ्जो मुञ्जातको वाणः स्थूलदर्भः

सुमेखलः ॥ २६५ ॥ मुञ्जद्वयन्तु मधुरं त्वरं शिशिरं तथा ॥ दाह तृष्णा विसर्पाममूत्र कृच्छ्रा हि रोग जित् ॥ २६६ ॥ दोषत्रय हरं तृष्यं मेखला सुपयुज्यते ॥

भा० अनन्तर रामशर या शरपत । भद्रमुञ्ज शरवाण तेजन चक्षु वेष्टन येह शरपत के नाम हैं । [अनन्तर मुञ्ज ।] मुंज मुंजातक वाण स्थूलदर्भ सुमेखल येह मूँज के नाम हैं ॥ २६५ ॥ दोषो मूँज मधुरकसै

ले शीतल होते हैं ॥ और दाह तथा विसर्प मूत्र कृच्छ्र नेत्र रोग इनकी जी-
तनेवाले हैं ॥ २६६ ॥ तथा तीनों दोषों के नाशक घातुके सुष्ट करनेवाले
होते हैं ॥ और मेरुदला में उसका उपयोग किया जाता है ॥

अथ कांशः ।] काशः काशेक्षुरुद्दिष्टः संस्यारिक्त
सरस्तथा ॥ इत्थालिके लुगन्धा च तथा पोटग-
लस्मृतः ॥ २६७ ॥ काशः स्यान्मधुरस्निक्तः स्वादु
पाको हिमः सरः ॥ मूत्र कृच्छ्र श्मदाहास्त्र दाय-
पित्तज रोगजित् ॥ २६८ ॥

भा० अनन्तर कांस ।] कांस कसेला इत्तुसर इत्थालिक इत्तुगन्धा पो-
टगल येह कांसके नाम हैं ॥ २६७ ॥ कांस मधुर स्निक्त पाकमें मधुर शीत-
ल दस्तावर ॥ मूत्र कृच्छ्र पथरी दाह रक्तज पित्तके रोगोंको जीतनेवा-
ला होता है ॥ २६८ ॥ [गन्धपटेर इति च ।]

गुन्द्रः पटेरकोरच्छः शृङ्गवेराभ मूलकः ॥ गुन्द्रः
कषायो मधुरः शिशिरः पित्तरक्तजित् ॥ २६९ ॥
स्तन्यः शुक्ररजो मूत्र शोधनो मूत्र कृच्छ्र हत ॥
मोथीन्हृण विशेषः ।] सरका गुन्द्रमूला च शिविर्गु-
न्द्रा शरीति च ॥ सरका शिशिरा दृष्या चक्षुष्या
चात कोपिनी ॥ २७० ॥ मूत्र कृच्छ्राश्लरी दाह पित्त
शोणित नाशिनी ॥

भा० अनन्तर गन्धपटेर ॥ गुन्द्र पटेर कोरच्छ शृङ्गवेराभ मूलक येह
गन्धपटेरके नाम हैं ॥ गन्धपटेर कसेला मधुर शीतल पित्तरक्त की
जीतनेवाला ॥ २६९ ॥ मूत्रको उत्पन्न करनेवाला शुक्र रज मूत्र इनका
शोधक और मूत्र कृच्छ्र का नाशवा होता है ॥

अनन्तर मोयी तृणा विशेष है ॥ एरका गुन्डमूला शिवीगुन्डा प्रारी येह मोयी के नाम हैं ॥ मोयी शीतल धातुको उष्ट करने वाली नेत्रके बातको प्र-
लोप करने वाली ॥ २७० ॥ मूत्रकृच्छ्र अशमरी दाह रक्तपित्त इनको नाश
करने वाली है ॥

[अथ कुशा ।]

कुशादर्मस्तथा वह्निः सूच्यग्रो यज्ञभूषणः ॥

[अथ डाम ।] ततोऽन्यो दीर्घ पत्रः स्यात् क्षुरपत्रस्त

थैवच ॥ दर्मद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम् ॥

॥ २७१ ॥ मूत्रकृच्छ्राशमरी तृणा वस्तिरुक् प्रदरा-

सृजित् ॥ [अथ कर्तृणाम् ।] (रोहिष सोधि आ

इति च ।) कर्तृणं रोहिषं देव जग्धं सौगन्धिकं तथा ।

भृतीकं ध्यामपौरञ्च श्यामकं धूसगन्धिकम् ॥ २७२

रौहीषं तुवरं तिक्तं कटु पाकं व्ययोहति ॥ हृत्क-

रठ व्याधिपित्तास्त्र शूलकास कफज्वरान् ॥ २७३ ॥

भा० अनन्तर कुशा ॥ कुशा दर्म वह्निः सूच्यग्र यज्ञभूषण येह कुशा
के नाम हैं ॥ अनन्तर डाम ।] उस्से दूसरे किसका कुशा ॥ दीर्घ

पत्र क्षुरपत्र येह डामके नाम हैं ॥ येह दोनों कुशा त्रिदोष नाशक
मधुर कसैली शीतल ॥ २७१ ॥ मूत्रकृच्छ्र अशमरी तृणा पेड़ की पीड़ा

प्रदर रक्त इनकी नाशक है ॥ [अनन्तर कर्तृण । रोहिष

सोध्या इस प्रकार लोक में कहने हैं ॥ कर्तृण रोहिष देवजग्ध सौग-
न्धिक ॥ भृतीक, ध्याम, पौर, ध्यमक, श्यामक, धूसगन्धिक । येह

पीले किसकी खसके नाम हैं ॥ २७२ ॥ कर्तृण कसैला तिक्त कटु
पाक में होता है ॥ और हृदय कंठ के रोग रक्त पित्त शूल कास कफ

ज्वर इनकी नाश करता है ॥ २७३ ॥ [अथ भृस्तृणाम् ।

गुह्यबीजन्तु भृतीकं सुगन्धं जम्बुक प्रियम् ॥

भूतृणां तु भवेच्छत्वा मालानृणाकमित्यादि ॥ २७४ ॥
 भूतृणां कटुकं तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रेचनं लघु ॥ विदा-
 हि दीपनं रुक्ष मनेत्र्यं मुख शोधनम् ॥ २७५ ॥ अ-
 दृष्यं बह्विदूकञ्च पित्तरक्त प्रदूषणम् ॥

भा० अनन्तर भूतृण ॥ गुहावीज भूतीक सुगंध जम्बुकप्रिय ये भूतृ-
 णाके नाम हैं ॥ येह भी एक घास सुगंधकी किस्म से है ॥ भूतृण छत्रा
 माला नृणाक । येह भी उसीके नाम हैं ॥ २७४ ॥ भूतृण कडुवा तिक्तं तीक्ष्ण
 उष्ण रेचन हलका ॥ विदाही दीपन सूक्ष्म नेत्रके अहित मुखका शो-
 धन ॥ २७५ ॥ नपुंसकता को करनेवाला बड़न मलको उत्पन्न करने
 वाला पित्तरक्तको बिगाड़नेवाला होता है ॥

अथ नीलदूर्वा ।] नीलदूर्वा रुहानन्ता भार्गवी शत-

पर्विका ॥ शष्यं सहस्रवीर्या च शतवल्ली च
 कीर्तिता ॥ २७६ ॥ नीलदूर्वा हिमा तिक्ता मधुरा
 तुवरा हरा ॥ कफपित्तस्य वीसर्प नृषा दाहत्व
 गामयान् ॥ २७७ ॥ [अथ श्वेतदूर्वा ।]

दूर्वा सुक्ता तु गोलोमी शतवीर्या च कथ्यते
 श्वेतादूर्वा कषाया स्यात् स्वाद्वी व्रणया च जीवनी

॥ २७८ ॥ तिक्ता हिमा विसर्पास तृद् पित्त कफ दाह हृत्

भा० अनन्तर नील दूर्वा ॥ नीलदूर्वा रुह्य अनन्ता भार्गवी शत
 पर्विका । येह नील दूर्वाके नाम हैं ॥ शष्य सहस्रवीर्या शतवल्ली,
 येह काली दूर्वाके नाम हैं ॥ २७६ ॥ कालीदूर्वा शीतल तिक्त मधुर कसे-
 ली होती है ॥ और कफ रक्तपित्त विसर्प नृषा दाह त्वचाके रोग इनको
 नाश करनेवाली है ॥ २७७ ॥ अनन्तर सफ़ेद दूर्वा । श्वेतदूर्वा गोलो-
 मी शतवीर्या यह सफ़ेद दूर्वाके नाम हैं ॥ सफ़ेद दूर्वा कसैली मधुर घाव
 को अच्छा करनेवाली जीवन ॥ २७८ ॥ तिक्त शीतल कसैली विसर्परक्त

तथा पित्त कफ दाह इनकी नाशक है ॥

[अथ गण्डरि दूर्वापाच इति च।]

गण्ड दूर्वातु गण्डाली मत्स्याक्षी शकुलान्नकः ॥

गण्ड दूर्वा हिमालोह द्राविणी ग्राहिणी लघुः ॥

॥ २७६ ॥ तिक्ता कषाया मधुर वात कृत्कटु पाकि -

नी ॥ दाह तृष्णा बलासास कुष्ठ पित्त ज्वरापहा ॥ ८०

२८० ॥ [अथ विदारीकन्दः क्षीर विदारी गेरिष्ठ इति लो-

के।] वाराहीकन्द स्वान्यै श्रमकार लुकोमतः ॥

अनूप सम्भवे देशे वाराह इव लोमवान् ॥ २८१ ॥

विदारी स्वादुकन्दा च सातु क्रीष्टी सिता स्मृता ॥

भा० अनन्तर गण्डरि ॥ गण्डदूर्वा कण्डाली मत्स्याक्षी शकुला अक्षक येह गण्डर के नाम हैं ॥ गण्डर शीतल लोहे को गलाने वाली का विज्ञ हलकी होती है ॥ २७६ ॥ और तिक्त कसैली मधुर वातको करने वाली पाकमें कटु ॥ दाह तृष्णा कफ रक्त कुष्ठ पित्त ज्वर इनकी नाशक है ॥ २८० ॥ [अनन्तर विदारीकन्द को कहते हैं। क्षीर विदारी मैठी

ऐसा भी लोकमें कहते हैं।] वाराहीकन्द ही को कोई आचार्य चर्मका रालुक कहते हैं ॥ अनूप देश में वाराह के समान रोमवाला होता है।

॥ २८१ ॥ विदारी स्वादुकन्दा क्रीष्टी सिता ॥ इक्षुगन्धा क्षीरवल्ली क्षीर शुक्ता पयस्वनी ॥

इक्षुगन्धा क्षीर वल्ली क्षीरशुक्ता पयस्विनी ॥ २८२ ॥

वाराह चदना गृष्टिर्वदरेत्यपि कथ्यते ॥ विदारी

मधुरा तिग्माहंरणी स्तन्य शुक्रदा ॥ २८३ ॥ शीता-

स्वर्था मूलला च जीवनी वनवर्णादा ॥ गुरुः पिनास

पवनदाहान् हन्ति रसायनी ॥ २०४ ॥

अथ भुशलीकन्दम् ॥] तालमूली तु विद्वद्भिर्भुश-
ली परिकीर्तिता ॥ भुशली मधुरा दृष्या वीर्योष्णा
दृंहणी गुरुः ॥ २०५ ॥ तिक्ता रसायनी हन्ति गुद-
जान्यनिलन्तथा ॥

आ० वराह वदना ग्रंथी वदरा येह नाम विदारीकन्द के हैं ॥ विदारीकंद
मधुर स्निग्ध पुष्ट दुग्ध शुक्रको उत्पन्न करनेवाला ॥ २०३ ॥ शीत स्वर
को अच्छा करनेवाला मूत्रको उत्पन्न करनेवाला जीवन बल वर्णको
देनेवाला ॥ भारी है और रक्तपित्त वात दाह इनका नाश करता है और
रसायन है ॥ २०४ ॥ [अनन्तर मूसली । तालमूलीको विद्वानोंने भू-
सली ऐसा कहा है । मूसली मधुर पुरुषत्वको उत्पन्न करनेवाली वीर्य
भिं उष्ण और पुष्ट भारी होती है ॥ २०५ ॥ और तिक्तरसायन है तथा व-
दासीर वात इनको नाश करती है ॥

[अथ शतावरी महाशतावरी ।] शतावरी बड़ सुता
भीरु रिन्दीवरी वरी ॥ नारायणी शतपदी शत-
वीर्या च पीवरी ॥ २०६ ॥ महाशतावरी चान्या श-
तमूल्यर्द्ध कण्टिका ॥ सहस्रवीर्या हेतुश्च ऋष्या
प्रोक्ता महोदरी ॥ २०७ ॥ शर्तवरी गुरुः शीता तिक्ता
खाद्वी रसायनी ॥ मेधाग्निपुष्टिदा स्निग्धानेत्या
गुल्मातिसार जित् ॥ २०८ ॥ शुक्रस्तन्य करी वल्ग्या
वातपित्तास्र शोथ जित् ॥ महाशतावरी मेध्या
हृद्या दृष्या रसायनी ॥ २०९ ॥ शीत वीर्या निह-
न्त्यर्शो ग्रहणी नयना मयान् ॥

भा० अनन्तर शतावर और महाशतावर ।] शतावरी बड़सुना भीरु-
इन्दीवरी वरी नारायणी शतपदी शतवीर्या पीवरी ॥ २८६ ॥ येह
शतावर के नाम हैं ॥ दूसरी महाशतावरी ॥ शतमूली अर्धकुरिदका
सहस्रवीर्या हेतु चरिष्या महोदरी येह बड़ी शतावर के नाम हैं
॥ २८७ ॥ भारी शीत तिक्त मधुर रसायन होती है और कान्ति अग्नि
पुष्टि इनको देनेवाली स्निग्ध होती है ॥ और को हित करने वाली । नेत्र
वायुगोला अतिसार को जीतनेवाली ॥ २८८ ॥ और शुक्र दुग्ध को
करनेवाली बलके हित बात पित रक्त शोथ इनको जीतनेवाली है ॥
बड़ी शतावर कान्तिको करनेवाली दिलको ताकत देनेवाली पुरु-
षत्व को बढ़ानेवाली रसायनी होती है ॥ २८९ ॥ बड़ी शतावर बवासीर
संगहणी नेत्ररोग इनको नाश करती है ॥

अथ असगन्धः ।] गन्धान्तावाजि नामादि रश्मिग-

न्धा हयाह्वया ॥ वराह करणी वरदा वरदा कुष्ठ ग-

न्धिनी ॥ २९० ॥ अश्वगन्धा निल श्लेष्म श्वित्र

शोथ क्षयापहा ॥ बल्या रसायनी तिक्ता कषा-

यो श्रान्ति शुक्रला ॥ २९१ ॥

भा० अनन्तर असगन्ध ॥ गन्धान्ता घोड़े के नाम आदिवाला ।
अश्वगन्धा हयाह्वया वराह करणी वरदा कुष्ठगन्धिनी येह अस-
गन्ध के नाम हैं ॥ २९० ॥ असगन्ध वातकफ श्वित्र शोथ क्षय इनका
नाशक बलको देनेवाला रसायन तिक्त कसेला और खानेसे शुक्रको
उत्पन्न करनेवाला है ॥ २९१ ॥

अथ पाठा ।] पाठां वष्टा वष्टकीच प्राचीना पापचे

लिका ॥ एकछीला रसा प्रोक्ता पाठिका वरति-

क्तिका ॥ पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा वात श्लेष्म

हरी लघुः ॥ हन्ति शूल ज्वर छर्द्दि कुष्ठा तीसार

हृद्रुजः ॥ २९३ ॥ दाह कण्ड विष श्वास कृमि-

गुल्म गर व्रणान् ॥ [अथ श्वेतपनिलर।]
 श्वेता त्रिवृता भण्डी स्यात् त्रिवृता त्रिपुटापि च ॥
 सर्वानुभूतिः सरला निशोत्रारेचनी तिच ॥ २६४ ॥
 श्वेता त्वष्ट्रेचिनी स्यात् स्वादुरुषा समीर हृत् ॥
 रूक्षा पित्तज्वर श्लेष्म पित्त शोथोदर यहा ॥ २६५ ॥

भा० अनन्तर पाठा ॥ पाठा अम्बुष्ठा अम्बुष्ठी प्राचीना पापचेलि-
 का ॥ एकहीला रसा पाटिक वरनिकिका ॥ २६३ ॥ यह पाठा के ना
 म हैं ॥ पाठा उष्ण कड़वी तीक्ष्ण वात कफ को नाश करनेवाली हलकी
 होती है ॥ और शूलज्वर वमन कुष्ठ अतीसार हृदय की पीड़ा ॥ २६३
 दाह खुजली विष स्वास ठमि वायगेला व्रण इनको नाश करती है
 ॥ [अनन्तर सुफेद निसोत ॥ श्वेता त्रिवृता भण्डी त्रिपुटा सर्वानु
 भूति सरला निशोत्रारेचनी - यह सुफेद निसोत के नाम हैं ॥ २६४ ॥
 सुफेद निसोत दस्तावर होती है । मधुर उष्ण वात की नाशक ॥ रूक्ष
 पित्तज्वर श्लेष्मपित्त शोथ उदर इनकी नाशक है ॥ २६५ ॥

अथ श्यामपनिलर।] त्रिवृत श्यामार्द्ध चन्द्रा च पा
 लिन्दी च सुषेणिका ॥ मसूर विदला कोल कैषि
 का कालमेयिका ॥ २६६ ॥ श्यामा त्रिवृत ततो ही
 न गुणा तीव्र विरेचनी ॥ मूर्च्छादाह मद भ्रान्ति
 करोत् कर्षण कारिणी ॥ २६७ ॥

भा० अनन्तर काला निसोत ॥ त्रिवृत श्यामा अर्द्धचन्द्रा पालिन्दी सु
 षेणिका, मसूर विदला, कोल कैषिका कालमेयिका यह कालीनि
 सोत के नाम हैं ॥ २६६ ॥ कालीनिसोत उस्से हीन गुणावाली और
 अधिक दस्तावर होती है ॥ तथा मूर्च्छा दाह मद भ्रान्ति कंठका उ
 त्कर्षण करनेवाली होती है ॥ २६७ ॥

अथ लघुदन्ती ।] लघुदन्ती विशाल्या च स्यादुदुम्बर
 परार्थेऽपि ॥ तथैराड फला शीघ्रा श्येन घराटा धु
 रा प्रिया ॥ २८८ ॥ वाराहाङ्गी च कथिता निकुम्भ-
 श्च मङ्गलकः ॥ [अथ बृहत्तदन्ती ।] एराड प
 च विद्या ।] द्रवन्ती सा वरी चित्रा प्रत्यक् परार्थास्तु
 परार्थेऽपि ॥ चित्रा चित्रान्यग्रोधं प्रत्यक् च्छे
 राया खुर्करायपि ॥ इतता द्वयं सरम्पाके रसे च
 कटु दीपनम् ॥ गुदाङ्गु राशम शूला शं कराङ्गु कु-
 ष्ट विदाहनुत् ॥ ३०० ॥ तीक्ष्णोष्णं हन्ति पित्ता
 स्रक् कफ शोथोदर कृमीन् ॥

भा० अनन्तर छोटी दन्ती ।] लघुदन्ति, विशाल्या, उदुम्बर परार्थी, ॥ एरा-
 ड फला, शीघ्रा श्येन घंटा गुणप्रिया वाराहाङ्गी ॥ २८८ ॥ निकुम्भ मङ्ग-
 लक येह छोटी दन्ती के नाम हैं जिसका फल जमालगोटा है ॥ अनन्तर
 बड़ी दन्ती इसके पने एराडी के पत्तों के समान होते हैं ॥ द्रवन्ती, वरी,
 चित्रा प्रत्यक् परार्थी आस्तु परार्थी ॥ चित्रा चित्रान्यग्रोधि प्रत्यक् च्छे
 राया खुर्कराय येह दन्तिके नाम हैं ॥ २८९ ॥ दोनों दन्ति दस्तावर पाक और
 रसमें कडवी दीपन ॥ बवासीर पथरी शूल बवासीर रवाज कुष्ठ विदाह
 बूगकी नाशक है ॥ ३०० ॥ तीक्ष्ण और उष्ण है तथा रक्तपित्त कफ शोथ
 उदर रोग कृमि इनकी नाशक है ॥

अथ लघुदन्ती फलम् ।] क्षुद्र दन्ती फलन्तु स्यान्
 मधुरं रस पाकयोः ॥ शीतलं सृष्ट विन्मूत्रं गर
 शोथ कफापहय ॥ ३०१ ॥ जय पालो दन्ति बीजं
 विर्यं तन्तन्तिलो फलम् ॥ जय पालो गुरुः

स्निग्धो रेचि पित्त कफापहः ॥ ३०२ ॥

इन्द्रारुण बड़ी इन्द्रकला ।] ऐन्द्रीन्द्र वारुणी चित्रा
गवाक्षी च गवादिनी ॥ वारुणी च पराप्युक्ता सा
विशाला महाफला ॥ ३०३ ॥ श्वेतपुष्पा मृगाक्षी
च मृगैर्वीरु मृगादनी ॥ गवादिनी द्युतिं तिलं पा-
के कटु सरं लघु ॥ ३०४ ॥ वीर्य्याषां कामला पि-
त्त कफलीहो दरापहम् ॥ श्वास कासा पहङ्कुष्ठ
गुल्म ग्रन्थि व्रण प्रणुत ॥ ३०५ ॥ प्रमेह मूढ गर्भा
म गरुडामय विषापहम् ॥

भा० अनन्तर छोटे जमाल गोटे का फल रस और पाकमें मधुर होता है
॥ और शीतल होता है । तथा मिले हुए मल मूत्र को निकालने वाला विष
के शोथ को कफ को इनको नाश करता है ॥ ३०१ ॥ जयपाल, दर्शनवीन, ति-
न्तिली फल येह जमाल गोटे के नाम हैं ॥ जमाल गोटा भारी चिकना रेचन
पित्त कफ का नाशक है ॥ ३०२ ॥ [अनन्तर इन्द्रायन ।]

ऐन्द्री इन्द्रवारुणी चित्रा गवाक्षि गवादिनी ॥ वारुणी येह इन्द्रायन
के नाम हैं ॥ दूसरी इन्द्रायण के नाम] विशाला महाफला ॥ ३०३ ॥
श्वेतपुष्पा मृगाक्षि मृगैर्वीरु मृगादनी येह बड़ी इन्द्रायन के नाम हैं ॥
दोनों इन्द्रायन तिल पाकमें कड़े वे दस्तावर हलके ॥ ३०४ ॥ वीर्य में उत्प-
न्न हैं तथा कामला पित्त कफ पिलही उदररोग इनके नाशक हैं ॥ और श्वा-
स कास के नाशक तथा कुष्ठ वायुगोला गांठ वृण इनके भी नाशक हैं
॥ और प्रमेह मूढ गर्भ श्राव गरुडरोग गरुडमाला विष इनकी नाशक हैं ।

अथ नील ।] नीलीतु नीलिनी तूली काल दोला च
नीलिका ॥ रज्जनी श्रीफली तुच्छ ग्रामीणा मधु
परिणिका ॥ स्लीतका काल केशी च नील पुष्पा च

सा स्मृता ॥ नीलिनी रेचिनी तिक्ता केश्या मोह भ्र
मापहा ॥ ३०७ ॥ उष्णा हन्त्युदर स्त्रीह वातरक्त क-
फानिलान् ॥ आमवात मुदावर्तं मन्दं च विष मु-
द्धृतम् ॥ ३०८ ॥

भा० अनन्तर नील ॥ नीली निलनी नूली कालदोला नीलिका ॥ रंज-
नी श्रीफली तुच्छ ग्रामिणा मधुपर्शिका ॥ ३०६ ॥ स्त्रीतका कालकेशी
नीलपुष्पा । यह नीलके नाम है ॥ नील रेचन तिक्त केश के हित मोह
भ्रमको नाशक है ॥ ३०७ ॥ उष्ण तथा उदर रोग पिल्ली वातरक्त कफ वा-
त आमवात उदावर्त मन्दाग्नि इनको नाश करती है । विष निकाली हुई
॥ ३०८ ॥

अथ सरफोका । शरपुष्पाः स्त्रीह शत्रु नीली वृक्षा
कृति श्वसः ॥ शर पुष्पे यकृत स्त्रीह गुल्म व्रण वि-
घापहाः ॥ ३०६ ॥ तिक्तः कषायः कासाश्च श्वासः
ज्वरहरो लघुः ॥

भा० अनन्तर सरफोका ॥ शर पुं स्त्रीह शत्रु यह सरफोका के नाम है
येह नीलके वृक्ष के आकार होती है ॥ सरफोका तिक्ती पिल्ली वायगोला
व्रण विष इनकी नाशक है ॥ ३०६ ॥ और तिक्त कसेला काररक्त श्वास ज्व-
र इनकी नाशक और हलका है ॥ [अथ जवासादुराला ।

यासोप वासीदुःस्पर्शो धन्वयासः कुनाशकः ॥
दुरालभा दुरालम्भा समुद्रान्ता च रोदिनी ॥ ३१० ॥
गान्धारी कच्छुरा नन्ता कषाया हरविग्रहा ॥ या
सः स्वादुः सरस्तिक्तः स्तुवरः पीतलो लघुः ॥ ३११ ॥
कफ मेदो मदम्रान्ति पित्तासृक्कुष्ठकास जित् ॥
तृष्णा विसर्प वातास्र वमिज्वर हरः स्मृतः ॥ ३१२ ॥

यवासस्य गुणैस्तुल्या बुधैरुक्ता दुरालभा ॥

भा० अनन्तर जवासा ॥ यास उपवास दुस्पशै धन्वमास दुरालभा दुरालं
भा० समुद्रान्ता रोदनी ॥ ३१० ॥ गान्धारी कच्छुरा नन्ता कषाय हर विग्रह
॥ यह जवासे के नाम हैं ॥ जवासा मधुर दस्तावर तिक्त कसैला शीतल हल
काहै ॥ ३११ ॥ और कफ मेद मद भ्रान्ति रक्तपित्त कुष्ठ कास इनको जीमने
वाला है ॥ और तृषा विसर्प वातरक्त वमन ज्वर इनका नाशक कहा गया
है ॥ ३१२ ॥ पंडितों ने जवासे के गुण के समान दुरालभा के गुण कहे हैं ॥

अथ मुराडी ।] मुराडी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च त-
पोधना ॥ श्रवणा ह्य मुराडतिका तथा श्रवणा शी-
र्षका ॥ ३१३ ॥ महाश्रावणिका न्यातु सा स्मृता
भूकदम्बिका ॥ कदम्बपुष्पिका च स्यादव्यथा
तितपस्विनी ॥ ३१४ ॥ मुराडतिका कटुः पाके वी-
र्योष्णा मधुरा लघुः ॥ मेध्या गण्डापची कृच्छ्र
कृमियोन्यर्त्ति पाराडनुत् ॥ ३१५ ॥ श्लीपदा रुच्यप-
स्मार स्त्रीह मेदो गुदार्त्तिहृत् ॥ महामुराडी च तनु-
ल्या गुरो रुक्ता महर्षिभिः ॥ ३१६ ॥

भा० अनन्तर मुन्डी । मुराडी भिक्षु श्रावणी तपोधना । श्रवणा ह्य मुंड
तिका । श्रवणा शीर्षका यह मुराडी के नाम हैं ॥ बड़ी मुराडी महाश्रावणि
का भूकदम्बिका । कदम्बपुष्पिका अव्यथा अतितपस्विनी ॥ ३१४ ॥
मुन्डी पाक में कड़वी वीर्य में उष्ण मधुर हलकी होती है ॥ कान्ती को
ईनेवाली गण्डमाला अपची सूत्रकृच्छ्र कृमि योनि पीडा पाराडुरोग
इनको नाश करनेवाली ॥ ३१५ ॥ और श्लीपदा अरुचि मिरगी पित्त
ही मेद गुदा की पीडा इनको नाश करनेवाली है ॥ बड़ी मुराडी गुणों में
उत्ती के समान महर्षियों ने कही है ॥ ३१६ ॥

अथ चिरचिरि ।] अपामार्गस्तु शिखरी हृद्यः

शल्यो मयूरकः ॥ मर्कटी दुर्ग्रहाचापिकि णही
 खरमञ्जरी ॥ ३१७ ॥ अपामार्गः सरस्तीदणः दीपनः
 स्तिक्तकः कटुः ॥ पाचनो रेषनं छर्दि कफमेदो
 अनिलायहः ॥ ३१८ ॥ निहन्ति हृद्गुजाध्माशीः क
 ण्डू शूलोदरापची ॥ [अथ रक्तचिरचिरा।
 रक्तान्योव शिरोवृत्त फलोधामार्गवोऽपि च ॥ प्र
 त्यक्पर्णी केशपर्णी कथिता कपिपिप्पली ॥ ३१९ ॥
 अपामार्गोऽरुणो वातविष्टम्भी कफकृत् हिमः ॥
 रूक्षः पूर्वगुणैर्न्यूनः कथिनो गुणवेदिभिः ॥ ३२० ॥
 अपामार्ग फलं स्वादु रसेपाके च दुर्ज्वरम् ॥ वि
 ष्टम्भि वातलेरूक्षं रक्तपित्त प्रसादनम् ॥ ३२१ ॥

भा० अनन्तर चिचेंडा ॥ अपामार्ग शीखरी अधशल्य मयूरक ॥ मर्क
 टी दुर्ग्रहा किणही खरमंजरी येह चिचेंडे के नाम हैं ॥ ३१७ ॥ चिचेंडा दस्ता
 वर नीक्षण उषा दीपन तिक्त कटु ॥ पाचन रेषन कफमेद वमन वात इन
 को नाशक है ॥ ३१८ ॥ हृदय की पीड़ा भाषमान बवासीर खुजली मूल उदर रोग
 अपची बुत्को नाश करता है ॥ [अनन्तर रक्त चिचेंडा। दूसरा लाल।
 वशिर वृत्तफल अपामार्गव ॥ प्रत्यक् पर्णी केशपर्णी कपिपिप्पली येह
 लालचिचेंरे के नाम हैं ॥ ३१९ ॥ लालचिचेंरे अरुण वातको विष्टम्भ करने
 वाला कफको करनेवाला शीतल ॥ रूक्ष और पहलेके गुणों से हीन गुणोंके
 जाननेवालोंने ऐसा कहा है ॥ ३२० ॥ चिचेंरेका फल रसमें मधुर
 और पक्वमें भी मधुर विरुद्ध ॥ विष्टम्भ को करने वाला वा
 त को करनेवाला रूखा रक्तपित्त को अच्छा करनेवाला होता है ॥ ३२१ ॥

अथ तालमखाना ।] कोकिलाक्षस्तु काकेक्षुरिक्षु-
 रः क्षुरकः क्षुरः ॥ भिक्षुः कारण्डेक्षुरप्युक्तः इक्षु

गन्धेक्षु वालिका ॥ ३२२ ॥ क्षुरकः शीतलो वृष्यः
स्वादुस्त पित्तलस्तथा ॥ तिक्तो वातामशोऽथाश्रम
तृष्णादृष्ट्य निलास्रजित ॥ ३२३ ॥

अथ हृदसङ्गारि ।] ग्रन्थिमानस्थि संहारी वज्राङ्गी वा
स्थि शृङ्खला ॥ अस्थि संहारकः प्रोक्तो वातश्लेष्म
हरोऽस्थियुक ॥ ३२४ ॥ उष्णः सरः कृमिघ्नश्च दुर्ग-
मघ्नोऽक्षिरोगजित ॥ रुक्ताः स्वादुर्लघुर्दृष्यः पाचनः
पित्तलः स्मृतः ॥ ३२५ ॥ काराडत्वग्विरहितमस्थि
शृङ्खलाया माषाद्रिद्विदलमकं चुकं तदद्वैम् ॥
सम्पिष्टं तदनु तत स्तिलस्य तैले सम्पक्वं वटक
मतीव वातहारि ॥ ३२६ ॥

भा० अनन्तर तालमखाना ।] कोकिलाक्ष, काकेशः, क्षुर, क्षुरक, क्षुर
॥ इक्षु कांडेक्षु इक्षुगन्धा इक्षुवालिका यह तालमखाने के नाम हैं ॥
तालमखाना शीतल शुक्रको उत्पन्न करने वाला मधुर अम्ल पित्तको उत्पन्न
करने वाला तिक्त आम वात पथरी शोथ तथा दृष्टिरोग वातरक्त इनको जीत
ने वाला है ॥ ३२३ ॥ [अनन्तर हर सिंगार । ग्रन्थिमान अस्थिसंहार वज्रां-
गी अस्थिश्रंखला । अस्थिसंहारक, यह हर सिंगार के नाम हैं ॥ हर सिंगार
वात कफ का नाशक और हड्डियों को जोड़ने वाला उष्ण दस्तावर कृमिका
नाशक बवासीर का नाशक नेत्ररोग को जीतने वाला रुक्ता मधुर हलका
शुक्रको उत्पन्न करने वाला पाचन पित्तको करने वाला कहा गया है । ३२४
तालमखाना त्वचासे रहित हार सिंगार का भी गीला उड़द चुक
उत्से आधा ॥ इनको पीसके उसके पश्चात् उसको निलके तेलमें पकाया वड़
अति वातका नाशक है ॥ ३२६ ॥

अथ घातकुश्रारि ।] कुमारी गृहकन्या च कन्या

घृतकुमारिका ॥ कुमारी भेदिनी शीता तित्ता ने
 व्या रसायनी ॥ ३२७ ॥ मधुरा वृंहणी बल्या वृष्या
 वात विष प्रणुत ॥ गुल्म स्नीह यक्ष्म वृद्धि कफ
 ज्वर हरी हरेत् ॥ ३२८ ॥ ग्रन्थ्याग्नि दग्ध विस्फोट
 पित्तरक्त त्वगामयान् ॥

भा० अनन्तर घीकुमार ॥ कुमारी ग्रहकन्या कन्या घृतकुमारी । येह
 घीकुमार के नाम है ॥ घीकुमार भेदन शीत तित्ता नेत्र का हित रसायन ॥ ३२७ ॥
 मधुर पुष्ट बल को बढ़ानेवाला शुक्र को उत्पन्न करनेवाला वात विष का ना
 शक । गुल्म वायुगोला पित्तही निली श्रृंखल वृद्धि कफ ज्वर इनका नाशक
 है ॥ ३२८ ॥ और ग्रन्थि अग्निदग्ध विस्फोट पित्तरक्त त्वचर्किरोग इनको
 नाश करता है ॥ [अथ श्वेत पुनर्नवा ।]

पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घपत्रिका ॥ कटुः
 कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनीसरा ॥ ३२९ ॥ शो
 फानिलगर श्लेष्महरी व्रणयोदर प्रणुत ॥

अथ रक्तपुष्पा पुनर्नवा । पुनर्नवा परा रक्ता रक्तपुष्पा
 शिलाटिका ॥ शोथघ्नः क्षुद्रवर्षाभूद्यपकेतुः कपि
 ल्लकः ॥ ३३० ॥ पुनर्नवारुणा तित्ता कटुपाका हि
 मालघुः ॥ वानला ग्राहिणी श्लेष्म पित्तरक्त विनाशि
 नी ॥ ३३१ ॥

भा० अनन्तर सफेद गदहपूरन ॥ पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घ
 पत्रिका । येह सफेद गदहपूरन के नाम है ॥ सफेद पुनर्नवा कसैला
 पाण्डु रोग का नाशक दीपन है और वात विष कफ इनकी नाशक है
 तथा व्रण उदर रोग का भी नाशक है ॥ [अनन्तर गदापूरन । पुन
 र्नवा दूसरी रक्तपुष्पा शिलाटिका । येह लाल पुनर्नवा के नाम है ॥

शोथघ्नः क्षुद्रः वर्षाभूः रुषकेतूः कपिल्लकः येह पुनर्नवा के नाम हैं ॥ ३३० ॥
पुनर्नवा लाल तिक्त याक में कटु शीतल हलका ॥ वात को उत्पन्न करने वा-
ला अग्नि कफ विना रक्त का नाशक है ॥ ३३१ ॥

अथ गन्ध प्रसारणी ।] प्रसारणी राजबला भद्र परी
प्रतापनी ॥ सरणी सारणी भद्रा बला चापि कटुम्भ
रा ॥ ३३२ ॥ प्रसारिणी गुरु दृष्या बल सन्धान कृत्स्
रा ॥ वीर्योष्णा वातहत तिक्ता वातरक्त कफापहा
॥ ३३३ ॥

भा० अनन्तर गन्ध प्रसारणी ।] प्रसारणी राजबला भद्र परी प्रतापनी ॥
सरणी सारणी भद्रा बला कटुम्भ । यह गन्ध प्रसारणी के नाम हैं ॥ ३३२ ॥
गन्ध प्रसारणी भारी शुक्र को उत्पन्न करने वाली बल को देने वाली हृडिगों
को जोड़ने वाली दस्तावर ॥ वीर्य में उष्ण वात की नाशक तिक्त वातरक्त
कफ इनको नाश करने वाली है ॥ ३३३ ॥

अथ करि आवांसा ।] इन्द्रजम्बूक वत्पत्रा सुगन्धा
कलघण्टिका ॥ कृष्णातु शारिवा प्रयामा गो-
पी गोप वधूश्च सा ॥ ३३४ ॥ [गोरिआ सांउ ।]
इयमपि जम्बूवत्पत्रा दुग्धगर्भा व्रततिर्भवति ।
धवला शारिवा गोपी गोपकन्या कृशोदरी ॥ स्फो-
टा प्रयामा गोपवल्ली लता स्फोटा च चन्दना ॥ ३३५ ॥

भा० अनन्तर काला शारिवा । बड़े जामन के पत्तों के समान पत्ते होते हैं ॥
और सुगन्ध भी होता है । कलघण्टिका, सुगन्धा, इन्द्रजम्बूकवत्, पत्रा ॥ कृ-
ष्णा, शारिवा, प्रयामा, गोपी, गोपवधूः येह काले शारिवा के नाम हैं ॥ उस्की
पूर्व में सांऊ कहते हैं ॥ ३३४ ॥ अनन्तर श्वेत शारिवा । इस्की भी जामन
के पत्ते होते हैं ॥ भीतर दूध होता है । और लता वाला होता है । धवला,
शारिवा, गोपी, गोपकन्या, कृशोदरी, स्फोटा, प्रयामा, गोपवल्ली, लता -

आस्फेता चन्दना ॥ ३३५ ॥

(क) गोपी । गोपस्य स्त्री । संयोगादीप् । गोपा । गोपा
तीति गोपा गोपकन्या । प्रयामा पदेन कृपणा
श्वेतापि सारिवा कथ्यते । साश्वतेन सारिवा पद-
स्य प्रयुक्तत्वात् ।

तद्यथा] सारिवायां निशि श्यामा श्यामौच हरिता सि-
ताविनि ॥ सारिवा युगलं स्वादु स्निग्धं शुक्र करं गु-

रु ॥ अग्निमान्धा रुचिश्वास कासामविष नाश-

नम् ॥ ३३६ ॥ दोषत्रयास्त प्रदरज्वरातीसार नाशनम्

भा० यह स्वतः सारिवा के नाम हैं । (क) (गोपी) गोपकी स्त्री । संयोग
से ईप् प्रत्यय है । (गोपा) गायकी जोरक्षण करता है वोह गोप है ॥
(गोपकन्या) प्रयामा पदसे काली और सुप्रेद सारिवा कही है ॥ वोह स्वे-
त सारिवा पदके प्रयोग होनेसे । वोह जैसे-

सारिवा में निशि, श्यामा, श्यामौ, हरिता, सिता । इस प्रकार कहा है ॥

दोनों सारिवा मधुर, विकने शुक्र को उम्रकलेचाले भाए हैं ॥ और अग्नि-
मान्ध अरुचि श्वास कास आम विष इनके नाशक हैं ॥ ३३६ ॥

नपा विदोष रक्त प्रदरज्वरातिसार इनको नाश करने है ॥

अथ भृङ्गरा । भृङ्गराजो भृङ्गनो भार्कवो भृङ्ग-

एव च ॥ अङ्गरकः केशराजो भृङ्गारः केशरञ्जनः

॥ ३३७ ॥ भृङ्गारः कटुकस्तीक्ष्णो रूक्षोष्णः कफ-

वातनुत् ॥ केशयस्त्वच्यः कृमिश्वास कास शोया

मपा रङ्गनुत् ॥ ३३८ ॥ दन्त्यो रसायनो चल्थः

कुष्ठनेत्र शिगेर्तिनुत् ॥

भा० चननर भृङ्गरा ॥ भृङ्गराज, भृङ्गरज, भार्कव, भृङ्ग, अङ्गारक, केशराज,

भृंगार के शरंजन. येह भृंगर के नाम हैं ॥ भृंगर कड़वा तीखा रूखा मरम क
फ वान का नाशक है ॥ और केश के हिन त्वच को अच्छा करने वाला और
हृमि श्वास कास शोथ पांडुरोग का नाशक है ॥ ३३८ ॥ और दांतों को अच्छा
करने वाला रसायन बल को देने वाला कुछ मेदरोग शिर की पीड़ा इनका ना
श करने वाला है ॥

[शणपुष्पा इति च झली । शण इव पुष्पा ।]

शणपुष्पी स्मृता घराटा शणपुष्प समाकृतिः ॥

शणपुष्पी कटुस्तिक्ता वामिनी कफ पित्तजित् ॥

॥ ३३९ ॥ [अथ त्रायमाना] बलभद्रा त्रायमा
ना त्रायन्ती गिरिसानुजा । त्रायन्ती तु वरा तिक्ता
सरा पित्तकफापहा ॥ ३४० ॥ ज्वर हृद्रोग गुल्मार्श
भ्रम शूल विष प्रणून ॥

भा० अनन्तर शणपुष्पा । इसको झली भी कहने हैं । इसके फूल सनके
फूल के सदृश होते हैं ॥ शणपुष्पी घंटा शणपुच्छ समाकृति । यह झली
के नाम है । झली कड़वी तिक्त वमन को करने वाली कफ पित्त को जीत
ने वाली है ॥ ३३९ ॥ [अनन्तर त्रायमाणा । बलभद्रा . त्रायमाणा ,
त्रायन्ति, गिरिसानुजा ॥ येह त्राय माणा के नाम हैं ॥ त्रायमाणा कसैली तिक्त
दस्तावर पित्तकफ की नाशक है ॥ ३४० ॥ और ज्वर हृद्रोग वायगोला
चवासीर भ्रम शूल विष इनकी नाशक है ॥

[अथ चूर्णहार]

मूर्वी मधुरसा देवी मोरटा नेजनी सुवा ॥ मधूलि

का मधुश्रेणी मोर्कारी पीलु परार्यपि ॥ ३४१ ॥ मू

र्वी सरा गुरुः स्वादुस्तिक्ता पिनास मेहनुत ॥ नि

दोष तृणा हृद्रोग कण्डू कुछ ज्वर पहा ॥ ३४२ ॥

भा० अनन्तर मोरड़फली । मूर्वी मधुरसा देवी मोरटा नेजनी सुवा ॥

मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्णी येह मरोड़फली के नाम हैं ॥
३४१ ॥ मरोड़फली मलवात को नीचे करनेवाली भारी मधुर तिक्त रक्त पित्त
प्रमेह इनको नाशक है ॥ और त्रिदोष तथा हृदयेग खजली कुछ ज्वर इन
की भी नाशक है ॥ ३४२ ॥

[अथ कवैश्रा ।]

काकमाची ध्वाङ्गमाची काकाह्वा नैव वायसी ॥
काकमाची त्रिदोषघ्नी स्निग्धोष्णा स्वर शुक्रदा ॥
३४३ ॥ तिक्ता रसायनी शोथ कुष्ठार्शो ज्वर मेहं जि
न ॥ कटु नेत्र हिता हिक्का च्छर्दि हृदयेग नाशिनी
॥ ३४४ ॥ [कौश्राढोदी ।] काकनासा तु काका
ङ्गी काकतुण्ड फला च सा ॥ काकनासा कषायो
ष्णा कटुकारस्य पाकयोः ॥ ३४५ ॥ कफघ्नी वाम
नी तिक्ता शोथार्शः शिवत्र कुष्ठ हन्त ॥

भा० अथनन्तर किमांच । काकमाची ध्वाङ्गमाची काकाह्वा वायसी । येह
किमांच के नाम हैं ॥ किमांच त्रिदोषनाशक चिकनी उष्ण स्वर शुक्रको
करनेवाली ॥ ३४३ ॥ तिक्त रसायन शोथ कुछ बवासीर ज्वर प्रमेह इनको दू
र करनेवाली है ॥ कड़वी नेत्र के हित कुचकी वमन हृदयेग इनको नाशकर
नेवाली है ॥ ३४४ ॥ अथनन्तर कौश्राढोदी ।] काकनासा काकाङ्गी काकतु
ण्ड फला । येह कौवा ढोदी के नाम हैं ॥ कौवाढोदी कसैली गरम उष्ण पाक में
कड़वी होती है ॥ ३४५ ॥ और कफकी नाशक वमनकर निचानी तिक्त सूजन
बवासीर शिवत्र कुष्ठ इनका नाशक है ॥ [अथ काकजंघा नसीति

लोके ।] काकजङ्घा नदाकान्ता काकतिक्ता सुलोमशा
॥ पारवनपदी दासी काकाचापि प्रकीर्तिता ॥ ३४६ ॥
काकजङ्घा हिमा तिक्ता कषाया कफ पित्त जित् ॥

निहन्ति ज्वर पितास्र ज्वरकण्ड विषकृमीन् ४३
 अथ नागपुष्पी] नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागिनी र
 मवृत्तिका ॥ नागिनी रोचनी तिक्ता तीक्ष्णोष्ण कफ
 पित्तनुत् ॥ ३४८ ॥ विनिहन्ति विषं शूलं योनिदो-
 षवमिहृमीन् ॥

भा० अनन्तर काकजंघा इस्को लोकमें मसी ऐसा कहते हैं ॥ काकजंघा न
 दीकांता काकतिक्ता सुलोमश ॥ परावतपदी दासी काका । यह मसी
 के नाम हैं ॥ ३४६ ॥ काकजंघा शीतल तिक्त कसैली कफ पित्त की नाश
 करे ॥ और ज्वर पित्त रक्त हृमि कण्ड विष इनको नाश करती है ॥ ४३
 ॥ अनन्तर नागपुष्पी । नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागिनी रमवृत्तिका यह ना
 गिनी के नाम हैं ॥ नागिनी रुचिको करनेवाली तिक्त तीक्ष्ण उष्ण कफ पित्त
 की नाश करे ॥ ३४८ ॥ और विष शूल योनिदोष वमन हृमि इनको दूर
 करती है ॥

[अथ मेढासिङ्गी]

मेघशृङ्गी विषाणी स्यान्मेघवल्ल्यज शृङ्गिका ॥

मेघशृङ्गी रसे तिक्ता वातला श्वासकास हृत् ॥ ३४९ ॥

रूक्षा पाके कटु स्तिक्त व्रणश्लेष्मादिशूलनुत् ॥

मेघशृङ्गी फलं तिक्तं कुष्ठमेह कफ प्रणुत् ॥ ३५० ॥

दीपनं स्वसनं कास हृत्तमिब्रण विषापहम् ॥

भा० अनन्तर मेढासींगी ॥ मेघशृङ्गी विषाणी मेघवल्ल्यज शृङ्गिका ।
 यह मेढासींगी के नाम हैं ॥ मेढासींगी रसमें तिक्त वातको उत्पन्न करनेवा
 ली । श्वास कास की नाश करे ॥ ३४९ ॥ और रूखी पाकमें कटु तिक्त व्र
 ण कफ नेत्र शूल इनको नाश करनेवाली है ॥ मेढासींगी का फल तिक्त
 कुष्ठ प्रमेह कफ इनका नाश करे ॥ ३५० ॥ दीपन दस्तावर कास हृमि व्र
 ण विष इनका नाश करे ॥

[अथ हंसपदी ।]

हंसपादी हंसपदी कीटमाता त्रिपादिका ॥ हंस-

पादी गुरुः शीता हन्ति रक्त विष ब्रणान् ॥ ३५१ ॥

विसर्प दाहातीसार लूता भूताग्निरोहिणी ॥

अथ सोमलता ।] सोमवल्ली सोमलता सोमक्षीरी द्वि-
जप्रिया ॥ सोमवल्ली विदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसा-
यनी ॥ ३५२ ॥

[अथ आकाशवल्ली ।] (अमरवेलि इति च ।)

आकाशवल्ली तु बुधैः कथिता मरवल्लरी ॥ ख-
वल्ली ग्राहिणी तिक्ता पिच्छिला क्षामया पहा ॥

तुवराग्निकरी हृद्या पित्तश्लेष्मामनाशिनी ॥ ३५३ ॥

भा० अन्नन्तर हंसपदी । हंसपादी । हंसपदी । कौटमाता । त्रिपादका । येह हंसपदी
के नाम हैं ॥ हंसपदी । भारी । शीत । रक्त । विष । ब्रण । को नाश करती है ॥ ३५१ ॥
और विसर्प । दाह । अतीसार । लूता । भूत । अग्नि । रोहिणी । इनकी भी नाशक
रती है ॥ अन्नन्तर सोमलता । सोमवल्ली । सोमलता । सोमक्षीरी । द्विज-
प्रिया । येह सोमलता के नाम हैं । सोमलता । विदोषनाशक । कटुवी । तिक्त ।
रसायनी है ॥ ३५२ ॥ [अन्नन्तर अमरवेल । आकाशवल्ली को पंडित अमर-
वल्ली कहते हैं । आकाशवल्ली । काबिज तिक्त । चेषदार । रजयत्सा रोगकी नाश-
क ॥ कसैली अग्निको करनेवाली । हृद्य पित्तकफ आम इनकी नाशक है ॥
३५३ ॥ अथ पाताल गरुड़ी ।] छिलिहिरण्यो महामूलः

पाताल गरुडाह्वयः ॥ छिलिहिरण्यः परं वृष्यः क-
फघ्नः पवनापहः ॥ ३५४ ॥ [अथ वन्दा ।]

वन्दा वृक्षादनी वृक्ष मद्या वृक्ष रुहापि च ॥

वन्दाकः स्याद्विमस्तिक्तः कषायो मधुरो रसे ॥ ३५५ ॥

माङ्गल्यः कफवानास्त्र रक्षो ब्रण विषापहः ॥

भा० अनन्तर पातालगरुडी ।] छिलिहिरासः महामूलः पातालगरुडः नाम वाली ॥ येह पाताल गरुडी के नाम हैं ॥ पाताल गरुडी, अत्यन्त शुक्रको उत्पन्न करनेवाली कफनाशक और वातनाशक है ॥ ३५४ ॥

अनन्तर वन्दा] वृक्षादनी, वन्दा, वृक्षभक्षा, वृक्षरुहा, येह वन्दाक के नाम हैं ॥ वन्दाक शीतल तिक कसेला रसमें मधुर है ॥ ३५५ ॥ और मंगलकारक कफ वात रक्त रजसं जरा विष इनका नाशक है ॥

अथ वटपत्री ।] वटपत्री तु कथिता मोहिनी रेचनी
बुधैः ॥ वटपत्री कषायोष्णा योनिमूल गदायहा ॥
३५६ ॥ अथ हिङ्गुपत्री तु कवरी पृथ्वीका पृथुका
पृथुः ॥ हिङ्गुपत्री भवेद्रुच्या तीक्ष्णोष्णा पाचनी
कटुः ॥ ३५७ ॥ हृहस्ति रुग्विवन्धारीः श्लेष्मः पु
ल्मा निलापहा ॥

भा० अनन्तर वटपत्री ।] वटपत्री, मोहिनी, रेचनी, येह वटपत्री के नाम पंडितों ने कहे हैं ॥ वटपत्री कसेली गरम है । और योनिरोग मूत्ररोग इनकी नाशक है ॥ ३५६ ॥ अनन्तर हिङ्गुपत्री, हिङ्गुपत्री, कवरी, पृथ्वीका, पृथुका, पृथु ॥ येह हिङ्गुपत्री के नाम हैं । हिङ्गुपत्री रुचिको करनेवाली तीखी उष्ण पाचन कड़वी है ॥ ३५७ ॥ और हृदय पेड़की पीड़ा विबन्ध बवासीर कफ बायनो का वात इनकी नाशक है ॥

अथ वंशपत्री ।] वंशपत्री, वेणुपत्री, पिङ्गु, हिङ्गु, शिवाटिका ॥ हिङ्गुपत्री गुणा विज्ञे वंशपत्री च कीर्तिता ॥ ३५८ ॥ [अथ मत्स्याक्षी ।]

मच्छेष्टी इतिलोके । छच्छ मच्छरि आइति च ।
मत्स्याक्षी बाह्विका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनीति च ।
च ॥ मत्स्याक्षी ग्राहिणी शीता कुष्ठ पित्त कफा

सजित् ॥ ३५६ ॥ लघुस्तिक्ता कषाया च स्वाद्वी क-
टु विपाकिनी ॥

भा० अनन्तर वंशपत्री ॥ वंशपत्री वेणुपत्री पिण्डा हिंगुशिवाटिका । यह वंशपत्री के नाम हैं ॥ वंशपत्री हिंगुपत्री के समान गुण में कही है ॥ अनन्तर मत्स्याक्षी इसको मच्छेछी और मछरिया ऐसा कहते हैं ॥ मत्स्याक्षी बाल्हिका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनी । यह मत्स्याक्षी के नाम हैं ॥ मत्स्याक्षी का विज्ञ । शीतल है । और पित्त कुष्ठ कफ रक्त इनको जीतने वाली है ॥ ३५६ ॥ और हल-
की निकल कसेली मधुर पाक में कटु होती है ॥

अथ सरहटी गरिडनीति च । सर्पाक्षी स्यात्तु गरडा-
ली तथा नाडी कपालकः ॥ सर्पाक्षी कटुका तिक्ता सो

ष्णा कृमि विहन्तनी ॥ ३६० ॥ दृश्विकीन्दु रसर्पाणां
विषघ्नी व्रणरोपिणी ॥ [अथ शङ्खपुष्पी ।]

शङ्खपुष्पी तु शङ्खाह्वा माङ्गल्यं कुसुमापि च ॥ श-
ङ्खपुष्पी सर मेध्या वृष्या मानस रोगहृत् ॥ ३६१ ॥

रसायनी कषायोष्णा स्मृति कान्ति बलाग्नि

दा ॥ दोषापस्मार भूतादि कुष्ठ कृमि विष प्रणुत् ॥ ३६२ ॥

भा० अनन्तर सरहटी गंडनी ऐसा भी कहते हैं ॥ सर्पाक्षी गरडाली तथा ना-
डी कपालक यह सर्पाक्षी के नाम हैं ॥ सर्पाक्षी कटु तीक्ष्ण गरम होती
है और कृमिकी नाशक है ॥ ३६० ॥ और बिच्छू चुहा सांप इनके विष
की नाशक और घावको भरने वाली है ॥

अनन्तर शंखपुष्पी । शंखपुष्पी शंखाह्वा माङ्गल्यं कुसुमा यह शंखपुष्पी
के नाम हैं ॥ शंखपुष्पी मल वात को अनुलोम करने वाली कान्तीको बढ़ाने
वाली सुक्रको उत्पन्न करने वाली मानस रोग की नाशक ॥ ३६१ ॥ और
रसायन कसेली गरम स्मृति कान्ति वल आग्नि को देने वाली और मिरगी भू-
त कुष्ठ कृमि विष इनकी नाशक है ॥ ३६२ ॥

अथ अर्कपुष्पी ।] अर्कपुष्पी क्रूर कर्मा पयस्या
जलकामुका ॥ अर्कपुष्पी कृमि श्लेष्म मेह पि-
त विकार जित ॥ ३६३ ॥ [अथ लज्जालुः ।
लज्जालुः स्यात् शमीपत्री समङ्गा जल कारिका ॥
रक्तपादी नमस्करी नाम्ना खदिर केत्यपि ॥ ३६४ ॥
लज्जालुः शीतला तिक्ता कषाया कफपित्तजित् ॥

भा० अनन्तर अर्कपुष्पी ॥ अर्कपुष्पी क्रूर कर्मा पयस्या जलकामुका
॥ यह अर्कपुष्पी के नाम हैं ॥ अर्कपुष्पी कृमि कफ प्रमेह पित्तरोग इनकी
नाशक है ॥ ३६३ ॥ [अनन्तर लज्जालुः । लज्जालू शमीपत्री समङ्गा जल-
कारिका रक्तपादी नमस्करी खदिरका । यह लज्जालू के नाम हैं ॥ ३६४ ॥
लज्जालू शीतल तिक्त कसेली होती है । और कफ पित्त को जीतने वाली तथा
रक्त पित्त अतीसार योनिरोग इनको नाश करती है ॥ ३६५ ॥

रक्तपित्त मतीसारं योनि रोगान् विनाशयेत् ॥ ३६५ ॥

लज्जालू भेदः ।] अलम्बुषा ।] अलम्बुषा स्वरत्नक
च तथा मेदोगला स्मृता ॥ अलम्बुषा लघुः स्वादुः
कृमि पित्त कफापहा ॥ ३६६ ॥ अथ दूधी ।]

दुग्धिका स्वादुपर्णी स्यात् क्षीरा विक्षीरणी तथा ॥
दुग्धिकोष्णा गुरू रुक्षा वातला गर्भकारिणी ॥ ३६७ ॥
स्वादु क्षीरा कदुस्तिक्ता सृष्टमूत्र मलापहाः ॥ स्वा
दुर्विष्टम्भिनी दृष्या कफ कुष्ठ कृमि प्रणुत् ॥ ३६८ ॥

भा० अनन्तर लज्जालू का भेद ॥] अलम्बुषा । अलम्बुषा स्वरत्नक
मेदोगला यह होवेर के नाम हैं ॥ हाऊवेर हलका मधुर, कृमि, पित्त,
रक्त का नाशक है ॥ ३६६ ॥ अनन्तर दूधी । दुग्धिका स्वादुपर्णी क्षीरा,

क्षीरणी, येह दुद्धीके नामहैं ॥ दुद्धी गरम भारी रूखी वानकी करनेवाली
 और गरमकी करनेवाली ॥ ३६७ ॥ और मधुर दुग्धवाली कड़वी तिक्त मूत्र
 की करनेवाली मूलनाशक मधुर विष्टम्भकी करनेवाली शुक्र की उत्पन्न
 करनेवाली और कफ कुष्ठ हर्मी इनकी नाशक है ॥ ३६८ ॥

[अथ भुइआम्बरा]

भूम्यामलकिका प्रोक्ता शिवातामलकीति च ॥

बहुपत्रा बहुफला बहुवीर्या जटापि च ॥ ३६९ ॥

भूधात्री वातकृततिक्ता कषाया मधुरा हिमा ॥

पिपासा कास पित्तास्र कफ कण्डू क्षनापहा ॥ ३७० ॥

अथ वरंभी । [ब्राह्मी कपोतवङ्का च सोमवल्ली सर-

स्वती ॥ [ब्रह्ममाण्डूकी । मण्डक परी माण्डू

की त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी ॥ ३७१ ॥ ब्राह्मी हिमा

सरतिक्ता लघुर्मेघ्या च शीतला ॥ कषाया मधु

रा स्वादु पाका युष्मारसायनी ॥ ३७२ ॥ स्वर््या स्मृ

तिप्रदा कुष्ठ पाण्डु मेहास्र कासजित् ॥ विषशोथ

ज्वरहरी तद्वन्मण्डूक परिणी ॥ ३७३ ॥

भा० अन्तर भुइआम्बरा ॥ भूम्यामलिक शिवातामलकी ॥ बहु पत्रा-
 बहुफला बहुवीर्या जटा । येह भुई आम्बरे के नामहैं ॥ ३६९ ॥ भुई
 आम्बरा वानकी करनेवाला तिक्त कसैला मधुर शीतल है ॥ और व्यास
 कास रक्त पित्त कफ खुजली क्षत इनका नाशक ॥ ३७० ॥

अन्तर ब्रह्मी ॥ ब्राह्मी कपोतवङ्का, सोमवल्ली सरस्वती ॥ मण्डक परी
 माण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी ॥ येह ब्राह्मी और मण्डक परी के
 नामहैं ॥ ३७१ ॥ ब्राह्मी शीतल सर तिक्त हलकी बुद्धी को बढ़ानेवाली है ।
 शीतल कसैली मधुर पाकमें मधुर अर्शुको देनेवाली रसायनी है ॥ ३७२ ॥

और स्वरको अच्छा करनेवाली स्मृतिको देनेवाली तथा कुछ पाण्डुरोग प्र
मेह रक्त कास इनको जीतनेवाला है ॥ और विष शीथज्वर इनकी ना
पाक है मगडूक पर्णिभी जहाँके समान गुण में है ॥ ३७३ ॥

[अथ गूमा ।] द्रोणा च द्रोणपुष्पी च फलेषुष्या
च कीर्तिता ॥ द्रोणपुष्पी गुरुः स्वादु रूक्षोष्णा वा
तपित्तकृत् ॥ ३७४ ॥ स तीक्ष्णालवणा स्वादु पाका
कट्वी च भेदिनी ॥ कफामकामला शोथ तमक
श्वासजन्तुजित् ॥ ३७५ ॥

भा० अनन्तर गूमा ।] द्रोणा द्रोणपुष्पी फलेषुष्या यह गोमाके नाम कहे
गये हैं ॥ गोमा भारी मधुर रूखी गरम वात पित्तको करनेवाली है ॥ ३७४ ॥
तीक्ष्णी नमकीन पाकमें मधुर और कटुभी तथा भेदन है ॥ और कफ आम
कामला शोथ तमक श्वास कृमि इनको जीतनेवाली है ॥ ३७५ ॥

[अथ हरहर । द्वितीय हरहर ।]

सुवर्चला सूर्यभक्ता वरदा वदरापि च ॥ सूर्य्या
वर्ता रविप्रीताः पराब्रह्म सुवर्चला ॥ ३७६ ॥ सु-
वर्चला हिमा रूक्षा स्वादु पाका सरा गुरुः ॥ अ-
पित्तला कटुः क्षारा विष्टम्भकफवातजित् ॥ ३७७ ॥
अन्या तिक्ता कषायोष्णा सरा रूक्षा लघुः कटुः ॥
निहन्ति कफ पित्तास्र श्वास कासारुचि ज्वरान् ॥
३७८ ॥ विस्फोटकुष्ठमेहास्र योनिरुक्कृमि पाण्डुताः ॥

भा० अनन्तर हरहर और दूसरा हरहर ॥ सुवर्चला सूर्यभक्ता वरदा वद-
रा ॥ सूर्यवर्ता रविप्रीता और दूसरी ब्रह्म सुवर्चला यह दूसरे हरहरके नाम

हैं ॥ ३९६ ॥ हरहर शीतल कस्तूरी पाकमें मधुर सर भागी ॥ पित्तको न करनेवाली कड़वी क्षार है । और विषम कफ वानको जीतनेवाली है ॥ ३९७ ॥ और दूसरी तिक्त कसेली गरम सर सूखी हलकी कड़वी ॥ और कफ रक्त पित्त प्रवासे कास भ्रूविज्वर इनकी नाश करती है ॥ ३९८ ॥ तथा विस्फीट कुष्ठ प्रमेह रक्त योनि पीडा कृमि पाण्डुता इनकी भी नाश करती है ॥

अथ चाभूरव सा ।] बन्ध्या कर्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरीति च ॥ नागारि नक्रदमनी विषकरट किनी तथा ॥ ३९९ ॥ बन्ध्या कर्कोटकी लघ्वी कफनुद् ब्रणशोधिनी ॥ सर्पदर्य हरी तीक्ष्ण विसर्प विषहारिणी ॥ ४०० ॥

भा० अथ चांखखकसा ॥ बन्ध्या कर्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरी ॥ नागारी, नक्रदमनी, विषकटकिनी येह चांखखकसा के नाम हैं ॥ ३९९ ॥ चांखखकसा हलका कफ नाशक ब्रणशोधन सर्पकैदर्यको दूर करनेवाला तीखा विसर्प विष नाशक है ॥ ४०० ॥

[अथ भूइखखसा ।

बल्ली भूमिप्रसरणशीला ।] मार्कण्डिका भूमि बल्ली मार्कण्डी मृदुरेचनी ॥ मार्कण्डिका कुष्ठ हरी कर्माधः कायशोधिनी ॥ ४०१ ॥ विषदुर्गन्धकासघ्नी गुल्मोदर विनाशिनी ॥

भा० अनन्तर भूइखकसा ॥ येह क्ता भूमिपर फैलनेवाली होती है ॥ मार्कण्डिका भूमिवल्ली मार्कण्डी मृदुरेचनी येह भी खखकसा के नाम हैं ॥ खकसा कुष्ठनाशक कफ और नीचेसे शरीर को शोधन करनेवाली है ॥ ४०१ ॥ और विषदुर्गन्ध कास इनकी नाशक और वायुगोला उदररोग इनकी भी नाशक है ॥

अथ देवदाली सोनैआ । खखसा वत फलव्रतनिः ।] देवदाली तु वैराग्यात् कर्कटी च

[अथ वरवेलं ।] वेलन्तरो जगति वीरतरुः प्रसिद्धः
 श्वेता सितारुणविलोहितनीलपुष्पः ॥ स्याज्जा
 तितुल्यकुसुमः शमिसूक्ष्मपत्रः ॥ स्यात्कण्ट
 कीविजलदेशज एष वृक्षः ॥ ३६२ ॥

वेलन्तरो रसेपाके तिक्तः तृषणाकफापहः ॥ मू
 त्राघाताशमजित् प्राहीयोनिमूत्वानिलार्तिजित् ६३

भा० अनन्तर वरवेल । वेलन्तर जगतमें वीरतरु नाम प्रसिद्ध है ॥ वोह
 सुफेद काला अरुण लाल नीला ऐसे फूलवाला होता है ॥ अपनी जाति
 के सदृश फूल होने हैं ॥ और शमी वृक्ष के समान सूक्ष्म पत्र होने हैं । तथा
 कांटों के सहित निर्जल देश में यह होता है ॥ ३६२ ॥ वरवेल रस और पक्व
 में तिक्त होता है और तृषा कफ का नाशक । मूत्राघात पथरी इनको जीतने
 वाला क्वाबिज तथा योनि रोग मूत्रवात की पीड़ा इनको जीतने वाला है ॥ ६३

[छिकनी ।] छिकनी क्षवक्षतीक्ष्णा छिकिका घ्रा
 णदुःखदा ॥ छिकनी कटुकारुच्या तीक्ष्णोष्णा
 वन्निपित्तकृत् ॥ ३६४ ॥ वातरक्तहरी कुष्ठ हृमि
 वात कफापहः ॥ [अथ कुकुन्दर ।]

कुकुन्दर स्ताम्वचूडः सूक्ष्मपत्रो मृदुच्छदः ॥ कुकु
 न्दरः कटुस्तिक्तो ज्वररक्त कफापहः ॥ ३६५ ॥

तन्मूलमाद्रे निःक्षिप्तं वदने मुखशोषहत् ॥

भा० अनन्तर नकछिकनी ॥ छिकनी क्षवक्षतीक्ष्णा छिकिका घ्रा
 णदुःखदा येह नकछिकनी के नाम हैं ॥ नकछिकनी कड़वी रुचिकी
 करने वाली तीखी और गरम अग्नि पित्त को करने वाली है ॥ ३६४ ॥ और
 वात रक्त की नाशक तथा कौष्ठ हृमि वात कफ की नाशक है ॥

अनन्तरकुकरोन्दा । कुकुन्दर, नात्रचूड, सूक्ष्मपत्र, मृदुच्छद, येह ककरो
 दाकेनामहैं ॥ ककरोन्दा कड़वा तिक्त ज्वर रक्त कफ का नाशक है ॥ ३८५ ॥
 उसकी गीलीजड़ खंहेमें डालेसे मुखशोषकी नाशकरती है ॥

अथ सुदर्शनः । सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधु
 परिणिका ॥ सुदर्शना स्वादुरुषणा कफ शोफास्रवा
 तजित् ॥ ३८६ ॥ [अथ मूसाकर्णी] आखुकरणी
 त्वाखुकरणी परिणिका भूदरी भवा ॥ आखुकरणी
 कटुस्तिक्ता कषाया शीतला लघुः ॥ ३८७ ॥ विषा-
 के कटुका मूत्र कफामय रुमिप्रणुत् ॥

भा० अनन्तरसुदर्शन । सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधुपरिणिका ॥ येह
 सुदर्शनके नामहैं ॥ सुदर्शन मधुर उष्ण कफ शोथ रक्तवानको जीननेवा
 लीहै ॥ ३८६ ॥ [अनन्तरमूसाकर्णी] आखुकरणी आखुकरणी परिणिका,
 भूदरी भवा येह मूसाकर्णीके नामहैं ॥ मूसाकर्णी कड़वी तिक्त कसैली शी
 तल, हलकीहोती है ॥ ३८७ ॥ औरपाकमें कड़वी तथा मूत्र कफ रोग
 रुमि इनकी नाशक है ॥

[अथ मयूरशिखा ।

मयूरह्वशिखा प्रोक्ता सहस्वाहिर्मधुच्छूदा ॥
 नीलकण्ठशिखा लघ्वा पित्तश्लेष्मातिसारजित् ॥
 इति भावप्रकाशे गुड्युद्यादिवर्गः ।

[अथ दुष्यवर्गः ।]

[तत्रादौ कमलस्य नामानि गुणाश्च ।] वा पुंसि
 पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलम् ॥ १ ॥ सहस्र
 पत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम् ॥ २ ॥ पङ्केरुह

गरागरी ॥ देवताराडी वृत्तकोशस्तथा जीमूतवृक्षपि
 ॥ ३८२ ॥ पीता परा खरस्यर्णा विषघ्नी गरनाशिनी ॥
 देवदालीरसे तित्ता कफार्शः शोफपाण्डुताः ॥ ३८३ ॥
 ॥ नाशयेत् वामनी तित्ता क्षयहिक्का कृमिज्वरान् ॥
 देवदाली फलं तित्ता कृमि श्लेष्म विनाशनम् ॥ ३८४ ॥
 खंसनं गुल्म शूलं घ्नमर्शो घ्नं वातजित्परम् ॥

भा० अतन्तर देवदाली । जिसको सोनया भी कहते हैं ॥ यह खाकसके स-
 भान फल और लतावाली है ॥ देवदाली वेणी कर्कटी गरागरी ॥ देवता-
 राडी वृत्तकोश तथा जीमूत यह सोनया के नाम हैं ॥ ३८२ ॥ और दूसरी
 पीली खरस्यर्णा विषघ्नी गरनाशिनी ॥ यह पीली सोनैया के नाम हैं ॥
 सोनैया रसमें तित्ता कफ ववासीर पाण्डुरोग इनको नाश करती है ॥ ३८३ ॥
 और कैलाने वाली तित्ता है तथा क्षय हिक्का कृमिज्वर इनको नाशक
 रती है ॥ सोनैया का फल तित्ता कृमिकफका नाशक है ॥ ३८४ ॥ और द-
 ल्तावर चायगोला शूल इनका नाशक ववासीर का नाशक वात पित्त
 को जीतनेवाला है ॥

[अथ जलपिप्पली पनिसगा इति लोकः]

जलपिप्पल्य भिहिता शारदी शकलादनी ॥ मत्स्या
 दनी मत्स्यगन्धा लाङ्गलीत्यपि कीर्तिना ॥ ३८५ ॥
 जलपिप्पलीका हृद्या चक्षुष्या शुक्रला लघुः ॥
 संग्राहिणी हिमा रूक्षा रक्तदाह ब्रणापहा ॥ ३८६ ॥
 कटुपाक रसा रुच्या कषाया बन्धि वर्द्धनी ॥

भा० अतन्तर जलपिप्पली इसके पनीसगा ऐसा लोकमें कहते हैं ॥ जल-
 पिप्पली शारदी शकलादनी ॥ मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गना यह जलपि-
 पली के नाम हैं ॥ ३८५ ॥ जलपिप्पली हृद्य नेत्रके हिम शुक्रकी उत्पन्न करने
 वाली हृद्यकी काविज्ञ शीतल गरुर्वी रक्तदाह ब्रणाकी नाशक ॥ ३८६ ॥

और पाक रसमें कड़ु रुचिको करनेवाली कसैली अग्निको बढ़ानेवाली है ॥

अथ गोभी ।] गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका
खरपरिणी ॥ गोजिह्वा वातला शीता ग्राहिणी क-
फपित्तनुत् ॥ ३८७ ॥ हृद्या प्रमेह कासास्र ब्रणज्व-
रहरीलघुः ॥ कीमला तुवरा तिका स्वादुपाक रसा
स्मृता ॥ ३८८ ॥

भा० अनन्तर गावतुवां ॥ गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका खरपरिणी ।
येह गावतुवां के नाम हैं ॥ गावतुवां वातको करनेवाली शीतल का विज-
कफ पित्तकी नाशक है ॥ ३८७ ॥ और हृद्य प्रमेह कास रक्त ब्रणज्वर इन
की नाशक है ॥ और हलकी होती है तथा कीमल कसैली तिका पाक औ-
र रसमें मधुर कहो गई है ॥ ३८८ ॥ [अथ नागदमनी ।]

विज्ञेया नागदमनी बलामोटा विषा पहा ॥ नाग-
पुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरीति च ॥ ३८९ ॥ ब-
ला मोटा कटुस्तिक्ता लघुः पित्तकफा पहा ॥ मूत्र
कृच्छ्र ब्रणान् रक्षो नाशये ज्वाल गर्दभम् ॥ ३९० ॥
सर्वग्रह प्रशमनी निःशेष विषनाशिनी ॥ जयं-
सर्वत्र कुरुते धनदा सुमतिप्रदा ॥ ३९१ ॥

भा० अनन्तर नागदमन । नागदीन । नागदमनी बला मोटा विषापहा
॥ नागपुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरी ॥ ३८९ ॥ नागदमन कड़वी तीखी हल-
की पित्तकफकी नाशक है और मूत्रकृच्छ्र घाव रक्तस इनको नाश करती
है । और जाल गर्दभ नाम फुनसीको नाश करती है ॥ ३९० ॥ और संपूर्ण
ग्रहों को नाश करती है ॥ तथा अशेष विषकी नाशक है ॥ और सर्वत्र जय
को करती है तथा धनको देनेवाली है । तथा अच्छी मति को देनेवाली है ॥ ३९१ ॥

न्तामरसं सारसी सरसीरुहम् ॥ विश प्रसून राजी-
व पुष्कराम्भोरुहाणि च ॥ २ ॥ कमलं शीतलं
वरायं मधुरं कफपित्तजित् ॥ तृष्णा दाहास्त्र वि-
स्फोट विषवीसर्पनाशनम् ॥ ३ ॥ विशेषतः सि-
तं पद्मं पुण्डरीकमिति स्मृतम् ॥ रक्तं कोकनदं शे-
यं नीलमिन्दीवरं स्मृतम् ॥ ४ ॥ धवलं कमलं शी-
तं मधुरं कफपित्तजित् ॥ तस्मादल्पगुणं किञ्चि-
दन्यद् रक्तोत्पलादिकम् ॥ ५ ॥

भा० अनन्तर मोरशिखा ॥ मयूराह शिखा सहस्रा आहि मधुच्छदा
नीलकंठ शिखा ॥ येह मोर शिखा के नाम हैं । मोरशिखा हल्की पित्त
अतीसार को जीतने वाली है ॥ ३६८ ॥

इति भावप्रकाशे गुडुच्यादि वर्ग समाप्त ॥ ॥

अनन्तर पुष्पवर्ग ॥ [उसमें पहले कमल के नाम और गुण कहते हैं ।]

पद्म नलिन अरविन्द महोत्पल ॥ सहस्रपत्र कमल शतपत्र कुशेशय ॥

॥ १ ॥ पंकेरुह नामरस सारस सरसीरुह ॥ विषप्रसून राजीव पुष्कर
अम्भोरुह ॥ २ ॥ येह कमल के नाम हैं । कमल शीत तृष्णा को अच्छीरु
खेवाला मधुर कफ पित्त को जीतनेवाला ॥ और तृष्णा दाह रक्त विस्फो
ट विष विसर्प इनका नाशक है ॥ ३ ॥ विशेषकर के सेत पद्म को पुण्डरी-
क, ऐसा कहा है ॥ लाल को कोकनद जानना चाहिये और नीले को इन्दी-
वर ऐसा कहा है ॥ ४ ॥ सेत कमल शीतल मधुर कफ को जीतनेवाला है
उसे कुछ अल्पगुणवाले दूसरे लाल कमलादिक हैं ॥ ५ ॥

अथ पद्मिनी ।] मूलनाल दलोत् फल्लः फलैः

समुदिता पुनः ॥ पद्मिनी प्रीच्यते प्राप्तिर्विसिन्या

दि च सा स्मृता ॥ ६ ॥

(क) आदिशब्दावलिनी कमलिनीत्यादि ।

पद्मिनी शीतला गुर्वी मधुरा लवणा च सा ॥ पित्ता
सृक्षफनुद्रक्षा वातविष्टम्भकारिणी ॥ ७ ॥

भा० अनन्तर पद्मिनी ॥ मूलनाल पत्रपुष्प फल इनकरके युक्तको पद्मिनी प्रोक्त कहने हैं ॥ और मूल बिसनी आदि कही गई है ॥ ६ ॥

(क) आदि शब्द से नलिनी कमलिनी इत्यादिक । पद्मिनी शीतल भरी मधुर लवणरसोंकरके युक्त होती है । और वोह रक्त पित्त कफ इनको नाश करनेवाली तथा वातको विष्टम्भ करनेवाली है ॥ ७ ॥

अथ नव पत्रादि ।] सम्बर्त्तिका नवदलं बीजको
शस्तु कर्णिका ॥ किञ्जलकः केसरः प्रोक्तो म-
करन्दो रसः स्मृतः ॥ ८ ॥ पद्मनालं मृणालं स्या
तथा विश मिति स्मृतम् ॥ सम्बर्त्तिका हिमाति-
क्ता कषाया दाह तृट् प्रणुत् ॥ ९ ॥ मूत्र छच्छ गु-
दव्याधि रक्तपित्त विनाशिनी ॥ पद्मस्य कर्णिका
तिक्ता कषाया धधुरा हिमा ॥ १० ॥ मुख वैशद्य
क्षुब्धौ तृणास्र कफ पित्तनुत् ॥ किञ्जलकः
शीतलो दृष्यः कषाया ग्राहकोऽपि सः ॥ ११ ॥
कफपित्त तृप्तादाह रक्ताशो विषशोथ जित् ॥
मृणालं शीतलं दृष्यं पित्तदाहास्र जिदुरु ॥ १२ ॥
दुर्जरं स्वादु पाकञ्च सन्यानि ल कफ प्रदम् ॥
संग्राहि मधुरं रूक्षं शाल्वक मपि तदुणम् ॥ १३ ॥

भा० अनन्तर नौ पत्रादि ।] कवल के नये पत्तोंको सम्बर्त्तिका कहने हैं ।

और बीजको कोश तथा कारणका कहने हैं ॥ और तिरीयों को किंजल्क केसर कहते हैं ॥ तथा रसको मकरन्द ऐसा कहते हैं ॥ ८ ॥ और उसके नालकी मृणाल मृणाल पद्मनाल विष ऐसा कहने हैं ॥ नवीन पत शीतल कसेल दाह तथा केनाशक हैं ॥ ९ ॥ और मूत्र छच्छ गुदासंग रक्तपित्त इनकी नाशक है ॥ और उसके बीजतिक्त कसेले शीतल होते हैं ॥ १० ॥ और मुखकी स्वच्छ करने वाले हलंक तथा तृपारक्त कफ पित्त इनकी नाशक है ॥ तिरीयां शीतल शुक्रकी उत्पन्न करने वाली कसेली काविज होती हैं ॥ ११ ॥ कफ पित्त तथा दाह रक्त की बवासीर विष सूजन इनकी जीतने वाला ॥ कमलकी नाल शीतल शुक्रकी उत्पन्न करने वाली और पित्त दाह रक्त इनकी जीतने वाली भारी है ॥ १२ ॥ दुर्जर पाकमें मधुर दुग्ध वात कफ इनकी उत्पन्न करने वाली है ॥ तथा काविज मधुर रूखी होती है और शाल्वक अर्थात् उसकी जड़ भी उसीके समान गुणमें है ॥ १३ ॥

[अथ स्थल कमल] पद्मचारिण्यति चराव्यथा पद्मा च शारदा ॥ पद्मानुषा कटु स्तिक्ता कषाया कफ वात जित् ॥ १४ ॥ मूत्र छच्छाशम मूलघ्नी श्वासका स विषापहा ॥

२ अथ कुमुदिनी कीर्द इति लोके ।

श्वेतं कुवलयं प्रोक्तं कुमुदं कैरवं तथा ॥ कुमुदं पिच्छिलं स्निग्धं मधुरं हृद्य शीतलम् ॥ १५ ॥

१ अथ कुमुद । कुसुद्वती कैरविका तथा कुमुदिनीति च ॥ सा तु मूलादि सर्वाङ्गैः रुक्ता समुदिता बुधैः ॥

॥ १६ ॥ पद्मिन्या ये गुणाः प्रोक्ता कुमुदिन्याश्च ते स्मृताः ॥

भा० अनन्तर स्थल कमल ॥ पद्मचारिणी । अतिचराव्यथा । पद्मा शारदा । यह स्थल कमल के नाम हैं । थल कमल शीतल कटुवा तिक्त कसेल कफ वात की जीतने वाला है ॥ १४ ॥ और मूत्र छच्छ पथरी मूल इनका

नाशक तथा श्वास कास विष इनका भीनाशक ॥

अनन्तर कुमुद कहते हैं ॥ स्वेत कमल को कुमुद तथा केरव कहते हैं ॥

स्वेत कमल चिकना चेपदार मधुर हृद्य शीतल होता है ॥ १५ ॥

अनन्तर कुमुदिनी ॥ कुमुदवती कैरविका कुमुदिनी येह कुमुदिनी के नाम हैं

॥ वोह मूल आदि सब अंगों से खिली हुई होती है ॥ ऐसा पड़ितों ने कहा है

॥ १६ ॥ जापघ्निनी के गुण कहे गये हैं वोही कुमुदनी के भी कहे हैं ॥

अथ जलकुम्भी सेवार ।] वारिपरिणी कुम्भिका स्या

च्छैवालं शैवलञ्च तत् ॥ वारिपरिणी हिमा तिका

लघी स्वाद्वी सरा कटुः ॥ १७ ॥ दोषत्रय हरी रुद्धा

शोणित ज्वर शोष कृत ॥ शैवालं तुवरं तिक्तं मधु-

रं शीतलं लघु ॥ १८ ॥ स्निग्धं दाह तृपा पित्त र

क्त ज्वर हरं परम् ॥

भा० अनन्तर जलकुम्भी और सिवार ॥ वारिपरिणी कुम्भिका । येह जलकुम्भी के नाम हैं ॥ शैवाल शैवलु येह सैवार के नाम हैं । जलकुम्भी शीतल ति

क्त हलकी मधुर सर कटु होता है ॥ १७ ॥ और त्रिदोष को नाश करने वाली रुद्धी रक्त ज्वर शोष इनको करने वाली है ॥ और सिवार कसेला तिक्त मधु

र हलका चिकना और दाह तृपा पित्त रक्त ज्वर इनको दूर करने वाला है ॥

अथ सेवती । गुलाव इति च । शतपत्री तरुण्यु

क्ता करिणिका चारु केशरा ॥ महाकुमारी गन्धाढ्या

लाक्षा कृष्णाति मुञ्जला ॥ १९ ॥ शतपत्री हिमा

हृद्या ग्राहिणी शुक्ला लघुः ॥ दोषत्रयास्तजि

द्वार्या तिक्ता कट्वी च पाचनी ॥ २० ॥

भा० अनन्तर सेवती ।] शतपत्री तरुण्यु करिणिका चारु केशरा ॥ महा

महाकुमारी, गन्धाह्वा, लाक्षा कृष्णा अतिमञ्जुला । येह सेवती के नाम हैं ॥ २९ ॥ सेवती शीतल हृदयको प्रिय कादिज्ञ शुक्रको उत्पन्न करने वाली । हलकी । और त्रिदोष रक्त इनको जीतने वाली और वरुणको अच्छा करने वाली तिक्त कड़वी पाचन है ॥ ३० ॥

अथ वसन्ती । नेवारि इति लोके ।] नेपाली कथिता तज्ज्ञैः सप्तला नवमालिका ॥ वासन्ती शीतलालघी तिक्ता दोषत्रयास्र जित् ॥ ३१ ॥

[अथवा वार्षिकी । वेल इति लोके । श्रोपदी षट्पदा नन्दा वार्षिकी मुक्तवन्धना ॥ वार्षिकी शीतलालघी तिक्ता दोषत्रयापहा ॥ ३२ ॥ कर्णाक्षिमुखरोगस्यातत्तैलं तद्गुणं स्मृतम् ॥

भा० अनन्तर निवारी । नेपाली . सप्तला . नवमालिका . येह निवारी के नाम हैं । निवारी शीतल हलकी तिक्त त्रिदोषको जीतने वाली है ॥ ३१ ॥

अनन्तर वार्षिकी वेल . अर्थात् वर्षाणी वेल ॥ श्रोपदी षट्पदा नन्दा वार्षिकी मुक्तवन्धना । येह वर्षाणी वेल के नाम हैं । वर्षाणी शीतल तिक्त हलकी त्रिदोषकी नाशक है ॥ ३२ ॥ और कान आंख मुख इनके रोगोंकी नाशक है उसका तैल उसीके समान गुणमें कहा गया है ॥

अथ चम्बेली । स्वर्णजाती ।] जातिर्जाती च सुमना मालती रजपुत्रिका ॥ चैतिका हृद्यगन्धा च सा पीता स्वर्णजातिका ॥ ३३ ॥ जातीयुगं तिक्तमुष्णं तुवरं लघुदोषजित् ॥ क्षिरोक्षि मुखदन्तार्तिविषकुष्ठा निलास्रजित् ॥ ३४ ॥

भा० अनन्तर चम्बेली ।] पीली चम्बेली] जाति जाती सुमना मालती रज

पुत्रिका-येह चमेलीके नाम हैं ॥ और चेनिका हृद्यगन्धा खणीजातिका ;
 येह पीली चमेलीके नाम हैं ॥ २३ ॥ दोनों चमेली तित्त उष्ण कसैली हल-
 की दोषको जीतने वाली है ॥ और सिस्नेत्र मुख दांत इनकी पीड़ा और
 विषकुष्ठ वात रक्त इनको जीतने वाली है ॥ २४ ॥

अथ जुही सुवर्णी जुही ।] यूथिका गरिकास्वष्टा
 सापीता हेमपुष्पिका ॥ यूथी युगं हिमं तित्तं क-
 दुपाकरसंलघु ॥ २५ ॥ मधुरं तुवरं हृद्यं पित्तघ्नं कफ-
 वातलघु ॥ ज्रणास्र मुखदन्तादि शिरोरोग विषा-
 पहम् ॥ २६ ॥ अथ चम्पा ।] चाम्पेयश्चम्पकः प्रोक्तो
 हेमपुष्पश्च सस्मृतः ॥ सतस्थकलिका गन्धफली-
 तिकायिता युधैः ॥ २७ ॥ चम्पकः कटुकस्तिक्तः क-
 वायो मधुरो हिमः ॥ विषहृमि हर हृच्छ्र कफ वा-
 तास्रपित्तजित् ॥ २८ ॥

भा० अनन्तर जुही । और पीली जुही ।] यूथिका गरिका अस्वष्टा ।

येह जुहीके नाम हैं ॥ और हेमपुष्पिका-येह पीली जुहीके नाम हैं ॥
 दोनों जुही शीतल तित्त पाकमें कड़वी हलकी होती है ॥ २५ ॥ और मधु-
 र कसैली हृद्य पित्तनाशक । कफ वातको काने वाली है ॥ और घावरक्त
 मुखदन्तनेत्र शिर इनके रोग तथा विष द्रव्यको नाशक है ॥ २६
 अनन्तर चम्पा ।] चाम्पेय चम्पक हेमपुष्प येह चम्पेके नाम कहें ॥
 इसकी फलीको गन्धफली ऐसा पंडितों ने कहा है ॥ २७ ॥ चम्पा कटुवा,
 तिक्तवा, कफ वातनाशक ॥ २८ ॥

पाकरसो गुरुः ॥ २९ ॥ कफपित्तविषशिवद्वकृमि
दन्तगदापहः ॥ [अथ वकुलवृहद्वोलसरीति च]
शिवमल्ली पाशुपत एकाष्टीलोबुको वसुः ॥ बुको
ऽनुषाः कटुस्तिक्तः कफपित्तविषापहः ॥ ३० ॥
यौनिमूल तृषादाहकुष्ठशोथास्रनाशनः ॥

भा० अनन्तर मौलसरी ॥ वकुल मधुगन्ध सिंह केसरक येह मौलसि
री के नाम हैं ॥ मौलसरी कसैली शीतल पाकरसमें कटु हलकी भारी है
कफ पित्त विष स्निग्ध कृमि दन्तरोग इनका नाशक है ॥
अनन्तर बड़ी मौलसरी ॥ शिवमल्ली पाशुपत एकाष्टील बुक वसु येह
बड़ी मौलसरी के नाम हैं ॥ मौलसिरी शीतल कड़वी तिक्त है और कफ
पित्त विषकी नाशक है ॥ ३० ॥ यौनिमूल तृषादाह कुष्ठ रक्तशोथ इन
का नाशक है ॥

अथ कदम्बः । कदम्बः प्रियकी नीपो वृत्तपुष्पो
हरिप्रियः ॥ कदम्बो मधुरः शीतो कषायो नव
रोगो गुरुः ॥ ३१ ॥ सरो विष्टम्भ कद्रूतः कफस्तन्या
निलप्रदः ॥ [अथ कूजा ।] कुञ्जको भद्र तरणि
वृहत्पुष्पोऽति केसरः ॥ सहा सहा कराटकाद्या नी
ला लिकुल सङ्कुला ॥ ३२ ॥ कुञ्जकः सुरभिः स्वा
दुः कषयायानुरसः सरः ॥ विदोय शमनो वृष्यः
शीत हर्ता च स स्मृतः ॥ ३३ ॥

भा० अनन्तर कदम्ब । कदम्ब, प्रियक, नीप, वृत्तपुष्प, हरिप्रिय येह
कदम्ब के नाम हैं ॥ कदम्ब मधुर शीतल कसैला नमकीन भारी ॥ ३१ ॥
सर विष्टम्भ करनेवाला रुखा है । और कफ दुग्ध वात इनको करने
वाला है ॥ [अथ कूजा ।] कुञ्जक भद्र तरणी वृहत्पुष्प अतिकेसर ।

महासहा, कण्ठकाय, नीलालिकुल संकुल, येह कूजाके नामहैं ॥ येह फल
सेवती की क्रिस्मसे होता है ॥ ३२ ॥ कूजा सुगन्धयुक्त मधुर पीछे से कसैला
सर ॥ त्रिदोष शमन शुक्रको उत्पन्न करनेवाला शीत कहा गया है ॥ ३३ ॥

अथ मल्लिका । मल्लिका मदयन्ती च शीतभीरुश्च

भूपदी ॥ मल्लिकोष्णा लघुर्वृष्या तित्ता च कटुका

हरेत् ॥ ३४ ॥ वातपित्तास्य दृग्व्याधिकुष्ठा रुचि

विषव्रणान् ॥ [अथ माधवी । माधवी स्यात्तु

वासन्ती पुण्ड्रको मण्डकोऽपि च ॥ अतिमुक्तो

विमुक्तश्च कामुको भ्रमरोत्सवः ॥ ३५ ॥ माधवी

मधुरा शीता लघ्वी दोषत्रयापहा ॥

भा० अनन्तर मालती ॥ मल्लिका मदयन्ति शीत भीरु भूपदी ॥ येह माल
तीके नामहैं ॥ मालती गरम हलकी शुक्रको उत्पन्न करनेवाली तित्त क
ड़वी होती है ॥ ३४ ॥ और वात पित्त मुख दृष्टि रोग कुष्ठ अरुचि विषव्रण
इनको नाश करती है ॥ [अनन्तर माधवी । माधवी वासन्ती पुण्ड्रक

मण्डक अतिमुक्त विमुक्त कामुक भ्रमरोत्सव ॥ ३५ ॥ येह मोतियाके नाम
हैं । मोतिया शीतल मधुर हलका दोषत्रय का नाशक होता है ॥

[केवरा सुवर्णकेतकी ।] केतकः सूचिका पुष्पो ज-

म्बुकः क्रकच छदः ॥ सुवर्णकेतकी त्वन्य लघु

पुष्पा सुगन्धिनी ॥ ३६ ॥ केतकः कटुकः स्वादु

र्लघुस्तिक्तः कफायहः ॥ उष्णा तित्तरसा दीया च-

क्षुष्या हेमकेतकी ॥ ३७ ॥

भा० अनन्तर केवड़ा । और सुनहरी केवड़ा । केतक सूचिका पुष्प जंबू
क छकच छद येह केवड़ेके नामहैं ॥ और दूसरा सुनहरी केवड़ा लो
हे फूलवाला सुगन्धयुक्त होता है ॥ ३६ ॥ केवड़ा मधुर हलका तित्त कफ

नाशक होता है ॥ और सुनहरी के वड़ा उष्ण रसमें तिक्त नेत्रों के हिन होता है ३५

[अथ किङ्किरात इति गौड़ादौ प्रसिद्धः।]

किङ्किरातो हेम गौरः पीतकः पीत भद्रकः ॥

किङ्किरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हेरदसौ ॥ ३८ ॥

कफ पित्त पिपासास्र दाह शोथ वमिष्कमीन ॥

[अथ करिणिकारः।] करिणिकारः परिव्याधः पाद

पोत्पल इत्यपि ॥ करिणिकारः कटु स्तिक्त स्तुवरः

शोधनो लघुः ॥ ३६ ॥ रज्जनः सुखदः शोथ स्ने-

ष्मास्र व्रण कुष्ठ जित् ॥

भा० अनन्तर किङ्किरात इस प्रकार प्रसिद्ध है ॥ किङ्किरात हेम गौर पीतक पीत भद्रक ये हे किङ्किरात के नाम हैं ॥ किङ्किरात शीतल तिक्त कसेला है ॥ ३८ ॥ और कफ पित्त तृषा रक्त दाह शोथ वमन कृमिघ्न इनको जीतता है ॥ अनन्तर करिणिकारः ॥ करिणिकार परिव्याध पाद पोत्पल ॥ ये हे करिणिकार के नाम हैं ॥ करिणिकार कड़वी तिक्त कसेली शोधन हल्की ॥ ३६ ॥ रज्जन सुख देने वाली शोथ कफ रक्त व्रण कुष्ठ इनको जीतने वाली है ॥

[अथ अशोक असोमि।]

अशोको हेम पुष्पश्च वञ्जुलस्तान्त्र पल्लवः ॥

कङ्क्रेलिः पिराड पुष्पश्च गन्ध पुष्पो नटस्तथा ॥ ४० ॥

अशोकः शीतल स्तिक्तो ग्राही वार्यः कषायकः

॥ दोषापची तृषा दाह कृमि शोथ विषास्र जित् ४१

भा० अनन्तर अशोक । अशोक हेम पुष्प वंजुल तान्त्र पल्लव अंकेली पिंड पुष्प गन्ध पुष्प नट ये हे अशोक के नाम हैं ॥ ४० ॥ अशोक शीतल तिक्त का विज्ञ वर्य को अच्छा करने वाला कसेला है ॥ दोष अपचि तृषा

दाहं हृमि शोथं विषं रक्तं इनकां जीतने वाला है ॥ ४१ ॥

[अथ वाराणपुष्प इति गोडादौ प्रसिद्धः।] अस्त्रा

तौः स्नादनः प्रोक्तस्तथा स्नानक इत्यपि ॥ कु

रगटको वर्णपुष्पः सरवोक्तो महासहः ॥ ४२ ॥

अस्नादनः कषायोष्णः स्निग्धः स्वादुश्च तिक्त-

कः ॥ [अथ कटशरीरा। सैरेयकः श्वेतपु-

ष्पः सैरेयः कटसारिका ॥ सहाचरः सहचरः।

सचमिन्दुपि कथ्यते ॥ ४३ ॥ कुरगटकोऽवपीते

स्याद्रक्ते कुरवकः स्मृतः ॥ नाले वाराणद्वयोरु-

क्तौ दासेऽप्रार्तगलश्च सः ॥ ४४ ॥ सैरेयः कुष्ठ

वातास्र कफकराडू विषापहः ॥ तिक्तीष्णो म

धुरोऽनम्लः सुस्निग्धः केशरञ्जनः ॥ ४५ ॥

भा० अनन्तरवाराणपुष्प ॥ अस्नात अस्नादन तथा अस्नातक कुरं-

टक वर्णपुष्प महासह यह वाराणपुष्प के नाम हैं ॥ ४२ ॥ वाराणपुष्प कसे-

ला गरम चिकना मधुर तिक्त होता है ॥ [अनन्तर कटशरीरा।]

सैरेय श्वेतपुष्प सैरेय कटसारिका ॥ सहाचर सहचर मित्र यह क-

टशरीरा के नाम हैं ॥ ४३ ॥ कटशरीरा पीली फूलवाली को कुरंटक कह-

ते हैं ॥ और लाल फूलवाली को कुरवक कहा है ॥ और नाले फूलवा-

ली को वाराण कहा है ॥ और दुर्गे फूलवाली को दास अप्रार्तगल कहा है ॥

४४ ॥ कटशरीरा कुष्ठ वातरक्त कफसुजली विष इनकी नाशक है ॥

और तिक्त गरम मधुर वै खट्टी चिकनी केशकी रंजन होती है ॥ ४५ ॥

अथ कुन्दः। कुन्दन्तु कथितं मान्द्यं सदापुष्प

ज्वतत स्मृतम् ॥ कुन्दं शीतं लघु श्लेष्म शिरो

रुग् विष पित्तहृत् ॥ ४६ ॥

अथ मुचकुन्दनाम्नैव प्रसिद्धः ॥ मुचुकुन्दः क्षत्र
वृक्ष श्वित्रकः प्रति विष्णुकः ॥ मुचुकुन्दः शिरः
पीडा पित्तास्र विष नाशनः ॥ ४७ ॥

अथ तिलाक्षपुष्प तिलकनाम्नैव प्रसिद्धः ॥ तिलकः
क्षुरकः श्रीमान् पुरुष छिन्न पुष्पकः ॥ तिलकः क-
टुकः पाके रसे चोषण रसायनः ॥ ४८ ॥ कफ कुष्ठ
कृमीन् वस्ति मुखदन्त गदान् हरेत् ॥

भा० अग्नन्तर कुन्द ॥ कुन्द नांस सदापुष्प येह कुन्द के नाम हैं ॥ कु-
न्द शीतल हलका कफ शिरकी पीडा विष पित्त इनका नाश करता है ॥ ४६ ॥
अग्नन्तर मुचुकुन्द ॥ मुचुकुन्द क्षत्रवृक्ष श्वित्रक प्रतिविष्णुक येह मुचुकु-
न्दके नाम हैं ॥ मुचुकुन्द शिरकी पीडा रक्तपित्त विष इनका नाशक है ॥
॥ ४७ ॥ अग्नन्तर तिलक इनका फूल तिलके फूल समान होता है और
इसी नामसे प्रसिद्ध है ॥ तिलक क्षुरक श्रीमान् पुरुष छिन्न पुष्पक ॥ येह
तिलक के नाम हैं ॥ तिलक पाक रसे में कुडवा उष्ण रसायन होता है ॥ ४८ ॥
और कफ कुष्ठ कृमि वस्ति मुखदन्त इनके रोगों को नाश करता है ॥

[अथ गेजुनिआ ।] बन्धूको बन्धू जीवश्च रक्तो माध्या

न्हिकोऽपि च ॥ बन्धूकः कफ हृत् ग्राही वातपित्त
हरो लघुः ॥ ४९ ॥ [अथ चौड़ुल ।] तथा साम्यी ।

ऊर्ध्व पुष्पञ्जपा चाथ त्रिसन्ध्या सारुणा सिता ॥

जपा संग्राहिणी केश्या त्रिसन्ध्या कफ वातजित् ॥ ५० ॥

भा० अग्नन्तर दुपहरिया ॥ बन्धूक बन्धू जीव रक्त माध्याह्निक ॥ येह दु-
पहरिया के नाम हैं ॥ दुपहरिया कफ को करने वाला क्वाविज वातपित्त को
नाशक हलका होता है ॥ ४९ ॥ [अग्नन्तर जवा वृक्ष ।] ऊर्ध्व पुष्प जया पुष्प
त्रिसन्ध्या सारुणा, सिता, येह जवा पुष्प के नाम हैं ॥ जवा पुष्प क्वाविज केश

को अच्छा करनेवाला । कफ वात को जीतनेवाला है ॥ ५० ॥

अथ सैन्दूरिआ । सिन्दूरी रक्तबीजा च रक्तपुष्पा सु-
कोमला ॥ सिन्दूरी विष पितास्व तृष्णा वान्ति हरी-
हिमा ॥ ५१ ॥ [अथागस्तिः । अथागस्त्यो बद्धसेनो
मुनिपुष्पो मुनिद्रुमः ॥ अगस्तिः पित्तकफजित् वा-
तुर्थकहरो हिमः ॥ ५२ ॥ रूक्षो वातकर स्तिक्तः प्रति-
श्याय निवारणः ॥

भा० अनन्तर सिन्दूरिया । सिन्दूरी रक्तबीजा रक्तपुष्पा सुकोमला येह सि-
न्दूरियाके नामहैं ॥ सिन्दूरी विषरक्त पित्त तृष्णा वमन इनको दूर करनेवाली
शीतल होती है ॥ ५१ ॥ [अनन्तर अगस्त] अगस्त्य बंगसेन मुनिपुष्प मुनि-
द्रुम येह अगस्त्यके नामहैं ॥ अगस्त्य पित्तकफ को जीतनेवाला और चातु-
र्थकज्वरका नाश करनेवाला । शीतल है ॥ ५२ ॥ और रूखा वातको करनेवा-
ला । तिक्त बुकाम को दूर करनेवाला है ॥

[अनन्तर तुलसीशुक्ला कृष्णा च]

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमञ्जरी ॥ अपे-
तरक्षसी गौरी शूलघ्नी देव दुन्दुभिः ॥ ५३ ॥ तुलसी
कडुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तहन् ॥ दीपनी कुष्ठ-
छच्छ्रास्त्र पार्श्वरुक्षक वातजित् ॥ ५४ ॥ शुक्ला
कृष्णा च तुलसी गुरौ स्तुल्या प्रकीर्तिता ॥

ःश्वेत

भा० अनन्तर काली और तुलसी ॥ तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहु-
मञ्जरी । अपेतरक्षसी गौरी शूलघ्नी देव दुन्दुभी । येह तुलसीके नामहैं ।
॥ ५३ ॥ तुलसी कड़वी तिक्त हृद्य उष्ण दाह पित्तको करनेवाली है ॥ औ-
र दीपन है ॥ तथा कुष्ठ मृत्ररुच्छ्र रक्तपसलीकी पीड़ा कफ वात इनको
जीतनेवाली है ॥ ५४ ॥ काली और श्वेत तुलसी गुरा में समान कही गई है ॥

अथ मरुआ ।] मारुतोऽसौ मरुवको मरुन्मरुपरि
स्मृतः ॥ फणी फणिज्वकश्चापि प्रस्थ पुष्यः समी
रणः ॥ ५५ ॥ मरुदग्नि प्रदो हृद्य स्तीक्ष्णोष्णः पित्त-
लोलघुः ॥ दृश्रिकादि विषम्लेष्ववातकुष्ठहृमि
प्रणुत् ॥ ५६ ॥ कटुपाकरसो रुच्यस्तिक्तोरुक्षः सु-
गन्धिकः ॥

भा० अनन्तर मरुआ ॥ मारुत मरुवक मरुणमरु । यह मरुआके
नाम कहे हैं ॥ ५५ ॥ मरुआ अग्निको करनेवाला हृद्य तीक्ष्ण उष्ण
पित्तको करनेवाला हलका होता है । और विच्छू आदियों के विषक
फवातकुष्ठ हृमि इनका नाशक है ॥ ५६ ॥ और पाक रसमें कटुवा रुचि
को करनेवाला तिक्त रुखा सुगन्धिक होता है ॥

[अथ दमना ।] उक्तो दमनको दान्तो मुनिपुत्रस्तपो
धनः ॥ गन्धोत्कटो ब्रह्मजटो विनीतः कल्पवृक्षः
॥ ५७ ॥ दमनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो दृष्यः सुगन्धिकः
॥ ग्रहरणा द्विषकुष्ठास्त्रैदकराड् विदोषजित् ॥ ५८

भा० अनन्तर दमना ॥ दमनक दान्त मुनिपुत्र तपोधना ॥ गन्धोत्कट
ब्रह्मजट विनीत कल्पवृक्ष यह दमनाके नाम हैं ॥ ५७ ॥ दमना कसेला
तिक्त हृद्य शुक्रको उत्पन्न करनेवाला सुगन्धिक होता है ॥ और पीने विष
कुष्ठ रक्त लैद खुजली विदोष इनको जीतता है ॥ ५८ ॥

[अथ वर्वरी ।] वर्वरी तुवरी तुङ्गी खरपुष्पाज गंधि-
का ॥ पर्याशस्तत्र कृष्णो तु कटिल्लक कुठेरकौ ॥ ५९
तत्र श्लेऽर्जकः प्रोक्तो वटपत्रस्ततो परः ॥ वर्वरी
त्रितयं रूक्षं शीतं कटुं विदाहि च ॥ ६० ॥

तीक्ष्णं रुचिकरं हृद्यं दीपनं लघुपाकि च ॥ पित्त-
लंकफवातास्र कण्डू कृमि विषायहम् ॥ ६१ ॥

इति श्री भावप्रकाशे पुष्पादिवर्गः ॥

[अथ वटदिवर्गः तत्रादौ वटस्य नामानि गुणाश्च ।]

वटोरक्तफलः शृङ्गी न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः ॥ क्षी-
री वैश्रवणो वासो बहुपादो वनस्पतिः ॥ ६२ ॥ वटः
शीतो गुरुग्राही कफपित्त व्रणायहः ॥ वर्यो वि-
सर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत् ॥ ६३ ॥

भा० अनन्तरवर्वरी ॥ वरवरी सुवरी तुंगी खरपुष्पा अजगन्धिका ॥ परणी
ए येहवर्वरीके नामहै ॥ उस्मे कालाकविलक और कुठेरक होताहै ॥ ५६
॥ उन्में सुफेद अरजक वटपत्र कहा गयाहै ॥ तीनों वर्वरी रूखी शीतल
कड़वी विदाह को करनेवाली होतीहै ॥ ६० ॥ तथा तीखी रुचिको करनेवाली
हृद्य दीपन और पाकमें हलकी होतीहै ॥ और पित्तको करनेवाली कफ
वात रक्त खुजली कृमि विष दूनको नाशक ॥ ६१ ॥

इति श्री भावप्रकाशे पुष्पादिवर्गः ॥ ॐ ॥ अनन्तरवटदिवर्गः ॥
उनमें पहले वटके नाम और गुण ॥ वट, रक्तफल, शृङ्गी, न्यग्रोध, स्कन्धज,
ध्रुव ॥ क्षीरी वैश्रवण वास बहुपाद वनस्पति ॥ ६२ ॥ येह वट के नामहैं ॥
वट शीतल भारी क्वाबिज कफ पित्त व्रणका नाशकहै ॥ और वरणको
अच्छा करनेवाला तथा विसर्पदाहका नाशक कसेला और योनि दोष
का नाशकहै ॥ ६३ ॥

[अथ पीपर । बोधिदुः पिप्पलोऽश्वत्थश्चलपत्रो
गजाशनः ॥ पिप्पलो दुर्जरः शीतः पित्तश्लेष्म
व्रणास्वजित् ॥ ६४ ॥ गुरुस्त्वक्को रूक्षो वर्यो यो
नि विशोधनः ॥ [अथ पिप्पलभेदः ।]

गजदण्ड सहोरा दून लेकै ।] पारीषोऽन्यः पलाश
 अ कपिरुतः कमण्डलः ॥ गर्द भाण्डष्कन्दरालः
 कपीतन सुपार्श्वकः ॥ ६५ ॥ पारीषो दुर्ज्जरः स्नि-
 ग्धः क्षमि शुक्र कफ प्रदः ॥ फलेऽस्ती मधुरो मू-
 ले कषायः स्वादु मज्जकः ॥ ६६ ॥

भा० अनन्तर पीपल ॥ बोधिद्रु पीपल अश्वत्थ चतुर्ष्व गजशन । येह
 पीपल के नाम हैं ॥ पीपल दुर्जर शीतल पित्त कफ म्रण रक्त को जीवने
 वाला है ॥ ६५ ॥ और भारी कसैला सूखा चरी को अच्छा करने वाला योनि
 का शोधक है ॥ अनन्तर पीपल का भेद ॥ गजदण्ड सोहरा इस प्रकार
 लोकमें कहते हैं ॥ पारीष अल्पपलाश कपिरुत कमण्डल गर्दभाण्ड कंद-
 राल कपीतन सुपार्श्वक । येह रस पीपल के नाम हैं ॥ ६५ ॥ १ पा
 [पारस पीपल] दुर्जर चिकना क्षमि शुक्र को कफ को करने वाला है ॥
 फलमें खटा मूलमें मधुर गिरी कसैली और मधुर होती है ॥ ६६ ॥

[अथ वेलिया पीपर ।] नन्दीवृक्षोऽश्वत्थ भेदः प्रो-
 ही गजपादयः ॥ स्थालीवृक्षः क्षयतरुः क्षीरी च
 स्या ह्यनस्यतिः ॥ ६७ ॥ नन्दीवृक्षो लघुः स्वादुः ति-
 क्तस्तुवर उष्णकः ॥ कटु पाक रसो ग्राही विष पि-
 त्तदाफाह्न जित् ॥ ६८ ॥

भा० अनन्तर वेलिया पीपर ॥ नन्दीवृक्ष अश्वत्थ वेल प्रोही गजपाद-
 प- ॥ स्थालीवृक्ष क्षयतरु क्षीरी वनस्यति येह वेलिया पीपर के नाम हैं
 ॥ ६७ ॥ वेलिया पीपर हलका मधुर तिक्त कसैला गरम होता है ॥ और
 पाक रसमें कटु का विज्ञ विष पित्त कफ रक्त का नाशक है ॥ ६८ ॥

अथ उदुम्बराः ॥ उदुम्बरो जन्तुफलो यत्राङ्गे हेम-

दुग्धकः ॥ उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरुः पित्तकफाक्षि-
तः ॥ ६६ ॥ मधुर स्तुवरो वर्यो ब्रह्मा शोधन रोपणः ॥
[अथ कदुम्भरी ।] काको दुम्बरिका फलयुग्मल यू-
ज्जघने फला ॥ मलपूस्तम्भकलिका शीतला तु-
वरा जयेत् ॥ ७० ॥ कफपित्तब्रणशिवन कुष्ठ पा-
रादृश कामलाः ॥

भा० अनन्तर गूलर ।] उदुम्बर जंतुफल यज्ञांग हेमदुग्धक । यह गूलर
के नाम हैं । गूलर शीतल रूखा भारी पित्त कफ रक्तको जीतने वाला है ॥
६६ ॥ और मधुर कसेला वर्ण को अच्छा करने वाला ब्रह्मा शोधन
रोपण है ॥ [अनन्तर कठिया गूलर । काको दुम्बरिका फलयुग्मल पू-
ज्जघने फला । यह कठिया गूलर के नाम हैं ॥ कठिया गूलर तमन करने वाला
निक्त शीतल कसेला है ॥ ७० ॥ और कफ पित्त ब्रह्मा शिवन कुष्ठ पांडुरोग ववा-
सीर कामला इनको जीतना है ॥ [अथ पाकरि ।]

सक्तो जटीपक्वरी च पक्वटी च स्त्रियामपि ॥ सक्तः
कषायः शिशिरो ब्रह्मयोनि गदापहः ॥ ७१ ॥ दाह
पित्तकफास्त्रघ्नः शोथहा रक्तपित्तहृत् ॥

[अथ शिरीषः ।] शिरीषो भण्डिलो मण्डी भण्डीरश्च
कपीजनः ॥ शुकपुष्पः शुकतरु मृदुपुष्पः शुकप्रि-
यः ॥ ७२ ॥ शिरीषो मधुरोऽनुषास्तिक्तश्च तुवरो
लघुः ॥ दोषशोथ विसर्पघ्नः कासघ्नः विषापहः ॥ ७३

भा० अनन्तर पाकर ।] सक्त जटी पक्वरी फरकटी । यह पाकर के नाम
हैं ॥ पाकर कसेला शीतल ब्रह्मा योनिरोग इनका नाशक है ॥ ७१ ॥ और
दाह पित्त कफ रक्त इनका नाशक शोथ नाशक रक्त पित्त को दूर करने
वाला है ॥ [अनन्तर शिरीष । शिरीष भण्डिल भण्डीर कपीजन

शुकपुष्प शुकतरु मृदुपुष्प शुकप्रिय । येह शिरीष के नाम हैं ॥ ७२ ॥
सिरस मधुर शीतल तिक्त कसैला हलका होता है ॥ और दोष शोथ विसर्प
इनका नाशक तथा कास व्रण इनका नाशक है विषका नाशक है ॥ ७३ ॥

[अथ क्षीरवृक्षः पञ्चवल्कल योनि रोग गुणश्च ।]

न्यग्रोधो दुस्वराश्वत्थ पारीषत्त पादपाः ॥ पञ्चै

ते क्षीरिणी वृक्षास्तेषां त्वक् पञ्चवल्कलम् ॥ ७४ ॥

केचित् पारीषस्थाने शिरीषं चेतसं परे वदन्तीति शेषः

। क्षीरवृक्षा हिमावर्ण्या योनि रोग व्रणा यहाः ॥ रु-

क्षाः कषा या मेदोघ्ना विसर्पामय नाशनः ॥ ७५ ॥

शोथ पित्त कफा स्वप्नाः सन्त्या भग्नास्थि योजका ।

त्वक् पञ्चकं हिमं याहि व्रण शोथ विसर्प जित् ॥

७६ ॥ तेषां पत्रं हिमं ग्राह कफ वाताश्च वृक्षधु ॥

विष्टम्भाध्मान जित् तिक्तं कषायं लघु लेखनम् ॥ ७७ ॥

भा० अनन्तर क्षीरवृक्ष ॥ पंचवल्कलों का लक्षण और गुण कहते हैं ॥

बड़ गूलर पीपल पार्श्वपीपल पाकर ॥ पांच येह क्षीरवृक्ष हैं ॥ उनको

हाल पंचवल्कल हैं ॥ ७४ ॥ कोई पार्श्व पीपल को सिरि और कोई चेतस

को कहते हैं येह शेष हैं । क्षीर शीतल वर्ण को अच्छा करने वाले योनि रोग

व्रण इनके नाशक हैं ॥ सूखे कसैले मेदके नाशक विसर्प रोगके नाशक हैं

॥ ७५ ॥ तथा शोथ पित्त कफ रक्त इनके नाशक दूध करने वाले दूध हाड़

को जोड़ने वाले हैं ॥ और पांचों की छाल शीतल का विज्ञ व्रण शोथ विस

र्प इनको जीतने वाली हैं ॥ ७६ ॥ इनके पत्ते शीतल का विज्ञ कफ वानरक्त

के नाशक हलके होते हैं ॥ और विष्टम्भ आध्मान इनको जीतने वाले तिक्त

कसैले लेखन हैं ॥ ७७ ॥

[अथ शालः ।]

शालस्तु सर्जका श्र्यार्त्वे कर्णिका शाल्य सम्बरः ॥

अश्वकर्णः कषायः स्याद् ब्रणस्वेद कफ कृमीन्
 ॥७८॥ ब्रध्म विद्रधि वाधिर्य योनिकर्ण गदान्
 हरेत् ॥ [अथ शालभेदः ।] सर्जकोऽजक क
 र्णः स्याच्छालो मरिचपत्रकः ॥ अजकर्णः कटु
 स्तिक्तः कषायोष्णो व्यपोहति ॥७९॥ कफ पा
 ण्ड श्रुति गदान् मेह कुष्ठ विषव्रणान् ॥

भा० अनन्तर शाल ॥ शाल सर्जकार्ण्य अश्वकर्णिका शस्य शम्बर
 येह शालके नाम है ॥ शाल कसैला होता है और ब्रण स्वेद कफ कृमि ॥
 ७८ ॥ ब्रध्म विद्रधी बहरापन योनिरोग कर्णरोग इनको नाश करता है ॥
 [दूसरा शालभेद । सर्जक अजकर्ण शालमरिच पत्रक येह शाल भेदके
 नाम है ॥ दूसरा शाल कडुवा तिक्त कसैला उष्ण होता है और ॥७९॥ कफ
 खुजली कर्णरोग प्रमेह कुष्ठ विषव्रण इनको नाश करता है ॥

अथ शालद्व ।] शालकी गज भक्ष्या च सुवहासुर-
 भीरसा ॥ महेरुणाकुन्दुरुकी वल्लकी च बहुखवा
 ॥८०॥ शालकी तुवरा शीता पित्तश्लेष्मातिसार
 जित् ॥ रक्तापित्त ब्रणहरी पुष्टिकृत् समुदीरिता ॥८१॥

भा० अनन्तर सलैई ॥ शालकी गजभक्षा सुवहा सुरभिरसा ॥ महेरुणा
 कुन्दुरुकी वल्लकी बहुखुवा ॥८०॥ येह सलैई के नाम है ॥ सरई कसैली
 शीतल पित्त कफ अतिसारको जीतनेवाली रक्त पित्त व्रण इनको नाश
 करनेवाली पुष्टिको करनेवाली कही गई है ॥८१॥

[अथ शीसव ।] कपिलवर्णा शीसव ।]

शिंशिपा पिच्छिला श्यामा कृष्णसारा च सा गुरुः ।
 कपिला सैव मुनिभि र्भस्मगर्भेति कीर्तिता ॥८२॥
 शिंशिपा कटुका तिक्ता कषाया शोषहारिणी ॥

अरि मेदक । येह दुर्गन्ध रौर के नाम हैं ॥ दुर्गन्ध खदिर कसैला गरम भुखदंत
के रोग रक्त इनको जीतनेवाला है ॥ ६९ ॥ और खजली विष कफ कृमिकु-
ष्ठ विष ज्वरा इनको नाश करता है ॥

अथ रोहितकः ।] रोहीतको रोहितको रोही दाड़ि-
म पुष्पकः ॥ रोहीतकः स्नीह धाती रुच्यो रक्त प्र-
साधनः ॥ ६३ ॥ अथ ववूलः ।] ववूलः कि-
ङ्किरातः स्यात् किङ्किराटः सपीतकः ॥ स एव क-
थित स्तज्जुं रामायण पद मोदिनी ॥ ६३ ॥ ववूलः
कफ रुद्ध ग्राही कुष्ठ कृमि विषापहः ॥

[अथ रीठा ।] अरिष्टकस्तु माङ्गल्यः कृष्ण वर्णो ऽर्थ
साधनः ॥ रक्तबीजः पीत फेनः फेनिलो गर्भपा-
ननः ॥ ६४ ॥

भा० अतन्तर रोहितक चस्मे अनार के से फूल होने हैं ॥ रोहितक रोहीतक
रोही दाड़िम पुष्पक । येह रोहि के नाम हैं ॥ रोही पिलही को नाश करनेवाली
रुचिको करनेवाली रक्त को स्वच्छ करनेवाली है ॥ ६३ ॥

अनन्तर कीकर ॥ ववूल किंकरात किंकराट सपीतक ॥ येह ववूल के ना-
म हैं ॥ उसीको उसके जाननेवालों ने आभाषण पद मोदिनी । ऐसा कहा है
॥ ६३ ॥ कीकर कफ नाशक क्राविज कुष्ठ कृमि इनका नाशक है ॥

अनन्तर रीठा ॥ अरिष्टक मांगल्य कृष्ण वर्ण अर्थ साधन ॥ रक्तबीज पी-
त फेण फेणिल गर्भपानन । येह रीठे के नाम हैं ॥ ६४ ॥

अथ पित्तोजिआ ।] पुत्रजीवो गर्भकरो यष्टी पुष्यो
ऽर्थ साधकः ॥ पुत्रजीवो गुरुर्घृष्यो गर्भदः स्लेष्म
वातहत ॥ ६५ ॥ सृष्ट मूत्रमलो रुद्धी हिमः स्वादुः

पदुःकदुः॥ [अथ इडुदी ।] इडुदी उडुगर वृक्ष
 अतिक्तकस्तपसद्रुमः ॥ इडुदः कुष्ठ भूतादि
 ग्रह व्रण विष हृमिनी ॥ ६६ ॥ हन्त्युषाः शिवत्र
 शूलघ्नः स्तिक्तकः कदु पाकवान् ॥

भा० अनन्तर पुत्रजीवा के नाम ॥ पुत्रजीव गर्भकर यष्टीषुष्य अर्थसाधक । यह पुत्रजीवा के नाम हैं ॥ पुत्रजीवा भारी युक्त की उत्पन्न करने वाली । गर्भको करने वाली रूखी प्रीतल मधुर नमकीन कड़वी होती है ॥ गर्भको करने वाली कफ की नाशक है ॥ ६५ ॥ [अनन्तर हिंगोट ।]
 वृगुद अंगारवृक्ष तिक्तक तपसद्रुम यह हिंगोट के नाम हैं ॥ हिंगोट कुष्ठ भूतादि ग्रह व्रण विष हृमिनी इनकी नाश करता है ॥ ६६ ॥ और उष्ण है तथा शिवत्र शूलका नाशक तिक्त कदु पाकवाला है ॥

[अथ जिङ्गिनी ।] जिङ्गिनी किङ्गिनी किङ्गी सु-
 निर्व्यासा प्रमोदिनी ॥ जिङ्गिनी मधुर तोषणा क
 षाया व्रण शोधिनी ॥ ६७ ॥ कदुका व्रण हृद्योग
 वातातीसार हृत्पदुः ॥ तमालः शाल वद्वेद्यो दा-
 ह विस्फोट हृत्पुनः ॥ ६८ ॥

भा० अनन्तर जिङ्गिनी के नाम ॥ जिङ्गिनी किङ्गिनी किङ्गी सुनिर्व्यासा प्रमोदिनी यह जिङ्गिनी के नाम हैं ॥ जिङ्गिनी मधुर कुछ गरम कर्षणी व्रण शोधक है ॥ ६७ ॥ और कड़वी है तथा व्रण हृद्योग वातातीसार इनकी नाशक नमकीन होती है ॥ तमाल और शाल के सदृश दस्त को जानना चाहिये और दाह विस्फोट के नाशक होती है ॥ ६८ ॥

[अथ तूणी ।]

तूणी स्तुत्रक आपीनस्तुणिकः कच्छकस्तथा ॥
 कठेकः कान्तलको नन्दि वृक्षश्च नन्दकः ॥ ६९ ॥

उष्णावीर्या हरेन्मैदः कुष्ठश्चित्तं वमि क्रिंमीन् ॥

॥ ८३ ॥ वस्तिरुग् व्रणदाहास्त्र बलासान् गर्भपातिनी

भा० अनन्तर शीशब ॥ और कणिलवर्गी शीशम । शिशिपा पिच्छि
ला प्रथमा कृष्णसारा । यह शीशमके नाम हैं । और वह भारी होता है ॥
कपिला भस्मगर्भा ऐसा मुनियों ने उसीको कहा है ॥ ८२ ॥ शीशम कड़वा
तिक्त कसैला शोषनाशक ॥ उष्णावीर्य होता है और मेद कुष्ठ श्वित् व
मत कृमि इनको नाश करता है ॥ ८३ ॥ और पेड़की पीड़ा व्रण दाह रक्त
कफ इनको भी नाश करता है ॥ और गर्भको गिरेनेवाला है ॥

[अथ कौह ।] ककुभोऽर्जुन नामारव्यौ नदीसर्जंश्च

कीर्तितः ॥ इन्द्रदुर्वीर वृक्षश्च वीरश्च धवलः स्मृतः ।

॥ ८४ ॥ ककुभः शीतलो हृद्यः क्षतक्षय विषासजि-

त् ॥ मेदो मेह व्रणान् हन्ति तुवरः कफ पित्त हृत् ॥ ८५ ॥

भा० अनन्तर अर्जुन वृक्ष ॥ ककुभ अर्जुन नामारव्य नदीसर्ज ॥ इन्द्र दु
र्वीर वृक्ष, वीर, धवल, यह अर्जुन वृक्षके नाम कहें हैं ॥ ८४ ॥ अर्जुन शीत
ल हृद्य क्षत क्षय विषरक्त इनको जीतनेवाला है ॥ और मेद प्रमेह व्रण इन
को नाश करता है और कसैला है तथा कफ पित्तका नाशक है ॥ ८५ ॥

[अथासन विजयसार इति च ।] बीजकः पीतसार-

श्च पीतशालक इत्यपि ॥ बन्धूक पुष्पः प्रियकः

सर्जक आसनः स्मृतः ॥ ८६ ॥ बीजकः कुष्ठ बीस-

र्य श्वित्त्र मेह गुद कृमीन् ॥ हन्ति श्लेष्मास्त्र पित्त-

ज्व त्वचः केश्यो रसायनः ॥ ८७ ॥

भा० अनन्तर आसन और विजयसार भी कहते हैं ॥ बीजक, पीतसार
पीतशालक, बन्धूक पुष्प, प्रियक, सर्जक आसन ये विजयसारके
नाम हैं ॥ ८६ ॥ विजयसार कुष्ठ श्वित्त्र मेह गुद कृमि इनको नाश

करता है ॥ और कफ रक्त पित्तको भी नाश करता है ॥ तथा त्वचा का हित केश
का हित रसायन है ॥ ८७ ॥

[अथ खदिर ।]

खदिरो रक्त सारश्च गायत्री दन्तधावनः ॥ कण्ठकी
बाल पत्रश्च बहु शल्यश्च यज्ञियः ॥ ८८ ॥ खदिरः
शीतलो दन्त्यः कण्ठ कासा रुचिप्रणुत् ॥ तिक्त क-
षायो मेदोघ्नः कृमिमेह ज्वर व्रणान् ॥ ८९ ॥ श्वेत
शोथामपित्तास्य पाण्डु कुष्ठ कफान् हरेत् ॥

भा० अनन्तर खैर । खदिर रक्तसार गायत्री दन्तधावन ॥ कण्ठकी बालपत्र बहु
शल्य यज्ञीय येह खैरके नाम हैं ॥ ८८ ॥ खैर शीतल दान्तको अच्छा करने वा-
ला कण्ठ कास अरुचि इनको नाशक ॥ तिक्त कसैला मेदका नाशक कृमि
मेह ज्वर व्रण ॥ ८९ ॥ शोथ आम रक्त पित पाण्डुरोग कुष्ठ कफ इनको नाश
करता है ॥

[अथ श्वेतखदिर पपरी खयर इति च ।] खदिरः
श्वेतसारोऽन्यः कदरः सोम बल्कलः ॥ कदरो वि-
षदो वर्यो मुखरोग कफास्रजित् ॥ ९० ॥

[अथ इरिमेद दुर्गन्ध खदिर इति च ।] इरिमेदो विट्
खदिरः कालस्कन्धोऽरिमेदकः ॥ इरिमेदः कषा
योषणो मुखदन्त गदास्रजित् ॥ ९१ ॥ हन्ति कण्ठ
विषप्लेष्म कृमि कुष्ठ विष व्रणान् ॥

भा० अनन्तर मुफ्रेद कथा जिसको पपड़ी खैर कहते हैं ॥ खदिर श्वेतसार
कद सोमबल्कल । येह पपड़ी खैरके नाम हैं ॥ पपड़ी खैर विषाद वर्योको
अच्छा करने वाला मुखरोग कफ रक्त इनको जीतने वाला ॥ ९० ॥

अनन्तर इरिमेद अर्थात् दुर्गन्ध खैर ॥ इरिमेद, विट् खदिर कालस्कन्ध,
हन्ति कण्ठ विषप्लेष्म कृमि कुष्ठ विष व्रणान् ॥

तुणिरक्तः कटुः पाके कषायो मधुरो लघुः ॥ तिक्तो
ग्राही हिमो वृष्यो व्रणकुष्ठस्य पित्तजित् ॥ १०० ॥

अथ भूर्जपत्र ।] भूर्जपत्रः स्मृतो भूर्जचर्मो बहुल
बल्कलः ॥ भूर्जो भूतग्रहश्लेष्मकर्णरूक् पि-
तरक्तजित् ॥ १०१ ॥ कषायो राक्षसघ्नश्च मेदोविष-
हरः परः ॥

भा० अनन्तर तुन ॥ तुणि तुन्नक आपील तुणिक कच्छुक ॥ कुठेरक का-
न्तलक नन्दीवृक्ष नन्दक येह तुनके नामहैं ॥ ९९ ॥ तुन पाकमें कड़वा क-
सैला मधुर हलका होताहै ॥ और तिक्तकाविज्ज शीतल शुक्रको उत्पन्न
करनेवाला व्रणकुष्ठ रक्त इनको जीतने वालाहै ॥ १०० ॥

अनन्तर भोजपत्र ।] भूर्जपत्र भूर्जचर्मो बहुलबल्कल । येह भोजपत्र
के नामहैं ॥ भोजपत्र भूत ग्रह कफ कर्णपीडा पित्तरक्त इनको जीतने वाला
है ॥ १०१ ॥ और कसैला राक्षस कानाशक मेद विषका नाशक है ॥

अथ पलाश ।] पलाशः किंशुकः पर्णो यक्षियो
रक्तपुष्पकः ॥ क्षार श्रेष्ठो वातहरो ब्रह्मवृक्षः स
मिह्वरः ॥ १०२ ॥ पलाशो दीपनो वृष्यः सरोषात्र
शगुल्मजित् ॥ कषायः कटुकस्तिक्तः स्निग्धो गु-
दज्वरोगजित् ॥ १०३ ॥

भा० अनन्तर पलाश ॥ पलाश किंशुक पर्णो यक्षीरक्तपुष्प क्षारश्रेष्ठ वा-
त ब्रह्मवृक्ष समिह्वर ॥ येह पलाशके नामहैं ॥ पलाश दीपन शुक्रको उ-
त्पन्न करनेवाला सर ॥ १०२ ॥ उष्णहै । और व्रण वायुगोला इनको जीतने
वालाहै ॥ तथा कसैला कड़वा तिक्त चिकना गुदाके रोगोंको जीतनेवाला । ३।

भग्नसन्धानरुहोषग्रहण्यशीकमीनहरेत् ॥

तत्पुष्पं स्वादुपाके तु कटु तिक्तं कषायकम् ॥ १०४ ॥

वातलङ्घ्य पित्तासृक्कुच्छ्रिद्ग्राहि शीतल
 म् ॥ तृड् दाहं शमकं वातरक्तकुष्ठहरम्परम् ॥
 १०५ ॥ फलं लघूष्णं मेहार्शं कृमिवातकफाय
 हम् ॥ विपाके कटुकं रुक्मं कुष्ठगुल्मोदरप्रणत
 ॥ १०६ ॥ [अथ शाल्मलिः] शाल्मलिस्त
 भवेन्मोचा पिच्छला पूरणीति च ॥ रक्तपु
 ष्यास्थिरायुश्च कण्टकाढ्या च तूलिनी ॥ १०७ ॥
 शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी ॥
 श्लेष्मला पित्तवातासृहारिणी रक्तपित्तजित् १०८

भा० दूरेद्वे हाड़को जोड़नेवाला और संग्रहणी बवासीर कृमि इनको
 नाश करना है। उस्का पुष्प पाकमें मधुर कड़वा तिक्त कसेला होता है।
 ॥ १०४ ॥ तथा वातकी करनेवाला कफ रक्त पित्त मूत्र कुच्छ्र इनकी जीत
 नेवाला कृमि शीतल होता है। और तृषा दाह का शमन करने वाला
 अत्यन्त वातरक्त और कुष्ठ इनका नाशक है ॥ १०५ ॥ उस्का फल हलका
 उष्ण हीन है और प्रमेह बवासीर कृमि वात कफ इनका नाशक है ॥
 विपाक में कटु रुखा होता है ॥ तथा कुष्ठ वायुगोला उदर रोग इनका
 नाशक है ॥ १०६ ॥ अनन्तर सेमल। शाल्मली मोचा पिच्छला
 पूरणी ॥ रक्तपुष्पां स्थिरायु कण्टकाढ्या तूलिनी येह सेमलके नाम
 हैं ॥ १०७ ॥ सेमल शीतल रसमें और पाकमें मधुर रसायनी कफको
 करनेवाली पित्तवातरक्त की नाशक रक्तपित्त की जीतने वाली है ॥ १०८

अथ मोचरसः।] निर्य्यासः शाल्मलिः पिच्छा
 शाल्मलीवैष्टकोऽपि च ॥ मोचास्वावि मोच
 रसो मोचनिर्य्यास इत्यपि ॥ १०९ ॥ मोचास्वा-

हिमो ग्राही स्निग्धो दृष्यः कषायकः ॥ प्रवाहि
कातिसाराम कफपित्तास्र दाहनुत् ॥ ११० ॥

[अथ कूट शाल्मलिः ।] कुतसितः शाल्मलिः प्रो
क्तो रोचनः कूट शाल्मलिः ॥ कूट शाल्मलिक
स्तिक्तः कटुकः कफवातनुत् ॥ १११ ॥ भेद्युष्णः
स्नीह जठरः यकृद् गुल्म विषापहः ॥ भूताना-
ह विवन्धास्र मेदः शूल कफापहः ॥ ११२ ॥

भा० मोचरस येह सेमल का गोदह है ॥ पिच्छा शाल्मली वेषक । मोचा
याव मोचरस मोचनिर्यास येह मोचरस के नाम हैं ॥ १०६ ॥ मोचरस,
शीतल क्वाबिज चिकना शुक्रको उत्पन्न करनेवाला कसैला होता है ॥ औ
र प्रवाहिका अतिसार आम कफ रक्त पित्त इनको नाश करनेवाला है ॥
११० ॥ अनन्तर कूट शाल्मलि ॥ कुतसिता शाल्मली रोचन कूट
शाल्मली । येह कूट शाल्मली के नाम हैं । कूट सेमल तिक्त कटुक कफ वा-
तनाशक ॥ १११ ॥ भेदन करनेवाली उष्ण होती है और पित्तही उदररोग य-
कृत वायुगोला विष इनकी नाशक है । और भूत अफाग विवन्ध रक्त
मेद शूल कफ इनकी नाशक है ॥ ११२ ॥

[अथ धवः ।]

धवो धटोनन्दि तरुः स्थिरो गौरो धुरन्धरः ॥ धवः

शीत प्रमेहर्शः पाण्डु तिक्त कफापहः ॥ ११३ ॥

मधुर स्तुवर स्तस्य फलञ्च मधुरं मनाक् ॥

अथ धामिनः । धन्वङ्गस्तु धनुर्द्वौ गोत्रवृक्षः
सुतेजनः ॥ धन्वङ्गः कफ पित्तास्र कासहृत्तुव
रोलघुः ॥ ११४ ॥ दृंहणी बलकृद्भूतः सन्धि

कृतत्रणारोपणः ॥ [अथ करीरः ।]

करीरः क्रकरो पत्रो ग्रन्थिलो मरुभूरुहः ॥

करीरः कटुकस्तिक्तः स्वेद्युष्णो भेदनः स्मृतः ॥ ११५ ॥

दुर्न्नाम कफवाताम गरशोथत्रण प्रणुत् ॥

भा० अन्तरधव ॥ धट्गन्धितरु स्थिर गौर धुरंधर ॥ येह धवके नाम हैं ॥ धव शीतल प्रमेह बवासीर पाण्डु पित्तकफ इनका नाशक है ॥ ११३ ॥ मधुर कसैला होता है उस्का फल कुछ मधुर होता है ॥

अन्तरधामिन ॥ धन्वंग धनुर्वक्ष गोत्रवृक्ष सुतेजन ॥ येह धामिन के नाम हैं ॥ धामिन कफ रक्त पित्त कास इनको नाश करने वाली हलकी होती है ॥ और पुष्ट बल को करने वाली रूखी संघा को करने वाली घाव को भर लाने वाली है ॥ अन्तर करील । करीर क्रकरो पत्र ग्रन्थिल मरुभूरुह । येह करीर के नाम हैं । करील कड़वा तिक्त पसीना लाने वाला उष्ण भेदन कहा गया है ॥ ११५ ॥ और बवासीर कफ वात आम विष शोथ त्रण इनका नाशक है ॥

अथ सहोरा । [शार्वोटः पीतकलको भूतावा-

सः स्वरच्छदः ॥ शार्वोटो रक्तपित्तार्शो वातप्ले-

ष्मातिसारजित् ॥ ११६ ॥ [अथ वरुणाः ।]

वरुणो वरुणाः सेतु स्तिक्त शाकोऽग्निदीपनः ॥

कषायो मधुरस्तिक्तः कटुको रूक्षको लघुः ॥ ११७ ॥

भा० अन्तर सहोरा ॥ शार्वोट पीतकलक भूतावास स्वरच्छद येह सहोरा के नाम हैं । सहोरा रक्तपित्त बवासीर वात कफ अतीसार । इनको जीत ने वाला है ॥ ११६ ॥ [अन्तर वरुणा । वरुणा वारुणा सेतु तिक्त शाक येह वरुणा के नाम हैं ॥ वरुणा अग्निदीपन कसैला मधुर तिक्त कड़वा रूखा हलका होता है ॥

[अथ कटुभी ।]

कटुभी स्वादु पुष्यश्च मधुरेणः कटुम्बरः ॥

कटभीतु प्रमेहार्शः नाडी त्रिण विष कृमीन् ॥
॥११७॥ हन्त्युष्णा कफ कुष्ठघ्नी कटू रूक्षा च की
र्त्तिता ॥ तत्फलं तुवरं ज्ञेयं विशेषात् कफ शु
क्र हन् ॥ ११८ ॥

भा० अन्तर कटुभि ॥ कटुभि स्वादपुष्प मधुरेषु कटुम्भर । यह कटुभीके
नाम हैं ॥ येह मालकंगनी की किस्म से है ॥ कटुभि प्रमेह ववासीर नाडी त्रि
ण विष घमि इनको नाश करती है ॥ ११७ ॥ और उष्ण होती है तथा कफ
कुष्ठ की नाशक कड़वी रूखी कहीं गई है ॥ इसका फल कसैला जानना चा
हिये विशेषकरके कफ शुक्रका नाशक है ॥ ११८ ॥

[अथ मोक्ष पलाशवत् पर्वत वृक्षः ।] मोक्षस्तु
मोक्षकोऽपि स्याद्गोलीद गोलि हस्तथा ॥ क्षार
श्रेष्ठः क्षार वृक्षो द्विविधः खेत कृषाकः ॥ ११९ ॥
मोक्षकः कटु कस्तिको ग्राह्युष्णः कफ वात हन् ॥
विषमेदो गुल्म कण्डू वस्ति रुक्मिं शुक्रनुत् ॥ १२० ॥

भा० अन्तर मोक्ष अर्थात् घंटा पाटला ॥ येह लोधकी किस्म से होता है ।
इसके पत्ते पलासके से होते हैं और पहाड़ी दरख है ॥ मोक्ष मोक्षक गोलीद
गोलिः क्षारश्रेष्ठ क्षारवृक्ष येह घंटा पाटला के नाम हैं ॥ येह दो प्रकार
का होता है काला और सुफेद ॥ ११९ ॥ घंटा पाटल कड़वा तिक्त का विज उ
ष्ण कफ वात का नाशक है । और विष मेद वायुगोला खुजली वस्ति की पी
ड़ा और कृमि शुक्रका नाशक है ॥ १२० ॥

[अथ जल सिरषि-

टिंटरिण इति च ।] शिरिषिका टिरिटरिका दुर्व
लाम्बु शिरीषिका ॥ त्रिदोष विष कुष्ठार्शो हरी
वारिशिरीषिका ॥ १२१ ॥ [अथ शमी ।]

शमीशक्तु फला तुङ्गा केशहन्त्री फला शिवा ॥
मङ्गल्या च तथा लक्ष्मी शमीरः साल्यिका स्मृ-
ता ॥ १२२ ॥ शमी तिका कटुः शीता कषाया रेव-
नी लघुः ॥ कफ कास भ्रमश्वास कुष्ठार्शः कृमि
जित् स्मृता ॥ १२३ ॥

भा० अन्तर शिरीष ॥ इसको दिङ्गणी भी कहते हैं । शिरसीका दि-
दिणिका दुर्बला, अंबुशिरीष का । ये हजल शिरीष के नाम हैं ॥ जल-
सिरीष विदोष विष कुष्ठ ववासीर इनको नाश करने वाली है ॥ १२२ ॥
अन्तर शमी ॥ शमी शक्तु फला तुङ्गा केशहन्त्री फला शिवा ॥ मङ्गल्या
लक्ष्मी शमीर साल्यिका ये ह शमी के नाम हैं ॥ १२३ ॥ शमी कुष्ठबी तिका
शीतल कसेली दस्तावर हलकी होती है ॥ और कफ कास भ्रमश्वास कु-
ष्ठ ववासीर कृमि इनको जीतने वाली कही गई है ॥ १२३ ॥

अथ छितवन ।] सप्तपर्णी विशालत्वक् शार-
दे विषमच्छदः ॥ सप्तपर्णी ब्रह्म श्लेष्म वात
कुष्ठास्व जन्तु जित् ॥ १२४ ॥ दीपनः श्वास गुल्मघ्नः
स्निग्धोष्ण स्तुवरः सरः ॥

अथ तिनिशः तिरिच्छ इति च ।] तिनिशः स्य
न्दनो नेमी रथदुर्वञ्जुलस्तथा ॥ तिनिशः श्ले-
ष्म पित्तास्व मेदः कुष्ठ प्रमेह जित् ॥ १२५ ॥ स्तुव-
रः श्वित्रदाहघ्नो ब्रह्म पाराहु कृमि प्रणुत् ॥ १२६ ॥

भा० अन्तर छितवन ॥ सप्तपर्ण विशालत्वक् शारद विषमच्छद
ये ह छितवन के नाम हैं ॥ छितवन ब्रह्म कफ वात कुष्ठरक्त जन्तु इन-
को जीतना है ॥ १२४ ॥ और दीपन वायुगोला इनका नाशक चिकनाउ-
या कसेला सर है ॥ अन्तर तिनिश । इसको तिरिच्छ भी कहें हैं

तिनिस स्पंगन नेमी रथवृह वञ्जुल येह तिनीश के नाम हैं ॥ तिनीश कफ रक्त पित्त मेद कुष्ठ प्रमेह इनको जीतने वाला है ॥ १२५ ॥ और कसैला शिव दाहका नाशक व्रण पांडु कृमि इनका भी नाशक है ॥

अथ भुइसहा ।] भूमीसहो द्वार दारु चरिदारुः
स्वरच्छदः ॥ भूमीसहस्तु शिशिरो रक्त पित्त
प्रसादनः ॥ १२६ ॥

इति श्री भावप्रकाशे वटादि वर्गः ॥ ❀ ॥

भा० अनन्तर भुइसहा ॥ भूमिसहो द्वारदारु चरिदारु स्वरच्छद ।
येह भुइसहा के नाम हैं ॥ भुइसहा शीतल रक्तपित्त को अच्छा करने वाला
है ॥ १२६ ॥ इति भावप्रकाशे वटादि वर्गः ॥ ❀ ॥

**अथाम्रादि फलवर्गः ॥ तत्रादावाम्रस्य नामानि
गुणाश्च ।]** आम्रः प्रोक्तो रसालश्च सहकारो
ऽति सौरभः ॥ कामाङ्गो मधुदूतश्च माकन्दः
पिकवल्लभः ॥ १२७ ॥ आम्रपुष्पमतीसारं कफ
पित्त प्रमेहनुत् ॥ असृग्दुष्टि हरं शीतं रुचि
कृद् ग्राहि वातलम् ॥ १२८ ॥

भा० आम्रादि फलवर्गः ॥ उमें पहले आम्र के नाम और गुणों कह-
ते हैं ॥ आम्र रसाल सहकार अतिसौरभ ॥ कामांग मधुदूत माकन्द
पिकवल्लभ येह आम्र के नाम हैं ॥ १२७ ॥ आम्रका पुष्प अतिसार कफ
पित्त प्रमेह इनका नाशक है । और दुष्टरक्त का नाशक शीतल रुचिक
रने वाला क्राबिज वात को करने वाला है ॥ १२८ ॥

आम्रं बालं कषायाम्लं रुच्यं मारुत पित्तकृत्

तरुणान्तु नदत्यन्तं रुक्षं दोषत्रया स्वकृत ॥ १२८ ॥
 आस्रमामं त्वचाहीनमातपेऽतिविशेषितम् ॥
 अम्लं स्वादु कषायं स्याद्भेदनं कफ वातजित् १२९
 पक्वन्तु मधुरं दृष्यं सिग्धं बल सुख प्रदम् ॥ गुरु
 वातं हरं हृद्यं वण्यं शीतमपित्तलम् ॥ १३१ ॥
 कषायानुरसं वह्नि श्लेष्म शुक्र विवर्द्धनम् ॥
 तदेव वृक्षसम्पक्वं गुरुवात हरं परम् ॥ १३२ ॥
 मधुरम्ल रसं किञ्चिद्भवेत् पित्तप्रकोपनम् ॥
 अम्ल कृत्रिमपक्वञ्च तद्भवेत् पित्तनाशनम् ॥ १३३
 रसस्याम्लस्य हीनस्तु माधुर्याच्च विशेषतः ॥

भा० कैरी कसैली खट्टी रुचिको करनेवाली वात पित्तको करनेवाली है ॥
 और कच्चा आम अत्यन्त खट्टा रुखा होता है तथा तीनों दोष और रक्त
 को करनेवाला है ॥ १२८ ॥ बेछिलके का कच्चा आम धूपमें सुखाया जा
 वा ॥ खट्टा मधुर कसैला होता है ॥ और भेदन कफ वातको जीतने वा
 ला है ॥ १२९ ॥ और पका हुआ मधुर शुक्रको उत्पन्न करने वाला चिक
 ना बल सुखको देनेवाला है ॥ और भारी वात नाशक हृद्य वर्गीको अ
 च्छा करनेवाला शीतल पित्तको करनेवाला ॥ १३१ ॥ पीछेसे कसैला
 अग्नि कफ शुक्र इनको बढ़ानेवाला है ॥ और बोही दृढपर पका हुआ
 भारी परम वातनाशक होता है ॥ १३२ ॥ और मधुर कुठ्ठेक खट्टा पित्तको
 करनेवाला है ॥ अम्ल रससे हीन और अधिक मधुरतासे बोह पालका
 पका हुआ पित्तनाशक होता है ॥ १३३ ॥ और रक्ता हुआ बोह परम रुचि
 को करनेवाला बलको देनेवाला शुक्रको उत्पन्न करनेवाला हलका होता
 है ॥ १३४ ॥

उषितं तत्परं रुच्यं बल्यं वीर्यं करं
 लघु ॥ ३४ ॥ शीतलं शीघ्रपाकिस्याद्वातपित्त

हरं सरम् ॥ तद्रसो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः
 सरः ॥ १३५ ॥ अहृद्यस्तर्पणोऽतीव वृंहणः क
 फवर्द्धनः ॥ तस्य खण्डं गुरु परं रोचनं चिरया
 किंच ॥ १३६ ॥ मधुरं वृंहणं बल्यं शीतलं वात
 नाशनम् ॥ वातपित्तहरं रुच्यं वृंहणं बलवर्द्ध
 नम् ॥ १३७ ॥ वृष्यं वर्णकरं स्वादु दुग्धाम्नं गुरु
 शीतलम् ॥ मन्दानलत्वं विषमज्वरञ्च रक्ताम
 यं बद्धगुदोदरञ्च ॥ आश्रति योगो नयनामयं
 वा करोति तस्मादति तानि नाद्यात् ॥ १३८ ॥
 एतदस्त्राम् विषयं मधुरास्त्रं परं ननु ॥

भा० और शीतल शीघ्रपाक वाला वात पित्तकानाशक सर होता है ॥
 उसका निचोड़ा हुआ रस बलको देने वाला भारी वात नाशक सर होता है
 ॥ १३५ ॥ और हृद्य तर्पण और बद्धन पुष्टिको करने वाला कफका बहाने
 वाला है ॥ और उसका टुकड़ा भारी अत्यन्त रुचिका करने वाला बद्धन काल
 में पाक होने वाला है ॥ १३६ ॥ और मधुर पुष्टबलको करने वाला शीतल
 वात नाशक है ॥ दूध आमवात पित्तको करने वाला रुचिको करने वाला
 पुष्टबलको बढ़ाने वाला ॥ १३७ ॥ शुक्रको उत्पन्न करने वाला वर्णको क
 रने वाला मधुर भारी शीतल होता है ॥ बद्धन आमका सेवन मन्दाग्नि
 विषमज्वर रक्त के रोग बद्ध गुदोदर ॥ और नैऋत रोग इनको करता है । इस
 वास्ते बद्धन न सेवन करे ॥ १३८ ॥ यह खट्टे आम के विषय में कहा है
 न कि मधुर आम के विषय में ॥

मधुरस्य परं नेत्र हितं न्वाद्या गुराण यतः ॥ १३९ ॥
 शुण्ठ्याम्भसोऽनुपानं स्यादाम्ब्राणा मतिभक्ष-

रो ॥ जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सहसौ वर्चलेन च ॥ १३६ ॥
 [अथाम्नावर्तस्य लक्षणं गुणाश्च ।] पक्वस्य सह
 कोरस्य पटे विस्तारितो रसः ॥ घर्म्म शुको मुहु-
 र्दन्त आम्नावर्त इति स्मृतः ॥ १४० ॥

अम्बवट इति लोके ।

आम्नावर्त स्तृषाच्छर्दि वात पित्त हरः सरः ॥
 रुच्यः सूर्योष्णिः पाकाल्लघुश्च सहि कीर्ति
 तः ॥ १४१ ॥

भा० मधुर परम नेत्र के दित होता है ॥ क्योंकि पहले कहे ऊँचे गुणों से ॥

॥ आम्नावर्त अति भक्षण में पीछे से सोंछ और पानी पीवे अथवा जीरा
 और सोंचल नमक मिलाकर पीवे ॥ १३६ ॥ अनन्तर अम्बवट के लक्षण
 और गुण ॥ पके ऊँचे आम के रस की कपड़े पर फैलाकर धूप में सुखाया हुआ
 और फिर से पुट दिये ऊँचे को आम्नावर्त ऐसा कहते हैं ॥ १४० ॥ और अम्बव
 ट ऐसा लोक में कहते हैं ॥ अम्बवट तृषा वमन वात पित्त इनका नाशक
 सर ॥ रुचिको करने वाला है और सूर्य की किरणों के द्वारा पाक होने से
 बौद्ध हलका कहा गया है ॥ १४१ ॥

[अथ कोड्लीया ।]

आम्नावीजं कषायं म्याच्छर्द्य तीसार नाशनम् ।

ईष दम्नञ्च मधुरं तथा हृदय दाहनुत् ॥ १४२ ॥

[अथ नवपल्लवः ।] आम्नास्य पल्लवं रुच्यं कफ पित्त
 विनाशनम् ॥

भा० अनन्तर आम्ना की गुठली ॥ आम की गुठली कसैली और वमन अ-
 तीसार की नाशक कुछ खट्टी मधुर तथा हृदय दाह की नाशक ॥ १४२ ॥
 अनन्तर आम के नवीन पत्ते ॥ आम के पत्ते रुचिको करने वाले कफ पित्त

के नाशक हैं ॥

[अथ अम्वरा।]

आम्रातकः पीतनश्च मर्कटाम्नः कर्पीतनः ॥ आ

म्रातमस्रं वातघ्नं गुरुषुणं रुचिकृत्सरम् ॥ २४३ ॥

पक्वन्तु तुवरं स्वादु रसेपाके हिमं स्मृतम् ॥ नर्प-

णं श्लेष्मलं सिग्धं दृष्यं विष्टम्भि वृंहणम् ॥ २४४ ॥

गुरु बल्यम्भ रुत्पित्त क्षतदाह क्षयास्त्रजित् ॥

भा० अनन्तर अम्वरा। आम्रातक पीतन मर्कटाम्न कर्पीतन। यह अम्वरा डे के नाम हैं ॥ अम्वरा खट्वा वातनाशक भारी गरम रुचिको करनेवाला सर है ॥ २४३ ॥ पक्वा कसैला पाक रसमें मधुर और शीतल कहा है ॥ नर्पण कफको करनेवाला चिकना सुक्रको उत्पन्न करनेवाला विष्टम्भि पुष्ट है ॥ २४४ ॥ तथा भारी बलके हित है और वात पित्त क्षत दाह क्षयरक्त इनको जीतने वाला है ॥

[अथ राजास्रः।] राजास्रष्टङ्क आम्रातः कामा

हो राजपुत्रकः ॥ राजास्र तुवरं स्वादु विशदं शी-

तलं गुरु ॥ २४५ ॥ ग्राहि रूक्षं विबन्धाधम वात

कृत्कफ पित्तनुत् ॥

अथ कोशास्र कोशम्भ इति च।] कोशास्र उक्तः

क्षुद्रास्रः कृमि वृक्षः सुकोशकः ॥ कोशास्रः कु-

ष्ठशोथास्र पित्त व्रण कफापहः ॥ २४६ ॥ तत्क-

लं ग्राहि वातघ्नमश्लोऽस्त्रं गुरु पित्तलम् ॥ पक्वन्तु

दीपनं रुच्यं लघूणां कफवाननुत् ॥ २४७ ॥

भा० अनन्तर राजास्र।] राजास्र, षट्ङ्क, आम्रात कामाह राजपुत्रक। ये ह कसैला मधुर विशद शीतल भारी ॥ २४५ ॥ क्राविज रूखा है और विब-

न्य आध्मानवात दूनको करनेवाला और कफ पित्तका नाशक है ॥

अनन्तर कोशाम् इसको कोशम्भी भी कहते हैं ।] कोशाम् क्षुद्राम् कर्मिद-
क्ष सुकोशक । यह कोशाम् के नाम हैं ॥ कोशम्भी रक्त पित्तकृष्ट सृजन व्रण
कफ । दूनको दूर करनेवाला है ॥ १४६ ॥ उस्का फल काविज वात नाशक
खट्वा और पाकमें भी खट्वा होता है । भारी पित्तको करनेवाला है । तथा पका
हुवा दीपन रुचिको करनेवाला हलका उष्ण कफ वात का नाशक है ॥ १४७ ॥

[अथ कटहर ।] पराशः करादकिफलः परासोऽति
दृढत्फलः ॥ पराशं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानि
लापहम् ॥ १४८ ॥ तर्पणं वृंहणं स्वादु मांसलं प्ले-
ष्मलं भृशम् ॥ बल्यं शुक्र प्रदं हन्ति रक्त पित्त क्ष-
त व्रणान् ॥ १४९ ॥ आमन्तदेव विष्टम्भि वातल
न्तुवरं गुरु ॥ दाहकृतं मधुरं बल्यं कफ मेदो विव-
र्द्धनम् ॥ १५० ॥ परासोद्भूत बीजानि वृष्याणि मधु-
राणि च ॥ गुरूणि बद्ध विट्कानि सृष्ट मूत्राणि
संवदेत् ॥ १५१ ॥

भा० अनन्तर कटहर ।] पराशकं डकी फल परास अति दृढत्फल यह
कटहल के नाम हैं ॥ कटहल शीतल और पका हुआ चिकना पित्त वातका
नाशक है ॥ १४८ ॥ रुचिको करनेवाला सुष्ट मधुर मांसको करनेवाला और
अत्यन्त कफको करनेवाला है ॥ तथा बलको करनेवाला और शुक्र की
करनेवाला है । रक्त पित्त क्षत व्रण दूनको नाश करता है ॥ १४९ ॥ वोही क
चा विष्टम्भी करनेवाला वातल कसेला भारी है ॥ और दाहको करनेवाला म
धुर बलके हित कफ मेदका बढ़ानेवाला है ॥ ५० ॥ कटहल के बीज शुक्र
को उत्पन्न करनेवाले मधुर हैं ॥ और भारी मलको रोकनेवाला तथा मूत्रको
करनेवाला है ॥ १५१ ॥

अन्यच्च ।

सज्जा परास जो वृष्यो वात पित्त कफापहः ॥

विषोषात्परासो वर्ज्यः गुल्मिभिर्मन्दबन्धिभिः ॥
२५२ ॥ [अथ बड़हर ।]

लकुचः क्षुद्रपरासो लकुचौडुङ्ग इत्यपि ॥ आ-
मंलकुचश्चुषाञ्च गुरु विष्टम्भकतया ॥ २५३ ॥
मधुरञ्च तथा म्लञ्च दोषवितय रक्तकृत ॥ शु-
क्राग्निनाशनं वायुनेत्रयोरहितं स्मृतम् ॥ २५४ ॥
सुपक्वन्तस्तु मधुरम्लञ्चानिल पित्तहृत् ॥ कफ-
बन्धि करं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भकञ्च तत् ॥ २५५ ॥

भा० कटहल की गिरी शुक्र को करने वाली वात पित्त कफ को नाशक है ॥
विशेष करके वायुगोला वाले और मन्दाग्नि वाले कटहल को न सेवन करे ॥
॥ २५२ ॥ अनन्तर बड़हर ॥ लकुच क्षुद्रपरास लकुचौडुङ्ग इतने नाम बड़-
हर के हैं ॥ कच्चा बड़हल गरम भारी विष्टम्भ को करने वाला है ॥ २५३ ॥
और मधुर तथा खट्टा तीनों दोषों को और रक्त को करने वाला है ॥ और शुक्र
तथा अग्निको नाशन और नेत्रों के अहित कहा है ॥ २५४ ॥ और अच्छे प्र-
कार पका हुआ खट्टा और मीठा होता है तथा वात पित्त को नाश करने वाला है
। और कफ अग्निको करने वाला रुचिके हित शुक्र को करने वाला और विष्ट-
म्भक है ॥ २५५ ॥

[अथ कदली ।] कदली दारणा मोचा म्बु सारां
शुमती फला ॥ मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि
कफक्षुद् गुरु ॥ २५६ ॥ स्निग्धं पित्तात्वनृददाह
क्षनक्षयसमीरजित ॥ पृच्छं स्वादु हिमं पाके
स्वादु वृष्यञ्च वृंहणम् ॥ २५७ ॥ क्षुत्तृषणा नेत्र
गदहन्मेहघ्नं रुचिमांसकृत ॥
माशिक्य मर्त्या मृतजम्पकाद्या भेदाः कदलाः

वहवोऽपि सन्ति ॥ उक्ता गुणास्तेष्वधिका भवन्ति
निर्दोषता स्यात्सधुता च तेषाम् ॥ १५८ ॥

भा० अनन्तर कैला । कदली वारणा मोचा अम्बुसरा अंशुमती फला । येह
कैलेके नाम हैं ॥ कैला मधुर शीतल विष्टम्बकनेवाला कफ नाशक भारी
है ॥ १५६ ॥ और विकना पितरक्त तृषा दाहका नाशक और क्षन क्षय वात
द्वनको जीतने वाला है ॥ यकाङ्गवा शीतल मधुर और फल में मधुर शुक्ल को
करनेवाला और पुष्ट है ॥ १५७ ॥ क्षुधा तृषा नेत्र रोग द्वनका नाशक प्रमेह
का नाशक और रुचि मांस को करनेवाला है ॥ भागिक्य भर्त्या अमृत चंपक
आदि कैलेके बहुत भेद हैं । उन्में येह कहें कहे गए अधिक हैं ॥ और उन्में
निर्दोषता तथा लघुता है ॥ १५८ ॥

[अथ गुरुभीहं भुक्कुर इति च ।] चिर्भिट धेनुदु
ग्धञ्च तथा गोरक्ष कर्कटी ॥ चिर्भिटं मधुरं रूक्षं
गुरु पित्त कफापहम् ॥ १५९ ॥ अनुपां ग्राहि वि
ष्टम्भि यकं तृषाञ्च पित्तलम् ॥

भा० अनन्तर भुक्कुर ॥ चिर्भिट धेनुदुग्ध गोरक्ष कर्कटी ॥ येह भुक्कुर कं
नाम हैं ॥ भुक्कुर मधुर रूक्ष पित्त कफ का नाशक भारी है ॥ १५९ ॥ और
उपा काविज्ञ विष्टम्भि है और यकाङ्गवा उपा तथा पित्तको करनेवाला है

[अथ नारिकेल ।] नारिकेलो दृढ फलो लाङ्गुली
कूर्च शीर्षकः ॥ तुङ्गस्कन्ध फल श्रेव तृणारा-
जः सदाफलः ॥ १६० ॥ नारिकेल फलं शीतं दुर्ज्ज-
रं वस्तिशोधनम् ॥ विष्टम्भि दृंहणं बल्यं वात
पित्तास्त्र दाहनुत् ॥ १६१ ॥ विशीघनः कीमल
नारिकेलं निहन्ति पित्तज्वर पित्तदोषान् ॥ सदेव
जीर्णं गुरु पित्तकारि विहाहि विष्टम्भि मतं भिषग

निलापहम् ॥ तेषु यच्चास्त्रमधुरं सत्तारञ्च रसा
 ज्ञवेत् ॥ १६७ ॥ रक्तपित्तकरन्ततु मूत्रकृच्छ्रकर-
 म्परम् ॥ [अथ लघुस्वीरा बालमस्वीरा ।
 त्रपुसं करादकि फलं सुधावासः सुशीतलम् ॥ त्र
 पुसं लघुनीलञ्च नवं तट्कमदाह जित् ॥ १६८ ॥
 स्यादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरम्परम् ॥ नत् प
 क मस्त्रमुपां स्यात् पित्तलं कफवाननुत् ॥ १६९ ॥
 तद्बीजं मूत्रलं शीतं रुक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित् ॥

भा० अनन्तर खरबूजा ।] दशांगुल खरबूज । यह खरबूजे के नाम हैं ।
 अनन्तर उस्के गुण कहने हैं ॥ खरबूज मूत्रको करनेवाला बलको कर
 नेवाला कीछकी शुद्धि करनेवाला और भारी होता है ॥ १६६ ॥ और विक
 ना बह्नुत मधुर शीतल शुक्रको करनेवाला पित्त वातका नाशक है ॥
 उनमें जो खट्टा मधुर क्षारके सहित रस में होता है । वोह रक्त पित्तको करने
 वाला और मूत्र कृच्छ्र को करनेवाला है ॥ १६७ ॥

अनन्तर बालमस्वीरा । त्रपुस कंदकी फल सुधावास सुशीतल । यह बा-
 लमस्वीरे के नाम हैं ॥ स्वीरा त्ररा और नया स्वीरा हलका होता है । वो दया
 क्षम दाह इनको जीतनेवाला है ॥ १६८ ॥ और मधुर पित्तनाशक ।
 शीतल और रक्त पित्तका नाशक होता है ॥ वो पका हुआ खट्टा ऊषण और
 पित्तको करनेवाला कफ वातका नाशक है ॥ १६९ ॥ उस्का बीज मूत्र
 को करनेवाला शीतल रुखा रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्र इनको जीतनेवाला है

अथ सुपारी छोटी ।] घोरराटः पूगी पूगश्च गुवा
 कः क्रमुकोऽस्य तु ॥ फलम्पूगी फलम्प्राक्त मुह-
 गञ्च तदीरितम् ॥ १७० ॥ पूगङ्गरु हिमं रुक्षं क
 षायाङ्कफ पित्तजित् ॥ मोहनं न्दीपनं रुच्यं मा-
 स्य वैरस्य नाशनम् ॥ १७१ ॥ आर्द्रं तद्गुर्व भिष्यति

बन्धि दृष्टि हरं स्मृतम् ॥ स्विन्नं दोषत्रय च्छेदि
दृढमध्यन्तदुत्तमम् ॥ १७२ ॥

भा० अनन्तर छोटी सुपारी ॥ घोरंट पूगी पूग गुवाकः क्रमुक ॥ फल
पूगीफल उद्वेग । यह सुपारी के नाम हैं ॥ १७० ॥ सुपारी भारी शीतल सूखी
कसैली कफ पित्त की जीतने वाली है ॥ और मोहन दीपन भारी रुचिको
करने वाली मुख के विरसता को नाशक है ॥ १७१ ॥ बोह गीली भारी अ
भिष्यन्दी होती है ॥ और अग्नि दृष्टि की नाशक कही गई है ॥ चिकनी नीने
दोषों के नाश करने वाली बीच में जो दृढ होती वोह उत्तम है ॥ १७२ ॥

अथ तालः ।] तालस्तु लेखपत्रः स्यात् तृणराजो
महोन्नतः पक्वं तालफलं पित्त रक्त श्लेष्म वि
वर्द्धनम् ॥ १७३ ॥ दुर्जरस्वर्ज मूत्रञ्च तन्द्राभिष्य
न्दि शुक्रदम् ॥ तालसज्जा तु तरुणः किञ्चिन्मद
करो लघुः ॥ १७४ ॥ श्लेष्मलो वात पित्तघ्नः शस्त्रे-
हो मधुरः सरः ॥

भा० अनन्तर ताड़ ॥ ताल लेखपत्र तृणराज महोन्नत । यह ताड़ के नाम
हैं ॥ पका हुआ ताड़फल रक्त पित्त कफ इनको बढ़ाने वाला ॥ १७३ ॥
दुर्जन वर्जन मूत्र को करने वाला तन्द्रा अभिष्यन्दी और शुक्र को देने वाला
है ॥ पके हुए ताल की गिरी कुछ नशा करने वाली और हलकी होती है ॥
१७४ ॥ और कफ को करने वाली वात पित्त की नाशक कुछ चिकनी मधुर
सर होती है ॥

अथ ताड़ी ।] तालजन्तरुणान्तोय मतीवमाद
कान्तम् ॥ अस्ती भूतन्तदा तु स्यात् पित्त रुद्धा-
तदोषहृत् ॥ १७५ ॥ [अथ बेल ।]
विल्वः शरिडल्य शैलूषो मालूर श्री फलावपि ।

बालं बिल्वफलं बिल्व कर्कटी बिल्व पेशिका ॥ १३६ ॥
ग्राहिणी कफ वाताम शूलघ्नी बिल्व पेशिका ॥

भा० अन्नतर ताड़ी ।] ताड़ी बद्धत नशाके करनेवाली होती है ॥ और जब खड़ी होती है तब पित्त को करनेवाली और धान रोष को नाशक है ॥ १३५ ॥
अन्नतर बेल ।] बिल्व कशाण्डिल्य शैल्यूष मालूर श्रीफल । यह बेल फल के नाम हैं ॥ और कच्चे बेलफल बिल्व कर्कटी और बिल्व पेशिका कहने हैं ॥ १३६ ॥ कच्चा बेल क्वाबिज कफ वात आग शूल इनका नाशक है ॥

[अन्यच्च ।

बालं बिल्वफलं ग्राहि दीपन म्पाचन कटु ॥ क-
षायोष्णं लघु स्निग्धं तिक्त वात कफा पहम् ॥
१३७ ॥ पक्व गुरु त्रिदोष स्यात् दुर्जरं पूति मारुत
म् ॥ विदाहि विष्टम्भ करं मधुरं वह्नि मान्य कृत
॥ १३८ ॥ फलेषु परिपक्वं यक्षुरा वत्तदुदाहतम्
॥ बिल्वाद न्यत्र विज्ञेय मामन्त द्विगुणाधिकम् ॥
१३९ ॥ द्राक्षा बिल्व शिवादीनां फलं शुष्कं गु-
णाधिकम् ॥

भा० औरभी । कच्चा बेलफल क्वाबिज दीपन पाचन कटु कसैला उष्ण हलका चिकना तिक्त वात कफ का नाशक है ॥ १३७ ॥ और पका हुआ भारी त्रिदोष को करनेवाला होता है और सड़ा हुआ दुर्गंधी और वात को करता है तथा विदाह को करनेवाला विष्टम्भी मधुर अग्नि मांस को करने वाला है ॥ १३८ ॥ फलों में पका हुआ जो होता है वोह गुणयुक्त होता है ॥ परन्तु बेल से अतिरक्तों को जानना चाहिये येह कच्चा गुण में अधिक होता है ॥ १३९ ॥ दारव बेल आमले इत्यादिकों के फल सूख जावे गुण में अधिक होता है ॥

[अथ कैथि ।] कपित्थस्तु दधित्थः स्यात्
तथा पुष्प फलः स्मृतः ॥ कपि प्रियो दधि फल

स्तथा दन्त प्राठोऽपि च ॥ १८० ॥ कपित्थं मामं स-
ग्राहि कषायं लघु लेखनम् ॥ पक्वं गुरु तृषाहि-
क्का शमनं वात पित्तजित् ॥ १८१ ॥ स्यादल्पन्तु-
वरङ्कुराठ शोधनं ग्राहि दुर्जरम् ॥

भा० अनन्तर कैथ । कपित्थ दधिप्लव पृष्यफलं । येह कैथ के नाम हैं ॥ और कपिप्रिय दधिफल तथा दन्तप्राठ येह भी कैथ के नाम हैं ॥ १८० ॥ कच्चा कैथ काविज कसैला हलकारे चन होता है ॥ और पका हुआ भारी होता है और तथा हिचकी शमन करने वाला वातपित्त का नाशक है ॥ १८१ ॥

[अथ नारङ्गी ।] नारङ्गो नागरङ्गः स्यात्त्वक् सुग-
न्धो मुखप्रियः ॥ नारङ्गो मधुरान्नः स्याद्दीपनं वा-
तनाशनम् ॥ १८२ ॥ अपरन्त्वस्त्र मत्स्येषां दुर्जरं
वातहतसम् ॥ अथ तेनु ।] तिन्दुकः
स्फूर्त्यकः कालस्कन्धश्चासितकारकः ॥ स्या-
दामन्तिदुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु ॥ १८३ ॥
पक्वं पित्तप्रमेहस्र श्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु ॥

भा० छोटा कसैला कंदशोधन काविज होता है ॥ अथ नारंगी के नाम गुण ॥ नारङ्ग नागरङ्ग त्वक् सुगन्ध मुखप्रिय यह नारङ्गी के नाम हैं ॥ नारङ्गी मिठी और खट्टी होती है मिठी दीपन वातनाशक होता है ॥ १८२ ॥ और खट्टी वज्रत गरम दुर्जर वातनाशक सर होता है ॥ अनन्तर तेनु ॥ तिन्दुक स्फूर्त्यक कालस्कन्ध असितकारक । येह तेनु के नाम हैं ॥ कच्चा तेनु काविज वात को करने वाला शीतल हलका होता है ॥ १८३ ॥ और पका हुआ पित्त प्रमेह रक्त कफ घन का नाश करने वाला । मधुर और भारी होता है ॥

[अथ कुपीलु ।] यस्य फलं कुचिला इति लोके

मकरतेदुश्चा इति च ।] तित्नुको यस्य कथितो ज-
लदो दीर्घ पत्रकः ॥ कुपीलः कुलकः काल स्ति-
तुदः कालपीलुकः ॥ १८४ ॥ काकेन्दु विषति
न्दुश्च तथा मर्कट तित्नुकः ॥ कुपीलुः शीतलं
तिक्तं वातलं मदहृत्प्रघ्न ॥ पादव्यथा हरं ग्राहि
कफ पित्तास्र नाशनम् ॥ १८५ ॥

भा० अनन्तर कुपीलु जिसके फलको लोकमें कुंचला कहते हैं ॥ तित्नुक
जलद दीर्घ पत्रक ॥ कुपीलु, कुलक, काल, तित्नुक, कालपीलुक ॥
॥ १८४ ॥ काकेन्दु विषतिन्दु तथा मर्कट तित्नुक यह कुचिलाके रत्नकाना
महै ॥ कुपीलु शीतल तिक्त वातको करने वाला और नशा करने वाला हल्का
है ॥ और पादों की पीड़ा को दूर करने वाला काबिज तथा कफ रक्त पित्त इन
को नाश करने वाला है ॥ १८५ ॥

[अथ फलेन्द्रा ।] फलेन्द्रा कथिता नन्दी राज जम्बू
महाफला ॥ तथा सुरभि पत्रा च महाजम्बू रपिस्त्र
ता ॥ राज जम्बू फलं स्वादु विष्टम्भि गुरु रेचनम् ॥

[अथ जासुनी नदी जासुनी ।] क्षुद्रो जम्बूः सूक्ष्मप
त्रा नादेयी जल जम्बुका ॥ जम्बूः संप्राहिणी रू-
क्षा कफ पित्तास्र दाह जित् ॥ १८७ ॥

भा० अनन्तर बड़े जासन ॥ फलेन्द्रा नन्दी राज जम्बू महाफल ॥ तथा सु-
रभिपत्रा महाजम्बू । येह भी नाम कहे हैं ॥ १८६ ॥ बड़े जासन का फल मधु-
र विष्टम्भ करने वाला ॥ भारी रेचन है ॥

अनन्तर जासुनी और नन्दी जासुनी भी ॥ क्षुद्र जम्बू सूक्ष्मपत्रा नादेयी
जल जम्बुका । अनन्तर छोटी जासुन के नाम हैं ॥ छोटी जासुन काबिज
कफ रक्त पित्त दाह इनको जीतने वाला है ॥ १८७ ॥

[अथ वैरि ।] पुंसि स्त्रियाञ्च कर्कन्धुवदरी कोल

मित्यपि ॥ फेनिलं कुवलयं घोठा सौवीरं वदरं मह-
 त ॥ १८८ ॥ अजप्रिया कुहा कीली विषमो भय
 कण्टका ॥ [तत्र वदर विशेषाणां लक्षणानि गुणा
 अ] पच्यमान सुमधुरं सौवीरं वदरं महत् ॥ सौवी-
 रं वदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम् ॥ १८९ ॥ वृंह-
 णाम्पित्तदाहास्र क्षय नृणां निवारणम् ॥ सौवी-
 रं लघुं सम्पक्वं मधुरं कील मुच्यते ॥ १९० ॥

भा० अनन्तर बेर । श्लिंग और खीलिंग में कर्कन्धु वदरी और कील
 यह भी होता है ॥ फेनिल कुवलय घोठा सौवीर वदर ॥ अज प्रिया कुहा की-
 ली विषम उभय कण्टक ॥ १८८ ॥ येह बेर के नाम हैं । उन्में बेर विशेषणों
 के लक्षण और गुणों को कहते हैं ॥ पके हुए अच्छे मीठे को सौवीर और ब-
 डा बेर कहते हैं ॥ सौवीर वदर शीतल भेदन भारी शुक्र को करने वाला है ॥
 ॥ १८९ ॥ और वृंहण पित्त दाह रक्त क्षय नृणां इनको दूर करने वाला है ॥
 वडा बेर पका हुआ पका हुआ और मधुर ऐसे को कील कहते हैं ॥ १९० ॥

कीलन्तु वदरं ग्राहि रुच्यमुष्णञ्च वातलम् ॥

कफ पित्त करञ्चापि गुरु सारक मीरितम् ॥ १९१ ॥

कर्कन्धु क्षुद्र वदरं कथितं पूर्व स्मरिभिः ॥ ३३

स्लं स्यात् क्षुद्र वदरं कषायं मधुरं मनाक् ॥ १९२ ॥

स्निग्धं गुरु च तिक्तञ्च वात पित्तापहं स्मृतम् ॥

शुष्कं भेद्यग्नि कृत्स्नं लघु नृणां क्लमासजित् ६३

भा० कील बेर का बीज रुचिको करने वाला गरम वात को करने वाला है ॥
 और कफ पित्त को करने वाला भारी सारक कहा है ॥ १९१ ॥ पहिले विद्वानों
 ने छोटे बेर को कर्कन्धु ऐसा कहा है ॥ छोटा बेर खटा कसेला और थोड़ा

मीठा होता है ॥ १६२ ॥ और चिकना भाषितकृ बान पित्तका नाशक कहा है
॥ तथा सूखा मेदन करनेवाला और अग्नि को करनेवाला है । और सब हृलके
होते हैं । तथा तथा रुमिरक इनको जीतनेवाला है ॥ १६३ ॥

**अथ मनि अस्वरा । प्राचीना मालकं लोके पा-
नीया मलकं स्मृतम् ॥ प्राचीना मलकं दोष त्रय
जिद्वर्जयति च ॥ १६४ ॥**

[अथ लवली । हरफारी इति च ।] सुगन्धमूला ल-
वली पाण्डुः कोमल चल्कला ॥ लवली फल म-
शमार्शः कफ पित्तहरं गुरु ॥ १६५ ॥ विशदं रोचनं
रूक्षं स्वादुस्लन्तु वरं रसे ॥

भा० अनन्तर पानी आंवला ॥ प्राचीना मालकं को लोकमें पानीया मलक
कहा है ॥ प्राचीना मलक त्रिदोष को जीतनेवाला और ज्वर नाशक है ॥
१६४ ॥ [अनन्तर हरफारेवडीय सुगन्धमूला लवली पाण्डु कोमल च-
ल्कला यह हरफारेवडी के नाम हैं ॥ हरफारी का फल पथरी और
बवासीर कफ पित्त इनका नाशक भारी ॥ १६५ ॥ विशद रोचन रूखा
मधुर खटा और कसैला रसमें होता है ॥

[अथ करोंदा । करोंदी]

करमर्दः सुषेणः स्यात् कृष्ण पाक फलस्तथा ॥

तस्माल्लघु फलायास्तु सा ज्ञेयां करमर्दिका ॥

१६६ ॥ करमर्दं द्वयं त्वाममस्त्रं गुरु तृषा हरम् ॥

उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्त कफप्रदम् ॥ १६७ ॥

तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्त समीरजित् ॥

भा० अनन्तर करोंदा । और करोंदी] करमर्द सुषेण कृष्ण पाक फल

येह करोंदा के नाम हैं ॥ और छोटे को करमर्हि का कहते हैं ॥ १९६ ॥
 दोनों करोंदे खड़े भारी तृषा नाशक है । और उष्ण रुचिकी करनेवाले तथा
 रक्त पित्त कफ की देनेवाले कहे हैं ॥ १९७ ॥ दोह पका हुआ मधुर रुचिकी क-
 रनेवाला हलका और वात पित्त की जीतने वाला है ॥

अथ पित्राल चिरोञ्जी ।] पित्रालस्तु खरस्क-
 न्ध श्वारो बहल वल्कलः ॥ राजादनस्तापसेष्टः
 सन्नकद्रुधनुष्यदः ॥ १९८ ॥ चारः पित्तकफास्व-
 घ्नस्तत् फलं मधुरं गुरु ॥ स्निग्धं सरं मरुत्पित्तदा
 हज्वर तृषापहम् ॥ १९९ ॥ पित्रालमज्जा मधु-
 रो वृष्यः पित्ता तिलापहः ॥ हृद्योऽतिदुर्जरः
 स्निग्धो विष्टम्भी चामवर्द्धनः ॥ २०० ॥

भा० अनन्तर चिरोञ्जी ॥ पित्राल खरस्कन्ध चार बहल वल्कल । राजादन
 तापसेष्ट सन्नकद्रु धनुष्यद । येह चिरोञ्जी के नाम हैं ॥ १९८ ॥ चिरोञ्जी
 पित्त कफ रक्त इनका नाशक है । और उष्ण फल मधुर भारी चिकना सर
 होता है और वात पित्त दाहज्वर तृषा इनका नाशक है ॥ १९९ ॥ चिरोञ्जी
 की गिरी मधुर शुक्रको करनेवाली पित्त वातका नाशक ॥ हृद्य अतिदुर्ज-
 र स्निग्ध विष्टम्भी आमको बढ़ानेवाली है ॥ २०० ॥

[अथ क्षीरणी ।] राजादनः फलाध्यक्षो राजन्या
 क्षीरिकापि च ॥ क्षीरिकायाः फलं वृष्यं वल्यं
 स्निग्धं हिमं गुरु ॥ २०१ ॥ तृषणा मूर्च्छा मदभ्रा-
 न्तिक्षय दोषत्रयास्त्रजित् ॥

[अथ कराटाइ ।] विकङ्कतः सुपातलो ग्रन्थि-
 लः स्वादुकराटकः ॥ सरवयश्च दन्तश्च कराट-

की व्याघ्रपादपि ॥ २०२ ॥ विकङ्कतफलं प-
कं मधुरं सर्वदोषजित् ॥

भा० अन्नन्तर खिरनी । राजादन फलाध्यक्ष राजन्या । यह खिरनी के नाम हैं ॥ खिरनी का फल शुक्रको करनेवाला बलको देनेवाला चिकना शीतल भारी होता है ॥ २०१ ॥ और मूर्च्छा मद भ्रान्ति क्षय विदोष रक्त इनको जीतनेवाला है ॥ [अन्नन्तर कंठार्द्र । विकङ्कत सुषार-
क्ष ग्रन्थिल स्वादुकंदक ॥ यज्ञवृत्तकंदकी व्याघ्रपाद यह कंठार्द्र के नाम हैं ॥ २०२ ॥ कंठार्द्र का पकाफल मधुर और सब दोषों को जीतने वा-
ला है ॥ अथ कमलगद्दा ।]

पद्मबीजन्तु पद्माक्षं गालोड्यं पद्मकर्कटी ॥ प-
द्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकंगुरु ॥ २०३ ॥
विष्टम्भि वृष्यं रूतञ्च गर्भसंस्थापकं परम् ॥
कफ वात करं बल्यं ग्राहि पित्तास्र दाहनुत् ॥ २०४ ॥
[अथ मखाना ।] मखानं पद्मबीजाभं पानीय फ-
लमित्यपि ॥ मखानं पद्मबीजस्य गुरौ स्तुल्यं-
विनिर्दिशेत् ॥ २०५ ॥

भा० अन्नन्तर कमलगद्दा । पद्मबीज पद्माक्ष गालोड्य पद्मकर्कटी ॥ यह कमलगद्दा के नाम हैं ॥ कमलगद्दा शीतल मधुर कसैला तिक्त भा-
री ॥ २०३ ॥ विष्टम्भी शुक्रको करनेवाला रूत गर्भको स्थापन करने वा-
ला है ॥ और कफ वात को करनेवाला बलके हितं क्राविज्ञ रक्त पित्त
और दाह इनका नाशक है ॥ २०४ ॥ [अन्नन्तर मखाना]
मखानं पद्मबीजाभं पानीयफल । यह मखाने के नाम हैं ॥ मखाना
कमलगद्दे के समान गुणमें जानना चाहिये ॥ २०५ ॥

अथ सिंघाड़ा । शृङ्गाटकं जलफलं त्रिकीराफल

मित्यपि ॥ शृङ्गादकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषाय-
कम् ॥ २०६ ॥ ग्राहि शुक्रानिल श्लेष्मप्रदं पित्ता-
सदाहनुत ॥ [अथ भेंट।] उक्तं कुमुद बीजन्तु
बुधैः कैरविणी फलम् ॥ भवेत्कुमुद्वती बीजं स्वा-
दु रूक्षं हिमं गुरु ॥ २०७ ॥ [अथ महुआ वन-
महुआ।] मधूको गुड़ पुष्यः स्यान् मधुपुष्यो म-
धुस्रवः ॥ वानप्रस्थो मधुष्ठीलो जलजेत्र मधू-
लकः ॥ २०८ ॥ मधूक पुष्यं मधुरं शीतलं गुरु
वृंहणम् ॥ बल शुक्र करं प्रीतं वात पित्त बिना-
शनम् ॥ २०९ ॥ फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वा-
त पित्त नुत ॥ अहद्यं हन्ति तृष्णास्र दाह श्वा-
स क्षत क्षयान् ॥ २१० ॥

भा० अनन्तर सिंघाड़ा ॥ शृङ्गादक जलफल त्रिकोणफल यह सिंघाड़े के नाम हैं ॥ सिंघाड़ा शीतल मधुर भारी शुक्रको करनेवाला कसेला ॥ २०६ ॥ काविज्ञ और शुक्र वात कफ इनको देनेवाला तथा पित्त रक्त दाह इनका नाशक है ॥ [अनन्तर भेंट।] कुमुद के बीज की कैरविणी फल से सा पंडितोंने कहा है ॥ कुमुदवती का बीज मधुर रूखा शीतल होता है ॥ २०७ ॥ [अनन्तर महुआ और वनमहुआ।] मधूक गुड़ पुष्य मधुपुष्य मधुस्रव ॥ वानप्रस्थ मधुष्ठील जलजेत्र मधूलक ॥ २०८ ॥ यह महुआ के नाम हैं ॥ महुआ मधुर शीतल भारी पुष्ट ॥ बल शुक्रको करनेवाला और वात पित्त का नाशक कहा है ॥ २०९ ॥ उसका फल शीतल भारी मधुर शुक्र का करनेवाला वात पित्त का नाशक ॥ और अहद्य होता है तथा तृष्णा रक्त दाह स्वास क्षत क्षय इनको नाश करता है ॥ २१० ॥

[अथ फरुसां।] परुषकन्तु परुषमल्पास्थिच

परापरम् ॥ परूषकं कषायास्त्रमामं पित्तकरं
लघु ॥ २११ ॥ तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि
चंहणम् ॥ हृद्यन्तु पित्तदाहास्रज्वरक्षय समीर
हत् ॥ २१२ ॥ [अथ तूत ।]

तूतः स्थूलश्च पूगश्च क्रमुको ब्रह्मदारु च ॥
तूतं पक्वं गुरु स्वादु हिमं पित्तनिलापहम् ॥ २१३ ॥
तदेवामं गुरु सरमस्त्रोष्णं रक्तपित्तकृत् ॥

भा० अतन्तर फालसा । परूषक परूष अल्पास्थि परापर ॥ येह
फालस के नाम हैं ॥ फालसा कसेला खटा पित्तको करनेवाला हलका
होता है ॥ २११ ॥ वोह यकाङ्गवा पाकमें मधुर शीतल विष्टम्भी उष्ण होता
है ॥ और हृद्य पित्तदाह रक्तज्वरक्षय वातघ्नका नाशक है ॥ २१२ ॥

[अतन्तर तूत ।] तूत स्थूलश्च पूग क्रमुक ब्रह्मदारु । यह तूतके नाम
हैं ॥ यकाङ्गवा तूत भारी मधुर शीतल पित्तवातका नाशक है ॥ २१३ ॥

और वोही कच्चा भारी सर खटा उष्ण रक्त पित्तको करने वाला है ॥

[अथ अनार ।] दाडिमः करकोदन्तबीजोलोहि
तपुष्पकः ॥ तत्फलं त्रिविधं स्वादु स्वादुम्लं के
वलाम्लकम् ॥ २१४ ॥ तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं चूड
दाहज्वरनाशनम् ॥ हृत्कराढ मुखगन्धघ्नं तर्प
णं शुक्रलं लघु ॥ २१५ ॥ कषायानु रसं ग्राहि
स्निग्धं मेधाबलापहम् ॥ स्वादुम्लं दीपनं रुच्यं
किञ्चिन्पित्तकरं लघु ॥ २१६ ॥ अस्मन्तु पित्तज
नक मम्लं वातकफापहम् ॥

भा० अतन्तर अनार । दाडिम करको दन्तबीज लोहितपुष्पक । यह

अनार के नाम हैं ॥ उसका फल तीन प्रकार का होता है ॥ मधुर मधुरखट्वा और केवल खट्वा ॥ २१४ ॥ उन्में मधुर त्रिदोषनाशक और तृष्णा दाह ज्वर इन का भी नाशक है ॥ हृदय कण्ठ मुखगंध इनका नाशक तर्पण शुक को करनेवाला हलका होता है ॥ २१५ ॥ पीछे से कसैला क्वाबिज चिकना होता है ॥ और मेधाबल इनका नाशक है ॥ और खट्वा भीष्म दीपन रुचिको करनेवाला कुक्ष्यक पित्तका करनेवाला हलका होता है ॥ २१६ ॥ खट्वा पित्तको करनेवाला और वात कफ का नाशक है ॥

[अथ बह्वारः।] बह्वारस्तु शीतः स्यादुद्दालो
बह्वारकः ॥ शेलुः प्लेष्मातकश्चापि पिच्छ
लो भूतवृक्षकः ॥ २१७ ॥ बह्वारो विषस्फोटव्रण
वीसर्पकुष्ठवृत् ॥ मधुरस्तुवरस्तिक्तः केशयश्च क-
फपित्तहृत् ॥ २१८ ॥ फलमामन्तु विष्टम्भि रूक्षं-
पित्तकफास्वजित् ॥ तत्पक्वं मधुरं स्निग्धं प्लेष्म-
लं शीतलं गुरु ॥ २१९ ॥

भा० अनन्तर बह्वार ॥ बह्वार शीत उद्दाल बह्वारक ॥ शेलुः प्लेष्मातक पिच्छल भूतवृक्षक । यह बह्वार के नाम हैं ॥ २१७ ॥ बह्वार विष विस्फोटव्रण वीसर्पकुष्ठ इनका नाशक है ॥ और मधुर कसैला तिक्त केशके हित कफ पित्तका नाशक है ॥ २१८ ॥ कच्चा फल रूखा विष्टम्भकर करनेवाला रूखा पित्त कफ रक्त को जीतनेवाला है ॥ और बीह पका हुआ मधुर चिकना कफ को फलनेवाला शीतल भारी है ॥ २१९ ॥

[अथ कतकः।] पयःप्रसादिकतकद्रुतकं तत्
फलञ्च तत् ॥ कतकस्य फलं नेत्र्यं जलनिर्मल
ताकरम् ॥ २२० ॥ वातप्लेष्म हरं शीतं मधुरं
तुवरं गुरु ॥

[अथ द्राक्षा ।] द्राक्षा स्वादु फला प्रो-
क्ता तथा मधुर सापि च ॥ मृद्दीक्य हारहूरा च गो-
स्तनी चापि कीर्तिता ॥ २२२ ॥ द्राक्षा पक्वा सरा शी-
ता चक्षुष्या दृढहारी गुरुः ॥ स्वादु पाक रसा स्व-
र्या तुवरा सृष्ट मूलविट् ॥ २२३ ॥ कौष्ठमारुत कं-
द् दृष्या कफपुष्टि रुचि प्रदा ॥ हन्ति नृणां ज्वरं
श्वास वात वातास्र कामलाः ॥ २२४ ॥ कृच्छ्रास-
पित्तसंमोह दाह शोष मदात्ययान् ॥ ग्रामास्व-
ल्पगुणा गुर्वी सैवास्त्रा रक्त पित्तकृत् ॥ २२५ ॥
दृष्या स्याद् गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफ पित्तनुत्

भा० अनन्तर निर्मली ॥ पयः प्रसादि कृतक । और उस्का फल भी क-
तक है ॥ निर्मली का फल नेत्र के हित और जल की निर्मलता करने वा-
ला है ॥ २२० ॥ और वात कफ को दूर करने वाला शीतल मधुर कसेला भा-
रे है ॥ [अनन्तर दाख ।] द्राक्षा स्वादु फला मधुरसा मृद्दीका हारहूरा गो-
स्तनी येह दाख के नाम हैं ॥ २२१ ॥ पकी हुई दाख सर शीतल नेत्र के हि-
त करने वाली पुष्ट भारी होती है ॥ और पाक रस में मधुर स्वर को अन्धा कर-
ने वाली कसेली मल मूत्र को करने वाली है ॥ २२२ ॥ और कौष्ठ वात को कर-
ने वाली शुक्र की उत्पन्न करने वाली तथा कफ पुष्टि रुचि इन को देने वाली
है ॥ और स्या ज्वर श्वास वात वातरक्त कामला इन को नाश करती है ॥ २२३
॥ और मूत्र कृच्छ्र रक्त पित्त मोह दाह शोष मदात्य इन को भी नाश करता
है ॥ और कच्ची उस्से अल्प गुणा वाली भारी होती है और कीही खही रक्त पि-
त्त को करने वाली है ॥ २२४ ॥ गोस्तनी दाख शुक्र की उत्पन्न करने वाली ।
और और रक्त पित्त की नाशक होती है ॥

[गोस्तनी मुनका इतिलोके ।] अवीजान्या स्वल्प-
तरा गोस्तनी सदृशी गुणैः ॥ द्राक्षा पर्वतजालघी

सास्त्रा श्लेष्मास्त्र पितृकृत ॥ २२५ ॥ द्राक्षा पर्व

तजायादृक् नाहशी कर्मर्दिका ॥

(क) अवीजा । ईषद्बीजा । किसिमिस इति लोके ।
पर्वजा यहारी इति लोके । कर्मर्दिका करौदी इति
लोके । [अथ क्षुद्र खज्जूरी । पिण्ड खज्जूरी चो
हारा ।] भूमिखज्जूरिका स्वादी दुरारीहा मृदु
च्छदा ॥ तथा स्कन्धफला काक कर्कटी स्वादु
मस्तका ॥ २२६ ॥ पिण्ड खज्जूरिका त्वन्या सादे
शेषश्चिमे भवेत् ॥ खज्जूरी गोस्तनाकारा पर
द्दीपादिहागता ॥ २२७ ॥

भा० गोस्तनी मुनक्का इत्प्रकार लोके में कहते हैं ॥ दूसरी बीजसे राहेत
वृद्धन छोटी मुनक्का से समान गुणमें होती है ॥ पहाड़ीदारव हलकी होती है
और कुछ खड़ी होती है ॥ तथा कफ अग्नपित्त को करनेवाली है ॥ २२५ ॥
जिस प्रकारकी पहाड़ीदारव होती है वैसेही करौंदी करौंदी होती है ॥
(क) अवीज अर्थात् छोड़े बीजवाली जिसको किसिमिस कहते हैं ॥
पर्वतजा पहाड़ी वृक्ष प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ कर्मर्दिका करौंदी वृक्ष
प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ अनन्तर खज्जूर भूमि खज्जूरका
स्वादी दुरारीहा मृदु च्छदा ॥ स्कन्धफल काक कर्कटी स्वादु मस्तका ।
येह खज्जूरके नाम हैं ॥ २२६ ॥ और दूसरी पिण्ड खज्जूर वोह पश्चिम में
होती है ॥ मुनक्का के समान जो खज्जूर होती है वह और दीप से यहा आई
है ॥

जायते पश्चिमे देशे साच्छेहारेति कीर्त्यते ॥

खज्जूरी त्रितयं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ २२८ ॥

स्निग्धं रुचकरं हृद्यं क्षतक्षय हरंगुरुः ॥ तर्पण

रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम् ॥ २२६ ॥ कोष्ठ
मारुतहृद्वल्यं चान्तिवातकफापहम् ॥ ज्वराति
सारक्षत्तृष्णाकासश्वासनिवारकम् ॥ २२७ ॥
मदमूर्च्छामरुत्पित्तमद्योद्धृतगदान्तकृत् ॥ म
हतीम्यां गुणैरल्पास्वल्पखर्ज्जूरिकास्मृता ॥
२२८ ॥ खर्ज्जूरीतरुतोयन्तु मदपित्तकरं भवेत्
॥ वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत् २२९ ॥

भा० ॥ और पश्चिमदेश में होती है उसको कुहारा सेसा कहते हैं ॥ तोनो
खजूर पीतल रसपाक में मधुर होती है ॥ २२८ ॥ और चिकनी रुचिको क
रनेवाली हृद्य क्षन क्षय इनकी नाश करनेवाली भारी ॥ तर्पण रक्त पित्तकी
नाशक पुष्टि विष्टम्भ शुक्र इनकी करनेवाली ॥ २२६ ॥ कुछ वात की नाश
क बलको देनेवाली वमन वात कफ इनकी नाशक ॥ ज्वर अनिसार क्षुधा
तृष्णा कास श्वास इनकी दूर करनेवाली ॥ २२७ ॥ मल मूर्च्छा वात पित्त
और मद्य के सेवन से उत्पन्न ज्वरों को नाश करनेवाली है ॥ वडी खजूर
सें से छोटी खजूर गुण में न्यून कहाँ गई है ॥ खजूर के द्रव्य का जल मद्य प
ित्त इनकी करनेवाला है ॥ और वात कफ नाशक रुचिको देनेवाला दीप
न बल शुक्र को करनेवाला है ॥ २२९ ॥

[अथ पिराड खर्ज्जूरी भेदः सुलेमानी ।] सुलेमा
नी तु मृदुला दलहीन फलाच सा ॥ सुलेमानीश्च
मभ्रान्ति राह मूर्च्छास्र पित्तहृत् ॥ २३३ ॥

[अथ बादाम ।] वातादो वातवैरी स्यान्नेत्रोपम
फलस्तया ॥ वाताद उष्णः सुस्निग्धो वातघ्नः
शुक्रकृद् गुरुः ॥ २३४ ॥ वाताद मज्जा मधुरो

दृष्यः पित्ता निलापहः ॥ स्निग्धोष्णः कफह-
नैष्टो रक्तपित्तविकारिणाम् ॥ २३५ ॥

भा० अग्नन्तर पिंड खजूरका भेद सुलैमानी है ॥ सुलैमानी मृदुला द-
लहीन फला । यह सुलैमानी खजूर के नाम हैं ॥ सुलैमानी खजूर अम-
आग्नि वाह रक्त पित्त इनको नाश करनेवाला है ॥ २३३ ॥

अग्नन्तर वादाम ॥ वाताद वातवैरी नेत्रोपमफल ॥ यह वादाम के नाम हैं
॥ वादाम उष्ण स्निग्ध वातनाशक शुक्र करनेवाला भारी होता है ॥ २३४
॥ वादाम की गिरिमधुर शुक्र को करनेवाली पित्त वात की नाशक ॥ स्नि-
ग्ध उष्ण कफ करनेवाली होती है ॥ और रक्त पित्त के रोग वालों को हिन-
नहिं होती ॥ २३५ ॥

[अथ सेव ।]

मुष्टिप्रमाणां वदरं सेवं सिवितिकाफलम् ॥ से-

वं समीर पित्तघ्नं दृहणं कफहृद् गुरु ॥ २३६ ॥

रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचि शुक्रकृत् ॥

[अथामृतफलम् ।] यत्त्वदकसान् काविलप्रमृति-
बुद्देशेषु नासयातीनि प्रसिद्धः ॥

अमृतफलं लघु दृष्यं सुखादुन्नीहरेतदोषान्

देशेषु मुद्गलानां बहुलन्तल्लभ्यते लोकैः ॥

भा० अग्नन्तर सेव । मुष्टिप्रमाणा वदर सेव सिवितिका फल । यह सेव के-
नाम हैं ॥ सेव वात पित्त का नाशक पुष्ट कफ को करनेवाला भारी होता है
॥ २३६ ॥ और रसपाक में मधुर शीतल रुचि और शुक्र को करनेवाला ।

॥ अग्नन्तर अमृतफल यह काविल - आवि देशों में नासपाती इस-
नामसे प्रसिद्ध है ॥ अमृतफल हलकी शुक्र को उत्पन्न करने वाला म-
धुर होता है और तीनों दीपों को नाश करता है ॥ मुगलों के देशों में
यह विशेष करके मिलता है ॥

[अथ पीलु ।] पीलुगुलफलः संस्नी तथा शीत

फलोऽपि च ॥ पीलुः श्लेष्मसमीरघ्नं पित्तसंमे-
दिगुल्मनुत् ॥ २३७ ॥ स्वादु तिक्तञ्च यत् पीलु
तन्नात्युष्णान्त्रिदोषहृत् ॥

[अथ अखरोट पीलुः।] पीलुः शैल भवो क्षौद्रः
कर्पूरालश्च कीर्तितः ॥ अक्षौद्र कोऽपि वाताम
सहशः कफपित्तहृत् ॥ २३८ ॥

भा० अनन्तर पीलू। गुल्फफल अंसी तथा शीतफल। यह पीलू के
नाम है ॥ पीलू कफ वात का नाशक पित्त को करने वाला भेदन करने वा
ला वायु गेला का नाशक होता है ॥ २३७ ॥ और जो पीलू मधुर तिक्त हो
ना है। वोह बहुत गरम नहीं होता और त्रिदोष को नाश करता है ॥

[अनन्तर अखरोट। पीलू शैल भव क्षौद्र कर्पूराल यह अखरोट
के नाम कहें हैं ॥ अखरोट भी बादाम के समान गुण में होता है और
कफ पित्त को करने वाला है ॥ २३८ ॥

अथ विजौरा।] बीजपूरो मानुलुङ्गो रुचकः
फलपूरकः ॥ बीजपूर फलं स्वादु रसैश्च दीप-
नं लघु ॥ २३९ ॥ रक्तपित्तहरं करणजिह्वा हृदय
शोधनम् ॥ श्वासकासारुचिहरं हृद्यं तृष्णा
हरं स्थितम् ॥ २४० ॥

भा० अनन्तर विजौरा। बीजपूर मानुलुङ्ग रुचक फलपूरक यह वि
जौरे के नाम है। विजौरे का फल रस में मधुर और अम्ल होता है ॥ दी
पन हलका होता है ॥ २३९ ॥ रक्तपित्त का नाशक होता है करण जिह्वा
हृदय इनका शोधन। तथा श्वासकास अरुचि इनका नाशक हृद्य
और तृष्णा का नाशक कहा गया है ॥ २४० ॥

[अथ विजौर भेद मधुकाकडि।] बीजपूरोऽपरः

प्रोक्तौ मधुरो मधुकर्कटी ॥ मधुकर्कटिका स्वा-
द्वी रोचनी शीतला गुरुः ॥ २४१ ॥ रक्तपित्तक्षय
श्वास कास हिक्का भ्रमापहा ॥

[अथ जम्बीरी द्वयम् ।] स्याज्जम्बीरी दन्त शठो
जम्भजम्भीरजम्भलाः ॥ जम्बीर मुष्णगुर्व-
म्लं वात श्लेष्म विबन्धनुत् ॥ २४२ ॥ शूलका-
सकफोत् क्लेश छर्दि तृष्णा मदोषजित ॥ आ-
स्य वैरस्य हृत्पीडा चन्हि मान्द्य कृमीन हरेत् ॥
२४३ ॥ स्वल्पजम्बीरिका नदत् तृष्णा छर्दि नि-
वारणी ॥

किस्मके

भा० अनन्तर बिजौरे को मेद मधुककड़ी ॥] और बिजौरे को मधुकक-
ड़ी कहते हैं ॥ मधुककड़ी मधुरुचिकी करनेवाली शीतल भारी ॥ २४१ ॥
रक्त पित्त क्षय श्वास कास हिक्का की भ्रम इनकी नाशक होती है ॥
अनन्तर दोनों किस्मके जम्बीरी नीबू ॥ जम्बीर दन्तशठ जम्भ जम्भीर जम्भ-
ला । ये जम्बीरी नीबू के नाम हैं ॥ जम्बीर उष्ण भारी स्वा वात कफ विब-
न्ध इनका नाशक ॥ २४२ ॥ और शूलकासकफ मतली वमन तृष्णा और
आम दोष इनको जीतने वाला है ॥ और मुखकी विरसता हृदय पीड़ा
अग्निमान्द्य कृमि इनका नाश करता है ॥ २४३ ॥

[नीम्बु ।]

निम्बूस्त्री निम्बुकं लीवे निम्बूकमपि कीर्तित
म् ॥ निम्बूकमम्लं वातघ्नं दीपनं पाचनं लघु ॥

॥ २४४ ॥ [अन्यच्च ।] निम्बूकङ्गुलि समी-

ह नाशनन्ती क्षामम्भ सुदर ग्रहापहम् । वात
पित्तकफ शूलिने हितं कष्ट नष्टरुचि रोचनम्

परम् ॥ २४५ ॥ त्रिदोषवन् हि क्षयवातरोगनि-
पीडितानां विष विह्वलानां । मन्दानले बद्ध
गुदे प्रदेयं विसृचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ २४६

[अथ मिष्टनिम्बू ।] मिष्टनिम्बू फलं स्वादु गुरु
मारुतपित्तवृत् ॥ गररोगविषध्वंसिकफोत्क्रे-
शिव रक्तहृत् ॥ २४७ ॥ शोषारुचितृषा छर्दि-
हरं बल्यञ्च वृंहणम् ॥ [अथ कर्मरङ्ग ।]
कर्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाह्मं कफवातहृत् ॥

भा० छोटो जंभीरा उसीके समान गुणमें होती है और तृषा वमन को
नाश करने वाली है ॥ [अनन्तर नींबू ।] नींबू ये स्त्रिलिंग में और न
पुंसक लिङ्ग में निंबुक और नींबुक भी कहा गया है ॥ नींबू खटावात
नाशक दीपन पाचन हलका होता है ॥ २४४ ॥ नींबू कमि मोह दून-
का नाशक तीखा खटा होता है ॥ और तने जूवे पेट को नाश करता है ।
और वात पित्त कफ इनके शूल में हित तथा कष्ट साध्य और नष्ट ऐसी
अरुचि रोग में अत्यन्त रुचिको करने वाला है ॥ २४५ ॥ त्रिदोष अग्निह-
य वातरोग इनसे पीडित और विषसे विह्वल इनको । और मन्दान्नि में
बद्ध गुदे में तथा विसृचिका में देना चाहिये ऐसा मुनियों ने कहा है ॥
॥ २४६ ॥ [अनन्तर सीठा नींबू ।] मधुर भारी वात पित्त का नाशक है ।
और गररोग विष इनका नाशक को उदरे देने वाला रक्त का नाशक ॥ २४७
॥ शोष अरुचि तृषा वमन इनका नाशक बलका हित और पुष्ट होता है ।
॥ अनन्तर कर्मरख ॥ कर्मरंग ये कर्मरख का नाम है ॥ कर्मरख उी
तल का विज्ञ मधुर खटा कफ वात का नाशक होता है ॥

अथ अम्बिली ॥ अम्बिका चुक्रिका म्लीच
चुक्रादन्त शठापिच । अम्लाच विच काचि

ज्वातिन्तिडी काचतिन्तिडी ॥२४८॥ अश्लिका-
श्ला गुरुर्वात हरी पित्त कफास्रकृत ॥ पक्कातुदी
यनी रूक्षा सरीषा कफ वातनुत् ॥२४९॥

अथाश्लवेतसः ।] स्वादश्लवेतसश्चुकं शतवेधि
सहस्रनुत् ॥ अश्लवेत समत्यश्लं भेदनं लघु दीप
नम् ॥ २५० ॥ हृद्योयं शूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमह-
र्षनम् ॥ रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं शोहोदावर्तनाश-
नम् ॥ २५१ ॥ हिक्कानाहारुचि श्वासकासाजीर्ण-
वमिप्रणुत् ॥ कफवातामयध्वंसि छागसांस
द्रवत्वकृत ॥ २५२ ॥ चरणकाम्बल गुरां ज्ञेयं लोह
सूची द्रवत्वकृत ॥

भा० अनन्तर इमली ॥ अश्लिका चुकिका अश्ली चुका वन्तशाठा ॥
अश्ला विचिका चिंचा तिन्तिडी काचतिन्तिडी येह इमली के नाम हैं ॥ २४८
इमली खट्टी भारी वातकी नाशक पित्त कफ रुक्त को करनेवाली है ॥
और पकी हुई दीपन स्तब्धी सर उष्ण कफ वातकी नाशक होती है ॥ २४९
अनन्तर अश्लवेत ॥ अश्लवेतस चुक शतवेधि सहस्रनुत् येह अमलवेत
के नाम हैं ॥ अमलवेत बहुत खट्टा भेदन हलका दीपन होता है ॥ २५० ॥
और हृद्य रोग शूल वायगोला इनका नाशक पित्त को करनेवाला और
रोमांच के करनेवाला ॥ रूखा मलमूत्र दोषका नाशक । और पित्तही
उदावर्तनका भी नाशक है ॥ २५१ ॥ और हिचकी अफारा अरुचि श्वा-
सकास अजीर्ण वमन इनका नाशक ॥ तथा कफ वात के रोगों को नाश
करनेवाला और चकरी के मांस की गलानेवाला है ॥ २५२ ॥ चरणकाम्बल
के ममान गुणमें है । और लोहेकी सुई को गलानेवाला है ॥

अथ विषाखिल ।] वृक्षाश्लान्तिन्तिडी कज्ज्व

चुक्रं स्यादस्ल वृक्षकम् ॥ वृक्षास्लमाममस्लोणां
वातघ्नं कफ पित्तलम् ॥ २५३ ॥ पङ्कान्तु गुरु संघा-
हि कटुकन्तुवरं लघु ॥ अस्लोणां रौचनं रुद्रं दी-
पनं कफवातकृत् ॥ २५४ ॥ तृषणाश्रो ग्रहणी गु-
ल्म शूल हृद्दोग जन्तुजित् ॥

अथ चतुरस्ल पञ्चास्लयोर्लसलाम् ।] अस्लवे-
तस वृक्षास्ल वृहज्जम्बीर निम्बुकैः ॥ चतुरस्लं
हि पञ्चाम्लं बीज पूरयुतैर्भवेत् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर वृक्षास्ल। वृक्षास्ल तित्तिङ्गीक चुक्र अस्लवृक्षक ॥ ये वि-
याम्बिल के नाम हैं ॥ विषमिद्रल कच्ची खट्टी उष्ण वातनाशक कफ
पित्त को करनेवाली होती है ॥ २५३ ॥ और यकीर्तुई भारी क्वाविज क
डूबी और कसैली हलकी ॥ खट्टी गरम अरुचिको करनेवाली स्वरुवी दी-
पन कफ वात को करनेवाली ॥ २५४ ॥ और तृषाववासीर संग्रहणी
वायुगोला शूल हृद्दोग कृमि इनको जीतने वाली है ॥

अनन्तर चतुरस्ल और पञ्चास्ल इन दोनों का लक्षण कहते हैं ॥ अस्ल
वेत वृक्षास्ल और बड़ा जम्बीर नींबू। इनसे चतुरस्ल होता है और विजौ
रे के मिलाने से पञ्चास्ल होता है ॥ २५५ ॥

अथ परिभाषा ।] फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्त
दुदाहृतम् ॥ विल्वान्यत्र विज्ञेय सामं तद्विगुण
धिकम् ॥ २५६ ॥ फलेषु सरसं यत्स्याद्गुणवत्त दुदा-
हृतम् ॥ द्राक्षा विल्वशिवादीनां फलं शुष्कं गुणा-
धिकम् ॥ २५७ ॥ फल तुल्य गुणं सर्वं मज्जान
अपि निर्दिशेत् ॥ फलं हिमाग्नि दुर्वात व्या-
ल कीटादि दूषितम् ॥ २५८ ॥ अकाल जडुः मू-

मौजभ्याकातीतं न भक्षयेत् ॥

पाकप्रतीतं पाकमति क्रम्य स्थितम् ॥

इति श्री भावप्रकाशे फलवर्गः ॥ ॐ ॥

भा० अनन्तर परिभाषा । फलोंमें जो पका हुआ है वोह गुणवाला कहा गया है ॥ वेलके सिवा जानना चाहिये कच्चा वेल गुणमें अधिक होता है ॥ २५६ ॥ फलोंमें रसके सहित जो होता है वोह गुणमें अधिक कहा है ॥ परन्तु दाखबेल आंवले इनके फल सूके हुवे गुणमें अधिक होते हैं ॥ २५७ ॥ सबके मज्जाओंका गुण फलके समान होता है ॥ हिम अग्नि दुष्ट वात सर्प कीट आदिसे दूषित ॥ २५८ ॥ और वे जरतुका फल कुत्तिन भूमिका वे पका हुआ ऐसे फलको भक्षण न करे ॥ इति भावप्रकाशे फलवर्गः ॥ ॐ ॥

अथ धातूपधातु रसोपस्वरत्नोपस्त्व विषोप
विष वर्गः ॥ [तत्र धातूनां लक्षणानि गु-

णाश्च ॥] स्वर्णं रूप्यञ्च ताम्रञ्च रङ्गं यस्य
दमेव च ॥ सीसं लौहञ्च सप्तैते धातवो गिरि
सम्भवाः ॥ १ ॥ बली पलित खालित्य का-
श्या बल्यजरा मयान् ॥ निवार्य्य देहं दधति
नृणां तद्घातवो मताः ॥ २ ॥

भा० अनन्तर धातु उपधातु रस उपरस स्त उपरस्त्व और विष उपविष इनका वर्ग ॥ ॥ उसमें धातुओंका लक्षण और गुण कहने हैं ॥ सोना रूपा ताम्बा रंग जस्त ॥ शीसा लोहा येह सान पहाड़ से उत्पन्न होनेवाली धातु हैं ॥ १ ॥ कुरियां बालोंकी सुफेदी गंजापन रुश ना और दुर्बलता बुढ़ापा । इन रोगोंको दूर करके जो मनुष्यों के शरीर को धारण करते हैं वोह धातु कहे गये हैं ॥ २ ॥

[तत्रादौ सुवर्णस्योत्पत्तिनाम लक्षण गुणाश्च ।

पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितान्द्रियाम् ॥
 पत्नीर्विलोचयलावण्यलक्ष्मीसम्पन्नयौवनाः ॥
 ॥३॥ कन्दर्पदर्पविध्वस्तचेतसो जातवेदसः ॥
 पतितं यद्वराष्ट्रे रेतस्तद्धेमतामगात् ॥४॥
 वशिष्टश्चेति सप्तैते कीर्तिताः परमर्षयः ॥ म-
 रीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥५॥
 कृत्विमञ्चापि भवति तद्रसेन्द्रस्य वेधतः ॥ स्व-
 र्गसुवर्गकनकं हिरण्यं हेमहाटकम् ॥६॥ त-
 पनीयञ्च गाङ्गेय कलधौतञ्च काञ्चनम् ॥ चा-
 मीकरं शातकुम्भं तथा कार्त्तस्वरञ्च तत् ॥७॥
 जाम्बूनदं जातरूपं महारजत इत्यपि ॥ दाहं
 रक्तं सितं च्छेदे निषेकं कुङ्कुमप्रभम् ॥८॥

भा० इनमें पहले सुवर्ण की अत्यन्त नाम लक्षण और गुण कहते हैं ॥ य-
 हले निज आश्रम में रहनेवाले जितेन्द्रिय सप्त ऋषियों की लावण्य लक्ष्मी
 इन करके युक्त यौवनवाली स्त्रियों को देखकर ॥३॥ कन्दर्पके दर्पसे ह-
 स्त होगया है चित्तजिस्का ऐसे अग्निका जो पृथ्विपर श्रुत गिरा वोह सो
 ना होगया ॥४॥ मरीची अंगिरा अत्री पुलस्त्य पुलः कृत ॥ वशिष्ट, येह
 सातमहर्षि कहे गये हैं ॥५॥ कृत्वि भी सुवर्ण होता है वोह पारेके मेदसे
 ॥ स्वर्गसुवर्ग कनक हिरण्य हेम हाटक तपनीय गाङ्गेय कलधौत का-
 चन ॥ चामीकर पातकुम्भ तथा कार्त्तस्वर ॥७॥ जाम्बूनद जातरूप म-
 हारजत, येह सुवर्ण के नाम हैं ॥ दाह में लाल काटनेमें सुफेद और कसौ
 दीमें केसर के समान होता है ॥८॥

तारं शुल्बोजितं स्निग्धं कोमलं गुरुहेमसत् ॥
 (सततमम्) । तच्छेतं कठिनं रूतं विवर्णं समलं

दलम् ॥ दाहे छंदे सितं श्वेतं कथेत्याज्यं लघुस्फु-
टम् ॥ ८ ॥ दलज्जोर इति लोके । स्फुटं यद्वना-
हतं स्फुटति । सुवर्णं शीतलं दृष्यं बल्यं गुरु
रसायनम् ॥ स्वादु तिक्तञ्च तुवरं पाके च स्वादु
पिच्छिलम् ॥ १० ॥ पवित्रं वृंहणं नेत्र्यं मेधा स्मृ-
तिमतिप्रदम् ॥ हृद्यमायुः करं कान्तिवाक् वि-
शुद्धिस्थिरत्वकृत् ॥ ११ ॥ विषद्वयक्षयोन्मादवि-
दोषज्वरशोषजित् ॥ बलं सर्वोर्ध्यं हरते नराणां
रोगज्जान् शोषयतीह काये ॥ असौख्यकर्त्ता च
सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणञ्च कुर्यात् ॥ १२ ॥
असम्यक्सारितं स्वर्णं बलं वीर्यञ्च नाशयेत् ॥
करोति रोगान् मृत्युञ्च तद्वन्था यत्नतस्ततः ॥ १३ ॥

भा० और चांदी ताम्बे को जीतने वाला । चिकना कोमल भारी ऐसा सुव-
र्ण बज्जत अच्छा है ॥ और जो कठिन रूखा विवर्ण समदल दलवाला
दाहमें और काटनेमें श्वेत हलका अलग होनेवाला बोह छेत है । बोह
त्यागने योग्य है ॥ ८ ॥ दलजोर इस प्रकार लोकमें कहने है ॥ सोना शीत
ल शुक्रको उत्पन्न करनेवाला बलकारी भारी रसायन ॥ मधुर तिक्त कसे
ला और पाकमें भी मधुर पिच्छिल ॥ १० ॥ पवित्र पुष्ट करने वाला नेत्रके
हित मेधा स्मृति बुद्धि इनको देनेवाला हृद्य आयु को करनेवाला कान्ति
वाणिकी शुद्धि स्थिर इनको करनेवाला ॥ ११ ॥ संसर्ग विषको नाश कर
नेवाला उन्माद विदोषज्वर शोष इनको जीतनेवाला है ॥

अशुद्ध स्वर्ण मनुष्यों का बल वीर्य के सहित हरना है । और बज्जत से रोगों
को करना है और काया को सुकाना है ॥ नथा क्लेश को करनेवाला होना है
॥ नथा मरण को भी करना है ॥ १२ ॥ अच्छी तरह नफूका हुआ सोना बल वी-
र्य को नाश करता है ॥ और रोगों को नथा मृत्यु को भी करना है इस वास्ते यत्न

सेकृत्के ॥१३॥

[अथ रूप्यस्योत्पत्तिनाम लक्षणगुणाश्च ।
 त्रिपुरस्य बधार्थीय निर्द्धिमिषैर्विलोचनैः ॥ नि-
 रीक्षया मास शिवः क्रोधेन परिपूरितः ॥ १४ ॥ अ-
 ग्निस्तत्कालमपतत्तस्यैकस्माद्विलोचनात् ॥
 ततोरुद्रः समभवद्वैश्वानर इव ज्वलन् ॥ १५ ॥
 द्वितीयादपतत्तेत्वादश्रुविन्दुस्तु वामकात् ॥ त-
 स्माद्रजतमुत्पन्नमुक्तकर्मसु योजयेत् ॥ १६ ॥
 कृत्रिमञ्च भवेत्तद्विवद्भादिरसयोगतः ॥ रूप्य-
 लु रजतं तारञ्चन्द्रकान्ति सितप्रभम् ॥ १७ ॥ गु-
 रुस्निग्धं मृदु श्वेतं दाहे छेदे घनक्षमम् ॥ चरणी
 ढ्यं चन्द्रवत्स्वच्छं रूप्यं नवगुणं शुभम् ॥ १८ ॥
 कठिनं कृत्रिमं रक्तं पीतदलं लघु ॥ दाहच्छे-
 दघर्नेर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥

भा० अनन्तर चाँदीकी उत्पत्ति नाम और लक्षण गुण ॥ त्रिपुरासुर के
 मारने के अर्थ क्रोध से भरे हुए शिवजीने निमेष रहित नेत्रों से देखा ॥ १४ ॥
 उसी काल उनके एक नेत्र से अग्नि निकला ॥ अग्नि के समान जा ज्वल्य
 मान उसे रुद्र हुआ ॥ १५ ॥ दूसरी चाँदी आँख से जो आँसू गिरी ॥ उसे चाँ-
 दी उत्पन्न हुई उसी को कहे हुए काम में योजना करे ॥ १६ ॥ और वोहरंगा
 और पारा आदिकी योजना से कृत्रिम भी होती है ॥ रूप्य रजत तार च-
 न्द्रकान्ति सितप्रभ ॥ १७ ॥ येह चाँदी के नाम हैं । चाँदी भारी चिकनी गुन्ना
 यम दाह में और काटने में खेत और चोट सहने वाली ॥ और चाँद के स-
 मान श्वेत स्वच्छ येह चाँदी के तो गुण शुभ हैं ॥ १८ ॥ और कृत्रिम कठि-
 न रक्त पीले परतों से युक्त हलकी दाह में काटने में और चोट में नष्ट

होनेवाली इस प्रकार की चांदी खराब होती है ॥ २८ ॥

रूप्यं शीतं कषायास्त्रं स्वादु पाकरसम् सरम् ॥

वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वात पित्तजित् ॥

॥ २० ॥ प्रमेहादिक रोगांश्च नाशयत्य चिराद्

ध्रुवम् ॥ ॥ तारं शरीरस्य करोति तापं बिद्धं घ-

नं यच्छति शुक्रं नाशम् ॥ वीर्यं बलं हन्ति त-

नीश्च पुष्टिं महागदान् शोषयति ह्य शुद्धम् ॥ २१ ॥

भा० चांदी शीतल कसैली खही और रस पाक में मधुर सर ॥ वयस को स्थापन करने वाली चिकनी लेखन वात पित्त को जीतने वाली है ॥ २० ॥ और प्रमेह आदि रोगों को निश्चय नाश करती है ॥ विन सोधि चांदी शरीर में जलन करती है ॥ और बन्धे हुए तथा गाढ़े शुक्र को नाश करती है ॥ और वीर्य बल तथा शरीर की पुष्टि को नाश करती है और बड़े रोगों को सुकाती है ॥ २१ ॥

अथ ताम्रस्य उत्पत्तिर्नाम लक्षण गु-

णांश्च ॥ शुक्रं यत् कार्तिकेयस्य पतितं धरणी

तले ॥ तस्मात्ताम्रं समुत्पन्नमिदमाहुः पुरा वि-

दः ॥ २२ ॥ ताम्रं मौन्दुवरं सुत्वं मुन्दुवरं मपि

स्मृतम् ॥ रविप्रियं स्नेह्यं सुखं सूर्य्यपथ्याय

नामकम् ॥ २३ ॥ जया कुसुमसङ्काशां स्निग्धं

मृदु घनक्षमम् ॥ लोहनागोज्झितं ताम्रं मार-

णाय प्रशस्यते ॥ २४ ॥ ह्यणं रुद्धमति स्तब्धं

श्वेतञ्चापि घनासहम् ॥ लोहनागयुतञ्चेति

शुल्वं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥ ताम्रं कषायं म-
 र्धं ज्वरिक्तं मम्लज्व पाके कटुसारकज्व ॥ पि-
 तापहं श्लेष्महरज्व शीतं तद्रोपणं स्यात्तृणुले
 खनज्व ॥ २६ ॥ पाण्डु दराशी ज्वरकुष्ठ कास
 प्रवास क्षयात् पीनसमम्ल पित्तम् ॥ शोथं कृ-
 मिं शूलमपाकरोति प्राहुः परं हण मल्पमेत-
 त् ॥ २७ ॥ रण्को दोषो विषे ताम्रे त्वसम्यग्मारि-
 तेऽष्टते ॥ दाहः स्वेदो रुचिर्मूर्च्छा क्लेशो रेको वमि-
 श्रमः ॥ २८ ॥ (रेकः विरेकः)

भा० अनन्तर ताम्बेकी उत्पत्ति नाम लक्षणा और गुणकी कहते हैं ॥
 कार्तिकेयका जो युक्त पृथ्वीपर गिरा ॥ उससे ताम्बा उत्पन्न हुआ ऐसा यह
 ले लोग कहते हैं ॥ २२ ॥ ताम्र औदुम्बर शुल्व उदुम्बर । रोपप्रिय म्लेच्छ
 मुख और सूर्यके पर्यय नाम ये ताम्बे के नाम हैं ॥ २३ ॥ जवाफूल के स-
 दृश वर्ण चिकना मुलायम चोटको सहनेवाला ॥ लोह शीश इनसे रहित
 ताम्बा छूकने के वास्ते अच्छा होता है ॥ २४ ॥ काला रूखा अति स्वेन
 और चोट को न सहनेवाला ॥ लोह शीशसे युक्त ऐसा ताम्बा खरब कहा है
 ॥ २५ ॥ ताम्बा कसैला मधुर तिक्त अम्ल याकमें कटु और सारक ॥ तथा पित्र
 का नाशक क्षणनाशक शीतल होता है और रोपण और हलका लेखन भी हो-
 ता है ॥ २६ ॥ और पाण्डु रोग उदर रोग ज्वरकुष्ठ कास प्रवास क्षय पीनस अम्ल
 पित्त ॥ शोथ कृमि शूल इनको नाश करता है और आचार्य अंको अल्पदं-
 हरा भी कहते हैं ॥ २७ ॥ विषमें रण्को दोष और अच्छी तरह न फूके ऊँचे में आ-
 ट दोष होते हैं ॥ दाह स्वेद अरुचि मूर्च्छा क्लेश वमन बिस्वैन भ्रम ॥ ये आठ
 दोष हैं ॥ २८ ॥ (अथ रङ्गस्य नाम लक्षणा गुणाः ।

वोहः

रक्तं वङ्गं त्रपु प्रोक्तं तथा मिचट मित्यपि ॥ खुर
 कं मिश्रकञ्चापि द्विविधं वङ्ग मुच्यते ॥ २९ ॥

उत्तमं खुरकं तत्र मिश्रकं त्ववरं मतम् ॥ रङ्गं ल-
घुसरं रूक्षं मुष्णं मेह कफ कृमीन् ॥ ३० ॥ निह-
न्ति पाण्डुं सञ्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक ॥
सिंहो यथा हस्ति गणं निहन्ति तथैव वज्रोऽखि-
लमेह वर्गम् ॥ देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं न
रस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ ३१ ॥

भा० अर्नन्तर रंगके नाम और लक्षण और गुण कहते हैं ॥ लाल रंगको न
पु तथा पिच्छरभी कहते हैं ॥ खुरक और मिश्रक ऐसे दो प्रकारका रंग हो
ता है ॥ ३० ॥ उसमें उत्तम खुरक और मिश्रक खणव होता है ॥ रंग
हल्का सर रूखा गरम होता है और प्रमेह कफ कृमि इनको ॥ ३० ॥
नाश करता है और पाण्डुरोग श्वास इनको भी नाश करता है ॥ तथा नेत्र
के हित और अल्पपित्त करने वाला होता है ॥ जैसे सिंह गज गणों को नाश क-
रता है वैसे रंग सम्पूर्ण प्रमेह वर्गको नाश करता है ॥ और देहका सौख्य
इन्द्रियकी प्रबलता और पुष्टिको भी निश्चय करता है ॥ ३१ ॥

[अथ यसद । यसदं रङ्गसदृशं रीति हेतुश्च त-
न्मतम् ॥ यसदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तह-
न्त ॥ ३२ ॥ चक्षुष्यं परमं मेहात् पाण्डुं प्रवासञ्च
नाशयेत् ॥ [अथ सीसस्योत्पत्तिर्नाम गुणाश्च ।
दृष्ट्वा भोगिसुतारम्यां वासुकिस्तु मुमीचयत् ॥ वी-
र्यं जातस्ततो नागः सर्वरोगापहो नृणाम् ॥ ३३ ॥
सीसं ब्रधञ्च वप्रञ्च योगेष्टं नागसामकम् ॥
(नागनामकम् । नागः मुजङ्गः इत्यादि ।)

सीसं रङ्गं गुणं ज्ञेयं विशेषान् मेह नाशनम् ॥ ३४ ॥
 नागस्तु नाग शततुल्य बलं ददाति व्याधिं विना-
 शयति जीवनमाप्नोति । वह्निं प्रदीपयति का-
 मवलं करोति मृत्युञ्जय नाशयति सन्ततसेवितः
 सः ॥ ३५ ॥ पाकेन हीनो किल बद्धनागो कुष्ठा-
 नि गुल्मांश्च तथाति कष्टान् ॥ कण्डू प्रमेहानल-
 सादपोथ भगन्मृगादीन् कुरुतः प्रभुको ॥ ३६ ॥

भा० अतन्तरजस्त । यस्य रंगसदृशरीति हेतु प्रथान् पीतलकाकार
 रणोक्तो कहा है ॥ जस्तकसेला तिल शीतल कफ पित्तका नाशक ॥
 ॥ ३२ ॥ परमनेत्रका हित प्रमेह पाण्डुरोग इवास इनकी भी नाशकरना है
 अतन्तर एषिकी उत्पत्ति नाम और गुण कहते हैं ॥ बासुकी ते सुंदर
 नागकन्याओं की देखकर वीर्यको छोड़ उल्टे मनुष्यों के सब रोगों का
 नाशक शीघ्र उत्पन्न करता ॥ ३३ ॥ सीस हृद्य यत्र योगेष्ठ नागं नामक
 अर्थात् सांपके नामवाला यह सीसके नाम है ॥ सीसा गुण में रंगके स
 मान होता है ॥ और विशेषकर के प्रमेह का नाशक है ॥ ३४ ॥ पीणा सी
 हाथीके समान बलको देता है और रोगोंके नाशकरना है तथा जीवन को द
 ता है और अग्निको दीपन करता तथा कामबलको देता है ॥ निरन्तर सेव
 न करनेसे वोह मृत्युको नाश करता है ॥ ३५ ॥ अच्छी तरह नफेके हुवे
 नाग और खर्गी को खानेसे वोह कृष्णबायंगला तथा अतिकष्ट खुजली
 ॥ प्रमेह अग्निमान्द्य वृजन भगन्मृग आदियों को करते हैं ॥ ३६ ॥

[अथ लोहस्योत्पत्तिर्नाम लक्षणं गुणश्च ।]

परा लोमिनदैत्यानां निहतानां सुरैर्युधि ॥ उत्प-
 न्नानि शरीरेभ्यो लोहानि विविधानि च ॥ ३७ ॥
 लोहोऽस्त्रीषास्त्वकं तीक्ष्णं पिण्डं कालाय सा-
 यसी ॥ गुरुता दृढनोतक्रेद्दः कष्टमलं दाहकारि

ता ॥ ३७ ॥ अश्वमदोषः सुदुर्गन्धो दोषाः सप्ताय-
 सस्य तु ॥ लोहं तिक्तं सरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥
 ॥ ३८ ॥ रूतं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥
 कफं पित्तं गरं शूलं शोथार्शं स्नीहं पाण्डुताः ॥ ४० ॥
 मेदो मेहं कृमीन् कुष्ठं ततः किट्टं तद्देव हि ॥
 पाण्डुत्वं कुष्ठमयं मृत्युदं भवेत् हृद्गो गण्डूलो कुरु
 तेऽश्वमरीञ्च ॥ नाना रुजानाञ्च तथा प्रकीर्णं
 करोति हृत्प्रासमशुद्धं लोहम् ॥ ४१ ॥ जीवहारी म-
 दकारी चायसं देहं शुद्धिं मदं संस्कृतं ध्रुवम् ॥
 पाटवं न तनुते शरीरके दारुणां हृदि रुजाञ्च य-
 च्छति ॥ ४२ ॥ कूष्माण्डं तिलतैलञ्च माषान्नं
 राजिकां तथा ॥ मद्यं मसूरं रसञ्चापि त्यजेन्नो-
 हस्यं सेवकः ॥ ४३ ॥

भा० अतन्तर लोहकी उत्पत्ति नाम लक्षण और गुण कहते हैं ॥ देवता
 ओं की लड़ाई में मारे जावे लोमिन देवों के ॥ शरीरों में से नाना प्रकार
 के लोह उत्पन्न हवे ॥ ३७ ॥ लोह शस्त्रक तीक्ष्ण पिण्डकाल प्राप्त ।
 यह लोह के नाम है ॥ भारीपन हृदय मत्ली करना कस दाह करना ॥
 ॥ ३८ ॥ अश्वमरीदोष मृदु दुर्गन्धता यह सान्दोष लोहे के हैं ॥ लोह ति-
 क्त सर शीतल मधुर कसेला भारी ॥ ३९ ॥ रूतवा रसायन नेत्र के हित ।
 लेखन और वातल है ॥ और कफ पित्त विष शूल सृजन बवासीर पिल-
 ही पाण्डुरोग ॥ ४० ॥ मेद प्रमेह कृमि कुष्ठ इनको जीतता है । और उस्का
 कीटभी उसीके समान होता है ॥

अशुद्ध लोहा पाण्डुत्व कुष्ठ रोग और मृत्यु इनको करने वाला है और हृद-
 रोग मल अश्वमरी इनको भी करता है । तथा अनेक प्रकार की पीड़ाओं का

प्रकोप और हल्लास इनको भी करता है ॥ ४१ ॥ विन शुधानोहाजीवन का ना
शक मद करने वाला और वमन विरेचन करने वाला निश्चय है ॥ और शरीर
में चैतन्य नानही करता तथा हृदय में दाहण पीड़ा भी करता है ॥ ४२ ॥ पेटा
तिल तेल उड़द राई ॥ मदिरा खटाई इनको लोह का सेवन करने वाला त्याग
देवे ॥ ४३ ॥

[नव सार लोहस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

क्षमा भृच्छि खराकारा न्यङ्गान्यक्षेन लेपयेत् ॥

लोहे स्युर्यत्र सूक्ष्माणि तत्सारमभिधीयते ॥ ४४ ॥

लोहं साराह्वयं हन्यात् ग्रहणी मति सारकम् ॥

अर्द्धं सर्वाङ्गं वातं शूलञ्च परिणामजम् ॥ ४५ ॥

रुर्हिञ्च पीनसं पित्तं श्वासं कासं च पोहति ॥

भा० उसमें सार लोह के लक्षण और गुण कहते हैं ॥ पहाड़ वा शिखरा का
र अंगों की खटाई से लेप करें ॥ उस लोहे में से जो सूक्ष्म अंश होते हैं ॥ उस
को सार कहते हैं ॥ ४४ ॥ सार नामक लोह संग्रहणी अतीसार ॥ और सर्वा
ङ्ग तथा सर्वाङ्ग वात तथा परिणाम शूल इनको नाश करता है ॥ ४५ ॥
और वमन पीनस पित्त श्वास कास इनको भी नाश करता है ॥

[अथ कान्तलोहस्य लक्षणं गुणाश्च ॥] यत पा

त्रेन प्रसरति जले नैलविन्दुः प्रतप्ते हिङ्गुर्गन्ध

न्त्यज्यति च निजं तिक्ततां निम्बबल्कः ॥ ४६ ॥

तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिं क

ष्णाङ्गः स्यात् सजलचरणकः कान्तलोहं तदुक्त

म् ॥ ४७ ॥ गुल्मीदराशीः शूलाममामवातं भग

न्दम् ॥ कामला शीथ कुष्ठानि क्षयं कान्तमयो

हरेत् ॥ ४८ ॥ सीहानमस्तु पित्तञ्च यक्ष्णचापि
 शिरोरुजम् ॥ सर्वात्रोगान् विजयते कान्तलो-
 हं न संशयः ॥ ४९ ॥ बलं वीर्यं वपुः पुष्टिं कुरु-
 तेऽग्निं विवर्द्धयेत् ॥

भा० कान्त लोहका लक्षण और गुण कहते हैं ॥ जिस जलके भरे पात्र में तेलकी बुन्द नहीं फैलती और तपाने में हींग सी गन्ध निकलती है ॥ तथा नीमकी छाल सा कड़वा होता है ॥ ४८ ॥ और जिसे गरम वृद्ध शिखर के आकार ऊंचा होता है परन्तु ज़मीन पर नहीं गिरता ॥ और जलके सहित चने काले हो जाते हैं उसको कान्तलोह कहा है ॥ ४९ ॥ कान्तलोह वायुगोला उदररोग ववासीर मूल आम और आमवात भगंबर ॥ कामला घृजन कुष्ठ और क्षय इनको नाश करता है ॥ ४८ ॥ और पिलही अश्वपित्त यक्ष्ण शिरकी पीड़ा ॥ तथा सबरोग इनको कान्तलोह जीतता है इसमें जोड़ें संशय नहीं ॥ ४९ ॥ और बलवीर्य शरीरकी पुष्टि करता है तथा अग्नि को बढ़ाता है ॥

[अथ कीटी।]

ध्माय मानस्य लोहस्य मलं मण्डूरमुच्यते ॥ लो-
 हं सिंहानिका किटी सिंहानञ्च निगद्यते ॥ ५० ॥
 यल्लोहं यद्गुणं प्रोक्तं तत् किट्सयित्करणम् ॥

भा० अनन्तर कीटी । नपाये लुचे लोहेका जो कीटी है उसको मंडूर कहते हैं ॥ लोह सिंहानिका किटी सिंहान भी कहते हैं ॥ ५० ॥ जो लोहा जिस गुण वाला कहा गया है उसका कीट भी उसी गुण वाला है ॥

अथोपधातवः । तत्रोपधातूनां लक्षणं गुणञ्च ।

सप्तोपधातवः स्वर्णमादिकं तारमादिकम् । तु
 ल्यंकांस्यं त्रितीतिश्च सिन्दूरश्च शिलाजतु ॥ ५१ ॥

[उपधातवः गौराण्यधातवः ।] उपधातुषु सर्वेषु तत्त-
 दातु गुणा अपि ॥ सन्ति किं तेषु तेऽत्रोना तरं

शाल्य भावतः ॥ ५२ ॥ [तत्र सुवर्णमाक्षिकस्य
नामानि गुणाश्च । स्वर्णमाक्षिकमाख्यातं ता-
पीजं मधुमाक्षिकम् ॥ ताप्यं माक्षिकधातुश्च
मधुधातुश्च सस्मृतः ॥ ५३ ॥ किञ्चित् सुवर्णं
साहित्यात् स्वर्णमाक्षिकमोरितम् ॥ उपधा-
तुः सुवर्णस्य किञ्चित् स्वर्णं गुणान्वितम् ॥ ५४ ॥

भा० अनन्तर उपधातुको कहते हैं ॥ उसमें उपधातुवों का लक्षण
और गुण कहते हैं ॥ सोना माखी रूपा माखी लीला घोघा कांसा
पीतल सिंदूर शिलाजीत । येह सात उपधातु हैं ॥ ५२ ॥ सब उपधातु
वों में उन २ धातुवों के गुण भी हैं ॥ तो क्या उनमें वो घट के हैं क्यों कि उन
उन के अंश अल्प होने से ॥ ५३ ॥ उनमें सोना माखी के नाम और गु-
ण कहते हैं ॥ सुवर्णमाक्षिक तापीज मधुमाक्षिक ॥ ताप्य माक्षिक
धातु मधुधातु । येह उसके नाम हैं ॥ ५३ ॥ कुछ एक सोने के मिले हो-
ने से सोना माखी कही गई है ॥ सोने की उपधातु कुछ एक सोने के गुण
से युक्त होती है ॥ ५४ ॥

नथाच काञ्चना भावे दीयते स्वर्णमाक्षिकम्
किन्तु तस्यानुकं पत्वात् किञ्चिद्गुणान्वितः
॥ ५५ ॥ न केवलं स्वर्णगुणाः वर्तन्ते स्वर्णमाक्षि-
कं ॥ द्रव्यान्तरस्य संसर्गात् सन्त्यन्येऽपि गुणा-
यतः ॥ ५६ ॥ सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं सृष्यं
रसायनम् ॥ चक्षुष्यं वसिरु कुष्ठ पाण्डु मेह
विषोदरान् ॥ ५७ ॥ अर्शः शोथं विषङ्गरुदं
त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥

मन्दानलत्वा बलहानि मुयं विष्टम्भतां नेत्रं
गदान् सकुष्ठान् नथैव मालां वरापूर्विका
ञ्च करोति तापीज मण्डमेतद् ॥ ५८ ॥

भा० वैसेही स्वर्ण के अभाव में सोना मारखी दी जाती है । क्योंकि उससे पीछे कहने से उसे कुछ एक गुण में न्यून है ॥ ५५ ॥ केवल सुवर्ण के ही गुण सोना मारखी में नहीं हैं । किन्तु द्रव्यान्तर के संयोग से और भी गुण हैं ॥ ५६ ॥ सोना मारखी मधुर निक्त शुक को उत्पन्न करने वाली रसायन नेत्र के हित है । और वास्तिकी पीड़ा कुष्ठ पाण्डुरोग प्रमेह विष उदर रोग ॥ ५७ ॥ वक्ता सीर शोथ विष कंडू त्रिदोष इनको भी नाश करती है ॥ बिना सीधी सोना मन्दानल बल की हानि अत्यन्त विष्टम्भ का होना नेत्र रोग कुष्ठ ॥ वैसे ही गंडमाला इनको करती है ॥ ५८ ॥

अथ तारमालिकस्य नाम गुणाः । तारमालिकं
मन्यत्तु तद्वे द्रज तोपमम् । किंचिद्रजत साहि
त्यात् तारमालिक मीरितम् ॥ ५९ ॥ अनुकल्प
तया तस्य ततो हीन गुणाः स्मृताः ॥ न केवलं रू
प्य गुणाः यतः स्यात्तारमालिकम् ॥ ६० ॥ स्वादु
पाकं रसे किञ्चित् निक्तं दृष्ट्यं रसायनम् ॥ चक्षु
ष्यं वास्तिरुक् कुष्ठ पाण्डु मेह विषोदरम् ॥ ६१ ॥
अर्शः शोथं क्षयङ्कण्डं त्रिदोष मपि नाशयेत् ॥

भा० अने नरूप रूपा मारखी के नाम और गुण ॥ और दूसरी रूपा मारखी चंदी के समान होती है ॥ कुछेक चांदी के मिलने से रूपा मारखी कही है ॥ ५९ ॥ उसके पीछे कहने से उसे हीन गुण कही गई है ॥ केवल चांदी के गुण रूपा मारखी में नहीं हैं ॥ ६० ॥ जैसे पाक में मधु रस में कुछ निक्त शुक को उत्पन्न करने वाली रसायन नेत्र के हित है और पेड़ की पाड़ा और कुष्ठ पाण्डुरोग

प्रमेहविषमदरोग ॥ ६१ ॥ वचासीर मूत्रज ज्ञेय कंठू विपदोष इनको नाश करती है ॥

मन्दानलत्वं बलहानि मुग्धा विष्टम्भितान्नेत्रग-
दानसकुष्ठान् । तथैव मालां ब्रूया पूर्व्वि काञ्च
करोति नापीज भिदञ्च तद्वत् ॥ ६२ ॥

अथ तूतीआ ।] तुल्यं विनुन्नकञ्चापि शिखि
ग्रीवं मयूरकम् ॥ तुल्यं नाम्नोपधातुर्हि किञ्चि
ताम्रेण नद्भवेत् ॥ ६३ ॥ किञ्चित्ताम्रगुणान्तस्मा
द्वह्यमाणा गुणाञ्च तत् ॥ तुल्यकं कटुकं क्षारं क-
षायं वामकं लघु ॥ ६४ ॥ लेखनभेदनं
शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ विषाणमकुष्ठ
कराडूघ्नं र्वर्परञ्चापि तज्जुगाम् ॥ ६५ ॥

भा० विनसोधी जड़ रूपी मारखी मन्वाग्नि बलहानो विष्टम्भिता नेत्ररोग
कुष्ठ गंडमाला इनको करती है ॥ ६२ ॥

अनन्तर तूतिया ।] तुल्य विनुन्नक शिखीग्रीवं मयूरक । येह नीलेथोषे
के नाम हैं ॥ नीलाथोथा तांवेकी उपधातु और थोड़े ताम्रसे होता है इसका
से थोड़ेसे तांवेके गुण और कहे जड़े गुण होते हैं ॥ नीलाथोथा कड़वा क्षार
कसैला वमन करने वाला हलका ॥ ६४ ॥ लेखन भेदन शीतल नेत्र के हि-
न कफ पित्तका नाशक है । और विष अपमरी कुष्ठ कंठू इनका नाशक
होता है ॥ और र्वपरिया भी उसी समान गुणमें है ॥ ६५ ॥ ॥ के

अथ कांसो ।] ताम्रत्वपुज मारख्यात दूगंस्य घोष
ञ्च कंसकम् ॥ उपधातु भवेत् कांस्यं द्वयोस्तरणि
रङ्गयोः ॥ ६६ ॥ कांस्यस्य तु गुणान्नोऽप्योनि

सदृशा जनैः ॥ संयोगज प्रभावेण तस्यान्येऽपि
गुणाः स्मृताः ॥ ६७ ॥ कांस्य दुःषायन्ति कौष्णं
लेखनं विशदं सरम् ॥ गुरुनेत्रहितं रूक्षं कफ
पित्तहरम्यरम् ॥ ६८ ॥

भा० अनन्तर कांसा ।] ताम्बे और रंगों से उत्पन्न हुवा प्रसिद्ध है ॥ कांस्य
घोष कंसक । यह कांस के नाम है ॥ कांसा ताम्बा और रंगों का उपधातु
है ॥ ६६ ॥ कांसे के गुण अपने कारण के समान जानने चाहिये ॥ संयोगज
प्रभाव से उसके और भी गुण कहते हैं ॥ कांसा कसेला तिक्त उष्ण लेखन सर
विषद ॥ भारी नेत्र के हित रूखा कफ पित्त का नाशक है ॥ ६८ ॥

[तथा पीतार । कांची पीतारि ।] पित्तलं त्वार कूटं
स्यादारो रीतिश्च कथ्यते ॥ राजरीतिः ब्रह्मरीतिः
कपिला पिङ्गलापि च ॥ ६९ ॥ रीतिरप्युपधातुः
स्यात्ताम्रस्य यसदस्य च ॥ पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः
स्वयोनि सदृशा जनैः ॥ ७० ॥ संयोगज प्रभावेण
तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः ॥ रीतिका युगलं रूक्षं
तिक्तञ्च लवणं रसे ॥ ७१ ॥ शोथनं पाण्डुरोगघ्नं
कृमिघ्नं नातिलेखनम् ॥

भा० अनन्तर पीतल और कच्चा पीतल । पित्तल आस्कर और रीति ।
येह पीतल के नाम हैं ॥ और राजरीति ब्रह्मरीति कपिला पिङ्गला । येह
कच्चे पीतल के नाम गुण हैं ॥ ६९ ॥ पीतल भी ताम्बा और जस्त का उ
पधातु कहै पीतल के गुण अपने कारण के सदृश जानने चाहिये ॥ ७० ॥
संयोगज के प्रभाव से उसके और गुण कहते हैं ॥ दोनों पीतल रूखे तिक्त
लवण रस में हैं ॥ ७१ ॥ और शोथन पाण्डुरोग के नाशक कृमि नाशक

न बद्धत लेखन हे ॥

अथ सिन्दूर ।] सिन्दूर रक्त रोगाश्च नाग गर्भश्च
सीसजम् ॥ सीसोपधातुः सिन्दूरगुणैस्तत् सी
सवन्मतम् ॥ संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गु
णाः स्मृताः ॥ ७३ ॥ सिन्दूर मुष्णं वीसर्प कुष्ठ क
ण्डू विषापहम् ॥ भग्नसन्धान जननं व्रण शोधन
रोपणम् ॥ ७४ ॥

भा० अनन्तर सिन्दूर ।] सिन्दूर रक्त रोगाश्च नाग गर्भ सीसज । येह सिन्दूर
केनामहै ॥ ७३ ॥ सिन्दूर सीसिका उपधातुहै और गुण सीसके समान
हैं ॥ तथा संयोगज प्रभावसे उसके भी और गुण कहेहैं ॥ ७३ ॥ सिन्दूर ग
र्भ विसर्प कुष्ठ खुजली इनका नाशक ॥ और दूदड़वे को जोड़ने वाला ।
व्रण शोधन और रोपण है ॥ ७४ ॥

अथ शिलाजत ।] तदुत्पत्तिर्नाम लक्षणं गुण
श्च ।] निदाघे धर्म सन्तप्ता धातु सारन्धरा धरा
॥ निर्यासवत् यमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्ति
तम् ॥ ७५ ॥ सौवर्ण राजतन्ताम्ब साय सन्तश्चतु
र्विधम् ॥

भा० अनन्तर शिलाजीत ।] उसकी उत्पत्ति नाम लक्षण गुण ॥ ग्रीष्म
में सन्तप्त जड़ों पर्वत धातुके सार को गोदके समान छोड़नेहैं उसको शि
लाजीत कहतेहैं ॥ ७५ ॥ सोनेका चान्दीका ताम्बेका और लोहेका
ऐसे चार प्रकार का बोह होता है ॥

शिलाजत्वदिजतु च शैल निर्यास इत्यपि ॥
॥ ७६ ॥ गेरियमप्रसजश्चापि गिरिजं शैल धातु
जम् ॥ शिलाजं कटु तिक्तौष्णं कटु पाकं रसा-

यनम् ॥ ७३ ॥ छेदियोग वहं हन्ति कफ मेदाश्म
 शर्कराः ॥ मूत्र रुच्छं क्षयं श्वासं वाताशौमि
 च पाण्डिताम् ॥ ७४ ॥ अपस्मारन्तयोन्मादं
 शोथ कुष्ठोदर कृमीन् ॥ ७५ ॥ सौवर्णन्तु जवा
 पुष्प वर्णं भवति तद् रसात् ॥ मधुरं कटु तिक्त
 च शीतलं कटु पाकि च ॥ ७६ ॥ राजतम्याण्डु
 रं शीतं कटुकं स्वादु पाकि च ॥ ताम्रं मयूरक
 रणभं तीक्ष्णमुष्णञ्च जायते ॥ ७७ ॥ लौहं
 जटायु पलाभं तत्तिक्तं लवणम्भवेत् ॥ विपा
 के कटुकं शीतं सर्वं श्रेष्ठं मुदाहृतम् ॥ ७८ ॥

भा० शिलाजतु अद्रिजतु शैल निर्यास ॥ ७६ ॥ गैरेय अश्मज गिरिज
 शैलधातुज यह शिलाजीत के नाम हैं ॥ शिलाजीत कहवा तीताउष्ण
 पाकमें कटु रसायन है ॥ ७७ ॥ और छेदन करनेवाला तथा योग वाही
 है । और कफ मेद अश्रमरी शर्करा इनको नाश करता है ॥ तथा मूत्र
 रुच्छ क्षय श्वास वातकी ववासीर पाण्डिता ॥ ७४ ॥ मिरली उन्माद शो
 थ कुष्ठ रोग उदर रोग कृमि इनको नाश करता है ॥ ७५ ॥ सौवर्ण शिलाजी
 त वर्णमें जवा फूल के समान होता है ॥ और रसमें मधुर कटु तिक्त
 शीतल पाकमें कटु होता है ॥ ७६ ॥ चंदी के मेलका शिलाजीत वर्णमें
 श्वेत शीतल कटु पाकमें मधुर होता है ॥ तंबेका वर्णमें मोर के कंठ के
 समान नीला उष्ण होता है ॥ ७७ ॥ लोहे का रंगन में निकले पंख समान
 होता है और वोह तिक्त लवण होता है ॥ तथा पाकमें कटु शीतल और
 सबमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ७८ ॥

[अथ रसः ।] तत्र रसस्य निरुक्तिः ।]

रसायनार्थिभिर्लोकेः पारदो रस्यते यतः ॥

ततो रस इति प्रोक्तः स च धातुरपि स्मृतः ॥ ८३ ॥

[अथ पारदस्योत्पत्तिर्लक्षणानामगुणाः ।]

शिवाङ्गत्वं प्रच्युतं रेतः पतितन्धराणी तले ॥ तद्दे

हंसारजातत्वाच्छुक्लमच्छमधूञ्च तन ॥ ८४ ॥

क्षेत्रभेदेन विज्ञेयं शिववीर्य्यञ्चतुर्विधम् ॥

श्वेतं रक्तन्तथा पीतं कृष्णान्तस्तु भवेत् क्रमात् ॥

८५ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च खलु जा-

तितः ॥ श्वेतं प्रास्तं रुजां नाशे रक्तङ्गुल रसाय-

नम् ॥ ८६ ॥ धातुवैधेतु तत्पीतं खेगतौ कृष्णमे-

व च ॥ पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः ॥ ८७ ॥

भा० अनन्तरपारा ।] और उसकी निरुक्ति । जिस कारण रसायन चाह
नेवाले लोग पारा खाते हैं उस कारण रस इस प्रकार से कहा है और बोह
धातु भी कहा गया है ॥ ८३ ॥ अनन्तर पारे की उत्पत्ति लक्षणानामगुण
कहते हैं ॥ शिवजी के अंग में निकला हुआ वीर्य्य पृथ्वी पर गिरा ॥ उन
के देह सासे उत्पन्न होने से बोह श्वेत और सच्छुद्ध हुआ ॥ ८४ ॥ पारा
क्षेत्र भेद से चार प्रकार का जानना चाहिये ॥ सफेद लाल पीला काला
क्रम से ॥ ८५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन जाति से होना है ॥ श्वेत
रोगों के नाश में प्रशस्त है । और लाल रसायन ॥ ८६ ॥ धातु त्रेषु में पीला
और और आकाश गमन में काला प्रशस्त है ॥ पारद रसधातु रसेन्द्र महा
रस ॥ ८७ ॥

चपलः शिववीर्य्यञ्च रसः स्मृतः शिवाह्वयः ॥

पारदः पङ्कजः क्षिप्रः क्षिप्रो रसायनः ॥

॥ ८८ ॥ योगवाही महावृष्यः सदा दृष्टिबलप्रदः ॥

सर्वामय हरः प्रोक्तो विशेषात्सर्व्वं कुष्ठनुत् ॥
 ॥ ८६ ॥ स्वस्थो रसो भवेद् ब्रह्मा बद्धो ज्ञेयो ज-
 नार्हिनः ॥ रञ्जितः कामितश्चापि साक्षाद्देवो
 महेश्वरः ॥ ८७ ॥ मूर्च्छितो हरति रुजं बन्धन
 मनुभूयस्वे गतिं कुरुते ॥ अजरी करोति हि स-
 तः कोऽन्य कुरुणा करः सूतात् ॥ ८८ ॥

भा० चपल शिववीर्य्य रससूत शिवनाम येन पारेके नाम है ॥ पारा
 छ रससे युक्त चिकना विदोषनाशक रसायन ॥ ८८ ॥ योगवाही अ-
 त्यन्त शुक्रको करनेवाला और दृष्टिबल को देनेवाला है ॥ तथा सब
 रोगोंका नाशक और विशेषकरके कुष्ठ नाशक कहा है ॥ ८६ ॥ स्वस्थ
 रसब्रह्मा होता है और बन्धाहुवा पारा विष्णु होता है ॥ रञ्जित नया का-
 मित साक्षात् महादेव है ॥ ८७ ॥ मूर्च्छित पारा रोगोंको नाश करता है और
 बन्धन को जानकर आकाशमें गतिकी करता है ॥ तथा मराज्जवा अजर
 करता है ॥ इसवास्ते पारेसे सिवाय और कौन कुरुणा कर है ॥ ८८ ॥

असाध्यो यो भवेद्दोगो यस्य नास्ति चिकित्सि-
 तम् ॥ रसेन्द्रा हन्ति तं रोगं नरकुञ्जरवाजिना-
 म् ॥ ८९ ॥ मलं विषं वह्निं गिरित्व चापलनैस-
 गिकन्दोषमुशान्तिपारदे ॥ उपाधिजो हौत्वपु
 नागयोगजो दोषो रसेन्द्रे काथितो मुनिश्वरेः ॥
 ॥ ९० ॥ मलेन मूर्च्छा मरणां विषेण दाहोऽ-
 ग्निना कष्टतरः शरीरे ॥ देहस्य जाड्यद्विरिणा
 सदा स्यात् चाञ्चल्यतो वीर्य्ये हतिश्च पुंसाम् ॥
 ॥ ९१ ॥ वद्धेन कुष्ठस्युजगेन घण्डो भवेत्तो-

ऽसौ परिशोधनीयः ॥ वन्हिर्विष मलञ्चेति मुख्या
 दोषास्त्वयोरसे ॥ ६५ ॥ एते कुर्वन्ति सन्तापं मृतिं
 मूर्च्छां नृणां क्रमात् ॥ अन्येऽपि कथिता दोषा
 भिषगभिः पारेदे यदि ॥ ६६ ॥ तथाप्येते त्रयो दो
 षा हरणीया विशेषतः ॥ संस्कारहीनं खलु सत्
 राजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम् ॥ देहास्य ना
 शं विदधाति नूनं कष्टांश्च रोगाञ्जनयेन्नराणा
 म् ॥ ६७ ॥

भा० जो रोग असाध्य हो जाता है और जिसकी दवा नहीं है ॥ उस रोग को
 और मनुष्य घोड़ा हाथी इनके रोगों को पारा नाश करता है ॥ ६२ ॥ मल
 विष वन्हि गिरित्वचपलता ये पारेमें नैसर्गिक दोष कहे हैं ॥ दौ उपाधि
 सीसा और रंगा इनके योगसे उत्पन्न ज्वरे दोष पारेमें मुनिश्वरीने कहा है ॥
 ॥ ६३ ॥ मलसे मूर्च्छा वियसे मरण अग्निसे शरीरमें अत्यन्त कठिन बाह
 गिरिसे देहमें सदा जड़ता होती है और चंचलतासे मनुष्यों के शरीर का नाश
 होता है ॥ ६४ ॥ रंगे से कोढ़ सीसे से नपुंसकता होती है । इसवास्ते यह पा
 रा शोधने योग्य है ॥ पारेमें तीन दोष मुख्य हैं वन्हि विष और मल ॥ ६५ ॥
 यह दोष मनुष्यों की क्रमसे सन्ताप मृत्यु मूर्च्छा करते हैं ॥ यदि और भी
 दोष वेदों ने पारेमें कहे हैं ॥ ६६ ॥ परंतु नयाधि यह तीन दोष विशेष कर
 के बू करने चाहिये ॥ संस्कार हीन पारे को जो सेवन करता है उल्को बाधा
 करता है ॥ और मनुष्यों की देह का नाश करता है तथा अत्यन्त कष्ट साध्य
 रोगों की भी करता है ॥ ६७ ॥

अथोपरसानां लक्षणम् ।] गन्धो हिङ्गुल मध्र
 तालकं शिलाः स्रोतोऽञ्जनराट्ङ्गराम् ॥ राजा
 वर्त कचुब्धको स्फटिकया शङ्खः खदी गेरिकम्

कासीसं रसकङ्कुपर्द सिकता बोलाश्च कङ्कुष्ठ
क्रम ॥ सौराष्ट्री च मना अमी उपरसाः सूतस्य कि
ञ्चिदुणौः ॥ ६२ ॥ (उपरसा गौरा रसाः।)

[हिङ्गुलस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

हिङ्गुलन्दरदं स्नेच्छ मिङ्गुलम्पूर्णा पारदम् ॥

दरदं स्त्रिविधः प्रोक्तं चर्म्मरः शुक्रतुण्डकः

॥ ६३ ॥ हंसपादस्तृतीयः स्याद्गुणवानुत्तरोत्तर

म् ॥ चर्म्मरः शुक्लवर्णः स्यात्सपीतः शुक्रतु

ण्डकः ॥ ६४ ॥ जवाकुसुम सङ्गणो हंसपादो

महोत्तमः ॥ तिक्तं कषायं कटु हिङ्गुलं स्यान्ने

त्रामयघ्नङ्गफ पित्तहारि ॥ हल्लासकुष्ठज्वर

कामलांश्च स्नीहामवातौ च गरन्निहन्ति ॥ ६५

ऊर्ध्वपातन युक्त्या तुडमरुयन्त्रपाचनम् ॥

हिङ्गुलन्तस्य सूतन्तु शुद्धमेवं न शोधयेत् ॥ ६६

भा० अनन्तर उपरसोंका लक्षण ॥ गन्धक सिंगरफ अश्वक हरताल
मनसिल सुरमा खुहागा ॥ रेह चुम्बक पस्थर विज्ञौर पंख खडिया मा
टी मेरू ॥ ६८ ॥ हीरा कसीस रसकपूर कीड़ी रेत वो ल इसको फूल
सन्तुभी कहते हैं पहाड़ी मट्टी ॥ सोरही माटी येह उपरस कहें गये हैं ॥
पारेका कुछ एक गुण इनमें होता है ॥ ६२ ॥

उपरस अर्थात् गौरा रस।] सिंगरफ के नाम और गुण ॥ हिङ्गुल
दरद स्नेच्छ हिङ्गुल पूर्णपारद। येह सिंगरफ के नाम हैं ॥ सिंगरफ ती
न प्रकारका होता है ॥ चर्म्मर शुक्र तुण्डक ॥ ६३ ॥ और तीसरा हंसपा
द। येह उत्तरोत्तर गुणमें अधिक ॥ चर्म्मर सफ़ेद होता है। और पीला
ई के सहित शुक्र तुण्डक होता है ॥ ६४ ॥ हंसपाद जवा फूल के समान

होता है । बोह बड़त उत्तम है ॥ तिक्त कसैला कटुवा हिंगुल होता है ॥ और ने
त्र रोगका नाशक तथा कफ पित्तका नाशक होता है ॥ और हृत्पास कुष्ठ ऊर्ध्व
कामला बुनका तथा पित्तही आमवात और विष बुनको भी नाश करता है ॥
२५ ॥ ऊर्ध्व पातनकी युक्ति में अथवा उमरुयंत्रसे यकांया जवा ॥ हिंगुल उस्का
पारा इस प्रकार सिद्ध होता है इसको नशाधन करे ॥ २६ ॥

[अथ गन्धकस्थीत्यन्ति नाम लक्षणा गुणान्ध्र]

श्वेत क्षीपे पुषा देव्याः क्रीडन्त्या रजसा स्तुतम् ॥ दुकू
लन्ते न व्रस्तेरा स्नातायाः क्षीरं नीरधौ ॥ ६७ ॥ प्रसू
ने यद्वज्र स्तस्मात् गन्धकः समभूततः ॥ गन्धको गन्ध
कश्चापि गन्धयापासा इत्यपि ॥ ६८ ॥ सौगन्धिकश्च
काथितो बलिर्वलरसापि च ॥ चतुर्द्धा गन्धकः प्रोक्तो
रक्तः पित्तः क्षितोऽक्षितः ॥ ६९ ॥ रक्तं हेमं क्षीरं चारु
क्तः पीतश्वेतो रसाग्रने ॥ जरादि लेपने श्वेतः कृ
ष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः ॥ ७० ॥

भा० अनन्तर गन्धक की उत्पत्ति और नाम लक्षणा गुणों को कहते हैं ॥ श्वेत
क्षीपमें यहिले क्रीडा करती हुई पार्वतीजीका कपड़ा रससे सन गया था उस क
पड़ेसे ॥ क्षीर सागरमें स्नान करती हुई का उस साढ़ीसे जो रजकैला उसे ग
न्धक जवा । गन्धक गन्धिक गन्धयापासा ॥ ६८ ॥ सौगन्धिक बलि वलरस
येह गन्धक के नाम हैं ॥ गन्धक चार प्रकार का होता है लाल पीला सुफेद
काला ॥ ६९ ॥ लाल सुवर्ण क्रियामें काम आता है ॥ और पीला सुफेद रस
यनमें कहा है ॥ और पाव आदि के लेपमें सुफेद तथा काला श्रेष्ठ होता है वो
ह दुर्लभ है ॥ ७० ॥

(श्रेष्ठः हेमक्रियादिषु सर्वत्र प्रशस्ततरः,)

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्त्वरः सरः ॥

पित्तलः कटुकः पाके कराडू वीसर्प जन्तुजित् ॥ १०१ ॥
 हन्ति कुष्ठ क्षय स्नीह कफ वातान् रसायनः ॥ अ-
 शोधितो गन्धक एष कुष्ठं करोति नापं विषमं शरी-
 रे ॥ १०२ ॥ शोषञ्च रूपञ्च बलं तथोजः शुक्रं
 निहन्त्येव करोति चास्रम् ॥

भा० (श्रेष्ठ सुवर्ण क्रियादि में सब जगह में प्रशस्त तरह है)
 गन्धक कटु तिक्त वीर्य में उष्ण कसेला सर होता है ॥

पित्त को करने वाला पाक में कटु और खुजली वीसर्प जन्तु को मारने में वा-
 ला है ॥ १०१ ॥ और कुष्ठ क्षय पित्त ही कफ वात इनको नाश करता है तथा
 रसायन है ॥ विन मुधा ऊँवा यह गन्धक कुष्ठ को और विषम सन्ताप को
 शरीर से करता है ॥ १०२ ॥ शोष रूप बल तथा ओज शुक्र इनको नाश
 करता है और रक्त को करता है ॥

[अष्टादशोऽप्युत्पत्तिर्नाम लक्षणं गुराणां च ।]

पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम् ॥ वि-
 स्फुलिङ्गस्ततस्तस्य गगने परिसर्पिताः ॥ १०३ ॥
 ते निपेतुर्धनध्वानाच्छिरशरेषु महीभृतम् ॥ ते
 भ्य एव समुत्पन्नं ततश्चिरिषु चाम्ब्रकम् ॥ १०४ ॥
 तद्वज्रं वज्रपातत्वादभ्रमभ्रखोद्भवात् ॥ गग-
 नान् सबलितं यस्माद् गगनञ्च ततो मतम् ॥ १०५ ॥
 विप्रक्षत्रियविद् शूद्रभेदात्तत्स्याच्चतुर्विधः ॥

भा० अनन्तर अभ्रक की उत्पत्ति नाम लक्षण और गुराणों को कहते हैं ॥
 पहिले इन्द्र ने वृत्रासुर को मारने के वासे वज्र उठाया ॥ उसे उसके च-
 गारे आकाश में फैल गये ॥ १०३ ॥ बबादल के गरज से पहाड़ों की चोटी
 पर गिरी ॥ उसी से उन २ पहाड़ों में अभ्रक उत्पन्न हुआ ॥ १०४ ॥ वीह

वच्च सेउत्पन्न होनेसे और अभ्रवादलों के गरज सेउत्पन्न होनेसे तथा आकाश से गिरनेसे गगन माना है ॥ १०५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन भेदोंसे वोह चार प्रकार का होता है ॥

क्रमेणैवा सितं रक्तं पीतं कृष्णञ्च वर्णितः ॥ १०६ ॥
प्रशस्यते पित्तन्तारं रक्तं तत्तु रसायने ॥ पीतं हेमनि
कृष्णान्तु गदेषु हृतयेऽपि च ॥ १०७ ॥ पिनाकं दुर्दुरं
नागं वज्रञ्चेति चतुर्विधम् ॥ सुञ्चत्यग्नौ विनि
क्षिप्तं पिनाकन्दल सञ्चयम् ॥ १०८ ॥ अज्ञाना
ङ्गिरां तस्य महाकुष्ठं प्रदायकम् ॥ दुर्दुरं त्वग्नि
निःक्षिप्तं कुरुते दुर्दुरध्वनिम् ॥ १०९ ॥ गोलका
न्वज्जराः कृत्वा सस्यान् मृत्यु प्रदायकः ॥

भा० क्रमसे सफ़ेद लाल पीला काला इन चार वर्णों से चार जातिका है ॥ १०६ ॥ खेत चांदीमें प्रशस्त है और रक्त रसायन में प्रशस्त है ॥ तथा पीला सेनेमें और काला रोगमें तथा गलानेमें भी प्रशस्त है ॥ १०७ ॥ पिनाक दुर्दुर नाग वज्र ऐसे चार प्रकार का अभ्रक होता है ॥ पिनाक आगमें डालने से पत्र २ अलग होजाता है ॥ १०८ ॥ विनजाने उसको खाने से महाकुष्ठ उत्पन्न होता है ॥ दुर्दुर आगमें डालने से दुर्दुर शब्द को करता है ॥ १०९ ॥ वज्रत से गोलकों को करके वोह मृत्युदायक होता है ॥ नाग अभ्रक सर्पको समान अग्निमें फूतकार शब्दों को करता है ॥ उसको खाने से अवश्य भगंदर होता है ॥ ११० ॥

नागन्तु नागवद् वन्हौ फुत्कारं परिमुञ्चति ॥
तद्भक्षिंश्च वश्यन्तु विदधाति भगन्दरम् ॥ ११० ॥
वज्रन्तु वज्रवन्तिष्टे तन्नाग्नौ विलुतिं व्रजेत् ॥ स
र्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधि वार्द्धक्य मृत्यु हन् ॥ १११ ॥

अभ्रमुत्तरधौलोत्थं बहुसत्वं गुणाधिकम् ॥ दक्षि
 णाद्रि भवं स्वल्प सत्य मल्प गुण प्रदम् ॥ ११२ ॥ अ
 भ्रकषायं मधुरं सुशीत मायुष्करं धातु विवर्द्धनञ्च
 ॥ हन्यात् त्रिदोषं ब्रण मेह कुष्ठ स्त्रीहोदरं ग्रन्थि वि
 ष कृमींश्च ॥ ११३ ॥ रोगान् हन्ति दृढयति वयु वीर्य
 वृद्धिं विधत्ते ॥ तारुण्याढ्यं रमयति प्रातं योषितां नि
 त्यमेव ॥ ११४ ॥ दीर्घा युष्कान् जनयति सुतान् विक्र
 मैः सिंह तुल्यान् ॥ मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमा
 नं मृताभ्रम् ॥ ११५ ॥ पीडां विधत्ते विविधां नराणां
 कुष्ठं क्षयं पाण्डु गदञ्च शोथम् ॥ हृत्याश्वं पीडा
 न्च करोत्य शुद्ध मश्रन्त्व सिद्धं गुरुता प्रदं स्यात्
 ॥ ११६ ॥

भा० वज्र अग्निमें वज्रके समान बहरता है वोह अग्निमें विकारको नहीं प्राप्त होता । सब अधकों में वज्र श्रेष्ठ है वोह रोग दुदापा और मृत्यु इनका नाशक है ॥ १११ ॥ उत्तर दिशाके पहाड़ों में उत्पन्न हुआ अभ्रक अधिक सत्वसे युक्त गुणमें अधिक होता है ॥ दक्षिण के पहाड़ों में उत्पन्न हुआ थोड़े सत्व वाला और अल्पगुणको देनेवाला है ॥ ११२ ॥ अभ्रक करैला मधुर शीतल आद्यु की करनेवाला धातुको बढानेवाला होता है ॥ और विदोष ब्रण प्रमेह कुष्ठ स्त्रीहोदर ग्रन्थि विष कृमि इनको नाश करता है ॥ ११३ ॥ सेवन किया हुआ अभ्रक का भस्म रोगोंको नाश करता है ॥ शरीरको दृढ़ करता है और श्रुद्ध की वृद्धि को करता है ॥

तारुण्य से भरी जर्द से स्त्रियों को भोग करता है इसके सेवन करनेवाला मनुष्य वृद्ध भी तारुण्यताको प्राप्त होता है ॥ ११४ ॥

तिहके समान पराक्रम वाले और दीर्घ आयुवाले पुत्रों को उत्पन्न करता है

और मृत्यु के भय को दूर करता है ॥ ११५ ॥ विन सुधाङ्गना और असिद्ध अम्ब क मनुष्यों को नाना प्रकारकी पीड़ा को करता है और कुछ वाय पाण्डु रोग सृजन । हृदय पसली की पीड़ा इनको करता है तथा भारीपन और सन्नाप इनकी भी करने वाला है ॥ ११६ ॥

[अथ हरितालस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च । हरि
तालं तु तालंस्या दालं तालक मित्यपि ॥ हरिता
लं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिराड संज्ञकम् ॥ ११७ ॥
तयो राद्यं गुरौः श्रेष्ठं ततो हीन गुणं परम् ॥ स्व
र्णं वर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाश्रयपत्रवत् ॥ ११८ ॥
पत्राख्यं तालकं विद्या जुगाढ्यं तद्वसायनम् ॥ नि
ष्पत्रं पिराड सदृशं स्वल्प सत्त्वं तथा गुरु ॥ ११९ ॥
स्त्री पुष्य हारकं स्वल्प गुणं तत् पिराड तालकम् ॥
हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् ॥ १२० ॥
कराडु कुष्ठास्य रोगास्तत्र कफ पित्त कच व्रणान् ॥ ह
रति च हरिताल ज्वारुतां देहजाताम् । सृजति च
बहु नाया मङ्ग सङ्कोच पीडाम् ॥ वितरति कफ
वातौ कुष्ठ रोगं विदध्या । दिद मणित मशुद्धम् मा
रितञ्चाप्य सम्यक् ॥ १२१ ॥

भा० अनन्तर हरिताल के नाम और लक्षणों को कहने हैं ॥ हरिताल ताल आल तालक यह हरिताल के नाम हैं ॥ हरिताल दो प्रकार का होता है एक वरकी दूसरा गोवरिया ॥ ११७ ॥ उनमें पहिला गुण में -

प्रेष्ठ है और दूसरा हीन गुण है ॥ रंग में सोने के समान भारी विकना और चरक के सहित अमृक के बरके के समान जो होता है ॥ ११८ ॥ उसको बरकी हरिताल जानना चाहिये वोह गुण में अधिक और रसायन है ॥ बेवरक पिंड के समान थोड़े सत्व वाला तथा भारी ॥ ११९ ॥ स्त्री के रजका नाशक वोह पिंड हरिताल गुण में न्यून होती है ॥ हरिताल कड़वी चिकनी कसेली गरम होती है और विष ॥ १२० ॥ खजली कुष्ठ मुखरोग रक्त कफ पित्त कच ब्रण इनको नाश करती है ॥ अशुद्ध और अच्छी तरह बफुकी हुई हरिताल खाई हुई देहकी सुन्दरता को नाश करती है और अधिक सन्ताप शरीर का संकोच पीड़ा इनको करती है कफ वात बढ़ के कुष्ठ रोग को करते हैं ॥ १२१ ॥

[अथ मनःशिलानामानि गुणाश्च]

मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका ॥

नैपाली कुनटी गोला शिला दिव्यौषधिः स्मृता ॥

॥ १२३ ॥ मनःशिला गुरुर्वर्षा सरोषणा लेखनी

कटुः ॥ तिक्ता स्निग्धा विषप्रवासका सभूत कफा

खनुत् ॥ १२४ ॥ मनःशिला मन्दबलं करोति ज-

न्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण ॥ मलावबन्धं किल मू-

त्ररोधं सशर्करं कच्छगदञ्च कुर्यात् ॥ १२५ ॥

भा० अनन्तर मैनशिल के नाम और गुण कहते हैं ॥ मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका ॥ नैपाली कुनटी गोला शिला दिव्यौषधि यह मैनसिल के नाम कहे हैं ॥ १२३ ॥ मैनसिल भारी वर्षाको अच्छा करने वाली सर उष्ण लेखनी कड़वी ॥ तिक्ता चिकनी होती है और विष श्वावकास भूतकफरक्त इनको नाश करने वाली है ॥ १२४ ॥ शोधन के बिना मैनसिल बलको कम करती है और निश्चय रुमिको करती है ॥ तथा क्वब्जियत मूलका न होना शर्करा के सहित मूत्र कच्छ को करती है ॥ १२५ ॥

[अथ सुरमा । सौवीर ।]

अञ्जनं यामुनञ्चापि कापोताञ्जनमित्यपि ॥
 नत्तु श्रोतोऽञ्जनं कृष्णां सौवीरं श्वेतमीरितम् ॥ १२६ ॥
 बल्मीकशिरवराकारं भिन्नमञ्जनसन्निभम् ॥
 घृष्टन्तु गैरिकाकारमेतत् श्रोतोऽञ्जनस्मृतम् ॥
 १२७ ॥ श्वेतोऽञ्जनसमंक्षेपं सौवीरन्तत्तु शराडुर
 म् ॥ श्वेतोऽञ्जनं स्मृतं स्वादु चक्षुष्यं कफं पित्त
 नुत् ॥ १२८ ॥ कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राहि छर्द्दि
 विषापहम् ॥ सिध्मक्षयास्वहृच्छ्रोतं सेवनायं
 सदाबुधैः ॥ १२९ ॥ श्वेतोऽञ्जनश्रृणाः सर्वे सौवी
 रेपि मताबुधैः ॥ किन्तु द्वयोश्चनयोः श्रे-
 ष्ठं श्वेतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥ १३० ॥

॥ अ० अनन्तरसुरमा ॥ अञ्जनं यामुनं कापोतं अञ्जनं येहभी सुरमे के नाम
 हैं ॥ उस्में काले सुरमे को श्वेतोऽञ्जन और सफ़ेद को सौवीर कहा है ॥
 ॥ १२६ ॥ बमई से शिरवराकार भिन्नकाजल के समान होता है और
 घिसने से गेरू के आकार होता है इसको श्वेतोऽञ्जन कहा है ॥ १२७ ॥
 श्वेतोऽञ्जन के समान सौवीर को जानना चाहिये येह सफ़ेद होता है ॥
 काला सुरमा मधुर नेत्र के हिन कफ पित्त का नाशक ॥ १२८ ॥ कसेला
 लेखन चिकना क्राविज चमन विष का नाशक होता है ॥ और सिध्म
 क्षय रक्त का दूर करने वाला शीतल होता है और विद्वानों के द्वारा स
 दा सेवन करने के योग्य है ॥ १२९ ॥ काले सुरमे के सब श्रृणा सफ़ेद सु
 रमे में भी पंडितों ने माने हैं ॥ परन्तु दोनों अञ्जनों में काला अञ्जन श्रेष्ठ
 कहा है ॥ १३० ॥

[अथ सोहागा ।] दृङ्कुरोऽग्निं करोरुक्तः कफ
 घोवात पित्तहृत् ॥ अथ मृषरसत्वात् पुनरुक्तः ।
 अथ फिटिकरी । स्फटी च स्फटिका प्रोक्ता श्वेता

शुभ्राच रङ्गदा ॥ दृढरङ्गा रङ्गदा च दृढारङ्गापि क-
थ्यते ॥ १३१ ॥ स्फटिका तु कषायार्थणा वानपित्त क-
फत्रणान् ॥ निहन्ति शिवत्रयीसर्पान् योनि सङ्केच
कारिणी ॥ १३२ ॥

भा० अनन्तर सोहागा । सोहागा अग्निकी करनेवाला सूखा कफका नाशक
वान पित्तकी करनेवाला है । इसकी उपरस होनेसे फिरसे कहा ॥

अनन्तर फिटकरी । स्पटि स्फटिका श्वेता शुभ्रा रंगदा ॥ दृढरङ्गा रङ्गदा
भी और दृढा तथा रंगा भी येह करी फिटकरी के नाम कहे हैं ॥ १३१ ॥ फिट
कसेली गरम होती है और वान पित्त कफ त्रण इनकी नाश करती है ॥ तथा
शिवत्रयीसर्पको भी नाश करती हैं और योनि की सङ्केच करने वाली है ॥ १३२

[अथ रेवटी ।] राजावर्तः कटुस्तिक्तः शिशिरः पित्त
नाशनः ॥ राजावर्तः प्रमेहघ्नः छर्दि हिक्का निवा
रणः ॥ १३३ ॥ अथ चुम्बकः । चुम्बकः कान्त
पाषाणो यः कान्तो लोह कर्षकः ॥ चुम्बको ले
खनः शीतो मेदो विषगरा पहः ॥ १३४ ॥

[गैरु सुवर्णी गैरु ।] गैरिकं रक्तं धातुश्च गैरेयं गिरिजं त
था ॥ सुवर्णं गैरिकं न्वन्य ततोरक्ततरं हितम् ॥ १३५ ॥
गैरिकं हितयं स्निग्धं मधुरं तुवरं हिमम् ॥

चक्षुष्यं दाह पित्तास्र कफ हि
क्का विषां पहम् ॥ १३६ ॥

भा० अनन्तर रेवटी ॥ राजावर्त कड़वी तिक्त शीतल पित्त नाशक है ॥
राजावर्त प्रमेह नाशक और वमन हिचकी इनकी दूर करने वाली है ॥
१३३ ॥ [अनन्तर लोह चुम्बक ।] चुम्बक कान्त पाषाण उपः
कान्त लोह हर्षक । येह लोह चुम्बक के नाम हैं ॥ १. चुम्बक

लेखन शीतल और शीतभेद विष गेर इनका नाशक है ॥ १३५ ॥
 अनन्तर गेरू और सोना गेरू ॥ गैरिक रक्तधातु गेरू गिरिज येह गेरू
 के नाम हैं ॥ सोना गेरू उससे दूसरा होता है । और वोह बहुत लाल होता
 है ॥ १३५ ॥ दोनों गेरू चिकने मधुर कसैले शीतल ॥ नेत्रके हित और
 दाह रक्त पित्त कफ हिचकी विष इनके नाशक हैं ॥ १३६ ॥

[अथ खरी गौरखरी ।]

खटिका कटिनी चापि लेखनी च निगद्यते ॥ ख
 टिका दाह जिच्छीता मधुरा विष प्रोथजित् १३७
 लेपादे तद्गुण प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिका समा ॥
 खरी गौरखरी द्वे च गुणोस्तुल्ये प्रकीर्तिते ॥ १३८ ॥

[अथ चालू ।] चालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेत-
 जापि च ॥ चालुका लेखनी शीता व्रणारः क्षत
 नाशिनी ॥ १३९ ॥

भा० अनन्तर खड़िया और सफ़ेद खड़िया । खटिका खट नीलेख
 नी येह खड़िया के नाम हैं ॥ खड़िया दाह को जीतनेवाली शीतल मधु-
 र । और विष प्रोथको जीतनेवाली है ॥ १३७ ॥ लेपसे येह कहे ऊँवे गु-
 ण होते हैं । और खानेसे महीके समान होती है ॥ खड़िया और सफ़ेद ख-
 डिया दोनों गुणमें समान कहे हैं ॥ १३८ ॥

अनन्तर रेत । चालुका सिकता शर्करा रेतजा । येह चालूके नाम हैं ॥
 चालू लेखन शीतल है और व्रण उर क्षत । इनको नाश करने वा-
 ली है ॥ १३९ ॥

खपरी आतुल्यभेदः । खर्परि तुल्यकं तुल्या
 दन्यत्त द्रसकं स्मृतम् ॥ ये गुणः तुल्यके प्रोक्ता
 स्ते गुणः रसके स्मृताः ॥ १४० ॥

[काशीस माङ्गफूल । काशीशं धातुका शीशं

पांशुकाशीशमित्यपि ॥ तदेव किञ्चित्पीनन्तु
 पुष्पकाशीशमुच्यते ॥ १४१ ॥ काशीशमस्त
 सुष्णाञ्च तित्ताञ्च तुवरं तथा ॥ वातश्लेष्महरं
 केश्यं नेत्रकण्डू विषप्रणुत् ॥ १४२ ॥
 मूत्रहृच्छाशमरी शिवत्र नाशनं परिकीर्तितम् ॥
 अथसौराष्ट्रीमाटी ।] सौराष्ट्री तुवरी कांदी मृताल-
 क सुराष्ट्रजे ॥ १४३ ॥ आढकी चापि सा ख्याता
 मृत्तना च सुरमृत्तिका ॥ स्फटिकाया गुणाः स
 वै सौराष्ट्रा अपि कीर्तिताः ॥ १४४ ॥

भा० अनन्तर खपरिया यह लीला योथे का भेद है ॥ खपरिया तुल्यक
 है इसे दूसरी को रसक कहा है ॥ जो गुण लीले योथे में कहे हैं वोही
 गुण खपरिया में कहे हैं ॥ १४० ॥ [कसीस माङ्ग-फूल ।]
 काशीश धानुकाशीश पांशुकाशीश । येह कसीस के नाम हैं ॥ वोही
 कुछ एक पीली को पुष्पकासीस कहते हैं ॥ १४१ ॥ कसीस खट्टी गर
 मतिक्त तथा कसेली ॥ और वात पित्त कफ की नाशक केश के हिन तथा
 नेत्र खुजली विष इनकी नाशक है ॥ १४२ ॥ और मूत्र पथरी शिवत्रकुष्ठ
 इनकी नाशक कही गई है ॥ ॥ [अनन्तर सौराष्ट्री माटी । सौराष्ट्री तुव
 री कांदी मृतालक सुराष्ट्रजा ॥ १४३ ॥ आढकी भी वोह कही गई है
 और मृत्तना तथा सुरमृत्तिका ॥ येह भी उसके नाम हैं । स्फटिक के सब
 गुण सौराष्ट्री में कहे हैं ॥ १४४ ॥ [अथ कर्दमः ।]

कर्दमो दाहं पित्तार्ति शोथघ्नः शीतलः सरः ॥

१४५ ॥ [अथ बोल । बोल इन्ध रसं प्राणाः

पिराड गोय रसाः समाः ॥ बोलं रक्तहरं शीतं

मेध्यन्दीपन पाचनम् ॥ मधुरङ्कुटु तित्ताञ्च

दाहस्वेद त्रिदोषजित् ॥ १४६ ॥ ज्वरापस्मारकुष्ठं
घ्नं गर्भाशयविशुद्धिहृत् ॥

भा० अनन्तर कालीमाटी । कालीमाटी क्षत दाह प्रदर कफ पित्त इन
को नाशक है ॥ [अनन्तर कीचड़ । कीचड़ दाह पित्त पीड़ा सूजन इनकी
नाशक शीतल सरहै ॥ १४५ ॥ अनन्तर बोल । बोल गन्ध रस प्राण ।
पिंड गोप रस संम यह बोलके नाम है ॥ बोल रक्त नाशक शीतल मेधा
को करनेवाला दीपन पाचन ॥ मधुर कटु तिक्त और दाह पसीना तथा
त्रिदोष इनको जीतनेवाला है ॥ १४६ ॥ और ज्वर भिरगी कुष्ठ इनका ना-
शक और गर्भाशय को शुद्ध करनेवाला होता है ॥

[अथ कङ्कुष्ठोत्पत्ति लक्षणानाम गुराः ।

हिमवत्पाद शिखरे कङ्कुष्ठमुपजायते ॥ तत्रै
करक्तकालस्या तदन्यदण्डकं स्मृतम् ॥ १४७ ॥
पीतप्रभं गुरुस्निग्धं श्रेष्ठकङ्कुष्ठमादिशेत् ॥
प्रयामं पीतं लघु त्यक्तं सत्वनेष्टं तथाण्डकम् ॥
१४८ ॥ कङ्कुष्ठं काककुष्ठञ्च वराङ्गं कोलका
कुलम् ॥ कङ्कुष्ठं रेचनन्तिक्तं कटुषां वर्णकार
कम् ॥ १४९ ॥ कृमि शोथोदराध्मान गुल्मानाह
कफापहम् ॥

भा० अनन्तर कंकुष्ठ यह एक किसमकी पहाड़ीमटी है उत्की उत्प
त्ति लक्षण नाम गुरा कहने हैं ॥ हिमाचल पर कंकुष्ठ होता है ॥ उस
में एक रक्तकाला होता है । और उस्से दूसरा अंडक कहा गया है १४७
पीला भारी चिकना ऐसेकी श्रेष्ठ कंकुष्ठ कहने हैं ॥ और काला पीला
हलका और वे सत्त यह अच्छा नहीं इसको अंडक कहने हैं ॥ १४८ ॥
कंकुष्ठ काककुष्ठ वराङ्ग कोलकाकुल । यह कंकुष्ठ के नाम हैं ॥

कंकुष्ट रेचन तिक्त कटु उष्ण वर्णको करनेवाला ॥ १५० ॥ और कृमिस्त-
जन उदर आध्मान वायुगोला अफारा कफ इनका नाशक है ॥

[अथ रत्नस्य निरुक्तिः ।]

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्ते ऽस्मिन् अतीव यत्
ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्द शास्त्र विशारदैः ॥

१५१ ॥ ॥ अथ रत्नस्य नामानि स्वरूपराज्च ।

रत्नं क्लीवे मणिः पुंसि स्त्रिया मपि निगद्यते ॥

तत्तु पाषाण भेदो ऽस्ति मुक्तादि च तदुच्यते ॥ १५२ ॥

तथा- [चामर सिंहः ।] रत्नं मणि द्वयो रश्म जा-

तो मुक्तादि के ऽपि च ॥

भा० अनन्तर रत्नकी निरुक्ति ॥ धनार्थि सब लोग जिसे अधिक
करके रमते हैं ॥ इसवास्ते व्याकरण के पंडितों ने रत्न ऐसा कहा है १५१
अनन्तर रत्नके नाम और लक्षण निरूपण ॥ रत्न नपुंसक में और मणि
पुल्लिंग में तथा स्त्रीलिंग में भी होता है ॥ १५२ ॥ बौह पाषाण का भेद है
और मुक्तादिक को कहना हूँ ॥ उस प्रकार चामर सिंह ने कहा है ॥ रत्न
मणि यह दोनों पेश्वर की जाति हैं ॥ और मुक्तादिक में भी होता है ॥

अथ रत्नानां निरूपणम् ।] रत्नं गारुत्मतं पुष्यं

रागो माणिक्यमेव च ॥ इन्द्र नीलश्च गोमेदस्त-

था वैडूर्यमित्यपि ॥ १५३ ॥ मौक्तिकं विद्रुमश्च

ति रत्नान्युक्तानि वै न च ॥

(क) रत्नं हीरा । गारुत्मतं पद्मा । माणिक्यं पद्मरा-
गः । इन्द्रनीलः लीला ।

[विष्णु धर्मोत्तरे ऽपि नवरत्न निरूपणम् ।]

मुक्ताफलं हीरकञ्च वैडूर्यं पद्मरागकम् ॥ पुष्प
 रागञ्च गोमेदं नीलङ्गरुत्तमं तन्तथा ॥ १५४ ॥
 प्रवाल युक्ता न्येतानि महारत्नानि वै नव ॥
 तत्र हीरकं हीरा इति लोके । तस्य नाम लक्षणं गुरांश्च ।
 हीरकः पुंसि वज्रोऽस्त्री चन्द्रो मणि वरश्च सः ।
 स तु श्वेतः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रियः स्मृतः ॥
 १५५ ॥ पीतो वैश्योऽसितः शूद्रश्चतुर्वर्णात्मक
 श्च सः ॥ स्तायने मतो विप्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः
 ॥ १५६ ॥ क्षत्रियो व्याधि विध्यंसी जरा मृत्यु हरः
 स्मृतः ॥ वैश्यो धनप्रदः प्रोक्तः नथा देहस्य दा-
 र्ढ्यं हन् ॥ १५७ ॥ शूद्रो नाशयति व्याधीन् वय
 स्तम्भं करोति च ॥ पुंस्त्री न पुंसकां नीह लक्षणी
 यानि लक्षणेः ॥ १५८ ॥ सुवृत्ताः फलसम्पूर्णास्ते
 जो युक्ता बृहन्तराः ॥ पुरुषास्ते समाख्याता रेखा
 विन्दु विवर्जिता ॥ १५९ ॥ रेखाविन्दु समायु-
 क्ताः षड्भास्ते स्त्रियः स्मृताः ॥

भा० अनन्तर रत्नादिकों का निरूपण ॥ रत्न , गारुत्मत पुष्पराग
 और मारिगक भी । नीलम गोमेद तथा वैडूर्य यह ॥ १५३ ॥ और
 मोती मृंगा । इस प्रकार यह नव रत्न कहे हैं ॥

(क) रत्न हीरा । गारुत्मत पद्मा । मानीक नीलम ॥ विष्णु धर्मे
 नर्मे भी नव रत्न कहे हैं ॥ मोती हीरा वैडूर्य मानीक । पुरुराज गोमे
 द नीलम पद्मा ॥ १५४ ॥ और मृंगा यह नव महारत्न हैं ॥ उर्मे हीरक
 हीरा इस प्रकार लोक में प्रसिद्ध है ॥ उसके नाम लक्षण और गुरा कहे हैं

हीरक उल्लिंगमें और वज्रं नपुंसकमें होता है चन्द्रमणि वर यह हीरे के नाम हैं ॥ वोह श्वेत ब्राह्मण कहा गया है और लाल क्षत्रिय कहा गया है ॥ १५५ ॥ पीला वैश्य और काला शूद्र ऐसे हीरे चार वर्ग का होता है ॥ रसायन में ब्राह्मण और सब सिद्धियों को देने वाला है ॥ १५६ ॥ क्षत्रिय रोग नाशक और बुढ़ापा तथा मृत्यु का नाशक ॥ वैश्य धन देने वाला कहा है तथा शरीर को दृढ़ता करने वाला है ॥ १५७ ॥ शूद्र रोगों को नाशक रता है और वय को स्थापन करता है ॥ इसमें स्त्री पुरुष और नपुंसक इन के लक्षण होते हैं ॥ १५८ ॥ अच्छे गोल सब फल वाले तेजोयुक्त बड़न बड़े ॥ और रेखा बिन्दु से रहित ऐसे हीरे पुरुष कहे गये हैं ॥ १५९ ॥ और रेखा बिन्दु से युक्त छ कौनवाले वे स्त्री कहे गये हैं ॥

त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः ॥

तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठास्तबन्धनकारिणः ॥ १६० ॥

स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः ॥

नपुंसकास्तव वीर्या स्युः कामाः सत्ववर्जिताः ॥

१६१ ॥ स्त्रियः स्त्रीभ्यः प्रदातव्याः क्लीवं क्लीवे प्र-

योजयेत् ॥ सर्वेभ्यः सर्वदा देयाः पुरुषाः वीर्यव-

र्द्धनाः ॥ १६२ ॥ अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्य-

थान्तथा ॥ पाण्डुता म्पङ्गुरत्वञ्च तस्मात् संशो-

ध्यमारयेत् ॥ १६३ ॥

भा० त्रिकोण और अच्छे लम्बे वे नपुंसक जानने चाहिये ॥ उनमें पुरुष श्रेष्ठ हैं और वे पारिको बान्धनेवाले हैं ॥ १६० ॥ स्त्री जातिके हीरे शरीर की कान्तिको करते हैं ॥ और स्त्रियों को सुख देनेवाले हैं ॥ नपुंसक अवीर्य होते हैं ॥ और अकाम सत्व से रहित होते हैं ॥ १६१ ॥ स्त्री जातिके हीरे स्त्रियों को देने चाहिये ॥ और नपुंसक को नपुंसक देवे ॥ और सबको सर्वदा वीर्य को बढ़ानेवाले पुरुष जातिके देने चाहिये ॥ १६२ ॥

विन शुधाद्वाकोद तथा पसलीको पीड़ा ॥ पांडुता और लूलापन इनको
करता है इसवासे शोधकर फूँके ॥ १६३ ॥

[मारितस्य वज्रस्य गुणाः।]

आयुःपुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च ॥

सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रन्न संशयः ॥ १६४ ॥

[अथ हरितमणिः। पद्मा इति लोके। तस्य नामानि।]

गारुत्मतं मरकतमश्रमगर्भं हरिन्मणिः ॥

[अथ मारिक्य इति लोके तस्य नामानि। मारिक्यं

पद्मरागः स्याच्छोरा रत्नञ्च लोहितम् ॥

अथ पुष्पराग नामानि। पुष्परागो मञ्जुमणिः स्या

द्वाचस्पतिवल्गवः ॥ अथ इन्द्रनील गोमेदयो

नीमानि। नीलन्तयेन्द्र नीलञ्च गोमेदः पीतरत्नकम्

भा० हीरेकी भस्मका गुण। आयु पुष्टि बल वीर्य वर्ण सौख्य इनको
करता है ॥ और हीरेका भस्म सेवन करने से सब रोगोंका नाशक है इसमें
कोई संशय नहीं है ॥ १६४ ॥ अनन्तर पद्मा उसके नाम ॥ गारुत्मत
मरकत अश्रमगर्भ हरिन्मणि। येह पद्मेके नाम हैं ॥

अनन्तर मारिक्य के नाम। मारिक्य पद्मराग शोरा रत्न लोहित। यह
मारिक्य के नाम हैं। [अनन्तर पुष्पराग के नाम। पुष्पराग मञ्जुमणि वाचस्प
ति वल्गव। येह पुष्पराग के नाम हैं ॥ [अनन्तर नीलम और गोमेद के ना
म ॥ नील तथा इन्द्रनील। येह नीलम के नाम हैं ॥ और गोमेद तथा
पीतरत्नक येह गोमेद के नाम हैं ॥

अथ वैदूर्यं। वैदूर्यं दूरजरत्नं स्यात्केतुग्रहवल्गव

भम् ॥ [अथ मौक्तिकस्य नामानि।]

मौक्तिकं शौक्तिकं मुक्ता तथा मुक्ताफलञ्च तत् ॥

शुक्तिः शङ्खो गज क्रोडः फणी मतस्यश्च ददुरः ॥
 १६५ ॥ वेगुरेते समाख्याता स्तज्जैमौक्तिक यो-
 नः ॥ सौक्तिकं शीतलं वृष्यं चतुष्यं बल पुष्टिदम्
 [अथ प्रवालस्य नामानि । पुंसि क्लीबे प्रवालः
 स्यात् पुमानिव तु विद्रुमः ॥ [अथ रत्नानां गुणाः ।]
 रत्नानि भक्षितानि स्यु मधुराणि सराणि च ॥ चतु
 ष्याणि च शीतानि विषघ्नानि धृतानि च ॥ १६६ ॥
 मङ्गल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोषहराणि च ॥

भा० अनन्तर वैदूर्य दूरज रत्नकेतु ग्रहबल्लभ । येह वैदूर्य के नाम हैं
 ॥ ॥ अनन्तर मौती के नाम ॥ मौक्तिक शौक्तिक मुक्ता तथा मुक्ताफ
 लं । येह मौती के नाम हैं ॥ सीप शंख हाथी शूकर सर्प मछली में डंक
 ॥ १६५ ॥ और बांस यह उसके जानने वालों ने मौती के उत्पत्ति स्थान
 कहे हैं ॥ मौती शीतल शुक्र को उत्पन्न करनेवाला नेत्र के हित और ब
 ल पुष्टि को देनेवाला है ॥ १६५ ॥ अनन्तर मृग के नाम । पुल्लिंग और
 नपुंसक में प्रवाल होता है और विद्रुम पुल्लिंग में ही होता है ॥
 अनन्तर रत्नों के गुण ॥ रत्न मक्षण किये जावे मधुर और सर होते हैं ॥ त
 पाने व के हित शीत विष नाशक होते हैं । और धारण किये जावे ॥ ६६
 ॥ मङ्गल के करनेवाले मनोज्ञ तथा ग्रह दोष के नाशक होते हैं ॥

(क) किं रत्नं कस्य ग्रहस्य प्रीतिकारित्वेन दोष हरं भ
 वतीति प्रश्ने तदुत्तरमाह रत्नमालायां

भारिक्वन्तरसोः सुजात ममलं मुक्ताफलं शी-
 तगो मांहे वस्यतु विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गा
 रुत्मतम् ॥ १६७ ॥ देवैज्यस्य च पुष्पराग मसुरा-

चार्यस्य वज्रं शनि । नीलं निर्मल मन्ययो निर्गदिने गो
मेद वैडूर्यके ॥ १६८ ॥

[अथोपरत्नानां निरूपणम् ।] उपरत्नानि काचश्च
कर्पूराश्मा तथा च ॥ मुक्ता शुक्ति स्तथा शङ्ख इत्या
दीनि बहुन्यपि ॥ १६९ ॥

(क) उपरत्नानि गोरा रत्नानि । कर्पूराश्मा कपनीया
कपनीया । मुक्ता शुक्तिः सीप ।

गुणा यथैव रत्नानां मुपरत्नेषु ते यथा ॥ किन्तु कि
ञ्चित्ततो हीना विशेषोऽयं मुदाहृतः ॥ १७० ॥

[अथ विषयस्य नाम लक्षण गुणाः]

भा० (क) कौनसा रत्न किस ग्रह के प्रीतिकार होने से दोषनाशक होता है ।
इस प्रश्नमें उसका उत्तर कहते हैं ॥ रत्नमालामें । सूर्य का माणिक्य चन्द्रका
मोती मंगल का मूङ्ग बुध का पन्ना कहा है ॥ १६९ ॥ वृहस्पति का उखरा
ज शुक्र का हीरा शनी का निर्मल नीलम और राहु का गोमेद केचुका वै
डूर्य यह कहा है ॥ १६८ ॥ [अनन्तर उपरत्नों का निरूपण ॥ काच का
पूरी पत्थर । और मोती की सीप तथा इत्यादि शंख वज्रत से उपरत्न हैं ॥ १६९
॥ उपरत्न अर्थात् गोरा रत्न । कर्पूरी पत्थर मोती की सीप रत्नों के जैसे गुण हैं
वैसे ही उपरत्नों में भी गुण हैं । परन्तु कुछ उनसे कम हैं ॥ विशेष यह कहा
है ॥ १७० ॥ [अनन्तर विषय के नाम लक्षण और गुण कहे हैं ॥

विषंतु गरलः खेड स्तस्य भेदानुदाहरे ॥ वत्सनाभः

सहारिद्रः सक्तकश्च प्रदीपनः ॥ १७१ ॥ सौराष्ट्रिकः

शृङ्गिकश्च कालकूट स्तथैव च ॥ हालाहलो ब्र

ह्म पुत्रो विषभेदा अमीनव ॥ १७२ ॥

[तत्र वत्सनाभस्य स्वरूप निरूपणम्]

मिन्दुवार सहस्र पत्रो वत्सनाभ्या कृति स्तथा ॥
यत्पार्ष्वेन तरो वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः ॥ १७३ ॥

[अथ हरिद्रस्य स्वरूप निरूपणम्]

हरिद्रा तुल्य मूलोयो हरिद्रः स उदाहृतः ॥
अथ सक्तुकस्य स्वरूपम् ॥ यद् ग्रन्थिः सक्तुकेनैव
पूर्णा मध्यः स सक्तुकः ॥ अथ प्रदीपनस्य स्वरू-
पम् ॥ वर्णीतो लोहितो यः स्याद्दीप्तिमान् दहन प्र-
भः । महादाहकरः पूर्वैः कथितः स प्रदीपनः ॥ १७४ ॥

भा० विष गरल श्वेद येह विषके नाम हैं ॥ उनके भेदों को कहते हैं ।
वत्सनाभ हरिद्र सक्तुक प्रदीपन ॥ १७१ ॥ सौराष्ट्रिक शृङ्गिक तथा का-
लकूट । हालाहल ब्रह्मपुत्र । यह नौ विषके नाम हैं ॥ १७२ ॥ उसमें वच-
नाक का निरूपण ॥ लाल कचनार के समान पत्ते तथा बछड़े के नाभिके
आकार ॥ और जो एक तरफ से टुकड़ी टूटि होती है उसको वचनाक
कहते हैं ॥ १७३ ॥ अनन्तर हरिद्र का स्वरूप निरूपण ॥ जो हरदी की
जड़ के समान होता है उसे हरिद्र कहा है ॥ अनन्तर सक्तुक का स्वरूप
॥ जो गांठ बीच में सक्तु से भरी जड़ के समान होती है वोह सक्तुक है ॥
अनन्तर प्रदीपन का स्वरूप ॥ जो रगत में लाल होता है और अङ्गुरे के स-
मान दीप्तिमान होता है । तथा बहुत दाह करने वाला । ऐसे को प्राचीन लो-
गोंने प्रदीपन कहा है ॥ १७४ ॥

अथ सौराष्ट्रिकस्य

स्वरूपम् ॥ सौराष्ट्र विषये यः स्यात्स सौराष्ट्रिक
उच्यते ॥ [अथ शृङ्गिकस्य स्वरूपम्]

यस्मिन् गोशृङ्ग के वृद्धे दुग्धम्भवति लोहितम् ॥
स शृङ्गिक इति प्रोक्तो द्रव्यतत्त्व विशारदः ॥ १७५ ॥

[अथ कालकूटस्य स्वरूपम् ॥ देवासुर रोगदेव हंत
स्य षष्ठ्यु मालिनः ॥ दैत्यस्य रुधिराज्जात स्वरूप
स्य सन्निभः ॥ १९६ ॥ निर्यासः कालकूटोऽस्य मु-
निभिः परिकीर्तितः ॥ सोहि क्षेत्रे शृङ्ग वेर कोङ्क-
णो मलये भवेत् ॥ १९७ ॥

[अथ हालाहलस्य स्वरूपम् ॥ गोस्तनाम फलो गु-
च्छ तालपत्रच्छदस्तथा ॥ तेजसायस्य दहान्ते
समीपस्था द्रुमादयः ॥ १९८ ॥ असौ हालाहलो जे-
यः किष्किन्धायां हिमालये ॥ दक्षिणाब्धि त-
टे देशो कोङ्कणोऽपि च जायते ॥ १९९ ॥

भा० अनन्तर सौराष्ट्रिक का स्वरूप ॥ सुराष्ट्र देश में जो होता है वोह
सौराष्ट्रिक कहा है ॥ [अनन्तर सिंगिया का स्वरूप ॥ जिसको गाय
के सींग में बांधने से दुग्ध लाल होता है ॥ उसको ब्रव्य के तत्त्वों के जानने
वालों ने शृङ्गिक कहा है ॥ ५३५ ॥

अनन्तर कालकूट का स्वरूप ॥ देवता और दानव के युद्ध में देवताओं से
मार गये षष्ठ्युमाली नाम दैत्य के रुधिर से पीपल के समान वृक्ष उत्पन्न हु-
वा ॥ १९६ ॥ इसके गोन्द को कालकूट ऐसा बुनियों ने कहा है ॥ वोह शृङ्ग-
वेर क्षेत्र में और कोङ्कण देश नया मलयाचल में होता है ॥ १९७ ॥

अनन्तर हालाहल का स्वरूप ॥ गाय के स्तन के से फलों के गुच्छे तथा
तालपत्र के समान पत्र होने हैं ॥ और जिसके तेज से पास के वृक्षादिक
जल जाते हैं ॥ १९८ ॥ इसको हालाहल जानना चाहिये और यह किष्कि-
न्धामें हिमालमें दक्षिण समुद्र के किनारे पर के देशों में और कोङ्कण
देश में भी उत्पन्न होता है ॥ १९९ ॥

[अथ ब्रह्म पुत्रस्य स्वरूपम् ॥] वरीतः कपि लो

यः स्यात्तथा भवति सारतः ॥ ब्रह्मपुत्रः सविज्ञेयो जा-
यते मलयाचले ॥ १८० ॥ ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्रि-
यो लोहितः प्रभः ॥ वैश्यः पीतः सितः शूद्रो विष उक्त-
श्चतुर्विधः ॥ १८१ ॥ रसायने विषं विप्रं क्षत्रियं देहपु-
ष्टये ॥ वैश्यं कुष्ठं विनाशाय शूद्रं दद्याद् वधाय
हि ॥ १८२ ॥ विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च वि-
काशि च ॥ आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदा-
वहम् ॥ १८३ ॥

भा० अन्तर ब्रह्मपुत्र का स्वरूप ॥ जोरंगत से कपिल तथा सार से कपिल
होता है ॥ उसको ब्रह्मपुत्र जानना चाहिये वोह मलयाचल में होता है ॥ १८० ॥
उसमें ब्राह्मण जान का ध्वेत लाल क्षत्रिय ॥ पीला वैश्य और काला शूद्र ।
ऐसे विष चार प्रकार का कहा है ॥ १८१ ॥ रसायन में सफ़ेद शरीर की पुष्टि के
अर्थ लाल पीला कुष्ठ नाशके अर्थ और काला मरण के अर्थ देवे ॥ १८२ ॥
विष प्राणहर कहा है और व्यवायि तथा विकाशि ॥ और अग्नि गुणवाला
वातकफ का नाशक योगवाही तथा नशा करने वाला है ॥ १८३ ॥

(क) व्यवायि सकलकाय गुणव्यापन पूर्वकं
पाकगमनशीलं ॥ विकाशि । ओजःशोषणपू-
र्वकं सन्धिबन्ध शिथिलीकरण शीलम् ॥
आग्नेयम् । अधिकाग्न्यं योगवाहि सङ्गि गुणग्रा-
हकं । मदावहम् । तमोगुणाधिक्येन बुद्धि वि-
वृत्तसकम् ॥ तदेव युक्ति युक्तान्तु प्राणदायि रसायन
म् ॥ योगवाहि त्रिदोषघ्नं दृढरं वीर्यवर्द्धनम् ॥
॥ १८३ ॥ ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे तेस्युर्हीना-

विशोधनात् ॥ तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयो-
जयेत् ॥ १८४ ॥

भा० (क) सम्पूर्ण शरीर गुणव्यापन पूर्वपाक होनेवाला बनायि है। ओज का शोथरण पूर्वक जोड़ोंके बन्धन को शिथिल करनेवाला। आग्नेय अर्थात् वज्र त गरम। योगवाही अर्थात् संगवाले के गुण को ग्रहण करनेवाला। तमो गुणकी अधिकता से बुद्धिका नाशक ॥ वोही युक्ति पूर्वक योजना कियाहुवा प्राण देने वाला रसायन ॥ योगवाही विदोष नाशक दृहरण वीर्यको बढ़ानेवाला है ॥ ॥ १८३ ॥ जो सुगुण अणुद्व विषमें है वोह शोधन से हीन हो जाता है ॥ इसवास्ते शोधकर विषका प्रयोग योजनाकरे ॥ १८४ ॥

[अथोपविषाणां निरूपणम्]

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गुलीकरवीरकः ॥ गुञ्जा
हि फेनो धतूरः सप्तोपविष जातयः ॥ १८५ ॥ उप-
विषाः गौराविषाः। स्याद्गुणास्तत्र तत्र द्रष्टव्याः।

इति श्री भावप्रकाशे धातूपधातु रसाय-
न रसरत्नोपरत्न विषोपविष वर्गः ॥ ❖ ॥

भा० अनन्तर उपविषका निरूपण ॥ आक का दूध घृहण का दूध करिहारी क नेर चिरमिठी अफीम धतूर यह सात जाति उपविष की है ॥ १८५ ॥ उपविष अर्थात् गौराविष। इनका गुण वहाँ २५ पर देख लेना ॥

इति भावप्रकाशे धातु उपधातु रस उपरस रत्न उपरत्न विष उपविष वर्ग समाप्ता ॥ ॥ ❖ ॥ ॥ अथ धान्यवर्गः। तत्र धान्यानां भेदाः

शालिधान्यं त्रीहि धान्यं शूकधान्यं तृतीयकम् ॥

शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्यमित्युक्तं धान्य पञ्चकम्

॥ १ ॥ शालयो रक्त शालाद्या त्रीहयः षष्टिकादयः ॥

यवादिकं शूकधान्यं मुद्गाद्यं शिम्बि धान्यकम् ॥ २ ॥

कङ्कुनादिकं क्षुद्रधान्यं तृणधान्यञ्च तत् स्मृतम् ॥

[तत्र शालिधान्यस्य लक्षणं गुणाश्च ।

करडनेन विना शुक्ला हेमन्ताः शालयः स्मृताः ॥

अथ शालीनां नामानि । रक्तशालिः सकलमः पा-

ण्डुकः शकुनाहतः ॥ सुगन्धकः कर्दमाको महा

शालिश्च दूषकः ॥ ३ ॥ पुष्पाण्डुकः पुरण्डरीकस्त

थामहिषमस्तकः ॥ दीर्घशूकः काञ्चनको हाय-

नोलोध्रपुष्पकः ॥ ४ ॥ इत्याद्याः शालयः सन्ति

वह्वो बह्व देशजाः ॥ ग्रन्थविस्तरं भीते स्ते सम-

स्ता नात्र भाषिताः ॥ ५ ॥

भा० अनन्तरधान्यवर्गः ॥ उसमें धान्यों के भेद । शालिधान्य ब्रीहिधा-
न्य तीसरा शूकधान्य । शिम्बीधान्य क्षुद्रधान्य इस प्रकार सात धान्य क-
हे हैं ॥ १ ॥ लालधान्य शालिधान्य और साठी आदि ब्रीहिधान्य ॥ जब
आदिक शूकधान्य भूग आदि शिम्बीधान्य ॥ २ ॥ और कंगुनी आदि क्षुद्र
धान्य तथा उसे तृणधान्य भी कहते हैं ॥ उसमें शालिधान्य कालक्षरण और
गुण ॥ विना कूटे सुफेद और हेमन्त में होनेवाले शालिधान्य कहे गये हैं

॥ अनन्तर धान्यों के नाम ॥ लालधान्य कललमीधान्य पाण्डुक शकुनाह-
त । सुगन्धक कर्दमक महाशाली दूषक ॥ ३ ॥ पुष्पाण्डुक पुरण्डरीक तथा
महिषमस्तक । दीर्घशूक काञ्चनक हायन लोध्रपुष्पक ॥ ४ ॥ इतने प्रका-
र के धान हैं । और बह्वन प्रकारके बह्वनसे देशों में होते हैं ॥
ग्रन्थ बढ़ाने के भयसे सब यहाँ पर नहीं कहे ॥ ५ ॥

अथ तेषां गुणाः ॥ शालयोः मधुराः स्निग्धा बल्या

बद्धाल्यवर्चसः ॥ कषाया लघयो रुच्याः स्वर्या

दृष्याश्च चंहरणाः ॥ ६ ॥ अल्पानिल कफाः शीताः ।

पित्तामूत्रलास्रया ॥ शालयोदधमृज्जाताः क-
षाया लघुपाकिनः ॥ ७ ॥ सृष्टमूत्रपुरीषाश्च रू-
क्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥ कैदारा वातपित्तघ्नाः शु-
रवः कफशुक्रलाः ॥ ८ ॥ कषाया अल्पवर्च-
स्का मध्याश्चैव बलावहाः ॥

भा० अनन्तर इनके गुण ॥ धान मधुर चिकने बलको करने वाले मलको
बाधने वाले और थोड़ा करने वाले । कसैले हलके रुचिको करने वाले स्त्र-
रको अच्छा करने वाले शुक्रको अच्छा करने वाले पुष्ट ॥ ६ ॥ अल्प वात क-
फ को करने वाले शीतल पित्तनाशक तथा मूत्रको करने वाले होते हैं ॥ ७ ॥ मल मूत्र
को करने वाले सूखे कफ को घटाने वाले हैं ॥ खेत के वात पित्त के नाशक
भारी कफ शुक्र को करने वाले हैं ॥ ८ ॥ कसैले अल्प मल को करने वाले
मध्य बल को करने वाले हैं ॥

कैदाराः कृष्टलेजजाः उष्माः ।

स्थलजाः स्वादेः पित्तकफघ्ना वातपित्तदाः ॥ कि-
ञ्चित्तिक्ताः कषायाश्च विपाके कटुका अपि ॥ ९ ॥

स्थलजाः अकृष्टभूमिजाताः ॥ स्वयंजाताः ।

वापिता मधुरा दृष्ट्या बल्याः पित्तप्रणाशनाः ॥ श्ले-

ष्मलाश्चाल्पवर्चस्काः कषाया गुरवो हिमाः ॥ १० ॥

भा० कैदार अर्थात् जो तेज वे खेत में बोये ज़वे । स्थल में उत्पन्न ज़वे मधुर पित्त कफ के
नाशक वात पित्त को करने वाले । कुछ एक तिक्त और कसैले विपाक में भी कटु
होते हैं ॥ ९ ॥ स्थलज अर्थात् बिना जो तेज ज़वे जमीन में ज़वे ॥ स्वयं उत्पन्न ज़वे ।
बोये ज़वे मधुर शुक्र को करने वाले बल को देने वाले पित्त नाशक हैं ॥ कफ को क-
रने वाले थोड़े मल को करने वाले कसैले भारी शीतल होते हैं ॥ १० ॥

(क) वापिताः कृष्टक्षेत्रे अकृष्टक्षेत्रे च ।

वापितेभ्यो गुणैः किञ्चित्हीनाः प्रोक्ता अवापिताः।
कृष्टत्वेन अकृष्टत्वेन वा।

रोपितास्तु नवावृष्ट्याः पुराणा लघवः स्मृताः ॥

तेभ्यस्तु रोपिता भूयः शीघ्रपाका गुणाधिकाः ॥

॥ ११ ॥ छिन्नरूढाः हिमामृक्षा बल्याः पित्तकफा
पहाः ॥ बद्धविट्काः कषायाश्च लघवश्चात्यति
क्लकाः ॥ १२ ॥

[अथ रक्तशालेगुणाः]

रक्तशालि वरस्तेषु बल्यो वर्णस्त्रिदोषजित् ॥ च-

क्षुष्यो मूत्रलः स्वर्ग्यः शुक्रलस्तृट् ज्वरापहः ॥

॥ १३ ॥ विषत्रण श्वासकास दाहनुद्वहि पुष्टदः ॥

तस्मादल्पान्तरगुणाः शालयो महदादयः ॥ १४ ॥

रक्तशालिः दा उदरवानी इति लोके । मगधदेशे
प्रसिद्धः ।

(क) बोयेज्जवे जीते रेतमें और बेजीते रेतमें) बोयेज्ज
वाँ से कुछ गुणमें हीन वे बोयेज्जवे कहें हैं ॥ जीतेज्जवे रेतमें अथवा वे जीतेज्जवे
रेतमें । बोयेज्जवे नये शुक्रको करनेवाले हैं । और पुराने हलके कहें हैं । उनसे
वे बोयेज्जवे शीघ्रपाक वाले और गुणमें अधिक कहें हैं ॥ ११ ॥ कामल कवाड
वे शीतल रूखे बलको करनेवाले पित्त कफके नाशक । मलको बाँधनेवाले क-
सेले हलके थोड़े निक्त होते हैं ॥ १२ ॥

[अनन्तर लालधातके गुण ।] उनमें लाल धातु अष्ट हैं बलको वर्णको कर-
नेवाले शुक्रको करनेवाले तृप्ता ज्वरके नाशक हैं ॥ १३ ॥ और विषत्रण श्वा-
सकास दाह इनके नाशक अग्नि और पुष्टिको देनेवाले हैं ॥

उस्से अल्पान्तर गुण महाशालि आरिहें ॥ १४ ॥ लाल धातु इसको लोक
में दा उदरवानी इस प्रकार कहते हैं ॥ यह मगध देशमें प्रसिद्ध है

अथ व्रीहि धान्यस्य लक्षणं गुणाश्च । वार्षिकाः
 कण्डिताः शुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः ॥ कृष्णा व्री-
 हिः पाटलश्च कुक्कुटाण्डक इत्यपि ॥ शाला सु-
 खो जतुमुख इत्याद्याः व्रीहयः स्मृताः ॥ १५ ॥ कृ-
 ष्णा व्रीहिः स विज्ञेयो यत् कृष्णानुषतराडुलः ॥
 पाटलः पाटलापुष्पवर्णको व्रीहि रुच्यते ॥ १६ ॥
 कुक्कुटाण्डा कृति व्रीहिः कुक्कुटाण्डक उच्यते ॥
 शालासुखः कृष्ण शूकः कृष्णतराडुल उच्यते ॥
 १७ ॥ लाक्षावर्णं मुखं यस्य ज्ञेयो जतुमुखस्तु सः ॥
 व्रीहयः कथिताः पाके मधुरा वीर्य्यतो हिताः ॥ १८
 अल्पाभिष्यन्दिनी बद्ध वर्चस्काः षष्टिकैः समाः ॥
 कृष्णा व्रीहिवरस्तेषां तस्मादल्पगुणाः परे ॥ १९ ॥

भा० अतन्तर व्रीही धानका लक्षण और गुण कहते हैं ॥ बरसाती कुवे
 हवे शुक्ल आर देसेमें पकनेवाले व्रीहि धान कहें गये हैं ॥ १५ ॥ काला धान
 उसे जानना चाहिये जो काले छिलके के चावल हैं ॥ पाटल के फूल समान
 नवर्णवाली को पाटल व्रीहि कहते हैं ॥ १६ ॥ मुरगे के अण्डे के आकार
 वाली व्रीहि की कुक्कुटाण्डक कहते हैं ॥ शालासुख कृष्ण शूक
 कृष्णतराडुल ये भी उसके नाम हैं ॥ १७ ॥ लासके समान वर्ण जिसके मुख
 काहो उसे जतुमुख कहते हैं ॥ धान पाकमें मधुर वीर्य्य से हित कहें गये हैं ॥
 १८ ॥ और अभिष्यन्दन करनेवाले मल को बान्धनेवाले सादी के समान
 होते हैं ॥ उनमें काला धान श्रेष्ठ है और बाक्ली सब उसके गुणमें छोड़े हैं ॥ १९
 अथ षष्टिकानां लक्षणं गुणाश्च ॥ गर्मस्था एव ये
 पाकं यान्ति ते षष्टिका मताः ॥

अथ षष्ठिकानां नामानि । षष्ठिकः शतपुष्पश्च प्र-
मोदक मुकुन्दकौ ॥ महाषष्ठिक इत्याद्याः षष्ठिकाः
समुदाहृताः ॥ २० ॥ एतेऽपि ब्रीहयः प्रोक्ता ब्रीहिल-
क्षणदर्शनात् ॥ षष्ठिकाः मधुराः शीता लघ्वो बद्ध-
वर्चसः ॥ २१ ॥ वात पित्त प्रशमनाः शालिभिः सह-
शाः गुणैः ॥

भा० अनन्तर साठी का लक्षण और गुण को कहते हैं ॥ जो गरम में रहते
हुवे ही पाक को प्राप्त होते हैं वो साठी हैं ॥ अनन्तर साठी के नाम ॥
षष्ठिक शतपुष्प प्रमोदक मुकुन्दक ॥ महाषष्ठिक इत्यादिक षष्ठि-
क कहे गये हैं ॥ २० ॥ धान के लक्षण देखने से यह धान कहे हैं ॥
साठी मधुर शीतल हलके मसको बान्धने वाले ॥ २१ ॥ वात पित्त को
शमन करने वाले और धानों के समान गुण में होते हैं ॥

[तत्र षष्ठिकाया गुणाः]

षष्ठिका प्रवरा तेषां लघ्वी स्निग्धा विदोष जित ॥

स्वादी मृदी ग्राहिणी च बलदा ज्वरहारिणी ॥ २२ ॥

रक्तशालि गुणैस्तुल्या ततः स्वल्पगुणापरे ॥

षष्ठिकः साठी इति लोके । अथ शूक धान्यानि ।

तेषु यवः प्रसिद्धः ।

भा० उसमें साठी का गुण कहते हैं ॥ उन्में साठी बहुत श्रेष्ठ हलकी चि-
कनी विदोष को जीतने वाली ॥ मधुर मृदु क्रायिज्ञ बल को देने वाली ।
ज्वर नाशक होती है ॥ २२ ॥ लाल धान के समान गुण में होती है उसे
और गुण में स्वल्प होती है ॥ उसको लोक में साठी ऐसा कहते हैं ॥
अनन्तर शूक धान्य उन्में जव प्रसिद्ध हैं ॥

अतियवो अतिशूकः कृष्णारुणो वर्णो यवः ॥

तोक्यो हरितो निःशूकः स्वल्पो यवः यवेति प्रसिद्धः ।
 [तेषां नामानि गुणाश्च । यवस्तु शितशूकः स्या
 द्विः शूकोऽति यवः स्मृतः ॥ तोक्यस्तद्वत्स हरि
 तस्ततः स्वल्पश्च कीर्तितः ॥ २३ ॥ यवः कषा
 यो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः ॥ व्रणेषु तिल
 वत् पथ्यो रूक्षो मेधाग्निवर्द्धनः ॥ २४ ॥

भा० अतियव अतिशूक कृष्ण । और अरुणवर्ण यव । तोक्य हरित
 निःशूकस्वल्पयेह यव इस नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ उनके नाम और व
 गुण कहते हैं ॥ जब तेजनोंक वाले होते हैं और वेनोंक वाले अतियव
 कहेंगये हैं ॥ तथा तोक्य उसीके समान और हरित उसे अल्पगुण कहा
 गया है ॥ २३ ॥ जब कसैला मधुर शीतल लेखन मुलायम ॥ और व्रण
 में तिलके समान पथ्य रूक्ष मेधा और अग्निको बढ़ानेवाला है ॥ २४ ॥

कटुपाकोऽनभिष्यन्दीं स्वय्यो बलकरो गुरुः ॥

बद्धवातमलो वर्णस्थैर्यकारी च पिच्छिलः

॥ २५ ॥ कण्ठत्वगामय श्लेष्मपित्तमेदप्रणाश-

नः ॥ पीनसश्वासकासोरुस्तम्भलोहिततृद्

प्रणुत् ॥ २६ ॥ अस्मादति यवो न्यूनस्तोक्यो न्यू

नतरस्ततः ॥

भा० पाकमें कटु अभिष्यन्दन करनेवाला स्वरको अच्छा करनेवाला
 बलकारक भारी ॥ बद्धनवात मलको करनेवाला और वर्ण स्थिरता
 को करनेवाला पिच्छिल है ॥ २५ ॥ और कंठरोग त्वचाके रोग कफ
 पित्तमेद इनका नाशक है ॥ तथा पीनस श्वास कास अरुस्तम्भरक्त
 तथा दूनका नाशक है ॥ २६ ॥ इसे अतियव गुणमें न्यून है और तो
 क्य उसे भी गुणमें न्यून है ॥

[अथ गोधूमस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

गोधूमः सुमनोऽपि स्यात्त्रिविधः स च कीर्तितः ॥
 महागोधूम इत्याख्यः पश्चाद्देशात् समागतः ॥ २७ ॥
 [महागोधूमः] बड़गोधूमा इति लोके । मधूली तु
 ततः किञ्चिदल्पा सा मध्य देशजा ॥ निःश्रूको
 दीर्घगोधूमः क्वचिन्नन्दी सुखाभिधः ॥ २८ ॥ गो-
 धूमो मधुरः शीतो वातं पित्त हरो गुरुः ॥ कफशु-
 क्रप्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धानकृत् सरः ॥ २९ ॥
 जीवसो वृंहणो वरण्यो व्रणयो रुच्यः स्थिरत्वकृत्
 कफप्रदो नवीनो न तु पुराणः ।

पुराणयवगोधूमः क्षौद्रजाङ्गल शूलभागिति ॥

भा० श्रुनन्तर गेहूं के नाम लक्षण और गुण कहते हैं ॥ गोधूम सुम-
 न भी गेहूं के नाम है ॥ वह तीन प्रकार का कहा है ॥ बड़ा गेहूं इस
 नाम से पश्चिम देश में जाता है ॥ २७ ॥ महागोधूम ॥ बड़े गोधूमा इ-
 स नाम से लोक में प्रसिद्ध है ॥ मधूली भी उससे कुछ अल्प गुण में ही
 तो है ॥ वह मध्य देश में होने वाली है ॥ बुनो कलंबा गेहूं कहीं पर नन्दी
 मुख नाम से है ॥ २८ ॥ गेहूं मधुर शीतल वात पित्त का नाशक भारी ॥
 कफ शुक्र को करने वाला बल को करने वाला चिकना सन्धान करने वा-
 ला सर ॥ जीवन पुष्ट वर्ण को अच्छा करने वाला व्रण के हित रुचिको
 करने वाला और स्थिरता को करने वाला है ॥
 कफ को करने वाला नवान नकि पुगुना ॥ पुराणा जब गेहूं मधु हरि-
 ण आदियों के मांस का कबाब इनका सेवन करने वाला होता है ॥

[वाग्भटेन वसन्ते गृहीतत्वात् ॥ मधूली शीतला
 स्निग्धा पित्तघ्नी मधुरालघुः ॥ श्रुक्ला वृंहणी प-
 ष्या तद्वन्नन्दी मुखः स्मृतः ॥ ३० ॥

[अथ शिम्बी धान्यम् । तत्पर्यायानाह ।]

शमीजाः शिम्बिजाः शिम्बी भवाः सूर्याश्रवैदलाः ।

[तेषां गुणाः ।] वैदलाः मधुरा रूक्षाः कषायाः कटु पा-

किनः ॥ ३१ ॥ वातलाः कफपित्तघ्नः बद्धसूत्रम-

लाहिमाः ॥ वृते मुद्ग मसूराभ्यामन्ये त्वाध्मान

कारिणः ॥ ३२ ॥

भा० वाग्भटने वसन्तमें लिया है । इसवाले मधुली अर्थात् न बड़त बड़ा न केरा ऐसे गेहूं शीतल पित्तनाशक मधुर होते हैं ॥

शुक्रको करने वाले पुष्ट पथ्य अर्थात् हित होते हैं और उसीके समान नन्दीमुख कह गये हैं ॥ ३० ॥ अनन्तर शिम्बी धान्य अर्थात्

जो सेम में होता है ॥ उसके पर्यायोंको कहते हैं ॥ शमीज शिम्बिज शिम्बी भवा सूर्या वैदला येह शिम्बी धान के नाम हैं ॥

वनके गुण । शिम्बी धान्य मधुर रूखे कसैले पाकमें कटु ॥ ३१ ॥ वात को करने वाले कफ पित्त के नाशक मूल को रोकने वाले शीतल होते हैं ॥ मूंग मसूरको छोड़के बाक़ी सब पदको कुलाते हैं ॥ ३२ ॥

मुद्ग मसूरयो राध्मान कारित्वमन्य वैदला पेक्षेया

नतु सर्वथा एतयोऽपि किञ्चिदाध्मान कारित्वा

त ।

[तत्र मुद्गस्य गुणाः ।]

रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः ॥ स्यादुरल्पा

निलो नेत्रो ज्वरघ्नो वनजस्तथा ॥ मुद्गो बहुविधः

श्यामो हरितः पीतकस्तथा ॥ ३३ ॥ उ्वेतो गक्तश्च

तेषान्तु पूर्वः पूर्वो लघुः स्मृतः ॥ सुश्रुतं न पुन

प्राक्तो हरितः प्रवरो गुणैः ॥ ३४ ॥

चरकादिभिरप्युक्तः रघुः ख गुणाधिकः ॥

आ० मूंग मसूरोंको आध्मान कारित्व और दालोंकी अपेक्षासे है न किस
 वंथा दूधमें भी कुछ आध्मान कारित्व होनेसे । उसमें मूंगके गुण । रूखा
 हलका क्विज कफ पित्तका नाशक शीतल ॥ मधुर अल्पवातकोक
 रनेवाला नंबके हित स्वर नाशक होता है । वैसेही बन मूंग होता है ॥
 मूंग अनेक प्रकारके होते हैं । काले हरे पीले ॥ ३३ ॥ सुफेद लाल उनमें
 पहिले २ हलके कहे हैं ॥ जो सुश्रुतने कहा है कि हरामूंग गुणमें अधि
 क होता है ॥ ३४ ॥ और चरकादि मुनियोंने भी कहा है कि येही गुणमें
 अधिक होता है ॥ [अथ उडद ।]

माषो गुरुः स्वादु पाकः स्निग्धो रुच्यो निलापहः ।

संसनस्तर्पणो बल्यः शुक्रलो वृंहणः परः ॥ ३५ ॥

भिन्नमूत्रमलस्तन्यो मेदः पित्तकफप्रदः ॥ गुद

कीलाहितः श्वासयंक्ति शूलानि नाशयेत् ॥ ३६ ॥

कफपित्तकरा माषाः कफपित्तकरं दधि ॥

कफपित्तकरा मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत ॥ ३७ ॥

आ० माष अर्थात् उडद भारी पाकमें मधुर चिकनारुचिको करनेवाला
 वात नाशक ॥ संसनं तर्पण बलके हित शुक्रको करनेवाला पुष्ट होता
 है ॥ और मलमूत्रका करनेवाला रुग्णको करनेवाला मेद पित्त और
 कफको करनेवाला है ॥ और गुद अर्द्धित श्वासयंक्ति शूल दूधको ना
 श करता है ॥ ३६ ॥ उडद कफ पित्तको करनेवाला है । और दही क
 फ पित्तको करनेवाली है । और मछलियां कफ पित्तको करनेवाली हैं
 तथा वैङ्गन कफ पित्तको करनेवाला है ॥ ३७ ॥

[अथ बोड़ा यस्य च वेरातरा लोविश्राद्व्यादयो भेदाः]

राजमाषो महामाषश्चपलश्चबलः स्मृतः ॥

राजमाषो गुरुः स्वादु स्तवरस्तर्पणो सरः ॥ ३८ ॥

रूखो वातकरो रुच्यः स्तन्यमूरि बलप्रदः ॥

ऽवेतोरक्तस्तथा कृष्ण स्तिविधः स प्रकीर्तितः ३८ ॥

यो महंस्तेषु भवति स एवोक्तो गुणाधिकः ॥

भा० अनन्तर बोढायह नाम बनारस में प्रसिद्ध है ॥ और बेरातर लोवि-
याइन नामोंसे भी कई शहरोंमें प्रसिद्ध है ॥ राजमाष महामाष चपल च-
बल येह लोवियाके नाम कहे हैं ॥ लोविया भारी मधुर कसैला तृप्तिको
करनेवाला सर ॥ ३८ ॥ रूखा वातकारी रुचिको करनेवाला दुग्ध और द-
हत बलको देनेवाला है ॥ सुफेद लाल तथा काला ऐसे बोह तीन प्रकार
का कहा है ॥ ३९ ॥ उनमें जो बड़ा है वोह गुणमें अधिक होता है ॥

[अथ निष्यावः । स तु राज सिम्बी बीजं भट्वासु इति
लोके ॥ ॥ निःष्यावो राजशिम्बिः स्याद् वल्लकः

ऽवेतशिम्बिकः ॥ निष्यावो मधुरो रूक्षो विपाके

ऽस्त्रो गुरुः सरः ॥ ४० ॥ कषायस्तन्यपित्तास्र मू-

त्रवात विबन्धकृत् ॥ विदाह्युष्णो विषप्लेष्मशो

थ हृत्क्षुक्रनाशनः ॥ ४१ ॥

भा० निष्याव । इस्को दरवन में पावय कहते हैं ॥ और पूरब में भट्वांस
भी कहते हैं ॥ यह बड़ी सेमका बीज है । निष्याव राजशिम्बी वल्लक
ऽवेतं शिम्बिक यह सेमके बीजोंके नाम हैं ॥ सेमका बीज मधुर रूखा
विपाक में खद्य भारी सर ॥ ४० ॥ कसैला और दुग्ध रक्त पित्त मूत्रवात
विबन्ध बनको करनेवाला है ॥ तथा विदाही गरम विष कफ सृजन इन
का नाशक और शुक्रका नाशक है ॥ ४१ ॥

[अथ मोठ । मकुष्ठो वनमुद्गः स्यान्मकुष्ठक मुकुष्ठकौ

॥ मुकुष्ठो वातलोघाही कफपित्तहरो लघुः ॥ ४२ ॥

वन्निजिन्मधुरः पाके कृमिकृतज्वर नाशनः ॥

[अथ मसूर] । मङ्गल्यको मसूरः स्यान्मङ्गल्य

च मसूरिका ॥ मसूरो मधुरः पाके संयाहि शीत
लो लघुः ॥ ४३ ॥ कफपित्तास्व जिद्रूक्षो वात-
लो ज्वरनाशनः ॥ [अथ रहरी ।] आढकी तुवरी
चापि सा प्रोक्ता शणपुष्पिका ॥ आढकी तुवरा
रूक्षा मधुरा शीतला लघुः ॥ ४४ ॥ याहिणी वात
जननी वर्या पित्तकफासंजित् ॥

भा० अनन्तर मोठ ॥ मकुष्ठ वनमुद्ग मकुष्ठक मकुष्ठक । यह मोठके ना
महैं ॥ मोठ वातको करनेवाला काबिज्ज कफ पित्तका नाशक हलका होता
है ॥ ४२ ॥ अग्निको जीतनेवाला पाकमें मधुर कृमिको करनेवाला ज्वर ना
शक है ॥ ॥ अनन्तर मसूर ॥ मङ्गल्यक मसूर और मङ्गल्या म
सूरिका । यह मसूरके नाम हैं । मसूर मधुर पाकमें और काबिज्ज हलका
शीतल होता है ॥ ४३ ॥ तथा कफरक्तपित्त इनको जीतनेवाला वातको
करनेवाला ज्वर नाशक है ॥ [अनन्तर रहरी । आढकी तुवरी और
शणपुष्पिका । यह हररके नाम हैं ॥ रहरी कसैली रूखी मधुर शीतल
हलकी ॥ ४४ ॥ काबिज्ज वातको करनेवाली वर्याको अच्छा करने वाली
पित्तकफ रक्तको जीतनेवाली है ॥ [अथ छोला]

चणको हरिमन्थः स्यात् सकल प्रिय इत्यपि ॥ च-
णकः शीतलो रूक्षः पित्तरक्तकफापहाः ॥ ४५ ॥
लघुः कषायो विष्टम्भी वातलो ज्वरनाशनः ॥ स चा-
ङ्गरेण सम्भृष्ट स्तैलभृष्टश्च तत्तुणः ॥ ४६ ॥ आ-
र्द्र भृष्टो बलकरो रोचनश्च प्रकीर्तितः ॥ शुष्क भृ-
ष्टोऽतिरूक्षश्च वातकुष्ठ प्रकोपणः ॥ ४७ ॥ स्विन्नः
पित्तकफं हन्यात् रूढः क्षोभकरो मतः ॥ आर्द्रोऽ

ति कोमलोरुच्यः पित्तशुक्रहरो हिमः ॥ ४८ ॥ क
षायो चातलो ग्राही कफ पित्तहरो लघुः ॥

भा० अनन्तर छोला ॥ चणक हरिमन्थ और सकल प्रिय । येह चने के नाम हैं ॥ चना शीतल रूखा पित्त कफ रक्त इनका नाशक है ॥ ४५ ॥ और हलका कसैला विष्टम्भी वातको करने वाला । ज्वर नाशक है । वोह अंगारे से भूना हुआ तथा तेल से भूना हुआ वोही गुण वाला है ॥ ४६ ॥ गीला भूना हुआ बल करने वाला और रुचिको करने वाला कहा है ॥ सूखा भूना हुआ वज्रत रूखा वात कुष्ठ का प्रकोप करने वाला है ॥ ४७ ॥ पकी हुई इसकी दाल पित्त कफ को नाश करती है ॥ और क्षोभ को करने वाली कही है अति गीली अति कोमल रुचिको देने वाली पित्त शुक्र की नाशक होती है ॥ ४८ ॥ और कसैली वातको करने वाली काबिज कफ पित्त को नाशक हलकी है

[केराव] कलायो वर्तुलः प्रोक्तः सतिनश्च हरेणुकः

॥ कलायो मधुरः स्वादु पाके रूक्षश्च शीतलः ॥

॥ ४९ ॥ * [अथ खेसारी ।] त्रिपुटः खण्डकोऽ

पिष्यात् कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ त्रिपुटी मधुर स्ति

क्तः सुवरो रूक्षरोग भृशम् ॥ ५० ॥ कफ पित्त हरेरु

च्यो ग्राहकः शीतलः स्तथा ॥ किन्तु खज्जत्व य

ज्जत्व कारी वाताति कोपनः ॥ ५१ ॥

भा० अथ केराव । कलाय वर्तुल सतिन हरेणुक । यह मटर के नाम हैं ॥

मटर मधुर और पाक में मधुर रूखा शीतल है ॥ ४९ ॥

[अनन्तर खेसारी । त्रिपुट खंडिक यह खेसारी के नाम हैं ॥

अनन्तर उसके गुण कहने हैं ॥ खेसारी मधुर तिक्त कसैली अत्यन्त रूखी ।

॥ ५० ॥ कफ पित्त की नाशक रुचिको करने वाली काबिज तथा शीतल होती है ॥ किन्तु खज्जत्वा पङ्गुला करने वाली और अधिक वात को करने वाली है ॥ ५१ ॥

[अथ कुलत्थी।] कुलत्थिका कुलत्थश्च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तकृत् ॥ ५२ ॥ लघुर्विदाहि वीर्यघ्नाः श्वासकासकफानिलान् ॥ हन्ति हिक्काश्मरी शुक्र दाहानाहान् सर्पान्सान् ॥ ५३ ॥ स्वेदसंग्राहको मेदो ज्वरकृमिहरः परः ॥

भा० अनन्तर कुरथी। कुलत्थिका कुलत्थ। यह कुरथी के नाम हैं। और अनन्तर इसके गुण कहते हैं ॥ कुलत्थी पाकमें कड़वी कसैली पित्त रक्त को करने वाली है ॥ ५२ ॥ और हलकी विदाही वीर्यमें उष्ण श्वास कास कफ वात इनको नाश करती है ॥ और हिक्की पथरी शुक्र दाह अफारा पथरी। इनको नाश करती है ॥ ५३ ॥ पसीनों को रोकने वाली मेद ज्वर कृमि इनकी नाशक है ॥

[अथ तिलः।] तिलः कृष्णः सितो रक्तः सवर्ण्यः सत्यतिलः स्मृतः ॥ तिलोरसे कटु स्तिक्तो मधुर स्त्वरो गुः ॥ ५४ ॥ विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफपित्तनुत् ॥ बल्यः केश्यो हिमस्पर्श स्त्वच्य स्तन्योन्नरो हितः ॥ ५५ ॥ दन्त्योऽल्पमूत्रकृद्ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः ॥ कृष्णः श्रेष्ठतमस्तेषु शुक्रलो मध्यमः सितः ॥ ५६ ॥ अन्ये हीनतराः प्रोक्तास्तज्ज्ञै रक्तादयस्तिलाः ॥

भा० अनन्तर तिल ॥ तिल काला सफ़ेद लाल सवर्ण्य और अल्पतिल। ऐसा कहा है ॥ तिल रसमें कटु तिक्त मधुर कसैला भारी ॥ ५४ ॥ विपाक में कटु मधुर चिकना गरम कफ पित्तका नाशक है ॥ और बल के हिन केशको अच्छा करने वाला एगल स्पर्श वाला त्वचा के हिन दुग्धको करने वाला

अग्निसंज्ञित ॥ ५५ ॥ हांतोंके हिन अल्पमूत्रको करनेवाला काबिज वातनाशक अग्नि और मतिकी देनेवाला है ॥ उनमें काला वज्रत श्रेष्ठ है और शुक्रकी करनेवाला मध्य श्रेष्ठ है ॥ ५६ ॥ और लाल आदिक तिल उनके जाननेवालों ने अत्यन्तही गुण कहे हैं ॥

[अध्यातिसि।]

अतसी नीलपुष्पी च पार्वती स्यादुमा क्षमा ॥ अ-
तसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरुः ॥ ५७ ॥

उष्णा दृक् शुक्र वातघ्नी कफपित्त विनाशिनी ॥

[अथ नेरी तोड़ि सेति लोके ।] तुवरी ग्राहिणी प्रोक्ता ल-
घ्वी कफ विषासृजिन् ॥ तीक्ष्णोष्णा वह्निदा क-
ण्डू कुष्ठ कौष्ठ कृमि प्रणुत् ॥ ५८ ॥

[अथ रक्तसरीसो पिअरी सरीसो ।] सर्षपः कटुकः
स्नेह स्तुम्भश्च कदम्बकः ॥ गोरस्तु सर्षपः प्राज्ञैः
सिद्धार्यः इति कथ्यते ॥ ५९ ॥ सार्षपस्तु रसे पाके
कटु स्निग्धः सतिक्तकः ॥ तीक्ष्णोष्णाः कफ वा-
तघ्ना रक्त पित्ताग्नि वर्द्धनः ॥ ६० ॥

भा० अनन्तर अलसी । अतसी नीलपुष्पी पार्वती उमा क्षमा ॥ यह अलसी के नाम हैं ॥ अलसी मधुर चिकनी तिक्त पाकमें कटु भारी ॥ ५७ ॥ गरम होती है और दृष्टि शुक्र वात इनकी नाशक और कफ पित्त इनकी नाशक है ॥

अनन्तर नेरी इसको तोड़िस इस प्रकार कहते हैं ॥ नेरी काबिज हल का कफ विष रक्त इनको जीतने वाला है ॥ तीखा उष्ण अग्नि की करनेवाला है और खुजली कुष्ठ कौष्ठ कृमि इनका नाशक है ॥ ५८ ॥

[अनन्तर लाल सरसों और पीली सरसों]

सर्षप कटुक स्नेह तुम्भ कदम्बक यह लाल सरसों के नाम हैं ॥ पीली सरसों को बुद्धिवाती ने सिद्धार्य कहा है ॥ ५९ ॥ सरसों रस और पाक

में कटु चिकना कुछ तिक्त ॥ तीखा उष्ण कफ वातका नाशक और रक्त पित्त अग्नि इनका बढ़ाने वाला है ॥

रक्तो हरो जयेत् कण्डू कुष्ठ कोष्ठ कृमिग्रहान् ॥ यथा
रक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरो मतः ॥ ६१ ॥

[अथ राई कृष्णा राई । राजीनु राजिका तीक्ष्ण गन्धा कु
ज्जनिका सुरी ॥ क्षवक्षताभिजनकः कृमिकृत् कृ-
ष्ण सर्षपः ॥ ६२ ॥ राजिका कफ पित्तघ्नी तीक्ष्णाष्णा
रक्त पित्त कृत् ॥ किञ्चिद्रूक्षाग्निदा कण्डू कुष्ठ कोष्ठ कृ-
मीन् हरेत् ॥ ६३ ॥ अति तीक्ष्णा विशेषेण तद्वत् कृष्णा
पि राजिका ॥

भा० राक्तों का नाशक है कण्डू कौड कृमि ग्रह इनको जीतता है ॥ जैसे ब्याल
वैसे पीला किन्तु पीला श्रेष्ठ कहा है ॥ ६१ ॥ [अनन्तर राई काली राई]
राजि राजिका तीक्ष्ण गन्धा कुज्जनिका सुरी ॥ यह राई के नाम हैं । छींक औ
र घाव को करने वाला कृमि को करने वाला काला सरसों हीना है ॥ ६२ ॥ राई क
फ पित्त को नाशक तीखी गरम रक्त पित्त को करने वाली । कुछेक खली अग्नि दी
पन खुजली कुष्ठ कोष्ठ कृमि इनको नाश करती है ॥ ६३ ॥ बहुत तीखी दुस वि-
शेषण से उसी के सदृश काली राई होती है ॥

[अथ क्षुद्र धान्यम् ।] क्षुद्र धान्यं कुधान्यं च तृणाधा-
न्यं गिति स्मृतम् ॥ क्षुद्र धान्यं मनुष्यां स्यात् कषायं
लघु लेखनम् ॥ ६४ ॥ मधुरं कटुकं पाके रूक्षञ्च
लैद शोषकम् ॥ वात कृत् वद्ध विट्कञ्च पित्त रक्त
कफा पहम् ॥ ६५ ॥ [तत्र कडुनी ।]

स्त्रियां कडु प्रियङ्गु द्वे कृष्णा रक्ता सिता तथा ॥

पीताचतुर्विधा कङ्कुः स्नासाम्पीता वरास्मृता ॥ ६६ ॥
 कङ्कुस्तु भग्नसन्धानं वातकृत् वृंहणी गुरुः ॥ रूक्षा
 म्लेष्म हरा तीव्रवाजिनां गुणकृद् भृशम् ॥ ६७ ॥
 [अथ चीनाः] चीनाकः कङ्कुभेदोऽस्ति संश्लेषः क
 ङ्कुवद्गुणैः ॥ [अथ श्यामा] श्यामाकः शोषणे
 रूक्षो वातलः कफपित्तहृत् ॥

भा० अनन्तर क्षुद्रधान्य । क्षुद्रधान्य कुधान्य नृणाम्नाय येह छोटे ना
 ज के नाम हैं ॥ क्षुद्रधान्य शीतल कसेला हलका लेखन ॥ ६४ ॥ मधुर
 पाकमें कटु रूखा कफको सुरबानेवाला ॥ वातको करनेवाला और मलको
 बान्धनेवाला पित्त रक्त और कफका नाशक है ॥ ६५ ॥
 उनमें कंगुनी । खूबी लिङ्गमें कङ्कु प्रियङ्गु ये दोनों होते हैं । काली लाल सुफेद
 तथा पीली ऐसी चार प्रकार की कंगुनी होती हैं ॥ उनमें पीली श्रेष्ठ कही है ॥
 ॥ ६६ ॥ कंगुनी दूधे हाड़को जोड़नेवाली वातकृत पुष्ट भारी ॥ रूखी कफकी
 अत्यन्त नाशक है और घोंघोंकी अत्यन्तही गुण करनेवाली है ॥ ६७ ॥
 अनन्तर चीना ॥ चीना कंगुनी का भेद है उसके गुणमें कंगुनी के समान जा
 नना चाहिये ॥ [अनन्तर सांवा । सांवा शोषण रूखा
 वात को करनेवाला कफ पित्तका नाशक है ॥

[अथ कोद्रवः]

कोद्रवः कीरदूषः स्यादुद्दालो वनकोद्रवः ॥ कोद्र
 वो वातलो ग्राही हिमपित्तकफापहः ॥ ६८ ॥ उद्द
 लस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम् ॥

[अथ चारुकः सरबीजः । चारुकः सरबीजः स्यात्
 कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ चारुको मधुरो रूक्षो रक्त
 पित्तकफापहः ॥ ६९ ॥ शीतलो लघु वृष्य श्वेत

कषायो वातकोपनः ॥ [अथ वंशबीजः।]

यवा वंश भवा रूक्षाः कषायाः कटु पाकिनः ॥ व

द्रुमूनाः कफघ्नाश्च वातपित्तकराः सराः ॥ ७० ॥

[अथ वरेहसुम्भबीजः।] कुसुम्भ बीजं वरदा सैव प्रोक्ता

वरटिका ॥ वरदा मधुरा स्निग्धा रक्त पित्त कफापहा ।

॥ ७१ ॥ कषाया शीतला गुर्वी स्यादवृष्या निलापहा ॥

भा० [अनन्तर कीदों।] कीद्रव कीरदृष यह कीदों के नाम हैं और वन कीद्रव उद्दाल यह वन कीदों के नाम हैं ॥ कीदों वात को करनेवाला काविज शीतल कफ का नाशक है ॥ ६८ ॥ वन कीदों उष्ण काविज और अत्यन्त वात को करनेवाला है ॥ [अनन्तर चारुक सरवीज का नाम हैं।] अनन्तर उस्कागुण कहने हैं ॥ सरवीज मधुर रूखा रक्त पित्त कफ इनका नाशक है ॥ ६९ ॥ और शीतल हल्का शुक्र को उत्पन्न करनेवाला कसेला वात को करनेवाला है ॥

[अनन्तर बांस के बीज ॥ बांस के बीज रूखे कसेले और कटु पाकवों ले हैं ॥ मूत्र को रोकनेवाले कफ नाशक वात पित्त को करनेवाले सर होते हैं ॥ ७० ॥

[अनन्तर बरे कुसुम्भ बीजः।] कुसुम्भ बीज वरदा और वही वरटिका भी कहा है। वरदा मधुर चिकना और रक्त पित्त कफ का नाशक है ॥ ७१ ॥ और कसेला शीतल भारी शुक्र को करनेवाला वात नाशक होता है ॥

[अथ गरहेडु आ। गवेधुका तु विद्वद्भिर्गवेधुः कथि

तास्त्रियाम् ॥ गवेधुः कटुका स्वादी कार्ष्ण्यकृत् कफ

नाशिनी ॥ ७२ ॥ [अथ तीनी। असाधिकानु

नीवार स्तरणान्त भित्तिच स्मृतम् ॥ नीवारः शीत-

लो ग्राही पित्तघ्नः कफ वात हन्त ॥ ७३ ॥

[अथ पुनेरा।]

पवनाः स्नेहितः स्वादु स्नेहितः श्लेष्म पित्तजित् ।

अवृष्य सुवरो रूक्षः क्षौद्रकान् कथितो लघुः ॥७४॥
 धान्यं सर्व्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्मकरं स्मृतम् ॥ तत्
 वर्षोषितं पथ्यं यतो लघुतरं हितम् ॥७५॥ वर्षोषि-
 तं सर्व्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति ॥ ननु त्यजति वीर्य्यं
 स्वं क्रमान् मुञ्चत्यन्तः परम् ॥७६॥ एतेषु यव गोधू-
 म तिलमाषा नवा हिताः ॥ पुराणा विरसा रूक्षा न-
 तथा गुणकारिणः ॥ ७७ ॥

भा० अनन्तर गरहेड़आ। गवेधुका को नौ विद्वानों ने गवेधु ऐसा स्त्रीलिंग में कहा है ॥ इसको देवधान कहते हैं। देवधान कड़वा मधुर कृष्णता को करने वाला कफ पित्तका नाशक है ॥ ७२ ॥

[अनन्तर तिन्त्री ॥ प्रसाधिका नीवार और तृणान्त। यह तिन्त्री के नाम हैं। तिन्त्री शीतल क्वाविज्ञ पित्त नाशक कफ वानकी करने वाला है ॥ ७३ ॥

[अनन्तर पुनेरा।] घवना लोहिम यह पुनेरा के नाम हैं ॥ पुनेरा तालमधुर कफ पित्तको जीतने वाला है ॥ और शुक्र का नाशक कसीला ग्लानि को करने वाला हलका कहा है ॥ ७४ ॥

सब नया धान मधुर भारी और कफ को करने वाला कहा है ॥ वोह ऊपर से चरसान निकला ऊँचा हित होता है क्यों कि वोह चङ्गन हलका होता है ॥ ७५ ॥ ऊपर से चरसान गुजर जाने पर सब धान भारीपन को छोड़ देते हैं ॥ परन्तु अपने वीर्य्य को नहीं छोड़ते इसके उपरान्त क्रमसे छोड़ देते हैं ॥ ७६ ॥

इनमें जब गेहूँ तिल उड़द ये नये हित हैं ॥ पुराने वेरस रूखे और वैसे गुणकारी भी नहीं हैं ॥ ७७ ॥

(क) पुराणा वर्ष द्वया दुपरि स्थिता। यवादयो नवाः
 स्वास्थ्यान् प्रतिहिताः। पथ्याणि नान्तु पुराणा हिताः
 । पुराणा यव गोधूम क्षौद्र जाङ्गल शूल्य भुगिति
 चासन्ते वाग्भटे नोक्तवान् ॥

इति श्री भावप्रकाशे धान्यवर्गः ॥ ❀ ॥

भा० (क) पुराने अर्थात् दो वरस से ऊपर के जब आदिक नये निरोगियों को हित है ॥ और पथ्य भोजन करने वालों को तो पुराने हित है ॥

पुराने जव गेहूं मधु हरिण आदियों के मांस का कच्चाब इनको भोजन करने का ॥ इस प्रकार वसन्त ऋतु में वाग्भट ने कहा है इससे ॥

इति श्री भावप्रकाश में धान्यवर्गः ॥ ❀ ॥

अथ शाकवर्गः। तत्र शाक निरूपणम् ।]

पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा ॥ शाकं

षड्विधमुद्दिष्टं गुरु विद्या दधोत्तरम् ॥ ७८ ॥

[अथ शाकानां गुणाः। प्रायः शाकानि सर्वाणि

विष्टम्भीनि गुरूणि च ॥ रूक्षाणि बद्धवर्चसिस्तु

ष्टविण् मारुतानि च ॥ ७९ ॥ शाकं भिन्नति वयुर

स्थि निहन्ति नेत्रम् ॥ वर्णं विनाशयति रक्तं मध्या

पि शुक्रम् ॥ ८० ॥ प्रज्ञा क्षयश्च कुरुते पलितञ्च

नूनम् ॥ हन्ति स्मृतिं गतिमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ८१

भा० अनन्तर शाकवर्ग उस्में शाक निरूपण ॥ पत्र फूल फल नाल कन्द तथा संस्वेदज ॥ इस प्रकार छः प्रकार का साग कहा है ॥ उनमें दधोत्तर भारी जाने ॥ ७८ ॥

[अनन्तर शाकों के गुण] प्रायः सब शाक विष्टम्भी और भारी हैं। तथा रूखे बद्ध मल को करने वाले और मल वात को करने वाले हैं ॥

॥ ७९ ॥ साग शरीर की अस्थि को भेदन करता है और नेत्र को नाश करती है ॥

॥ तथा वर्ण को नाश करता है और रक्त तथा शुक्र को भी नाश करता है ॥

॥ ८० ॥ बुद्धि का क्षय भी करता है ॥ सिर के बाल धीले भी होते हैं ॥ और स्मृति तथा मति को भी नाश करता है ऐसा उसके जानने वालों ने कहा है ॥ ८१

शाकैषु सर्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेनवो देह विनाश-

नाय ॥ तस्मात् बुधः शाक विवर्जनन्तु कुर्यात्त
थास्तेषु स एव दोषः ॥ ८२ ॥ सन्तानि शाक निन्द
कानि वचनानि सामान्यानि ॥

अथ शाकेषु विविष्टानि वचनानि । [तत्र पत्र शाका
नि] [तत्रापि वास्तूक द्वयस्य नामानि गुणाश्च ।]

वास्तूकं वास्तूकञ्च स्यात् क्षार पत्रञ्च शाकराट् ॥

तदेव तु दहत्यत्रं रक्त स्याद्गौडं वास्तूकम् ॥ ८३ ॥

प्रायशो यव मध्ये स्याद्यवशोकं मतः स्मृतम् ॥

वास्तू कद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कद्वदितम् ॥ ८४ ॥

दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलं प्रदम् ॥ सरं

स्तीहास्र पितार्शः कृमिदोष त्वयापहम् ॥ ८५ ॥

भा० सव सागों में रोग बसते हैं वही देह नाशके कारण हैं ॥ इस वास्ते व
हिवान् सागन सेवन करे वैसेही अम्लमें भी वही दोष है ॥ ८२ ॥ यह साग की
निन्दाके सामान्य वचन हैं ॥ अनन्तर शाकमें विशेष वचन
की कहते हैं ॥ [उत्तमं पत्र शाक । उत्तमं भी दोनों वधुओं के नाम और
गुण कहते हैं ॥ वास्तूक और वास्तूक भी होता है ॥ क्षारपत्र शाकराट् ।
येह वधुवे के नाम हैं । वही चड़े पत्तोंका लाल होता है । उसको गौड वास्तूक
कहते हैं ॥ ८३ ॥ प्रायः जवके बीचमें होता है इसवास्ते जवशाक कहा है ॥
दोनों वधुवे मधुर क्षार पाकमें कड़वे कहते हैं ॥ ८४ ॥ और दीपन पाचन रुचि
को करनेवाले हलका शुक्रबल को देनेवाले हैं । सर पिलही रक्त पित्त ववासीर
कमी नीनों दोष इनके नाशक हैं ॥ ८५ ॥

[अथ पोतकी] पोतक्यु पोदिका सा तु मालवा मृत व-
ल्ली ॥ पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला चान-

पित्तनुत् ॥ ८६ ॥ अकरामा पिच्छिला निद्रा शु-
क्रदारक्त पित्तजित् ॥ बलदारुचिकृत् पथ्या वृ-
हणी नृप्तिकारिणी ॥ ८७ ॥

[अथ श्वेतमरुसा ।] लोहितमरुसा नवडा इति च ।
मारिषो वाय्व्यको मार्षः श्वेतो रक्तश्च संस्मृतः ॥
मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुत् गुरुः ॥ ८८
वातश्लेष्मकरो रक्त पित्तनुत् विषमाग्नि जित् ॥
रक्तमार्षो गुरुर्नानि सक्षारो मधुरः सरः ॥ ८९ ॥
श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः ॥

भा० अनन्तर पोई की साग ॥ पोतकी उपोदिका मालवा अमृतवत्तरी
येह पोई के नाम हैं ॥ पोई शीतल चिकनी कफ को करने वाली वात
पित्त की नाशक है ॥ ८६ ॥ कंठ के अहित पिच्छिल निद्रा और शुक्र
को करने वाली तथा रक्त पित्त को जीतने वाली है ॥ और बल को देने वा-
ली रुचिकी करने वाली पथ्य बुष्ट तथा नृप्ति को करने वाली है ॥ ८७
॥ अनन्तर सुफेद मरसा ॥ और लाल मरसा नवडा इस प्रकार भी
कहत हैं ॥ मारिष वृष्यक मार्ष येह मरसे के नाम हैं ॥ बौह लाल औ
र सुफेद कहा है ॥ मरसा मधुर शीतल विष्टम करने वाला पित्त का ना-
शक मारी है ॥ ८८ ॥ वात कफ को करने वाला रक्त पित्त का नाशक
विषम अग्निको जीतने वाला है ॥ लाल मरसा बहुत भारी नहीं होता ।
और क्षीर के सहित मधुर सर होता है ॥ ८९ ॥ और कफ को करने वा-
ला पाक में कटु और अल्पदोष करने वाला कहा है ॥

[अथ चवराई । अल्पमरुसा इति च । तराडुलीयो
मेघनादः काराडे रस्त राडुले रक्तः ॥ भराडी रस्त
राडुली बीजो विष म्रश्चाल्प मारिषः ॥ ९० ॥ त-

एडुलीयो लघुः शीतो रुक्षः पित्तकफास्रजित् ॥

सृष्टमूत्रमलो रुच्यो दीपनो विषहारकः ॥ ८१ ॥

[अथ चवराई भेदः। जलन एडुलीयं शास्त्रे कचटमिति।

प्रसिद्धम् ॥ पानीयं तराडुलीयन्तु कचटं समुदाहृत-

म् ॥ कचटं तिक्तकं रक्त पित्तानिलहरं लघु ॥ ८२ ॥

[अथ पलकी। पलक्या वास्तुका कारा च्छुरिका चौरि

तच्छ्रदा ॥ पलक्या वातला शीता श्लेष्मला भेदिनी

गुरुः ॥ ८३ ॥ विष्टम्भिनी मदश्वास पित्तरक्त कफापहाः।

भा० अनन्तर चवराई। छोट्टा मरसा इस प्रकार कहने हैं। तराडुलीय मेघ नाद काण्डेर तंडुलैरक ॥ मंडीर तंडुली बीज विषघ्न अल्पमारिष। ये ह चवराई के नाम हैं ॥ ८० ॥ चवराई हलकी शीतल रुखी पित्त कफ रक्त इनकी जीतने वाली है ॥ और मल मूत्रको करने वाली रुचिकी करने वाली दीपन। विष नाशक है ॥ ८१ ॥

अनन्तर दूसरे किसम की चवराई ॥ पनिया चवराई शास्त्र में कचट इस नाम से प्रसिद्ध है। पानीय तंडुलीयक कचट। इस प्रकार कहा है ॥ पनिया चवराई तिक्त रक्त पित्त और वात इनकी नाशक हलकी होती है ॥ ८२ ॥ [अनन्तर पालक। पलक्या वाम्बुका कारा अर्थान् वधुवेकीसी च्छुरिका चौरि नच्छ्रदा यह पालक के नाम हैं ॥ पालक वात को करने वाला शीतल कफ को करने वाला भेदन भारी है ॥ ८३ ॥

और विष्टम्भ को करने वाला तथा मदश्वास पित्तरक्त कफ इनका नाशक

[अथ नरिचा कालशाकमिति च। नाडिकं काल

शाकञ्च श्राद्धशाकञ्च कालकम् ॥ कालशाकं

सरं रुच्यं वातघ्नं कफशोथहन् ॥ ८४ ॥ खल्यं

रुचिकरं मेध्यं रक्तपित्तहरं हिमम् ॥

[अथ पटुआ । यह शाकस्त नाड़ीको नाड़ीशाकश्च सः
स्मृतः ॥ नाड़ीको रक्त पित्तघ्ना विष्टम्भी वातको
पनः ॥ ६५ ॥ [अथ कलम्बी । कलम्बी शान्त
पर्वी च कथ्यन्ते तदुण अथ ॥ कलम्बी स्तन्यदा
प्रोक्ता मधुरा शुक्र कारिणा ॥ ६६ ॥

भा० अनन्तर नरेवी । इसको कालासागभी कहते हैं ॥ नाड़ीक कालशाक
आद्ध शाक कालक । यह कार्ल साग के नाम हैं । कालासाग रुचिको करने वा
ला सर वायुको करनेवाला और कफ शोथका नाशक है ॥ ६४ ॥ तथा बलको क
रने वाला रुचिकर कान्तिकी करने वाला रक्त पित्त का नाशक शीतल है ॥

[अनन्तर पटुवा ।]

पटुशाक नाड़ीक नाड़ीशाक । यह पटुवा के नाम हैं ॥ पटुवा रक्तपित्त का ना
शक विष्टम्भ करनेवाला वातका कोपन है ॥ ६५ ॥

अनन्तर कलम्बी साग । कलम्बी शान्तपर्वी । यह कलगी सागके नाम हैं ॥
अनन्तर उसके गुण कहते हैं । कलगी दुग्धको करनेवाली कही है ॥ और म
धुर शुक्रको करनेवाली है ॥ ६६ ॥

[अथ लोणी । वह लोणी । लोणा लोणी च कथिता ।
वह लोणी तु घोटिका ॥ लोणी रूक्षा स्मृता गुर्वी वा
तश्लेष्म हरी पटुः ॥ ६७ ॥ अर्शोघ्नी दीपनी चाम्स्ता
मन्दाग्नि विषनाशिनी ॥ घोटिका स्लासरा चोष्णा
वातकृत् कफ पित्त हृत् ॥ ६८ ॥ वाग्दोष ब्रण गु
ल्मघ्नी श्वास कास प्रमेह नुत् ॥ शोथ लोचन रोगे
च हिता तज्जै रुदाहता ॥ ६९ ॥

भा० अनन्तर नोनिया छोटी और बड़ी ॥ लोणा लोणी यह नोनिया के ना
म हैं ॥ और बड़ी नोनिया को घोटिका कहते हैं ॥ नोनिया रूखी कही है ।
और भारी वात कफकी नाशक ममकीन होती है ॥ ६७ ॥

और बवासीर की नाशक दीपन खट्टी होती है ॥ तथा मन्दानि विष इनकी नाशक है ॥ बड़ी नोनिया खट्टी सर गरम बानको करने वाली कफ पित्तकी नाशक है ॥ ६८ ॥ बारीकी का दोष व्रण वायुगोला इनकी नाशक है ॥ तथा श्वास कास प्रमेह इनकी नाशक ॥ तथा स्थूलन और नेत्र रोगमें भी हित है । ऐसा उसके जानने वालोंने कहा है ॥

[अथ चाङ्गेरी अम्बिली नारति च ।]

चाङ्गेरी चुक्रिका दन्त शठाम्बुष्टास्त्र लोणिका ॥ अ
स्मन्तकस्तु शफरी पिसली चास्त्रपत्रकः ॥ १०० ॥ चा
ङ्गेरी दीपनी रुच्या रूक्षोष्णा कफ वात नृत् ॥ पित्तला
म्ला ग्रहरथर्थाः कुष्ठाती सारनाशिनी ॥ १०१ ॥

[अथ चूक । चुक्रिका स्यात्तुपत्राम्ला रोचनी शतवेधि
नी ॥ चुक्रा त्वस्त्र तरा स्वाद्वी वातघ्नी कफ पित्त हन्
॥ १ ॥ रुच्या लघु तरा पाके हन्ताके नाति रोचनी ॥

भा० अनन्तर चाङ्गेरी येह चूकका भेद है ॥ चाङ्गेरी चुक्रिका दन्त शठ अ
म्बुष्टा अम्बुलोणिका । येह चाङ्गेरीके नाम हैं ॥ और अस्मन्तक शफरी
पिसली अस्त्रपत्रक येह भी उसके नाम हैं ॥ १०० ॥ चाङ्गेरी दीपनी रुचि
को करनेवाली रूक्षी उष्ण कफ वातकी नाशक ॥ पित्तको करने वाली है ।
खट्टी होती है । और संग्रहणी बवासीर कुष्ठ अतीसार इनकी नाशक है ॥
१०१ ॥ [अनन्तर चूक] चुक्रिका पत्राम्ला रोचनी शतवेधिनी ॥
येह चूकके नाम हैं ॥ चूक बहुत खट्टी मधुर वातनाशक कफ पित्तको
करनेवाली ॥ १०२ ॥ रुचिको करनेवाली पाकमें बहुत हलकी वेंगनमें
बहुत रुचिको करनेवाली नहीं होती ॥

[अथ चेषुना । नाडीचवत् ।]

चिञ्चा चञ्चु श्रञ्चु की च दीर्घ पत्रा सतिज्ञका ॥

चुञ्चुः शीता सरा रुच्या स्वाही दोषत्रया पहः ॥ १०३ ॥

धातु पुष्टि करी बल्या मेध्य पिच्छिलका स्मृता ॥

[अथ हिलमोचिका । हर हर इति लोके ॥

ब्राह्मी शङ्ख धरा चारी ब्राह्मी च हिलमोचिका ॥

शोथं कुष्ठं कफं पित्तं हरते हिलमोचिका ॥ १०४ ॥

[अथ शिरीयारी । शितिवारः शितिवरः स्वस्तिकः

सुनिषणाकः ॥ श्रीवारकः सूचिपत्रः परीकः

कुक्कुटः शिखी ॥ १०५ ॥ चाङ्गेरी सदृशः पत्रञ्च

तुर्दल इतीति ॥ शाको जलान्विते देशे चतुः

पत्नीति चोच्यते ॥ १०६ ॥ सुनिषणो हिमो याही ।

मोह दोष त्रया पहः ॥ अविदाही लघुः स्वादुः

कषायो रूक्ष दीपनः ॥ १०७ ॥ दृष्यो रुच्यो ज्वर

त्रास मेह कुष्ठ भ्रम प्रणुत् ॥

मा० अनन्तर चैवुना । विज्जा चुञ्चु । चुञ्चु की दोष पत्रा सतिक्का ये ह चावुना के नाम हैं ॥ चावुना शीतल सर रुचिको करनेवाला मधुर तीनों दोषों का नाशक है ॥ १०३ ॥ धातु पुष्ट करने वाला बल को करने वाला कान्तिको करने वाला पिच्छिल कहा है ॥

[अनन्तर हर हर । ब्राह्मी शंख धरा चारी ब्राह्मी हिलमोचिका ये हर हर के नाम हैं ॥ हर हर सूजन कुष्ठ कफ पित्त इनको हरता है ॥

१०४ ॥ [अनन्तर शिरीयारी ॥ शितिवार शितिवर स्वस्तिक सुनिषणाक ॥ श्रीवारक सूचिपत्र परीक कुक्कुट शिखी यह शिरीयारी के नाम हैं ॥ १०५ ॥ ये चाङ्गेरी के समान पत्र चोपत्ती कहा गया है ॥ यह साग जलान्वित देश में चोपत्ती रोसा कहते हैं ॥ १०६ ॥

शिरीयारी शीतल का विज्ञ हीती है और मोह तथा तीनों दोष इनकी

नाशकं है ॥ और अविदाही हलकी मधुरं कर्सेली रूखी दीपन है ॥
॥ १०७ ॥ और शुक्र को करने वाली और रुचि को करने वाली है। और
ज्वर श्वास प्रमेह कुष्ठ भ्रम इनकी नाशक है ॥

[अथ मुरई पत्रम् ॥ पाचनं लघु रुच्योष्णं पत्रं मूल
कजं नवम् ॥ स्नेह सिद्धं त्रिदोषघ्नं मसिद्धं कफपि-
तहृत् ॥ १०८ ॥] अथ गुग्गुलु। द्रोण पुष्पी दलं स्वा-
दु रूक्षं गुरु च पित्त हृत् ॥ भेदनं कामला शीथ
मेह ज्वर हरं कटु ॥ १०९ ॥

अनन्तर मूली के पत्ते ॥ नये मूली के पत्ते पाचन हलके रुचि को करने
वाले उष्ण होते हैं ॥ और चिकनाई में सिद्ध किये जावे त्रिदोष नाशक
और कच्चे कफ पित्त को करने वाले हैं ॥ १०८ ॥ [अनन्तर गुग्गुलु।
गुग्गुलु का पत्र मधुर रूखा भारी पित्त को करने वाला है ॥ और भेदन
कामला रूजन प्रमेह ज्वर इनका नाशक कटु है ॥ १०९ ॥

[अथ जवाइन।]

यवानी शाक माग्नेयं रुच्यं वात कफ प्रणुत् ॥

उष्णं कटु च तिक्तं च पित्तलं लघु शूलहृत् ॥ ११० ॥

[अथ चकबड़। दद्रुघ्न पतं दोषघ्न मूलं वात कफा
पहम् ॥ कण्डू कास हृमि श्वास दद्रू कुष्ठ प्रणु लघु
॥ १११ ॥] अथ सेहण्ड। सेहण्डस्य दलं तीक्ष्णं दीपनं रोच-
नं हरेत् ॥ आध्मानाष्ठीलिका गुल्म शूल शीथो
दराणि च ॥ ११२ ॥

भा० अनन्तर अजवाइन का साग। अजवाइन का साग गरम रुचि
को करने वाला वात कफ का नाशक है। और उष्ण कटु तिक्त पित्त को
करने वाला है ॥ हलका और शूल को हरने वाला है ॥ ११० ॥

[चकचड़। चकचड़ के पत्र दोष नाशक खड़े और वात कफ के नाशक हैं ॥
और खुजली कास कमि श्वास दाद कीढ़ इनका नाशक है ॥ १११ ॥
[अनन्तर चूहर के पत्ते। सेहंड के पत्ते नीखे दीपन रोचन होते हैं ॥ और आ
ध्मान अष्टीला वायगोला शूल सूजन और उदर रोग इनका नाश करता
है ॥ ११२ ॥

[अथ दवन पापरा।]

पर्यटो हन्ति पित्तास्र ज्वर तृष्णा कफ भ्रमान् ॥ सं

ग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्घातलो लघुः ॥ ११३ ॥

[अथ गोभी] गोजिह्वा कुष्ठ मेहास्र कृच्छ्र ज्वर हरो ल

घुः ॥ [अथ पटोल पत्र। पटोल पत्रं पित्तघ्नं दीपन

म्पाचनं लघु ॥ स्निग्धं दृष्यं तथोष्णञ्च ज्वर कास

कमि प्रेरणन् ॥ ११४ ॥

भा० अनन्तर पित्त पापड़ा। पित्तपापड़ा रक्तपित्तज्वर तथा कफ भ्रम इन
का नाश करता है। और काविज शीतल निक्त दाह इनकी नाशक वातको क
रनेवाला हलका होता है ॥ ११३ ॥

अनन्तर गोभी। गोभी कीढ़ प्रमेह रक्त सूत्र कृच्छ्र ज्वर इनकी नाशक हलकी
। चिकनी शुकको करने वाली तथा उष्ण ज्वर कास कमि इनकी नाशक है
॥ ११४ ॥

[अथ गुडूची। गुडूची पत्र माग्नेयं सर्व ज्वर हरं लघु

॥ कषायं कटु तिक्तञ्च स्वादुपाकं रसायनम् ॥ ११५ ॥

॥ बल्यमुष्णञ्च संग्राहि हन्यात् दोष त्रयं तृषाम् ॥

दाह प्रमेह वातास्रक कामला कुष्ठ पाण्डुताम् ॥

॥ ११६ ॥

[अथ कसौदी।

काम मर्द्दी और मर्दम्ब कासारिः कर्कश स्तथा ॥

कासमहदं दलं रुच्यं चर्ष्यं कासविषास्रनुत् ॥ ११३ ॥ मधुरं
कफवानघं पाचनं कराढ शोधनम् ॥ विशेषतः कास
हरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु ॥ ११४ ॥

भा० अनन्तर गिल्लीय के पते ॥ गिल्लीय के पत्र गरम सब ज्वर के नाशक हलके ॥ कसैले कड़वे तिक्त पाकमें मधुर रसायन ॥ ११५ ॥ बलको करने वाले उष्ण काबिज होते हैं । और तीनों दोष तथा तृषा इनका नाश करते हैं ॥ और दाह प्रमेह वातरक्त कामला कुछ पाण्डुरोग इनका भी नाश करता है ॥ ११६ ॥ अनन्तर कसौंदा । कासमह अरिमह कासारि तथा कर्कश यह कसौन्दी के नाम हैं ॥ कसौन्दी के पत्र रुचिको करने वाले शुक्रको करने वाले और कास विषरक्त इनके नाशक हैं ॥ ११७ ॥ और मधुर कफवात के नाशक पाचन कराढ के शोधन है ॥ विशेषकर के कास नाशक पित्तनाशक हैं और काबिज हलके हैं ॥ ११८ ॥

[अथ चराक ।

रुच्यञ्चरां कषाकं स्यात् दुर्जरं कफवातघ्नम् ॥ अम्लं
विष्टम्भजनकं म्पित्तनुत् दन्त शोथहृत् ॥ ११९ ॥

[अथ केराव । कलाय शाकम्भेदि स्यात् लघु तिक्त त्रिदोषजित् ॥

[अथ सरिसो ।] कदुकं सार्षपं शाकं बृह मूत्रमलंयुग्म् ॥

अम्लपाकं विदाहि स्यादुष्णं रुक्षं त्रिदोषजित् ॥ १२० ॥

भा० अनन्तर चनेका साग । चनेका साग रुचिको करने वाला है । और दुर्जर कफ वातको करने वाला ॥ और रुखा विष्टभ करने वाला पित्तनाशक और दंतों की सूजन को दूर करने वाला है ॥ १२१ ॥ अनन्तर मटरका साग । मटर की साग भेदन करने वाला हलका तिक्त त्रिदोषको जीतने वाला है ॥ अनन्तर सरसोंका साग । सरसोंका साग कड़वा बद्धत मूत्र मलको करने वाला भारी ॥ पाकमें अम्ल विदाही उष्ण रुखा त्रिदोषको जीतने वाला है ॥ १२० ॥

सुक्षारं लवणान्तीक्ष्णं स्वादु शाकपुं निन्दितम् ॥

[अथ पुष्पशाकानि । तत्रागस्ति पुष्पस्य गुणाः, ॥

अगस्ति कुसुमं शीतं चानुर्यक निवारणम् ॥ नक्ताम्य
नाशनन्तिकं कषायं कटु पाकिच ॥ १२१ ॥ पीनस प्ले-
ष्म पित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम् ॥

[अथ कदली पुष्पम् ।] कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तु-
वरं गुरु ॥ वात पित्तहरं शीतं रक्तपित्तक्षयप्रणुत् १२२
शोभाञ्जन ।] शिग्रोः पुष्पन्तु कटुकर्ताक्षोष्णं स्त्रायु
शोथकृत् ॥ कृमिहृत् कफ वातघ्नं विद्रधि स्नीह गुल्म
जित् ॥ १२३ ॥ मधुशिग्रोः स्त्वक्षिहितं रक्तपित्तप्रसादनं

भा० क्षार के सहित नमकीन तीखी मधुर और सागोंमे निन्दित है ॥
अनन्तर पुष्प आकोंको कहते हैं ॥ उनमें अगस्ति के फूलका गुण कहते हैं
॥ अगस्ति का फूल शीतल और खोथैया को दूर करने वाला है ॥ और रतौन्धी का
नाशक तित्त कैसेला पाकमें कटु होता है ॥ १२१ ॥ और पीनस कफ पित्तका ना-
शक वातनाशक होता है । ऐसा मुनियोंने कहा है ॥

[अनन्तर कैलेका फूल । कैलेका फूल चिकना मधुर कैसेला भारी ॥ वात पित्तका
नाशक शीतल और रक्त पित्त क्षय करने का नाशक है ॥ १२२ ॥ सहिंजता ।
सहिंजने का फूल कड़वा तीखा उष्ण स्त्रायु शोथको करने वाला ॥ कृमिका ना-
शक कफ वातका नाशक और विद्रधि पिलाहि वायगोला इनको जीतने वाला है
॥ १२३ ॥ लाल सहिंजता नेत्रके हित रक्त पित्तको अच्छा करने वाला है ॥

अथ शाल्मली पुष्पम् । शोल्मली पुष्प उष्णकन्तु घृतसैन्ध-
वसाधितम् ॥ प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यञ्च न शंसयः
॥ १२४ ॥ रसे पाकेच मधुरं कषायं शीतलं गुरु ॥ कफ पित्ता
स्वजिह्वा हि वातलञ्च प्रकीर्तितम् ॥

[अथ फल शाकानि ।] तत्र कुष्माण्डस्य नामानि गुणाश्च ।
कूष्माण्डं स्यात्पुष्प फलमपीन पुष्पं दृढत् फलम् ॥

कूष्माण्डं दृढं दृढं गुरु पित्तास्र वाननुत् ॥ १२६ ॥
 वालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफ कारकम् ॥ दृढं ना
 निहिंसं स्वादु सत्तारन्दीपनं लघु ॥ १२७ ॥ वस्ति शुद्धि
 करं चेतो रोगहन् सर्व्य दोष जित् ॥

भा० अनन्तर सेमलका फूल ॥ सेमल के फूलका साग घृत सेन्धव से सिद्ध
 किया हुआ कष्टसाध्य प्रदरको भी नाश करता है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥
 १२४ ॥ रक्त और पाकमें कटु मधुर कसेला शीतल भारी होता है ॥ और
 कफ रक्त पित्त इनको जीतने वाला है काविज वातको करने वाला कहा है ।
 ॥ १२५ ॥ अनन्तर फूल शाक । उनमें पेठे के नाम और गुण । कूष्माण्ड पुष्प
 फल पीत पुष्प दृढ फल यह पेठे के नाम हैं ॥ पेठा पुष्ट सुक्रको करने वाला
 भारी रक्त पित्त और वात इनका नाशक है ॥ १२६ ॥ छोटा पित्त नाशक और
 शीतल होता है और मध्यम कफ करने वाला ॥ तथा बड़ा बद्धन शीतल नहीं
 होता और मधुर क्षारके सहित दीपन हलका ॥ १२७ ॥ वस्ति को शुद्ध करने वाला
 मानसिक रोगोंका नाशक और सब दोषों को जीतने वाला है ॥

[अथ कोहडी ।] कूष्माणडी तु भृशं लघ्वी कर्करुरपि कीर्ति
 तम् ॥ कर्करुग्राहिणी शीता रक्त पित्तहरा गुरु : ॥ १२८
 पक्वा तिक्ताग्नि जननी सत्तारा कफवातनुत् ॥

[अथ लवलोआ । गृहलोआ ।] अलाचूः कथिता तुम्बी द्विधा
 दीर्घा च वर्तुला ॥ पिष्ट तुम्बी दलं हृद्यं पित्तप्लेष्मापहं
 गुरु ॥ १२९ ॥ दृढं रुचिकरं प्रोक्तं धातु पुष्टि विवर्द्धनम्

भा० अनन्तर छोटा पेठा ॥ छोटा पेठा बद्धन हलका होता है । और इसको कर्करु
 भी कहते हैं ॥ छोटा पेठा काविज शीतल रक्त पित्तका नाशक और भारी
 होता है ॥ १२८ ॥ पक्वा तिक्त अग्निको करने वाला क्षारके सहित कफ वात का ना
 शक है ॥ अनन्तर लोकी । अलाचू तुम्बी यह लोकी के नाम हैं ॥ यह दो
 प्रकारकी होती है लंबी और गोल ॥ भीठी तुम्बी के पत्र दृढ पित्त कफ के ना-

शक भारी होते हैं ॥ १२८ ॥ और जुंक्र को करनेवाला रुचिकर धातु पुष्टि को व
दाने वाला है ॥ [अथ तीतलोकी ।]

इक्ष्वाकुः कटु तुम्बी स्यात् सा तुम्बी च महा फला ॥ कटु
तुम्बी हिमा हृद्या पित्तकास विषा पहाः ॥ १२९ ॥ तिक्ता क
टु विपाके च वातपित्त ज्वरान्तकृत् ॥

[अथ ककड़ी ।] एवीरुः कर्कटी प्रोक्ता कथ्यन्ते तद्गुणा अ-
थ ॥ कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः ॥ १३१ ॥
रुच्या पित्तहरा सामा पक्वा नृणाग्नि पित्तकृत् ॥

भा० अनन्तर तीतिलोकी ॥ इक्ष्वाकु कटु तुम्बी यह तीतिलोकी के नाम हैं बाह
बड़े फल वाली होती है ॥ कटु तुम्बी शीतल हृद्य पित्त कास विष इनको ना-
शक है ॥ १२९ ॥ तिक्त विपाक में कटु होती है और वात पित्त ज्वर इनकी नाश
कहे ॥ अनन्तर ककड़ी । एवीरु कर्कटी येह ककड़ी के नाम हैं ॥ अनन्त
र उसके गुण कहते हैं ॥ ककड़ी शीतल रूखी क्राविज्ञ मधुर भारी ॥ १३१ ॥ रुचिको
करनेवाली पित्त नाशक कच्ची होती है ॥ और पकी हुई तथा अग्नि पित्त इनको करे

[अथ चिचिण्डा ।] चिचिण्डा श्वेतराजिः स्यात्सुदीर्घा गृह
कूलकः ॥ चिचिण्डा वात पित्तघ्नो वल्यः पथ्यो रुचिप्रदः
॥ शोषिणोऽति हितः किञ्चिद् गुरोर्न्यूनः पटोलतः ॥
१३२ ॥ अथ करेला करेली । कारवेल्लं कटिल्लं
स्यात् कारवेल्ली ततो लघुः ॥ कारवेल्लं हिमं भेदि लघु
तिक्त मवातलम् ॥ १३३ ॥ ज्वरपित्त कफास्रग्घ्नं पाराडु मेह
कुमीन् हरेत् ॥ तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषा दीपनी ल-
घुः ॥ १३४ ॥

भा० अनन्तर चिचेंडा ॥ चिचेंडा श्वेतराजि सुदीर्घ गृहकूलक । यह चिचें

डेकेनामहैं ॥ चिचिंटा वात पित्तका नाशक बलकेहित पथ्य रुचिको देवे वा-
लाहै ॥ सुक नेवाले अतिहित और परबलसे कुछ एक गुणमें न्यून होताहै ।
१३२ ॥ अनन्तर करेला और करेली ॥ कारवेक्ष कठिञ्ज येह करलेके नामहैं
और करेली उससे छोटी होतीहै ॥ करेला शीतल भेदनकरनेवाला हलका मि-
क्त वातको न करनेवालाहै ॥ १३३ ॥ और ज्वर पित्तकफ रक्त दूनकी नाशक
है ॥ और पांडुरोग प्रमेह कृमि इनकी हरताहै । करेली उसीके समान गुणमें
होतीहै विशेषकरके दीपन हलकीहै ॥ १३४ ॥ [अथनेत्रुआ।]

महाकोशातकी प्रोक्ता हस्तिघोषा महाफला ॥ धामा
र्गवो घोषकश्च हस्तिपर्णाश्च सस्मृतः ॥ १३५ ॥ महा-
कोशातकी स्निग्धा रक्तपित्ता निलापहा ॥

[अथ तोरई ।] धामार्गवः पीतपुष्पो जालिनी कृतवेधना

राजकोशातकी चेतितथोक्ता राजिमत् फला ॥ १३६ ॥

राजकोशातकी शीता मधुरा कफवातना ॥ पिचघ्नी

दीपनी श्वासज्वरकास कृमिप्रणुत् ॥ १३७ ॥

भा० अनन्तर घियातुरई ॥ महाकोशातकी हस्ति घोषा महाफला धामार्ग
व घोष हस्तिपर्णा यह घियातुरई के नाम कहैंहैं ॥ १३५ ॥ घियातुरई विक-
र्ण रक्त पित्त वात दूनकी नाशक है ॥ [अनन्तर तुरई ॥ धामार्गव
पीतपुष्पा जालिनी कृतवेधना ॥ राजकोशातकी येह तोरई के नामहैं तथा स्नि-
ग्धी से युक्त फल होताहै ॥ १३६ ॥ तुरई शीतल मधुर कफ वातकी करनेवाली
पित्तनाशक दीपन होतीहै और श्वासज्वरकास कृमि इनकी नाशक है ॥ १३७ ॥

अथपटोर । पटोलः कूलकस्तिकः पाराङ्कः कर्कश

च्छदः ॥ राजीफलः पाराङ्कफलो राजेयश्चामृता फ-

लः ॥ १३८ ॥ चीजगर्मः प्रतीकश्च कुष्ठहा कासभञ्जनः

॥ पटोलं पाचनं हृद्यं चृष्यं लघ्वग्निदीपनम् ॥ १३९ ॥

स्निग्धोष्णं हन्ति कासांस्र ज्वरदोषत्रयकृसीत् ॥ पटो
लस्य भविन्मूलं विरेचन करं सुखात् ॥ १४० ॥ नालं
श्लेष्महरं पत्रं पित्तहारि फलं पुनः ॥ दोषत्रय हरं प्रो-
क्तं तद्वृत्तिता पटोलिका ॥ १४१ ॥

[अथकुन्दुरी ।] विस्वी रक्तफला नुरडी तराडकेरी च वि-
म्बिका ॥ ओष्ठोपम फला प्रोक्ता पीलुपर्णी च कथ्यते ॥
॥ १४२ ॥ विम्बिफलं स्वादु शीतं गुरुं पित्तास्र वातजित् ॥
स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाध्मान कारकम् ॥ १४३ ॥

सा० अनन्तर परवेल ॥ पटोल कुलक निक्त पाण्डुक कर्कशच्छद ॥ राजीफल
पाण्डुफल । राजेय अमृताफल ॥ १४८ ॥ बीजगर्भ भरीक कुष्ठहा कास भंजन यह पर-
बल के नाम है ॥ परवल पाचन हृद्य शुक्रको उत्पन्न करनेवाला हलका अग्निदीपन
॥ १४९ ॥ चिकना उष्ण है और कास श्वास ज्वर तीनों दोष कृमि बुनको नाश करता है
॥ परवल को जड़ सुखसे विरेचन करनेवाली है ॥ १४० ॥ नाल कफ नाशक पत्र
पित्त नाशक और फल ॥ त्रिदोष नाशक कहा है उसी प्रकार निक्त पटोलिका है ॥
१४१ ॥ [अनन्तर कुन्दरू ॥ विस्वी रक्तफला नुरडी केरी विम्बिका ॥ ओष्ठोपम
फला पीलुपर्णी यह कुन्दरू के नाम कहे हैं ॥ १४२ ॥ कुन्दरू फल मधुर शीतल
भारी रक्त पित्त वात इनको जीतने वाले हैं ॥ स्तम्भन लेखन रुचिको करनेवाला
विबन्ध और आध्मान करनेवाला है ॥ १४३ ॥

[शिम्विशेवा ।] शिम्विः शिम्वी पुस्तशिम्वीस्तथा पुस्त-
क शिम्विका ॥ शिम्वी हृद्यञ्च मधुरं रसेपाके हिंसं गुरु
॥ १४४ ॥ त्वल्यं दाहकरं प्रोक्तं श्लेष्मलं चात पित्तजित् ॥
[अथ सुवराशिम्वि ।] कोलशिम्विः कृष्णफला तथा प-
र्यङ्गः पटिका ॥ कोलशिम्विः समीरञ्जी गुख्युष्णा क-

फ पित्तकृत् ॥ १४५ ॥ शुक्राग्नि सादकृत् वृष्या रुचिकृत्
वद्धविड्गुरुः ॥ [अथ सौहिजना फल।]

सौभाजनफलं स्वादु कषायं कफ पित्तनुत् ॥ शूलकु
ष्ठ क्षयं श्वास गुल्महृद्दीपनं परम् ॥ १४६ ॥

भा० अनन्तर सेम सेमा । शिम्वि शिम्बी पुस्तशिम्वी तथा पुस्तक शिम्बिका
येह सेमके नामहैं ॥ दोनों सेम मधुर रस और फलमें और शीतल भारी होती
हैं ॥ १४४ ॥ वनके हित दाहकर कफको करनेवाले और वात पित्तकी जीतने
वालेहैं । (अनन्तर सुवरासेम इसको आलकुशीभी कहतेहैं । कालशिम्बी
क्षणाफला तथा पर्यङ्ग पट्टिका यह आलकुशीके नामहैं ॥ आलकुशी
वातनाशक भारी उष्ण कफ पित्तको करनेवाली है ॥ १४५ ॥ और शुक्र
अग्निमान्द्य इनको करनेवाली शुक्रको करनेवाली रुचिको करनेवाली म
लको दान्धनेवाली भारी है ॥ अथ सौहिजना । सहिजनका फल
मधुर कसैला कफ पित्तका नाशक है ॥ और शूल कुष्ठ क्षय श्वास वायगोत्र
इनका नाशक और अत्यन्त दीपन है ॥ १४६ ॥

जं.

[अथ भण्डा।] दृन्ताकं स्त्री तु वार्ताकु भण्डाक्षी भारिष्ठ-
कापि च ॥ दृन्ताकं स्वादु नैर्दह्णं कटुपाक मपित्तल-
म् ॥ १४७ ॥ ज्वर वात वलासं दीपनं शुक्रलं लघु ॥ तद्वा-
लं कफ पित्तं दृढं पित्तकरं लघु ॥ १४८ ॥ दृन्ताकं पित्त-
लं किञ्चित् अङ्गार परिपाचितम् ॥ कफ मेदो विलाम-
घ मत्यर्थं लघु दीपनम् ॥ १४९ ॥ तदेव हि गुरु स्निग्धं स-
तैलं लवणान्वितम् ॥ अपरं श्वेतदृन्ताकं कुक्कुटाखट स
न भवेत् ॥ १५० ॥ तदर्शः सविशेषेण हितं हीलञ्च पूर्व
वत् ॥

भा० अनन्तर वैंगन । दृन्ताक वार्ताकु भण्डाक्षी भारिष्ठका ।
यह वैंगन के नामहैं ॥ वैंगन मधुर तीखा उष्ण पाकमें कटु और पित्तको न करने

वालाहै ॥ १४७ ॥ और ज्वर वात कफ इनका नाशक है । दीपन शुक्रको करनेवाला हलका है ॥ वैसेही कच्चा कफ पित्तका नाशक और बड़ा पित्त करनेवाला हलका होताहै ॥ १४८ ॥ अंगारे पर पकाया जवा कुछ एक पित्तको करनेवाला है ॥ और कफ भेद वात आम इनका नाशक अत्यन्त दीपन हलका है ॥ १४९ ॥ वोही भारी चिकना ते ल और लवणके युक्त होता है ॥ दूसरा सफ़ेद वैंगन मुरगेके अण्डे समान होता है ॥ १५० ॥ वोह ववासीर में विशेषकरके हित है और पूर्ववत् हीनभी है ॥

अथ डिण्डिश । डिण्डिशो रोमशफलो मुनिनिर्मित इत्य

पि ॥ डिण्डिशो रुचिकृद्देदी पित्तश्लेष्मा यहः स्मृतः ॥

॥ १५१ ॥ सुशीतो वातलो रूक्षो मूत्रलश्चाशमरी हरः ॥

अथ पिराडारः ॥ पिराडारं शीतलं बल्यं पित्तघ्नं रुचिकार-

कम् ॥ पाके लघु विशेषण विषशान्तिकरं स्मृतम् ॥ १५२ ॥

[अथ खैरवसा ।] कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजालीति चोच्यते ॥ क-

र्कोटी मलहत कुष्ठहृल्लासा रुचिनाशनी ॥ १५३ ॥

श्वास कास ज्वरान् हन्ति कटु पाकाच्च दीपनी ॥

भा० अनन्तर पिंडा ॥ डिण्डिश रोमशफल मुनिनिर्मित येह पिंडेके नाम हैं ॥ पिंडा रुचिको करनेवाला भेदन पित्त कफका नाशक कहा है ॥ १५१ ॥

और सुशीतल वातको करनेवाला रूखा मूत्रको करनेवाला अशमरी नाशक है

॥ अनन्तर पिंडार ॥ पिंडार शीतल बलको करनेवाला पित्तनाशक रुचिको

करनेवाला ॥ पाकमें हलका और विशेषकरके विषकी शान्ती को करनेवाला क

हा है ॥ १५२ ॥ अनन्तर खैरवसा ॥ कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजाली । यह

खैरवसेके नाम हैं ॥ खैरवसा मलनाशक और कुष्ठ हृल्लास अरुचि इनका

नाशक है ॥ १५३ ॥ और श्वास कास ज्वर इनको नाश करता है तथा पाकमें

कटु दीपन है ॥

अथ करेरुआ । डोडिका विषमुष्टिश्च डोडीत्यपि सुमुष्टि

का ॥ डोडिका पुष्टिदा वृष्या रुच्या वह्निप्रदा लघुः ॥ १५४

हन्ति पित्त कफार्शसि कृमि गुल्म विषामयान् ॥

[अथ कण्टकारी फलम् । कण्टकारी फलं तिक्तं कटुकं दीपनं लघुः ॥ रूक्षोष्णं श्वास कासघ्नं ज्वरानिल कफा पहम् ॥ १५५ ॥ [अथ नालशाकानि ।]

तत्र सर्षपं नालम् । तीक्ष्णोष्णं सर्षपं नालं वातश्लेष्म प्रणापहम् ॥ कण्डू वमिहरं दद्रू कुष्ठघ्नं रुचिकारकम् ॥ १५६ ॥

भा० अनन्तर करैरुआ । डोडिका विषमुष्टि डोडि सुमुष्टिका । यह करै रुआ के नाम है ॥ करैरुआ उष्टिकानेवाली अग्निदीपन हलकी होती है ॥ १५४ ॥ और पित्तकफ बवासीर कृमि वायुगोला विषरोग इनको नाशक रती है ॥ अनन्तर कटेलीका फल ॥ कटेलीका फल तिक्तकटु दीपन हलका ॥ रूखा उष्ण है और श्वास कास इनका नाशक तथा ज्वर वात कफ इनका नाशक है ॥ १५५ ॥ [अनन्तर नालशाक ॥ उनमें सरसोका नाल ॥ सरसों का नाल तीखा गरम होता है और वात कफ व्रण इनका नाशक है और खुजली वमन इनका नाशक तथा दादकुष्ठ खुजली इनका नाशक तथा रुचिकार करनेवाला है ॥ १५६ ॥ [अथ कन्द शाकानि ।

[तत्र सूरणस्य नामानि गुणाश्च । सूरणः कन्द ओलश्च कन्दलोऽर्शोऽपि ॥ सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः कण्डू कृत कटुः ॥ १५७ ॥ विष्टम्भी विशदो रूच्यः कफार्शः कृन्तनो लघुः ॥ विषेष्वादर्शसे पथ्यः स्नीहा गुल्म विनाशनः ॥ १५८ ॥ सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते ॥ दद्रुणां रक्तपित्तिनां कुष्ठिनां न हितो हि सः ॥ १६० ॥ सन्धानयोगं सम्प्राप्तः सूरणो गुणवत्तरः ॥

भा० अनन्तर कन्दशाक ॥ उनमें सूरन के नाम ॥ और गुण । सूरण कन्द ओल

कन्द भर्षाद्य यह स्मरण के नाम हैं ॥ स्मरण दीपन रूखा कसेला राज करनेवाला कटु होता है ॥ १५७ ॥ और विष्टम्भ करनेवाला विशद रुचिको करनेवाला कफ बवासीर का नाशक हलका है ॥ विशेषकरके बवासीर में पथ्य है और पित्तही वा यगोला इनका नाशक है ॥ १५८ ॥ सब कन्द शाकों में स्मरण श्रेष्ठ कहा है ॥ दाद वाले और रक्तपित्त वाले तथा कुष्ठ वाले इनको बोह हित है ॥ १६० ॥ संधान योग में प्राप्त हुआ स्मरण अधिक गुणवाला होता है ॥

[अथ आरु।] आरुकमप्यालूकं तत् कथितम् ॥

[वीरसेनश्च।] काष्ठालुक शङ्खालुक हस्त्यालुकानि कथ्यन्ते ॥ पिण्डालुक सप्तालुक रक्तालुकानि चोक्तानि । काष्ठालुकं काठिन्ययुक्तं कठारु । शङ्खालुकं श्वेततायुक्तम् । शङ्खारु । हस्त्यालुकं दीर्घतायुक्तं महाशरीरम् । पिण्डालुकं वर्तुलम् । सुथनी । सप्तालुकं मधुरतायुक्तं रोमान्वितं दीर्घसुथनी । रक्तालूरक्तासुरतडा इति च । आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भि मधुरं गुरु ॥ सृष्टमूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्तपित्तनुत् ॥ १६१ ॥ कफानिलकरं बल्यं वृष्यं स्वल्पाग्निवर्द्धनम् ॥

भा० अनन्तर आलू ॥ आरुक आलूक यह आलूके नाम हैं । वीरसेनने भी । कठियां आलू संरवालू हस्त्यालू कहे हैं ॥ पिण्डालू सप्तालुक रक्तालू यह कहा है ॥ काष्ठालुक काठिन्ययुक्त कठारु । शङ्खालुक श्वेतता युक्त । शङ्खारु । हस्त्यालुक दीर्घता के युक्त बड़ा । पिण्डालू गोल । सुथनी । सप्तालुक मधुरता संयुक्त रोमोंकरके युक्त लंबी सुथनी होती है । रक्तालू अर्थात् शकरकन्द । सब आलू शीतल विष्टम्भ करने वाले मधुर भारी ॥ मल मूत्रको करने वाले रूखे दुर्जर रक्त पित्तके नाशक हैं ॥ १६१ ॥ कफ वात को करने वाले बलके हित शुक्रको करने वाले अल्प अग्निको बढ़ाने वाले हैं ॥

[अथ अरुई।] रक्तालुभेदे पाटिया तन्वीच पृथितालुकी ॥

आलुकी बलकृत स्निग्धा गुर्वी हृत्कफ नाशिनी ॥ १६२ ॥

विष्टम्भकारिणी तैले ललिताति रुचिप्रदा ॥

[अथ वोची मुरई नेवार मुरई ।] मूलकं द्विविधं प्रोक्तं

तत्रैकं लघुमूलकं ॥ शालमर्कटकं विस्रं शालेयं मरु

सम्भवम् ॥ १६३ ॥ चाराक्यमूलकं तीक्ष्णं तथा मूलकं

पोतिका ॥ नेपालमूलकं चान्यत् तद्भवेद्गजदन्तवत् ॥

॥ १६४ ॥ लघुमूलकं कटूपां स्याद्गुच्यं लघु च पाचनम् ॥

दोषत्रय हरं स्वयं ज्वर श्वासं विनाशनम् ॥ १६५ ॥

नासिका कण्ठ रोगघ्नं नयनामय नाशनम् ॥ महत्तदे-

व रूक्षोष्णं गुरुदोषत्रय प्रदम् ॥ १६६ ॥ स्नेह सिद्धं त-

देवं स्यात् दोषत्रय विनाशनम् ॥

भा० अनन्तर अरवी ॥ रतालु का भेद छोलेनेमें पतला छिलका होता है वोह अरवी है ॥ अरवी बलको करनेवाली चिकनी और भारी हृदय के कफकी नाशक है ॥ १६२ ॥ तेलमें भुनी हुई विष्टम्भ करने वाली और रुचिको देनेवाली है ॥

अनन्तर मूली ॥ मूली दो प्रकारकी कही है । उसमें एक छोटी मूली । शालमर्कटक विस्रं शालेय मरुसंभव ॥ १६३ ॥ चाराक्य मूलक तीक्ष्ण तथा मूलक पोतिका ॥ येह मूलीके नाम हैं । और दूसरी नेपाली मूली तथा वस्का भेद हाथीके दांतके समान होती है ॥ १६४ ॥ छोटी मूली कड़वी गरम होती है ॥ और रुचिको करनेवाली हलकी पाचन होती है ॥ और तीनों दोषों की नाशक स्वरको अच्छा करनेवाली और ज्वर श्वास की नाशक है ॥ १६५ ॥ और नासिका रोग तथा कंठरोग इनके नाशक और नेत्र रोगकी नाशक है ॥ वोही बड़ी रूक्षी गरम भारी तीनों दोषों की छेदनेवाली है ॥ १६६ ॥ स्नेह स्निग्ध सिद्धि वोही है तीनों दोषों की नाशक है ॥ -

[अथ गाजर । गाजरं गृज्जनं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम् ॥

गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु ॥ १६७ ॥ संघा-

हि रक्तपित्ताग्नी ग्रहणी कफ वात जित् ॥

[अथ केराकन्द । शीतलः कदली कन्दो बल्यः केश्याः स्त्र
पित्तजित् ॥ वह्नि कदाह हारीच मधुरो रुचिकारकः ॥

॥ १६८ ॥ [अथ मानककन्द । मानकः स्यात् महापत्रः क-

थ्यन्त तद्वृणा अथ ॥ मानकः शोथहृच्छीतः पित्त रक्त

हरो लघुः ॥ १६९ ॥ अथ वाराहीकन्दः । गेठी इति लोके ।]

वाराही पित्तला बल्या कद्दीतिका रसायनी ॥ आयु शुक्रा

ग्निघ्नम् मेह कफ कुष्ठा निला पहा ॥ १७० ॥

भा० अनन्तर गाजर । गाजर गुंजन नांगवर्णक येह गाजर के नाम हैं ॥ गा
जर मधुर तीखा उष्ण दीपन हलका होता है ॥ १६३ ॥ और काबिज रक्त पित्त ब-

बासीर संग्रहणी कफ वात इनको जीतने वाला है ॥
अनन्तर केलाकन्द । केलाकन्द शीतल बलको देने वाला केशके अन्तःपित्तको
जीतने वाला है ॥ अग्निदीपन दाहका नाशक मधुर रुचिको करने वाला है ॥

॥ १६८ ॥ अनन्तर मानकेचू । मानक महापत्र होने है । अनन्तर इसके गु
ण कहते हैं ॥ मानकेचू शोथका नाशक शीतल पित्त रक्तका नाशक हलका

होता है ॥ १६९ ॥ अनन्तर वाराहीकन्द ॥ इसको गेठी इस प्रकार लोकमें क
हने हैं ॥ वाराहीकन्द पित्तको करने वाली बलकेहित कद्दीतिका रसायनी ॥
और आयु शुक्र अग्निकी करने वाली और प्रमेह कफ कुष्ठ वात इनकी नाशक
है ॥ १७० ॥

[अथ हस्तिकर्णा । गजकर्णा तु तिक्तोष्णा तथा दान

कफाञ्जयेत् ॥ शीतज्वर हरी स्वादुः पाके तस्यास्तु कन्द

कः ॥ १७१ ॥ पारडु शोथ कृमि स्त्रीह गुल्मानाहो दरा पहाः ॥

ग्रहरायणी विकारघ्ना वनसूरा कन्दवत् ॥ १७२ ॥

[अथ केमुक । केमुआ इति लोके ।]

केमुक कडुकं पाके तिक्तं ग्राहि हिमं लघुः ॥ दीपनं पाचनं
 हृद्यं कफ पित्तज्वरापहम् ॥ १७३ ॥ कुष्ठ कास प्रमेहास्तना
 शनं वातलं कटु ॥ [अथ कसेरुचिचोदः ।] कसेरु द्वि-
 विधन्तनु महद्राजकसेरुकम् ॥ सुस्ताकृतिर्लघु स्याद्य-
 त्तिचिचोद मिति स्मृतम् ॥ १७४ ॥ कसेरुक द्वयं शीतं
 मधुरं तुवरं गुरु ॥ पित्त शोणित दाहघ्नं नयनासय नाश-
 नम् ॥ १७५ ॥ ग्राहि शुक्रानिल श्लेष्मारुचि स्तन्यकरं
 स्मृतम् ॥

भा० अनन्तर हस्तिकरी । हस्तिकरी तिक्त उष्ण तथा वात कफ इनको जी-
 तती है और शीतज्वर की नाशक पाकमें मधुर होती है उसका कन्द ॥ १७१ ॥
 ॥ पांडुरोग सूजन कृमि पिलही चायगीला आनाह उदररोग इनको नाशक है ॥
 और संग्रहणी ववासीर विकारका नाशक है यह वनहरन के समान होता है
 ॥ १७२ ॥ अनन्तर केमुआ । केमुक कडवा पाकमें तिक्त काविज शीतल
 हलका होता है ॥ दीपन पाकमें हृद्य कफ पित्तज्वर इनका नाशक है ॥ १७३ ॥
 और कुष्ठ कास प्रमेह रक्त इनका नाशक वातको करनेवाला कटु होता है ॥
 अनन्तर कसेरु और चिचोद ॥ कसेरु दो प्रकारका होता है उसमें बड़ा राजक
 सेरुक ॥ और माथेके आकार छोटा जो होता है उसको चिचोद ऐसा कहा है ।
 ॥ १७४ ॥ दोनों कसेरु शीतल मधुर कसेले भारी ॥ पित्त रक्त दाह इनके ना-
 शक और नेत्र रोगों का नाशक है ॥ १७५ ॥ काविज शुक्र वात कफ अरुचि
 दुग्ध इनको करनेवाला कहा है ॥

[अथ कसेरुभिः सीडाः ।] पद्मादिकन्दः शालूकं दूधरहाट

अथ कथ्यते ॥ मृणालं मूलम्भिस्माराडं लज्जाशूकञ्च

कथ्यते ॥ १७६ ॥ शालूकं शीतलं वृष्य पित्तदाहास्तनुद्

गुरु ॥ दुर्जरं स्वादु पाकञ्च स्तन्यानिल कफप्रदम् ॥ १७७ ॥

संग्राहि मधुरं रूक्षमभिसारणं मपि तद्गुणम् ॥ बालं ह्यना-
 र्तेवं जीर्णं व्याधितः क्रिमिभलितम् ॥ १७८ ॥ कन्दं वि-
 वर्जयेत् सर्वं यद्वाऽग्न्यादि विदूषितम् ॥ अति जीर्णम-
 कालोत्थं रूक्षं सिद्धमदेशजम् ॥ १७९ ॥ कर्कशं को-
 मलं चाति शीतव्यालादि दूषितम् ॥ संशुष्कं संक-
 लं शाकं नाश्लीयान्मूलकं विना ॥ १८० ॥

भा० अनन्तर कसेरु भिरींडा ॥ पदम आदियों के कन्दों को शालूक और कर
 हाट कहते हैं ॥ मृणाल मूल भिस्माराड लजाशूक यह भी कवल ककड़ी के
 नाम हैं ॥ १७६ ॥ कवल ककड़ी शीतल सुक्र को करने वाली पित्तदाह रक्त दू-
 न की नाशक भारी है ॥ और दुर्ज्जर पाक में मधुर दुग्ध वान कफ इनको कर-
 ने वाली है ॥ १७७ ॥ तथा कादिज मधुर रूखी भिस्माराड भी उसी के समान गुण
 में है ॥ कच्चा वैमौसम का जीर्ण व्याधित कीड़ों ने खाया हुआ ॥ १७८ ॥ सेता
 मन्व कन्द त्याग देवे अथवा जो अग्नि आदि से दूषित ॥ बहुत जीर्ण वैमौसम का
 रूखा सिद्ध किया अदेशज ॥ १७९ ॥ अति कर्कश अतिकोमल और शीतल स-
 र्प आदि से दूषित ॥ बहुत सूखा हुआ सब शाक मूली के बिना न सेवन करे ॥ १८०
 (क) अतैलादि सिद्धं रूक्षं अदेशजम् शुभस्थानजम् ॥

[अथ स्वदेशज शाकानि तेषां नामानि गुणाश्च ।]

उक्तं संस्वेदजं शाकं म्भूमिच्छन्नं शिलीन्ध्रकम् ॥ दिति
 गोमय काष्ठेषु दृक्षादिषु तदुद्भवेत् ॥ १८१ ॥ सर्वे संस्वेद-
 जाः शीताः दोषलाः पिच्छलाश्च ते ॥ गुरवश्छर्द्यती-
 सार ज्वरश्लेष्मा मय प्रदाः ॥ श्वेत शुभस्थली काष्ठवं-
 शगो व्रण सम्भवाः ॥ नातिदोषं करास्ते स्युः शेषास्ते म्यो-
 विगर्हिताः ॥ १८३ ॥ संस्वेदजा च्छाता इतिलोके ।

इति श्री भावप्रकाशे शाकवर्गः ॥ ॐ ॥

नेल आदिसे नसिद्ध हवा रूक्ष शुभस्थानमें हवा ॥ अनन्तर संस्वेदज शाक इनके
 नाम और गुण ॥ संस्वेदज शाक उसे कहते हैं जो दवीपद्मीहर्द्द जमीन से होता है ॥
 उसे शिलीन्ध्रक कहते हैं ॥ पृथ्वी गोबर काष्ठ वृक्ष आदिमें वो उत्पन्न होता है उसे
 कुकुरमुत्ता कहते हैं ॥ १८१ ॥ सबसे स्वेदज शीतल दीपकी उत्पन्न करनेवाले पि
 च्छिल जो होते हैं। वे भारी होते हैं। और वमन अतिसार ज्वर कफ के रोग इनको
 करनेवाले हैं ॥ १८२ ॥ श्वेत और शुभ्र बेवनीहर्द्द जमीन काष्ठ वास गोत्रण इन
 से उत्पन्न। अतिशय करनेवाले नहीं हैं ॥ बाकी उनसे निन्दित हैं ॥ १८३ ॥
 संस्वेदज इसको छाता इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥
 इति भावप्रकाशे शाकवर्गः समाप्तः ॥ ॐ ॥

इति भावप्रकाशे शाकवर्गः
 समाप्तः ॥

श्रीगणेशाय नमः॥

भाव प्रकाशः

अथ मांसवर्गः

तत्र मांसस्य नामानि

मांसं तु पिशितं क्रव्यं मामियं पलं लम्पं लम् ॥ मांसं
वातहरं सर्वं वृंहणं बलपुष्टिं कृत् ॥ १ ॥ प्रीणनं गुरु
हृद्यञ्च मधुरं रसपाकयोः ॥ अथ तद्भेदाः ॥
मांसवर्गो द्विधा ज्ञेयो जाङ्गलोऽनुपभेदतः ॥ ॥

तत्र जाङ्गलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

मांसवर्गोऽत्र जङ्गला विलस्थाश्च गुहाशयाः ॥ त-
था परा मृगा ज्ञेया विष्किरा प्रतुदौऽपि च ॥ २ ॥

प्रसहाः । अथ ग्राम्या अष्टौ जाङ्गलजातयः ।

भा० भावप्रकाशः । अनन्तर मांसवर्गः । उसमें मांस के नाम । मांस पि-
शित क्रव्य आमिय पलल पल ॥ यह मांस के नाम हैं ॥ सब मांस वात नाश
क वृंहण बल पुष्टि को करने वाले हैं ॥ १ ॥ और प्रीणन भारी हृद्य मधुर रस
और पाक में भी ॥ अनन्तर उनके भेद । मांसवर्ग दो प्रकार का जानना चाहि-
ये जाङ्गल और अनुपवत् भेदों से ॥ उनमें जंगल का लक्षण और गुण ।
यहां पर मांसवर्ग जंगल में रहने वाले विलमें रहने वाले गुहामें रहने वाले
॥ तथा परा मृग विष्किर और प्रतुद भी ॥ २ ॥ प्रसह । और ग्राम्य यह भाट
मांस की जानी है ॥

जाङ्गला मधुरा रूक्षा स्तुवराः लघवस्तथा ॥

वल्पास्ते वृंहणं दृष्ट्या दीपना दीयहारिणः ॥ ३ ॥

मूकतां मिमिनन्तं च गद्गदत्वादिनि तथा ॥ वाधिर्यं
मरुचि च्छर्दि प्रमेहं मुखजानू गदान् ॥ ४ ॥ प्लीपदं
गल गरुडञ्च नाशयत्यनिलामयान् ॥

अथानूपस्य लक्षणं गुणान्ध्र ।

कूले चराः प्लवाश्चापि कौशस्थाः पादिनस्तथा ॥ मं-
त्स्या एते समाख्याताः पञ्चधाऽनुपजातयः ॥ ५ ॥

अनूपा मधुराः स्निग्धा गुरवो वह्नि सादनाः, प्लेक्वा-
ला पिच्छलाश्चापि मांसपुष्टिप्रदा भृशम् ॥ ६ ॥

तथा भिष्यन्दि नस्ते हि प्रायः पथ्यतमाः स्मृताः ॥

अथ जाङ्गलानां गरानां विप्रियं गुणान्ध्र ॥

भा० जाङ्गलमधुररसवे कसेले तथा हलके ॥ बलको देने वाले पुष्ट शुक्रको
उत्पन्न करने वाले दीपन दौघ नाशक ॥ ३ ॥ गुद्गुगुलु यन मिन मिना यन गद गदता
तथा अर्द्धित ॥ वहि रापन अरुचिव मन प्रमेह मुखके रोग ॥ ४ ॥ प्ली पद गल गं
ड और वात के रोग इनको नाश करते हैं ॥ अनन्तर आहूय मांस का लक्षण और गुण
कहेते हैं ॥ कूले चर प्लव को शस्थ पा दिन तथा ॥ मत्स्य येह पांच प्रकार की
अनूप जाति कहीं हैं ॥ ५ ॥ अनुप मधुर चिकने भारी अग्नि मान्य करने वाले ॥
कफकारी पिच्छल और अत्यन्त मांस पुष्टि को करने वाले हैं ॥ ६ ॥ तथा अ-
भिष्यन्दि और प्रायः पथ्यतम कहे हैं ॥ अनन्तर जाङ्गलों की गराना और वि-
शेष गुण ॥

हरिरौन कुरङ्गर्यं पृथगत्यङ्कुसम्बराः ॥ राजीवोऽ-
पि च मुण्डी चेत्याद्याः जङ्गलसंज्ञकाः ॥ ७ ॥ हरिण-
स्ताम्बराः स्यादेनः कृष्णाः प्रकीर्तितः ॥

भा० हरिण एण कुरङ्गः कृष्य पृथगत्यं कुसम्बर ॥ राजीव मुंडी इत्यादि
येह जाङ्गलनाम हरिण के भेद हैं ॥ ७ ॥ लालरंग का हरिण

कहा है ॥

कुरङ्ग इयताम्रः स्यादेन मुल्या कृतिर्महान् ॥ ८८ ॥
 यो नीलाङ्गः को लोके सरोह इति कीर्तितः ॥ एयत
 म्रन्त्र विन्दुः स्याद्हरिणात् किञ्चिदल्पकः ॥ ८९ ॥
 न्यङ्कः बहु विधारोऽथ सम्बरो गवयो महान् ॥ राजी
 वस्तु मृगो ज्ञेयो राजभिः परितो वृतः ॥ ९० ॥ यो मृगः
 शृङ्गहीनः स्यात् समुण्डीति निगद्यते ॥ जङ्गलाः
 प्रायशः सर्वे पित्त-श्लेष्म-हराः स्मृताः ॥ ९१ ॥
 किञ्चिद्वातकरश्चापि लघ्वो बलवद्दीनाः ॥

भा० कुच्छ एक लाल कुंग होता है रंग के समान अकृति बड़ा होता है ॥
 ८८ ॥ नीलाङ्गः क इस को लोक में सरोहि इस प्रकार कहा है ॥ एयत सफेद बु
 न्द की वाला हरिण से कुछ एक छोटा होता है ॥ ८९ ॥ बहुत सीङ्ग वाला न्य-
 कु सावर महान गवय होता है ॥ जो मृग बहुत सी लकीरों से युक्त हो इस को
 राजीव मृग जानना चाहिये ॥ ९० ॥ जो मृग बेसीङ्ग का होता है उसको मुंडी
 ऐसा कहते हैं ॥ सब जाङ्गल प्रायः पित्त कफ के नाशक कहें हैं ॥ ९१ ॥
 अल्प वात को करने वाले हलके और बल को बढ़ाने वाले हैं ॥

अथ विलेशयानां गरानां गुणाश्च

गोधा - शश - भुजङ्गखु शल्ल क्वाद्या विलेशयाः ॥

विलेशया वातहरा मधुरा रस पाकयोः ॥ ९२ ॥

हं हरणा वद्ध विट मूत्रो वीर्योष्णश्च प्रकीर्तिताः ॥

अथ गुहा शयानां गरानां गुणाश्च

भा० अनन्तर विलमें रहने वालों की गराना और गुण कहते हैं ॥ गोह खर
 गोश साप चूहा साहि आदि येह विलेशय हैं ॥ विलेशय वात नाशक और
 रस पाक में मधुर है ॥ ९२ ॥ तथा पृष्ठ मल मूत्र को वाग्धने वाले और वीर्य में

उष्ण कहें हैं ॥ अनन्तर गुहाशयों की गणना और गुण ॥

मिंह व्याघ्र वृका वृक्षतरक्षु द्वीपे नस्तथा ॥ बभ्रू-
जम्बूक माज्जीरा इत्याद्याः स्युर्गुहा शयाः ॥ ९३ ॥ तर-
क्षुः हउहा इति लोके । द्वीपी चिता व्याघ्र इति लोके
। स्थूल पुच्छो रक्त नेत्रो बभ्रूः देहः सना कुलः ॥ गु-
हा शयो वात हरा गुरुष्या मधुराश्रितं ॥ ९४ ॥ स्निग्धा
वल्या हिता नित्यं नन गुह्य विकारिणाम् ॥

अथ पर्यामृगानां गणना गुणाश्च ॥

भा० शेर भेड़ या गीह नेन्दुवा वाय चीता तथा ॥ नउला गीदड बिलाव इत्या-
दि येह गुहाशय हैं ॥ ९३ ॥ तरक्षु हउहा इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ चीता
व्याघ्र इस प्रकार लोक में कहते हैं । मोटी दुमलाल आरें पिगल शरीर वो
हनेवला है ॥ गुहाशय वात नाशक भारी उष्ण मधुर ॥ ९४ ॥ चिकने बलको क-
रने वाले और सदा नेत्र लिंग रंग वालों को हित है ॥ ॥ अनन्तर पर्यामृगों की
गणना और गुण ॥

वनौको वृक्ष माज्जीरो वृक्ष मर्कटि कादयः ॥ रानेय
र्यामृगाः प्रोक्ताः सुश्रुता चैर्महर्षिभिः ॥ ९५ ॥ वनौका
वानरः वृक्ष माज्जीरो वृक्ष विडालः ॥

वृक्ष मर्कटिका रूखी इति लोके ।

स्मृताः पर्यामृगाः वृष्याश्चक्षुष्याः शोथिरो हिताः ॥

उवासाशीः कासशमनाः सृष्टमूत्रपुरीयिकाः ॥ ९६ ॥

अथ विष्किराणां गणना गुणाश्च ॥

भा० वन्दर वृक्ष माज्जीर वृक्ष मर्कटिका आदिक ॥ येह पर्यामृग सुश्रुतादि ॥

महर्षियोंनें कहेहैं ॥ १५ ॥ वानरः वृक्ष विडालः सूयी । इस प्रकार लोकमें कहेते हैं । परा मृगशुक्र को करने वाले नेत्रके शीथ वाले को हित ॥ औश्रवा स वामीर कास इनके नाशक मलमूत्र को करने वाले हैं ॥ १६ ॥

अनन्तर विष्किरों की गणना और गुण ॥

वर्तिका लाव वर्त्तिर कपिञ्जल क तिन्निरः ॥ कुलिङ्ग कुक्कुटाद्याश्च विष्किराः समुदाहृताः ॥ १७ ॥ विकीर्य भक्षयन्त्येते यस्मात्तस्माद्वि विष्किराः ॥ कपिञ्जल इति प्राज्ञैः कथितो गौर तिन्निरः ॥ १८ ॥

कुलिङ्गः गवरे आ इति लोके ।

विष्किराः मधुराः शीताः कषायाः कटुपाकिनः ॥

वल्या वृष्यास्त्रिदोयघ्नाः पथ्यास्ते लघवः स्मृताः १९

भा० जंगली चिड़ालवा वटेर सऊँद तीतर तीतर चिड़े सुरगा आदिक येह विष्किर कहे हैं ॥ १७ ॥ जो हितर के खाते हैं इस वास्ते वे विष्किर हैं ॥ सफेद तीतर को बुद्धि वानोंनें कपिञ्जल ऐसा कहा है ॥ १८ ॥ गवरे आ इस प्रकार लोक में कहेते हैं । विष्किर मधुर शीतल कसेले पाक में कटु ॥ दलकोक रने वाले शुक्र को उत्पन्न करने वाले त्रिदोय नाशक पथ्य और ये हलके हैं ॥

१९ ॥

अथ प्रनुदानाङ्गुणानागुणाश्च ॥

हरीतो धवलः पाण्डु श्वित्र यक्षो वृहच्छुकः ॥ पारा

वतः खञ्जरीटः पिकाद्याः प्रनुदाः स्मृताः ॥ २० ॥

प्रनुद्य भक्षयन्त्येते तुण्डेन प्रनुदास्ततः ॥

हारीतः हारिल इति लोके ॥

भा० अनन्तर प्रनुदों की गणना और गुण । हरील कठफोर वा जंगली तीतर पहाड़ी तोता ॥ परे वा खंजन कोडल इत्यादिक येह प्रनुद कहे हैं ॥ २० ॥

जो अपनी चोंचसे तोड़ कर खाते हैं इस वास्ते प्रतुद है। हरील इस प्रकार लोकमें कहते हैं।

कपोतोः धवलपाण्डुः शतपत्रो वृहच्छुकः ॥ दार्वी

घाट इत्यमरः। कठ पोरवा इति लोके।

प्रतुदा मधुराः पित्तकफघ्नास्तु वरहिमाः ॥ लघवो

वद्धवर्चस्का किञ्चिद्घातकराः स्मृताः ॥ २१ ॥

अथ प्रसहानाङ्गणानां गुणाश्च ॥

काको गृध्र उलूकश्च विल्वश्च शशघातकः ॥ चायो

भासश्च कुरुरित्याद्याः प्रसहाः स्मृताः ॥ २२ ॥

भा० कपोत धवल पाण्डु शतपत्र वृहच्छुक ॥ दार्वी घाट इस प्रकार अमरमें कहा है ॥ कठ पोरवा इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ प्रतुद मधुर पित्तकफ के नाशक कसेले शीतल ॥ हलके मलको बान्धनें वाले और कुछ एक वान को करने वाले कहै है ॥ २१ ॥ अनन्तर प्रसहों की गणना और गुण। कौब्या गिद्ध उल्लू चील बाज नील कंठ भास येह गिद्ध का भेद है कुरीर इत्यादि येह पक्षी प्रसह कहै है ॥ २२ ॥

(क) शशघातकः। बाज इति लोके। चायं नीलक

मू इति लोके। ‘भासो गृध्रविशेषस्यान्’ कुरुरः

करा कुर इति लोके। ‘प्रसहाः कीर्तिताः रते प्रस

त्वाच्छिद्यभक्षणात्’ प्रसहाः खलु वीर्यीषां सन्नां

संभक्षयन्ति ये ॥ २३ ॥ ते शोथ-भस्मकोन्माद-शुक्र

क्षीणा भवन्ति हि ॥ अथ ग्राम्याणां गणानां गुणाश्च

। छाग-मेघ-बुवाश्चाश्वाः ग्राम्याः प्रोक्ता सहविभिः

। ग्राम्याः वातहराः सर्वे दीपनाः कफपित्तलाः ॥ २४ ॥

मधुरारस पाकाभ्यां चंद्राणां बल वर्धनाः ॥ इत्यनूपाज
न्तवः ॥ अथ कूले चराणां गगानां गुणाश्च ॥

भा० (क) वाज इस प्रकार लोक में कहते हैं । यह गिद्ध के किसम में है ।
करा कुर इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ यह जवर दस्ती काटके खाते हैं इस बा
से प्रसह है ॥ प्रसह दीर्घ में उया हैं उनके मांस को जो भक्षण करने हैं ॥ २३ ॥
वे शोथ भस्मक उन्नाट युक्त और युक्त क्षीण हो जाते हैं ॥ अनन्तर ग्राम्यों की
गगाना और गुणा । वकरी मेडा बेल घोड़ा इनकी महर्षियों ने ग्राम्य कहा है
॥ सब ग्राम्य बात के नाशक दीपन कफ पित्र को करने वाले हैं ॥ २४ ॥ और
रस याक से मधुर पुष्ट बल को बढ़ाने वाले हैं ॥ इस प्रकार अनूय जीव हैं ।
अनन्तर कूले चरों की गगाना और गुणा ।

लुलाप गण्ड चराह चमरी वारणा दयः ॥ एते कूल
चराः प्रोक्ताः यतः कूले चरन्त्ययाम् ॥ २५ ॥ (क)
लुलापो, महिय गण्डः, खड्गः, (चमरी चमर पुच्छ
गौ) कूले चरा मरुत्पित्त हरा वृथा बला बहाः ॥
मधुराः शीतलाः स्निग्धा मूत्रलाः श्लेष्म वर्धनाः ॥
२६ ॥ प्लवानां गगानां गुणाश्च । हंस सार सदा
रण्ड वक क्रौञ्च सरा रि काः ॥ नन्दी मुखी सका द
म्बा बला काद्याः प्लवाः स्मृताः ॥ २७ ॥ प्लवन्ति स-
लिले यस्म देते तस्मात् प्लवाः स्मृताः ॥

भा० भैंस गण्डा सुवर चवर गाय हाथी आदिक ॥ (यह कूले चर हैं क्योंकि
ये हजल के किनारे विचरते हैं ॥ २५ ॥ (क) भैंस गण्डा चवर पुच्छ गौ
। कूले चर वात पित्त के नाशक शुक्र को करने वाले बलकारी ॥ मधुर शी
तल चिकने मूत्र को करने वाले और कफ को बढ़ाने वाले हैं ॥ २६ ॥ अनन्तर
प्लवों की गगाना और गुणा । हंस, सारस, कुरंग, वा, बगला दीक आदी ॥ नन्दी

मुरवी येह बोह जान वर हैं जिसके चोंच पर जामन के सम गुठली होती हैं और वनक सा होता है कर वा वगुला आदि ये प्लव कहे हैं ॥ २७ ॥ येह जल में रहते हैं इस वासे इनको प्लव कहा है ॥

कारण्डः कपर्दि कारव्यो वृहद वकाश " क्रीञ्चः र
ह विहङ्गः स्यात् " देङ्क इति लोके । शरा रिका सिन्धु
इति । स्थूला कठोरा वृत्ताच्च यस्याश्च चू परि स्थि
ता ॥ गुटि का जम्बु सट्टणी प्रोक्ता नन्दी मुरवी तिसा
॥ २८ ॥ कादम्बः कर वा इति लोके । वलाका वगु
ली इति लोके । प्लवाः पित्त हर स्निग्धाः मधुरा गु
रवो हिमाः ॥ वात प्लेख प्रदाश्चापि बल शुक्र करः
सरः ॥ २९ ॥ अथ कोशस्थानां गणना गुणाश्च ॥
शङ्खः शङ्ख नख आपि शुक्ति शम्बूक-कर्कटाः ॥ जीवा
रवं विधाश्चान्ये कोशस्थाः परि कीर्तिताः ॥ ३० ॥
शङ्ख नखः शुद्र शङ्खः ।

भा० कुरडुवा हीक । आडी । इति । स्थूल कठोर गोल जिसके चोंच परर
हता है ॥ जामुन की गुठली के समान वो नन्दी मुरवी कहा है ॥ २८ ॥ कर वा इ-
स प्रकार लोक में कहते हैं । वगुली इस प्रकार लोक में कहते हैं । प्लव पित्त
नाशक चिकने मधुर भारी, झीनल ॥ वात कफ को करने वाले और शुक्र को कर
ने वाले सर है ॥ २९ ॥ अनन्तर कोशस्थों की गणना और गुणा कहते हैं ॥ शंख छो-
टा शंख सीप घोंगा केकड़ा ॥ इस प्रकार के जीव और कोशस्थ कहे हैं ॥ ३० ॥
छोटा शंख ।

कोशस्था मधुराः स्निग्धाः वात पित्त हर हिमाः ॥ वृंह
णा बहु वर्चस्का वृथ्याश्च बल वर्धनाः ॥ ३१ ॥

अथ पादिनां गणना गुणाश्च ॥

कुम्भीर-कूर्म-नक्राश्च गोधा-मकर-शङ्खवः ॥ घण्टि-
कः शिशु मारश्चेत्यादयः पादिनः स्मृताः ॥ ३९ ॥

(क) कुम्भीरी मारकी जलजन्तुः । कूर्मः कच्छपः । न-
क्रः नाक इति लोके । गोधा गोहि जलजन्तुः । मकरम
गर इति लोके । शङ्खः साकुच इति लोके । घण्टिकः घ-
री आल इति लोके । शिशु मारः सूस इति लोके ।

पादिनोऽपि च येन त्र्य कोशस्था नाङ्गुरोः समाः ।

भा० कोशस्थ मधुर चिकने वात पित्त के नात्रक जीतल ॥ पुष्ट बहुते मलको
करने वाले शुक्रको करने वाले और वलको बढ़ाने वाले हैं ॥ ३९ ॥ अनन्तर पा-
दियों की गणना और गुण । यह मगर का भेद है । कछुवा नाका गोहि मगर
साकुच । घडियाल सूस इत्यादि येह पादिक रहे हैं ॥ ३९ ॥ (क) येह मारक जल-
जीव हैं । कछुवा । नाका । गोहि । मगर । साकुच । घरि आल । सूस । जो पादिक हैं
वेही कोशस्थों के समान गुण में हैं ॥

अथ मत्स्य नामानि गुणाश्च ॥

मत्स्यो मीनो विकारश्च उयो वैशारिणोऽरुडजः ॥ श-
'कुलो पृथु रोमाच स सुदर्शन इत्यपि ॥ ३२ ॥ रोहिताद्या-
स्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परि कीर्तिताः ॥ मत्स्याः स्निग्धो-
य्या मधुरा गुरवः कफ पित्त लाः ॥ ३३ ॥

भा० मछलियों के नाम और गुण । मत्स्य मीन विकार उय वैशारिण अं-
डज शकुल पृथु रोमां और सुदर्शन येह मछलियों के नाम हैं ॥ ३२ ॥ रोहू
आदिक जो जीव हैं वे मत्स्य कहे हैं । मत्स्य चिकने उया मधुर भारी कफ
पित्त को करने वाले हैं ॥ ३३ ॥

वातघ्ना बृंहणा वृष्या रोचका बल वर्धनाः ॥ मध्वयवा
य सक्तानां दीप्राग्नी नाञ्च पूजिताः ॥ ३४ ॥ (क)

अथ जङ्घ ला दीनां नामानि गुणाश्च । तत्र जङ्घ
लेषु हरिणस्य गुणाः । हरिणः शीतलो वह्न विरामूत्रो
दीपनो लघुः ॥ रसे पाके च मधुरः सुगन्धिः सन्निपात
हाः ॥ ३५ ॥ करीसा इल हरिणः । रणः कषायो म-
धुरः पित्रासृक्क वात हृत् ॥ संग्राही रोचनो बल्यो
ज्वर प्रशमनः स्मृतः ॥ ३६ ॥

भा० और वात नाशक पुष्ट शुक्र को करने वाले रोचक कवल को बढ़ाने वाले हैं
तथा मद्य मैथुन में आसक्तों को और दीप्राग्नि यों को भी हित है ॥ ३४ ॥ (क)
अनन्तर जांगल आदियों के नाम गुण । उनमें हरिण के गुण । हरिण शी-
तल मलमूत्र को बान्धने वाला दीपन हलका ॥ रस और पाक में मधुर सुगन्धि
सन्निपात के नाशक है ॥ ३५ ॥ अनन्तर काला हरिण । रण कसेला मधु-
र रक्त पित्र कफ वात इनको नाशक है ॥ और काविज रोचन बल के हित ज्व-
र को शमन करने वाला कहा है ॥ ३६ ॥

अथ कुरङ्गः । कुरङ्गो बृंहणो बल्यः शीतलः पित्र
हृद् गुरुः ॥ मधुरो वात हृत् ग्राही किञ्चिद्वत्कफ करः
स्मृतः ॥ ३७ ॥ अथ रोज् । ऋष्यो नीलारण्ड कश्चापि
गवयो रोज् इत्यपि ॥ गवयो मधुरो बल्यः स्निग्धोष्ण
कफ पित्र लः ॥ ३८ ॥ अथ चित्तरि । एतस्मिन्
भवेत् स्वादुग्रीहकः शीतलो लघुः ॥ दीपनो रोचनः
श्वास ज्वर दोष त्रयास्तजित् ॥ ३९ ॥

भा० अनन्तर कुरङ्गः । कुरंग घुंहरण बलके हित शीतल पित्त नाशक भारी
॥ मधुर वात नाशक का विज और कुछ कफ करने वाला कहा है ॥ ३७ ॥
अनन्तर रोक । कृष्य नीला रङ्गक गवय रोक येह नील गाय के नाम हैं ॥ नी
ल गाय नधुर बलके हित चिकनी उष्ण कफ पित्त को करने वाली है ॥ ३८ ॥
अनन्तर चित्तरि । चित्तरि मधुर का विज शीतल हलका ॥ दीप्पन रचन है और
श्वास ज्वर तीनों दोष रक्त दून को नीतने वाला है ॥ ३९ ॥

अथ वारह सिङ्गा । न्यङ्कुः स्वादु लघु वर्ल्यो वृष्यो दो
चत्र या यहः ॥ अथ सावर । सावरं पल्लवं स्निग्धं शी
तलं गुरु च स्मृतम् । रसे पाके च मधुरं कफ दं रक्त ।
पित्त हृत् ॥ ४० ॥ राजि वस्तु गुणैः श्रेयः पृथगेन समोज
नैः ॥ अथ पीठी । मुरडी तु ज्वर का साम्बल क्षय श्वा
सो पद्मो हिमः ॥ अथ विले शयेषु तत्र शशः स्यात् ।
लम्ब करीः शशः शूली लोम करी विलशयः ॥ श
शः शीतो लघु ग्रीही रूक्ष स्वादुः सदा हितः ॥ ४१ ॥
बन्धि कृत्कफ वातघ्नो वात साधारणः स्मृतः ॥ ज्वर
ती सार शोधा स्वश्वासा मय हरश्च सः ॥ ४२ ॥
अथ साही । सेधातु शल्यकः श्वावित कथ्यन्ते तद्गु
णा अथ । शल्यकः श्वास काष्ठास्व शीय दोषत्रया
पहः ॥ ४३ ॥ अथ पक्षिणां नामानि गुणाश्च ॥

भा० अनन्तर वारह सिङ्गा । वारह सिङ्गा मधुर हलका बलक हित शुक्र को कर
ने वाला तीनों दोषों का नाशक है ॥ अनन्तर सावर । सावर का मांस चिकना शी
तल भारी कहा है ॥ रस पाक में मधुर कफ को करने वाला रक्त पित्त का नाशक
है ॥ ४० ॥ राजा चित्तरि के समान गुणों में लोग जानने ॥ अनन्तर पीठी । पीठी ज्वर

कास रक्त क्षय स्वास इनका नाशक शीतल होता है ॥ अनन्तर विले शयों में शत्रु होता है ॥ लम्ब करी शत्रु शूली लोम करी विले येह स्वर गोशके नाम है स्वर गोश शीतल हलका काविज रूखा मधुर सदा शीतल ॥ ४१ ॥ अग्नि दीपन कफ वात का नाशक साधारण वात को करने वाला कहा है ॥ और ज्वर अतीशर शोथ रक्त स्वास रोग इनका नाशक वोह है ॥ ४२ ॥ अनन्तर साही । सैषा तु शल्य क उवाचिन येह साही के नाम है । अनन्तर गुण कहते हैं । साही स्वास कास रक्त शोथ और विदोष इनका नाशक है ॥ ४३ ॥ अनन्तर यक्षियों के नाम और गुण ॥

पक्षी रवगो विहङ्गश्च विहगश्च विहङ्गमः ॥ शकुनिर्विः
षतत्रीच विष्किरो विकिरो ऽण्डजः ॥ ४४ ॥ धान्याः कु
रचरा येऽत्र तेषां मांसं लघुत्तमम् ॥ आनूपं बलक
न्मांसं स्निग्धं गुरुं तरं स्मृतम् ४५ ॥ तेषु विष्किरे सुव
टेरवट इ । वर्त्तिको वर्त्तिकश्च त्रस्ततो ऽन्या वर्त्तिकाः
स्मृताः ॥ वर्त्तिको ऽग्नि करः शीतो ज्वरदोय त्रयापहः
४६ ॥ सुरुच्यः शुक्रदो वल्यो वर्त्तिकाल्प गुणास्ततः ॥

भा० पक्षी खेग हिङ्ग विहङ्ग विहङ्गम् ॥ शकुनी विपत त्री विष्किर विकिर अण्डज येह पक्षी यों के नाम है ॥ ४४ ॥ धान्य और कुरचरा जो दुस्से है उनके मांस हल के और अच्छे है ॥ आनूप मांस बलकारी चिकना गुरु तर कहा है ॥ ४५ ॥ उन विष्किरे में वटेर वटई । वर्त्तिक वर्त्तिक चित्र येह वटेर के नाम है । और उस्से दूसरा वर्त्तिक कहा है ॥ वटेर अग्नि दीपन शीतल ज्वर और तीनों दोष इनका नाशक है ॥ ४६ ॥ और अच्छा रुचि को करने वाला शुक्र को करने वाला वलके हित होता है और वटई उस्से गुण में अल्प है ॥

अथ लावा । लावा विष्किर वर्गेषु ते चतुर्धाम
ता बुधैः ॥ पांशु लो गौर को ऽन्यस्तु पौण्डरीकोद
रस्तथा ॥ ४७ ॥ लावा वह्नि कराः स्निग्धा गरमा ग्रा-

हिका हिताः ॥ पांशुलः प्लेय्य लसेयु वीर्थ्यश्च निल
नाशनः ॥ ४८ ॥ गौरे लघुतरो रूक्षो वह्नि कारी त्रिदोष
जित् ॥ पौण्ड्रकः पित्तकृत् किञ्चि लघु वात कफाय
हः ॥ ४९ ॥ दर्मरोरक्त पित्तघ्नो हृदामय हरो हिमः ॥

भा० अनन्तर लवा । विष्कर वर्ग में वोह चार प्रकार पंडितोंने माना है ॥ पांशु
ल गौरक और दूसरा पौण्डरी क उदर येह लावाके भेद हैं ४८ ॥ लवा अग्नि की
करने वाला चिकना चिचनाशक का बिज और यध्य है ॥ और उनमें पांशुल क
फकारि शुक्र को करने वाला वात नाशक है ॥ ४८ ॥ गौर बहुत हलका रूखा दीपन
और त्रिदोष को जीतने वाला है ॥ पौण्ड्रक पित्त को करने वाला कुछ हलका वात क
फका नाशक है ॥ ४९ ॥ दर्मर रक्त पित्तका नाशक और हृदय रोग का नाशक श्री
मल है ॥

अथ वगेरा । वालीको वर्ति चटक वर्ती कश्चै व स
स्मृतः ॥ वाली को मधुरः शीतो रूक्षश्च कफ पित्तनुत्
॥ ५० ॥ अथ कृया तित्तिरि गौरति त्तिरी ॥ तित्तिरिः
कृया वर्णः स्या चितो न्यो गौरतित्तिरिः ॥ तित्तिरी र्वल
दो ग्राही हिका दोष त्रया पहः ॥ ५१ ॥ उवास कास ज्वर
हरस्तस्माद्गो राधिको गुणैः ॥ अथ गवरै आ ॥
चटकः कलविद्धः स्यात् कुलिङ्गः काल कराट कः ।
कुलिङ्गः शीतलः स्निग्धः स्वादुः शुक्र कफ प्रदः ॥ ५२ ॥
सन्नि पात हरो वेस्म चटकश्चाति शुक्लः ॥

भा० अनन्तर वगेरा । वालीक वर्ति चटक वर्तीक येह वगेरा के नाम है ॥ व-
गेरा मधुर शीतल रूखा कफ पित्त का नाशक है ॥ ५० ॥ अनन्तर और सुफेद ती-
तर ॥ काला तीतर चित और दूसरा सफेद तीतर होता है ॥ तीतर वलको देने वा-
ला का बिज है और हिचकिना तीनों दोष ज्वर इनका नाशक है उन्से सफेद तीतर

गुरामें अधिक हैं ॥ अनन्तर गवरैआ ॥ चटक कन्विद्ध कुलिद्ध कालकंठ ।
क ॥ येह गवरैआ के नाम है ॥ गवरैआ झीतल चिकना मधुर शुक्र और कफको
करने वाला ॥ ५२ ॥ तथा सन्निपातका नाशक और घरकी गवरैआ बहुत शुक्र
को करने वाला है ॥

कुक्कुटो वन कुक्कुटः । कुक्कुटः ककवाकुः

स्यात् कल यश्चरणा युधः ॥ ताम्र चूड स्तथा दक्षो पा
तरा दी त्रिख रिडकः ॥ ५३ ॥ कुक्कुटो वृंहणः स्नि
ग्धो वीर्येशो निल हत गुरुः ॥ चक्षुष्यः शुक्र कफ
हृत् वल्यो वृष्य कषायकः ॥ ५४ ॥ आरण्य कुक्कुटः ।
स्निग्धो वृंहणः श्लेष्म लो गुरुः ॥ वात पित्त क्षय वमि
विषम ज्वर नाशनः ॥ ५५ ॥ प्रतु देवु हारी तस्य ॥

भा० अनन्तर मुरगा और वन मुरगा । कुक्कुट ककवा कुक्कुल्य चरणा युध ॥ ता-
म्र चूड तथा दक्ष पातरा दी त्रिख रिड क येह मुरगे के नाम हैं ॥ ५३ ॥ मुरगा पुष्ट
चिकना वीर्य में उग्य वात नाशक भारी है ॥ और नेत्रके हित शुक्र कफ को करने
वाला बलके हित शुक्र को करने वाला कसेला है ॥ ५४ ॥ वन मुरगा चिकना पुष्ट क
फ को करने वाला भारी है ॥ और वात पित्त क्षय वमन विषम ज्वर इनका नाशक है
॥ ५५ ॥ प्रतु दे में हारील का ॥

हारीतो रक्त पीतः स्याद् हरितोऽपि सकृद्यते हारीतो हा
रील इति लोके ॥ हारीतो रूक्ष उष्णं श्व रक्त पित्त क
फा पहः ॥ स्वेदस्वर करः प्रोक्तः ईय हान करश्च सः ॥
पाण्डु धवल पाण्डु । पाण्डुस्तु द्विविधो ज्ञेय श्वित्र य
क्षः कलध्वनिः ॥ द्वितीयो धवलः प्रोक्तो स कपीतः ।
स्फुट स्वनः ॥ ५७ ॥ चित्र पक्षः पित्तरीया इति लोके ।

भा० हारीत रक्त पीत होता है और हरित भी येह उसका नाम है । इसको हरील

इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ हरील रूखा गम-रक्त पित्त और कफ का नाशक है । और स्वेद स्वर को करने वाला कहा है ॥ तथा अल्प वात को करने वाला है ॥ ५६ ॥ पारादु और धवल पारादु । पिदुक्ता दो प्रकार का होता है चित्र पक्ष और कल ध्वनि ॥ दूसरा धवल कहा है कपोत स्फुट नये पेड़ की के नाम है ॥ ५७ ॥ चित्र पक्ष पित्त रोधा इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥

चित्र पक्षः कफ हरो वातघ्नो ग्रहिणी प्रणुत् ॥ धवलः पारादु रुद्धियो रक्त पित्त हरो हिमः ॥ ५८ ॥ अथ मयूरः । मयूर चन्द्र की केकी मेघरावो भुजङ्ग भुक् ॥ शिरवी शिखा वली वहीं शिखराडी नील करण कः ॥ ५९ ॥ शुक्लो पाङ्गः कलापी च मेघनादः कलाप्यपि ॥ रसे पाके च मधुरः संग्राही वात शान्ति हनू ॥ ६० ॥ कवूतर परे वा ॥ पारावतः कलरवः कपोतो रक्त वर्धनः ॥ पारावतो गुरुः स्निग्धो रक्त पित्तानि ला पहः ॥ ६१ ॥ संग्राही शीत लसज्जैः कथितो वीर्य वर्धनः ॥

भा० चित्र पक्ष कफ नाशक वात नाशक और संग्रहणी का नाशक है ॥ धवल और पारादु रक्त पित्त का नाशक शीतल कहा है ॥ ५८ ॥ अनन्तर मोर ॥ मोर चन्द्र की केकी मेघराव भुजङ्ग भुक् ॥ शिरवी शिखा वली वहीं शिखराडी नील करण क ॥ ५९ ॥ शुक्लो पाङ्गः कलापी मेघनाद कलापियेह मोर के नाम है ॥ मोर रस पाक में मधुर का विज वात आमन करने वाला है ॥ ६० ॥ अनन्तर कवूतर परे वा । पारावत कलरव कपोत रक्त वर्धन येह कवूतर के नाम है कवूतर भारी चिकना रक्त पित्त वात का नाशक है ॥ ६१ ॥ और काविज शीतल उसको जानने वालों ने वीर्य का वर्धन करने वाला कहा है ॥

अथ पक्ष्यराडस्य गुणाः ॥

नाति निग्धा नि दृथ्यारिा स्वादु पाकर सा निच ॥ ॥

वातघ्नान्यपिशुक्राणि गुरुण्यण्डानि पक्षिणां ॥

६२॥ ग्राम्येषु छागस्य । छागलो वर्कर छागो वस्तो

जः खेलकः स्तुभः ॥ अजा छागी स्तुभा चापि खेलिका

च गलस्तनी ॥ ६३॥ छागमांसं लघु स्निग्धं स्वादु पा

कं विदोष नुत् ॥ नाति शीत मदा हिस्यान् स्वादु पीन

सनाशनम् ॥ ६४॥ परं बल करं रुच्यं वृंहणं वीर्यं

वर्द्धनम् ॥ अजाया अग्रसूताया मांसं पीतं सनाशनम् ॥

६५॥ शुष्ककासेऽरुचौ शोथे हितमग्नेश्च दीपनम् ॥

भा० अनन्तर पक्षियोंके अंडों का गुण । न बहुत चिकनें शुक्रको करने वाले रस और पाकमें मधुर ॥ वात नाशक अति शुक्र को करने वाले भारी ऐसे पक्षी योंके अंडे होते हैं ॥ ६२॥ ग्राम्य में बकरी का ॥ छागल वर्कर छाग वस्त ओज खेलकस्तुभ येह बकरे के नाम हैं ॥ और अजा छागी स्तुभा खेलिका गलस्तनी येह बकरी के नाम हैं ॥ ६३॥ छाग मांस हलका चिकना पाकमें मधुर विदोष नाशक ॥ न बहुत शीतल अविदाही मधुर होता है और पीनस का नाशक है ॥ ६४॥ अत्यन्त बलको करने वाला रुचिको करने वाला पुष्ट वीर्य को बढ़ाने वाला है ॥ वित वच्चों को दीहूर्द बकरी का मांस पीनस नाशक है ॥ ६५॥ सूखी खासी में अरुचि में शोथ में हित है और अग्नि दीपन ॥

अजा सुतस्य बालस्य मांसं लघुतरं स्मृतम् ॥ ६६॥

हृद्यं ज्वरहरं श्रेष्ठं सुखदं बलदं भृशम् ॥ मांसं निः

कासितारण्डस्य छागस्य कफ कृद्गुरु ॥ ६७॥ स्वातः

शुद्ध करं बल्यं मांसदं वात पित्तनुत् ॥ रुद्धस्य वा

तलं रूक्षं तथा व्याधिमृतस्य च ॥ ६८॥ र्द्विजन्तु वि

कारणं छाग सरणं रुचिप्रदम् ॥

भा० वकरी के वज्र का मांस लघुतर कहल है ॥ ६६ ॥ हृद्य ज्वर नाशक श्रेष्ठ सुख को देने वाला और अत्यन्त बल को देने वाला है ॥ अंड निकाले हुवे वकरी का मांस कफ को करने वाला भारी है ॥ ६७ ॥ और सोता को शुद्ध करने वाला वन के द्वित मांस को करने वाला वात पित्त का नाशक होता है ॥ वृद्ध छाग का मांस वातल रूक्ष वात या रोग से मरे हुवे का मांस भी वैसे ही होता है ॥ ६८ ॥ वकरी का सिर जवु के ऊपर होने वाले रोग का नाशक और रुचिको करने वाला है ॥

अथ मेढा । मेढो मेढो हुडो मेय उरणोऽप्ये डकोऽपिच ॥

‘अवि दृष्टि स्तयो र्णा युष्क’ कथ्यन्ते तदुणा अथ ॥ ६९ ॥

‘मेयस्य मांसं पुष्टो स्यात्पित्तं प्लेक्म करं गुरु ।’ तस्यै वारुणं विहीनस्य मांसं किञ्चि लघुस्यूतम् ॥ ७० ॥

अथ रण्डिका दुम्बिका इति लोके ।

दुम्बा । रण्डकः पृथु शृङ्गः स्यान्मेदः पुच्छस्तु दुम्ब-

कः ॥ रण्ड कस्य पलं ज्ञेयं मेवा मिय समं गुरोः ॥ ७१ ॥

मेदः पूच्छो द्वेवं मांसं हृद्यं दृढ्यं अमा पक्ष्म ॥ पित्त-

प्लेक्म करं किञ्चि हृत व्याधि विना अ नम् ॥ ७२ ॥

भा० अतन्तर मेढा । मेढो मेढ हुड मेय उरण रण्डक भी ॥ अवि दृष्टि तथा उर्णा युष्क येह मेड के नाम है, अतन्तर उसके गुण कहते हैं ॥ ६९ ॥ मेढे का मांस पुष्ट होता है और पित्त कफ का करने वाला भारी है ॥ अंड रहित उमका मांस किंचित हलका कहा है ॥ ७० ॥ अतन्तर दुम्बिका । दुम्बा । रण्डक पृथु शृङ्ग । मेद पुच्छ दुम्ब कयेह दुम्बे के नाम हैं ॥ दुम्बे का मांस मेढे के मांस के समान गुणों से जानना चाहिये ॥ ७१ ॥ उम्बे दुम्बे का मांस हृद्य शुक को उत्पन्न करने वाला अमनाशक है ॥ और पित्त कफ को करने वाला तथा कुछ एक वात के रोग का नाशक है ॥ ७२ ॥

अथ वर्दगावः । वली वर्दस्तु वृषभ ऋष्य

सश्व तथा वृषः ॥ अनङ्गुन सौर भेयल्प गौरूक्षामद्र

इत्यापि ॥ ७३ ॥ सुरभिः सौरभेयी च माहेयी गौ
रु दाहता । गोमांसं सन्तु गुरु स्निग्धं पित्तं प्लेक्म विवर्द्ध
नम् ॥ ७४ ॥ वृंहणं वात हृद्गत्य मपथ्यं पीन सप्रणुत् ॥

अथ घोड़ा । घोट के पीजिं तुरंगा तुरङ्गमश्च तुरङ्गमाः
वाजिवाहार्वा गन्धर्व - हयसैन्धव सप्त यः ॥ ७५ ॥

अथ मांसं सन्तु क्षुवरं वह्नि कृत्कफ पित्तलम् ॥ वात
हृद वृंहणं वल्यं चक्षुष्यं मधुरं लघु ॥ ७६ ॥

अथ कूले चरेषु महि वस्य ।

भा० अनन्तर वर्दगाव वली वर्द वृषभ ऋषभ तथा वृष ॥ अनङ्ग न सौरभेय
ल्पगौ उक्षा भद्र येह वैल के नाम हैं ॥ ७३ ॥ सुरमी सौरभेयी हाहेयी गौ येह
गाय के नाम कहे हैं ॥ गौमांस भारी चिकना पित्त कफ का वदाने वाला है ॥
७४ ॥ और पुष्ट वात नाशक बल को करने वाला अहित और पीनस का नाशक
है ॥ अनन्तर घोड़ा ॥ घोटक पिजिं तुरंग तुरङ्गम ॥ वाजिवाहार्वा गंध
र्व हयसैन्ध सप्तय येह घोड़े के नाम हैं ॥ घोड़े का मांस कसेला दीपन कफ
पित्त को करने वाला है ॥ वात नाशक वृंहण बल के हित नेत्र के हित मधुर
हलका है ॥ ७६ ॥ अनन्तर कूले चरों में भैंस का ॥

महियो घोट कारिः स्यात्का सरश्च रजस्वलः ॥ पी

न स्कन्धः कृष्ण कायो लुलापो यम वाहनः ॥ ७७ ॥

महियस्यामिषं स्वादु स्निग्धो यः वात नाशनम् ॥

निद्रा शुक्रप्रदं वल्यं तनु दाढ्यं करङ्गुरु ॥ ७८ ॥ वृष्यः

च्च सृष्ट विन्मूत्रं वातपित्तास्र नाशनम् ॥

भा० महिय घोट कारिका सार रजस्वल ॥ पीनस्कन्ध कृष्णकाय लुलाप यम
वाहन ॥ ७७ ॥ येह भैंस के नाम हैं भैंस का मांस मधुर चिकना गरम वात नाशक

है ॥ और मित्र शुक्र को करने वाला बलके हित शरीर को दृढ करने वाला भारी
॥ ७० ॥ शुक्र को करने वाला और मल मूत्र को करने वाला वात रक्त पित्त इन
का नाशक है ॥

अथ मण्डूकः । मण्डूकः प्लव गोभेको वर्याभू

र्ददुरो हरिः ॥ मण्डूकः प्लेखलो नाति पित्तलो बलका

रकः ॥ ७४ ॥ अथ पादियु कच्छु आ । कच्छु पो गूढ पातू

र्मः कमठो दृढ पृथुकः । कच्छु पो बल दो वातपित्तनुपु

स्त्व कारकः ॥ ८० ॥ अथ विशेषाः । अथ सद्यो ह तस्य मां

सस्य गुणाः । सद्यो ह तस्य मांसं स्यात् व्याधिघाति यथा मृ

तम् । वयस्यं वृद्धरां सान्ध्य मन्यथा तद्वि वर्जयेत् ॥ ८१ ॥

भा० अनन्तर मेडक । मण्डूक प्लव गोभेक वर्याभू र्ददुर हरि येह मेडक के नाम हैं ।
मेडक कफ करने वाला और बहुत पित्त को करने वाला नहीं है तथा बल करने वा-
ला है ॥ ७४ ॥ अनन्तर पादियोंमें कच्छु वा । कच्छु पो गूढ पातू कर्म कमठ दृढ पृ-
थक येह कच्छु वे के नाम हैं । कच्छु वा बल को देने वाला वात पित्त का नाशक
पुरुषत्व को करने वाला है । ८० । और विशेष । अनन्तर तत् काल के मारे हुवे
के मांस का गुण । तत् काल के मारे हुवे का मांस रोग नाशक जैसे अमृत ॥ वयदे
हित पुरुष सान्ध्य होता है । और दस्ते विरुद्ध उसको त्याग देवे ॥ ८१ ॥

स्वयं मृतस्य मांसम् । स्वयं मृतस्य चावल्य मती सारक

रंगुरु ॥ वृद्ध बाल मांसम् ॥ वृद्धा नां दोषलं मांसं ।

बालानां बलहं लघु ॥ सर्प दृष्टस्य मांसञ्च शुष्क मां

सं विदोष कृत् ॥ ८२ ॥ बाल दृष्टञ्च दुष्टञ्च शुष्कं ।

शूलकरम्परम् ॥ अथ वियादि मृतस्य मांसम् ॥

भा० आपही मरे हुवे के मांस । आपही मरे हुवे का मांस बल नाशक अतीसार
को करने वाला भारी होता है । वृद्ध और बाल का मांस । वृद्धों का मांस दोषका

य कारक और वृक्षों का मांस बलको देने वाला हलका होता है ॥ साँप के काटे का मांस और सूका मांस विदोष कारक है ॥ ८२ ॥ साँप के काटे हुवे का मांस और दुग्ध तथा सूका मांस परम शूलकारक है ॥ अनन्तर विषादि से मरे हुवे का मांस ॥

विषाम्बु रुद्धमृतस्यैतन् मृत्यु दोष रुजा करम् ॥ क्लिन्न
मुत क्लेश जनकं दंश वात प्रकोप नम् ॥ ८३ ॥ तोय पू-
र्यं त्रिरा जालं मृतमप्सु विदोष कृत् ॥ विहङ्गेषु पुमान्
श्रेष्ठः स्त्री चतुर्थ्यद जातियु ॥ ८४ ॥ परार्द्धे लघु पुंसां ।
स्यात् स्त्रीणां पूर्वार्द्ध मादि शेत् ॥ देह मध्यं गुरु प्रायं ।
सर्वेषां प्राणिनां स्मृतम् ॥ ८५ ॥ पक्ष क्षेपं द्वि हङ्गा
नां तदेव लघु कथ्यते ॥

भा० विष जल और रोग इनसे मरे हुवे का मांस मृत्यु दोष रोग इनको करने वाला है ॥ और सड़ा उल्केश को करने वाला रुजा वात के प्रकोप को करने वाला है ॥ ८३ ॥ जल में मरा हुवा जल से भरा त्रिराजाल वाला ऐसा मांस विदोष को करने वाला है ॥ पक्षियों में नर श्रेष्ठ और वीषाणों में स्त्री श्रेष्ठ है ॥ ८४ ॥ नरों का पिच्छला हिस्सा हलका होता है । और स्त्रियों का अगला हिस्सा हलका ॥ मध्य जीवों का मध्य देह प्रायः भारी कहा है ॥ ८५ ॥ पक्ष क्षेप से परिन्दों का बीही हलका कहा है ॥

गुरू रायराडानि सर्वेषां गुर्वी ग्रीवा च पक्षिणाम् ॥
८६ ॥ उरःस्कन्धो दरं कुक्षी पादौ पाणी कटी तथा ॥
ष्टष्ट्वगू यकृ दन्तारिण गुरू ग्रीह यथो त्तरम् ॥ ८७ ॥
लघु वात करं मांसं खगानां धान्य चारिणाम् ॥ म-
त्स्या शिनां पित्र करं वातघ्नं गुरू कीर्तितम् ॥ ८८ ॥

भा० सब पक्षियों के अंडे भारी और गरदन भी भारी होती है ॥ ८६ ॥ और छाती का स्था उर कूख पाव हाथ तथा कमर ॥ पीठ त्वचा यकृत आंत देह यथोत्तर मांसे

॥३८॥ घात करने वाले पक्षियों का मांस हलका और वात करने वाला है ॥ और मछली खाने वालों का पित्त वात नाशक भारी कहा है ॥ ८८ ॥

पलाशिनां प्लेय्म करं लघु रूक्ष मुदी रितम् ॥ चंद्रशं
गुरु वातघ्नं तेषां मेवं पलाशिनाम् ॥ ८९ ॥ तुल्य जाति
ष्वल्प देहा महा देहेषु पूजिताः ॥ अल्प देहेषु वास्यन्ते
तथैव स्थूल देहिनः ॥ ९० ॥ मत्स्येषु रोहि तस्य ॥
रक्तो दरो रक्त मुखो रक्तो रक्त पक्षतिः ॥ कृष्ण पू
च्छो भय प्रेक्षो रोहितः कथितो बुधैः ॥ ९१ ॥ रोहितः
सर्व मत्स्यानां वरो वृष्यो र्दिता त्रिजित् ॥ कषाया नुरसः
स्वादु र्वातघ्नो नांति पित्त कृत् ॥ ९२ ॥ ऊर्ध्वं जवु ग-
ता न्नीगान् हन्या द्रोहित सुरड कमू ॥

भा० मांस खाने वालों का कफ करने वाला हलका रूखा कहा है ॥ उन्हीं के
मांस को खाने वालों का मांस युद्ध भारी वात नाशक होता है ॥ ८८ ॥ समान
जाति वाले बड़े देह वालों में अल्प देह वाले श्रेष्ठ है ॥ उसी प्रकार अल्प शरीर
वालों में स्थूल देह वाले प्रशस्त है ॥ ९० ॥ मछलियों में रोहू का मांस ॥
नाल उदर लाल मुख लाल पर ॥ काली पुच्छ मछलियों में श्रेष्ठ रोहू पंडितों
ने कहा है ॥ ९१ ॥ रोहू सब मछलियों में श्रेष्ठ शुक्र को करने वाली अर्द्ध
रोग को जीतने वाली ॥ पीछे से कैसे सी मधुर वात नाशक न बहुत पित्त को कर
ने वाली है ॥ ९२ ॥ रोहू का सिर गले के ऊपर के रोगों को नाश करता है ॥

सिलन्धा । सिलन्धः प्लेय्म लो वल्यो विषाके म-
धुरो गुरुः ॥ वात पित्त हरो दृघं आम वात करश्च ।
सः ॥ ९३ ॥ अथ भाकुर । भक्षुरो मधुरः शीतो वृ-
ष्यः प्लेय्म करो गुरुः ॥ विषम् जन कश्चापि रक्त ।

पित्त हरः स्मृतः ॥ ४४ ॥ मोमा चिका ॥

मोचिका वात हृद्वा ल्या वृंहणी मधुरा गुरुः ॥ पित्त
हत कफ कृद्वा च्या वृद्धा दीप्ता ग्नये हिता ॥ ४५ ॥ म
ठना चूचारी इति च पोठिया वोरी इति च ॥ पाठिनः
श्लेष्म लो वन्यो निद्रालुः पित्रिताशनः ॥ दूषये दु-
धिरं पित्त कुष्ठ रोगं करोति च ॥ ४६ ॥

भा० सिलन्धा मछली । सिलन्ध कफ को करने वाली बलके हित विपाक में
मधुर भारी ॥ वात पित्त की नाशक हृद्य और वौह आम वात को करने वाली है ॥
४३ ॥ अनन्तर भाकुर । भाकुर मधुर शीतल शुक्र को करने वाली कफ कारक भा-
री होती है । और विहंग जनक तथा रक्त पित्त की नाशक भी कही है ॥ ४४ ॥ अनन्त-
र मोचिका । मोचिका वात नाशक बल को करने वाली सुष्ट मधुर भारी ॥ पित्त नाश-
क कफ को करने वाली और दीप्ताग्नि वाले को हित है ॥ ४५ ॥ मठना चूचारी ॥
पोठिया वोरी । मठना कफ को करने वाली बलके हित निद्रा को करने वाली है ॥ औ-
र मांस खाने वाले के रुधिर को बिगाड़ती है तथा पित्त और कुष्ठ रोग को भी कर-
ती है ॥ ४६ ॥

अथ सीङ्गी । शृङ्गी तु वात शमनी स्निग्धा श्ले-
ष्म प्रकोपनी ॥ रसे तिक्ता कथा याच लघ्वी रुच्या ।
स्मृता बुधैः ॥ ४७ ॥ अथ हीलसा ॥ इल्ल सो
मधुरः स्निग्धो रेषनो वह्नि वर्द्धनः ॥ पित्त हृत्कफ
कान्तिञ्च लघु वृद्धोऽनिला पट्टः ॥ ४८ ॥

भा० अनन्तर सीङ्गी ॥ सीङ्गी वात को शमन करने वाली चिकनी कफ
प्रकोप करने वाली ॥ रस में तिक्त कसेली रुचिको करने वाली पंडितों
ने कही है ॥ ४७ ॥ अनन्तर हीलसा ॥ हीलसा मधुर चिकनी रुचि
को करने वाली दीपन ॥ पित्त नाशक कफ को करने वाली कुच्छ हलकी शु-
क्र को करने वाली वात नाशक है ॥ ४८ ॥

अथ सौरी । शुक्ली ग्राहिणी हृद्या मधुरा तु वरा
स्मृता । अथ गर्गरा । गर्गरः पित्तलः किञ्चिद्वातजि
त्कफकोपनः । अथ कवड । कविका मधुरा स्निग्धा
कफघ्ना रुचिकारिणी ॥ किञ्चिद्पित्तकरी वातना
शिनी दीप्तवर्द्धनी ॥ ४४ ॥ अथ चाम्बी ॥ वर्मिभ
क्त्यो हरेद्वातं पित्तं रुचिं करो लघुः ॥

भा० अनन्तर सौरि । सौरि का विज हृद्य मधुर कसेली कसी है ॥ अनन्तर गर्ग
र । गर्गर पित्त को करने वाली कुछ एक वात को जीतने वाली कफ को कुपित
करने वाली है । अनन्तर कवड । कवई मधुर चिकती कफ नाशक रुचिको
करने वाली ॥ कुछ एक पित्त को करने वाली वातनाशक अग्नि को बढ़ाने वा
ली है ॥ ४४ ॥ अनन्तर चाम्बी ॥ चाम्बी मछली वात पित्त को हरती है
और रुचि को करने वाली हलकी है ॥

अथ दण्डारी । दण्ड मत्स्यो रसे तिक्तः पित्त रक्तं क
फं हरेत् । वातसाधारणः श्रोतः शुक्लो चल वर्द्धनः ॥
१०० ॥ अथ अरङ्गी । अरङ्गी मधुरः स्निग्धो विष्ट
म्भीशीतलो लघुः ॥ अथ पपता ॥ महा सफर ।
संजस्तु तिक्तः पित्त कफा यहः ॥ शिशिरो मधुरो रु
च्यो वातसाधारणः स्मृतः ॥ १०१ ॥ अथ गरई ॥
गरभी मधुरा तिक्ता तुवरा वात पित्त हृत् ॥ कफघ्नी ।
रुचिकृद्घ्नी दीपनी चल वीर्य्य कृत् ॥ १०२ ॥ अथ
मङ्गुरी । मङ्गुरी वात हृत् त्वो वृष्यः कफ करो लघुः ॥

भा० अनन्तर दण्डारी । दण्डारी मछली रसेमें तिक्त और पित्त रक्त कफ इनका

हरी है ॥ तथा साधारण वात को करने वाली शुक्र को करने वाली और बल को बढ़ाने वाली है ॥ १०० ॥ अनन्तर अरुणी । अरुणी । मधुर चिकनी विष्टम्भ को करने वाली शीतल हलकी होती है ॥ अनन्तर पापता । पापता तिक्त पित्त कफ की नाशक ॥ शीतल मधुर रुचि को करने वाली साधारण वात को करने वाली कही है ॥ १०१ ॥ अनन्तर गरई । गरई मधुर तिक्त कसेली वात पित्त की नाशक ॥ कफ नाशक रुचि को करने वाली दीपन बल वीर्य को करने वाली है ॥ १०२ ॥ अनन्तर महुरी । महुरी वात नाशक बल के हित शुक्र को करने वाली कफकारक हलकी है ॥

अथ वेङ्गरा । सपाद मत्स्यो मेधा कृत्मेह क्षय करश्चसः

॥ वात पित्त करश्चापि रुचिकृत्परमो मतः ॥ १०३ ॥

अथ सफरी पोठी इति च ।

प्रौढी तिक्ता कटुः स्वादुः शुक्रघ्नी कफ वातजित् ॥ स्त्रि
ग्धास्य करण्ठ रोगघ्नी रोचनी चलघुः स्मृतः ॥ १०४ ॥

अथ क्षुद्र मत्स्याः । क्षुद्रा मत्स्याः स्वादुरसाः दोष
त्रयविनाशनाः ॥ लघु पाका रुचिकरा बलदा स्ते हिता
मताः ॥ १०५ ॥ अथातिक्षुद्र मत्स्याः ॥ अतिसू-
क्ष्माः पुंस्त्व हरा रुच्याः कासा निला यहाः ॥

भा० अनन्तर वेङ्गरा । वेङ्गरा कान्ति को करने वाली और प्रमेह नाशक वो
ह है तथा वात पित्त कर और परम रुचिको करने वाली कही है ॥ १०३ ॥ अनन्त
र सफरी और पोठी भी कहते हैं । पोठी तिक्त कडवी मधुर शुक्र को करने वाली है
और कफ वात को जीतने वाली है ॥ चिकनी सुख कंठ इनके रोगों की नाशकर
रुचि को करने वाली हलकी कही है ॥ १०४ ॥ अनन्तर छोटी मछलियां ॥ छोटी म
छलियां रस में मधुर तीनों दोषों की नाशक ॥ पाक में हलकी रुचि को करने
वाली बल को देने वाली वे हित हैं ॥ १०५ ॥ अनन्तर बहुत छोटी मछलियां ।
बहुत छोटी पुरुषत्व की नाशक रुचिको करने वाली कास वात की नाशक
है ॥

अथ मत्स्याण्डा ।

मत्स्य गर्भो मृणं वृथ्यः स्निग्ध पुष्टि करो लघुः ॥ कफ मे
हः प्रदो बल्यो ग्लानि कृन्मेह नाशनः ॥ १०६ ॥

अथ सूखदी । शुष्क मत्स्या नवा बल्याः दुर्जराः विड् वि
वन्धिनः । अथ दग्ध मत्स्याः । दग्ध मत्स्यो गुरोः श्रे
ष्ठः पुष्टि कृच्छ्र ल वर्द्धनः । अथ कूप जादि मत्स्य गुणाः
॥ कौप मत्स्याः शुक्र मूत्र कुष्ठ श्लेष्म विवर्द्धनाः ॥ स
रो जा मधुराः स्निग्धा बल्या वात विनाशनाः ॥ १०७
॥ नादेया वृंहणा मत्स्या गुरवो निल नाशनाः ॥ र-
क्त पित्र करा वृथ्याः स्निग्धा णाः स्वल्प वर्चसः ॥ १०८
चौज्जाः पित्र कराः स्निग्धा मधुरा लघवो हिमाः ॥

भा० अनन्तर मछलियों के अंठे । मछलिके अंठे अत्यन्त शुक्र को करने वाले
चिकनें पुष्टि को करने वाले हलके हैं ॥ और कफ प्रमेह को करने वाले बलके
द्विज ग्लानि को करने वाले प्रमेह नाशक हैं ॥ १०६ ॥ अनन्तर सूखी । सूखी म
छली नई बल को देने वाली दुर्जर मल को वान्धनें वाली हैं ॥ अनन्तर दग्ध मत्स्य
। दग्ध मछली गुरा में श्रेष्ठ पुष्टि को करने वाली बल को बढ़ाने वाली है । अनन्तर
कूपें आदि में की मछलियों के गुण ॥ कूपें की मछलियां शुक्र मूत्र कुष्ठ कफ इन
को बढ़ाने वाली हैं ॥ सरो वर की मछलियां मधुर चिकनी बल को करने वाली ।
वात को नाशक हैं ॥ १०७ ॥ नदी की मछलियां पुष्ट भारी वात नाशक हैं ॥ और रक्त
पित्र को करने वाली शुक्र को करने वाली चिकनी उष्ण अल्प मल को करने वाली
हैं ॥ १०८ ॥ गड्डी की मछलियां पित्र को करने वाली चिकनी मधुर हलकी शीत
र होती हैं ॥

ताडागा गुरवो वृथ्याः शीतलाः बल सूत्रदाः ॥ १०९ ॥
॥ ताडागा वक्षिप्र जाताः बला युर्मति हकराः ॥

अथर्चु विशेषे मत्स्य विशेषः ।

हेमन्ते कूपजा मत्स्याः शिशिरे सारसा हिताः ॥ वसन्ते
ते तु नादेया ग्रीष्मे चैव ससुद्धवाः ॥ ११० ॥ तडाय जा
ना वर्षासु तास्व पथ्या नदी भवाः ॥ नैर्ऋतः शरदि
श्रेष्ठा विप्रियो ऽय मुदा हृतः ॥ १११ ॥

इति श्री भाव प्रकाशे मांस वर्गः ।

सा० तालाव की मछलियां भारी शुक्रको करने वाली ग्रीष्म बल मूत्र को देने वाली है ॥ १०४ ॥ तालाव और वावली की मछलियां बल आयु मति दृष्टि व्रत को करने वाली है ॥ अनन्तर ऋतु विशेष में मत्स्य विशेष । हेमन्त में कुर्वे की मछली शिशिर में सरोवर की हित है ॥ वसन्त में नदी की ग्रीष्म में गहड़ की हित है ॥ ११० ॥ तालाव की वर जात से हित होती है और वरसात में नदी की अहित होती है ॥ मरने की शरद में श्रेष्ठ होती है । येह विशेष कहा है ॥ १११ ॥

इति भाव प्रकाशे मांस वर्गः ।

अथ कृतान्न वर्गः ॥

तत्रान्नानां साधन प्रकारः सिद्धानां गुणाश्च ॥

तत्र परि भाषिता ।

समवायिनि हेतोये मुनि भिर्गणिता गुणाः ॥ कार्ये ऽ
पि ते ऽस्वित्ता ज्ञेयाः परि भायेति भाषिता ॥ ११२ ॥ क्वचि
त्संस्कार भेदेन गुणा भेदो भवेद्यतः ॥ भक्तं लघु पुरा-
णस्य शालेस्तच्चिपिदो गुरुः ॥ ११३ ॥ क्वचिद्योग प्रभा
वेन गुणान्तरमपेक्ष्यते ॥ कदन्नं गुरु सर्पिश्च लघुक्तं
सुहितं भवेत् ॥ अथ सक्तस्य नामानि साधनं गुणाश्च

भा० अनन्तर कीये हुवे अन्न का वर्गः । उसमें अन्नों के बनाने का प्रकार । और चने हुवों का गुण । उसमें परिभाषा । समवाय कारण में जो गुण सुविधियों में माने हैं ॥ वे सब कार्य में भी जानने चाहिये इस प्रकार परि भाषा कही है ॥ ११२ ॥ कही पर संस्कार भेदसे गुण भेद होता है ॥ जैसे पुराने चावलों का भात हलका और उस का चिडवा भारी होता है ॥ ११३ ॥ कही पर योग के प्रभावसे गुणान्तर हो जाता है ॥ कदन्न भारी घृत हलका कहा है वोह हित होता है ॥ अनन्तर भात के नाम साधन और गुण ॥ ॥

भक्तं मन्त्रं तथान्धश्च क्वचित्कूरञ्च कीर्तिं तम् ॥ ओ

दनोऽस्त्री स्त्रियां मित्साही दिविदः पुंसि भाषितः ॥ ११४

सुधौ तास्त एदुलाः स्फीता स्तोये पञ्च गुरो पचेत् ॥ त-

द्भक्तं प्रस्तुतं चोष्णं विशदं गुणं वनमतम् ॥ ११५ ॥

मक्तं बन्धि करं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघुः ॥ अधो तम

श्रुतं शीतं गुर्व रुच्यं कफ प्रदम् ॥ ११६ ॥

अथ पहिति । दालि तन्तु शिम्बी धान्यं दालि दाली स्त्रि

या मुभे ॥ दाली तु सलिले सिद्धा लवणा द्रव हिङ्गुभिः

॥ ११७ ॥ संयुक्ता सूप नाम्नी स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥

सूपो विष्टम्भको रूक्षः शीतस्तु सविशेषतः ॥ ११८ ॥

निस्तुषो मृष्टसंसिद्धः लाघवं सुतरा ब्रजेत् ॥

भा० भक्त अन्न अन्ध और कही पर कूर कहा है ॥ नपुंसक में ओदन स्त्री लिं गमें मित्सादि विद पुल्लिङ्ग में कहा है ॥ ११४ ॥ अच्छी तरह धोये हुवे चावल व दाने हुवे पांच गुने पानी में पकावे वोह पसेया हुवा गरम विशद गुण युक्त भात कहा है ॥ ११५ ॥ भात दीपन पथ्य तर्पण रोचन हलका होता है ॥ और विन धो या तथा विनय मे या शीतल भारी अरुचि को देने वाला और कफ कारी होता है ॥ ११६ ॥ अनन्तर दाल । धुली हुई शिम्बी धान्य दालिः दाली येह दोनों सगरी

लिंग में होते हैं ॥ दाल जल में सिद्ध और लवण अद्रक हीङ्ग ॥ ११७ ॥ इनसे युक्त कासपनाम है अनन्तर उसके गुरा कहते हैं ॥ दाल बिस्म बनने वाली रूसदी शीतल होती है विशेष से ॥ ११८ ॥ वे छिलके की धून के सिद्ध की हुई बहुत हलकी हो जाती है ॥

अथ खिचिरी । तरुणु ला दालि संमिश्रा लवणा र्द्र ।

कहिङ्गुभिः ॥ संयुक्ता सलिले सिद्धा कृशरा कथिता

बुधैः ॥ ११९ ॥ कृशरा शुक्रला बल्या गुरुः पित्र कफ

प्रदा ॥ दुर्जरा बुद्धि विस्म मल मूत्र करी स्मृता ॥ १२० ॥

अथ तापहारी ताता हरी तिलोके ।

घृते हरिद्रा संयुक्ते माय जाम्भर्ज्ये द्वयीम् ॥ तरुणु

लां श्रापि निर्धौतान् सहैव परिभर्जयेत् ॥ १२१ ॥ सि

द्ध योग्यं जलं तत्र प्रक्षिप्य कुशलः पचेत् ॥ लवणा र्द्र ।

कहिङ्गुनि मातायां तत्र निःक्षिपेत् ॥ १२२ ॥

भा० अनन्तर खिचड़ी । दाल मिले हुवे चावल लवण अद्रक हीङ्ग से युक्त ॥ जल में सिद्ध को पंडितों ने कृशरा कहा है ॥ ११९ ॥ खिचड़ी शुक्र को करने वाली बल के हित भारी पित्र कफ को देने वाली ॥ और दुर्जरा बुद्धि विस्म मल मूत्र को करने वाली कही है ॥ १२० ॥ अनन्तर तारी । हरदी के साथ घृत में उड़द की बडियों की धूनें दिन धोये हुवे चावलों को भी साथ ही धूने ॥ १२१ ॥ उसमें पकने के अन्दाज से जल डाल कर चतुर पकावे ॥ लवण अद्रक हीङ्ग उसमें हिंसावसे डाले ॥ १२२ ॥

एषा सिद्धिः समानज्ञा प्रोक्ता तापहरी बुधैः ॥ भवेत्ताप

हरी बल्या वृष्या श्लेष्मानमाचरेत् ॥ १२३ ॥ चंद्रणी

तर्पणी रुच्या गुर्वी पित्र हरा स्मृता ॥

भा० इस सिद्धि हुई को पंडितों ने तायरी कहा है ॥ तायरी बल को देने वाली शुक्र

को करने वाली है और कफ को करती है ॥ १२३ ॥ वृंहणातर्पणा रुचिको क
रने वाली भारी पित्त नाशक कही है ॥

अथ रवी र । पायसं परमान्नं स्यात् क्षीरि कापि त-
दुच्यते ॥ शुद्धे रूद्धे पक्के दुग्धे तु घृताक्तां स्तरदुलान् य-
चेत् ॥ १२४ ॥ ते सिद्धा क्षीरिकाख्याता ससिताज्य युतो
त्तमाः ॥ क्षीरिका दुर्जरा प्रोक्ता वृंहणी बल वर्धिनी ॥
१२५ ॥ नालि के रन्तनु कृत्य च्छिन्नं पयसि गोः क्षिपेत्
॥ सितागव्याज्य संयुक्ते तत्पचैन्मृदु नाग्निना ॥ १२६ ॥
नारी केरो दूधा क्षीरं स्निग्धा शीताति पुष्टि दा ॥ गुर्वी सु-
मधुरा दृष्या रक्त पित्ता निला पहा ॥ १२७ ॥ अथ सेवद ॥

भा० अनन्तर रवीर । पायस पर मान्नं क्षीरिका येह रवीर के नाम हैं ॥ शु-
द्ध अध और दूध में घृत युक्त चाव लोंको पकावे ॥ १२४ ॥ वो सिद्ध क्षीरिका
जीनी घृत से युक्त उत्तम कही है ॥ दुर्जर रवीर पुष्ट बल को बढ़ाने वाली है ॥ १२५ ॥
नारियल को कीलके गायके दूध में डाले ॥ चीनी गायको घृत से युक्त उसको
मन्दी आँच से पकावे ॥ १२६ ॥ नारियल की रवीर चिकनी शीत अति पुष्टि
को करने वाली ॥ भारी मधुर शुक्र को करने वाली और रक्त पित्त वात इनकी
नाशक है ॥ १२७ ॥ ॥ अनन्तर सेवद ॥ ॥

समितां वर्ति कां कृत्वा सूक्ष्मां तु यव सन्निभाम् ॥ शु-
क्लाक्षीरिणां संसाध्यां भोज्या घृत सिता न्विता ॥ १२८ ॥
सेविका तर्पणी बल्या गुर्वी पित्ता निला पहा ॥ ग्राहेणी
सन्धि कृद्रु च्या तां खादे न्नाति मात्रया ॥ १२९ ॥
अथ मरडा । गोधूमा धवला धौताः कुट्टिताः शोधि-
तस्ततः ॥ प्रोक्षिता यन्त्र निष्पृष्टा श्रालिताः समिताः

स्मृताः ॥१३०॥ वारिणा कोमलां कृत्वा समिता साधु म-
 र्दयेत् ॥ हस्त लाल नया तस्या लोपूचीं सम्यक् प्रसार-
 येत् ॥१३१॥ अधो मुख घटस्यैतत् विस्तृतं प्राक्षिपेद्
 हिः ॥ मृदुना वह्निना साध्यः सिद्धो मण्डक उच्यते ॥
 १३२॥ लोपवी लीड इति लोके ।
 दुग्धेन साज्य खण्डेन मण्डकं भक्षयेन्नरः ॥ अथ वा
 सिद्ध मांसेन सत क्रवट के नवा ॥ १३३॥ मण्ड को
 वृंहणो दृव्यो वल्यो रुचि करो भृशम् ॥ पाकेऽपि म
 धुरो ग्राही लघु दीय त्रया पहः ॥१३४॥
 अथ पोरी कुत्रापि दुनौरी इति च ॥

भा० सूक्ष्म जबके समान बराबर बत्ती को करके ॥ सुका कर दूधसे पकावे और
 रघत चीनीके साथ खावे ॥ १२८ ॥ सेवई तपरणी बलको देने वाली भारी पित्त
 बात की नाशक ॥ काविज संश्लि करने वाली रुचिको करने वाली होती है उस
 को बहुत नखावे ॥ १२९ ॥ अनन्तर मंडा ॥ सुफेद धोये कुटे हुवे और सु
 काये हुवे गेहूं को प्रोक्षित चक्की से पीसे हुवे तथा चलनी से छाने हुवे को समि
 ता अथानि मैदा कहा है ॥१३०॥ मैदे को पानीमें घोल करके अच्छी तरह मर्द
 न करे ॥ हाथ की लालना से उसकी लोई अच्छी तरह करे ॥ १३१ ॥ नीचे सु
 ख घडे पर येह फेली हुई को डाले ॥ मन्द अग्नि से सिद्ध हुई को मंडक हे
 ते है ॥ १३२ ॥ लोई इस प्रकार कहते है ॥ दूध घत खांड इनसे मनुष्य मंडे
 को खावे ॥ अथवा सिद्ध मांस से बादही के बडे से खावे ॥ १३३ ॥ मंडा शुक्रको
 करने वाला और बलकेहित अत्यन्त रुचिको करने वाला है ॥ पादमें भी मधु
 ए काविज हलका दीय त्रय का नाशक है ॥ १३४ ॥
 अनन्तर पूरी और कही पर दुनौरी भी कहते हैं ॥

कुर्यात्समित्तयाऽतीवतन्वी यर्ष्यति का तनः ॥ स्वेद

येन प्रके तात्तु योलिका जग दुर्बुधाः ॥ १३५ ॥ तां खा
 देहलक्षिका युक्तां तस्या मण्डक वद्गुणाः ॥
 तप्त कन वा इति लोके ॥ अथ प्रसङ्ग लक्ष्मी ॥
 समितां सर्पिषा भृष्टां शर्करां पयसि क्षिपेत् ॥ तस्मिन्
 घनी कृते न्यस्ये ह्रवङ्ग मरिचादिकम् ॥ १३६ ॥ सिद्धे
 गालक्षिका ख्याता गुणास्तस्या वदाम्यहम् ॥ लक्षि
 का वृंहणी दृष्ट्या बल्या पित्रा निला पहा ॥ १३७ ॥ स्नि
 ग्धा प्ले व्य करी गुर्वी रोचनी तर्पणी परम् ॥

भा० मैदे से अतीव सूक्ष्म पपड़ी करे उसके अतन्तर ॥ उसको तवे पर से के उस
 को योलिका विद्वानों ने कहा है ॥ १३५ ॥ उसको लक्ष्मी के साथ खावे उसका
 गुण मंडे के समान है ॥ तप्त कनवा इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥
 अतन्तर प्रसङ्ग से लक्ष्मी । मैदे को घृत से भून के शर्करा के साथ दूध में डाले
 ॥ वोह गाढ़ा हो जाने पर लौड़ मिरव आदिक डाले ॥ १३६ ॥ येह सिद्ध
 हुई लक्ष्मी कहाँ है उसके गुणों को कहते हैं ॥ लक्ष्मी पुष्ट शुक्र को करने
 वाली बल को करने वाली पित्र वात की नाशक ॥ १३७ ॥ चिकनी कफ कारी
 नारी रोचनी तर्पणी है ॥

अथ रोटी । शुष्क गोधूम चूर्णेन किञ्चि त्रुष्टाञ्च यो
 लिकाम् ॥ तप्तके स्वेद येन कृत्वा भूर्यङ्गारेऽपि तां पचे
 त् ॥ १३८ ॥ सिद्धेया रोटिका प्रोक्ता गुणान्तस्थाः प्रचक्ष्महे
 रोटिका बल रुद्ध्या वृंहणी धातु वर्धनी ॥ १३९ ॥ त्रात
 म्नी कफ रुद्धुर्वी दीप्राग्नीनां प्रपूजिता ॥

भा० अतन्तर रोटी । सूके गेहूं के आदे से कुछ मोटी रोटी को ॥ तवे पर से
 के और से के उसको बज्जन से अंगारों पर पकावे ॥ १३८ ॥ इसको सिद्ध ।

रोटिका कहाँ है उसके गुण कहते हैं ॥ रोटी बल को करने वाली रुचिकेहित ।
पुष्ट धातु को बढ़ाने वाली ॥ १३४ ॥ वातनाशक कफ को करने वाली भारी दीप्ता
ग्नियों को श्रेष्ठ है ॥

अथ लीड्री । शुष्क गोधूम चूर्णान्नु साम्बु गाढं विमर्दये
त् ॥ विधाय वट का कारं निर्धूमैः श्मैः श्नैः पचेत् ॥ १३५ ॥

अङ्गार कर्कटी स्त्रिया वृंहणी शुक्लालघुः ॥ दीपनी क
फ कट्व बल्या पीन सश्वास कास जित् ॥ १३६ ॥

अथ यव रोटी । यवजा रोटिकारुच्या मधुरा विशदालघुः
मल शुक्रा निल करी बल्या हन्ति कफा मयान् ॥ १३७ ॥

अथ माष रोटिका । माषानां दाल यस्तोये स्थापिता स्युक्त
कञ्चुकाः ॥ आतपे शोयिता यन्त्रे पिष्टास्ता धूमसी स्मृ

ता ॥ १३८ ॥ धूमसी रचिता चैव प्रोक्ता भर्भरिका बुधैः ॥

भर्भरी कफ पित्तघ्नी किञ्चिद्घ्न करी स्मृता ॥ १३९ ॥

भा० अनन्तर लीड्री । सूके गेहूं के आटे को जल के साथ गाढ़ा ओसने ॥ वट का ।
कार करके निर्धूम अग्नि में धीरे २ पकावे ॥ १४० ॥ येह अंग कड़ी पुष्ट शुक्र को क
रने वाली हलकी है ॥ और दीपनी कफ को करने वाली बल के हित और पीनस ।
श्वास कास इन को जीतने वाली है ॥ १४१ ॥ अनन्तर जवकी रोटी ॥ जवकी
रोटी रुचि की करने वाली मधुर विशद हलकी मल शुक्र वात को करने वाली बल
के हित होती है ॥ और कफ के रोगों को नाश करती है ॥ १४२ ॥ अनन्तर उड
दकी रोटी ॥ उडद की दाल को पानी में भिगोय के छिलके निकाली हुई को धूप
में सुकावे बकी में पीसे उसको धूमसी कहाँ है ॥ १४३ ॥ धूम सी से बनी हुई बोही
भर्भरी का कहती है ॥ भर्भरी कफ पित्त की नाशक कुक् एक वात को करने वाली
कही है ॥ १४४ ॥

[अथ चनक रोटिका]

चनक्या रोटिका रूक्षा प्लेय्य पिता सनु हुरुः ॥

विद्युम्भिनी न चक्षुष्या तद्गुणा चाति शङ्कुली ॥ १४५ ॥
 अथ पिष्टिका । दालिः संस्था पिता तोये ततोऽपहृत
 कञ्चुका ॥ शिलायां साधु सम्पिष्टा पिष्टिका कथिता ।
 बुधैः ॥ १४६ ॥ अथ वेढड ॥ माय पिष्टि कया
 पूर्णा गर्भा गोधूम चूर्णितः ॥ रचिता रोटिका सैव प्रो-
 क्ता वेढ मिका बुधैः ॥ १४७ ॥ भवेद्देढ मिका बल्या
 रुच्या रुच्याऽनिला पहा ॥ उष्ण सन्न पर्णी गुर्वी वृ-
 हणी शुक्रला परम् ॥ १४८ ॥ भिन्न सूत्र मला स्त-
 न्य मेदः पित्र कफ प्रवा ॥ गुदकी लादितः श्वासं य-
 द्दिः शूलानि नाशयेत् ॥ १४९ ॥ अथ पापर ॥

भा० अनन्तर चनें की रोटी, जने की रोटी रूखी और कफ रक्तपित्त इनकी नाशक
 भारी ॥ विद्युम्भ करने वाली नेत्रके हित और उसी के गुण अति शङ्कु ली है
 ॥ १४५ ॥ अनन्तर पिष्टी ॥ दाल को पानी में भिजीय के और उसका छिलका नि-
 काज कर ॥ सिल पर अच्छी तरह पीसी हुई की पिष्टी पंडितों ने कही है ॥
 १४६ ॥ अनन्तर वेढड ॥ उडद की पिष्टी को आटे के भीतर भरके ॥ बनाई हुई
 की वेढड पंडितों ने कही है ॥ १४७ ॥ वेढमी बलको करने वाली शुक्र की उत्प-
 न्न करने वाली रुचिको करने वाली वात नाशक ॥ गरम सन्न पर्णी भारी पुष्ट ॥
 शुक्र को करने वाली है ॥ १४८ ॥ मल सूत्र को करने वाली दुग्ध मेद पित्र कफ
 इनको देने वाली है ॥ और गुद की लादित श्वास पङ्क्ति शूल इनको नाशक
 रती है ॥ १४९ ॥ अनन्तर पापर ॥

धूमरी रचिता हिङ्गु हरिद्रा लवणैर्युता ॥ जीर क
 स्वर्जिका म्याञ्च तनू कृत्य च वेक्षिता ॥ १५० ॥ पर्य
 दासे सदाङ्गार भृष्टाः परम श्रेष्ठ काः ॥

दीपनाः पाचना रूक्षा गुरवः किञ्च दीरिताः ॥ १५१
 मोक्षाश्च तद्गुणाः प्रोक्ता विशेषा लघवो हिताः ॥ चन
 कस्य गुरो युक्ताः पर्यटाश्चराकोद्भवाः ॥ १५२ ॥ स्ने-
 हभृष्टास्तु ते सर्वे भवेयुर्मध्यमा गुरोः ॥

भा० पूर्वीक्त धूमसी से हीङ्ग-हलदी लवण को मिलाके बनाया हुआ ॥ और
 जीरा सज्जी इत को मिलाके बारीक करके बेला हुआ पापड है ॥ १५० ॥ वे पाप
 ड अङ्गारे से भूने हुवे परम रोचक ॥ दीपन पाचन रूखे कुछ भारी कहे हैं ॥
 १५१ ॥ और सूक्ष्म के उसी के समान गुण में कहे हैं विशेष करके हलके हित हो
 ते हैं ॥ चने के पापड चने के गुण के समान होते हैं ॥ १५२ ॥ वे सब तेल के भू-
 ने हुवे गुण से मध्यम हैं ॥

अथ पूरी । मायाराणां पिष्टिकां पूज्या लवणाद्रक हि-
 ङ्गुभिः ॥ तथा पिष्टि कथा पूर्णा समिता कृत पोलिका ॥
 १५३ ॥ ततस्तेलेन पक्वासा पूरीका कथिता बुधैः ॥ रुच्या
 स्वाद्वी गुरुः स्निग्धा वल्या पिप्ता सूक्ष्मिका ॥ १५४ ॥
 चक्षुस्ते जो हरी चोयणा पाके वातविनाशिनी ॥ तथैव
 घृत पक्वापि चक्षुष्या रक्त पिप्त हत ॥ १५५ ॥

अथ वरा । मायाराणां पिष्टिका युक्ता लवणाद्रक हिङ्गु-
 भिः ॥ कृत्वा विदध्या द्रवका सासे लेयु पचे च्छनैः ॥
 १५६ ॥ विशुष्का वटका वल्या वृंहणा वीर्यवर्द्धनी ॥ वा-
 ता मय हरी रुच्या विशेषा दर्दिता पहा ॥ १५७ ॥

भा० अनन्तर पूरी । उबड़ की पिष्टी लवण अद्रक हीङ्ग से युक्त करके ॥ उस
 पिष्टी से पूर्ण मैदा की कीहुई पोलिका ॥ १५३ ॥ वो तेल से पकी को पूरी का
 पडिने कहे हैं ॥ रुचि को करने वाली मधुर भारी चिकनी बल के हित रक्त

पित्तको विगाड़ने वाली कहीं है ॥१५४॥ नेत्र की नेत्री को हरने वाली गरम पाक में वातको नाश करने वाली ॥ वैसेही बीकी पकी हुई भी नेत्र के हितरक्त पित्तको नाशक है ॥१५५॥ अनन्तर बड़ा ॥ उड़दों की पिष्टी लवण अन्नक हीड़ इनसे युक्त ॥ करके बड़े बनावे उनकी तैलमें धीरे २ पकावे ॥१५६॥ सूके हुवे बड़े ॥ दलको करने वाले पुष्ट धातु को बढ़ाने वाले ॥ वात रोगोंके नाशकरुषिको करने वाले विशेष करके अर्दित रोग के नाशक है ॥१५७॥

विवन्ध भेदिना प्रलेष्म कारिणी ॥ त्वग्नि पूजिता ॥ सं-
चूर्य निक्षिपेत्तत्रैव शृङ्ग जीरक हिङ्गु मिः ॥१५८॥ लवणं
तत्र दत्तान् सकला नापि मज्जयेत् ॥ शुक्रलस्तत्र व-
क्को वल रुद्रो च नो गुरुः ॥१५९॥ विवन्ध हृदि दाही
च प्रलेष्म लः पवना पहः ॥ राज्यक्त पातिनो वान्यान्
पाचनां स्नास्तु मक्षयेत् ॥ १६०॥

राज्यक्ता राइता इति लोके । अथ काञ्ची वरः ।

भा० विवन्धको भेदन करने वाली कफ को न करने वाली अति अग्नि में पू-
जित है ॥ चूर करके जीरा हीड़ के साथ मठे में डाले ॥१५८॥ और लवण ॥
उसमें सब बड़े को डुबे ॥ उसमें का बड़ा शुक्र को करने वाला दलको करने वा-
ला रोचन भारी है ॥ १५९ ॥ विवन्ध का नाशक विदाही कफ को करने वाला ॥
वातनाशक ॥ राइता घोला हुआ वा और कुछ पाचन उनकी खावे ॥ १६० ॥
राइता इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ अनन्तर कांजी बड़ा ॥

मन्थनी नूतना धार्या कटु तैलेन लेपिता ॥ निर्मले नास्तु
नायूर्य तस्यां चूरी विनिःश्लिष्येत् ॥१६१॥ राजि का ॥
जीरलवण हिङ्गु शुरठी निशा कतम् ॥

भा० नवीन मन्थनी कटु तैलसे लेपित रखवे ॥ उसमें निर्मल जल भरके ये ह चू-
री डाले ॥ १६१ ॥ राई जीरा लवण हीड़ साँठ हलदी इनसे किया हुआ ॥

निःक्षिपे हृदकांस्तत्र भाण्डस्यास्यञ्च मुद्रयेत् ॥ १६२ ॥
 ततो दिनतया दूर्ध्वमस्ताः स्युर्वटकाध्रुवम् ॥ काञ्जिको
 वटको रुच्यो वातघ्नः श्लेष्मकारकः ॥ १६३ ॥ शीतो दाहं
 शूलमजीर्णहरते दृगा मयेष्वहितः ॥

भा० वस्त्रें बड़े डाले और इस वरतन का मुख ढक देवे ॥ १६२ ॥ उससे तीन दिन के बाद
 बड़े निश्चय स्वप्ने होते हैं ॥ कांजी बड़ा रुचिको करने वाला वातका नाशक कफकार
 क ॥ १६३ ॥ शीत दाह शूल अजीर्ण इनको हरता है और दृष्टि रोग में अहित है ॥

ऊरीवडारा । अम्लिकांस्वेदयित्वा तु जलेन सह मर्दये
 त् ॥ तच्चीरे कृत संस्कारे वटका न्मज्जयेज्जनः ॥ १६४ ॥
 अम्लिका वटकास्तेतु रुच्या वह्नि प्रदीपनाः ॥ वटक
 स्य गुणैः पूर्वैरेवोऽपि च समन्वितः ॥ १६५ ॥

अथ मूगवरा । मुद्गानां वटकास्तक्रे भर्जिता लघवो हि
 माः ॥ संस्कारज प्रभावेन त्रिदोषशमना हिताः ॥ १६६ ॥
 अथ मायवटी । मायाराणां पिष्टिका हिङ्गुलवराणां च संस्क्र
 ताः ॥ तथा विरचिता वस्त्रे वटिकाः साधु शोयिताः १६७
 भर्जिता स्तप्नन्तैलेस्ता अथ वाम्बु प्रयोगतः ॥ वटकस्य
 गुणैर्युक्ता ज्ञातव्या रुचिदा भृशम् ॥ १६८ ॥

अथ कोह डोरी । कुष्माण्डक वटी त्रेया पूर्वोक्त व
 टिका गुणाः ॥ विशेषात्पित्तरक्तप्लीलघ्वीचकथिता बु
 धैः ॥ १६९ ॥ अथ मुद्ग वटी ॥

भा० अन्तर ऊरी बड़ा । इमली को गरम करके जलके साथ मले ॥ मसाला

१६४

डाले हुवे उस जल में वहाँको डाल देवे ॥ वे डमली के बड़े रुचिको करने वाले ।
अग्नि दीपन है ॥ पहिले बड़ों के गुण के समान है ॥ १६५ ॥ अनन्तर मूङ्ग बड़ा
मूङ्ग की बड़ियां भूनी हुई हलकी शीतल है ॥ और संस्कार के प्रभाव से विदोष
अमन तथा हित होती है ॥ १६६ ॥ अनन्तर उडद की बड़िया ॥ उडद की पिष्टी
हीङ्ग लवण अन्नक इनसे संस्कार की हुई ॥ उससे बनी हुई कपड़े पर अच्छी
तरह सूका ॥ १६७ ॥ के गरम तेल से भूनें अथवा जल में पकावे । इसको बड़े
के गुण के समान जानना चाहिये । और अत्यन्त रुचिको करने वाली है ॥ १६८
अनन्तर कोहड़ोरी । कोहड़ोरी पूर्वोक्त वटिका के गुण के समान है ॥ विशेष कर
के पित्त रक्त की नाशक हलकी पंडितों ने कहि है ॥ १६९ ॥ अनन्तर मुङ्ग की ब-
ड़ी ॥

मुङ्गानां वटिका तच्च व्रचि ता साधिता तथा ॥ पथ्यारुच्या
तथा लब्धी मुङ्ग सूपः गुणा स्मृता ॥ २७० ॥

क्षरिकवच्छ । माय पिष्टि कया लिप्ता नाग वल्ली द
लं नहत ॥ तत्तु संसे दयेत् सुत्था स्यात्वा मास्तार ।
को परि ॥ २७१ ॥ ततो निष्का श्य तं यण्डा न्ततस्तै
लेन भर्जयेत् ॥ यण्डं यण्डे न योग्य मिति यावत् ॥
अलीक मत्स्य उक्तीः यं प्रकारः पाक परिहर्तैः ॥ तं
वृन्ता क मटि त्रेण वास्तू केन च मक्षयेत् ॥ १७२ ॥

अथ कथं । स्थाल्यां घृते वा तैले वा हरिद्रा हिङ्गु भर्ज
येत् ॥ अवले दन संयुक्तं तक्र न्तैव निक्षियेत् ॥ १७३ ॥
रया सिद्धा समरीचा कथिता कथिता बुधैः ॥

भा० मूङ्ग की बटिका बनाई हुई और साधित ॥ पथ्यारुचिको करने वाली
तथा हलकी मूङ्ग की दाल के समान गुण में कहि है ॥ १७० ॥ अनन्तर क्षरिक
वच्छ । उडद की पिष्टी से लिप्ता बड़ा नाग वेल का पान ॥ उसको तसले में कपड़े के
उपर युक्ति के साथ पकावे ॥ १७१ ॥ उससे निकाल कर उस के टुकड़े करके तेल के

साथ भूने ॥ टुकड़ा अर्थात् टुकड़े करके युक्त ॥ अली कमत्स्य का यह प्रकार क-
हा है पाक पंडितोंने ॥ उसको भटेके भरते के साथ अथवा वधुवे के साथ खावे ॥
१७२॥ अनन्तर कढ़ी ॥ तसले में घृत अथवा तेलमें हलदी हीङ्ग को भूने ॥ अ-
बलेहन के साथ मठे को उसीमें डाले ॥ १७३॥ ये सिद्ध मरिच के साथ औद्यई हुई
को पंडितोंने कही कही है ॥

अब लेहन मू । अरि हन इति लोके ।

कथिता पाचनी रुच्या लघ्वी बन्धि प्रदीपनी ॥ कफा
निल विबन्धघ्नी किञ्चित् त्पित्त प्रकोपिणी ॥ १७४॥ अ-
ली कमत्स्याः शुष्का वा किं वा कथितया पुनः ॥ हं-
हरा शोचना दृष्या बल्या वात गदा पहाः ॥ १७५॥

कोष्ठ शुद्धि कारः शुक्त्या किञ्चित् त्पित्त प्रकोप नाः ॥

भा० हरि हन इस प्रकार लोकमें कहे ते हैं । कढ़ी पाचन रुचिकी करने वा
ली हलकी दीपन ॥ कफ वात विबन्ध की नाशक कुछ एक पित्त के प्रकोप को क-
रने वाली है ॥ १७४॥ अली कमत्स्य ^{अथवा} सूके फिरसे औढाने से होते हैं । पुष्ट शोचना
शुक्रकी करने वाले बलके हिन वात रोग के नाशक है ॥ १७५॥ कोष्ठ शुद्धि
को करने वाले शुक्तिके साथ कुछ पित्त प्रकोप करने वाले हैं ॥

अर्द्धिते सह नुस्त म्मे विशेषेणा हिताः स्मृताः ॥ १७६॥

अथ अद वरा । मुद्ग पिष्टा विर चितान् वटांस्ते लेनया
चितान् ॥ हस्ते न चूर्ण ये त्सम्यक् तस्मिं श्रूरो विनिः
क्षियेत् ॥ १७७॥ भृशं हिङ्ग्वार्द्रकं सूक्ष्मं मरीचं जीरकं त-
था ॥ निम्बूरसं जवा नीच युक्ता सर्वं विमिश्रयेत् ॥ १७८॥

भा० अर्द्धित सह नुस्तं म में विशेष करके हित कहे हैं ॥ १७६॥ अनन्तर अद
वरा मुद्ग की पिष्टी से वनी वडी को तेलसे पकावे उसको हातसे अच्छी तरह चूर्ण
करे उस चूरे में इनको डाले ॥ १७७॥ सूनी हीङ्ग अद्रक मरिच तथा जीरा इनको

पीतके डाले ॥ और नीम्बू का रस अंज वाइन इनको युक्ति से सबको मिलावे ॥ १७५ ॥

॥ सुद्व पिष्टिं पचे त्सम्यक् स्थाल्या मास्तार को परि ॥ त-
स्यानु गोलकं कुर्यात् तन्मध्ये पूरणां क्षिपेत् ॥ १७६ ॥
तैले तान् गोलकान् पक्त्वा क्षथितायां निमज्जयेत् ॥
गोलकाः पाचकाः प्रोक्ता स्ते त्वार्द्र कवटा अपि ॥ १७७ ॥
मुद्गार्द्र कवटा रुच्या लघवो बल कारकाः ॥ दीपना स्त-
र्षणाः पथ्या स्त्रियु दोषेयु पूजिताः ॥ १७८ ॥

भा० तसले में कपड़े के ऊपर मूद्ग की पिष्टी को अच्छी तरह पकावे ॥ उसका
गोलक करके उसके बीचमें पूरणा भरे ॥ १७६ ॥ इन गोलकों को तैलमें पकाके
कढ़ीमें डुबा देवे ॥ गोलक पाचक हैं और आर्द्रक वटभी उसको कहते हैं ॥
१७७ ॥ मूगके आर्द्रक रुचिको करने वाले हलके बल कारक हैं ॥ और दीपना
नर्पणा पथ्य और तीनों दोषों को अच्छे हैं ॥ १७८ ॥

अथ पकोरी । दाल यश्च न कानानु निस्तुवा यन्त्र
येयिताः ॥ तच्चूर्णं वेशनं प्रोक्तं पाक शास्त्र विशारदैः ॥
१७९ ॥ वटिका वेशनस्यापि क्षथितायां निमज्जिताः ॥ रुच्या
विष्टम्भ जननी बल्या पुष्टि करी स्मृता ॥ १८० ॥

(क) एव मत्स्यः पि वेशन भवाः प्रकाराः यण्डेन यण्ड
प्रभृतयो वैद्व्याः । अथ मांसस्य प्रकाराः ॥

भा० अनन्तर पकोरी । चने आदि यों की दालों को वेकिल के करके चक्कीमें पीसे
॥ उस चूर्ण को वेशन पाक शास्त्र के जानने वालों ने कहा है ॥ १७९ ॥ वेशन की व-
टिका भूनके कढ़ीमें पकी हुई रुचिको करने वाली विष्टम्भ की करने वाली बल के
हित पुष्टि को करने वाली कहती है ॥ १८० ॥ (क) गेहूँ और भी वेशन के प्रकार रं-
ड आदि जानना चाहिये ॥ अनन्तर मांसका प्रकार ॥

हरिद्रा मारुतकं शुराठी लवणं मरिचा निच ॥ तराडु लां
 श्रापि गोधूमान् जम्बीराणां रसान् बहून् ॥ १५४ ॥
 यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि ॥ तथा पचे-
 त् तु निपुणो बहु मांसं क्षितिर्वया ॥ १५५ ॥ एषा हरीसा
 बलं कृत्वात्तं पित्रा पहा गुरुः ॥ शीतोष्णाः शुक्रदाः स्नि-
 ग्धाः सरा सन्धानं कारिणी ॥ १५६ ॥ अथ तलितं मांसम्

भा० पकाने के बरतन में बड़े मांस के टुकड़े डालें ॥ पानी बहुत सा घृत बहुत ही
 डू-जीरा ॥ १५३ ॥ अद्रक हलदी सोंठ लवण मिरच ॥ चावल और गेहूं जंजीर का
 बहुत रस ॥ १५४ ॥ जिसमें सब मांस अच्छी तरह पक जावे ॥ वैसे सब वस्तु वों
 को निपुण पकावे जैसे बहुत मांस को क्षिति ॥ १५५ ॥ ये हरी सा बल को करने
 वाला वात पित्र का नाशक भारी ॥ शीत उष्ण शुक्र को करने वाला चिकना सरस
 न्धान करने वाला है ॥ १५६ ॥ तलाहुवा मांस ॥

शुद्ध मांस विधानेन मांसं सम्यक् प्रसाधितम् ॥ पुनस्त-
 दाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥ १५७ ॥ तलितं बल-
 मेधाग्नि मांसीजः शुक्र वृद्धि कृत् ॥ तर्पणं लघु सुस्नि-
 ग्धरोचनं दृढ ताकरम् ॥ १५८ ॥ अथ सीरवं ॥
 काल खराडा दि मांसानि ग्रन्थितानि श्लाकया ॥ घ-
 तं सलवणं दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ १५९ ॥ तनु शूल-
 ल्यमिदं प्रोक्तं पाक कर्म विचक्षरोः ॥ शूल्यं पलं सु-
 धा तुल्यं रुच्यं वह्नि करं लघुः ॥ २०० ॥ कफ वात हरं
 दल्यं किञ्चित्पित्त करं हि तत् ॥ मांस शृंगादकम् ॥

भा० शुद्ध मांस की विधि से मांस को अच्छी तरह पका करके ॥ फिरसे उस की

घृतमें भूने उसको तलिन मांस कहते हैं ॥ १८७ ॥ तला हुआ मांस बल कान्ति ।
मांस ओज शुक्र इनको बढ़ाने वाला ॥ तर्पण हलका बहुत स्निग्ध रोचन दृढता ।
करने वाला है ॥ १८८ ॥ अनन्तर सीख ॥ काल खंडादि मांसों को सीक में
लगा कर ॥ नमक घी दे कर निर्धूस अग्नि में पकावे ॥ १८९ ॥ उसको शूल्य रे
सा कहते पाक कर्म में चतुर्गुण्ये ॥ शूल्य मांस अमृत के समान रुचि
को करने वाला दीपन हलका ॥ १९० ॥ कफ वात का नाशक बल को करने
वाला कुष्ठ पित्त को करने वाला बौह होता है ॥
अनन्तर मांस के सिंघाडे ।

शुद्ध मांसं तनू दान्त्य कर्तितं स्वेदितं जले ॥ लवङ्गं हिङ्गु
लवणं मरिचार्द्रकं संयुतम् ॥ २०१ ॥ गुला जिरक धा
न्याक निम्बूरसः समन्वितम् ॥ घृते सुगन्धे तद्गुह्यं ।
मांसं शृंगाटकं च्यते ॥ २०२ ॥ मांसं शृंगाटकं रुच्यं
दंढरां बल दृढ गुरु ॥ वात पित्त हरं दृष्यं कफघ्नं वी
र्यं वर्द्धनम् ॥ २०३ ॥ अथ मांस रसाः ॥

भा० शुद्ध मांस बारीक करके जल में पकावे ॥ लौंग हीङ्ग लवण मरिच और
अद्रक इनसे युक्त ॥ २०१ ॥ तथा गुलाय ची जीरा धनियां नीम्बूका रस इनके यु
क्त ॥ अच्छे घृत में उसको भूने उसको मांस शृंगाटक कहते हैं ॥ २०२ ॥ मांस शृंगा
टक रुचि को करने वाला पुष्ट बल करने वाला भारी होता है ॥ और वात पित्त
का नाशक शुक्र को करने वाला कफ नाशक वीर्य को बढ़ाने वाला है ॥ २०३ ॥
॥ अनन्तर मांस रसः ॥

सिद्ध मांस रसो रुच्यः श्रम श्वास क्षयापहः ॥ ग्रीवा
नो वात पित्तघ्नः क्षीणा नाम ल्परेत साम् ॥ २०४ ॥ वि
प्लिवृमग्न सन्धीनां शुद्धानां शुद्धिका द्विगुणाम् ॥ स्थ
त्यो जो बल ही नातां ज्वर क्षीणा क्षते रसाम् ॥ २०५ ॥
शस्यते स्वरहीनानां दृष्टपायुः श्रवणार्थिनाम् ॥

तत्र शुद्ध मांसम् । सुधवासु इति लोके ।

पाक पात्रे घृतं दद्यात् तैलञ्च तद् भावतः ॥ तत्र हिन्दु
हरिद्रांच भर्जयेत्तदनन्तरम् ॥ १८४ ॥ छागादेरस्थिर
हितं मांसं तत्स्वरिडितं ध्रुवम् ॥ धौतं निर्गलितं तस्मि
न् घृते तद्भर्जयेच्छनैः ॥ १८५ ॥ सिद्ध योग्यं जलं
दत्त्वा लवणान्तु पचेत्ततः ॥ सिद्धे जलेन सम्यग्वे
शवारं परिक्षिपेत् ॥ १८६ ॥

वेशवारः वेगर इति लोके ।

भा० उस्से शुद्ध मांस । सुधवासु इस प्रकार लोकमें कहते हैं । पकाने के व
रतनमें घृत डाले उसके अभावमें तैल डाले ॥ उसमें हींग हलदी को भूने और
बाब ॥ १८४ ॥ बकरे आदि का वेहड़ी मांस टुकड़े किया हुआ ॥ और धोके साफ
किया हुआ उस घी में उसको धीरे ॥ १८५ ॥ उसमें पकाने के योग्य जल
देकर और लवण देकर पकावे उसके अनन्तर ॥ सिद्ध हुवे जे पानी से गरम
मसाला पीस कर उसमें डाले ॥ १८६ ॥

इसको वे गर इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥

द्रव्याणि वेशवारस्य नाग वल्ली दला निच ॥ तरुडुला
श्च लवङ्गनिमरिचानी समासतः ॥ १८७ ॥ अनेन
विधिना सिद्धं शुद्धं मांसं मिति स्मृतम् ॥ शुद्ध मांसं
परं वृष्यं बल्यं रुच्यञ्च वृंहणम् ॥ १८८ ॥ त्रिदोषश
मकं श्रेष्ठं दीपनं धातुवर्द्धनात् ॥

भा० मसाले की वस्तु पान चावल लवंग मरिच ये संक्षेप से हैं ॥ १८७ ॥ इस
विधिसे सिद्ध किया हुआ शुद्ध मांस ऐसा कहा है ॥ शुद्ध मांस परम शुक्रको करने
वाला बलकारी रुचिको करने वाला पुष्ट ॥ १८८ ॥ त्रिदोष का शमक श्रेष्ठ ।

दीपन धातुवद्धाने से है ॥

अथ सेहृद्रक । सहर्षीसु इति लोके ।

छागादे मांसं मूर्खादि कुट्टितं खण्डितं पुनः ॥ शुद्ध मांसं

विधानेन पचेदे तत्सह द्रकम् ॥ १८५ ॥ सहद्रकं गु-

णैर्ग्रन्थे शुद्ध मांसं गुणं स्मृतम् ॥ अथ अरवनी ॥

पाक पात्रे घृतं दत्त्वा हरिद्रा हिङ्गु भर्जयेत् ॥ छागा

दे सकल स्यापि खण्डा न्यपि च भर्जयेत् ॥ १८६ ॥

सिद्ध योग्यं जलं दत्त्वा पचेन्मृदुतरं यथा ॥ जीरका

दियुते तन्ने मांसं खण्डा नि तारयेत् ॥ १८७ ॥ तन्नामां

सन्तु वातघ्नं लघु रुच्यं बल प्रदम् ॥ कफघ्नो पित्तलः

किञ्चि त्सर्वा हारस्य पाचनम् ॥ १८८ ॥ (क)

तन्नामांसम् अरवनी इति लोके ॥ अथ आस ॥

भा० अनन्तर सेहृद्रक । सहर्षीसु रेसा लोक में कहते हैं । वकरे आदिके ।

जांघ आदिका मांस कुवाहुवा और अलग-अलग टुकड़े किये हुवे ॥ इसको शुद्ध मांस

संकी विधि से पकावे येह सहद्रक है ॥ १८५ ॥ सहद्रक निघंटु में शुद्ध मांस

के समान गुण में कहा है ॥ अनन्तर अरवनी ॥ पकाने के पात्र में घृत डाल कर

हलदी और हीङ्गु को भूने ॥ और वकरे आदि सबके मांसके टुकड़ों को भी भूने ॥

१८६ ॥ पकाने के योग्य जल देकर मन्द आँव से पकावे ॥ जीरा आदिक से युक्त

मट्टे में मांसके टुकड़ों को डाले ॥ १८७ ॥ येह तन्नामांस वागनाशक हलका ।

रुचि को करने वाला बल को देने वाला ॥ कफ नाशक पित्त को करने वाला कु

छ सब अहार का पाचक है ॥ १८८ ॥ (क)

तन्नामांस अरवनी इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ अनन्तर आस ॥

पाक पात्रे तु वहती मांसं खण्डानि निःक्षेपेत् ॥ पानी

यं प्रचुरं सर्पिः प्रभूतं हिङ्गु जीरकम् ॥ १८९ ॥

हरिद्रा भार्द्रकं शुरांठी लवरां मरिचा निच ॥ तरण्डु लां
 प्त्रापि गोधूमान् जम्बीराणां रसान् बहून् ॥ १४४ ॥
 यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि ॥ तथा पचे-
 त् तु निपुणो बहु मांसं क्षिति र्यथा ॥ १४५ ॥ रया हरीसा
 बल क्त वात पित्रा पहा गुरुः ॥ शीतोयणाः शुक्रदाः स्ति
 ग्धाः सरा सन्धान कारिणी ॥ १४६ ॥ अथ तलित मांसम्

भा० पकाने के बरतनमें बड़े मांस के टुकड़े डाले ॥ पानी बहुत सा घृत बहुत ही
 डू-जीरा ॥ १४३ ॥ अद्रक हलदी सेंठ लवरा मिरच ॥ चावल और रोहू जंजीरी का
 बहुत रस ॥ १४४ ॥ जिसमें सब मांस अच्छी तरह पका जावे ॥ वैसे सब वस्तु वों
 को निपुण पकावे जैसे बहुत मांस को क्षिति ॥ १४५ ॥ ये हरी सा बल को करने
 वाला वात पित्र का नाशक भारी ॥ शीत उष्ण शुक्र को करने वाला चिकना सरस
 न्यान करने वाला है ॥ १४६ ॥ तलाहुवा मांस ॥

शुद्ध मांस विधानेन मांसं सम्यक् प्रसाधितम् ॥ पुनस्त
 दाज्ये समभृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥ १४७ ॥ तलितं बल
 मेधाग्नि मांसी जः शुक्र वृद्धि क्त ॥ तर्पणं लघु सुस्ति
 ग्धरोचनं दृढ ताकरम् ॥ १४८ ॥ अथ सीरंव ॥
 काल खराडा दि मांसानि ग्रन्थितानि श्लाकया ॥ घृ-
 तं सलवरां दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ १४९ ॥ तन्नुशू-
 ल्य मिदं प्रोक्तं याक कर्म विच क्षरोः ॥ शूल्यं पलं सु
 धा तुल्यं रुच्यं बन्धि करं लघुः ॥ २०० ॥ कफ वात हरं
 वल्यं किञ्चिद्विपिन्न करं हि तत् ॥ मांस शृंगाट कम् ॥

भा० शुद्ध मांस की विधि से मांस को अच्छी तरह पका करके ॥ फिरसे उस की

घृतमें भूने उसको तलित मांस कहते हैं ॥ १८७ ॥ तला हुआ मांस वन्य कान्ति ।
मांस ओज शुक्र इनको बढ़ाने वाला ॥ तर्पण हलका बहुत स्निग्ध रोचन दृढता ।
करने वाला है ॥ १८८ ॥ अनन्तर सीख ॥ काल खंडादि मांसों को सीक में
लगा कर ॥ नमक घी दे कर निर्धूस अग्नि में पकावे ॥ १८९ ॥ उसको शूल्य रे
सा कहते पाक कर्म में चतुर्गुण्ये ॥ शूल्य मांस अमृत के समान रुचि ।
को करने वाला दीपन हलका ॥ १९० ॥ कफ वात का नाशक बल को करने
वाला कुक्ष पित्र को करने वाला बौह होता है ॥

अनन्तर मांस के सिंघाडे ।

शुद्ध मांसं तनू कृत्य कर्तितं स्वेदितं जले ॥ लवङ्ग हिङ्गु
लवण मरि चार्द्रक संयुतम् ॥ २०१ ॥ गुला जिरक धा
न्या क निम्बू रस समन्वितम् ॥ घृते सुगन्धे तद्गुणं ।
मांसं शृंगाट कोच्यते ॥ २०२ ॥ मांसं शृंगाटकं रुच्यं
वृंहणं बल छद्गुरु ॥ वात पित्त हरं वृष्यं कफघ्नं वी
र्य वर्द्धनम् ॥ २०३ ॥ अथ मांस रसा ॥

भा० शुद्ध मांस वारीक करके जल में पकावे ॥ लौंग हीङ्ग लवण मरिच और
अद्रक इनसे युक्त ॥ २०१ ॥ तथा इलायची जीरा धनियां नीम्बू का रस इनके यु
क्त ॥ अच्छे घृत में उसको भूने उसको मांस शृंगाटक कहते हैं ॥ २०२ ॥ मांस शृंगा
टक रुचि को करने वाला पुष्ट बल करने वाला भारी होता है ॥ और वात पित्त
का नाशक शुक्र को करने वाला कफ नाशक वीर्य को बढ़ाने वाला है ॥ २०३ ॥
॥ अनन्तर मांस रस ॥

सिद्ध मांस रसो रुच्यः श्रम त्वास्त क्षयापहः ॥ ग्रीवा
नो वात पित्तघ्नः क्षीणा नाम त्यरेत साम् ॥ २०४ ॥ वि-
श्लिष्ट भग्न सन्धीनां शुद्धा नां शुद्धि का हिंसा ॥ स्मृ
त्यो जो बल ही नानां ज्वर क्षीण क्षते रसाम् ॥ २०५ ॥
अस्थते स्वरहीनानां दृष्टपायुः श्रवणार्थि नाम् ॥

प्रकाराः कथिताः सन्ति वहवो मांस सस्रवाः ॥ ग्रन्थवि
स्तारभीतेस्ते मया नात्र प्रकीर्त्तिकाः ॥ शाक पाक विधिः

भा० सिद्ध मांस का रसा रुचि को करने वाला अम त्वास क्षय इनका नाशक है
॥ और ग्रीष्म न वात पित्र का नाशक और क्षीण तथा अल्प शुक्र वाले इनको ॥
२०४॥ और विप्लव भग्न संधी वाले शुद्ध और शुद्धि चाहने वाले ॥ स्मृति आज
वल् इनसे हीन ज्वर क्षीण क्षत उर वाले इनको ॥ २०५॥ हित है और हीन स्वर
वाले तथा दृष्टि आयु अवस्था र्थि यों को भी हित हैं ॥ मांस की बहुत सी किस
म बनाने की है ॥ परन्तु ग्रन्थ बहु ज्ञान के डरसे उनको मैंने यहां पर नहीं कहा
है ॥ अनन्तर शाक पाक विधि ॥ ॥

हिङ्गु जीर युते तैले क्षिपे च्छाकं सुखरिड तम् ॥ लवणं
चाम्ल चूणादि सिद्धे हिङ्गु दकं क्षिपेत् ॥ २०७ ॥ इत्ये
वं सर्व शाकानां साधनोऽभिहितो विधिः ॥

तत्र मण्ड कं माठ इति लोके ।

समिता मर्दयेदन्य जलेनापि च सन्न येत् ॥ तस्यास्तु ।
वटिका कृत्वा यचेत्सर्पिथि नीर समू ॥ २०८ ॥ शला
लवङ्ग कर्पूर मरी चाद्यै रलङ्कते ॥ मज्ज यित्वा सिता
पाके ततस्तच्च समुद्धरेत् ॥ २०९ ॥ अयं प्रकारः सं
सिद्धो मठ इत्यभिधीयते ॥ सन्न येत् मर्दयेत् ॥

भा० हीङ्गु जीर के सहित तेलमें अच्छी तरह बनाई हुई शाक को डालें ॥ लव
ण आम चूर आदि सिद्ध हुवे में हीङ्गु का पानी डालें ॥ २०७॥ इस प्रकार सब
शाकों के बनाने की विधि इस है ॥ अनन्तर मण्ड ॥ मर्द को मले और पानी से
साने उसकी वटिका करके घृतमें नीर स पकावे ॥ २०८॥ इलायची लवंग कर्पूर
मरिच आदि से युक्त ॥ इसको चीनी में पागे उस के अनन्तर उसको निकालें ॥ २०९॥
इस तरह पर सिद्ध हुवे को मण्ड ॥ ऐसा कहते हैं ॥ मर्दन करे ॥

मठस्तु वृंहणो वृष्यो बल्यः सुमधुरो गुरुः ॥ पिता निल
हरो रुच्यो दीप्राग्नीनां सुपूजितः ॥ २९० ॥ समिताः
शर्करा सर्पिर्निर्मिता अपरेऽपिये ॥ प्रकारा अमुना तु
ल्यास्तेऽपि च तद्गुणाः स्मृताः ॥ २९१ ॥

अथ सप्तावपेरक ॥ यर्ष्यत्यः साज्य समिता निर्मिता
घृतमर्जिताः ॥ कुट्टिताम्ब्रालिताः शुद्ध शर्करा भिर्वि
मर्हिताः ॥ २९२ ॥ तत्र चूर्णा क्षिपे देला लवङ्ग मरिचा
तिच ॥ नालिका केरं सकर्पूर च्चारवीजान्यनेकधा ॥ २९३ ॥

भा० मठड़ी पुष्ट गुळको करने वाली बलके हित अच्छी मधुर भारी ॥ पित्त
वात की नाश करुचिको कूरने वाली दीप्राग्नि बालों को अच्छी है ॥ २९० ॥ और
भी जो मैदा शर्करा धी हुने बनाये हुवे पदार्थ ॥ इसीके समान गुण में है वेभी उ
सीके समान गुण वाले कहें हैं ॥ २९१ ॥ अनन्तर सप्तावपेरक ॥ घृत के सहित
मैदे से बनाये हुवे रोटी धी में भूने हुवे ॥ तथा कूटके चालनी से चाले हुवे
अच्छी चीनी को मिलाके मले हुवे ॥ २९२ ॥ उस चूर्ण में इलायची लवंग मरिच
॥ नारियल कर्पूर चिरोंजी और अनेक प्रकार ॥ २९३ ॥

घृताक्त समिता पुष्ट रोटिकारचिता ततः ॥ तस्यानः पूर
रां तस्य कुर्यान्मुद्रां दृढां सुधीः ॥ २९४ ॥ सर्पियि प्रचुरे
तान्तु सुपचे त्रिपुरागो जनः ॥ प्रकार त्रैः प्रकारेऽयं स
प्ताव इति कीर्तितम् ॥ २९५ ॥ अथ कर्पूर नालिका ॥
घृताढ्यया समितया लम्बं कृत्वा पुटं ततः ॥ लवङ्गे
त्वण कर्पूर युतया सितयाऽन्वितम् ॥ २९६ ॥ पचे-
दाज्येन सिद्धे या ज्ञेया कर्पूर नालिका ॥

सम्पाव सदृशी ज्ञेया दुरोः कर्पूर नालि का ॥ २१७ ॥

[फेनिका फेनी]

भा० डाले अनन्तर मैदे में घी मिला कर मोटी रोटी बनावे उस के अनन्तर ॥ उसके बीचमें उसका पूरण देवे और दृढ सुद्धा बुद्धि वान करे ॥ २१४ ॥ बुद्धि वान उसको बहुत से घृत में पकावे ॥ तब कीबके जानने वालों ने इसको संपाव रोसा कहा है ॥ २१५ ॥ अनन्तर कर्पूर नालि ॥ बहुत घृत डाल कर मैदे से लम्बा पुट करके अनन्तर ॥ लवंग अधिक कर्पूर के युक्त चीनी से युक्त को ॥ २१६ ॥ घृत में पकावे यह सिद्ध कर्पूर नालिका जाननी चाहिये ॥ संपाव के समान गुणमें कर्पूर नालि का जाननी चाहिये ॥ २१७ ॥ अनन्तर फेनी ॥

समिताया घृताद्याया वर्ति दीर्घा समाचरेत् ॥ तास्तु

सन्निहिता दीर्घाः पीठस्योपरि धारयेत् ॥ २१८ ॥

वेल्लये द्वे ल्लनेनेता यथैका पर्यटी भवेत् ॥ ततश्चु

रिकया तान्नु सलग्ना मेव कर्तयेत् ॥ २१९ ॥ ततस्तु

वेल्लयद्रूप सदृक्के म च लेपयेत् ॥

आलि चूर्णं घृतं तोयं मिश्रितं दशकं वदेत् ॥ ततः

संहृत्य तल्लोपूतीं विदधीत पृथक् पृथक् ॥ २२० ॥

भा० घृत के सहित मैदे से लंबी बन्नी करे ॥ दोह सन्निहित दीर्घ पीठ के ऊपर रखवे ॥ २१८ ॥ इनको वेलने से वेले जिसमें एक रोटी हो जावे ॥ उसके अनन्तर उनको लुगरी से लगी हुई की ही काटे ॥ २१९ ॥ फिर से वेले और सदृक् अर्थात् चावल का आटा उससे लेपन करे ॥ चावल का चूर्ण घृत जल इन सब मिले हुवे को दशक कहने है ॥ उससे लोई गोल करके अलग रखवे ॥ २२० ॥

पुनस्तां वेल्लये ल्लोपूतीं यथा स्यान्मण्डलाकृतिः ॥

ततस्तां सुपचे दाज्ये भवे युष्मत् पुठाः स्युताः ॥ २२१ ॥

सुगन्धया शर्करया तदुद्धू लनगा चरेत् ॥ सिद्धेया फे-
निका नाल्नी मण्ड केन समागुरोः ॥ २२२ ॥ ततः कि-
ञ्चिल्लघुरियं विशेषोऽयमुदाहृतः ॥

(क) वेल्हयेत् प्रसारयेत् वेल्हनः । वेल्हन इति लोके
। पर्ययी रोटी । लोपूनीं लो इति लोके ।

अथ शङ्कुली सोहाली इति लोके ।

समिताया घृताक्ताया लोपूनीं कृत्वा च वेल्हयेत् ॥ आ-
ज्ये तां भर्जयेत् सिद्धं शङ्कुली फेनिका गुरा ॥ २२३ ॥

भा० फिर उस लोई को वेले जिसमें मंडसा कृति हो जावे ॥ उसके अनन्तर उस
को घृत में पकावे उसके पुड़न खिल जाते हैं ॥ २२२ ॥ सुगन्ध चीनी को उसके ऊपर
रवुरकावे ॥ सिद्ध यह फेनि नाम मंडक के समान गुण में होती है ॥ २२२ ॥
उससे कुछ हल की यह होती है यह विशेष कहा है ॥

(क) वेले । वेल्हन । रोटी । लोई । अनन्तर सोहारी । घृत के सहित मैदे की ।
लोई बनाकर वेले ॥ उसको घृत में पकावे वह सिद्ध हुई फेनि के समान गुण
में होती है ॥ २२३ ॥

॥ अथ सेवीका मोदक सेवका लाडू ।

घृताढ्यया समितया कृत्वा सूत्राणि तानि तु ॥ निपुणो
भर्जयेत् राज्ये स्वण्ड पाकेन योजयेत् ॥ २२४ ॥ युक्ते
न मोदकान् कुर्व्यात् ते गुरौ मण्ड का यथा ॥

अथ मुक्ता मोदका मोति लाडू ।

भा० अनन्तर सेवका लाडू । घृत के सहित मैदा से सूत्र करके उनको ॥ निपुण
घृत में पकावे अनन्तर खोड़ के पाक में उसको डाले ॥ २२४ ॥ उनके लड्डू करे वे
गुण में मंडक के समान होते हैं ॥ अनन्तर मोती चूर के लाडू ॥

मुद्गानां धूमसी सम्यक् घोलेये निर्मलाऽम्बुना ॥ कटाह
 स्य हृते रुद्धं भर्भरं स्थापयेत्ततः ॥ २२५ ॥ धूमसीनु
 द्रवीभूतां प्रक्षिपेत् भर्भरोपरि ॥ षपन्ति विन्द व-
 स्तस्मात् तान् सुपक्वान् समुद्धरेत् ॥ २२६ ॥
 सिता पाकेन संयोज्य कुर्याद्दस्तेन मोदकान् ॥
 भर्भरं भर्भरा इति लोके ।

भा० मूङ्गके आटेको निर्मल जलमें घोले ॥ कटाई के किनारे परभारे को र
 रखे ॥ २२५ ॥ अनन्तर उस घोले हुवे मूङ्गके आटेको भारेके ऊपर डाले ॥ उ
 से बून्द गिरते हैं उन पके हुवोंको निकाल लेवे ॥ २२६ ॥ चीनीके पाकमें मि
 लाकर हाथसे लड्डु बनावे ॥ भारा) इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥

लघु ग्रीही त्रिदोषघ्नः स्वादुः शीतो रुचिप्रदः ॥ चक्षु
 यो ज्वरहृद्ध्यल्पपर्णो मुद्गमोदकः ॥ २२७ ॥

अथ सेवनमोदकः । सेवकाललुञ्जा ।

एवमेव प्रकारेण कार्याः सेवनमोदकाः ॥ ते व-
 ल्या लघवः शीता किञ्चिद्वातकारस्तथा ॥ २२८ ॥

विद्युम्भिनो ज्वरघ्नाश्च पित्तरक्तकफापहाः ॥

[दुग्धकूपिका ॥]

भा० यह हलका काविज त्रिदोषनाशक मधुर शीतल रुचिको करने वाला ॥
 नेत्रके हित ज्वर नाशक वलकारी तर्पण मूङ्गके लड्डु होते हैं ॥ २२७ ॥

अनन्तर सेवका लड्डु । ऐसे ही सेवके भी लड्डु बनावे ॥ वेवलके हित हल
 के शीतल कुछ एक बीतको करने वाले हैं ॥ २२८ ॥

और विद्युम्भ करने वाले ज्वर नाशक तथा रक्त पित्त कफ इसका नाशक है ॥
 अनन्तर दुग्धकूपिका ॥

तरुडुल चूर्णा विमिश्रित नष्ट क्षीरणासान्द्र पिष्टेन ॥ दृढ
 कूपिका विदध्या ताञ्च पचे तर्पिया सम्यक् ॥ २२६ ॥
 अथ तां कोरितमध्वा घनपयसा पूर्णा गर्माञ्च ॥ शङ्ख
 कमुद्रित वदनां सर्पियि सपक्व वदनाञ्च ॥ २३० ॥ अथ
 पारादुरवण्ड याके स्नाययेत् कर्पूर वासिते कुशलः ॥ अ
 थ दुग्ध कूपी सा बल्या पित्रा नित्ता पद्मा ॥ २३१ ॥ वृद्ध्या
 शीता गुर्वी शुक्र करी बृंहणी रुच्या ॥ विदधाति काय पु
 ष्ठिं हृष्टिं दूर प्रसारिणी सुचिरम् ॥ २३२ ॥

भा० चावल के आटे को गिला के फटे दूध को लेम सा करके उससे दृढ कूपी करे
 उसको घी में पकावे ॥ २२६ ॥ अनन्तर उसको बीच में से खाली करके उसमें खोथा
 भरे ॥ और उसका मुख चावल के आटे से बन्द करके घी में पकावे ॥ २३० ॥ अन
 न्तर सुफेद स्वांड के पाक में डुबोवे कर्पूर के वासित में कुशल ॥ अनन्तर दुग्ध कू
 पी वो बल के हित पित्र वान की नाशक है ॥ २३१ ॥ शुक्र को करने वाली शीतल भा
 री शुक्र को करने वाली युयु रुचिको करने वाली है ॥ और शरीर की पुष्टि को
 करना है तथाव हुत काल तक अच्छी दृष्टी को करती है ॥ २३२ ॥

कुण्डलिनी जलेवा । नूतनं घट मानीय तस्यान्तः कु
 णलोजनः ॥ प्रस्थाञ्छै परि मारोत दध्नाऽम्लेन प्रलेपये
 त् ॥ २३३ ॥ द्वि प्रस्था समितां तत्र दध्यम्लं प्रस्थसमि
 तम् ॥ घृत मर्द्ध सरावञ्च घोलयित्वा घृते क्षिपेत् ॥
 २३४ ॥ आतपे स्थापयेत्तावद्या वद्याति दत्तम् ॥
 ततस्तत्प्रक्षिपेत्पात्रे सच्छिदे भाजने तु ततः ॥ २३५ ॥
 परिभ्राम्य परिभ्राम्य तत्तन्मन्त्रे घृते क्षिपेत् ॥

पुनः पुनस्तदा वृत्त्या विदध्या त्मराडला कृतिम् ॥ २३६ ॥
 तां सुपक्वां घृताद्वीत्वा सिता पाके तनु द्रवे ॥ कर्पूरादि
 सुगन्धञ्च स्नापयित्वा हरेत्ततः ॥ २३७ ॥ एवा कुण्ड
 लिनी नाम्ना पुष्टि कान्ति बल प्रदा ॥ धातु वृद्धिकरी
 वृत्त्या रुच्या च क्षिप्र तर्पणी ॥ २३८ ॥

अथ पश्चात्परिवेद्याणि । सिरवरिणी ।

भा० अनन्तर जले वी । कुडाल मनुष्य नया घड़ा लाकर उसके भीतर ॥ आध
 सेर खट्टी दही से लेप करावे ॥ २३३ ॥ उसमें दोसेर मैदा और एक सेर खट्टा
 दही ॥ पाव भर घृत इन को घोल कर घृत में डाले ॥ २३४ ॥ इसको धूप में र-
 खवे तब तक जब तक खट्टा घृत इसमें न आवे ॥ अनन्तर छेक वाले बरतन में
 उसको डालें ॥ २३५ ॥ उसको घुमा २ कर जलते हुवे घी में डाले ॥ फिर २ उ-
 सकी फेर से मंडला कृति करे ॥ २३६ ॥ उस पकी हुई को घृत से निकाल कर ली
 नी के पतले पाक में ॥ कपूर आदि से युक्त में डाल कर निकाल लेवे ॥ २३७ ॥
 यह जले वी पुष्टि कान्ति बल को देने वाली है ॥ और धातु को बढ़ाने वाली शुक्र को
 करने वाली रुचि को करने वाली नेत्र की तर्पण है ॥ २३८ ॥

अनन्तर पश्चात्परिवेद्यनि सिरवरिणी ।

आदौ माहिष मम्ल मम्बु रहितं दध्या ढकं शर्कराम् ॥
 शुभां प्रस्थ युगो न्मितां शुचि पदे किञ्चिच्च किञ्चित् ।
 क्षिपेत् ॥ २३९ ॥ दुग्धे नाद्धं घटेन मृगम यनवस्थः
 ल्यां दृढं स्नावयेत् ॥ एला बीज लवङ्गः चन्द्र मरिचै
 र्योग्यैश्च तद्योजयेत् ॥ २४० ॥ भीमेन प्रिय भोजनेन
 रचिता नाम्ना रसाला स्वयम् ॥ श्री कृष्णो न पुरा पु
 नः पुनरियं प्रीत्या समाखादिता ॥ २४१ ॥

भा० पहिले मैसंकी जल रहित चार सेर दही को सफेद दो सेर शर्करा के सहित सुफेद कपड़े पर थोड़ा रूढ़ाले ॥ २३४ ॥ अर्द्ध घट दुग्ध से नई मिट्टी की स्थाली में छत चावे ॥ इलायची लैंग चन्दन मरिच और उचित उसने डाले ॥ अच्छे भोजन करने वाले भीम सेन ने रसाला नाम स्वयं बनाई है ॥ पहिले श्री कृष्ण ने बार बार इसको प्रीति से आस्वादन किया था ॥ २३५ ॥

यथा येन वसन्त वर्जित दिने संसेव्यते नित्यशः ॥ तस्य स्यादति वीर्यं वृद्धि रनिशं सर्वेन्द्रियाणां बलम् ॥ २४२ ॥ ग्रीष्मे तथा शरदिये रविशोयिताङ्गः ये च प्रमत्त वनिता सुरताति रिवन्ताः ॥ ये चापि मार्ग परि सर्पणा शीर्षा गात्रा स्तेषां मितं वपुषि पोषणमाशु कुर्यात् ॥ २४३ ॥ रसाला शुक्रलावल्या रोचिनी वात पित्र जित् ॥ दीपिनी वृंहणी स्निग्धामधुरा शिथिरा सरा ॥ २४४ ॥ रक्त पित्तं तृया दाह प्रति श्यायं विनाशयेत् ॥ शर्करा रोदक सरवत ॥

भा० इसको जो वसन्त से रहित दिनों में नित्य सेवन करने है ॥ उसके अति वीर्य वृद्धि और सब इन्द्रियों का बल होता है ॥ २४२ ॥ ग्रीष्म में तथा शरद में जो सूर्य से अधिक अंग वाले हैं और जो प्रमत्त स्त्री के मैथुन से अति स्थिग् ॥ तथा जो मार्ग चलने से शीर्षा गात्र है उनके शरीर में येह पोषण शीघ्र करना है ॥ २४३ ॥ रसाला शुक्र को करने वाली बल के हित रोचन वात पित्त को जीतने वाली है ॥ और दीपन पुष्टिकर्मी मधुर त्रितल सर है ॥ २४४ ॥ रक्त पित्त तृया दाह प्रति श्याय इनको नाश करती है ॥

अनन्तर सरवत । ॥

जलेन शीतले नैव धोलिता शुभ्र शर्करा ॥ यला लवङ्ग कर्पूर मरिचैश्च समन्विता ॥ २४५ ॥

शर्करोदकनाम्ना तत्प्रसिद्धं विदुषां मुखे ॥ शर्करो-
दकमारव्यातं शुक्लं शिशिरं सरम् ॥ २४६ ॥ बल्यं
रुच्यं लघु स्वादु वातपित्तप्रणाशनम् ॥ मूच्छी क-
दि तृषा दाहज्वरपान्निकरमपरम् ॥ २४७ ॥

भा० शीतलजल से घोली हुई चुकेट चीनी ॥ और इलायचीलवङ्ग कपूर म-
रिच इनसे युक्त ॥ २४५ ॥ शर्करोदकनाम से प्रसिद्ध पड़ितों के मुख में है ॥
शर्करोदक प्रसिद्ध है शुक्ल को करने वाला शीतल सर है ॥ २४६ ॥ और बल के
हित रुचि करने वाला हलका मधुर वात पित्त का नाशक है ॥ और मूच्छी
वमन तथा दाह ज्वर की शान्ति को परम करने वाला है ॥ २४७ ॥

अथ प्रपानकं पन्ना । तत्र आम्रफलप्रपानकम्
आम्रमामं जले स्विन्नं मर्दितं दृढपाणिना ॥ सिता-
शीताम्बुसंयुक्तं कपूरमरिचान्वितम् ॥ २४८ ॥ प्रपा-
नकमिदं श्रेष्ठं भीमसेनेन निर्मितम् ॥ सद्यो रुचि-
करं बल्यं शीघ्रमिन्द्रियतर्पणम् ॥ २४९ ॥

भा० अनन्तर पन्ना । उसमें आम का पन्ना । कच्चे आम को पानी में उवाल के
हाथ से खूब मले ॥ चीनी और शीतल जल से युक्त और कपूर मरिच के साथ ।
॥ २४८ ॥ यह प्रपानक श्रेष्ठ भीमसेन का बनाया हुआ है ॥ तत्काल रुचि
को करने वाला बल के हित शीघ्र इन्द्रिय का तर्पण है ॥ २४९ ॥

अथा म्लि का फलपानकम् । अम्लिकायाः
फलं पक्वं मर्दितं वारिणा दृढम् ॥ शर्करा मरिचै-
र्मिश्रं लवङ्गेन्दुसुवासितम् ॥ २५० ॥

भा० अनन्तर इमली का पन्ना ॥ पकी इमली को पानी के साथ खूब मले ॥ श-
र्करा और मरिच से युक्त और लवङ्ग कपूर से सुवासित ॥ २५० ॥

अश्लि का फल सम्भूतं पानकं वात नाशनम् ॥ पित्त
 प्लेघ्न करं किञ्चित् सुरुच्यं वीन्ह बोधनम् ॥ २५१
 निम्बूक फल पानकम् । भागे कं निम्बुजं तोयं यद्
 भागं शर्करा रोदकम् ॥ लवङ्ग मरिचैर्मिश्रं पानं पानक
 युतमम् ॥ २५२ ॥ निम्बू फल भवं पान मन्थनं वात ना
 शनम् ॥ वह्नि दीप्ति करं रुच्यं समस्ता हार याचकम् ॥
 २५३ ॥ धान्याक पानकं ॥ शिलार्या साधु सम्युष्टं
 धान्यकं दस्त गालितम् ॥ शर्करोदक संयुक्तं कर्पूर
 दिसु संरक्तम् ॥ २५४ ॥ नूतने मृगमये पात्रे स्थितं ।
 पित्त हरं परम् ॥ अथ काञ्जी ॥

भा० यह हमली का पन्ना वात का नाशक है ॥ और पित्त कफ को करने वाला
 किञ्चित् तथा रुचि कर दीपन है ॥ २५१ ॥ नीम्बू का पन्ना ॥ एक भाग नीम्बू
 का रस छः भाग सरबत ॥ लोह मिरच से युक्त पन्ना पत्रा में भ्रेय है ॥ २५२
 नीम्बू का पन्ना बहुत खट्टा वात नाशक ॥ अग्नि दीपन रुचि कर संपूर्ण आहार
 को पकाने वाला है ॥ २५३ ॥ धनिया का पन्ना ॥ सिल पर अच्छी तरह पीसा हुआ
 धनिया कपड़ कान करके ॥ सर्बत के सहित कपूर आदि से युक्त ॥ २५४ ॥ न
 वीन मिट्टी के बरतन में रखकर डुई परम पित्त का नाशक है ॥ अनन्त काञ्जी

काञ्जी विधि बटका वसरे लिखितः । काञ्जी कं
 रोचनं रुच्यं पाचनं वह्नि दीपनम् ॥ शूल जीर्ण विव
 न्धघ्नं कोष्ठ शुद्धि करं परम् ॥ २५५ ॥ न भवेत्त का
 ङ्जिकं यत्र तत्र कालिः प्रदीयते ॥ अथ जारी ॥
 आम मात्र फलं पित्तं राजिका लवणं न्वितम् ॥

भा० कांजी की विधि वटक के अवसर में कही है ॥ कांजी रोचन रुचि को करने वाली पाचन अग्नि दीपन है ॥ और झूल जीर्ण विबन्ध का नाशक तथा परमा कोष्ठ शुद्धि को करने वाला है ॥ २५५॥ जहां पर कांजी नहीं वहां पर कालिः दी जाती है। अनन्तर जारी। कच्चे आम के फल को पीस कर राई और लवण से युक्त ॥-

भृष्ट हिङ्गु युतं पूतं घोलितं जालि रुच्यते ॥ २५६॥

जालि हरति जिह्वायाः कुरण्ठत्वं कण्ठ शोधनी ॥ म-

न्द मन्दन्तु पीतासा रोचिनी बन्धि बोधिनी ॥ २५७॥

अथ तक्रं। तूय्यां श्रेण जलेन संयुत मति स्थूलं सदम्हं

दधि ॥ प्रायो माहिय मन्बुकेन विमले मुद्गाजने मा

लयेत् ॥ २५८॥ भृष्टं हिङ्गु च जीर कञ्च लवणं राजीञ्च

किञ्चि न्मिताम् ॥ पिष्टान्नात्र विमिश्रये द्धयति तत्र

क्रं न कस्य प्रियम् ॥ २५९॥ तक्रं रुचि कारं बन्धि

दीपनं पाचनं परम् ॥ उदरे ये गदासेयां नाशनं।

तृप्ति कारकम् ॥ २६०॥ अथ दुग्धम् ॥

भा० भृष्टी हीङ्गु के सहित घोली हुई को जालि कहते हैं ॥ २५६॥ जीभ की कुं-

ठता को जालि नाश करती है और कंठ की शोधन है ॥ मन्द मन्द पी हुई वोह रोच

न अग्नि को जगाने वाली है ॥ २५७॥ अनन्तर मद्य ॥ तौयाई जल से युक्त अति

स्थूल अच्छा खट्टा दही ॥ प्रायः भैंस का जल से विमल मिट्टी के बरतन में रखवे।

॥ २५८॥ भूना हुआ हीङ्गु जीरा लवण राई भी कुछ युक्त ॥ पीसके उसमें मिलावे।

वोह मठा किसके प्रिय नहीं होता ॥ २५९॥ मठा रुचि कर दीपन पाचन ॥ और

उदर के जो रोग है उनका नाशक तृप्ति कारक है ॥ २६०॥ अनन्तर दुग्ध ॥

विदाहि न्यन्न पानानि यानि भुङ्क्ते हि माचतः ॥ तद्धि

दाह प्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ॥ २६१॥

दुग्धस्या परे गुणा उक्ता एव दुग्ध वर्गे ॥ अथ शक्तवः

धान्यानि भ्रातृ भृष्टानि यन्त्र पिष्टानि शक्तवः ॥

तत्र यव शक्तवः । यवजाः शक्तवः शीता दीपना लघु
वः सराः ॥ कफ पित्र हरा रूक्षा लेखनाश्च प्रकीर्ति
ताः ॥ २६२ ॥ ते पीता बलदा वृष्ट्या हृंहणा भेदनास्तथा

॥ तर्पणामधुरा रुच्याः परिणामे वला पहाः ॥ २६३ ॥

कफ पित्र अम शुद्ध दृष्टि नेत्रा मया पहाः ॥ प्रणाला
घर्मदाहाह्य व्याया मार्त शरी रिरागम् ॥ २६४ ॥

भा० मनुष्यजिन विवाहि अन्न पानों को भोजन करता है ॥ उसके विवाह प्रशा
न्ति के अर्थ भोजन के अन्न में दुग्ध पीवे ॥ २६१ ॥ दुग्ध वर्ग में दुग्ध के और गुण
कहे हैं । अनन्तर सत् । भांड में धान्य भूने चक्की से पीसे हुवे सत् है ॥ उसमें ज
वके सत् ॥ जवका सत् शीतल दीपन हलका सर ॥ कफ पित्र का नात्राक रूखा
लेखन कहा है ॥ २६२ ॥ वे पीये हुवे बल को देने वाले शुक्र कारक पुष्ट भेदन
॥ तर्पणामधुर रुचिको करने वाले और परिणाम में बल के नात्राक है ॥ २६३
कफ पित्र अम शुद्धात्मा दृष्टि नेत्र रोग इनको नात्राक है ॥ घर्म दाहाह्य कसर
न से पीड़ित शरीर वालो को हित है ॥ २६४ ॥

चराक यव शक्तवः । निस्तुये श्वरा कै भृष्टे स्तुय्याः ।

शैश्व यवैः कृताः ॥ शक्तवः शर्करा सर्पि र्युक्ता ग्रीष्मे
ति पूजिता ॥ २६५ ॥ शालि शक्तवः ॥

शक्तवः शालि सम्भूता बन्दिदा लघवो हिमाः ॥ स-

धुरा ग्राहिणी रुच्या पथ्या श्व बल शुक्र दाः ॥ २६६

भा० अनन्तर चने जव का सत् । छिल के से रहित चनों को भून कर और
चौधार्द जव से बनाया हुवा ॥ सत् शर्करा घृत से युक्त ग्रीष्म में अति पूजित

हे ॥ २६५ ॥ अनन्तर धानका सन्न ॥ धानका सन्न अग्नि दीपन हलका शी
तल ॥ मधुर काविज रुचि करने वाला पथ्य बल शुक्र को देने वाला है ॥ २६६ ॥

न भुक्त्वा न रदे ष्छित्वा न निशायां नवा बहून् ॥ न
जलान्तरि तानू तद्धि शक्नु नाद्या न्न केवलान् ॥

२६७ ॥ पृथक् पानं पुनर्दानं आमिषं पयसा निशि
॥ दन्तच्छेदनं मुख्या ज्वसप्त शक्नु यु वर्जयेत् ॥ २६८ ॥

अथ बहुरी । यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति
स्त्रियां ॥ धानाः स्युर्दुर्जरा रूक्षा स्तृप् प्रदा गुरवश्च ।

ताः ॥ २६९ ॥ तथा मेहकफच्छर्दिनाशिन्यः सम्प्र की
र्तिताः ॥ अथ लाजा ॥ येषां स्युस्तण्डुलास्तानि धा

न्यानि सतुषाणि च ॥ भृष्टानि स्फुटिता न्याहुर्ला
जा नीति मनीषिणः ॥ २७० ॥ लाजाः स्युर्मधुराः

शीता लघवो दीपनाश्च ते ॥

भा० न भोजन करके न दातों से काट कर न रात में न बहुत ॥ न जल से भनारि
त और उस सन्न को केवल न खावे ॥ २६७ ॥ अलग पान फिरसे देना नांस
जल रात दन्त छेदन और गरम येह सात सन्न में त्याग देवे ॥ २६८ ॥
अनन्तर बहुरी । वे छिल के के भूने जब स्त्री लिंग में धाना इस प्रकार कहा
है ॥ धाना दुर्जर रूखे न्या दाह को देने वाले भारी है ॥ २६९ ॥ तथा मेह क
फ वमन इनको नाश करने वाले कहे हैं ॥ अनन्तर खीला ॥ जिनके चाव
ल होते हैं ॥ वोह छिलके के सहित धान ॥ भुने — हुर्वो को विद्वानों ने ला
जा इस प्रकार कहा है ॥ २७० ॥ खीला मधुर शीतल हलकी दीपन होत है ॥

स्वल्प मूत्र मला रूक्षा बल्या पित्त कफ च्छिदः ॥

२७१ ॥ कर्षी तीसार दाहास मेह मेद स्तृवा पहाः ॥

अथ चिडवा । शालयः सतुषा आर्द्रा भृष्टा अस्फुटि ता
 अतत ॥ कुट्टिताश्चि पिटाः प्रोक्तास्ते स्मृताः पृथुका
 अपि ॥ २७२ ॥ पृथुका गुरघो वात नाशनाः फ्लेक्म
 ला अपि ॥ सक्षीरा चंहराण चृष्ट्या बल्या भिन्न म-
 ला अतते ॥ २७३ ॥ अथ होरहा ॥

अर्द्ध पक्केः शमी धान्ये स्तुगा भृष्टे अ होलकः ॥ हो
 लकोऽल्पा निलो मेदः कफ दोष त्वया पहः ॥ २७४
 भवे द्यो होलको यस्य सच तत्तद् गुराणो भवेत् ॥

भा० वे अल्पमल मूत्र को करने वाले ग्लवे बलको करने वाले हैं और मित्र क
 फ को काटने वाले हैं ॥ २७१ ॥ तथा वमन अतीसार बाहर रक्त में ह मेद तृया इ-
 नका नाशक है ॥ अनन्तर चिडवा ॥ छिलके वाले धान भी लें और भूने हुवे
 अस्फुटित ॥ कूटे हुवे चिपिट कहे हैं वे पृथुक भी कहें हैं ॥ २७२ ॥ चिडवा भारी
 वात नाशक भी है ॥ और दधके सहित पुष्ट भुक्त को करने वाले बल करने वाले ॥
 मल को अलग करने वाले हैं ॥ २७३ ॥ अनन्तर होरहा ॥ आधे पके हुवे
 शिमी धान्य तृण से भूने हुवों को होलक कहें हैं ॥ होलक अल्प वात मद-
 कफ विदोष इनके नाशक है ॥ २७४ ॥ जिसका जो दोला होता है वोह उ-
 सके गुण वाला होता है ॥

अथ ऊची । अज्ज रे त्वर्द्ध पक्काया यव गो धूमयो
 मेवेत् ॥ तृणा नलेन संभृष्टा बुधै रुचीति सा स्मृता ॥
 २७५ ॥ उभिया इति लोके ॥ ऊची कफ प्रदा बल्या
 लघ्वी पिप्पला निला पह ॥ अथ घुघुनी ॥

अर्द्धस्विन्नास्तु गीधूमा अन्येऽपि चरा का दयः ॥ कु
 रमाया इति कथ्यन्ते शब्द शास्त्रे यु पणिडनैः ॥ २७६ ॥

कुल्माया गुर वो रूक्षा वातला भिन्न वर्चसः ॥

[अथ तिल कुट]

भा० अनन्तर ऊची । जब गेहूं की जो अध पकी बालें होती हैं ॥ तृणाग्नि से सूनी हुई उसको विद्वानों ने ऊची ऐसा कहा है ॥ २७५ ॥ लोक में उमि या कहने हैं ॥ ऊची कफ को करने वाली बलके हित हलकी पित्त वात की नाशक है ॥ अनन्तर घुघुनी ॥ आधे पकाये हुवे गेहूं और चने आदि क ॥ व्याकराण के पंडितों ने इसको कुल्माय ऐसा कहा है ॥ २७६ ॥ कुलमा य भारी रूखे वात को करने वाले मल को अलग करने वाले हैं ॥ अनन्तर तिल कुट ॥

पललनु समारव्यान्तं सैक्ष वनिल पिष्टकम् ॥ पललं

मल कट्टु व्यं वातघ्नं कफ पित्त हन्त ॥ २७७ ॥ टुंहरा

ञ्च गुरु स्निग्धं मूत्राधिक्य निवर्तकम् ॥ अथ पीनाः

निल किट्टन्तु पित्याकं तथा निल खलिः स्मृता ॥

पिण्याको लेखनी रूक्षो विष्टम्भी दृष्टि दूयराः ॥ २७८

अथ चाउर । तराडु लो मेह जन्तुघ्नः स नव स्वनिदु

र्जरः ॥

इति श्री भावप्रकाशे कृतान्न वर्गः

भा० गुडके सहित तिल की पिष्टी को पलल कहा है ॥ पलल मल कारी शुक्र को करने वाला वात नाशक कफ पित्त को करने वाला है ॥ २७७ ॥ पुष्ट भारी चिकना और मूत्राधिक्य को दूर करने वाला है ॥ अनन्तर खली ॥ तिल किट्ट को पित्याक तथा तिल खलि कही है ॥ खली लेखन रूक्ष विष्ट भी दृष्टि दूय गान्ती है ॥ २७८ ॥ चावल प्रमेह कृमि का नाशक और नया अति दुर्जर हो ता है ॥

इति भावप्रकाशे कृतान्न वर्गः ॥

अथ वारिवर्गः

तत्र पानीयनामानि गुराणां श्रुं ।

पानीयं सलिलं नीरं कीलालज्जलमम्बुच ॥ आपो
वार्त्वारिकन्तोयं पयः पाथस्तथोदकम् ॥ १ ॥ जीवनं
वनमम्भोऽर्णोऽमृतं घनरसोऽपि च ॥

भा० अनन्तर जल वर्गः ॥ उसमें जल के नाम और गुराणां ॥ पानीयसलिलनीर की लाल जल अम्बु ॥ आप वार वारिकन्तोय पय पाथ तथा उदक ॥ १ ॥ जीवन अम्भ अर्ण अमृत घन रस यह पानी के नाम हैं ॥

पानीयं श्रमनाशकं क्रूरमहरमूर्च्छां पिपासां पथम् ॥ तन्द्रा
कुर्विविबन्धं हृद्भूलकरं निद्राहरं तर्पणम् ॥ २ ॥ हृद्यं गु
प्तरसं ह्यजीर्णशमकं नित्यं हितं शीतलम् ॥ लघ्वच्छं
स्सकारणं तु निगते पीयूषवज्जीविनम् ॥ ३ ॥ तस्य भेदाः
पानीयं मुनिभिः प्रोक्तं दिव्यं भौममिति द्विधा ॥ दिव्यं च
तु विधं प्रैक्तं धाराजं करका भवम् ॥ ४ ॥ तौ यार च
तथा हैमन्तेषु धारंगुराणां धिकम् ॥

तत्र धास्य लक्षणां गुराणां श्रुं ।

भा० जल श्रम नाशक क्रूर महर मूर्च्छा पिपासा का नाशक ॥ तन्द्रा वमन वि
बन्ध इनका नाशक दल कर निद्रा नाशक तर्पण ॥ २ ॥ हृद्यं गुप्तरस अजीर्ण
शमक नित्य हित शीतल होता है ॥ दलका लघ्वच्छरस कारणा अमृत कैसनान जी
वन कहते हैं ॥ ३ ॥ उसके भेद । मुनियों ने जल दो प्रकार का कहा है दिव्य भौम

म ॥ दिव्य चार प्रकार का कहा है धारका ओलों का ॥ ४ ॥ तुवार का तथा है मन्त में धार का गुण में अधिक होता है ॥

उमें धार के लक्षण और गुण ।

धाराभिः पतितं तोयं गृहीतं स्फीतवाससा ॥ शिला
यां वासुधायां वा धौतायां पतितञ्च तत् ॥ ५ ॥ सौवर्णे
राजते ताम्रे स्फाटिके काचनिर्मिते ॥ भाजने मृगमये
वापि स्थापितं धारमुच्यते ॥ ६ ॥ धारं नीरं त्रिदोषम
मनिर्देश्य रसं लघु ॥

भा० यास से गिरा हुआ साफ कपड़े में लिया हुआ ॥ शिला पर सुधापर धौ
तर पर गिरा हुआ योह ॥ ५ ॥ सोने के चान्दी के ताम्बे के स्फटिक के काच के व-
ने हुवे वरतन में ॥ अथवा मिट्टी के में रखवा हुआ जल धार कहा है ॥ ६ ॥
धार जल त्रिदोष नाशक अनिर्देश्य रस हलका ॥

सौम्यं रसायनं बल्यं तर्यणं ह्लादि जीव नमू ॥ ७ ॥ पा
चनं मति कृन्मूर्च्छा तन्द्रा दाह श्रम क्रुमान् ॥ तृ-
ष्णां हरति नात्यर्थं विशेषा त्वा रुचि स्थितम् ॥

अथ धार जलस्य भेदाः

धार जलञ्च द्विविधं गङ्गा सासुद्र भेदतः ॥

तत्र गङ्गा सासुद्र योर्लक्षणं गुणाश्च ।

आकाश गङ्गा सम्यन्धि जल मादाय दिग्गजाः ॥ मे

घोरन्तरिता वृष्टिं कुर्वन्तीति वचः सताम् ॥ ८ ॥

गङ्गा मातृव युजे मामि प्रायो वर्धति वारिदः ॥ सर्वं या

तञ्जलेन्द्रेयं तर्धैव चरके वचः ॥ ९ ॥

भा० सोम्य रसायन वल के हित नर्पराह्लादि जीवन ॥७॥ पावन मति को करने वाला मूर्च्छा तन्त्रा दाह ध्रुम कुम ॥ तथा इनको नाश करता है न अत्यन्त विशेष करके प्रा दृढ काल में स्थित है ॥ अनन्तर धारा जनका भव धारा जल दो प्रकार का होता है गंगा और समुद्र से ॥ उसमें गंगा सामुद्रों का लक्षणा ॥ और गुरा कहते हैं ॥ विगज आकाश गंगा सम्वन्धि जल ले कर ॥ मेघों से अन्तरित दृष्टि को करते हैं इस प्रकार सत पुरुषों का वचन है ॥ ८ ॥ मेघ गंगा जल का प्रायः आश्विन के महीने में वर साते है ॥ सर्व या वोह जल देने योग्य है वैसे ही चरक का वचन है ॥ ८॥

स्था पितं हेमजे पात्रे राजते मुरामये ऽ पि वा ॥ शा
ल्यन्नं येन संसिक्तं भवं दक्षे दि वर्णवत् ॥ १० ॥ तद्वा
गं सर्वदोषघ्नं ज्ञेयं सामुद्रमन्यथा ॥ तद्गु सक्षारलव
णं शुक्र दृष्टि बला ग्रहम् ॥ ११ ॥ विश्वन्च दोषलन्ती
क्ष्णं सर्वकर्म समाहितम् ॥ सामुद्रत्वा शिवने भासि
गुरोर्गङ्गा वदादिशेत् ॥ १२ ॥ यतो ऽगस्त्यस्य दिव्य
र्ये रुदयात्सकलं जलम् ॥ निर्मलं निर्वियं स्वादु
शुक्लं न्याददोषलम् ॥ १३ ॥ अत एवाह ॥
प्लुत्कार विषवा तेन नागानां ओमचारिणाम् ॥ घर्षा
सुसवियं तोयं दिव्यमप्याश्विनं विना ॥ १४ ॥
अथा नार्त चारणा हुन्गाः ।

भा० सोने का या चान्दी के अथवा मिट्टी के पात्र में रखे हुवे में ॥ घान भिजोये हुवे क्लृप्त रहित वर्ण धाता है वि ॥ १० ॥ वोह गंगा जल सब दोषों का नाशक जानना चाहिये इससे विषरित सामुद्र ॥ वोह भार के मन्त्रित शुक्र दृष्टि वल इनका नाशक है ॥ ११ ॥ दुर्गन्धियुक्त दोष को करने वाला लीला भव कर्म समाहित है और सामुद्र आश्विन के महीने में गुरा में गंगा जल के ममान होता है ॥ १२ ॥

क्योंकि अगस्त ऋषि के उदय से संपूर्ण जल ॥ निर्मल और निर्विष मधुर शुद्ध
को करने वाला अदोष ल है ॥१३॥ इसी वास्ते कहा है ॥ व्योमचारि सापों के
फूतकार विष दातसे ॥ वर्षा में सविष जलदिव्य भी आप्तिवन के बिना नहीं होता
है ॥१४॥ अनन्तर वे रुत के जल के गुण ॥

अनार्तव प्रमुञ्चन्ति वारि वारि धरास्तु सत् ॥ तत् त्रि
दोषाय सर्वेषां देहिनां परि कीर्त्ति तम् ॥ १५॥ अना
र्तवस्यो यदि मास चतुष्टय विषयम् ॥

अथ करका जलस्य लक्षणां गुणां च ।

दिव्य वाय्वग्नि संयोगात् संहताः स्वात्पितृन्ति याः ॥

यावारा खण्ड वच्चा पस्ताः कारि कपोऽमृतो यमाः ॥१६॥

करका जञ्जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थिरम् ॥ दारु
रां शीतलं सान्द्रं पित्त हृत्कफ वात हृत् ॥ १७॥

तैयार लक्षणां गुणां च ।

भा० ये रुत का जल मेघ जो छोड़ते हैं ॥ वोह सब देहि यों के विदोष
के अर्थ कहा है ॥ १५॥ वे रुत का अर्थात् यौयादि मास चतुष्टय विषय है ॥ अन
तर ओलों के जल का लक्षणा और गुण । अन्त रिक्ष वायु अग्नि के संयोग से स
ंहत पथ्यर के दुकड़े के समान जल आकाश से जो गिरते हैं ॥ वोह ओले अमृत के
समान होते हैं ॥ १६॥ ओलों का पानी रूखा विशद भारी स्थिर है ॥ दारु रा शीत
ल सान्द्र पित्त नाशक कफ वात को करने वाला है ॥ १७॥ तैयार अर्थात् पाला
का लक्षणा और गुण ।

अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निरा पस्तदुद्भवाः ॥ धूमाव

यदनिर्मुक्ता स्तुषां सरव्यास्तुताः स्मृताः ॥ १८॥

भा० नदी से लेकर समुद्र पर्यन्त अग्नि होती है उससे उत्पन्न धू मांश रहित
॥ वोह जल तुयार नान कहा है ॥ १८॥

(क) अपिनद्याः समुद्रान्ते वह्निर्नदी मारुभ्य समुद्र
पर्यन्ते वह्नि रास्ते तदुद्भवाः । वह्निर्भवाधूमावयव
निर्मुक्ताः धूमांशरहिताः । आपस्तु यारख्याः । तुय इ
ति लोके । तुयार इति च ।

अपय्याः प्राणिनां प्रायः भूरुहाराण्यनुनाहिताः ॥ तु
याराम्बुहिर्मरूक्षं स्याद्वा तलमपित्तलम् ॥ १८ ॥

कफो रुस्तम्भ करणग्निमेहगण्डादि रोगानुत् ॥

अथ हि मज्जलस्य लक्षणां गुणांश्च ।

भा० (क) नदीसे लेकर समुद्र पर्यन्त अग्नि होती है ॥ उस अग्नि से उत्पन्न
धूमांश रहित जल तुयार नाम है । तुय इस प्रकार लोकमें कहते हैं । और
तुयार इस प्रकार भी । यह प्रायः प्राणियों को अहित है और वृक्षादियों को
हित नहीं है ॥ तुयार जल शीतल रूखा होता है और वात को करने वाला तथा
पित्त को न करने वाला है ॥ १८ ॥ और कफ उरुस्तम्भ कंठ रोग अग्नि मान्द्य प्रमे
ह कण्डादि रोग का नाशक है ॥ अनन्तर वरफ के पानी का लक्षणा और गुणा ।

हिमवच्छिखरादिभ्यो द्रवीभूया भिवर्धति ॥ यत्तदेवं
हिमं हैमं जलमाहुर्मनीषिणः ॥ २० ॥ हिमाम्बू शीतं
पित्तघ्नं गुरुवातविवर्धनम् ॥ (क) हैमं जलम्
। कुहे सजलम् । अन्ये तु । और्वानलधूमे रितम-
म्बु समुद्रस्य यत् घनीभूतम् । पवनानीतमुदीच्या
न्तहिममिति कथ्यते सद्भिः । हिमं कुहे स इति लोके ।
हिमन्तु शीतलं रूक्षं दारुरां सूक्ष्ममित्यपि । न
तद्व्ययते वातं न च पित्तं न वा कफम् ॥ २१ ॥

भा० हिमालय के शिखरदियों से विघल के जो बर सता है वोह हिम है उसके जल को हमें जल मुनियों ने कहा है ॥२०॥ वर्षा का पानी शीतल पित्त का नाशक मारी वायु को बढ़ाने वाला है ॥ (क) चडवानल के धूम से प्रेरित समुद्र का जल जो गाढ़ा हुवा वायु से न्वाया हुवा उत्तर में उसको हिम रंसा विद्वानों ने कहा है । लोक में कुहेस रंसा कहेते हैं ॥ वर्षा शीतल रूखी दासरा सूक्ष्म भी है ॥ वोह न वात को न पित्त को न कफ को विगाड़ता है ॥२१॥

[भौमं जलं तद्देवाश्च ॥]

भौम मम्भो निगदितं प्रथमं त्रिविधं बुधैः ॥ जाङ्गल प
रमानूपन्ततः साधारणं क्रमात् ॥ २२ ॥

तथा लक्षणाणि गुराणाश्च ।

अल्योदकोऽल्यदृक्षश्च पित्तरक्तमयान्वितः ॥ जा
तव्या जाङ्गलो देशस्तत्र त्यज्जाङ्गलं जलम् ॥ २३ ॥

बहुन्तु बहु दृक्षश्च वातश्लेष्मा मयान्वितः ॥ देशोऽ
नूप इति ख्यात आनूपं तद्भवं जलम् ॥ २४ ॥

भा० सूतिका जल और उसके भेद ॥ पंडितोंने भूमि का जल तीन प्रकार का प्रथम कहा है ॥ क्रमसे जाङ्गल दूसरा आनूप और साधारण ॥२२॥ उनके लक्षणा और गुरा ॥ थोड़ा जल थोड़े दृक्ष पित्तरक्त रोग युक्त ॥ ऐसा देश जाङ्गल जानना चाहिये उसी का जाङ्गल जानना चाहिये ॥ २३॥ बहुत जल बहुत दृक्ष वातकफ रोगसे युक्त ॥ ऐसा अनूप देश प्रसिद्ध है वहाँ का जल आनूप है ॥ २४ ॥

मिश्रचिन्हस्तु यो देशः सहि साधारणः स्मृतः ॥ ज-
स्मिन्दंशे यदुदकं तत्तु साधारणं स्मृतम् ॥ २५ ॥ जा-
ङ्गलं सलिलं रूक्षं लवणं लघु पित्तनुत् ॥ बन्धिका
त्कफकृत्यस्थं विकारान्हरते बहन् ॥ २६ ॥

भा० और मिले हुंवे नक्षराग वान्ना जो देश है वोह साधारण कहा है ॥ उस देश में जो जल होता है वोह साधारण कहा है ॥ २५ ॥ जाङ्गल जल रूखा नमकीन ॥ हलका पित्र नाशक ॥ अग्नि को करने वाला कफ को करने वाला हृद्य और वह तसे विकारों को हरता है ॥ २६ ॥

अनूपं वार्य मिथ्यन्दि स्वादु स्निग्धं घनं गुरु ॥ वह्निकृ
त्कफ कृत् हृद्यं विकारान् हरते बहून् ॥ २७ ॥ सांधा
रणं तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु ॥ तर्पणं रोचनं नृषां
दाह दोष त्रय प्रणुत् ॥ २८ ॥

अथ भौमानामेव नादे यादीनां लक्षणानि गुराणाम् ॥

भा० अनूप जल अभिवन्दि होता है और मधुर चिकना घन भारी होता है ॥ अग्नि को करने वाला कफ कारी हृद्य तथा बहुत से रोगों को हरता है ॥ २७ ॥ साधारण जल मधुर दीपन शीतल हलका ॥ तर्पण रोचन होता है और नृषा दाह नीनों दोष इनका नाशक है ॥ २८ ॥ अनन्तर भूमि के हीनदियों के जलों का लक्षण और गुरा ॥

तत्र ना देयस्य लक्षणां गुराणाम् ॥

नद्या नदस्य वा नीरं नादेय मिति कीर्त्ति तम् ॥ नादेय
मुदकं रूक्षं वातलं लघु दीप नम् ॥ २९ ॥ अन मिथ्य
न्दि विशदं कटुकं कफ पित्र नुत् ॥ नद्यः शीघ्र बहाः
लक्ष्याः सर्वा याश्चामलो दकाः ॥ ३० ॥ गुर्यः शैवल
सञ्छन्ना मन्दगाः कलुषाश्च याः ॥

भा० नदका अथवा नदी का जो जल है उसको ना देय ऐसा कहा है ॥ नादेय जल रूखा वात को करने वाला हलका दीपन ॥ २९ ॥ अन मिथ्यन्दि विशद कटुक कफ पित्र का नाशक होता है ॥ शीघ्र बहने वाली और स्वेच्छ उदक वाली सब नदिया हलकी होती हैं ॥ ३० ॥ गेवार येदकी मन्द चलने वाली और जो काली हो-

तीहे वोह भारी है ॥

हिमवत्प्रभवाः पृथ्वी नद्योऽश्माह तपायसः ३१

॥ गङ्गा शत दुसरयू यमु नाद्या गुराणे तमाः ॥ सह्यः शैल
भवा नद्यो वेणा गोदा वरी मुरवाः ॥ ३२ ॥ कुर्वन्ति प्रायः
प्राः कुष्ठ मीय द्वात कक्का वहाः ॥ नदी सरस्तङ्गा गस्थे कू
प प्रस्वव रा दिजे ॥ ३३ ॥ उदके देश भेदेन गुराणान्
दोषाश्च लक्षयेत् ॥ अथौ द्विदस्य लक्षणां गुराणाम्
विदार्य भूमिं निम्नाय महत्या धारया स्रवेत् ॥ ततोऽ
व मौद्विदं नाम वदन्तीति महर्षयः ॥ ३४ ॥ औद्वि
दं वारि पित्त घ्नम विदाह्यति शीतलम् ॥ प्रीणनं म
धुरं वल्यमीय द्वात करं लघु ॥ ३५ ॥

नैर्भरस्य लक्षणां गुराणाम् ।

भा० हिमालय से निकली और पायाण से हत जल वाली नदिया हित है ॥ ३१
गङ्गा शत दुज सरयू यमुना आदि गुराण में उत्तम है ॥ सह्य पहाड़ से निकली वे
णा गोदा वरी गुराण है ॥ ३२ ॥ प्रायः कुष्ठ को करती है और कुष्ठ वात क
फ को भी करती है ॥ नदी सरोवर तालाव इनका और कुँवा भरना आदि के
॥ ३३ ॥ जलो में देश भेद से गुराण दोषों को जानें । अनन्तर औ द्विद कालक्ष
ण और गुराण । भूमि को दाल बां खन के बड़ी धार से जो जल गिरता है ॥ उस
जल को औद्विद ऐसा महर्षि योने कहा है ॥ ३४ ॥ औ द्विद जल ज पित्त नाश
क अविदाहि अति शीतल होता है ॥ और प्रीणन मधुर वल के हित थोड़ा
वात को करने वाला हलका होता है ॥ ३५ ॥

अनन्तर भरने के जलका लक्षणा और गुराण कहते हैं ॥

शैल शानु स्रवयारि प्रवाहे निर्भरो भरः ॥ सप्त प्रस्व
वराणां तत्रैत्यं नैर्भरं जलम् ॥ ३६ ॥

नैर्भरं रुचि कृत्नीरं कफघ्नं दीपनं लघु ॥ मधुरं कटुपा-
कञ्च वातं स्यादपि पित्त लम् ॥ ३७ ॥

अथ सारसरस्य लक्षणां गुणां च ।

नद्याः शैलादि रुद्धाया यत्र संश्रुत्य तिष्ठति ॥ तत्सरो
जलसञ्चनं तदम्भः सारसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥ सारसं
सलिलं वल्यं तृणां मधुरं लघुः ॥ रोच नन्तु वरं
रूक्षं वह्न मूत्र मलं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

अथ ताडा गस्य लक्षणां गुणां च ।

भा० पहाड़ी तराई से फिरने वाला जल प्रवाह से जो आता है उसको निर्भर
॥ और प्रसवरा भी कहते हैं । उसमें का पानी नैर्भर है ॥ ३८ ॥ भरने का पा-
नी रुचि को करने वाला कफ नाशक दीपन हलका ॥ मधुर पाक में कटु वात
तथा पित्त को करने वाला है ॥ ३७ ॥ अनन्तर सारस का लक्षणा और गुण ।
पहाड़ आदि से रुकी हुई नदी का जल जहाँ पर बड़े करछहरता है ॥ वीह आ-
च्छा दित सरो जल है उसका पानी सारस कहो है ॥ ३८ ॥ सारस जल बलदे-
हित तृषा नाशक मधुर हलका ॥ रोच नक सेला रूखा मल मूत्र को रो कने वा-
ला कहा है ॥ ३९ ॥ अनन्तर तालाव के जल का लक्षणा और गुण ।

प्रशस्त भूमि भागस्थो बहु संवत्सरो यितः ॥ जला शय-
स्तडागः स्यात्ताडागं तज्जलं स्मृतम् ॥ ४० ॥ ताडागमु-
दकं स्वादु कषायं कटु पाकि च ॥ वातलं वह्न विरा मूत्र
मसृक् पित्त कफा पहम् ॥ ४१ ॥

वाय्व लक्षणां गुणां च ।

भा० प्रशस्त भूमि भाग का बहुत बरस का पुराना जला शय ॥ तालाव होना
है उसका पानी ताड़ा कहा है ॥ ४० ॥ तालाव का पानी मधुर कसेला पाक में

कटु ॥ वातल मल मूत्र को वान्धने वाला ॥ और रक्त पित्त कफ इन का नाशक है ॥ ४१ ॥ अनन्तर वावडी का लक्षण और गुण ॥

पायारौ रित्ति का भिर्वा बद्धः कूपो बृहत्तरः ॥ ससो पा
ना भवे द्यापी तज्जलं वाप्य मुच्यते ॥ ४२ ॥ वाप्यं वारि
यदि क्षारं पित्त कृत् कफ वात हृत् ॥ तदेव मिष्टं क
फ कृत् वात पित्त हरं भवेत् ॥ ४३ ॥

अथ कोपस्य लक्षणं गुणाश्च ।

भूमौ खातोऽल्पविस्तारे गम्भीरे मण्डलाकृतिः ॥
बद्धोऽबद्धः स कूपं स्यात्तदम्भः कोप मुच्यते ॥ ४४ ॥
कोपं पयो यदि स्वादु विदोषघ्नं हितं लघु ॥ तत् क्षारं
कफ वातघ्नं दीपनं पित्त कृत्परम् ॥ ४५ ॥

भा० पथ्यर अथवा दूधसे बहुत बड़ा बनाया हुआ कूबा ॥ सीढियोंके सहित बौद्ध
वावडी है और उसके जलको वाप्य कहते हैं ॥ ४२ ॥ वावडी का पानी यदि खारी हो
वे तो बौद्ध पित्त करने वाला कफ वात का नाशक होता है ॥ घीही मीठा कफ करने वा-
ला वात पित्त का नाशक होता है ॥ ४३ ॥ अनन्तर कुवेके जलका लक्षण और गु-
ण । भूमि में छोड़ा चौड़ा गहरे रा गोल खोदा हुआ ॥ वन्धा वा वे वन्धा हुआ वो
कूप है वन्धा जल कोप कहा है ॥ ४४ ॥ कुवे का पानी यदि मधुर हो तो विदोष
नाशक हलका हित होता है ॥ और बोह खारी कफ वात का नाशक दीपन अ-
नन्त पित्त करने वाला है ॥ ४५ ॥

अथ चैज्जस्य लक्षणं गुणाश्च ।

शिला कीर्णं स्वयं श्वभ्रं नीलाज्जन समोदकम् ॥ ल-
ता वितान मं रुन्तं चैज्यामित्य मिधीयते ॥ ४६ ॥
अशमादि भिर बद्धं यत्त चैज्या मिति वा परे ॥

तत्रत्य मुदकं चोच्चं मुनिभिस्तदुदाहृतम् ॥ ४७ ॥

चोच्चं वह्निं करं नीरं रूक्षं कफ हरं लघु ॥ मधुरं पित्त
बुद्ध्यं पाचनं विशदं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

अथ पल्वलस्य लक्षणां गुणां च

अल्पं सरः पल्वलं स्याद्यत्र चन्द्र क्षिणे रचौ ॥ (क)

रचौ सूर्य चन्द्र क्षिणे कर्करा शिस्थे आवरणे मासि इति

यावत् ॥ ११ ॥ चन्द्र क्षिं मृग शिरस्तत्र गे मुख्य पाठः ।

न तिष्ठन्ति जलं किञ्चिन्नत्रत्यं वारि पाल्वलम् ॥ पा

ल्वलं वार्यभिष्यन्दि गुरु स्वादु विदोष कृत् ॥ ४९ ॥

अथ चिकिरस्य जलस्य लक्षणां गुणां च ।

भा० अनन्तर चोच्च का लक्षणा और गुणा । शिन्ना ओंसे आकीर्ण खुद गढ़ा
हुवा नीला सुर में के समान उदक ॥ लताओं के फैलाव से ढका हुआ चोच्च्य ।
ऐसा कहा है ॥ ४६ ॥ और भाचार्य पण्यर आदि से बन्धे हुवे को चोच्च्य
ऐसा कहते हैं ॥ उसमें के जल को चोच्च्य ऐसा मुनियों ने कहा है ॥ ४७ ॥

चोच्च्य जल अग्नि को करने वाला रूखा कफ नाशक हलका ॥ मधुर पित्त नाश
करुचि को करने वाला पाचन विशद कहा है ॥ ४८ ॥ अनन्तर पल्वल का
लक्षणा और गुणा ॥ आवरण मास में छोटी गढ़ई ॥ जो होती है उसमें पल्वल क
हते हैं ॥ (क) कर्क राशि स्थ सूर्य में अर्थात् आवरण मास में । चन्द्र क्षिं अ
र्थात् मृग शिर उसमें हुवा ये मुख्य पाठ है । नही रहे ताजल कुछ भावों
का जल पाल्वल है ॥ गढ़ई का जल अभिष्यन्दि भारी मधुर विदोष करने वा
ला है ॥ ४९ ॥ अनन्तर चिकिर के जल का लक्षणा और गुणा ॥

नद्यादि निकटे मूर्भिर्या भवे द्वालुकामयी ॥ उद्भाव्यते

ततो यन्तु तज्जलं चिकिरं विदुः ॥ ५० ॥

चिकिरं शीतलं स्वच्छं निर्दोषं लघु च स्मृतम् ॥ तुवरं
स्वादु पित्तघ्नं क्षारं तपि तलं मनाक् ॥ ५१ ॥

अथ कैदारस्य लक्षणां गुणां च ॥

कैदारं क्षौबमुद्दिष्टं कैदारं तज्जलं स्मृतम् ॥ कैदारं
वार्यं भिष्यन्दि मधुरं गुरु दोष कृत् ॥ ५२ ॥

अथ वृष्टिजलस्य लक्षणां गुणां च ॥

भा० नदी आदि के निकट जो रेत की जमीन होती है ॥ उससे जो जल निकल
ता है उस जलको चिकिर कहते हैं ॥ ५० ॥ चिकिर शीतलं स्वच्छ निर्दोष हलका
कहा है ॥ कसेला मधुर पित्त नाशक खारी और बोह थोड़ा पित्त को करने वाला
है ॥ ५१ ॥ अनन्तर कैदार का लक्षणा और गुणा । कैदार खेत को कहते हैं
और उसमें के जलको कैदार कहा है ॥ कैदार जल अभिष्यन्दि मधुर भारी दोष
को करने वाला है ॥ ५२ ॥ अनन्तर वारिश के जल का लक्षणा और गुणा ॥

वार्षिकं नद ह वृष्टं भूमिस्थ महितं जलम् ॥ त्रिरात्र मु
खितं तत्र प्रसन्न ममृ तो य ममृ ॥ ५३ ॥

अथ हे मन्नादि काल विरोधे विहित जल विशेषः ॥

हे मन्ने सार सन्तोयं ताड़ागं वा हितं स्मृतम् ॥ हे मन्ने
विहितं तोयं शिशिरेऽपि प्रशस्यते ॥ ५४ ॥ वसन्त
ग्रीष्मयोः कौषं वाप्यं वा नैर्भरं जलम् ॥ नादयं वारि ना
देयं वसन्त ग्रीष्मयोर्बुधैः ॥ ५५ ॥

भा० दिन का वरसा हुआ जमीन का जो जल है वोह वार्षिक है वोह अहित होता
है ॥ और तीन दिन का रखवा हुआ वोह स्वच्छ अमृत के समान होता है ॥ ५३ ॥
अनन्तर हे मन्नादि काल विरोध में विहित जल विशेष को कहते हैं ॥ हे म
न्त में सारस जल अथवा तालाब का हित कहा है ॥ हे मन्त में कहा हुआ जन

शिशिरमेंभी प्रशस्त है ॥ ५४ ॥ वसन्त ग्रीष्म में कुर्वे का वावड़ी का भरने का जल ॥ वसन्त और ग्रीष्म काल में नदी का जल न देवे ॥ ५५ ॥

विष्वद्वत् नष्ट क्षाराणां पन्था द्यौर्दूयितं यतः ॥ औद्भिर्दवा
न्तरिक्षं वा कौषं वा प्राच्यसि स्मृतम् ॥ ५६ ॥ शस्तं शरदि
नदियं नीरमं शूद्रकं परम् ॥ दिवारवि करैर्जुष्टं निशी
थीत करं शुभिः ॥ ५७ ॥ ज्ञेयमं शूद्रकन्नाम स्निग्धं
दोषत्रया पहम् ॥ अनभिष्यन्दि निर्दोष आन्तरि
क्षं जलोपमम् ॥ ५८ ॥ चत्वरं रसायनं मेध्यं शीतं ल
घु सुधा समम् ॥ (कं)

भा० कौंकि विष वाले वन वृक्षों के पत्र आदि से दूयित होता है ॥ औद्भिर्द
आन्तरिक्षं कौषं येह जल प्राच्य काल में कहे हैं ॥ ५६ ॥ शरद में नदी का और
अंशुद्रक जल परम प्रशस्त है ॥ दिन में सूर्य की किरणों से जुष्ट और रात में च-
न्द्र की किरणों से सेवित ॥ ५७ ॥ को अंशुद्रक नाम जानना चाहिये वोह चिकना
दोषत्रय का नाशक है ॥ और अनभिष्यन्दि दोष रहित आन्तरिक्ष जल के समा-
न होता है ॥ ५८ ॥ चत्वरं हित रसायन मेध्य शीतल हल का अमृत के समान हो-
ता है ॥ (कं)

रवि करैर्जुष्ट मित्युक्ते दिवापदं समस्त दिवसप्राप्त्य
र्थं शीत करं शुभिर्जुष्ट मित्युक्ते निशीथिपदं समस्त रा-
त्रि प्राप्त्यर्थम् अन्यच्च शरदि, स्वच्छ मुदयाद ग-
स्त्यस्याखिलं हितम् ॥ वृद्ध सुश्रुतस्तु ॥
पौषे वारि सरो जातं माघे ननु नडा गजम् ॥ फाल्गुने
कृप सम्भूतं देवे चैन्द्रा हितं मतम् ॥ ५९ ॥

भा० सूर्य की किरणों से जुष्ट इस प्रकार के कहेने से दिवा पद समस्त दिवस

की

प्राप्ति के अर्थ है ॥ चन्द्र किरणों से जुष्ट इस प्रकार के कहने से रात्रि पद समस्त रात्रि प्राप्तार्थ है और भी । शरद में, स्वच्छ अगस्त के उदय से संपूर्ण जल हित है ॥ वृद्ध सुश्रुत ने कहा है । चैत्र में सरोवर का पानी माघ में तालाब का पानी । फाल्गुण में कुंवे का पानी चैत्र में जौहड़ का पानी हित कहा है ॥ ५५ ॥

वैशाखे नैर्ऋतं नीरं ज्येष्ठे शस्तन्तथौ द्विदम् ॥ आषाढे शस्यते कौपं आवरणे दिव्य मेव च ॥ ६० ॥ भाद्रे कौप्यं पयः शस्तम् आश्विने चौड्य मेव च ॥ कार्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते ॥ ६१ ॥

जल ग्रहरा कालः । भौमा नामम्भ साम्रायो ग्रहरां प्रातरिष्यते ॥ शीतत्वं निर्मल त्वञ्च यतस्ते यां मनो गुणाः ॥ ६२ ॥ अथ जलस्य पान विधिः ॥

भा० वैशाख में भरने का जल और ज्येष्ठ में औ द्विद प्रशस्त है ॥ आषाढ में कुंवे का और आवरण में आनन रिक्त प्रशस्त है ॥ ६० ॥ भाद्र पद में कुंवे का जल प्रशस्त होता है आश्विन में चौड्य ॥ और कार्तिक मार्गशीर्ष में जल मात्र प्रशस्त है ॥ ६१ ॥ जल ग्रहरा का काल ॥ प्रायः भूमि के जल का ग्रहरा प्रातः काल प्रशस्त है ॥ क्योंकि शीतलता और निर्मलता उनका गुण है इस वास्ते ॥ ६२ ॥ अनन्तर जल पान की विधि ॥

अत्यस्तु पानान्न विपच्यते ऽन्नं निरस्तु पानाच्च स एव दोषः ॥ तस्मान्नरे वह्नि विवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वीरि पिषेदभूरि ॥ ६३ ॥ अथ शीतल जल पानस्य विषयाः ॥

मूर्च्छा पित्तेष्वा दाहेषु वियेरक्ते मदात्यये ॥ अग्नेऽग्ने विदग्धे ऽन्ने तमके वमथी तथा ॥ ६४ ॥ उर्ध्वगे रक्तपित्तं च शीतमस्तु प्रशस्यते ॥

भा० अधिक जलके पीने से अन्न परि पाक नहीं होता और जलके पीने से बों
ही दोष होता है ॥ इस वास्ते मुख्य अग्नि रुद्धि के अर्थ जल को बार बार पी
वे ॥ ६३॥ अनन्तर शीतल जल पानका विषय । मूर्च्छा पित्त उष्ण दाह में
और विषरक्त मदान्त्यय ॥ अमभ्रम विदग्ध अन्नतमक में तथा वमन में ॥
६४॥ ऊर्ध्वरक्त पित्त में भी शीतल जल प्रशस्त है ॥

अथ तन्निषेधः । पार्श्व शूल प्रति श्याये वातरोगे गं-
लग्रहे ॥ आधाने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नव ज्वरे
॥ ६५॥ अरुचि-ग्रहणी-गुल्म श्वास-कासेषु विद्र-
धौ ॥ हिक्कायां स्नेह पाने च शीताम्बु परि वर्जयेत् ॥ ६६॥

अथा ल्पजल पानस्य विषयः

भा० अनन्तर उसका निषेध । पार्श्व शूल में प्रति श्याय में वातरोग में गन्-
ग्रह में ॥ आधान मेस्तिमित कोष्ठ में सद्यः शुद्धि में नव ज्वर में ॥ ६५॥ और
अरुचिसंग्रहणी गौला श्वास कास इनमें विद्राधि में हिक्की में स्नेह पान में
भी शीतल जल त्याग देवे ॥ ६६॥ अनन्तर अल्पजल पानका विषय ॥

अरोचके प्रति श्याये मन्दे ऽग्नेौ श्वयथौ क्षये ॥ सुख
प्रसेके जठरे कुष्ठे नेत्रा मये ज्वरे ॥ ६७॥ ब्रशोच मधु-
मेहे च पिबेत्पानीय मल्पकम् ॥

जल पानस्यां वश्यकता ॥

जीवनं जीविनां जीवो जगत्सर्वं नु तन्मयम् ॥ अतो ऽत्य
न्त निषेधेन कदा चिद्द्वारि वार्यते ॥ ६८॥ हारी तप्त्र ।
हृया गरी यसी घोरा सद्यः प्राणा विना शिनी ॥

भा० अरुचि प्रति श्याय मन्दाग्नि सृजन क्षय ॥ सुख प्रसेक बदर रोग कुष्ठ नेत्र
रोग ज्वर ॥ ६७॥ ब्रण में मधु प्रमेह में भी थोड़ा जल पीवे ॥ जल पानकी अवश्यकता

ता ॥ जल प्राणियोंका प्राण है और संपूर्ण जगत तन्मय है ॥ इस वासे अत्यन्त नियेध में भी जल कदाचित भी विलकुल मना नहीं है ॥ ६८ ॥ हारीत ने कहा है ॥ वडी तृषा घोर सद्यः प्राणको नाश करने वाली है ॥

तस्मा द्वेयं तृषा त्रयि पानीयं प्राणा धारणाम् ॥ ६९ ॥

तृषितो मोह मायाति मोहात्प्राणान् विमुञ्चति ॥ अ

तः सर्वा स्ववस्था मुन कचि द्वारि वर्जयेत् ॥ ७० ॥

अथ प्रशस्तं जलम् । अगन्ध मव्यक्त रसं सुशीतं

तर्प नाशनम् ॥ अकं लघु च हृद्य च तोयं गुण वा

दुच्यते ॥ ७१ ॥ अथ निन्दित जलम् ॥

पिच्छिलं कृमिलं क्लिन्नं परां शैवाल कर्द्दमैः ॥ विव

र्यां विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं निर्हितं जलम् ॥ ७२ ॥ कलु

यं क्लृप्तं मम्मोज परां नीली तृणा दिभिः ॥

भा० इस वासे तृषा के पीड़ित के अर्थ जल प्राण धारण है ॥ ६९ ॥ व्यास मोह को प्राप्त होता है मोह से प्राणी को छोड़ देता है ॥ इस वासे सब अवस्था में कहीं पर जल को न त्याग देवे ॥ ७० ॥ अनन्तर प्रशस्त जल ॥ गन्ध रहित अव्यक्त रस अच्छा शीतल तृषाका नाशक ॥ स्वच्छ हलका और हृद्य ऐसा जल अच्छा कहा है ॥ ७१ ॥ अनन्तर निन्दित जल ॥ पिच्छिल कृमि युक्त और पत्ता से बालकी चड़ इन से सड़ा हुआ ॥ विवर्ण विरस गदला दुर्गन्ध युक्त रसवा हुआ जल ॥ ७२ ॥ काला और कमल पत्ते नील तृणा आदियों से ढका हुआ ॥

दुः स्पर्श नम संस्पृष्टं सौर चान्द्र मरी चिभिः ॥ ७३ ॥

अनार्जवं वार्षिकिन्तु प्रथमं तच्च भूमि गम् ॥ व्यापन्नं प

रिहर्तव्यं सर्व दीय प्रको पराम् ॥ ७४ ॥ तत् कुर्व्यात्

स्नान पानाभ्यां तृषा ध्यान चिरज्वरान् ॥

भा० दुःस्पर्श और सूर्य तथा चान्द की किरणों में स्पर्श किया गया ॥७३॥ दे
अतु का वारिडा का पहिला और वोह जमीन परका ॥ व्यापन्न जल त्यागनें
योग्य सब दोषों को प्रकोप करनें वाला है ॥७४॥ वोह स्नान और पान से दूधा
आध्मान पुराना ज्वर इन को करता है ॥

कासाग्नि मान्द्या भिष्यन्दक एडु गरडा दिकं तथा ॥७५॥

अथ दुग्ध जलस्य निर्दोषी करणो पायः ॥ ॥

निन्दि तच्चापि पानीयं कथितं सूर्य तापितम् ॥ सुव
र्ण रजतं लौहं पाषाणं सिकता मपि ॥ ७६ ॥ मृशं स
न्नाय्य निर्वाय्य सप्तधा साधितं तथा ॥ कर्पूर जाति पु
न्नाग पाटलादि सुवा सितम् ॥ ७७ ॥ शुचि सान्द्र यट
आदि सुद्र जन्तु विवर्जितम् ॥

भा० और कास अग्नि मान्द्य भिष्यन्द कंहु तथा गंडादि क इनको करता है ॥
७५॥ अनतर दुग्ध जल को निर्दोष करनें का उपाय ॥ निन्दि तभी जल औराया दु
वा और सूर्य के द्वारा गरम हुवा ॥ तथा सोना चान्दि लोहा यथ्यर और सिकता
भी इनको ॥७६॥ रतु गरम करके सात बार बुझा कर तथा सिद्ध किया हुवा और
कर्पूर चमेली सुफेद कमल और पाटला आदि से सुवासित ॥७७॥ पवित्र सा
न्द रुनाहुवा क्षुद्र जन्तु से रहित ॥

स्वच्छं कनक मुक्ता चैः शुद्धं स्यादोष वर्जितम् ॥ ७८ ॥

पर्ण मूल विष्य ग्रन्थि मुक्ता कनक शैवलैः ॥ गोमे देन च
वस्त्रेण कुर्वी दम्बु प्रसादनम् ॥ ७९ ॥

अथ पीतस्य जलस्य पाक विधिः ।

पीतं जलं जीर्यति याम युग्मा त्रयामै क मात्रा तृश्रुत श्री
तत्त्वञ्च ॥ तद्दूर्द्ध्मात्रेण शृतं कदूया पयः प्रपाके त्र

य एव कालाः ॥ ८० ॥

इति श्री भावप्रकाशे वारिवर्गः।

भा० स्वच्छ सोना मोती आदिसे शुद्ध दोष वर्जित होता है ॥ पत्ते मूल वियगांठ मोती सोना से बाल इनसे ॥ और गोमेद तथा वस्त्र से जलको स्वच्छ करे ॥ ७५ ॥ अनन्तर पीये हुवे जल की पाक विधि। पीया हुआ जल दो पहर में पकता है और औटाके शीतल किया हुआ एक पहर में पचता है ॥ उसके ऊपर ओंटे मात्र से जल कटु उष्ण होता है जल के पाक में तीन ही काल है ॥ ८० ॥

इति भावप्रकाशे जल वर्गः ॥ ॥

अथ दुग्ध वर्गः।

दुग्धस्य नाम गुणाः।

दुग्धं क्षीरं पयः स्तन्यं बालजीवनमित्यपि ॥ दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम् ॥ १ ॥ सद्यः शुक्रकरं शीतं सात्न्यं सर्वशरीरिणाम् ॥ जीवनं वृंहणं बल्यं मेध्यं वाजिकरं परम् ॥ २ ॥

भा० अनन्तर दुग्धवर्गः ॥ दुग्धके नाम और गुण ॥ दुग्ध क्षीर पयः स्तन्य बालजीवन यह दूधके नाम है ॥ दूध मधुर चिकना वात पित्त का नाशक ॥ सर ॥ १ ॥ तत्काल शुक्र को करने वाला शीतल सब प्राणियोंको सात्न्य होता है ॥ जीवन पुष्ट बलको करने वाला परम वाजि कर ॥ २ ॥

वयः स्थापन मायुष्यं सन्धिकारि रसायनम् ॥ विरेकवान्ति वस्तीनां तुल्य मीजो विवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ जीर्णज्वरे मनो रोगे शोथ मूर्च्छा म्रमेषु च ॥

ग्रहरायां पाण्डुरोगे च दाहे नृषि हृदा मये ॥ ४ ॥ शूलो
दावर्त्तगुल्मे यु वस्ति रोगे गुदाङ्कुरे ॥ रक्तपित्तेऽति
सारं च योनिरोगे श्रमे क्लमे ॥ ५ ॥ गर्भस्त्रावे च सततं
हितं मुनिवरैः स्मृतम् ॥ बालवृद्धक्षतक्षीणाः क्षुब्ध
व्यायकृशाश्च ये ॥ ६ ॥ तेभ्यः सदाति प्रायितं हितं
मेतदुदाहृतम् ॥ अथ गोदुग्धस्य गुणाः ॥

भा० वयःस्थायन आयुको करने वाला सन्धिकारि स्थायन है ॥ और विरेक
वमन वस्ति इनको तुल्य ओजको बढ़ाने वाला ॥ ३ ॥ जीर्णज्वर मान सिकरो
ग शोथमूर्च्छा श्रम इनमें भी ॥ और ग्रहणी पाण्डुरोग दाह और तृषा इनमें त
था हृदरोगमें ॥ ४ ॥ शूलवदावर्त्तगुल्म इनमें वस्ति रोगमें गुदाङ्कुरमें रक्त
पित्त में अति सार में योनि रोगमें श्रममें क्लम में ॥ ५ ॥ गर्भस्त्रावमें भी हित है ए
सा मुनिवरों ने कहा है ॥ बाल वृद्ध क्षत क्षीणा क्षुब्धामेयुन इनसे जो कृदा है
॥ ६ ॥ उनको सदा अति प्रयकारके ये हित कहा है ॥ अनन्तर गोदुग्धका गुण ॥

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रसपाकयोः ॥ शीतलं स्तन्यकृ
न्स्निग्धं वातपित्तासनाशनम् ॥ ७ ॥ दोषधातुमलसो
तः किञ्चित्क्लेदकरं गुरु ॥ ज्वरा समस्त रोगाणां प्रा
न्ति कृत्स्नं सेवितां सदा ॥ ८ ॥ चर्या विशेषेण गुणविशेषाः ॥
कृष्णाया गोर्भवदुग्धं वातहारिगुणाधिकम् ॥ पीता
या हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत् ॥ ९ ॥ प्लेखमलं गुरु ॥
शुक्लाया रक्तचित्रा च वातहतम् ॥

भा० गाय का दूध विशेष करके रसपाक में मधुर कहा है ॥ और शीतल दुग्ध
को करने वाला चिकना वातरक्तपित्त इनका नाशक है ॥ ७ ॥ दोषधातुमलसो
त किञ्चित्क्लेदको करने वाला भारी ॥ सदा सेवन करने वालों के ज्वर और रस-

स्त रोगों की शान्ति करने वाला है ॥ ८ ॥ अनन्तर वर्ण विशेष में गुण विशेष को कहते हैं ॥ काली गाय का दूध वात नाशक गुण में अधिक है ॥ पीली ॥ का दूध पित्त को नाश करता है तथा वात हरती है ॥ ९ ॥ सुफेद गाय का दूध कफ कारिभारी और लाल चित्त कबरी का भी वात नाशक होता है ॥

अथ धेनो विवत्सा याध्र गुणाः।

बालवत्स विवत्सानां गवां दुग्धं त्रिदोष कृत् ॥

वके नीगो गुणाः। वक्क पिरया स्त्रि दो यंघ्नं तर्पणं व-

ल कृत् पयः ॥ अथ देश विशेषेण गुण विशेषः ॥

जाङ्गलो नू पशौलेषु चरन्तीनां यथो त्ररम् ॥ यथो गुरु

तरं स्नेहो यथा हारं प्रवर्तते ॥ १० ॥

अथा हार विशेषेण गुण विशेषः ॥

भा० वेवच्चै वाली गाय के दूध का गुण ॥ छोटे बच्चे वाली और वे बच्चे वाली गायों का दूध त्रिदोष को करने वाला है ॥ वके नी गाय के दूध का गुण ॥ वके नी का त्रिदोष नाशक तर्पण बल को करने वाला दूध होता है ॥ अनन्तर देश विशेष करके गुण विशेष को कहते हैं ॥ जाङ्गल आनूप पहाड़ इनमें चरने वालीयों का दूध यथो त्रर ॥ बहुत भारी होता है और छत आहार के अनुसार निकलता है ॥ १० ॥ अनन्तर आहार विशेष में गुण विशेष ॥

खल्पाक्ष मक्षणा ज्ञानं क्षीरं गुरु कफ प्रदम् ॥ तनु ब

ल्यं परं वृष्यं स्वस्थानां गुण दाय कम् ॥ ११ ॥ पला-

ल नृणा कापसि बीज जातं गुरौ हितम् ॥

अथ माहिषी दुग्धस्य गुणाः।

माहियं मधुरङ्ग व्यान् स्निग्धं शुक्र करं गुरु ॥ निद्रा

करम् भिष्यन्दि क्षुधा धिक् करं हिमम् ॥ १२ ॥

भा० स्वल्प अन्न भक्षण से हुवा क्षीण भारी कफ को करने वाला होता है ॥ वोह
 वल के हित अत्यन्त शुक्र को करने वाला और स्वस्थों को गुण देने वाला है ॥ ११ ॥
 खल घास कपास के बीज इनके खाने से हुवा दूध गुण करके हित होता है ॥
 अनन्तर भैंस के दूध का गुण । भैंस का दूध मधुर गायक से चिकना शुक्र को
 करने वाला भारी ॥ निद्रा को करने वाला अभिष्यन्दि अधिक शुधा को करने
 वाला शीतल ॥ १२ ॥

छागी दुग्धस्य गुणाः ।

छागं कषायं मधुरं शीतं ग्रहि तथा लघु ॥ रक्त पित्ताति
 सारङ्ग क्षय कास ज्वरा पहम् ॥ १३ ॥ अजाना मल्य
 काय त्वान् कटु तिक्त निवे वणान् ॥ स्तौकाम्बु पाना
 द्या मातु सर्व रोगा पहं पयः ॥ १४ ॥

मृगादि दुग्धस्य गुणाः

मृगीनां जाङ्ग लोत्थानाम् अजा क्षीर गुणं पयः ॥
 भेडी दुग्ध गुणाः । आविकं लवणं स्वादु स्निग्धोष्ण
 ज्वा प्रसरी प्ररुत् ॥ १५ ॥ अहृद्यं तर्पणं दृष्यं शुक्र
 पित्त कफ प्रदम् ॥ गुरु कासेऽ निलोद् भूते केवले च ॥
 निले वरम् ॥ १६ ॥ अथ घोड़ी दुग्धं ॥

भा० अनन्तर वकरी के दूध का गुण ॥ वकरी का दूध कसेला मधुर शीतल
 का विज तथा हलका होता है ॥ और रक्त पित्त अतीसार इनका नाशक क्षय
 कास ज्वर इनका नाशक है ॥ १३ ॥ वकरियों का छोटा शरीर होने से और क
 टु तिक्त के सेवन से ॥ थोड़ा जल पीने से कसरत से उसका दूध सर्व रोग का
 नाशक है ॥ १४ ॥ अनन्तर मृग आदियों के दुग्ध का गुण ॥ जंगल के मृगो
 का दूध वकरी के दूध के समान गुण में होता है ॥ अनन्तर भेडी के दूध का
 गुण ॥ भेडी का दूध नमकीन मधुर चिकना गरम और पथरी का नाशक है ॥ १५ ॥
 अहृद्य तर्पणं पुष्ट शुक्र पित्त कफ इनको करने वाला ॥ भारी होता है और खान

के कांस में केवल यात मे श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ अनन्तर घोड़ी का दूध ॥

रूक्षोऽयं वडवा क्षीरं वल्यं शोथो निलायहम् ॥

अस्लं पटु लघु स्वादु सर्वमेक शफं तथा ॥ १७ ॥

अथ उट्टी दुग्धं । औट्टं दुग्धं लघु स्वादु लवणं दीप
नं तथा ॥ कमिकुष्ठ कफा नाह शोथो दर हरं सरम् ॥

१८ ॥ हस्तिनी दुग्धं ॥ चंहरां हस्तिनी दुग्धं मधुरन्तुव

रं गुरु ॥ वृष्यं वल्यं हिमं स्निग्धं चक्षुष्यं स्थिरता क

रम् ॥ १९ ॥ अथ नारी दुग्धं ॥

भा० घोड़ी का दूध रूखा गरम बलके हित शोथ वात का नाशक ॥ खट्वा ल
वण हलका मधुर वैसे ही सब एक शफ वालों का होता है ॥ १७ ॥ अनन्तर ऊँ
ट्टी का दूध ॥ ऊँट्टी का दूध हलका मधुर लवण तथा दीपन ॥ और क
मिकुष्ठ कफ अफारा सूजन उदर रोग इनका नाशक सर होता है ॥ १८ ॥

अनन्तर हथनी का दूध ॥ हथनी का दूध मधुर कसेला भारी ॥ शुक्र को क
रने वाला बलके हित शीतल चिकना नेत्र के हित स्थिरता को करने वाला हो
ता है ॥ १९ ॥ अनन्तर स्त्री दुग्ध ॥

नार्थ्या लघु पयः शीतं दीपनं वात पित्त जित् ॥ चक्षुः

शूलाभि घातघ्नं नस्या श्रयो तनयो वरम् ॥ २० ॥

अथा धारोऽणादिगुणाः

धारोऽयं गोपयो वल्यं लघु शीतं सुधा समम् ॥ दी

पनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धार शिशिरं त्यजेत् ॥ २१ ॥

भा० स्त्री का दूध हलका शीतल दीपन वात पित्त को जीतने वाला ॥ नेत्र शूल
अभिघात इनका नाशक और नस्या आश्रयो तन में श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ अनन्तर
धारोऽणादिका गुणा ॥ धारोऽणा गायका दूध बलके हित हलका शीतल

अमृत के समान होता है ॥ और दीपन त्रिदोष नाशको होता है ॥ और वो
ह धारा शिशिर न सेवन करे ॥ २१ ॥

धागेय्यां प्रास्यते गन्धं धारा शीतन्तु माहि वमू ॥ शृतो
क्षा माविकं पथ्यं शृत शीत मजा पयः ॥ २२ ॥ आ
मं क्षीरं मणि व्यन्दि गुरु प्लेक्षा म वर्द्ध नमू ॥ श्रेयं
सर्व मपथ्यन्तु गन्ध माहिष वर्जितमू ॥ २३ ॥ नारी क्षी
रन्त्राम मेव हितं न तु शृतं हितमू ॥ शृतोप्यां कफ
वातघ्नं शृतं शीतन्तु पित्त तु न ॥ २४ ॥ अर्द्धो दकं ।
क्षीर शिष्ट मा मा ल्लघु तरं पयः ॥

भा० धारो य्वा गायका हित होता है और धारा शीत में से का अच्छा होता है ॥
और या हुवा गरम भेड़ी का और और या हुवा पीतल बकरी का दूध हित ही
ता है ॥ २२ ॥ कच्चा दूध अभि व्यन्दि भारी कफ आय को बढ़ाने वाला होता है ॥ या
य और में से का दूध छोड़के सब अहित है ॥ २३ ॥ रबी का दूध कच्चा ही हित है
न कि और या हुवा हित है ॥ और गरम कफ वात का नाशक और और शीतल
पित्त नाशक है ॥ २४ ॥ आधा पानी मिला के बाकी बचा हुवा दूध कच्चे से बड़ा
हलका होता है ॥

जले न रहितं दुग्ध मति पक्वं यथा यथा ॥ २५ ॥

तथा तथा गुरु स्निग्धं दृष्यं वल विवर्द्ध नमू ॥

अथ पीयूष किलाट क्षीर प्राकः तक्र पिण्ड मोर
सर्पा लक्षणाणि गुराण अ ॥

क्षीरं तत्काल सूताया घनषे यूय मुच्यते ॥

पेयूयं पेवस इति लोके ।

नय दुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाट कः ।

किलाटकः गिजिरी इति लोके ।

अपक्वमेव यन्नष्टं क्षीर शाकं हि तत्पयः ।

क्षीर शाकं तुषि भरा इति लोके ।

दध्ना तक्रेणा वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवा ससा ॥ द्रवभा

वेन सहितं तक्र पिण्डः स उच्यते ॥ २६ ॥ नष्टदु-

ग्धं भवन्तीरं भोर दज्जे ज्जये ॥ व्र वीत् ॥

भा० जलसे रहित दूध जैसे २ बहुत औंटाया हुआ ॥ २५ ॥ वैसे २ भारी चिकना पुक्र को करने वाला बल को बढ़ाने वाला होता है ॥ अनन्तर पीयूष किलाट क्षीर शाक तक्र पिण्ड भोर द इनके लक्षण और गुण ॥ तत् काल वज्रा दी हुई गाय के दूध को पीयूष कहते हैं ॥ लोक में पेव सक होते हैं ॥ दूध के पिंड को किलाटक कहा है ॥ किलाट गिजरी इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ कच्चा ही जो फटा हुआ दूध है उसको क्षीर शाक कहते हैं ॥ इसको लोक में तुषिभरा कहते हैं ॥ दही अथवा मठे से फटे हुवे दूध को अच्छे कपड़े से बान्ध कर ॥ उस द्रव भाव के सहित को तक्र पिंड कहते हैं ॥ २६ ॥ फटे हुवे दूध के पानी को भोर द जेज्जट नें कहा है ॥

पेयूषञ्च किलाटश्च क्षीर शाकं तथैव च ॥ २७ ॥

तक्र पिण्ड इमे वृष्या वृंहणा बल वर्द्धनाः ॥ गुर वः

प्लेखला हृद्या वात पित्त विनाशनाः ॥ २८ ॥ दीप्रा

ग्नीनां विनि द्राणां विद्रधो चाभि पूजिताः ॥ सुखशो

ष नृया दाह रक्त पित्त ज्वर प्रणुन् ॥ २९ ॥

भा० पेयूष किलाट क्षीर शाक ॥ २७ ॥ और तक्र पिण्ड येह वृष्य पुष्ट बल को बढ़ाने वाले ॥ भारी कफ को करने वाले हृद्य वात पित्त के नाशक हैं ॥ २८ ॥ और दीप्रा ग्नीनां को वे नीन्द वालों को और विद्राधि में प्रेष्टे ॥ और सुख शोय नृया दाह रक्त पित्त ज्वर इनका नाशक है ॥ २९ ॥

लघु बल करो रुच्यो मोरटः स्यात्सिता युतः ॥ सन्ता
निका गुणाः । सन्ता निका साठी ।

सन्ता निका गुरुः शीता दृष्या पित्त स्ववात नुत् ॥ तर्प
णी वृंहणी म्लिग्धा बला सवल शुक्रला ॥ ३० ॥

अथ खण्डादि युक्त दुग्ध गुणाः ॥ ॥

खण्डेन सहितं दुग्धं कफ छेत् पक्व पहम् ॥ सिता
सितो पला युक्तं शुक्रलं विमला पहम् ॥ ३१ ॥ रघु
दं मूत्र कृच्छ्रं पित्त म्लेष्म करं परम् ॥

भा० चीनी के सहित मोरट हलका बल कर रुचि को करने वाला है ॥ मलाई के गुण । मलाई भारी शीतल शुक्र को करने वाली रक्त पित्त वात इनको नाश करने वाली ॥ तर्पण पुष्ट विकनी और कफ कबल शुक्र इनको करने वाली है ॥ ३० ॥ अनन्तर खण्ड आदि से युक्त दुग्ध का गुण ॥ खण्ड के सहित दुग्ध कफ को करने वाला वात नाशक होता है ॥ चीनी और म्लिग्धी के युक्त शुक्र को करने वाला विदोष का नाशक है ॥ ३१ ॥ गुड के सहित मूत्र कृच्छ्र का नाशक और परम पित्त कफ को करने वाला है ॥

अथ प्रमाणादि भव दुग्ध गुणाः ॥

रात्रौ चन्द्र गुणा धिक्वाद् व्यायामा करणा त्रया ॥

प्रभातिकं तदा प्रायः प्रादो याद् गुरु शीतलम् ॥ ३२ ॥

दिवा कर कर घाताद् व्यायामानल सेवनात् ॥ प्रभा

तिकाहु प्रादोयं लघु वात कफा पहम् ॥ ३३ ॥

भा० अनन्तर प्रमाणादि भव दुग्ध के गुण ॥ रात्रि में चन्द्र गुण की अधिकता से तथा व्यायाम करने से ॥ सवेरे का दृढ प्रायः सार्ध काल के से भारी शीतल होता है ॥ ३२ ॥ सूर्य की किरणों के आघात से और व्यायाम भीन ।

इनके सेवन से ॥ सवेरे कैसे उग्राम का हलका वात कफ का नाशक होता है ॥

३३॥

अथ दुग्ध सेवन समय विशेष्ये गुण साह ॥

दृष्यं वृंहण मग्नि दीपन करं पूर्वाह्न काले पयो ॥ अ-

ध्याह्नं तु बला वहं कफ हरं पित्रा पहं दीप नमू ॥ ३४॥

बाले वृद्धि करं क्षये क्षय करं रुद्धेयुरेतो वहम् ॥ रात्रौ

पथ्य मनेक दोष शमनं क्षीरं सदा सेव्यते ॥ ३५॥

भा० अनन्तर दुग्ध सेवन समय में गुण विशेष्य को कहते हैं ॥ पहिले पहर में पीया हुआ दूध शुक्र को करने वाला पुष्ट अग्नि को दीपन करने वाला ॥ और मध्याह्न में बल करने वाला कफ नाशक पित्त नाशक दीपन होता है ॥ ३४॥ बाल अवस्था में वृद्धि करने वाला क्षय गं क्षय कर 'रुद्ध अवस्थामें' शुक्र को करने वाला और रातमें हित अनेक दोषों को शमन करने वाला । दूध है इस वस्ति सदा सेवन किया जाता है ॥ ३५॥

वदन्ति पयं निशि केवलं पयो भोज्यं न तेनेह सहो दना

दिकम् ॥ मवत्य जीर्णे निशि पीत शर्करा क्षौरात्यपानस्य

तु शेष मृत्सृजेत् ॥ ३६॥ विदाही न्यन्य पानानि दिवा ।

मुद्धे हि यन्नरः ॥ तद्वि दाह प्रशान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं सदा

पिवेत् ॥ ३७॥ दीप्तानले कृशे पुंसि वात रुद्धे पयः प्रि

ये ॥ मतं हित तमं पथ्यं सद्यः शुक्र करं यतः ॥ ३८॥

अथ मयि तस्य दुग्धस्य गुणाः ।

भा० कहते हैं कि रातमें केवल दूध पीना चाहिये उसके साथ चावल आदि कनखाने चाहिये ॥ अजीर्ण के होने में रातमें छोड़ा दूध शर्करा पीने वाले के । चाफी सब निकल जाता है ॥ ३६॥ जिस से मनुष्य विदाहि अन्न पानदिन में भोजन करता है ॥ उस कारण विदाह प्रशान्ति के अर्थ रातमें दूध को सदा पी

वे ॥ ३७ ॥ दीप्राग्नि कृश वात वृद्धि और दुग्ध प्रिय रोसे पुरुष को ॥ बहुत हि
त और पथ्य है क्योंकि तत् काल शुक्र को करता है ॥ ३८ ॥

अनन्तर मधे हुवे दूधका गुण ॥

क्षीरं गव्य मघा जम्वा कोयं दण्डा हतं पिबेत् ॥ ल
घु वृथं ज्वर हरं वात पित्त कफा पहसू ॥ ३९ ॥

अथ गोज्ज गुणा ॥

गो दुग्ध प्रभवं किंवा छागी दुग्ध समुद्भवम् ॥ भवे दे
तत् विदो यष्टं रोचनं बल वर्द्धनम् ॥ ४० ॥

भा० गायका अथवा बकरी का कुच्छ गरम मधे हुवे को पीवे ॥ और हलका
शुक्र को करने वाला ज्वर नाशक वात पित्त कफ का नाशक है ॥ ३९ ॥

गो दुग्ध से उत्पन्न हुवा अथवा बकरी के दूध से हुवा ॥ विदोय नाशक रोचन
बल को बढ़ाने वाला ॥ ४० ॥

वन्ति वृद्धि करं वृथं सद्यः स्तुति करं लघुः ॥ अती
सारः गिन मान्द्ये च ज्वरे जीर्णे प्रणश्यते ॥ ४१ ॥ निन्दि
तं दुग्धं । विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गन्धं ग्रथितं पयः ॥ व
र्जये दन्त लवणा युक्तं बुद्ध्यादि हृद्यतः ॥ ४२ ॥

इति श्री भाव प्रकाशे दुग्ध वर्गः ॥

भा० अग्नि को करने वाला शुक्र को करने वाला तत्काल वृद्धि को करने वाला
हलका होता है ॥ और अतीसार अग्नि मान्द्य तथा जीर्ण ज्वर इनमें प्रणाल है ॥
॥ ४१ ॥ निन्दित दुग्ध ॥ विवर्ण विरस खट्टा दुर्गन्ध और गटील रोसा दूध ॥ त्या
ग देवे क्योंकि अम्ल लवणा युक्त बुद्धि आदि का नाशक कहा है ॥ ४२ ॥

इति भाव प्रकाश में दुग्ध वर्गः ॥

तत्र दध्नी गुणाः

दध्नुषां दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु ॥ पाकेऽम्लं
ज्वारपित्ताख शोथ भेदः कफ मंदम् ॥ १ ॥ सूत्र क
च्छे प्रति प्रयाये शीतगे वियम ज्वरे ॥ अती सारेऽरुचौ
कार्प्ये शस्यते बल शुक्र कृत् ॥ २ ॥

भा० उल्लेखी के गुण ॥ दही उष्ण दीपन चिकना पीछे से कसेला भारी ॥
पाकमें अम्ल ज्वार रक्त पित्त शोथ भेद कफ इनको करने वाला है ॥ १ ॥
सूत्र कच्छे में प्रति प्रयाय में शीत वाले वियम ज्वर में ॥ अती सार में अरुचि
में रुग्णता में मग्नस्त है बल शुक्र को करने वाला है ॥ २ ॥

अथ दधि भेदः । आदौ मन्दं ततः स्वादु स्वादु म्लज्ज
ततः परम् ॥ अम्लज्ज तुर्य मत्यम्लं पञ्चमं दधि पञ्च
धा ॥ ३ ॥ अथ मन्दादीनामूलक्षणां गुणाश्च ॥
मन्दं दुग्धं यद्व्यक्तं रसं किञ्चिद्भूतं भवेत् ॥ मन्दं
स्यात्सृष्ट विरमूत्र दोषत्रयविदाहकृत् ॥ ४ ॥ य-
त्सम्यग् घनतां यातं व्यक्तस्वादुरसं भवेत् ॥ अव्यक्ता
म्ल रसं तनु स्वादु विज्ञैरुदाहृतम् ॥ ५ ॥

भा० अनन्तर दही का भेद ॥ पहिले मन्द उसके अनन्तर मधुर और उसके
बाद खट मीठा ॥ चौथा खट तथा पांच वा बहुत खट्टा रोसे दही पांच प्रकार
का होता है ॥ ३ ॥ अनन्तर मन्दादियों के लक्षण और गुण ॥ मन्द दुग्ध जो अ
व्यक्त रस और कुरु गाढ़ा होता है ॥ मन्द म्ल सूत्र को करने वाला विदोष तथा
विदाह इनको करने वाला है ॥ ४ ॥ जो अच्छी तरह गाढ़ी हो जाती है और व्यक्त
स्वादुरस जिसमें होता है उसको बुद्धिवानों ने मधुर कहा है ॥ ५ ॥

स्वादु स्या दत्त भिष्यन्दि दृष्यं मेदः कफा वहसू ॥ वा
तघ्नं मधुरं पाके रक्त पित्त प्रसा द नसू ॥ ६ ॥ स्वा ह
म्ल सान्द्रं मधुरं कयाया नु रसं भवेत् ॥ स्वाह म्लस्य
गुणा ज्ञेया सामान्य दधि वर्जनैः ॥ ७ ॥ यत्ति रोहि त
माधुर्यं व्यक्ता म्लत्वं तद म्लकसू ॥ अम्ल नु दीपनं
पित्त रक्त श्लेष्म विवर्द्धनसू ॥ ८ ॥

भा० मधुर अति अभिष्यन्दि होता है शुक्र को करने वाला और मेदकफ को
करने वाला ॥ वात नाशक पाक में मधुर रक्त पित्त को अच्छा करने वाला हो
ता है ॥ ६ ॥ मीठा खट्टा सान्द्र मधुर पीछे से कसेला होता है ॥ सामान्य दही
के त्याग करके मीठे खट्टे का गुण जानना चाहिये ॥ ७ ॥ जो मधुर ता दही
है और जिसमें धम्ल ता व्यक्त है वोह खट्टा है ॥ खट्टा दीपन रक्त पित्त कफ इ
नको बढ़ाने वाला ॥ ८ ॥

तद त्यम्लं दन्त रोम हर्यं कण्ठ दि दाह क्तू ॥ अत्य
म्लं दीपनं रक्त वात पित्त करं परसू ॥ ९ ॥ गो दधि गु-
णाः । गव्यं दधि विशेषेण स्वाहम्लञ्च रुचि प्रदसू ॥
पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टि क्तू पवना पहसू ॥ १० ॥ उक्तं
दध्ना मशो याराणं मध्ये गव्यं गुणाधिकसू ॥

भा० वोह बहुत खट्टा दन्त हर्यं रोम हर्यं कंठ आदि का दाह करने वाला है
॥ बहुत खट्टा दीपन रक्त वात पित्त हनको करने वाला है ॥ ९ ॥ गायके दही
का गुण ॥ गायका दही विशेष करके मधुर अम्ल रुचि को करने वाला
॥ पवित्र दीपन हृद्य पुष्टि को करने वाला वातका नाशक होता है ॥ १० ॥ स
ब दही यों के बीचमें गायका दही गुण में अधिक कहा है ॥

माहिष दधिगुणाः ।

माहिषं दधि सुस्निग्धं प्लेख्यं लं वात पित्र दुग्ध ॥ स्वा-

दु पाक मभिष्यन्दि दृष्यं गुर्वं च दूयकम् ॥ ११ ॥

छाणी दधि गुणाः । आजन्द् द्युत्तमं ग्राहिलघु दोष-

त्रया पहसू ॥ शस्यते श्वास का सा र्शः क्षय कार्शेषु

दीपनम् ॥ १२ ॥ पक्व दुग्ध दधि गुणाः ॥

पक्वं दुग्ध भवं रुच्यं दधि स्निग्ध गुणोत्तमं ॥ पित्रा ॥

निला यहं सर्व धात्वग्नि बल वर्द्धनम् ॥ १३ ॥

निःसार दुग्ध दधि गुणाः ।

भा० भैंस की दही का गुण ॥ भैंस की दही बहुत चिकनी कफ को करने वाली वात पित्र की नाशक ॥ पाक में मधुर अभिष्यन्दि शुक्र को करने वाली मरि रक्त दूयक होती है ॥ ११ ॥ चकरी के दही का गुण ॥ चकरी का दही बहुत उत्तम का विज हलका तीनों दोषों का नाशक है ॥ और श्वास कास ववासीर क्षय कार्श इ- नमें प्रशस्त है तथा दीपन होता है ॥ १२ ॥ औदये हुवे दूध के दही का गुण पके हुवे दूध की वही रुचि को करने वाली चिकनी गुण में अच्छी ॥ पित्र वा त की नाशक और सब धातु अग्नि बल इनको बढ़ाने वाली है ॥ १३ ॥

निःसार दूध के दही का गुणः ॥

असारं दधि सङ् ग्राहि शीतलं वातलं लघु ॥ विष्ट

भि दीपनं रुच्यं ग्रहणी रोग नाशनम् ॥ १४ ॥

वायी दधि गुणाः । गालितं दधि सुस्निग्धं वातघ्नं

कफ हृद् गुरु ॥ बल पुष्टि करं रुच्यं मधुरं नाति पि

त्र हृत् ॥ १५ ॥ शर्करादि सहित दधि गुणाः ॥

भा० असार दही का विज शीतल वात को करने वाली हलकी ॥ विष्टं भि दीपन रुचि को करने वाली ग्रहणी रोग की नाशक है ॥ १४ ॥

निचोड़ी हुई दही का गुण । निचोड़ी दही बहुत चिकनी बात नाशक कफ को करने वाली भारी ॥ दल पुष्टि को करने वाली रुचि कर मधुर और अग्नि पित्त करने वाली है ॥ १५ ॥ शर्करा के सहित दही का गुण ॥

सशर्करं दधि श्रेष्ठं तृष्णा पित्रा स्वदा ह जित् ॥ सगु
डं वातनुहृद्यं चंहरां तर्पणं गुरु ॥ १६ ॥

अथ रातौ दधि भोजन निषेधः ॥

न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्य घृत शर्करम् ॥ नामुद्र
सूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलं कै विना ॥ अथ मर्थः ॥

भा० शर्करा के सहित दही श्रेष्ठ तृष्णा रक्त पित्त दाह इनको जीतने वाली है ॥ और गुड के सहित वात नाशक शुक्र को करने वाली पुष्ट तर्पण भारी होती है ॥ १७ ॥ अनन्तर रात में दधि भोजन का निषेध ॥ रात में दही न खावे और विनाश किए घृत के भी न खावे ॥ तथा विना मूत्र की दाल के और विना मधु के भी न खावे और नगरम न आव लें कि विना न खावे ॥ यह अर्थ है कि ।

रातौ दधिन भुञ्जीत भुञ्जीत चैतदा अघृत शर्कर
नामुद्र सूपं क्षौद्रं मुष्णं विना मलं कैश्च दधिन भु-
ञ्जीत । तेन घृत शर्करादि युक्तं दधि रात्रा वापि भु-
ञ्जीते त्वर्थः । तथा च । शस्यते दधिना रातौ शूल
ज्वाम्बु घृता न्वितम् ॥ रक्त पित्त कफो त्वेषु विकारे
युतु नैव तत् ॥ १८ ॥ तदम्बु घृता न्वितं मपि ॥

अथ ह्यं विशेषेण विधि निषेधौ ।

भा० रात में दही न खावे और खावे तो वे ची अक्षर मूत्र की दाल मधु उष्ण विना जोवलो के भी दही न खावे ॥ उस्ते घृत शर्करादि युक्त दही रात में भी खावे यह अर्थ है । वैसे कहा है । रात में दही प्रशस्त नहीं है और जल घृत में युक्त ।

प्रशस्त है ॥ रक्त पित्त कफ के विकारों में वोह प्रशस्त नहीं है ॥ १७ ॥ वोह जल घृत युक्त भी । अनन्तर ऋतु विशेष करके विधि निषेध ।

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते ॥ शरदू ग्रीष्म वसन्तेषु प्रायः शस्त द्विग हितम् ॥ १८ ॥

अथा विधि ना दधि सेवने दोष माह ॥

ज्वरा सृक् पित्त वी सर्प कुष्ठ पाण्डू मय भ्रमान् ॥ प्रा-

प्नु यान् कामला ज्वो ग्रां विधिं हित्वा दधि प्रियः ॥ १९ ॥

भा० हे मन्त शिशिर और वर्षा में दही प्रशस्त है ॥ और शरद ग्रीष्म वसन्त में प्रायः वोह निर्दिष्ट है ॥ १८ ॥ अनन्तर विना विधि के दधि सेवन में दोष कहते हैं ॥ ज्वर रक्त पित्त वी सर्प कुष्ठ पाण्डू रोग भ्रम ॥ और उग्र कामला रोग येह विधि छोड़ के दही सेवन करने से होते हैं ॥ १९ ॥

॥ अथ सरस्य मस्तु नञ्च लक्षणां गुणां च दध्यस्तु परि यो भागो घनः स्नेह समन्वितः ॥ स लोके सर इत्युक्तो दध्नी मण्डस्तु मस्त्विति ॥ २० ॥ सरः स्वादुर्गुरुर्दृढो वात वह्नि प्रणाशनः ॥ सान्त्वो वस्ति प्रशमनः पित्त श्लेष्म विवर्धनः ॥ २१ ॥

भा० अनन्तर सर और मस्तु इनका लक्षणा और गुणा ॥ दही के ऊपर का जो गाढ़ा चिकना इसे धुँहि स्ता है ॥ उसको लोक में सर ऐसा कहा है और दही के पानी को अस्तु ऐसा कहा है ॥ २० ॥ सर मधुर भारी शुक्ल को करने वाला वात अग्नि का नाशक ॥ और रखाई के सहित वस्ति का प्रशमन करने वाला पित्त कफ को बढ़ाने वाला है ॥ २१ ॥

मस्तु क्लृप्त हरं बल्यं लघु भक्ता भिलायकम् ॥ स्त्री तो विशेष न ह्लादि कफ तृष्णा निला यहम् ॥ २२ ॥

अवृथं प्रीणनं प्रीघं भिनन्ति मल सञ्च यम् ॥

इति श्री भाव प्रकाशे दधिवर्गः ।

भा० दही का पानी क्रम नाशक बलके हित हल का गोजन में रुचि को कर
ने वाला ॥ सोंतों का शोधन करने वाला ल्हादि कफ तथा वात इनका नाश
कहे ॥ २२ ॥ अवृथ प्रीणन और प्रीघ मल के संचय को फोड़ता है ॥

इति भाव प्रकाशे दधिवर्गः ।

अथ तक्रवर्गः

तत्र तक्रस्य भिन्नानि नामानि लक्षणानि गुणानि च
घोलन्तु मथितं तक्रमुद शिवच्छच्छि कायि च ॥ सस
रं निर्जलं घोलं मथितन्व सरो द कम् ॥ २३ ॥
तक्रं पाद जलं प्रोक्तमुद शिवत्वं वारिकम् ॥ कच्छि
का सारहीना स्यान् स्वच्छा प्रचुर वारिका ॥ २४ ॥
घोलं तु शर्करा युक्तं गुरौ र्जयं रसाल वत् ॥

भा०- अनन्तर तक्र वर्गः ॥ उसमें मंढे के अलग नाम और लक्षण तथा
गुण ॥ घोल मथित तक्र उद शिवत्वं कच्छि का येह मंढे के मंढे के नाम है ॥
पूर्वोक्त सर के सहित निर्जल को घोल कहते हैं और मथित जिसमें सर और
जल न हो उसको कहते हैं ॥ २३ ॥ जिसमें चीछाई जल होता है उसको तक्र क
हते और जिसमें आधा जल होता है उसको उद शिवत्वं कहा है ॥ तथा सार
हीन स्वच्छ बहुत जल से युक्त को कच्छि का कहते हैं ॥ २४ ॥ शर्करा
युक्त घोल रसाल के समान गुण में जानना चाहिये ॥

मथितं मुहु पा इति लोके ।

छच्छिका छाच्छ इति लोके ॥

वात पित्त हरं हृदि मथितं कफ पित्त नुत् ॥ तक्रं ग्रा
हि कषायाम्लं स्वादु पाकर संलघुः ॥ २५ ॥ वीर्यो
द्या दीपनं वृथ्यं प्रीणनं वात नाश नम् ॥ ग्रह रयादि
मतां पथ्यं भवेत्सङ्ग्राहि लाघवात् ॥ २६ ॥ किञ्च
स्वादु विषा कित्वा न्नच पित्त प्रकोप रा म् ॥ कषायो
द्या दीपनं वृथ्यं प्रीणनं वात नाश नम् ॥ २७ ॥ क-
षायो द्या विषा कित्वा द्रोक्ष्या चापि कफा पहम् ॥

भा० महाराजस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ छाच्छ इस प्रकार लोक में कहे
ते हैं ॥ मथित वात पित्त का नाणकल्हादि कफ पित्त का नाशक है ॥ तक्र का
विज कसेला खट्टा पाकर रस में मधुर हलका ॥ २५ ॥ वीर्य में उष्ण दीपन
शुक्रको करने वाला प्रीणन वात नाशक है ॥ और संग्रहणी वाले के हित है
महा का विज होता है हलके पन से ॥ २६ ॥ मधुर पाक होने से पित्त प्रकोप कर
ने वाला नहीं है ॥ कसेला उष्ण दीपन वृथ्य प्रीणन वात नाशक है ॥ २७ ॥ कसेला
उष्ण विषाक न होने से और रूक्षता से भी कफ नाशक है ॥

न तक्र से वीर्य घटे कदाचित् न तक्र दग्धाः प्रभवन्ति
रोगाः ॥ यथा सुराणां अमृतं सुरवाय तथा नराणां भु-
वि तक्र माहुः ॥ २८ ॥ उदंश्चित्कफ कृद्दल्यं आमघ्नं
परमं मतम् ॥ छच्छिका शीतला लघ्वी पित्त प्रमृ-
षा हरी ॥ २९ ॥ वात नुत्कफ कृत्सानु दीपनी ल-
वणान्विता ॥ अथो हृत घृत स्तोको हृता
तु हृत घृतानां तक्राणां गुराणाः ॥

भा० तक्र कासेदन करने वाला कदाचित् कृपा नहीं पाता तक्र से दग्ध रोग उत्पन्न नहीं होते ॥ जैसे देवताओंको सुरव के वासे अमृत होता है वैसेही मनुष्योंको भूलोक में तक्र कहा है ॥ २८ ॥ उदश्वित् कफ को करने वाला बलके हित परम आंव का नाशक कहा है ॥ छर्चिका शीतल हलकी पित्र ग्रम नृषा की नाशक है ॥ २९ ॥ बात नाशक कफ को करने वाली है और वोइ लव से युक्त दीपन है ॥ अनन्तर घी निकाला और थोड़ा घी निकाला तथा वे घृत निकाला हुआ ऐसे तक्र का गुण ॥

समुद्भूतं घृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः ॥ सोको हृ-
न घृतं तस्माद् गुरु दृष्यं कफा वहम् ॥ ३० ॥ अनु-
द्भूत घृतं सान्द्रं गुरु पुष्टि कफ प्रदम् ॥

अथ दोष विशेषे व्याधि विशेषे तक्र विशेषाः
वाते ऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठी सैन्धव संयुतम् ॥ पि-
त्रे स्वादु सिता युक्तं सव्योष मधिके कफे ॥ ३१ ॥ हि-
डु जीर युतं घोलं सैन्धवे नच संयुतम् ॥

भा० अच्छी तरह घी निकाला हुआ तक्र पथ्य और विशेष करके हलका होता है ॥ थोड़ा घृत निकाला हुआ उस्से मारी शुक्र को करने वाला और कफ को करने वाला है ॥ ३० ॥ घी निकाला हुआ सान्द्र मारी पुष्टि कफ को करने वाला है अनन्तर दोष विशेष में और रोग विशेष में तक्र विशेष को कहते हैं ॥ वात में अम्ल तक्र सोढ सैन्धव मे युक्त ॥ पित्र में मधुर चीनी के सहित और कफ में बिबुक्के सहित हित है ॥ ३१ ॥ हीङ्ग जीरे के सहित और सैन्धव के सहित ॥

भवेदती ववा तप्त मर्षो ऽती सार हृत्य रम् ॥ ३२ ॥
रुचिदं पुष्टिदं वल्यं वस्ति शूल विनाशनम् ॥ मू-
त्र रुच्छे तु मृगुडं पाण्डु रोगे स चित्र कम् ॥ ३३ ॥

अथा मपक तक्र गुणाः

तक्र मासं कफं कोष्ठे हन्ति करणं करोति च ॥ पीनस
प्रवास कासादौ पक्व मेव प्रयुज्यते ॥ ३४ ॥

भा० और सैन्धव के सहित घोल अतीव वात नाशक और ववासीर अतीसा
र का परम नाशक है ॥ ३२ ॥ तथा रुचिको करने वाला पुष्टि को देने वाला ब
ल के हित वांछित शूल का नाशक है ॥ मूत्र कृच्छ्र में गुड़ के सहित और पांडू
रोग में चित्रक के सहित हित है ॥ ३३ ॥ अनन्तर कच्चे और पक्के तक्र का गु
ण ॥ कच्चा मठा कोष्ठ में कफ को नाशक करता है और कंठ में कफ को
करता है ॥ पीनस प्रवास कासा दिक में पकाही योजना किया जाता है ॥ ३४ ॥

अथ तक्र सेवन निमित्तानि

शीत कालेऽग्निमान्द्ये च तथा वाता मयेयु च ॥ अ.

रुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्यादमृतो यमसू ॥ ३५ ॥

तद्बु हन्ति गरुर्दि प्रसेक वियमज्वरान् ॥ पाण्डु

मेदो ग्रह रण्यर्शो मूत्र ग्रह भगन्दरान् ॥ ३६ ॥ मेहं

गुल्ममतीसारं शूल ग्रीहोदरा रुचीः ॥ शिवत्र कोठ

गत व्याधीन् कुष्ठ शोथ तृषा कृमीन् ॥ ३७ ॥

भा० अनन्तर तक्र सेवन के कारण ॥ शीत काल अग्नि मान्द्य तथा वात रोग में भी ॥ अरुचि में स्रोतों के अवरोध में तक्र अमृत के समान होता है ॥ ३५ ॥
बोह विय वमन प्रसेक वियम ज्वर इनको ॥ और पांडू रोग मेद ग्रहणी रोग
ववासीर मूत्र ग्रह भगन्दर इनको ॥ ३६ ॥ तथा प्रमेह वाय गोल्ला अतीसार
शूल ग्रीहोदर अरुचि ॥ शिवत्र कोठ गत रोग कुष्ठ शोथ तृषा कृमि इनको ना
श करता है ॥ ३७ ॥

तक्रस्या विययाः । नैव तक्रं क्षते द-

द्यात्तनोष्णा काले न दुर्वले ॥ नमूच्छी भग दाहेयु

न रोगे रक्त पित्त जे ॥ ३८ ॥

अथ गव्यादीनां तक्राणां विशिष्टा गुणाः ॥

यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिषोत् ॥

इति श्री भावप्रकाशे तक्रवर्गः ।

भा० तक्रका अवियथ ॥ तक्र भूत में न देवे न उष्ण काल में न दुर्बल में ॥ न मू-
र्च्छी भ्रम दाह में न रक्त पित्त के रोग में देवे ॥ ३९ ॥ अनन्तर गाय आदिके त-
क्रों का विशेष गुण ॥ जो आठ दहीयों के गुण कहे हैं वोह गुण तक्र में जानले
वे ॥ इति भावप्रकाशे तक्रवर्गः ॥

अथ नवनीतवर्गः

तत्र नवनीतस्य नामानि गुणाश्च

सृक्षणां सरजं है यद्ग्वीतं नवनीतं कम ॥ नवनीतं हि
तं गव्यं वृष्यं वर्णा बलाग्निं कृत् ॥ ३९ ॥ संग्राहि ।

वातपित्तासृक् क्षयाग्निर्दितकासहृत् ॥ तद्धितं वा
लके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ॥ ४० ॥

[माहिषस्य गुणाः ।]

भा० अनन्तर मारखन के वर्गः । उसमें मारखन के नाम और गुण । सृक्षणा
सरज है यद्ग्वीतं नवनीतं क येह मारखन के नाम हैं ॥ गायका मारखन प-
थ्य शुक्र को करने वाला वर्ण बल अग्नि को करने वाला ॥ ३९ ॥ काविज वा-
त पित्त रक्त क्षय दवासीर् अर्दित कास इनका नाशक है ॥ वोह बालक वृद्ध
को हित है विशेष करके बालक को अमृत के समान है ॥ ४० ॥

अनन्तर भैस के मारखन का गुण ॥

नवनीतं माहिष्यास्तु वातश्लेष्मकरंगुरु ॥ दाहपित्त
श्रमहरं मेदःशुक्रविवर्धनम् ॥ ४१ ॥

अथ पयसो नवनी तस्य गुणाः ॥

दुग्धोऽत्यं नवनी तं नु चक्षुष्यं रक्त पित्त तुक् ॥ दृढं

बल्य मति स्निग्धं मधुरं ग्राहि शीतलम् ॥ ४२ ॥

अथ सद्यः समुद्भूत नवनीत गुणाः

भा० गैस का मारवन वात कफ को करने वाला भारी ॥ दाह पित्त अमक नाशक मेद शुक्र का बढ़ाने वाला है ॥ ४१ ॥ अनन्तर दूध के मारवन का गुण ॥ दूध का मारवन नेत्र के हित रक्त पित्त का नाशक ॥ शुक्र को करने वाला बल के हित बहुत चिकना मधुर का विज शीतल है ॥ ४२ ॥ अनन्तर ताजे मारवन का गुण ॥

नव नी तनु सद्यस्क स्वादु ग्राहि हिमं लघु ॥ मेध्यं

किञ्चित् कषायाम्ल भीय तक्रांश संक्रमात् ॥ ४३ ॥

अथ चिरन्तन नवनीत गुणाः ।

भा० ताजा मारवन मधुर का विज शीतल हलका ॥ कान्ति को करने वाला ॥ कुछ एक कसेला थोड़े मठे के अंश मिलने से ॥ ४३ ॥

अनन्तर पुराने मारवन का गुण ॥

सक्षार कटु काम्ले त्वा च्छर्च र्णः कुष्ट कारकम् ॥

प्लेखलं गुरु मे दस्यं नवनीत चिरन्तनम् ॥ ४४ ॥

इति श्री भाव प्रकाशे नवनीत वर्गः ॥

भा० क्षार के सहित कटु क खट्टा प्रन होने से वमन वर्वासीर कुष्ट इनको करने वाला है ॥ कफ को करने वाला भारी मेद को करने वाला पुराना मारवन है ॥ ४४ ॥

इति भाव प्रकाशे मारवन वर्गः ॥

अथ घृतवर्गः

तत्र घृतस्य नामानि गुणाश्च

घृतं माज्यं हविः सर्पिः कष्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ घृतं
रसायनं स्वादु चक्षुष्यं वह्नि दीयनम् ॥ ४५ ॥ शीत वी-
र्ये विद्या लक्ष्मी पाप पित्रा नित्वा पहम् ॥ अल्पाभि-
व्यन्दि कान्त्यो जस्ते जो लावण्य बुद्धि कृत् ॥ ४६ ॥
स्वरस्मृति करं मेध मायुष्यं बल कृद्गुरु ॥ उदा वर्त-
ज्वरोन्माद शूला नाह व्रणान् हरेत् ॥ ४७ ॥ स्निग्धं क-
फकरं रक्षः क्षय वीसर्प रक्त वृत् ॥

भा० अनन्तर घृतवर्गः । उसमें घृतके नाम और गुण । घृत आज्य हविः स-
र्पिः येह घृत के नाम हैं ॥ अनन्तर गुण कहते हैं ॥ घृत रसायन मधुरनेत्र के
हित अग्नि दीपन ॥ ४५ ॥ शीत वीर्य है और विद्या अ लक्ष्मी पाप पित्र वात इन
कानाशक है ॥ थोड़ा अभिव्यन्दि कालि औज तेज लावण्य बुद्धि इनको क-
रनेवाला ॥ ४६ ॥ स्वरस्मृति को करने वाला मेध आयु के हित बल को करने
वाला भारी ॥ उदा वर्त ज्वर उन्माद शूल अफारा व्रण इनको हरता है ॥ ४७ ॥
चिकना कफ को करने वाला रक्ष क्षय वीमर्प रक्त इनका नाशक है ॥

गव्यस्य घृतस्य गु० । गव्यं घृतं विशेषेणा चक्षुष्यं दृश्य-
मग्नि कृत् ॥ स्वादु पाक करं शीतं वात पित्रं कफा पहम्
॥ ४८ ॥ मेधा लावण्य कान्त्यो जस्ते जो बुद्धि करं परम् ॥
अलक्ष्मी पापरक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु ॥ ४९ ॥ बल्य-
पवित्र मायुष्यं सुमङ्गल्यं रसायनम् ॥ सुगन्धं रोचक-
चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ॥ ५० ॥

भा० गाय के घृत का गुण । गायका घृत विशेष करके नेत्र के हित शुक्र को करने वाला अग्नि को करने वाला ॥ मधुर पाक को करने वाला शीतल और वातपित्त कफ इनका नाशक है ॥ ४८ ॥ और मेधा लावण्य कान्ति भोज तेज इनकी परम वृद्धि को करने वाला ॥ अलक्ष्मी पाप राक्षस इनका नाशक वयका स्थापक भारी ॥ ४९ ॥ बल के हित पवित्र आयु के हित सुमंगल्य रसायन ॥ सुगन्ध रोग चतुर्मुद्र सव घृतो से गुण में अधिक है ॥ ५० ॥

माहि यस्य गुणाः । माहि यन्तु घृतं स्वादु पित्त रक्ता नि
ला पहम् ॥ शीतलं प्लेखलं वृष्यं गुरु स्वादु विपच्यते
॥ ५१ ॥ कागस्य गुणाः । आज माज्यङ्गुरोत्यग्निं च ।
क्षुष्यं बलवर्द्धनम् ॥ कासे प्रवासे क्षये चापि हितं ।
पाके भवेत्कटुः ॥ ५२ ॥ अथ उष्ट्री घृतम् ॥ औ
ष्ट्रं कटु घृतं पाके शोय क्रिमि विषा पहम् ॥ दीपनं क
फ वातघ्नं कुष्ठ गुल्मोदरा पहम् ॥ ५३ ॥

भा० अनन्तर भैंस के घृत का गुण ॥ भैंस का घृत मधुर पित्त रक्त वात इनका नाशक ॥ शीतल कफ को करने वाला शुक्र को करने वाला भारी और पाक में मधुर होता है ॥ ५१ ॥ अनन्तर वकरी के घृत का गुण ॥ वकरी का घृत अग्नि को करता है और नेत्र के हित बल को बढ़ाने वाला ॥ कांस प्रवास में भी हित है और पाक में भी कटु होता है ॥ ५२ ॥ अनन्तर ऊँटनी का घृत ॥ ऊँटनी का घृत पाक में कटु और शोय क्रिमि विष इनका नाशक ॥ दीपन कफ वात का नाशक कुष्ठ वायु मोला उदर रोग इनका नाशक है ॥ ५३ ॥

अथ आविकं घृतम् । पाके लघ्वा विर्क सर्पिः स-
र्वरोग विनाशनम् ॥ वृद्धिं करोति चास्थी नाम श्मरी
शर्करा पहम् ॥ ५४ ॥ चक्षुष्य मग्नि द्युयसं वात दोष
निवारणम् ॥ अथ नारी घृतम् ॥

भा० अनन्तर भेड़का घृत ॥ भेड़का घृत पाकमें हलका सर्व रोग का नाशक ॥ और हड्डीयों की वृद्धि को करता है तथा पथरी शर्करा इनका नाशक है ॥ ५४ ॥ नेत्र के हित अग्नि को करने वाला और वात दोष का निवारण है ॥ अनन्तर स्त्री घृत ॥

कफेऽनिले योनि दोषे पित्ते रक्ते च तद्धितम् ॥ च शुभ्राज्यं स्त्रीणां वा सर्पिः स्यादसृती पमम् ॥ ५५ ॥ अथाश्वी घृतम् ॥ वृद्धिं करोति देहाग्नेर्लघु पाके विद्या पहम् ॥ तर्पणं नेत्र रोगघ्नं दाहनुद्वज्जा घृतम् ॥ ५६ ॥ दुग्ध घृतस्य गुणाः ॥ घृतं दुग्धभवं ग्राहि शीतलं नेत्र रोग हन् ॥ निहन्ति पित्त दाहास्त्र मद मूर्च्छा भ्रमा नि लान् ॥ ५७ ॥

भा० कफ वात योनि दोष पित्तरक्त इनमें वोह हित है ॥ स्त्री का घृत नेत्र के हित और घृत अमृत के समान होता है ॥ ५५ ॥ अनन्तर घोड़ी का घृत ॥ देह अग्नि की वृद्धि को करता है और पाकमें हलका विषनाशक ॥ तर्पण नेत्र रोग का नाशक दाह नाशक घोड़ी का घृत होता है ॥ ५६ ॥ दूध के घृत का गुण ॥ दूध का घृत काविज शीतल नेत्र रोग का नाशक है ॥ और पित्त दाह रक्त मद मूर्च्छा भ्रम वात इनका नाशक है ॥ ५७ ॥

अथ ह्यस्तन दधिज घृतगुणाः ।

हवि र्ह्यस्तन दुग्धो न्यं तस्या द्वै यद्गवीन कम् ॥ हैयद्गवीनं चक्षुष्यं दीपनं रुचि कृत्परम् ॥ ५८ ॥ बल कृद्दं हरां वृष्यं विशेषात् ज्वर नाशनम् ॥

पुराण घृतस्य गुणाः ।

भा० अनन्तर हथनी के दही का घृत का गुण ॥ हथनी के घृत को हैयद्गवीन कम् ॥ हैयद्गवीनं चक्षुष्यं दीपन परम रुचि को करने वाला है ॥

॥५८॥ और बल को करने वाला पुष्ट शुक्र का करने वाला और विशेष करके
ज्वरनाशक होता है ॥ पुराने घीका गुण ॥

वर्या दृढं भवे दाज्यं पुराणं तत्रि दोष नुत् ॥ सूच्छी
कुष्ठ वियो न्मादा पस्मार तिमिरा पद्मम् ॥ ५९॥ यथा
यथा : खिलं सर्पिः पुराणं अधिकं भवेत् ॥ तथा
तथा गुरोः स्वैः स्वै रधिकं तद् दा हतम् ॥ ६०॥

अथ नूतनस्य घृतस्य विषयाः ॥

भा० बरस के ऊपर घी पुराना होता है वोह विदोष नाशक है ॥ और सूच्छी
कुष्ठ विष उन्माद अपस्मार तिमिर इनका नाशक है ॥ ५९॥ सब घृत जैसे
पुराना होता है ॥ वैसे २ अपने २ गुरों करके गुण में अधिक कहा है ॥ ६०॥
अनन्तर ताजे घीका विषय ॥

योज येन्व व में वाज्यं भोजने तर्पणे अमे ॥ बलक्षये ।
पाण्डु रोगे कामलानेन रोगयोः ॥ ६१॥

घृत प्रयोगस्या विषयाः

भा० नया घृत भोजन में तर्पण में अममें ॥ बल क्षय में पाण्डु रोगमें कामला
और नेत्र रोगमें यो जना करे ॥ ६१॥ अनन्तर जिसे घृत न देना चाहिये सोक
है तेहें ॥

राज यक्ष्मणि बाले च दृढे प्लेख कृते गदे ॥ रोगे
सामे विस्त्र चान्द्र विबन्धे च मदा त्यये ॥ ६२॥ ज्वरे
च दहनं मन्दे न सर्पि बहु मन्यते ॥

इति श्री भाव प्रकाशे घृत वर्गः ॥

भा० राज रोग में बालक और दृढ़ को कफ के रोगों ॥ आम के रोग में विस्त्रचिमें
विवन्धमें मदा त्ययमें ॥ ६२॥ और ज्वर में मन्दाग्नि में बहुत घृत अच्छा नहीं

हे ॥ इति भावप्रकाशे द्वावर्गः ॥

अथ सूत्रवर्गः

तत्र गोमूत्रगुणः ॥

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णं खण्डं क्षारं तिक्तं कषायकम् ॥ ल-
घ्वग्नि दीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥ ६३ ॥ शू-
लं गुल्मोदरनाहं कण्डूक्षि मुरव रोगजित् ॥ किला-
सगदवाताम वस्ति रुकं कुष्ठनाशनम् ॥ ६४ ॥ कास-
प्रवासापहं शोथकामलापाण्डुरोगहृत् ॥

भा० अथ सूत्रवर्गः । वस्ति गोमूत्र का गुणः । गोमूत्रं कटु तीक्ष्ण उष्ण क्षार-
तिक्त कषायक ॥ इनका अग्नि दीपन मेध्य पित्त को करने वाला कफ वात का
नाशक ॥ ६३ ॥ शूल वायु गोल उदर अनाह कंडू नैत्र रोग मुरद रोग इनको जीत
ने वाला है । किलास रोग आम वात वस्ति पीडा कुष्ठ इनका नाशक है ॥ ६४ ॥
कास प्रवास इनका नाशक सूजन कामला पाण्डू रोग इनका नाशक है ॥

कण्डू किलास गद शूल मुरवा क्षि रोगान् गुल्माति-
सार मरुदा मय मूत्र रोधान् कासं स कुष्ठ जठर क्रि-
मि पाण्डुरोगान् गोमूत्रं कमपि पीत मपा करोति
॥ ६५ ॥ सर्वेष्वपि च मूत्रे यु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम् ।
अतोऽविशेषात् कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥ ६६ ॥
प्रीहोदर प्रवास कास शोथ वची ग्रहापहम् ॥ शूल गु-
ल्म रुजा नाह कामला पाण्डुरोग हृत् ॥ ६७ ॥ कषाय-
तिक्त तीक्ष्ण ज्व पूरणात् कर्ण शूलनुत् ॥

॥५८॥ और बल को करने वाला पुष्ट शुक्र का करने वाला और विशेष करके
ज्वरनाशक होता है ॥ पुराने घीका गुण ॥

वर्या दूर्द्ध भवे दाज्यं पुराणां तत्रि दोष नुनू ॥ मूर्च्छा
कुष्ठ विषो न्मादा पस्मार तिमिरा यहमू ॥ ५९॥ यथा
यथा : खिलं सर्पिः पुराणा मधिकं भवेत् ॥ तथा
तथा गुरोः स्वैः स्वै रधिकं तदु दा हृतमू ॥ ६०॥

अथ नूतनस्य घृतस्य विषयाः ॥

भा० वरस के ऊपर घी पुराना होता है वोह विषय नाशक है ॥ और मूर्च्छा
कुष्ठ विष उन्माद अपस्मार तिमिर इन्का नाशक है ॥ ५९॥ सब घृत जैसे
पुराना होता है ॥ वैसे २ अपने २ गुरों करके गुण में अधिक कहा है ॥ ६०॥
अनन्तर ताजे घीका विषय ॥

योज येन्न व में वाज्यं भोजने तर्पणे अमे ॥ बलक्षये ।

पाण्डु रोगे कामलानेन रोगयोः ॥ ६१॥

घृत प्रयोगस्या विषयाः

भा० नया घृत भोजन में तर्पण में अम में ॥ बल क्षय में पाण्डु रोग में कामला
और नेत्र रोग में ये जना करे ॥ ६१॥ अनन्तर जिसे घृत न देना चाहिये सोक
हेते हैं ॥

राज यक्ष्मणि बाले च दृढे प्लेख कृते गदे ॥ रोगे
सामे विस्त्र चान्द विवन्धे च मदा त्यये ॥ ६२॥ ज्वरे
च दहने मन्दे न सर्पि बहु मन्यते ॥

इति श्री भाव प्रकाशे घृत वर्गः ॥

भा० राज रोग में बालक और दृढ़ को कफ के रोगों ॥ आम के रोग में विस्त्रि में
विवन्ध में मदा त्यय में ॥ ६२॥ और ज्वर में मन्दाग्नि में बहुत घृत अच्छा नहीं

हे ॥ इति भावप्रकाशे धृत वर्गः ॥

अथ सूत्रवर्गः

तत्र गोमूत्रगुणाः ॥

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तं कषायकम् ॥ ल-
घ्वरितं दीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥ ६३ ॥ शू-
ल गुल्मो दरा नाहं कण्डू क्षि मुरव रोग जित् ॥ किला-
सग दवा ताम वस्ति रुक् कुष्ठ नाशनम् ॥ ६४ ॥ कास-
श्वासा पहं शोथ कामला पाण्डु रोग हृत् ॥

भा० अथ सूत्रवर्गः । उक्ते गोमूत्र का गुणा । गोमूत्र कटु तीक्ष्ण उष्ण क्षार-
तिक्त कषायक ॥ हलका अग्नि दीपन मेध्य पित्त को करने वाला कफ वात का
नाशक ॥ ६३ ॥ शूल वायु गोला उदर अनाह कटू नेत्र रोग मुरव रोग इनको जीत
ने वाला है । किलास रोग आम वात वस्ति पीडा कुष्ठ इनका नाशक है ॥ ६४ ॥
कास श्वास इनका नाशक सूजन कामला पाण्डु रोग इनका नाशक है ॥

कण्डू किलास गद शूल मुरवा क्षि रोगान् गुल्माति-
सार मरु दा मय मूत्र रोधान् कासं स कुष्ठ जठर क्रि-
मि पाण्डु रोगान् गोमूत्रं मे कम्पि पीत मषा करोति
॥ ६५ ॥ सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणातीति अधिकम् ।
अतीति शोषात् कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥ ६६ ॥
प्रीहो दरा श्वास कास शोथ चर्चिग्रहा पहम् ॥ शूल गु-
ल्म रुजा नाह कामला पाण्डु रोग हृत् ॥ ६७ ॥ कषायं
तिक्त तीक्ष्ण च पूरणात् कणीशूलमुत् ॥

भा० खुजली किलास रोग शूल मुख नेत्र रोग ॥ गुल्म अति सार वात रोग मूत्र
रोध ॥ कास कुष्ठ के सहित उदर रोग किमि पांडू रोग इनको ॥ एक गो मूत्र पि-
या हुआ नाश करता है ॥ ६५ ॥ सद मूत्रों में गो मूत्र गुण में अधिक है ॥ इस
वास्ते विशेष करके कहने में मूत्र गो मूत्र को कहते हैं ॥ ६६ ॥ घ्रीहो दर उवास
कास सूजन मल ग्रह इनका नाशक है ॥ शूल वायु गोल्ल पीड़ा अफार कामला
पाण्डू रोग इनका नाशक ॥ ६७ ॥ कसेला तिक्त तीखा डालने से कर्ण शूल काना
शक है ॥

मानुष मूत्र गुणाः । नर मूत्रं गरं हन्ति सेवि त-
न्तश्च सायनम् ॥ रक्त पाप्मा हरं तीक्ष्णं सक्षार लवणं
स्थृतम् ॥ ६८ ॥ गोजावि महिषीणां नु स्त्रीणां मूत्रं ।
प्रशस्यते ॥ खरोष्ट्रे भनरा श्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्थृतम्
॥ ६९ ॥ इति श्री भावे प्रकाशे मूत्र वर्गः ॥

भा० मनुष्य के मूत्र का गुण ॥ मनुष्य का मूत्र विष को नाश करता है और
सेवन किया हुआ बोह रसायन है ॥ और रक्त पाप्मा का नाशक तीखा क्षार लवण
युक्त कष्ट है ॥ ६८ ॥ गाय बकरी गैस इन स्त्रियों का मूत्र प्रशस्त है ॥ और गधा
कंठ हाथी मनुष्य घोड़ा इन में नरों का मूत्र हित कहा है ॥ ६९ ॥

इति भाव प्रकाशे मूत्र वर्गः ॥

अथ तैल वर्गः

तल तैलस्य स्वरूप निरूपणम् ॥

तिलादि स्निग्ध वस्तु नो स्नेह सैल सुदा हृतम् ॥ त-
न्नु वात हरं सर्व विशेषा तिल सम्भवम् ॥ १ ॥

[अथ तिल तैल गुणाः]

भा० अन्तर तैल वर्गः । उसमें तैल का स्वरूप निरूपण । तिलादि स्निग्ध
पदार्थों को त्वक्नादों को तैल कहा है ॥ बोह सब वात नाशक है विशेष कर

के तिलका ॥१॥ अनन्तर तिल तैल का गुण ॥

तिल तैलं गुरु स्थैर्यं बल वर्ण करं सरम् ॥ वृष्यं वि
काशि विषदं मधुरं रस पाकयोः ॥ २ ॥ सूक्ष्मं कषाया
नुरसं तिक्तं वात कफा पहम् ॥ वीर्यं शोष्णं हिमं स्पर्शं
दंहरां रक्त पित्त कृत् ॥ ३ ॥ लेखनं बह्व विण्मूत्रं ग-
र्भा प्रय विशोधनम् ॥ दीपनं बुद्धिदं मेध्यं व्यायि ब्र-
ह्म मेहनम् ॥ ४ ॥ श्रोत्रयोनि शिरः शूल नाशनं लघुताक-
रम् ॥ त्वच्यं केश्यञ्च चक्षुष्यं मम्यङ्गे भोजनेऽन्यथा ॥ ५ ॥

भा० तिलका तैल भारी स्थैर्यं बल वर्ण इनको करने वाला सर ॥ शुक्रको
करने वाला विकाशि विशद रस पाकमें मधुर ॥ २ ॥ सूक्ष्म पीछे से कसेला
तिक्त वात कफ का नाशक ॥ वीर्य में उष्ण शीतल स्पर्श में पुष्ट रक्त पित्त को
करने वाला ॥ ३ ॥ लेखन मल मूत्र को बान्धने वाला गर्भा प्रय का पोषण ॥
दीपन बुद्धि को देने वाला मेध्य के हित व्यायि ब्रह्म प्रमेह का नाशक ॥ ४ ॥ कर्ण
योनि शिर इनके शूल का नाशक और हलका पन करने वाला ॥ त्वचा के हित
केश के हित नेत्र के हित अभ्यङ्ग में येह गुण हैं और भोजन में इसके विपरीत
गुण हैं ॥ ५ ॥

क्षिन्न भिन्न च्युतो त्रिष्ट मथित क्षत पिञ्चितं ॥

भग्न स्फुटित विक्ष्वाग्नि दग्ध विम्लिष्ट दारिते ॥ ६ ॥

तथाभिहत निर्मुग्ग मृग व्याघ्रादि विक्षते ॥ वस्त्रो या

नेऽन्त्र संस्कारे नस्ये करार्ण क्षि पूरणे ॥ ७ ॥ सैकाभ्य-

ङ्ग दगा हेयु तिल तैलं प्रशस्यते ॥

भा० क्षिन्न भिन्न च्युत त्रिष्ट मथित क्षत पिञ्चित ॥ भग्न स्फुटित विक्ष्वा-
ग्नि दग्ध विम्लिष्ट दारित ॥ ६ ॥ तथा अभिहत निर्मुग्ग मृग व्याघ्र आ-
दि विक्षत ॥ इनका विशेष अर्थ भग्न निदान में किया है इनमें वस्त्र में

पीने में अन्न के संस्कार में नस्यमें कर्ण नेत्र में मरने में ॥ ७॥ सेक अभ्यङ्ग अव
गाह इनमें तिल का तेल प्रशस्त है ॥

(क) ननु वृंहण लेखन योः कथं सामानाधि करण्य ।
मित्याह । रूक्षादि दुग्धः पवनः स्रोतः सङ्को चयेद्य
दा ॥ रसो सम्यग्वहनू कार्प्यं कुर्याद्रक्ताद्यवर्द्धयन् ॥
०॥ तेषु प्रवेष्टुं सरजसौक्ष्म्यस्निग्धत्वमाद्वैः ॥ तैलं
क्षमं रसं नेतुं कृशानां तैम वृंहणम् ॥ ४॥

भा० (क) शंका । वृंहण और लेखन कर्णों से सामानाधि करण्य सो कहे
ते हैं । रूक्षादि करके दुग्ध हुआ पवन जबसं कोच करता है ॥ रस अच्छी तरह
हवहता हुआ रक्तादियों को नचवाता हुआ कृशताकी करता है ॥ ०॥ सौक्ष्म्य
स्निग्धता और मृदुता इनकरके रससे उनमें प्रवेश करने को ॥ तैल ही समर्थ
है रसमें लेजाने को इस वास्ते कृशोंका पुष्ट करने वाला है ॥ ४॥

व्यवायि सूक्ष्मतीक्ष्ण सरत्वे मेदसः क्षयम् ॥ शनैः
प्रकुरुते तैलं तेन लेखनमीरितम् ॥ १०॥ द्रुतं पुरीषं
बध्नाति स्वलितं तत्र वर्तयेत् ॥ ग्राहकं सारकञ्चा
पि तेन तैलं सुदीरितम् ॥ ११॥ द्रुतमब्दात्परं पक्वं
हीनवीर्यं प्रजायते ॥ तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्था-
यि गुणाधिकम् ॥ १२॥

सरिस बराई तैल गुणाः ।

भा० व्यवायि सूक्ष्म तीक्ष्ण उष्ण और सरत्वं इनसे मेदका क्षय ॥ धीरे २ कर
ताहै इस वास्ते तैल लेखन कहा है ॥ १०॥ पतले मल को वात्थ ता है और उस
स्वलित की निकालता है ॥ उसे तैल का विज और सारक कहा है ॥ ११॥ पका
हुवा द्रुत वरस भरके ऊपर हीन वीर्य होता है ॥ और तैल कच्चा वा पका हुआ

चिरस्थायि गुणमि अधिक है ॥१२॥ सरसों और राई इनके तैल का गुण ॥

दीपनं सार्वपं तैलं कटु पाक रसं लघु ॥ लेखनं स्पर्श

वीर्योष्णं तीक्ष्णं पित्रास दूयकम् ॥ १३ ॥ कफमे

दोऽनिला शोर्ध्ने शिरः करणी मया यहम् ॥ करण्डं कु

ट्टं कृमि शिवत्र कोठं दूष्टं कृमि प्रणुत् ॥ १४ ॥ तद्वद्वा

जिक योस्तैलं विशेषा न्मूत्रं रुच्छं कृत ॥

भा० सरसों का तैल दीपन पाक और रस में कटु हलका लेखन स्पर्श और वीर्य में उष्ण तीव्र रक्तपित्त का दूयक ॥ १३ ॥ कफ मेद वान ववा शिर त्रिगे रोग करी । रोग इनका नाशक ॥ और कण्डू कुष्ठ कृमि शिवत्र कोठ दूष्ट कृमि इनका नाशक ॥ १४ ॥ वैसंती एडियों का तैल है विशेष करके मल मूत्र रुच्छ का करने वाला है ॥

राजि कयोः कृष्ण राई आरक्त राई द्वयोः ॥ १५ ॥

तीरी तैल गुणाः ॥ तीक्ष्णोष्णं नुवरी तैलं लघु ग्राहि

कफा स्वनित् ॥ वह्निं कृद्विष हृत्करण्डं कुष्ट कोठं कृ

मि प्रणुत् ॥ १६ ॥ मेदो दोया यह न्चा पि ब्रण शोय

हरं परम् ॥ अथ अतसी तैल गुणाः ॥

भा० राई काली और लाल दोनों का ॥ नुवरी तैल । नुवरी तैल तीव्र उष्ण हलका का विज कफ रक्त को जीतने वाला ॥ अग्नि को करने वाला विष नाशक और खुजली कुष्ठ कोठ कृमि इनका नाशक ॥ १६ ॥ मेद दोय का नाशक और परम ब्रण शोय का नाशक ॥ अनन्तर अतसी के तैल का गुण ॥

अतसी तैल माग्नेयं स्निग्धोष्णं कफ पित्र कृत् ॥ क

टु पाक म चक्षुष्यं वल्यं वात हरं गुरु ॥ १७ ॥ मल क

द्र सतः स्वादु ग्राहि त्वग्दोष हृद घनम् ॥

वस्त्रो पाने तथाभ्यङ्गे नस्थे कणस्य पूरणो ॥ १७ ॥ अ
नुपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशान्तये ॥

भा० अलसीका तेल आग्नेय चिकना उष्ण कफ पित्त को करने वाला ॥ पाक में कटु नेत्र के अहित बल के हित वात नाशक भारी होता है ॥ १६ ॥ मल को करने वाला रस में मधुर का विजत्व चा के दोष का नाशक गाढ़ा होता है ॥ वस्त्र में पीने में तथा अभ्यङ्ग में नास में कान के डालने में ॥ १७ ॥ अनुपान विधि में भी वात शान्ति के अर्थ योजना करनी चाहिये ॥

वररे तैलं गुणम् ॥ कुसुम्भ तैलं मम्लं स्यादुष्णं गुरु
विदाहि च ॥ चतुर्भ्या सहितं बल्यं रक्तपित्तकफप्र
दम् ॥ १८ ॥ अथ खारवसवीज तैलस्य गुणम् ॥
तैलं तु खसवीजानां बल्यं दृढ्यं गुरु स्मृतम् ॥ वात
हृत्कफहृच्छीतं स्वादुपाकरसंचतम् ॥ १९ ॥

भा० अनन्तर कुसुम्भ के तेल का गुण ॥ कुसुम्भ का तेल खट्टा होता है और उष्ण भारी विदाहि ॥ नेत्रों के अहित बल के हित रक्त पित्त कफ इनको करने वाला है ॥ १८ ॥ अनन्तर खस खस के तेल का गुण ॥ खस खस का तेल बल के हित शुक्र को करने वाला भारी कहा है ॥ वात नाशक और कफ नाशक शीतल रस पाक में मधुर बोह होता है ॥ १९ ॥

एरण्ड तैलं गुणम् ॥ एरण्ड तैलं तीक्ष्णोष्णं दीप
नं पिच्छिलं गुरु ॥ दृढ्यं त्वच्यं वयःस्थापि मेधाका
न्तिबलप्रदम् ॥ २० ॥ कषायानुरसं सूक्ष्मं योनिशु-
क्रविशोधनम् ॥ विस्त्रं स्वादु रसे पाके सतिक्तं कटुकं
सरम् ॥ २१ ॥ विषमं ज्वरहृद्दोगष्ट्यगुह्यादिशूल
नुत ॥ हन्ति वातोदरानाहगुल्मासीलाकटिग्रहान् ॥ २२ ॥

भा० अनन्तर अंडीके तैल का गुणा ॥ अंडीका तैल तीखा गरम दीपन पिच्छिल भारी ॥ शुक्र को करने वाला त्वचाके हित वयको स्थापन करने वाला मेधा कान्ति बल इनको करने वाला है ॥ २० ॥ पीकेसे कसेला सूक्ष्म योनि शुक्र का शोधन ॥ दुर्गंधि युक्त रसमें मधुर और पाक में कुछ तिक्त कटुक सर ॥ २१ ॥ विषम ज्वर हृद रोग पीठ गुदा आदिके शूलका नाशक है ॥ वातोदर अफारा वायुगोला अशीला कटिग्रह ॥ २२ ॥

वात शोणित विडु बन्ध ब्रध्म शोथ मविद्र धीन ॥ आम वात गजेन्द्रस्य शरीर वनचारिणः ॥ २३ ॥ एक एव निहन्ताय मेरुण्ड स्नेह के शरी ॥ राल तैल गुणाः तैलं सर्जर सोद्वृत विस्फोट व्रण नाशनम् ॥ कुछ पामा कृमि हरं वात प्लेक्षा मया पंहम् ॥ २४ ॥ सर्व तैल गुणाः । तैलं स्वयोनि गुण कृद्वाग् भटे नाखिल मतम् ॥ अतः शेषस्य तैलस्य गुणा ज्ञेया स्वयोनिवत् ॥ २५ ॥ इति श्री भाव प्रकाशे तैल वर्गः ॥

भा० वात रक्त वह्न मल वद सृजन आम विद्रधि इनको नाश करता है ॥ शरीर रूपी वन में विचरने वाले आम वात रूपी गजेन्द्र की ॥ २३ ॥ एक ही नाश करने वाला अंडी रूप सिद्ध है ॥ अनन्तर राल के तैल का गुणा ॥ राल का तैल विस्फोट व्रण इनका नाशक है ॥ और कुछ पामा कृमि इनका नाशक तथा वात कफ के रोग का नाशक है ॥ २४ ॥ सब तैल के गुणा ॥ जिसका तैल होता है उसीके समान गुण में होता है ऐसा वाग भटने सब तैलों का गुण माना है ॥ इस वास्ते बाकी तैल के गुण अपने कारण के समान जानना चाहिये ॥ २५ ॥

इति भाव प्रकाशे तैल वर्गः ॥

अथ सन्धानवर्गः

तत्र काञ्जिकस्य लक्षणं गुराणां च ।

सन्धितं धान्यमण्डादिकाञ्जिकं कथ्यते जनैः ॥ का
ञ्जिकं भेदितीक्ष्णगोष्ठां रोचनं पाचनं लघु ॥ २६ ॥ दा
हज्वरहरस्पर्शान्नाह्नाह्नातकफापहम् ॥ मायादि
वदकैर्यन्त्रक्रियते तद्गुराणाधिक्कम् ॥ २७ ॥ लघुवा
तहरन्तन्त्रोचनं पाचनं परम् ॥

भा० अनन्तर सन्धानवर्गः ॥ उसमें कांजी का लक्षण और गुरा ॥ सन्धान कि
या हुआ धान्य मण्डादिक को जन कांजी कहते हैं ॥ कांजी भेदन करने वाली तीखी
उष्ण रोचन पाचन हलकी होती है ॥ २६ ॥ स्पर्श से दाह ज्वर की नाशक और पी
ने से बात कफ की नाशक है ॥ उड़द आदि के बड़े डाल के जो की जाती है वोह गु
रामें अधिक होती है ॥ २७ ॥ हलकी बात नाशक रोचन परम पाचन होती है ॥

शूला जीर्णी विवन्धाम नाशनं वस्ति शोधनम् ॥ २८ ॥

शोथमूर्च्छाभ्रमात्रिणां मदकण्डुविशोधिगाम ॥ कु

ष्ठिनां रक्तपित्तीनां काञ्जिकं न प्रशस्यते ॥ २९ ॥

पाण्डुरोगे यक्ष्मणि च तथा शोया तु रेखु च ॥ क्ष

तक्षीरा तथा श्रान्तमन्दज्वरनिपीडित ॥ ३० ॥ रा

ते यान्तु हितं प्रीतं काञ्जिकं दोषकारकम् ॥

अथ तृतीयोऽयं कस्य लक्षणं गुराणां च

भा० शूल अतीर्णी विवन्ध आम इनका नाशक वस्ति शोधन ॥ २८ ॥ शोथ मूर्च्छा
भ्रम इनसे पीडित को और मद कण्डु विषोय वालोंको ॥ कुष्ठ वालोंको रक्त पि
त वालोंको कांजी अच्छी नहीं है ॥ २९ ॥ पाण्डु रोग राज यक्ष्मा तथा शोथ से

पीडित ॥ क्षत क्षीण तथा श्रान्त मन्द ज्वर से पीडित ॥ ३० ॥ इनको कांजी और दो
य कार क कहैं ॥ अनन्तर तुषो दक का लक्षणा और गुणा ॥

तुषो दकं यवै रामैः सनुषैः शकली कृतैः । यवैः उद
के संहितैः सन्धान वर्गीकृत त्वात् ॥ तुषास्तु दीपनं ह
द्यं पाण्डु कृमि गदा पल्लम् । तीक्ष्णोष्णं पाचनं पित्त
रक्त कृदस्ति शूल नुत् ॥ ३१ ॥

अथ सौ वीरस्य लक्षणा गुणाश्च

सौ वीरन्तु यवै रामैः पक्कै र्वा निस्तुषैः कृतम् ॥ गो
धूमै रपि सौ वीर माचार्याः केचि दू चिरे ॥ ३२ ॥ सौ वी
रन्तु ग्रह रयशः कफ भ्रं भेदि दीपनम् ॥ उदा वर्त्त
द्ग मदीस्थि शूलानां हेयु शस्य ते ॥ ३३ ॥

भा० मैं छिल के तक कच्चे टुकड़े किये हुवे जवों से तुषो दक होता है ॥ उदक
में संहित यवों से क्योंकि संधान वर्ग में कहते से ॥ तुषो दक दीपन हृद्य पाण्डु
रोग कृमि रोग इनका नाशक ॥ तीखा उष्ण पाचन पित्त रक्त को करने वाला बल
शूलका नाशक है ॥ ३१ ॥ अनन्तर सौ वीर का लक्षणा और गुणा ॥

कच्चे जब अथवा पके हुवे वे छिल को के से किया हुवा सौ वीर है ॥ कोई आ
चार्य गेहू से भी सौ वीर होता है ऐसा कहते हैं ॥ ३२ ॥ सौ वीर संग्रहणी बवा
सीर कफ इनका नाशक भेदि दीपन है ॥ उदा वर्त्त अङ्ग मर्द अस्थि शूल अ
फार इनमें प्रशस्त है ॥ ३३ ॥

अथ रना लस्य लक्षणा गुणाश्च ।

आरना लन्तु गोधूमै रामैः स्यान्नि स्तुषी कृतैः ॥ पक्कै
र्वा सन्धितैस्तु सौ वीर सदृशं गुणैः ॥ ३४ ॥

अथ धान्यालस्य लक्षणा गुणाश्च ।

भा० अनन्तर आरनालका लक्षणा और गुणा । देखिन के के कच्चे गेहूं वैसे आरनाल होता है ॥ अथ वा पके सन्धान किये उनसे वोह सो वीर के सदृश गुणमें होता है ॥ ३४ ॥ अनन्तर धान्याम्ल का लक्षणा और गुणा ॥

धान्याम्ल शालि चूर्णञ्च कोद्रवादि कृतं भवेत् ॥
धान्याम्लं धान्यं योनि त्वाग्नीरागं लघु दीपनम् ॥ ३५ ॥
अरुची वात रोगेषु सर्वेष्वस्थापने हितम् ॥

अथ शिराडा क्या लक्षणा गुणाश्च
शिराडा की राजि का युक्तैः स्यान्मूलकदलद्रवैः ॥ -
सर्षपस्वरसे त्रीणि शालि पिष्टक संयुतैः ॥ ३६ ॥
सन्धितै रिति शेषः ।

भा० चावल का चूर्ण और कोदरे आदि से बनाया हुआ धान्याम्ल होता है ॥ धान्य से होने से धान्याम्ल होता है वोह ग्रीवाग्न हलका दीपन है ॥ ३५ ॥ अरुचि में वातरोग में और सब आस्थापन में हित है ॥ अनन्तर शिराडा की लक्षणा और गुणा ॥ रई से युक्त मूली के पत्रों का रस ॥ और सरसों के स्वरस से भी चावल की चिही में युक्त इनसे शिराडा की होती है ॥ ३६ ॥ सन्धितै रिति शेषः

शिराडा की रोचनी गुर्वी पित्र श्लेष्म करो स्मृता ॥

अथ शुक्लस्य लक्षणा गुणाश्च
कल्दं मूल फलादीनि सस्नेह लवणा नि च ॥ यत्र
द्रव्यैः शि स्यूयन्ते तच्छु क्त मभिधीयते ॥ ३७ ॥
शुक्तं कफघ्नं तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु ॥ पां
रुड्किमिहं रूक्षं भेदनं रक्त पित्र कृतम् ॥ ३८ ॥

अथ सन्धानस्य लक्षणा गुणाश्च ।

भा० शिरडा की रोचन भारी पित्त कफ को करने वाली कही है ॥ अनन्तर शु-
क्त का लक्षणा और गुण । कन्द मूल फल आदि और चिकनाई लवण ॥

येह जिस द्रव्य में पड़ते हैं उसको शुक्त कहते हैं ॥ ३७ ॥

शुक्त कफ नाशक तीखा उष्ण रोचन पाचन हलका ॥ पाण्डु किनि काना
शक रूखा भेदन रक्त पित्त का करने वाला है ॥ ३८ ॥

अनन्तर सन्धान का लक्षणा और गुण ॥

कन्द मूल फलाढ्यं यत् ननु विज्ञेयमा सुतम् । तं

द्रव्यं पाचनं वात हरं लघु विशेषतः ॥ ३९ ॥

अथ मद्यस्य नामानि लक्षणां गुणान्म्ह ।

मद्यन्तु सी धुर्मे रेय मिराच मदिरा सुरा ॥ कादम्ब

री वासुणी च हालापि बल बल्लभा ॥ ४० ॥ येयं

यन्मादकं लोके स्तन्मद्यमभिधीयते ॥ यथारि

ष्टं सुरा सीधु रास वाद्य मने कथा ॥ ४१ ॥ मद्यं स

र्वं भवेदुष्यं पित्त कृद्वात नाशनम् ॥ भेदनं शीघ्र

पाकञ्च रूक्षं कफ हरं परम् ॥ ४२ ॥ अम्लञ्च

दीपनं रुच्यं पाचनं चाणु करि च ॥ तीक्ष्णं सूक्ष्म

ञ्च विषादं व्यवायिच विकाषि च ॥ ४३ ॥

भा० कंद मूल फल से युक्त जो होता है उसको आसुत जानना चाहिये ॥ वोह
रूचिको करने वाला पाचन वात नाशक विशेष करके हलका होता है ॥ ३९ ॥

अनन्तर मद्य के नाम लक्षणा और गुण । मद्य सीधू में रेय इरा मदिरा सु-
रा ॥ कादं वरी वासुणी हाला बल बल्लभा ॥ येह मीदिरा के नाम है ॥ ४० ॥

जो पानी नष्ट करने वाला है उसको लोग मद्य कहते हैं ॥ जैसे अरिष्ट सुरा सी-
धु और सैव आदि अनेक प्रकार के हैं ॥ ४१ ॥ सब मद्य उष्ण पित्त करने वा-
ले वात नाशक ॥ भेदन शीघ्र पाक रूखे परम कफ नाशक है ॥ ४२ ॥

और खट्टे दीपन रुचि को करने वाले पाचन आशुकारी ॥ तीक्ष्ण सूक्ष्म वि-
शद व्यवायि और विकाशि होते हैं ॥ ४३ ॥

अथारिष्टस्य लक्षणां गुणाश्च ।

पक्षौष घाम्बु सिद्धं यन्मद्यं तत् स्याद रिष्ट कम् ॥

(क) अरिष्टं मद्य मिति लोके । यथा द्राक्षा रि-
ष्टम् । दश मूला रिष्टम् । ववूला रिष्ट मिति ।

अरिष्टं लघु पाकेन सर्वं नश्च गुणाधिकम् ॥ अ-
रिष्टस्य गुणा ज्ञेया बीज द्रव्यं गुणैः समाः ॥ ४४ ॥

भा० अनन्तर अरिष्ट के लक्षण और गुण ॥ पक्ष भौषध का जो सिद्ध जल है
उसको मद्य कहते हैं और वो अरिष्ट कहें ॥ (क) लोक में मद्य कहते हैं
। जैसे द्राक्षा रिष्ट । दश मूला रिष्ट । ववूला रिष्ट इस प्रकार ।
अष्ट पाक करके हलका और सबसे गुण में अधिक होता है ॥ बीज द्रव्य
गुण के समान अरिष्ट का गुण जानना चाहिये ॥ ४४ ॥

अथ सुरापान लक्षणां गुणाश्च ॥

शालि यष्टि कपि छादि कृतं मद्यं सुरा स्मृता ॥ सुरा गु-
र्वी बलस्तन्य पुष्टि मेदः कफ प्रदा ॥ ४५ ॥ ग्राहि शोथ
ज्व गुल्माशो ग्रहणी मूत्र कृच्छ्रनुत् ॥ अथ सुरा भे-
दो वारुणी तस्या लक्षणां गुणाश्च ॥ ४६ ॥

भा० अनन्तर सुरापान का लक्षण और गुण ॥ सारी चांदल की पिट्टी आदि से ब-
नाया हुआ मद्य को सुरा कहा है ॥ सुरा भारी बल दुग्ध पुष्टि मेद कफ को करने वाली
॥ ४५ ॥ का विज सृजन वाय गोला ववासीर संग्रहणी मूत्र कृच्छ्र इनका नाशक
है ॥ अनन्तर सुरा का मेद वारुणी उसका लक्षण और गुण ॥ ४६ ॥

पुनर्नवा शिला पिष्टे वारुणी विहिता स्मृता ॥

संहितै स्ताल खजूर रसे र्या सापि वारुणी ॥४७॥

सुरा वद्धारुणी लघ्वी पीनसा धान शूलनुत् ॥

सुरा तो भेदार्य लघ्वी ति ।

अथ सीधु ह्यस्य लक्षणं गुणाश्च ।

भा० पुनर्नवा शिला पिष्ट से विहित वारुणी कही है ॥ और ताड़ खजूर इनके र सके संधान से जो होती है वोभी वारुणी है ॥४७॥ सुरा के समान वारुणी हलकी और पीनस आध्यान शूल इनकी नाशक है ॥ सुरा से भेदार्य हलकी ऐसा कह है ॥ अनन्तर दोनों सीधू का लक्षण और गुण ॥

इक्षोः पक्वैः रसैः सिद्धः सीधुः पक्वरसश्च सः ॥ आ

मै सै रेवयः सीधुः सच शीत रसः स्मृतः ॥४८॥

सीधुः पक्वरसैः श्रेष्ठः स्वराग्नि बलवर्णकृत् ॥ वा

तपित्त करः सद्यः स्नेह तो रोचनो हरेत् ॥४९॥

विवन्धमेदः शोफार्शः शोफोदरकफा मयान् ॥ त

स्मा दल्प गुणः शीतः रसः संलेखनः स्मृतः ॥५०॥

अथा सवस्य लक्षणं गुणाश्च ।

भा० इक्षु के पक्व रस से सिद्ध सीधु और पक्व रस वो है ॥ तथा उसी कच्चे रस से जो सीधू होता है उसको शीत रस कहा है ॥४८॥ पक्व रस सीधू श्रेष्ठ है वोह स्वर अग्नि बल वर्ण इनको करने वाला ॥ और वात पित्त को करने वाला तत्काल । स्नेह न रोचन होता है ॥४९॥ और विवन्धमेद शोफ ववासीर शोफोदरकफ के रोग इनको नाश करता है ॥ इसे अल्प गुण शीत रस कहा है ॥ और लेखन कह है ॥५०॥ अनन्तर आसव का लक्षण और गुण ॥

यद् पक्वोय घाम्बुस्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ॥

यथा लोहास वादिः ।

आसवस्य गुणा ज्ञेया बीज द्रव्य गुरोः समाः ॥

अथ नव पुराण मद्य गुणाः ॥

मद्यं नव माभिव्यन्दि त्रिदोष जनकं सरम् ॥ अहृद्यं

बृंहणं न्दाहि दुर्गन्धं विशदं गुरु ॥ ५१ ॥ जीरीन्तदे

व रोचिष्णं कृमि प्लेक्षा निला पहम् ॥ इह्यं सुग

न्धि गुण वल्लघु स्रोतो विशोधनम् ॥ ५२ ॥

भा० जो अपक्व औषध के जल से सिद्ध मद्य बोह आसव है ॥ जैसे लोहा सब आदि । आसव के गुण बीज द्रव्य के गुण के समान जानना चाहिये ॥ अनन्तर नया और पुराने मद्य का गुण । नवीन मद्य अभिव्यन्दि त्रिदोष को करने वाला सर ॥ अहृद्य पुष्ट दाह को करने वाला दुर्गन्ध विशद भारी ॥ ५१ ॥ और बोही जीरी पुराना रुचिका करने वाला कृमि कफ वात इनका नाशक ॥ इह्यं सुगन्धि गुण युक्त हलका स्रोतों का शोधन करने वाला है ॥ ५२ ॥

अथ सात्विकानां मद्यं पिवतां चेष्टा विशेषाः ॥ ५३ ॥

सात्विके गीतं हास्यादि राजसे साहसादिकम् ॥ ता

मसे निन्द्य कर्माणि निद्राञ्च मदिरा चरेत् ॥ ५३ ॥

आचरेत् कुर्व्यात् । विधिना मातृ या काले हितैर

नैर्यथा वलम् ॥ ग्रहस्यो यः पिवन्मद्यं तस्य स्याद

मृतं यथा ॥ ५४ ॥ ५४ ॥ ५४ ॥ ५४ ॥

भा० मद्य पीने वाले सात्विकादियों के चेष्टा विशेष । सात्विक के गीत हास्य आदि राजस में साहसादिक ॥ ५३ ॥ तामस में निन्द्य कर्म और निद्रा इनको मदिरा करती है ॥ विधि और मात्रा में मद्य पर हित अन्न के साथ चला नुसार ॥ हर्ष युक्त हुवा जो पीता है उसको मद्य अमृत के समान जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ॥ अ

युक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथा स्मृतम् ॥ ५५ ॥

अथ मद्यानां गन्धनाशनोपायः॥

मुसैल वाल गद जीर कधान्य कैल । यश्चर्व यत्स
दसि वाचं मभिव्य नक्ति ॥ स्वाभाविकं मुखज भुज्ज
निपूति गन्धं गन्धञ्च मद्यल सुतादि भवञ्च नूनम् ॥
५६॥ इति श्री भाव प्रकाशे सन्धान वर्गः ॥

भा० मद्य स्वभाव से जैसे अन्न वैसे कहा है ॥ लेकिन वेत्र कीव से पीया हुआ ॥
को कारता है और तरकीव के साथ पीया हुआ अमृत के समान होता है ॥ ५५॥

अनन्तर मद्यों का गन्ध नाशन उपाय ॥ ॥ नागर मोथा लानु का कुट जीरा चनिया
इलायची इनकी चयाकर जो मभामें बोले उसकी स्वाभाविक मुखकी गन्धि होती है
और दुर्गन्ध तथा मद्यल सुन आदिकी गन्ध निश्चय दूर होती है ॥ ५६॥

इति भाव प्रकाशे सन्धान वर्गः ॥ + ॥

अथ मधु वर्गः

तत्र मधुनो नामानि गुणाश्च ।

मधु माक्षी कमाक्षी क क्षौद्रं सारघ्य मीरितम् ॥ मक्षि-
का वरती भृङ्गवान्त पुष्पर सौद्र भवम् ॥ ५७॥ मधु
शीतं लघु स्वादु रूक्षं ग्राहि विलेख नम ॥ चक्षुष्यं
न्दीयनं स्वर्ग्यं व्रण शोधन गेषणाम् ॥ ५८॥ सौकुमा-
र्यं करं सूक्ष्मं परं श्रोतो विशोधनम् ॥ कयाथा नुरं
सं ह्लादि प्रसाद जनकं परम् ॥ ५९॥

भा० अनन्तर मधु वर्गः । उसमें मधु के नाम और गुण । मधु माक्षी कमाक्षी क क्षौद्रं सारघ्य मीरितम् ॥ मक्षि-
का वरती भृङ्गवान्त पुष्पर सौद्र भवम् ॥ ५७॥ मधु शीतल हलका मधुर रूखा का विज लेखन ॥ नेत्रों के हित दीप
न स्वर्ग्यो अच्छ करन वाला व्रण शोधन गेषण ॥ ५८॥ सुकु मारता को करने ।

वाला सूक्ष्म अत्यन्त स्रोतों का प्रोधान ॥ पीके से कसेला हर्षको देने वाला और य
रम स्वच्छता को करने वाला ॥ ५६ ॥

वरुण्य मेधा करं दृश्यं विशदं रोचनं हरेत् ॥ कुष्ठार्शः
कास पित्रास्र कफ मेह क्लम कृमीन् ॥ ६० ॥ मेदश्च
षण वमि प्रवास हिक्कातीसार विड् ग्राहान् ॥ दाह
क्षत क्षयांस्तनु योगवाह्य ल्य वात लम् ॥ ६१ ॥

अथ मधु भेदाः । माक्षिकं आमरं क्षौद्रं पौनिकं छात्र
मित्यपि ॥ आर्घ्यं मौद्गलकं दाल मित्यथैव मधु जातयः
॥ ६२ ॥ अथ तेषां लक्षणां गुणां च ॥

भा० वर्ण के हित कान्ति को करने वाला शुक्र को करने वाला विशद रोचन है और
र ॥ कुष्ठ ववा सीर कास रक्त पित्त कफ प्रमेह क्लम क्रमि इनको ॥ ६० ॥ और मेद
तृषा वमन प्रवास हिक्का, अतीसार मल ग्रह इनको तथा ॥ दाह क्षत क्षय इनको
भी दूर करता है और योग वाही अल्प वात को करने वाला है ॥ ६१ ॥ अनन्तर मधु
के भेद । माक्षिक आमर क्षौद्र पौनिक छात्र ॥ आर्घ्य औद्गलक और दाल इस प्र
कार आठ मधुकी जाती है ॥ ६२ ॥ अनन्तर उनके लक्षणा और गुण ।

तत्र माक्षिकस्य लक्षणा म् ।

माक्षिकाः पिङ्गवर्णास्तु महान्यो मधु माक्षिका ॥ ता
भिः कृतं तैलवर्गं माक्षिकं परिकीर्तितम् ॥ ६३ ॥
माक्षिकं मधुयु श्रेष्ठं नेत्रा मय हरं लघु ॥ कामलार्शः
क्षत प्रवास कास क्षय विनाशनम् ॥ ६४ ॥

अथ आमरस्य लक्षणां गुणां च ॥

किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यः यदृष्येभ्योऽलिभिश्चितम्
निर्मलं स्फटिकाभं यत्तन्मधु आमरं स्मृतम् ॥ ६५ ॥

भा० उन्ते माक्षिक का लक्षणा । माक्षिक पिङ्गु वर्ण वही मधु भरन्वी होती है ॥ उनसे किया हुआ तेल के समान वर्ण ऐसे को माक्षिक कहा है ॥ ६३ ॥ माक्षिक मधु श्रेष्ठ नेत्ररोगनाशक हलका होता है और कामला ववासीर क्षत श्वस्त का स्क्षय इनका नाशक है ॥ ६४ ॥ अनन्तर आमर का लक्षण और गुण ॥ किंविदसूक्ष्म प्रसिद्ध यत् पद भव्ये से संय किया हुआ ॥ निर्मल स्फटिक के समान जो होता है । उसको आमर कहते हैं ॥ ६५ ॥

आमरं रक्त पित्तघ्नं मूत्रजाड्य करं गुरु ॥ स्वादु पाक म
भिष्यन्दि विशेषा त्पिच्छिलं हिमम् ॥ ६६ ॥

अथ क्षौद्रस्य लक्षणां गुणांश्च ॥

माक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्रा रव्यास्तत्कृतं मधु ॥
मुनिभिः क्षौद्रं मित्युक्तं तद्गुणान् कपिलं भवेत् ॥ ६७
गुरो माक्षिकवत् क्षौद्रं विशेषा न्मेहनाशनम् ॥

अथ पौति कस्य लक्षणां गुणाः ॥

भा० आमर रक्त पित्त का नाशक मूत्र जड़ता इनको करने वाला भारी ॥ पाक में मधुर अभिष्यन्दि विशेष करके पिच्छिल शीतल होता है ॥ ६६ ॥

अनन्तर क्षौद्र का लक्षण और गुण ॥ ॥

सूक्ष्म कपिल क्षुद्र नाम जो माक्षिका होती है उनका किया हुआ जो मधु है ॥ उसको मुनियोंने क्षौद्र ऐसा कहा है और वोह वर्ण में कपिल होता है ॥ ६७ ॥ गुण में माक्षिक के समान क्षौद्र होता है विशेष करके मेह नाशक है ॥

अनन्तर पौतिक का लक्षण और गुण ॥ ॥

कृष्णा या मग्ना कोपमा लघुतरा प्रायो महा पीडिका ॥

वृक्षानान्तरु कीटान्तर गताः पुण्या सर्वं कुर्वते ॥ ६८

तास्तज्ज्ञैरिह पूतिका निगदिता स्ताभिः कृतं मपिष्या

तुल्यं यत् मधु तद्गुणे चरजनैः संकीर्तितं पौतिकम् ॥ ६९

पौनिकं मधु रूक्षोऽयं पित्त दाहास्त्र वात कृत् ॥ विदा
हि मेह रुच्छ्रं ग्रन्थ्यादि क्षत शोथि च ॥ ७० ॥

भा० जो काली मच्छर के समान बहुत खोटी प्रायः बड़ी पीड़िका ॥ पुराने
दृक्ष के खोड़ में रहने वाली युष्मके आसव को करती है ॥ ६८ ॥ उन को
उनके जानने वाले मनुष्यों ने यहां पर पुत्रिका ऐसा कहा है ॥ उनका बनाया
हुवा घृत के समान ॥ जो मधु होता है उसकी बन के विचरने वाले जनों ने पौ-
निक कहा है ॥ ६९ ॥ पौनिक मधु रूखा उष्ण पित्त दाह रक्त वात इनकी करनेवा
ला ॥ विदाहि और प्रमेह मूत्र रुच्छ्र इनका नाशक तथा गाढ आदि क्षत शोथि
भी है ॥ ७० ॥

कावस्य लक्षणां गुणाः ॥

वरटाः कपिलाः पीताः प्रायो हिम वतो वने ॥ कुर्व
न्ति छत्र का कारं तज्जं कावं मधु स्मृतम् ॥ ७१ ॥
कावं कपिल पीतं स्यात् पिच्छिलं शीतलं गुरु ॥ स्वादु
पाकं कृमि श्रितं रक्त पित्त प्रमेह जित् ॥ ७२ ॥
अम तुरगमोह विष हन्त तर्पणं च गुणाधिकम् ॥

अथार्थस्य लक्षणां गुणाः ।

मधु क दृक्ष निर्यासं जरत्कार्वा अमोद्भवम् ॥ खव
न्या र्थ्यं नदा ख्यातं श्वेत कं मालवे पुनः ॥ ७३ ॥
तीक्ष्णं तुरण्डां शु या पीता मक्षिकाः षट् पदो माः ।
आर्ध्यास्तास्तत्कृतं यत्त दा र्थ्यं मित्य परे जगुः ॥ ७४ ॥
आर्ध्यं मध्वति चक्षुष्यं कफ पित्त हरं परम् ॥ कया
यं कटुकं पाके तिक्तं च वन पुष्टि कृत् ॥ ७५ ॥

भा० ॥ ॥ काव का लक्षण और गुण ॥ ॥ वर्ग कपिल पीली प्रायः हि

मानव के वन में होती है ॥ वोह छूते के आकार को बनाती है । उसका मधु ॥
 छावक हो ना है ॥ छावक पिल पीला होता है और पिछिल जितल भारी ॥
 पाक में मधुर होती है ॥ और कृमि शिवर रक्त पित्त प्रमेह इनको जीतने वाला
 ॥ ७२ ॥ तथा भ्रम तृया मोह विष इनका नाशक तर्पण गुण में अधिक होता
 है ॥ ॥ ॥ अनन्तर अर्घ्य का लक्षण और गुण ॥ ॥ ॥
 महुवे के वृक्ष का गोन्द जल न्कार्या श्रम में उत्पन्न ॥ भिरते है सफेद उसको आ
 र्घ्य ऐसा कहा है और मालवे में भी होता है ॥ ७३ ॥ जो भीरे के समान मक्खिया ती
 क्षा मुख वाली पीली होती है ॥ वोह आर्घ्य है उनका किया हुआ जो मधु है उस
 का और आचार्य अर्घ्य कहते है ॥ ७४ ॥ आर्घ्य मधु अति नेत्र के हित और अ
 त्यन्त कफ पित्त का नाशक है ॥ और कसेला पाक में कटु तिक्त वल दुष्टिको
 करने वाला है ॥ ७५ ॥

अथो दालकस्य लक्षणां गुणाः ।

प्रायो वल्ली कम ध्यस्थाः कपिलाः स्वल्प कीट काः ।
 कुर्वन्ति कपिलं स्वल्पं तस्या दौ दालकं मधु ॥ ७६ ॥
 औदालकं रुचि करं स्वयं कृष्ट विषा पहम् ॥ क
 थाय मुखा मम्लञ्च कटु पाकञ्च पित्त कृत् ॥ ७७

अथ दालस्य लक्षणां गुणाः ॥

भा० अनन्तर औदालक लक्षण और गुण । प्राय लताओं के बीच रहने वा
 ली कपिल छोटे कीड़े होते हैं ॥ वोह थोड़ा कपिल वारा मधु करती है उसको औदा
 लक मधु कहते हैं ॥ ७६ ॥ औदालक रुचिको करने वाला स्वर के हित कृष्ट विष
 का नाशक ॥ कसेला उष्ण स्वादा पाक में कटु पित्त को करने वाला होता है ॥ ७७ ॥
 अनन्तर दाल का लक्षण और गुण ॥

मं स्तुत्य पतितं पुष्या द्युतु पत्रां परि स्थितम् ॥ मधु
 रम्ल कया यञ्च तद्दालं मधु कीर्त्ति तम् ॥ ७८ ॥ दा
 लं मधु लघु प्रोक्तं दीपनीयं कफा पहम् ॥

कयाया नुरसं रूक्षं रुच्यं कृदि प्रमेह जित् ॥ ७६ ॥ अ

धिकं मधुरं स्निग्धं बृंहणं गुरु भारिकम् ॥

[लघु पाके गुरु भारिकं तुलितम् । अथ नव पु
राणा मधु गुणाः ॥]

भा० जो पुष्यसे चूकर पत्ते पर गिरा ठहरा रहता है ॥ मीठा खट्टा कसेला उस
को दाल मधु कहते हैं ॥ ७८ ॥ दाल मधु हलका दीपन कफ नाशक कहा है ।
और पीछे से कसेला रूखा रुचि को करने वाला और वमन तथा प्रमेह को
जीतने वाला है ॥ ७९ ॥ बहुत मीठा चिकना पुष्ट तोल में भारी ॥
पाकमें हलका और तोलमें भारी होती है । अनन्तर नये और पुराने मधु
के गुण ॥

नवं मधु भवेत् पुष्टं नाति प्लेखं हरं सरम् ॥ पु

राणां ग्राहकं रूक्षं मेदोघ्नं मति लेखनम् ॥ ८० ॥

मधुनः शर्करां याश्च गुड स्यापि विशेषतः ॥ एक स

म्बत्सरे त्वर्ति पुराणात्वं स्मृतं बुधैः ॥ ८१ ॥

अथ मधुनः शीतस्य गुणाधिक्यमुष्णतायां निषेधः

भा० नया मधु पुष्ट होता है बहुत कफ नाशक नहीं होता तथा सर होता है
॥ पुराना काविज रूखा मेद नाशक अति लेखन होता है ॥ ८० ॥ मधु की शर्करा
और विशेष करके गुड़ की भी शर्करा ॥ एक वरस के बाद पुरानी पंडि तोंने
कही है ॥ ८१ ॥ अनन्तर शीत मधुका गुणाधिक्य और उष्णतामें निषेध कहे
ते हैं ॥

विष पुष्या दयि रसं सविद्या भ्रमरा दयः ॥ गृही

त्वा मधु कुर्वन्ति तच्छीतं गुणा वन्मधु ॥ ८२ ॥

वियान्वयात्त दुग्दन्तु द्रव्ये रणियो नवा सह ॥ उष्णा

र्तस्योष्णा काले च स्मृतं वियसमं मधु ॥ ८३ ॥

भा० विष पुष्य सेमी रस को विष वाले भ्रमरादिक ॥ लेकर मधु करते हैं ति-
से शीत गुण वाला मधु होता है ॥ ८२ ॥ विष से उत्पन्न होने से वोह मधु उष्ण ।
द्रव्य के साथ ॥ उष्ण से पीड़ित को उष्ण काल में विष के समान मधु कहा है ॥

८३ ॥ अथ मयनम् । मयनन्तु मधुच्छिष्टं मधु शेषञ्च ।
सिक्थकम् ॥ मध्वा धारो मदनं कं मधू धितर्मापस्व
तम् ॥ ८४ ॥ मदनं मृदु सुस्निग्धं भूतं ब्रण रोपणम्
भग्न सन्धानं कृद्वात कुष्ठ वी सर्ष रक्तजित् ॥ ८५ ॥

इति श्री भाव प्रकाशे मधुवर्गः ।

भा० अनन्तर मोम ॥ मयन मधुच्छिष्ट मधु शेष सिक्थक ॥ मध्वा धार म-
दनक मधूधित येह मोम के नाम कहे हैं ॥ ८४ ॥ मोम मृदु चिकना भूतका ना-
शक ब्रण रोपण ॥ दूटे हाड को जोड़ने वाला वात कुष्ठ वी सर्ष रक्त इनको जीत-
ने वाला है ॥ ८५ ॥ ॥ इति भाव प्रकाशे मधुवर्गः ॥ ॥

अथेक्षुवर्गः

तत्रादौ इक्षोर्नामानि गुणाश्च ॥

इक्षुर्दीर्घ च्छदः प्रोक्तस्तथा भूमिरसोऽपि च ॥ गुड-
मूलौ । सिपत्रश्च तथा मधु तृणः स्मृतः ॥ १ ॥ इक्ष-
वोरक्तपित्तघ्नावल्या वृष्या कफप्रदाः ॥ स्वादुपा-
करताः स्निग्धा गुरवो मूत्रलाहिमाः ॥ २ ॥

अथे क्षुभेदाः

पौण्ड्र को भीरु कम्प्रापि वंशकः शत पोरकः ॥ का

नारस्तापसे क्षुभ्र कारण्डेक्षुः सूचि पत्रकः ॥ ३ ॥

नैपालो दीर्घ पत्रश्च नील पोरः य कोशकः इत्ये

ता जानयस्ते यां कथयामि गुणानपि ॥ ४ ॥

अथ श्वेत पौण्ड्रा भौर री गुणाः ॥

भा० अनन्तर ईश्व के भेद । पौण्ड्रक भीरु क वंशक शत पोरक ॥ कान्तारता
पसे क्षु कारण्डे क्षु सूचि पत्रक ॥ ३ ॥ नैपाल दीर्घ पत्र नील पोर और कोशक ॥
इस प्रकार ये जानि उनकी है और गुणों को कहें हैं ॥ ४ ॥

अनन्तर सुफेद पौण्ड्रा भौर री उनके गुण ॥

वात पित्त प्रश मनो मधुरो रस पाकयोः ॥ सुशीतो वृं-
हणो बल्यः पौण्ड्र को भीरु कस्तथा ॥ ५ ॥

अथ कारिया कुशि आर गुणाः ॥

कोश कारि गुरुः शीतो रक्त पित्त क्षय पहः ॥ ॥

कान्ता रेक्षु गुणः ॥ कान्ता रेक्षु गुरु वृंध्यः स्लेष्म

लो वृंहणः सरः ॥ वडोया गुणाः ॥ दीर्घ पोरः सु

कठिनः सक्षारो वंशकः स्मृतः ॥ शत पोरक गुणाः ।

शत पर्वा भवं किञ्चित्कोश कार गुणा न्वितः ॥ विशेष

यात्किञ्चि दुष्णश्च सक्षारः पचना पहः ॥ ६ ॥

भा० वात पित्त वगैरामन मधुर रस और पाक में ॥ सुशीत पुष्ट बल के हित में
ठा और भौर री होते हैं ॥ ५ ॥ अनन्तर काले गन्ने के गुण ॥ ॥

काला गन्ना भारी शीतल रक्त पित्त क्षय इन कानाशक है ॥ कान्तार ईश्व
के गुण ॥ कान्तार ईश्व भारी शुक्र को करने वाला कफ को करने वाला -

मुष्ट सरहोताहै ॥ अनन्तर लंबी पोर का ईरव ॥ बह्म कठिन क्षार के सहित वंशक कहा गया है ॥ अनन्तर प्रात पोर का गुणा ॥ प्रात पोर कुछ कोश कारके समान गुणमें होताहै ॥ विशेष करके कुछ गरम क्षार के सहित वात नाशक है ॥ ६ ॥ तापसे क्षु गुणाः ॥

तापसे क्षु भवेन्मृद्धी मधुरा श्लेष्म कोपनी ॥ तर्पणी रुचि कृच्छापि वृथा च बल कारिणी ॥ ७ ॥

कारण्डे क्षु गुणाः । एवं गुरौस्तु कारण्डे क्षुः स तु वात प्रकोपराः ॥ [अथ सूची पत्र नैपाली दीर्घ पत्र नील पोरगां गुणाः ॥] सूची पत्रो नील पोरो नैपालो दीर्घ पत्रकः ॥ ८ ॥ वातलाः कफ पित्त घ्नाः सकयाया विदाहिनः ॥ [मनो गुप्ता गुणाः] मनो गुप्ता वात हरी तृष्णा मये विनाशिनी ॥ सुशीता मधुरा तीव रक्त पित्त प्रणाशिनी ॥ ९ ॥

अथ बाल युव वृद्धे क्षु गुणाः ।

भा० अनन्तर ताप से क्षु के गुण । तापसे क्षु मुलायम मधुर कोप को करने वाला ॥ तर्पणा रुचि को करने वाला शुक्र को करने वाला बल को करने वाला है ॥ ७ ॥ काण्डे क्षु का गुण । ऐसे ही गुण वाला कारण्डे क्षु होताहै और बौहवात को करने वाला है ॥ अनन्तर सूची पत्र नैपाली दीर्घ पत्र नील पोर इनके गुण ॥ सूची पत्र नील पोर नैपाल दीर्घ पत्रक ॥ ये वात को करने वाले कफ पित्त के नाशक कयाय के सहित विदाहि होते हैं ॥ मनो गुप्त के गुण ॥ मनो गुप्ता वात नाशक तृषा रोग का नाशक ॥ शीतल मधुर अतीव रक्त पित्त की नाशक है ॥ ९ ॥ अनन्तर बाल युवा वृद्ध ऐसे ईरव के गुण ॥

बाल इक्षुः कफ कुप्यी न्मेदो मेह कर श्रसः ॥ १० ॥

युवानु वात हृत् स्वादु रीष तीक्ष्णश्च पित्तनुत् ॥१०॥

रक्त पित्त हरो वृद्धः क्षत हृद्बल वीर्यं कृत् ॥

भा० बाल ईश्वर कफ को करता है और मेद मेह को करने वाला वोह है ॥ युवा वात नाशक मधुर थोड़ा तीखा पित्त नाश होता है ॥१०॥ वृद्ध रक्त पित्त का नाशक क्षत नाशक और बल वीर्य को करने वाला है ॥

अथाङ्ग भेदेन भेदः ॥

मूले तु मधुरोऽत्यर्थं मध्येऽपि मधुरः स्मृतः ॥ अग्रे

ग्रन्थिषु विज्ञेय इक्षुः पटु रसो जनेः ॥११॥

अथ दन्त पीडिते क्षु रसस्य गुणाः ॥

दन्त निखी डित स्येक्षो रसः पित्तास्त्र नाशानः ॥ श-

र्करा सम वीर्यः स्यादवि दाही कफ प्रदः ॥१२॥

अथ यन्त्र पीडिते क्षु रसस्य गुणाः ॥

भा० अनन्तर अंग भेद से भेद । मूल में अत्यन्त मधुर मध्य में भी मधुर कहा है ॥ अग्र में और ग्रन्थि में ईश्वर लवण रस जन जानते है ॥ ११ ॥ अनन्तर दन्त पीडित ईश्वर के रस का गुण । दन्त पीडित ईश्वर का रस रक्त पित्त का नाशक है ॥ शर्करा के सम वीर्य होता है और अवि दाही कफ को करने वाला है ॥ १२ ॥

अनन्तर कोल्हू में पेरे हुवे ईश्वर के रस का गुण ॥ * ॥

मूला ग्रजन्तु ग्रन्थ्यादि पीड नान्मल सङ्क रान् किं

ञ्चित्काल विधृत्या च विच्छन्तिं याति यान्त्रिकः ॥

१३ ॥ तस्मा द्विदाही विष्टम्भी गुरुः स्यादयान्त्रिको र

सः ॥ अथ पर्यु पिते क्षु रसस्य गुणाः ॥

रसः पर्यु पितो नेष्टो ह्य म्लो वाता पहो गुरुः ॥ कफ पि-

नकरः शोथी भेद नश्रान्ति मूलतः ॥ १४ ॥

अथ पक्वस्य क्षुरसस्य गुणाः ॥ १५ ॥

भा० मूल अथ गांठ आदिके पीड़न से मल संकर से ॥ कुछ देर रखने से को
लू का विगड जाता है ॥ १३ ॥ इस वासे बिदाही विस्मृती भारी को लू का रस होता
है ॥ अनन्तर वासी द्रव के रस का गुण ॥ वासी रस अच्छा नहीं होता और
खट्वा वात नाशक भारी ॥ कफ पित्त को करने वाला शोथ को करने वाला है ॥ १४ ॥

अनन्तर पके हुवे ईख के रस का गुण ॥

पक्वो रसो गुरुः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफ वात शुद्ध ॥ गु

ल्मानाह प्रशमनः किञ्चि पित्त करः स्मृतः ॥ १५ ॥

अथे क्षुरसस्य विकाराणां गुणाः ॥

इक्षो विकारा स्तब्ध दाह मूर्च्छा पित्तास्र नाशनाः ॥

गुरवो मधुरा बल्याः स्निग्धा वात हराः सराः ॥ १६

दृष्या मोह हराः शीता वृंहणा विष हारिणः ॥

अथ फारिणः । हरकारा वच्छो वा इति लोके ।

भा० पके का रस भारी चिकना तीखा कफ वात का नाशक ॥ और बाय गोल
अफारा इनका शमन करने वाला कुछ पित्त को करने वाला कहा है ॥ १५ ॥

॥ ॥ अनन्तर ईख के रस के विकारों का गुण ॥ ॥ ईख के वि-
कार दृष्या दाह मूर्च्छा रक्त पित्त इनके नाशक हैं ॥ भारी मधुर बलके हित
चिकने वात नाशक सर हैं ॥ १६ ॥ शुक को करने वाला मोह नाशक अतिल-
पुष्ट विष नाशक है ॥

तस्य लक्षणां गुणां च ॥

इक्षोः रसस्तु यः पक्वः किञ्चि द्वाढो बहु द्रवः ॥ सरा

वे क्षुचि कारेषु ख्यातः फारिणः संज्ञया ॥ १७ ॥

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि वृंहरां कफ शुक्र कृत ॥ वात ॥
 पित्त श्रमान हन्ति सूत्र वस्ति विशोधनम् ॥ १८ ॥
 अथ मत्स्य रण्डी । राव काकव खण्ड राव इ
 ति लोके । तस्य लक्षणां गुणां च ॥

भा० अनन्तर राव । उसका लक्षणा और गुण । ईख का रस पका हुआ कुछ गाढ़ा
 बहुत पतला ॥ बोही ईख के विकारों में फाणित नामसे प्रसिद्ध है ॥ १७ ॥ राव
 भारी अभिष्यन्दि पुष्ट कफ शुक्र को करने वाली ॥ वात पित्त श्रमों की नाश कर
 है और सूत्र वस्ति शोधन है ॥ १८ ॥ अनन्तर खण्ड राव । उसका लक्षणा और
 गुण ॥

इक्षो रसो यः सम्यक् को धनः किञ्चिद्द्रवा न्वितः
 मन्दं यत् स्पन्दते तस्मात्तन्मत्स्य रण्डी निगद्यते ॥
 १९ ॥ मत्स्य रण्डी मेदिनी बल्या लव्घी पित्ता निला प
 हा ॥ मधुरा वृंहणी वृथ्या रक्त दोषा पद्मास्मृता ॥ २० ॥

अथ गुडस्य लक्षणां गुणां च ॥

भा० ईख का रस जो पका हुआ गाढ़ा कुछ पतला ॥ जो थोड़ा दि घलता है ।
 इस वस्ति उसको मत्स्य रण्डी कहते हैं ॥ १९ ॥ मत्स्य रण्डी मेदिनी बल के हित हल
 की पित्त वात की नाशक ॥ मधुर पुष्ट शुक्र को करने वाली रक्त दोष की नाशक
 कहते हैं २० ॥ अनन्तर गुड का लक्षणा और गुण ॥

इक्षो रसो यः सम्यक् को जायते लोष्ट वृद्धः ॥ सगु
 डो गौड देशे तु मत्स्य रण्डये व गुडो मतः २१ गुडो वृ
 थ्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्र शोधनः ॥ नातिपि
 त्त हरो मेदः कफ कृमि बल प्रदः ॥ २२ ॥

अथ पुराणा गुडस्य गुणाः ॥

भा० ईश्वरका रस जो पका हुआ ढेल के मानिन्द दृढ होता है ॥ वह गुड गौड देश में गत्स्यं डी को गुड कहते हैं ॥ २३ ॥ गुड शुक्र को करने वाला भारी चिकना वात नाशक मूत्रका शोधन करने वाला ॥ नभति पित्त का नाशक मेद कफ कृमि बल इनको करने वाला है ॥ २४ ॥ अनन्तर पुराने गुड का गुण ॥

गुडो जीर्णो लघुः पथ्योऽनमिष्यन्धग्निपुष्टिदात्

पित्तघ्नो मधुरो दृष्यो वातघ्नोऽसृक् प्रसादनः ॥ २३ ॥

नवीन गुडस्य गुणाः । गुडो नवः कफश्वासकासकृमि

करोऽग्निदात् ॥ श्लेष्माणमाशु विनिहन्ति स-

दाद्र्रकैरा पित्तनिहन्ति च तदेव हरीतकीभिः ॥ शु

रण्या समं हरति वातमशेषमित्यं दीयत्रयक्षयक

राय नमो गुडाय ॥ २४ ॥ अथ खांड गुणाः ॥

भा० पुराना गुड हलका पथ्य अनमिष्यन्दि अग्नि पुष्टि को करने वाला ॥ पित्त नाशक मधुर शुक्र को करने वाला वात नाशक रुधिर को स्वच्छ करने वाला है ॥ २३ ॥ अनन्तर नये गुड का गुण ॥ नया गुड कफ ^{कास} श्वास कृमि को करने वाला अग्नि दीप्त है ॥ गुड अद्रक के साथ शीघ्र कफ को नाश करता है हड़ के साथ पित्त को नाश करता है सोंठ के साथ अशेष वात को नाश करता है रो-से विदीय नाशक गुड को नमस्कार ॥ २४ ॥ अनन्तर खांड का गुण ॥

खण्डन्तु मधुरं दृष्यं चक्षुष्यं दृंहणं हिम् ॥ वातपित्त

हं स्निग्धं बल्यं वान्ति हं परम् ॥ २५ ॥

खण्ड मति प्रसिद्धम् । अथ सिता । चीनी इति लो

कं प्रमिद्धा । तस्य लक्षणां गुणाः । खण्डन्तु सि

कता रूपं सुश्वेतं शर्करा सिता ॥ सितासु मधुरा

रुच्या वातपित्तास्वदाहहत ॥ २६ ॥

भा० खांड मधुर शुक्र को करने वाली नेत्र के हित पुष्ट शीतल ॥ वात पित्त की नाशक चिकनी बलके हित परम वमन की नाशक है ॥ २५ ॥ खांड अति प्रसिद्ध है । अनन्तर चीनी । इस प्रकार लोक में प्रसिद्ध है ॥ उसका लक्षण और गुण ॥ खांड तो वायु सरीखी होती है और बहुत सुफेद शर्करा को बीनी कहते हैं चीनी बहुत मधुर रुचि को करने वाली और वात रक्त पित्त दाह इनको नाश करने वाली है ॥ २६ ॥

सूक्ष्मी कूर्दि ज्वरान् हन्ति सुशीता शुक्र कारिणी ॥

अथ गुड शर्करा मिश्री द्वयो गुणाः ॥

भवेत्युष्य सिता प्रीतारक्त पित्त हरी लघुः ॥ सितो पला

सरा लज्जी वात पित्त हरी हिमा ॥ २७ ॥

मधु खण्ड गुणाः । मधुजा शर्करा रूक्षा कफ पित्त

हरी गुरुः ॥ छर्चतीसार तृड् दाह रक्त हृत्तुवरा हि

माः ॥ २८ ॥ यथा यथेया नैर्मल्यं मधुरत्वं तथा त

था ॥ स्नेह लाघव प्रीत्यादि सरत्वं च तथा तथा ॥ २९ ॥

॥ इति श्री भाव प्रकाशे इक्षु वर्गः

समाप्तो द्रव वर्गः ॥

भा० और सूक्ष्मी वमन ज्वर इनको नाश करती है बहुत शीतल शुक्र को करने वाली है ॥ अनन्तर गुड शर्करा मिश्री दोनों के गुण । गुड शर्करा शीतल रक्त पित्त की नाशक हल्की होती है ॥ और मिश्री सरहलकी वात पित्त की नाशक शीतल है ॥ २७ ॥ अनन्तर मधु खंड के गुण । मधु की शर्करा रूखी कफ पित्त की नाशक भारी ॥ वमन अतीसार तथा दाह रक्त इनकी नाशक कसेली शीतल होती है ॥ २८ ॥ जैसी जैसी सफाई होती है वैसी मधुरता और चिकनाई हल्का पत शोथ आदि और सरत्वं होता है ॥ २९ ॥

इति भाव प्रकाशे इक्षु वर्गः ॥

अथानेकार्थनामवर्गः

(क) तत्र चार्थानि नामानि । यथा । अश्मन्तकः ।
 अस्त्रलोणाकाकीविदारश्चकठिलकः कारवेल्नी
 रक्त पुनर्नवा च कुलकः । पटोलः कुपीलुश्चकु
 चिला इतिलोके प्रसिद्धः । कोशातकी । महाको
 शातकी राजकोशातकी च दीप्यकः । यवान्यज
 मोदाच । मरुचकः फणिज्जकः पिण्डीतकः । मरु
 वकः । मरुषा इतिलोके पिण्डीतकः मयन फर
 इति लोके मधूलिकः । मूर्वा जल यष्टीच । रुचकम्

भा० - अनन्तर अनेकार्थनामवर्गः । (क) उसमें दो अर्थके नाम
 जैसे । अश्मन्तक । लोनिया साग और लालकचनार दोनो का यह
 एक नाम है किठिलक । लाल गदह पूरना और करेला । कुलक
 । पटोल कुचिला । कोशातकी दोनो तुरई । दीप्यक । अजमोदा । अ
 जवाइन । (मरुचक) मरसा मयन फल (मधूलिक) मरीड फ
 ली जल यष्टी । (रुचक)

सौवर्चलं बीजपूरकञ्च । लोणाका । लोणा शा
 कञ्चाङ्गेरी शाकञ्च वसुकः क्षारत्वराश्व वा
 ल्हीकम् । कुङ्कुमं हिङ्गुच । वित्तुनकम् । धान्य
 कं तृत्युञ्च । स्वादुकगटकः । गोक्षुरे विकङ्क
 तश्च । अग्निमुखी । भल्लातकी लाङ्गुलीच । अग्नि

शिखम् । कुङ्कुमं कुसुम्भश्च । अजशृङ्गी । मेघ
शृङ्गीच । प्रियङ्गुः । फलिनीकङ्कुश्च । भृङ्गः ।
भृङ्गराजस्वकच । समङ्गा । मञ्जिष्ठा लज्जालूश्च ।
अमोघा । विडङ्गपाटलाच । मोचा । कदली

भा० - सोचले विजोरा (लोणिका) लोनिचाचूक । (वसुक) ला
ल आंक खरिनमक । (बाल्हीक) । केसरहीङ्ग । वितुभक । धनि
या लीलायोथा । स्वादुकंटक । गोरखरू विककत । अग्निमुखी
भिलावा करिद्वारी । (अग्निशिख) केसर कुसुम । अजशृङ्गी ।
मेढा सीङ्गी काकडा सीङ्गी । प्रियङ्गु । कङ्कनी फूलप्रियंगू ।
भृङ्ग । भाङ्गरादारचीनी । समङ्गा । मजीठ । कुङ्कुमुईला दरख
न । अमोघा । बायविडंग पाटला । (मोचा) केला ।

शात्मलिश्च । कुटन्नटः । श्वेताकः कैवर्त्तमुल्ल
ञ्च । कुनटी । धनिकामनः शिलाच । घोरटा ।
पूगो वदरीच । त्रिपुटा । त्रिवृत्सुदमेलाच । श
टी । कर्चुरोगन्धपलाशी च । दन्तशठः । जन्वीरः
कयित्थश्च । दन्तशटा । अम्लिकाचाङ्गेरीच । अरु
णम् । मञ्जिष्ठा अति विषाच । कणा । पिप्पली जी
रकञ्च । तालपर्णी । मुशली मुराच । पीलुपर्णी ।

भा० - सेमल । कुटन्नट । सोना पाठा जल सोथा (कुनटी)
धनिया मैनसिल । घोरटा । सुपारी वैर । त्रिपुटा । निसेथ ।
होटी हुलायची । शटी । कर्चूर गन्धपलाशी । दन्तशठ । ज
वीरी कैथ । (दन्तशठा) । दमलीचूक । अरुणा । मजीठ । अती
स । (कणा) पीपल जीरा । तालपर्णी मुसली मुरा । पीलुपर्णी
मूर्वाविन्चीच । ब्राह्मणी । माङ्गीसुकाच । अपरा

जिता । विष्णुक्रान्ता शालि पर्याच । आस्फी ता ।
 अपराजिता सारिवाच । पारावत् पदी । ज्योतिष्म
 ता काक जङ्घाच । शारदी । सारिवा जल पिप्पली
 च । उग्रगन्धा । वचा यवानीच । परि व्याधः । करि
 कारे जलवेतसश्च । अञ्जनम् । स्रोतोऽञ्जनं सौवी
 रञ्च । अग्निचित्रको भल्लानश्च । रुमिघ्नः । विडङ्गो
 हरिद्राच । तेजनः । शरो वेणुश्च । तेजनो । तेजवती
 सूर्वाच । रोचनः । कम्पिल्यः रोचना च । रोचना । गो
 रोचना । राजादनम् । क्षीरिका प्रियालश्च । शंकु
 लादनी । कुटुका जल पिप्पली च । गोलेमी । श्वे
 तदूर्वा वचा । पद्मा । पद्मचारिणी भाङ्गीच । प्रयामा

भा० - मरोड फली कुन्दरु । (ब्राह्मणी) भारंगी स्टुका । अपराजि
 ता) विष्णुक्रान्ता शालि पर्याच । आस्फीता । करुव सारिवा । पारावत् प
 दी । माल कङ्कनी काक जङ्घा । शारदी । सारिवा जल पिप्पली । उ
 ग्रगन्धा । वच अजवायन । परि व्याध । अमलतास जलवेत । अंज
 न । रसोत सुरमा । अग्नि । चित्रक भिलावा । कृमिघ्न । वायचिङ्ग
 हलदी । (तेजन) शरपन वास । (तेजनी) मरोड फली । माल क
 र्गनी । (रोचन) खूपकला गोरोचन । रोचना । गोरोचन । (राजाद
 न । खिरनी चिरोजी । शकुला दनी । कुटुकी जल पिप्पली । गोलेमी
 । सफेद दूव वच । पद्मा । कमलिनी भारंगी । प्रयामा ।

सारिवा प्रियङ्गुश्च । धान्यम् । धान्याक शाल्या
 दिच । सहवीर्या नील दूर्वा महाशतावरीच ।
 सेव्यम् । उशीरं तामज्ज कञ्च । उदुम्बरः । जन्तु

फलं ताम्रञ्च । ऐन्द्री । इन्द्रवारुणी इन्द्राणीच ।
 कटम्भरा । कटुका प्रथेना कञ्च । क्षारः । यवक्षा
 रः स्वर्जिकाच । गरडीरः शाकविशे योगरुडी नीति
 लोके गरुडारी मञ्जिष्ठाच । गन्धारी । दुरानभा ।
 गन्धयत्नाशीच । चित्रा । इन्द्रवारुणी वृहदन्तीच
 तुण्डिकेरी । कार्यासी विन्धीच । धारा । गुडूची क्षी
 रका कोली च । बालपत्रः । खदिरो यवासश्च ।
 वारि । बालकमुदकञ्च । अङ्गारवल्ली । भार्गोमु
 ज्जाच । असृणालम् । लामञ्जकम् उशीरञ्च । कु
 रुडली गुडूचीकोविदारश्च । गन्धफली । प्रिय
 ङ्गुः श्वम्यककलिकाच । दीर्घमूलः । यवासः ।

भा० - सारिवाप्रियंगु । (धान्य) धनियाधान । सहवीर्य । नीली दू
 व बड़ीसनावर । सेव्य । खसुपीली ख । उद्वेग । मूलरताम्बा । ऐन्द्री
 । इन्द्रायन इन्द्राणी । कटम्भरा । कुटकीसेनापाठा । (क्षार) जवाखार
 सज्जीखार । (गरडीर) गाडर मजीठ । (गन्धारी) जवासा गन्धप
 लाशी (चित्रा) इन्द्रायन वडी दन्ती । तुण्डिकेरी । कपासी कुन्दरू
 (धारा) गिलो क्षीरका कोली । बालपत्र । खेरजवासा । वारि ।
 सुगन्धवाला जन्न । (अङ्गारवल्ली) । भार्गो मूज । असृणाल
 पीली खस । (कुरुडली) गिलोय लालकचनार । गन्धक
 ली । प्रियंगु चंपक कलिका । (दीर्घमूल) जवासा ।

शालिपर्णीच । पिच्छिला शाल्मली शिंशिपाच ।
 पुष्पफलः । कपित्थः कूष्माण्डश्च । योटगलः । न
 लः काशश्च यवफलः । कुटजो वंशश्च । देवी । मूर्वा

स्येका च विश्वा । शुण्ठग्ननिविधा च । शीतशिवम्
 । सैन्धवं मिश्रेया च । कर्कशः । काम्पिल्यः कास
 मर्द्दश्च । चर्मकषा । शातला मांस रोहिणी च ।
 नन्दिबृक्षः । अश्वत्थभेदोगो मुखयत्नशारवः ।
 वेलिपापीयर इति लोके । तुरिणश्च । पयः क्षीर
 सुदकश्च । रुहा । दूर्वा मांस रोहिणी च । सिंही ।
 बृहती वासा च ॥ अथ त्वर्थानि नामानि । क्रमुकः ।
 एगस्तूदः पट्टिका लोधश्च । क्षुरकः । कोकि लाक्षो
 गो क्षुरस्तिलक नाम पुष्पविशेषश्च । प्रियकः ।

भा०-साल पराणि । पिच्छला । सेमल सीसन । पुष्प फल । कैय
 पेठा । पोदगल । नलकास । चवफल । कुंरिया वांस (देवी) म
 रोह फली मृका । विश्वा । सेंठ अनीस । शीत शिव । सैन्धा मिश्रे
 या । (कर्कश) कवीला कसेन्दी । (चर्मकषा) सीका काई मां
 स रोहिणी । (नन्दीबृक्ष) - पीपल का मेद नून । (पयः) दूधपा
 नी । रुहा । दूर्वा मांस रोहिणी । (सिंही) कटेली वासा । अनंतर
 तीन अर्थयानि नाम । क्रमुक । सुपारी ब्रह्म दारु पठानी लोध ।
 (क्षुरक) मखाना गोखरू तिलक नाम पुष्पविशेष । (प्रियक)

प्रियङ्गु क दन्वा । सनश्च । एष्वीका । काला जाजी
 बृहदे लाहिङ्गु पत्नी च । भूतीकम् । भूनिम्बक
 तरा भूस्तृणश्च । सोम वल्कः । कहलः श्वेत
 खदिरो घृत पूर्णार्कश्च । सौगन्धिकं कल्
 हारं कृतरां गन्धकञ्च । भृङ्गः मृङ्गरास्त्वर्ग
 भ्रमरश्च । अरिष्टः निम्ब्वार सोनं मद्यञ्च । ५

मर्कटी कपिक छुरपामार्गः करञ्जी च । अम्बष्टा
 पाठा चाङ्गरी माचिका च । कृष्णा । पिप्पली काला
 नाजी नीली च । क्षीरिणी । दुग्धिका क्षीरका को
 ली श्वेत सारि वाच । मधुपर्णी । गुडुची गम्भारी
 नीला च । मण्डूकपर्णी । स्योनाकः सः स्त्रियां तु
 मञ्जिष्ठा । ब्रह्ममण्डूकी च । श्रीपर्णी । गम्भारी
 गणिकारिका कटफलञ्च । अमृता । गुडुची ।
 हरीतकी धात्री च । अनन्ता । दुरालभा नीलदूर्वा
 लाङ्गुली च । ऋष्यप्रोक्ता । अनिलमा महाशता
 वरी कपिकच्छञ्च कृष्णवृन्ता । पाटली गम्भा
 री माषपर्णी च । जीवन्ती । गुडुची शाकविशेषो
 वन्दा च । लता । सारिवा । प्रियङ्गु । ज्योतिष्मती च ।
 मा०— प्रियङ्गु कदम्ब आसन (एर्ष्याका) स्याह जीरा बड़ी डू
 लायची । हिङ्गु पत्री । (भूतिक) चिरायता कटुरा भूतुरा (सो
 मबल्क) कुह्लसफेद कट्या घृत पूर्णकरंजी । सौगन्धिक
) कल्हार कटुरागन्धक । (रुद्रङ्ग) भाङ्गरात्वक भौरा । अरिष्ट)
 । नीम लहसन मधु । मर्कटि । केवाच अपा मार्गकरंजी । अ
 म्बष्टा । पाटल । चोंक किमांच । कृष्णा पीपल काला जीरा नील ।
 क्षीरिणी । दुग्धी क्षीरका कोली श्वेत सारिवा । मधुपर्णी । गिन्ने
 य । कुह्लर नील । (मण्डूकपर्णी) सोना पाठा मजीठ । ब्रह्मी । श्री
 पर्णी । कुह्लर अरनी काय फल । अमृता । गिलोय हड आंवला ।
 अनन्ता । जवासा नील दुर्वा लाङ्गुली । ऋष्यप्रोक्ता । अनिलमा । व
 डी सतावर । किवांच । कृष्णवृन्ता । पाटली । कुह्लर माषपर्णी
 । जीवन्ती । गिलोय शाकविशेषवन्दा । लता । सारिवा प्रियङ्गु माल

कंगनी । समुद्रान्ता । दुरालभा कार्पासी स्पृक्षा च । हेम
वती । हरीतकी श्वेतवचा पीतदुग्धः सेहुराडः य
स्य सूलञ्चोक इति प्रसिद्धम् । अव्यथा । हरीतकी
महाश्रावणी पद्मचारिणी च । षड्गन्धा । वच ग
न्धः पलाशी करञ्जीश्च । वरदा । सुवर्चला झुर झुर
इति लोके अश्वगन्धा चारही गेठीति लोके । इस्रु
गन्धाः काशः काकिला स्त्री गो सुर क्षीरविदारी च ।
कालस्कन्धः तमाल स्निन्दुकं कालखदिरश्च ।
महोषधम् । शुण्ठीरसो नो विषञ्च । मधु । क्षौद्रं
पुष्परसो मद्यञ्च । कपीतनः । अम्वातकः शिरी
षी गर्हभारण्डश्च । मदनः । पिरडीतको धत्तूरः
सिक्क कञ्च । शतपर्वा । वंशो दूर्वा वचा च

भा० - समुद्रान्ता । जवासा कार्पासी स्पृक्षा । हेमवती । हरीतकी
श्वेतवच । पीतदुग्ध । सेहुराड । (अव्यथा) हरीतकी । चडी मुंछी पद्म
चारिणी । षट्गन्धा । वच गन्धः पलाशी करज । (वरदा) झुरझुर
असगन्धः सुयनी । (इस्रुगन्धा) काशताल मखाना गोखरू क्षी
रविदारी । कालस्कन्ध । तमाल तेन्दु कालखदिर । महोषध । सो
ठ लहसन । विष । मधु । क्षौद्र । पुष्परस मद्य । कपीतन । अम्वा
डी । सिरिस पिलखन । मदन मेनफल धत्तूर मोम । (शतपर्वा)
वासं दूधवच ।

सहस्रवेधी अम्लवेतसो मृगमदा हिङ्गु च ताम्रपुष्पी
यातकी पाटला श्यामा तिवृच्च सदा पुष्पाः । श्रेयता
की रक्तार्कः कुन्दश्च । सुरभी मल्लकी मुरैलवान्

कम् । लक्ष्मीः । ऋद्धिर्दृद्धिः शमी च । कालानुसा-
 र्यम् । कालीयकं नगरं शैले यञ्च । चाम्पेयः । च-
 म्यको नागकेसरः पद्मकेसरश्च । नादेयी । गणि-
 कारिका जलज स्तूर्जलवेतसी च । पाक्यम् । विडं
 सौवर्चलं यवक्षारश्च । विशल्या । लाङ्गली गुडू-
 ची लघुदन्ती च । इन्द्रद्वुः । ककुभो देवदारुः कुद-
 जश्च । काश्मीरम् कुङ्कुमं पुष्करमूलं काश्मीरी
 गम्भारी च । गुन्द्रः पटेरकः शरश्च । गुन्द्रा । प्रि-
 यङ्गुर्भद्रमुस्तकश्च । चुक्रम् । चुक्रमस्तवेतसं
 वृक्षान्श्च पारिभद्राः । निम्बः पारिजातो देव-
 दारुश्च । पीतदारु । हरिद्रा देवदारु सरलश्च ।
 वीरः । ककुभो वीरणां काकोली च वीरतरुः । ककु-
 भो वीरणां शरश्च । मयूरः । अपा मार्गी । जमोदा
 तुत्यञ्च । रक्तसारः । रक्तचन्दनपतङ्गः खदिरश्च ।

भा० - (मद्रस्त्रवेधी) अमलवेत । कस्तूरी हीङ्ग । नावपुष्पी । धवपा-
 दन्ता काली निसोय । सदापुष्प । सफेद आंक लाल आंक कुन्द । सुर-
 मी) सलई मरोड फली लालुका । लक्ष्मी । ऋद्धि दृद्धि शमी । का-
 लानुसार्य) पीतचन्दन नगर शिलारस । (चाम्पेय चम्या) नाग
 केसर पद्मकेसर । नादेयी । अरनीजल । जासुनजलवेत । पाक्य । वि-
 ड सौचल नवा खार । विशल्या । करिहारी गिलोय छोटी दन्ती
 इन्द्रद्वु । अर्जुन देवदारु कुरैय्या । काश्मीर । केसर पुष्करमूल
 कुह्लेर । गुन्द्र । पटेरक शर । गुन्द्रा । प्रियंगु वझामोथा । चुक्रम । अमल
 वेत चूक वृक्षान् । पारिभद्र । नीम पारिजा देवदारु । पीतदारु । हन्दी

देवदारु सरई । वीर । अर्जन वीर एका कोली (वीर तरु) अर्जन वीर
रणा सरयत । (मयूर) अपा मार्ग अज मोद नूति या । रक्त सार । र
क्त चन्दन प्रतग रेवर ।

वदरा । सुवर्चला अश्वगन्धा बाराही च । वसिरः ।
रक्तापा मार्गो गजपिप्पली समुद्र लवणञ्च । सौ
वीरम् । अञ्जन भेदो वदर सन्धान भेदश्च । वञ्जु
लः । अशोको वेत संसि निशम्ब । शिला । मनः
शिला जंतु गैरिकञ्च सोमवल्ली । वाकुची गुडूची
ब्राह्मी च । अक्षीवः । शोभाञ्जनो महानिम्बः समु
द्र लवणञ्च । कारवी । कालाजाजी प्राताह्वाज मोदा
च । धामार्गवः । रक्तापा मार्गो राजको प्रातकी म
हाको प्रातकी च । दुःस्पर्शः । यवासः कपिकच्छूः

भा०- वदरा । सुवर्चला अश्वगन्ध बाराही । वसिर । लाल अपा मार्ग
गज पीपल खारी नमक । (सौवीर) अञ्जन भेद वेर सन्धान भेद ।
वञ्जुल । अशोक वेत । तिनिस । (शिला) मे नसिल शिला जीत गै
रु । सोमवल्ली । वावची गिलोय ब्रह्मी । अक्षीव । सहिजन महानि
म्ब समुद्र लवण । कारवी कालाजीरा सौफ अज मोदा (धामार्ग
व) लाल अपा मार्ग दोनो नुई । दुःस्पर्शः । जवासा किमाव ।

क रट कारी च । पलाशः किंशुको गन्ध पला प्री प
त्रञ्च । काल गेसी । मञ्जि छा वाकुची प्रयासा दि
हृच्च पलंकषा गुग्गुलु गोक्षुरे लाक्षा च । मधुरसा
द्राक्षा मूर्वा गन्धारी च । रसा रा स्ना शल्लकी पाठा
चा श्रेयसी । हरिनी कीलसा गजपिप्पली च ।

लोहम् । अयः कांस्य मगरुच । सहा । सुज्ञपर्णी व
त्नाभेदः ककही इतिलोके । शतपत्नी सेवती गुलाव
इतिलोके । रास्त्रा नाकुली नीलपुष्पः । सिन्दुवारः ।

भा० - कटेली । पलाश । गन्धपलाशी पत्रज । कालमेखी ।
मजीद बावुचीकाली निसोथ । पलंकषा । मृगल गोरवरु लाक्षा
मीचरसा । दारुव मरोड फली कुह्लेर । रसा । रासना सलई पाषा ।
ओयसी । हड्ड रास्त्रा गंज पीपल । लोह । लोहाकासा अगर । सहा
सुज्ञपर्णी कही सेवती । रास्त्रा कुली नीलपुष्प सिन्दुवार ।

अथ बह्वर्थानि नामानि । अक्ष शब्दः स्मृतोऽष्ट
सु सौवर्चलविभीतके । कर्षपञ्चाक्ष शकटेन्द्रि
य पाशके । ककारव्यः काक माची च का कोली का
क शान्तिका ॥ काक जङ्घ काक नासा काको दुम्ब
रिकापिच । सप्तस्वर्थेषु कथितः काक शब्दाविच
करोः ॥ सर्पद्विरद भेषुषु सीसके नाग केसरे ॥
नागवल्या नागद न्यानाग शब्दः प्रयुज्यते ॥
मांसे द्रवे च सूरसे पारदे मधुरादिषु । बाल रोगे
विये नीरे रसो नवसु वर्तते ॥ इति श्रीभावप्रका
शे हरीतकादिद्रव्याणां नामानि गुणाश्च ॥

भा० - अनंतर बहुत अर्थ वाले नाम । अक्ष शब्द आठमें कहा है
सौचल वहेड़ा इन्द्रिय पासा और ककास काक माची का कोली
गुञ्जा ॥ काक जंघा कोव्या ठोठी कठिया गूलर सात अर्थोंमें कांश
शब्द बुद्धि बानी ने कहे है । साय गजमें डा सीसा नाग केसर । नाग
वला नाग दन्ती इनमें नाग शब्द कहा है ॥ मांसमें द्रव बसु ईरव के

रसमे पारसे मधुरादिकर्म ॥ बाल रोगमें विषमें जलमें इन नवों में
रस शब्द है ॥ इति श्री भाव प्रकाशे हरीत क्पादि द्रव्यों के नाम और
गुण ॥

अथ मान परिभाषा

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।

अतः प्रयोगे ह्यर्थमानं सर्वोच्यते मया ॥ १ ॥

चरकस्य मतं वैद्यै रद्यै र्यस्मान्मतं ततः । विद्वा य
स सर्वनामानि सागधं मानं मुच्यते ॥ २ ॥ त्सरे

णु बुधैः प्रोक्तं स्विंशता परमाणुभिः । त्सरे
णुस्तु पर्यायै र्नाम्ना वंशी निगद्यते ॥ ३ ॥ जाला

न्तरगतैः सूर्य्य करै र्वंशी विलोक्यते । षड्वंशी
भिमरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिश्च राजिका ॥ ४ ॥

भा० - अनंतर परिभाषा ॥ तोलके विना द्रव्यों कि युक्ति कही नहीं
होती । इस बाले प्रयोग करने के अर्थ यह परमान कहता है ॥ १ ॥
चरक कामन और जिस्से प्राचीन वैद्यों ने माना है उससे ॥ सब मानों
को छोड़ कर सागध मान को कहता है ॥ २ ॥ विद्वा नों ने तीस पर
माणु को त्सरेणु कहा है ॥ त्सरेणु पर्याय नाम से वंशी कहा है
॥ ३ ॥ ऊँ रेके की सूर्य्य की किरणों से वंशी देखा जाता है ॥ छः
वंशी की मरीचि होती है और छः मरीचियों कि राई ॥ ४ ॥

निस्रभी राजिका भिश्चः सर्षपः प्रोच्यते बुधैः । य

वोष्ट सर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जास्य । तच्च तुष्टयम् ॥ ५ ॥

षड्मिस्तु रत्तिकाभिः स्यात्माषकी हेमधानकी ।

मायेश्चतुर्भिः शरणाः स्याद्भरणाः सनिगद्यते ॥ ६ ॥

रङ्गः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते । सु
 द्रको वटकश्चैव द्रङ्गः स निगद्यते ॥ ७ ॥ को-
 लश्च यन्तु कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पारिमानिका ।
 अक्षः पिचुः पारिगतलं किञ्चित्पारि श्व-तिन्दुक
 म् ॥ ८ ॥ विडालपदकं चैव तथा योडशिका मता ।
 करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलमग्रहः ॥ ९ ॥

भा० - तीन रङ्गों का सरसों पंढितों ने कहा है ॥ आठ सरसों का जबक
 हा है और चार जबकी गुञ्जा होती है ॥ ५ ॥ छ रत्ती का मासा और उस
 को हेमधान कभी कहते हैं ॥ चार मासे का शारा उसको धररा भी
 कहते हैं ॥ ६ ॥ दो ही टंक कहा गया है दो टंक को कोल कहते हैं ॥ उ-
 सको सुद्रक वटक द्रङ्ग-रा कहते हैं ॥ ७ ॥ दो कोल का कर्ष होता है
 उसको पारि मानिका भी कहा है ॥ अक्षपिचु पारिगतल किञ्चित् पारि
 तिन्दुक ॥ ८ ॥ विडालपदक तथा योडशिका ये भी उसके नाम कहे
 हैं ॥ करमध्य हंसपद सुवर्ण कवलमग्रह ॥ ९ ॥

उदुम्बरञ्च पर्यायैः कर्षमेव निगद्यते । स्यात्कर्षा-
 भ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ १० ॥ शुक्तिभ्या
 ञ्च पलं त्रैयं सुष्टि रम्रञ्चतुर्थिका । प्रकुञ्चः षोड-
 शी विल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ११ ॥ पलाभ्यां
 प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतञ्च निगद्यते । प्रसृतिभ्याम-
 ञ्जलिः स्यात्कुडवोर्द्धशरावकः ॥ १२ ॥

भा० - उदुम्बर येह पर्याय से कर्ष को ही कहा है ॥ दो कर्ष से अर्द्ध
 पल होता है उसको शुक्ति अष्टमिका कहते हैं ॥ १० ॥ दो शुक्ति यों
 से पल जानना चाहिये उसको सुष्टि आमचतुर्थिका । प्रकुच षोड

तिविल्व येह यहां पर कहा है ॥ ११ ॥ दो पलों से प्रसूति जाननी
चाहिये उसको प्रसूत सी कहते हैं ॥ दो प्रसूति की अंजलि होती है
उसको कुडव अर्द्धशरावक ॥ १२ ॥

अष्टमातञ्च सक्षेयः कुडवाभ्याञ्च मानिका । श
रावोऽष्टपलं तद्वज्रत्रेयमत्र विचक्षुरोः ॥ १३ ॥
शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थः चतुः प्रस्थे स्तथा ढकः ।
भाजनं कांस्यपात्रं च चतुः षष्टिपलश्च सः ॥ १४ ॥ च
तुर्भिराढकैर्द्रोणाः कलशो नल्वरणाऽर्मराः । उन्मा
नश्च घटो राशिर्द्रोणा पर्यायसन्नितः ॥ १५ ॥ द्रो
णाभ्यां सूर्य्यकम्भौ च चतुः षष्टि शरावकः । सूर्य्या
भ्याञ्च भवेद्द्रोणी बाहो गोरणी च सा स्मृता ॥ १६ ॥

भा० - अष्टमात जानना चाहिये दो कुडवों की मानिका होती है ॥
उसको शराव अष्टपल वैसे ही यहां पर जानना चाहिये ॥ १३ ॥ दो श
रावों से प्रस्थ होता है वैसे ही चार प्रस्थ से आढक होता है ॥ उसको
भाजन कांस्यपात्र चतुषष्टिपल कहा है ॥ १४ ॥ चार आढक का द्रो
णा होता है कलश नल्वरा अर्मरा ॥ उन्मान घट राशि येह द्रोणा प
र्याय की सेवा कही है ॥ १५ ॥ दो द्रोणा से सूर्य्यकुम्भ और चतुषष्टि
शरावक होता है ॥ दो सूर्य्यस द्रोणी होती है उसको बाह गोरणी क
हते हैं ॥ १६ ॥

द्रोणी चतुष्टयं खाधिक्यं ता सूक्ष्मबुद्धिभिः । च
तुः सहस्रपलिका षष्ट्यवत्यधिकान्वसा ॥ १७ ॥
पलानां द्विसहस्रञ्चमारण्यकप्रकीर्तितः । तुला
पलानां क्षेयं सर्वत्र वैषमिनाप ॥ १८ ॥ बाधव
द्भाक्षविल्वानिकुडवप्रस्थमाढकम् । राशिर्ग

रागी खारिकेति यथोत्तर चतुर्गुणम् ॥ १६ ॥

भा० - चारट्टो रागी की खारी सूक्ष्म बुद्धियों ने कही है ॥ वोह चार हजार छानवे पल्लिका की होती है ॥ १७ ॥ और दो हजार पल्लिका का एक भार कहा है ॥ सौ पल की तुला जाननी चाहिये यह सब गह निश्चय है ॥ १८ ॥ मासा टंक अक्षविल्वकुडव प्रस्थ आक ॥ राशिगे रागी खारी यह यथोत्तर चौगुनी है ॥ १६ ॥

(क) मागधपरिभाषाया षड् रत्तिको माघश्चतुर्विंशतिरत्तिकष्टङ्कः षणवतिरत्तिकः कर्षः । आयञ्चरकसम्मतः । सुश्रुतमते । यञ्चरत्तिको माघो विंशतिरत्तिकष्टङ्कः । शीतिरत्तिकः कर्षः । अयमेव कालिङ्गपरिभाषाया मपि । यतस्तत्राष्टरत्तिको माघो द्वाविंशद्रत्तिकष्टङ्कः सार्द्धष्टङ्कद्वयमितः कर्षः ॥

भा० - मागधपरिभाषा में छ रत्तिका मासा चौबीस रत्तिका टंक वे रत्तिका कर्ष । यह चरक के सम्मत है । सुश्रुत के मत में का मासा बीस रत्तिका टंक अस्सी रत्तिका कर्ष है ॥ यही कालिङ्ग परिभाषा में भी कहा है जैसे आठ रत्तिका मासा षण्मासा टंक का कर्ष ॥

गुञ्जादिसानमारम्य यावत्स्यात्कुडव स्थितिः । द्रवाद्रेषुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ २० ॥ प्रस्थादिमानमारम्य द्विगुणं नद्रवाद्रेयोः । मानन्तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ॥ २१ ॥ सहस्रवेणुलोहादेर्भीण्डं यच्चतुरङ्गलम् । विस्ती

अतिमात्रं च दोषाय शस्यो सस्थे बहूदकम् ॥
इति स्नान परिभाषा ॥

भा० - आठ गुंजा का अथवा कहीं पर सात गुंजा का मासा होना है चार मासे का शरा उरकी निष्क और टंक भी कहते हैं ॥ २५ ॥ और छः मासे का गद्यान तथा दस मासे का कर्ष होता है ॥ चार कर्ष का पल कहते हैं दस शरा के बराबर होता है ॥ २६ ॥ चार पल का कुडव ॥ और प्रस्थादि के पहिले जैसे माने हैं ॥ मात्रा की तो कुछ स्थिति हीन है है क्योंकि काल अग्नि वय वन ॥ २७ ॥ प्रकृति दोष और देश इनको देखकर मात्रा को कल्पना करे ॥ क्योंकि छोड़ी औषध रोग को दूर नही करती जैसे थोड़ा पानी बहुत आग को ॥ २८ ॥ बहुत मात्रा दोष को करती है जैसे खौर हान से रखे हे नाज में बहुत जल ॥ अनंतर औषधि बाँका विधान ॥

अथ भेषजानां विधानानि ॥

स्वरसश्च तथा कल्कः कायश्च हिम फाराट कौ ।

ज्ञेयाः कषायाः पञ्चेते लघुवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ २९ ॥

तथा दोः स्वरस विधिः ॥

आहतात् तत् क्षरात्कृष्णद्रव्यात् क्षुरात्समुन्न

वेत् । वस्त्रनिष्पीडितो यश्च स्वरसो रस उच्यते ॥ ३० ॥

(क) आहतात् शीताग्नि कीटादिभिरनुपहतात् ।

भा० - अनंतर औषधियों का विधान । स्वरस तथा कल्क काय हिम फाराटक ॥ यह पांच प्रकार के कषाय उत्तरांतर हल के जानने चाहिए ॥ २९ ॥ उसमें पहिले स्वरस की विधि । उसी क्षरा का ठके लाई हुई को कुटकर कपड़े से छानके जो निकलता है उसको स्वरस कहते हैं ॥ ३० ॥ (क) पाला आग की ट आदि से खराब न हुई ॥

- क्षुरात् । संपिष्टात् । कुडवञ्चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तञ्च

द्विगुणे जले । अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वारस
 उत्तमः ॥ ३१ ॥ चूर्णां तच्चूर्णांकृतं । आदाय शुष्क
 द्रव्यं वा स्वरसा नाम सम्भवे । जले षष्ठगुणिता ते सा
 ध्यं पादशिष्टं च गृह्यते ॥ ३२ ॥ स्वरसस्य गुरुत्वा
 च पलमर्द्धं प्रयोजयेत् । निशेषितञ्चारिण सिद्धं
 पलमात्रं रसं यिवेत् ॥ ३३ ॥ निशेषितं निशायामुषितं

भा० - पीसी हुई मे । अथवा चूरा किये कुवे पाव भर द्रव्य को दुगुने जल
 में ॥ एक दिन रखे इससे उत्तम रस होता है ॥ ३१ ॥ चूर्ण किया हुआ । स्
 रस के अंश भवसे सूके द्रव्य को लेकर ॥ आठ गुने जल में सिद्ध करके चौथाई
 या कीर है तब निकाल ले ॥ ३२ ॥ स्वरस को गुरुत्व होने से अर्द्ध पल देवे
 एतके बासी और अग्नि सिद्ध रस की पल भर पीवे ॥ ३३ ॥ एतको रखवा
 हुआ ॥

सिता मधुगुड क्षारान् जीरकं लवणं तथा । घृतं तैल
 च चूर्णादीन् कोलमात्रात्वात् रसे क्षिपेत् ॥ ३४ ॥
 कोलष्टङ्कं द्वयं च । तराडुलजलविधिः ।
 करिडं तं तराडुलपलञ्जले षष्ठगुणितां क्षिपेत् ।
 भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु ॥ ३५ ॥
 भावयित्वा कोमलीकृत्य । अथ हिमविधिः
 क्षुरां द्रव्यं पलं सम्यक् षड्विर्नीरपलैः स्तुतम् । नि
 शेषितं हिमः सस्यात् तथा शीतकषायकः ॥ ३६ ॥

भा० - चीनी मधुगुड क्षार जीरा तथा लवण ॥ घृत तैल और चूर्ण
 आदियों को दो टंकरस में डाले ॥ ३४ ॥ दो टंका । चावल के धावन की
 विधि । कूटे हुए पाव भर चावल को आठ गुने पानी में डाले ॥ धोके जल
 लेना चाहिये सब कामों में देना चाहिये ॥ ३५ ॥ अनंतर हिम की विधि ॥

जवकुट किये हुवे पल भर द्रव्य को छ पल यानी में भिजोवे ॥ चोह रात
भर का भिजोया हुआ हिम रहे तथा शीत कषाय कहते हैं ॥ ३६ ॥

तस्य मानं सतं याने पल द्वयमितं बुधैः । क्षुरां चूर्णा
कृतं ॥ अथ संघ विधिः ॥ जले चतुः पले शीते क्षु
रां द्रव्य पल द्वि पेट् । मृत्पात्रे मन्थयेत् सम्यक्
तस्माच्च द्वि पलं पिबेत् ॥ ३७ ॥ क्षुरां चूर्णा कृतं मृ
मन्थयेत् मथनीयान् । अथ फारट विधिः ।
क्षुसे द्रव्य पले सम्यक् जलमुष्णं विनिः क्षिपेत् ।
मृत्पात्रे कुडयोन्मानं ततस्तु स्त्रावयेत्प्रदात् ॥ ३८ ॥

भा० - उसकी तोल पीने में दो पल कही है ॥ चूरा किया हुआ । अनंतर म
न्य विधि । शीतल चार पल जल में जवकुट किया हुआ पल भर द्रव्य डाले
मिट्टी के बरतन में अच्छी तरह मले उसमें से दो पल ले कर पीवे ॥ ३७ ॥
चूर्ण किया हुआ । मथे । अनंतर फारट की विधि । जवकुट किये हुवे
पल भर द्रव्य में पाव भर गरम जल मिट्टी के बरतन में ले उसके अनंतर
उसे कपडे से छनवा लेवे ॥ ३८ ॥

सस्याच्चूर्णा द्रवः फारटस्तन्मानं द्वि पलोन्मितम् । क्षी
द्रं सिता गुडा दीस्तु कर्षमात्रान्विनिः क्षिपेत् ॥ ३९ ॥
क्षुसे चूर्णा कृते स चूर्णा द्रवः फारटः स्यादित्यन्वयः
(अथ कल्क विधिः) द्रव्यमाद्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा स
जलं भवेत् । प्रक्षिप्य गालयेद् स्वेतन्मानं कर्ष संमितम्

भा० - चोह चूर्ण द्रव है और उसको फांट भी कहते हैं । उसकी तोल दो प
ल है ॥ मधुचीनी गुड आदि उसमें कर्ष भर डाले ॥ ३९ ॥ चूर्ण किये हुवे में
चोह चूर्ण द्रव फांट होता है इस प्रकार अन्वय है ॥ अनंतर कल्क की ।

विधि । गोली दवाको सिलपरपीसे अथवा सूकीको जलके साथ पीसे
उसको कपडे में डालकर निचोड़े उसकी तोल तोला भरहे ॥ ४० ॥

कल्के मधु घृत तैलं देयं द्विगुणमात्रया । सितागुड
समन्दद्याद्रवो देयश्चतुर्गुणः ॥ ४१ ॥ अथ चूर्णाविधिः

॥ अत्यन्त शुष्कं यद्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् । न
त्स्याच्चूर्णरजः क्षौदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥ ४२ ॥

चूर्णागुडः समो देयः शर्करा द्विगुणामता । चूर्णेषु भ
जितं हिङ्गु देयं तोल्लेदकद्वयेत् ॥ ४३ ॥ लिहैच्च
र्णद्वयैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः । पिवेच्चतुर्गुणो
रेवं चूर्णमालोडितं द्वयैः ॥ ४४ ॥

भा० - कल्के में मधु घृत तैल मात्रासे दुगना देना चाहिये ॥ चीनी गुड स
म भाग देवे और द्रव चौगुना देना चाहिये ॥ ४१ ॥ अनंतर चूर्णाविधि ॥
बहुत सूके हुए द्रव्यको अच्छी तरह पीसकर कपड़ छानकर ॥ वोह चू
र्ण है उसको रज क्षौदक हेतु है ॥ उसकी मात्रा तोला भरहे ॥ ४२ ॥ चूर्ण
में गुड सम भाग देना चाहिये और शर्करा दुगनी फली है ॥ चूर्ण में भूनके
हीङ्गु देना चाहिये वोह उल्केदकारी नहीं होता ॥ ४३ ॥ चूर्णको सब घृ
तादिक द्रव दुगने लेकर घोटें ॥ और चौगुने मिलाकर घोलके पीवे ॥ ४४ ॥

चूर्णावलेह गुटिका कल्कानामनुपानकम् । पित्त
वात कफातङ्गैः त्रिदोषैः पलमाहरेत् ॥ ४५ ॥ यथा
तैलं जले प्राप्तं क्षणेनैव विसर्पति । अनुपानवत्ता
दङ्गैः तथा सर्पति भेषजम् ॥ ४६ ॥ भावनाविधिः ॥
द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं क्षुतम्भवेत् । भाव
नायाः प्रमाणान्तु चूर्णं प्रोक्तं भिषगग्वरैः ॥ ४७ ॥

जवकुट कियेहुवे पल भर द्रव्य को छ पल पानी में भिजोवे ॥ वोह रात
भर का भिजोयाहुवा हिम रहे तथा शीत कषाय कहेते हैं ॥ ३६ ॥

तस्य मानं सतं पाने पल द्वयमितं बुधैः । क्षुरां चूर्णा
कृतं ॥ अथ मंथ विधिः ॥ जले चतुः पले शीते क्षु
रां द्रव्य पल द्विपेत् । मृत्पात्रे मन्थयेत् सम्यक्
तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ॥ ३७ ॥ क्षुरां चूर्णा कृतं स
मन्थयेत् मथनीयात् । अथ फासट विधिः ।
क्षुसे द्रव्य पले सम्यक् जल मुष्णं विनिः क्षिपेत् ।
मृत्पात्रे कुडयोन्मानं ततस्तु स्वावयेत् प्रदात् ॥ ३८ ॥

भा० - उसकी तोल पीने में दो पल कही है ॥ चूरा किया हुवा । अनंतर म
न्थ विधि । शीतल चार पल जल में जवकुट किया हुवा पल भर द्रव्य डाले
मिट्टी के बरतन में अच्छी तरह मले उसमें से दो पल ले कर पीये ॥ ३७ ॥
चूर्ण किया हुवा । मथे । अनंतर फासट की विधि । जवकुट किये हुवे
पल भर द्रव्य में पाव भर गरम जल मिट्टी के बरतन में ले उसके अनंतर
उसे कपडे से छनवा लेवे ॥ ३८ ॥

सस्या चूर्णा द्रवः फासटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् । क्षौ
द्रं सिता गुडा दीस्तु कर्षमात्रान्विनिः क्षिपेत् ॥ ३९ ॥
क्षुसे चूर्णा कृते स चूर्णा द्रवः फासटः स्यादित्यन्वयः
(अथ कल्क विधिः) द्रव्यमाद्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा स
जलं भवेत् । प्रक्षिप्य गालयेद् स्वेतन्मानं कर्षसंमितम्

भा० - वोह चूर्ण द्रव है और उसको फांट भी कहते हैं । उसकी तोल दो प
ल है ॥ मधुचीनी गुड आदि उसमें कर्ष भर डाले ॥ ३९ ॥ चूर्ण किये हुवे में
वोह चूर्ण द्रव फांट होता है इस प्रकार अन्वय है ॥ अनंतर कल्क की ।

विधि । गीली दवाको सिलपरपीसे अथवा सूकीको जलके साथ पीसे
उसको कपड़े में डालकर निचाड़े उसकी तोल तोला भरहे ॥ ४० ॥

कल्के मधु घृत तैलं देयं द्विगुणमात्रया । सितागुड
समन्दद्याद्रवोदेयश्चतुर्गुणाः ॥ ४१ ॥ अथ चूर्णविधिः

॥ अत्यन्त शुष्कं यद्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् । त
त्स्याच्चूर्णरजः क्षौद्रस्तन्मात्राकर्षसंमिता ॥ ४२ ॥

चूर्णगुडः समोदेयः शर्करा द्विगुणामता । चूर्णेषु भ
र्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकद्रवेत् ॥ ४३ ॥ लिहैच्च
र्णद्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः । पिवेच्चतुर्गुणो
रवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ४४ ॥

भा० - कल्के में मधु घृत तैल मात्रासे दुगना देना चाहिये ॥ चीनी गुड स
म भाग देवे और द्रव चौगुना देना चाहिये ॥ ४१ ॥ अनंतर चूर्णविधि ॥
बहुत सूके हुए द्रव्यको अच्छी तरह पीसकर कपड़े छानकर ॥ वोह चू
र्ण है उसको रज क्षौद्रक हेतु है ॥ उसकी मात्रा तोला भरहे ॥ ४२ ॥ चूर्ण
में गुड सम भाग देना चाहिये और शर्करा दुगनी कही है ॥ चूर्ण में भूनके
हीङ्ग देना चाहिये वोह उत्क्लेदकारी नहीं होता ॥ ४३ ॥ चूर्णको सब घृ
तादिक द्रव दुगने लेकर घोटें ॥ और चौगुने मिलाकर खोलके पीवे ॥ ४४ ॥

चूर्णावलेह गुटिका कल्कानामनुपानकम् । पित्त
वात कफातङ्गे त्रिदोषके पलमाहरेत् ॥ ४५ ॥ यथा
तैलं जले प्राक्तं क्षणेनैव विसर्पति । अनुपानबला
दङ्गे तथा सर्पति भेषजम् ॥ ४६ ॥ भावनाविधिः ॥
द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं क्षुतम्भवेत् । भाव
नायाः प्रमाणानु चूर्णं प्रोक्तं भिषगग्वरैः ॥ ४७ ॥

॥ अथ पुटपाकविधिः ॥ पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो
 गृह्यते यतः । अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते
 मया ॥ ४८ ॥ पुटपाकस्य प्राकोऽयं लेपस्याङ्गरवर्णा
 ता । लेपञ्च द्वाङ्गुलं स्थूलं कुर्याद्वाङ्गुलमात्रकम् ।

भा० - चूर्णा अवलेह गोली कल्क इनका अनुपान ॥ पित्तवान्तकफके
 रोगमें क्रमसे तीन दोरकपल लेवे ॥ ४५ ॥ जैसे तेल जलमें डाला हुआ
 क्षणमें फैल जाता है ॥ वैसे ही अनुपान केवल से शरीरमें औषध फैल
 ता है ॥ ४६ ॥ अनंतर भावना विधि ॥ जितने द्रवसे अच्छी तरह परसव
 चूर्णा तर हो जाता है ॥ वोह भावनाका प्रमाण चूर्णा में वैद्यो ने कहा है ॥
 ४७ ॥ अनंतर पुटपाक विधि ॥ पुटपाक कल्क का स्वरस जिस कारणा
 लिया जाता है ॥ इसवाले पुटपाक की युक्ति यहां पर कहता हूं ॥ ४८ ॥
 पुटपाक का पाक यह है कि लेपका अंगार के समान वर्णा होना ॥ लेप
 दो अंगुल मोटा दो अंगुल भरकरे ॥ ४९ ॥

काश्मरी वटज मूवादि पत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् । पलमा
 त्वोरसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधुक्षिपेत् ॥ ५० ॥ क
 ल्कचूर्णा द्रवाद्यास्तु देयाः कौलमिताबुधैः ॥ उष्णो
 दकविधिः ॥ अष्टमेनांशशेषेणाचतुर्थेनार्द्धकेन वा
 अथवा कथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं भवेत् ॥ ५१ ॥
 श्लेष्मासवानमेदोघ्नवस्तिशोधनदीपनम् । कास
 श्वासज्वरान् हन्ति पीतमुष्णोदकं निशि ॥ ५२ ॥

भा० - कुक्षेर वट जामन आदिके पत्रों से लपेटना उत्तम है ॥ पलभ
 र रस लेवे और तोला भर मधु डाले ॥ ५० ॥ कल्क चूर्णा द्रव आदिक
 आठ नामे देवे ॥ गरम पानी की विधि ॥ आठवा हिस्सा वाकी रहने
 से अथवा उवाले आने से ही सिद्ध उष्णोदक होता है ॥ ५१ ॥ कफ आ

न वातमेद दूनको नाशक वस्ति शीघ्रन दीपन । है जीरका स प्रवा सञ्चर
इनको नाश करता है सतमें पीया हुआ गरम जल ॥ ५२ ॥

उष्णोदकं सु ह्व वटा इतिलोके । क्षीरपाकविधिः ।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात् क्षीराक्षीरं चतुर्गुणम् । क्षीरव
शेषं तत्पीतं शूलसामोद्धवं जयेत् ॥ ५३ ॥ काथविधिः ॥

पानीयं षोडशगुणं क्षुरणो द्रव्यपलेक्षिपेत् । सृत्यात्रे
काथयेद् ग्राह्यमष्टमांशवशेषितम् ॥ ५४ ॥ कर्षा
दीतुपलयावद्दद्यात् षोडशकं जलम् । ततस्तुकुड
वं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ ५५ ॥ चतुर्गुणमतश्चो
द्धं यावत्प्रस्थादिकं जलम् । (षोडशिकं षोडशगुणम्)

भा० - क्षीरपाकविधि ॥ दूध द्रव्यसे अठ गुना और दूधसे पानी चौगुना
चाकी रहे हवे उस दूधके पौनेसे बोह आमके शूलको जीतता है ॥ ५३ ॥
काहेकीविधि ॥ सो लह गुने पानोमें पल भर द्रव्यको डाले ॥ मिट्टीकेवर
तनमें आँठ यावे और आठवां हिस्सावाकी रहे तबनिकाललेवे ॥ ५४ ॥
कर्षादिकमें पल भर जवतक दवा होतबतक सोलह गुना जलदेवे ॥ उ
सके अनंतर पाव भर जवतक हो अठ गुना जल होना चाहिये ॥ ५५ ॥ इस
के ऊपर चौगुना जल जवतक सेरभरहो ॥ सोलह गुना ॥

तज्जलं पाययेद्धीमान् कोष्ठां मृद्धग्नि साधितम् । पृ
तः काथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥ ५६ ॥

(काथयानमात्रमाह ।)

मात्रोत्तमा पले तत् स्यात् त्विभिरक्षौस्तु मध्यमा । ज
घत्या च पलाद्धेन स्नेहकाथोषधेषु च ॥ ५७ ॥

तन्ना न्तरे । काथ्यद्रव्यपलेवारि द्विरष्टगुणमिष्यते

चतुर्भागावशिष्टन्तुपेयं पलंचतुष्टयम् ॥ ५८ ॥ दी
प्तानलं महाकायं पाययेदञ्जलिं जलम् । अन्ये
त्वहं परित्यज्य प्रसिन्तुचिक्किसकाः ॥ ५९ ॥

भा० - उसमन्द आंच से पकाया हुआ जल को सील गरम बुद्धिवान पी
वे । अतः काष्ठ कषाय निर्यूह उसको कहते हैं ॥ ५८ ॥ काढ़े के पीने की
मात्रा को कहते हैं । एक पल की उत्तम मात्रा है और तीन तोले की मध्य
मात्रा ॥ निरुष्ट दो तोले की स्नेह काष्ठ औषधों में भी ॥ ५९ ॥ तन्ना
न्नरसे । पल भर काष्ठ करने योग्य द्रव्य में जल दुगना वा अठगुना कहा
है ॥ चौथाई बाकी रहे हुवे चार पल जल को पीना चाहिये ॥ ५८ ॥ दीप्ता
ग्नि और बड़े शरीर वाले को अंजली भर काढ़ा पिलावे ॥ बाकीयों को
आधा छोड़ के पैसे भर वैद्य पिलावे ॥ ५९ ॥

काष्ठत्यागमनिच्छन्नास्त्वष्टभागावशेषितम् । पार
स्पर्योपदेशेन बृहवैद्याः पलद्वयम् ॥ ६० ॥ (क)
अष्टभागावशेषितस्य चतुर्भागावशिष्टापेक्षया गु
रुत्वात् दीप्तानलं महाकायं पलद्वयं पाययेन्मध्य
साग्निसल्पकायं पलमात्रं पाययेत् सात्रोत्तमा प
लेन स्यादित्यादिवचनात् ॥

भा० - काढ़े का छोड़ना न चाहने वाले को अष्ट भाग वा की रहे हुवे दो
पल को बृहवैद्य परंपरा के उपदेश से देवे ॥ ६० ॥ (क) अष्ट भाग वा
की वचे को चौथाई बाकी वचे की अपेक्षा से भारी होने से दीप्ताग्नि और
बड़ी काया वाले को दो पल पिलावे । मध्य अग्नि और अल्प काया वाले
को पल भर पिलावे उत्तम मात्रा एक पल से होती है इत्यादिवचन से ॥

काष्ठेक्षिपेत् सिन्नामंशेष्वतुर्थाष्टमषोडशैः । वान
पित्तकफातङ्कैः विपरीतं मधुस्मृतम् ॥ ६१ ॥

जीरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु । हिङ्गु-
 निकटुकं चैव कथि शारोन्मिने क्षिपेत् ॥ ६२ ॥ क्षी-
 रं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यत् द्रवं तथा । कल्कं चूर्णा-
 दिकं काये निक्षिपेत् कर्षं संमितम् ॥ ६३ ॥ तत्रोप वि-
 प्रय विप्रान्नः प्रसन्नवदने क्षणः । औषधं हेम र-
 जतं मृज्जाजनपरिस्थितम् ॥ ६४ ॥ पिबेत् प्रसन्न-
 हृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम् । विधायान्म्य स-
 लिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ ६५ ॥ अवलेहविधिः ॥
 काथादेर्यत्पुनः पाकाद्भुजं सौ रस क्रिया । सो-
 ऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात् पलोन्मिता ॥ ६६ ॥

भा०- काढेमें चीनी चतुर्थ अष्टम और बीड श भागों से क्रमके साथ-
 वात पित्त कफ के रोग में डाले और मधु इससे विपरित कहा है ॥ ६१ ॥
 जीरा गुग्गुलु खार लवण शिलाजीत ॥ हीङ्गु निकटुकाइनको काढे में मार-
 मासे डाले ॥ ६२ ॥ दूध घृत गुड तैल मूत्र और द्रव तथा । कल्क चूर्ण
 आदिक काढे में तोला भर डाले ॥ ६३ ॥ वहां पर बैठ कर दमले के प्रस-
 न्न मुख दृष्टि होके सोने चान्दी वा माटी के बरतन में रखी हुई दवा को ।
 ६४ ॥ प्रसन्न हृदय होके पीवे पीकर बरतन की औन्धा कर के कुत्ता क-
 र पान आदि देवे ॥ ६५ ॥ अनंतर अवलेह । काढा आदि योंका जो फि-
 रसे पका कर गाढ़ा करना उसको रस क्रिया कहते हैं ॥ वोह अवलेह
 और लेह है उसकी मात्रा पल भर की है ॥ ६६ ॥

सिताचतुर्गुणाकार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः ॥ द्रवं
 चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ ६७ ॥
 सुपक्वे तन्तु सत्त्वं स्यादवलेहे ऽप्सु मज्जनम् ॥

स्थिरत्वं पीडिते मुद्रां गन्धवर्णा रसोद्भवः ॥ ६८ ॥
 दुग्धमिक्षुरसं यूषं पञ्चमूलकया यजम् । वासाक्षा
 यं यथा योग्यं अनुपानं प्रशस्यते ॥ ६९ ॥ वटकाविधिः
 ॥ वटका अथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिकावटी । मोदको
 वटिकापिराडी गुडो वर्त्तिस्तथोच्यते ॥ ७० ॥ लेह
 वत् साध्यते वद्भौ गुडो वा शर्करा यवा । गुग्गुलुर्वा
 क्षिपेत्तत्र चूर्णां तन्निर्मिता वटी ॥ ७१ ॥ तत्र बन्धुसिद्धे
 गुडोदो ॥ कुर्याद्वान्धुसिद्धे न कचिद् गुग्गुलुना वटी
 द्रवेण मधुना वापि गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ७२ ॥

भा० - चूर्णसेचीनी चोगुनी और गुड दुगना ॥ द्रव चोगुना देवे इस प्र
 कार सब जगह निश्चय है ॥ ६७ ॥ अच्छी तरह पकी हुई में तारक
 दते हैं और जल में डवता है ॥ और दवाने से स्थिर होता है तथा गंध
 वर्णा रस मालूम होता है ॥ ६८ ॥ दूध ईखकारस पंचमूलके काढ़े का
 जूस ॥ और वासा का काढा यथा योग्य अनुपान प्रशस्त है ॥ ६९ ॥ अनंतर
 वटकाविधि । अनंतर वटका कहते हैं उस का नाम गुटिका वटि है ॥ मोद
 क वटिका पिंडी गुड तथा वर्त्तिक कहते हैं ॥ ७० ॥ गुड अथवा शर्कर लेह
 के समान अग्नि पर सिद्ध की जाती है ॥ अथवा उससे गुग्गुलु डाले उससे
 व नार्ई हुई गोली है ॥ ७१ ॥ उससे अग्नि सिद्ध गुड आदि में । कही पर
 यिन अग्नि सिद्ध गुग्गुलु से गोली होती है ॥ जल से वा मधु से पीडित गोली व
 न वावे ॥ ७२ ॥

सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः । चूर्णो चूर्ण
 समः कार्य्यो गुग्गुलुः सधु तत् समम् ॥ ७३ ॥

(तत् समम् । चूर्ण समम् ।)

द्रवंतु द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः ॥ द्रवं द्रवरूप

द्रव्यं, कर्प प्रमाणं तन्मात्रा वलं दृष्ट्वा प्रयुज्यते । वल
मिति कालादेरप्युपलक्षणम् । घृत तैलयोर्विधिः ।
कल्काच्चतुर्गुणां कृत्य घृतं वानैलमेव च । चतुर्गुणा
द्वे साध्यं तस्य मात्रा पलो न्मिता ॥ ७४ ॥

(मात्रा पलो न्मिता । भक्षणाय ।)

निक्षिप्य क्वाथयेत्तथ क्वाथ्य द्रव्याच्चतुर्गुणम् । याद
शिष्टं गृहीत्वा तु स्नेहस्तेनैव साधयेत् ॥ ७५ ॥ चतुर्गु
णां सृष्टुं द्रव्यं कठिनेऽष्टगुणं जलम् । मृदादिक्वाथ्य सं
घातं दद्यादष्टगुणं पयः ॥ ७६ ॥ अन्यन्तं कठिनं
द्रव्यं नीरं षोडशिकं मतम् ॥

भा० - गोली में चीनी दुगनी देनी चाहिये और गुड़ दुगना देना चाहिये ॥
चूरा चूरा के सम करना चाहिये गूगल मधु उसके बराबर ॥ ७३ ॥ चूरा
के समान । घेध मोदक में दूध दुगना देवे ॥ पतली वस्तु । उसकी मात्रा स
क तोला । देखकर देवे ॥ काल आदि योंका उपेक्षण है । घृत तैल की वि
धि । घृत वानैल कल्क से चौगुना करके ॥ चौगुने द्रव में सिद्ध करे उसकी
मात्रा पल भर की है ॥ ७४ ॥ भक्षणा के अर्थ । चौगुने जल में औषध डाल
कर ओढ़वावे ॥ चौथा दूध वाली कोले कर तैल उसी से सिद्ध करे ॥ ७५ ॥
चौगुना मुलायम दवा में और सख्त दवा में अठगुना जल ॥ सृष्टुं आ
दि क्वाथ्य संघात में अठगुना पय देवे ॥ ७६ ॥ अन्यन्तं कठिन द्रव्य में ज
ल सोलह गुना कहा है ॥

ल

(क) सृष्टुं द्रव्यं आर्द्र द्रव्यं गुड च्यादौ । कठिनं शुष्क
द्रव्यं शु रज्ज्यादौ अन्यन्तं कठिनं । चिरशुष्के देवदा
र्यादौ ॥ कर्पादितः पलं यावत् क्षिपेत् षोडशिकं
जलम् । तद्दूर्द्धं कुडवं यावत् भवेदष्टगुणं पयः ॥ ७७ ॥

प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं स्वारी यावच्चतुर्गुणम् । (क)
 पूर्वं चतुर्गुणमृदुद्रव्य इत्यादिनाक्वाथ्यद्रव्यं तन्मृदु
 त्वादिगुणाभेदेन जलगतपरिमारा मुक्तम् । इ
 दानीं केचिदाचार्याः कर्षादितः पलं यावदित्यादि
 वचने क्वाथ्यद्रव्यगतपरिमाराभेदेन जलगतपरि
 मारा मन्यन्ते ।

भा० - मुत्तायम गीली गिलोय आदिमें । कठिन सूखी सोंठ आदि
 अत्यन्त कठिनमें । बहुतदिनके सूके हुवे देवदार आदिमें । कर्षसे पल त
 क में सोलह गुना जल डाले । उसके ऊपर कुडवतक में अठगुना जल
 डाले ॥ ७७ ॥ सेर भरसे लेकर ग्वारीतक में चौगुना जल डाले (क)
 पहिले चौगुना मृदु द्रव्य इत्यादि करके क्वाथ्य द्रव्य उस मृदु त्वादि गुणा
 भेदसे जलको तोल कहते हैं । अब कोई आचार्य कर्षसे लेकर पलतक इ
 त्यादि वचनसे क्वाथ्य द्रव्यके परिमारा भेदसे जलको तोल मानते हैं ॥

अम्बुक्वाथरसे र्यत्र पृथक् स्नेहस्य साधनम् । क
 ल्कस्याशन्तत्तदद्याच्चतुर्थषष्ठमष्टमम् ॥ ७८ ॥

(क) अस्यायमर्थः । अम्बुना स्नेह साधने कल्क
 स्नेहस्य चतुर्थमंश दद्यात् । क्वाथेन स्नेह साधने
 स्नेहस्य षष्ठभाग कल्क दद्यात् । स्वरसेः स्नेह
 साधने स्नेहस्याष्टमभाग कल्क दद्यात् ।

भा० - जलक्वाथरसें जहांपर अलग स्नेह साधन कहा है ॥ वहां
 पर कल्क का चतुर्थषष्ठ अष्टम अंश देवे ॥ ७८ ॥ (क) यह अर्थ
 है कि जलसे स्नेह साधनमें स्नेह का छठा भाग कल्क देवे । स्वरससे
 स्नेह सिद्धि करनेमें स्नेह का आठवां भाग कल्क देवे । पुनः विशेषकहे
 (पुनर्विशेषमाह ।)

दुग्धे दधिरसे तक्ने कल्को देवो ऽष्टमांशिकः । कल्का -
 च सम्यक् पाकार्थं तोय सत्त चतुर्गुणम् ॥ ७६ ॥
 कल्कात् । कल्कं द्रव्यात् । चतुर्गुणं तोयं पेषणार्थम् ।
 द्रव्याणि यत्न स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि । तत्त
 स्नेहसमान्या ह्यर्थथा पूर्वञ्चतुर्गुणम् ॥ ८० ॥
 (क) अस्यायमर्थः । यत्न स्नेहेषु आदीनि पञ्च
 द्रव्याणि दुग्ध दधि स्वरसतक्ने कल्कोपयुक्त ज
 नानि प्रत्येकं स्नेहसमानि वोद्ध्यानि यथा पूर्वम् ॥
 दुग्धदधि स्वरसतक्ने समुदितं स्नेहाच्चतुर्गुणं भवति ।
 द्रव्येण केवलेनैव स्नेह पाको भवेद्यदि । तत्ता
 म्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलञ्चात्तचतुर्गुणम् ८१ ॥

भा० - पुनः विप्रोपकहेतेहे ॥ दूध दहीरस मठा इनमें कल्क भ
 व मांश देवे ॥ कल्क से अच्छी तरह एकनेके अर्थ यहां पर जल चो
 गुना देवे ॥ ७६ ॥ कल्क द्रव्य से चोगुना जल पीमने के वास्ते जिस स्नेह
 में द्रव्यादि पांच होते हैं ॥ उसमें स्नेह सम कहा है जैसे पहिले चोगु
 ना ॥ ८० ॥ (क) इसका यह अर्थ है कि जिस स्नेह में आदि पांच
 दूध दही स्वरस मठा कल्क इनमें उपयुक्त जल प्रत्येक स्नेह सम
 जानने चाहिये जैसे पहिले । दूध दही मठा स्वरस ये कहते हैं वे स्ने
 ह से चोगुने है ॥ यदि केवल द्रव्य से ही स्नेह पाक होता ॥ उस ज
 ल से पीसके कल्क देवे और जल इसमें चोगुना देवे ॥ ८१ ॥

अत्र कल्क द्रव्ये ॥ काथेन केवलेनैव पाको यत्नोदितः
 क्वचित् । काथ्य द्रव्यस्य कल्कोऽपितत्न स्नेहे न युज्यते
 ॥ ८२ ॥ कल्क हीन म्नुयः स्नेहः स साध्यः केवलेनैव ।

कवले द्वये । काथेतरस्मिन् स्वरसादिरूपे ॥

पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्ततोयं चतुर्गुणम् । स्नेहा

तस्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥ ८३ ॥

वर्त्तिवत् स्नेहकल्कः स्याद्यदाङ्गुल्याविवर्त्तितः ।

शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ ८४ ॥

यदा फेनोद्गमे तैले फेनं शान्तिश्च सर्पिषि । वर्णागन्ध

रसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ ८५ ॥ ॥

भा०—अनंतरकल्क द्वयमें । जहां कहीं पर केवल काढ़े से ही पाक कहा है ॥ उस स्नेह में काढ़े की दवा काही कल्क दिया जाता है ॥ ८२ ॥ कल्कहीन जो स्नेह है वोह केवल द्वयमें सिद्ध करता चाहिये ॥ केवल द्वयमें अर्थात् काढ़े से इतर स्वरसादिरूप द्वयमें ॥ पुष्पकल्क का जो स्नेह है उसमें जल चो गुना डालना चाहिये ॥ स्नेह से स्नेह का अष्टमांश पुष्पकल्क डाला जाता है ॥ ८३ ॥ जब अंगुली से चलाने से वर्त्ती सी हो वोह स्नेह कल्क है ॥ जब भाग में डालने से स्नेह शब्द हीन होवे तब सिद्ध हुआ जाने ॥ ८४ ॥ जब भाग तेल में उठे और घृत में भाग जाते रहें ॥ और वर्णागन्ध रस हीन हैं तब स्नेह सिद्ध होता है ॥ ८५ ॥

स्नेह पाक सिद्धा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः स्वरस्तथा । ईषत्

सस्सकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् ॥ ८६ ॥ मध्यपाक

स्वसिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले । ईषत् कठिनकल्क

श्च स्नेहपाको भवेत् वरः ॥ ८७ ॥ तदूर्ध्वं दग्धपा

कः स्याद्वाहकृत्तिः प्रयोजनः । आमपक्वश्च निर्वर्षी

वन्निमान्ध करो गुरुः ॥ ८८ ॥

भा०—स्नेहपाक तीन प्रकार का कहा है मृदु मध्य और स्वर ॥ घोड़ारस के सहित कल्क वाला स्नेह पाक मृदु है ॥ ८६ ॥ और रस से रहित कोमल

कल्क में मध्यपाक का सिद्ध स्नेह जानना चाहिये ॥ थोड़ा कठिन कल्क
वाला स्नेह पाक स्वरहोता है ॥ ८७ ॥ इसके ऊपर दग्धपाक होता है वोह
दाहकादि वे प्रयोजन है ॥ और कच्चा पाक हुवा निर्वीर्य अग्निमान्ध को
करने वाला भारी होता है ॥ ८८ ॥

नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्षसु । अस्य

ङ्गार्थः खरः प्रोक्षी युञ्ज्या देवं यथोचितम् ॥ ८९ ॥

घृत तैल गुड़ादींश्च साधयेन्नैक वासरे । प्रकुर्वन्पु
पितास्वेते विशेषाद्गुणं सञ्चयम् ॥ ९० ॥

[अथ सन्धानविधिः] द्रवेषु चिरकालं स्थं द्रव्यं य
त्सन्धितमभवेत् । आसवारिष्टं भेदे स्तु प्रोच्यते भेष
जोचितम् ॥ ९१ ॥ भेषजेषु यदुचितं तद्भेषजोचि
तम् । [तत्र आसवारिष्टं योर्लक्षणा माह ।]

यदपक्वोषधान्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः । अरिष्टः
क्वाथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥ ९२ ॥

भा० नासके अर्थ मृदु पाक और मध्यपाक स्वका में है ॥ तथा अम्यङ्ग
के अर्थ खर पाक कहा है इस प्रकार यथोचित योजना करे ॥ ८९ ॥ घृत
तैल गुड़ादि योंका एकदिन जेबुनावे ॥ विशेष करके वासी हुवे येह गु
ण संचयको करते हैं ॥ ९० ॥ अनंतर सन्धान विधि । द्रव में बद्ध काल
का जो द्रव्य सन्धित होता है ॥ और सव अरिष्ट इन भेदों से औषधोचित
उसको कहता हूँ ॥ ९१ ॥ औषधियों में जो उचित वोह भेष जोचित है
। उसमें आसव अरिष्टों कालक्षणा कहते हैं ॥ जो कच्चे औषध के जल
से सिद्ध मद्य होता है वोह आसव है ॥ अरिष्ट काढ़े से बनता है उनका
तैल पल भर है ॥ ९२ ॥ (सामान्यतोऽरिष्टविधिः ।) ॥

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवाद्द्रोणा गुडानुलम् । क्षौद्रं क्षि

पेद्गुडादहं प्रक्षेपं दशभांशिकम् ॥ ८३ ॥ दश
भांशिकम् । गुडस्यैव दशभांशं । द्विविधं सीधुमाह ।
जेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः (मधुरद्रवै
द्रक्षुरसादिभिः) सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वम
धुरद्रवैः । परिपक्वान्नसन्धानात् ससुत्पन्ना सुराञ्ज
गुः ॥ ८४ ॥ सुरामण्डः प्रसन्नास्यात्ततः कादम्बरी
घना । तदधोजगलो जेयो मेदको जगला ह्वनः ॥ ८५ ॥

भा० सामान्यसे अरिष्ट की विधि । जिस अरिष्टमें तोन नहीं कहो है उस
में दोरा जल और गुड तुला भर ॥ गुडके आधामधु और प्रक्षेप गुडका
दशवा भाग डाले ॥ ८३ ॥ गुडका दशभांश । दो प्रकारके सीधुको क
हते हैं ॥ अपक्व मधुरद्रवों से जो होता है उसको शीतरस सीधु जानना चा
हिये । अर्थात् ईख आदिकेरससे । पके द्रव मधुरद्रव से जो सिद्ध होता
है उसको पक्वरस सीधु कहते हैं ॥ परिपक्व अन्नके सन्धान से उत्पन्न
हुई को सुरा कहते हैं ॥ ८४ ॥ सुरामण्ड प्रसन्ना है उससे कादवरी
गाढी होती है ॥ उसके नीचे का अजगल जानना चाहिये और अजगलसे
मेदक गाढा होता है ॥ ८५ ॥

पक्वासी हतसारः स्यात् सुरा बीजं च किरणवकम् ।
सुरा बीजम् । यव गोधूम तराङ्गुलादि ॥ यत्ता
ल खर्जूरैः सन्धिता साहि वारुणी । कन्दमूल
फलादीनि सस्नेह लवणानि च ॥ ८६ ॥ विनष्टं स
न्धितोस्तु तच्छुक्तमभिधीयते । अभिधीयते ॥
द्रवेणाप्लाव्य सन्धीयन्ते । विनष्टं मस्ततां यातं म
द्यं वा मधुरद्रवः । विनष्टं सन्धितो यस्तु तच्छुक्त

समिधीयते ॥ ८७ ॥ गुडाम्बुजासनेन कन्दशाक
फलैस्तथा ॥ सन्धितञ्चास्नतांयातं गुडचुक्रं प्रचक्षते ॥
॥ ८८ ॥ एवमेव हि शुक्तस्यानृद्धीकासम्भवं तथा ।
तुषाम्बुसन्धितं ज्ञेयमात्रेर्विदलितैर्यवैः ॥ ८९ ॥

भा० पका वोह सार रक्षित होता है उसको सुगर्वाज किण्वक कहते हैं ॥ सूरावी
ज ॥ जय गेहू तड़ुलादि ॥ जोताड खजूर के रसों से सन्धान की जाती है वोह वा
रुणी है ॥ कन्द मूल फल आदिक स्नेह स्नेह के सहित और लवरा ॥ ८८ ॥
सन्धान किया हुआ जो गल जाना है उसको शुक्त कहते हैं ॥ द्रव से आश्रय हो
कर सन्धान होता है ॥ विनष्ट अथवा खड़ा हुआ जो मधुर द्रव है ॥ विनष्ट स
न्धान किया जो है उसको शुक्त कहते हैं ॥ ८७ ॥ गुड जल कानेल के सहित त
था कन्द शाक फल के साथ ॥ सन्धान अर्थात् घान डाला हुआ जो खड़ा हो
जाता है उसको गुडचुक्र कहते हैं ॥ ८८ ॥ ऐसे ही दाख का शुक्त होता है ॥ क
च्चा विदलित जवों से सन्धान किया हुआ तुषाम्बु जानना चाहिये ॥ ८९ ॥

यवैस्तु निस्तुपैः पक्वैः सौवीरं साधितं भवेत् ॥ आ
रनालन्तु गोधूमे रामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ॥ १०० ॥
पक्वैर्वा संहितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुरौः । कल्मा
षधान्यं मण्डादि संहितं काञ्जिकं विदुः ॥ १०१ ॥
शिराडाकि सहिता ज्ञेया मूलकैः सर्वपादिभिः ॥

भा० निस्तुष पके द्रवे जवों से सिद्ध किया हुआ सौवीर होता है ॥ वे छिन्न के
के कसे गेहू घोंने आरनाल होता है ॥ १०० ॥ और पके द्रवे उनसे सन्धान किया
हुआ नौवीर के समान गुरा में होता है ॥ सुगन्धि युक्त धान्य के मंडादि से संहि
त को काञ्जिक कहते हैं ॥ १०१ ॥ मूली सरसों से संहित को शिराडा की जानना
चाहिये ॥ (अयधानूनां शोधनमारणाविधिः)।

॥ तत्र मारणाय योग्यं सुवर्णं माह ॥

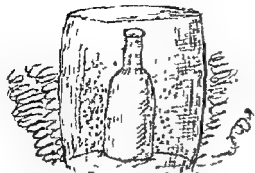
दाहेरत्नं सितच्छेदे निकषे कुङ्कुमप्रभम् । तार
 सुत्योज्ज्वलं तन्निग्नं कोमलं मुहुर्हमसत् ॥ १०२ ॥
 (सत् । उत्तमम्) । तच्छेदे कठिनं रुद्धं विवर्णं सप्त
 लं हलम् । दाहेच्छेदे सितं श्वेतं कषे स्फुटं न घुस्त्र्य
 जेत् ॥ १०३ ॥ [शोधनविधिः] पतलीकृतं प
 त्नाणि हेम्ना बद्धौ प्रतायेत् । निषिञ्चेत् तप्ततप्तानि
 तैले तप्रे च काञ्जिके ॥ १०४ ॥ गौमूत्रे च कुलत्था
 नां कषायेत् तु त्रिधा त्रिधा । एवं हेम्नः परेषाञ्च धा
 तूनां शोधनं भवेत् ॥ १०५ ॥

भा० अनंतरधातु शोधन मारण की विधिः । उसमें मस्मके योग्य सुवर्ण
 को कहते हैं ॥ दाहमें लाल काट नेमें सफेद कसौदी पर केसर के समान ॥
 चान्दी ताग्रेसे रहित चिकना कोमल भारी ऐसा सोना उत्तम है ॥ १०२ ॥
 और बौह काट नेमें कठिन स्तब्ध विवर्ण समस्त पत्र ॥ दाह और काटने
 में सफेद कसमें स्फुट हलका ऐसे को नलेवे ॥ १०३ ॥ अनंतर शोधन वि
 धि । पतले सोने के बरक करके आगेमें तपावे ॥ तपा २ कर तेल मठा का
 जी ॥ १०४ ॥ गौमूत्र कुरंथी का कोटा इनमें तीन २ बार खुभाव देवे ॥
 इस प्रकार सोने का और धातुवां का भी शोधन होता है ॥ १०५ ॥

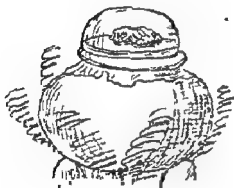
अथा शुद्धस्य सुवर्णस्य दोषमाह ।

बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजं पोषयतीह काये ।
 असौख्यकार्ये च सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणाञ्च कु
 र्यात् ॥ १०६ ॥ [स्वर्णस्य मारणविधिः]
 स्वर्णस्य द्विगुणं सूतं मस्मिनसह मर्दयेत् । नद्
 गोलकं समं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम् ॥ १०७ ॥

बानू का यंत्र



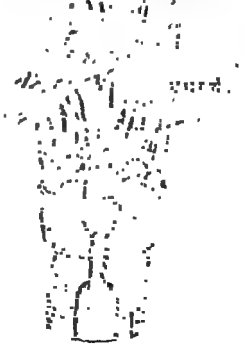
सेदन यंत्र



डोल का यंत्र



विद्याधर यंत्र



सर्गास्य अतितनू कृतपत्रस्य गन्धम् । गन्धकचूर्णम्
गोलकञ्च ततो रुध्वा शराव दृढसंपुटे । त्रिंशद्वनो
पल्लेर्दद्यात्पुनरन्येव चतुर्दश ॥ १०८ ॥ निरुत्थं
जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः ॥ ॥

भा० ॥ अनंतरं अंशुद्व सोनेका दोष कहते ते हैं ॥ मनुष्यों का बल वीर्य के सहि
त हरता है ॥ और बहुत से रोगों को शरीर में करता है ॥ सदा असौख्य करता
है और अंशुद्व यह सोना मरणा भी करता है ॥ १०६ ॥ अनन्तर सोनेकी मा
रणा विधि । सोनेका दुगना पारा खटाई के साथ घोटें ॥ उस गोलक के समा
न ऊपर नीचे गन्धक देवे ॥ १०७ ॥ सोनेका ॥ बहुत पतले किये पत्रका । ग
न्धकचूर्ण । उसके अनंतर गोलक की सकोरे के दृढ संपुट में बन्द करके ॥
तीस अरसे उपलें से चौदह पुट देवे ॥ १०८ ॥ निरुत्थ भस्म होता है गन्धक
बार २ देना चाहिये ॥

(क) रुध्वा सवस्त्रकुट्टितचिकरा सृत्तिकया वनो
पत्नः । गोड्वा इति लोके निरुत्थं यत्पुनर्न जीवति ।
अथान्यप्रकारः । काञ्चने गलितेनाङ्गुषोडशांशेन
निःक्षिपेत् । तूर्णयित्वा तथा म्लेन धृष्ट्वा कृत्वा तु गो
लकम् ॥ १०६ ॥ गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवा ध
रोत्तरम् । शराव संपुटे धृत्वा पुटे द्विंशद्वनोपलैः
॥ ११० ॥ एवं सप्त पुटेर्हं म निरुत्थं भस्म जायते । अ
त्रापि पूर्ववद्गन्धः प्रदातव्यः । [अन्यञ्च ।]

भा० स वस्त्र कूटी दृढ़ चिकनी माटी से । गोड्वा । निरुत्थ अर्थात् जी
फिर से नही जीता । अनंतर दूसरा प्रकार । गला रुध्वे सोने में सोलह
वां भाग सीसा डाले ॥ उसको पीसकर तथा खट्टे से घोट कर गोली
करके ॥ १०६ ॥ गोलक के समान गन्धक नीचे ऊपर देकर ॥ शराव

सम्पुट में धरके घीस भरने उपलेंसे पुट देवे ॥ ११० ॥ ऐसी सात पुटों से सोना
निरुत्थ भस्म होता है ॥ इसमें भी पहिले जैसा गन्धक देना चाहिये ॥ और भी ॥

काञ्च नाररसे घृष्ट्वा समस्तक गन्धयोः । कज्जलीहे
म यत्राणि लेपयेत् समया तथा ॥ १११ ॥ हेमं यत्र
समया ॥ काञ्च नारत्वचः कल्के मूषा युग्मं प्रकल्प
येत् । धृत्वा तत्सम्पुटे गोले सन्मूषा सम्पुटे च तत् ॥
॥ ११२ ॥ निधाय सन्धिरोधञ्च कृत्वा संशोष्य गोले कम्-
वङ्गि खरतरं कुर्यादेवं दत्त्वा पुट त्वयम् ॥ ११३ ॥

भा० - समभाग पारा गन्धक को कचनार के रस से घोट करके जलीकरे ॥
उस कजली को उसी के समान सुवर्ण के पत्रों को लेप करे ॥ १११ ॥ सुव-
र्ण पत्र के समान । कचनार की छाल के कल्क से दो धरिया देना दे ॥ उससे
पुट में गोली को धरके और उसको मिट्टी के सम्पुट में ॥ ११२ ॥ रखकर
कपड मिट्टी करके गोले को सुकाके ॥ बड़त तेज आंच देवे ऐसे तीन पुट
देने से ॥ ११३ ॥

निरुत्थ जायते भस्म सर्वकर्मसु योजयेत् । काञ्च नार
प्रकारेण लाङ्गुली हन्ति काञ्चनम् ॥ (लाङ्गुली करि
हारी) ॥ ज्वाला मुखी तथा हन्यात् तथा हन्ति मनः
शिला । शिला सिन्दूरयोश्चूर्णं समयो र्क दुग्धकैः
॥ ११४ ॥ सप्तधा भावना नन्दघाच्छोषयेच्च पुनः पुनः ।
ततस्तु गलिते हेमनि कल्कोऽयं दीयते समः ॥ ११५ ॥

भा० निरुत्थ भस्म होता है उसको सब कामों में लावे ॥ कचनार की तीर
पर करि हारी सो नेकी मारती है ॥ करि हारी ॥ वैसे ही अगि पाखर सीने
को मारता है और भैरव सिल सोने की मारता है । समभाग भैरव सिल और सिन्दूर
इनके चूर्णों को आंच के दूध से ॥ ११४ ॥ सातवार भावना देवे और फिर

२ सुकावे ॥ उसके अनंतर सोनेको गलाकर येह सम भाग कलक देवे ॥

११५॥

पुनर्द्ध मेदति तं यथा कल्को विलीयते । एवं वेत्ता
तयं दद्यात्कल्कं हेम मृतिर्भवेत् ॥ ११६ ॥

। एवं मारि तस्य सुवर्णस्य गुणाः ॥

सुवर्णं शीतलं दृष्यं वल्यं गुरुरसायनम् । स्वादु
तिक्तं चतुर्वर्ण्यं पाके च स्वादुपिच्छिलम् ॥ ११७ ॥ प
वित्वं दृष्ट्वा नेत्रं मेधास्मृति मति प्रदम् । हृद्य
मायुष्करं कान्ति वाग्मि शुद्धि स्थिरत्वकृत् ॥ ११८ ॥

भा० - फिर धोके खूब जोरसे जिस्मे कल्क जल जावे ॥ इस प्रकार तीन
बार कल्क देवे इससे सोना मरजाता है ॥ ११६ ॥ ऐसे मारे हुवे सोनेका
गुण ॥ सोना शीतल शुद्ध को करनेवाला बलकारी भारी रसायन ॥ म
धुर तिक्त कसेला पाकमें मधुर पिच्छिल ॥ ११७ ॥ पवित्र पुष्टनेत्रके हित
में धास्मृति इनको देनेवाला ॥ हृद्य आयु को करनेवाला कान्ति वारंती की
शुद्धता स्थिरता को करनेवाला ॥ ११८ ॥

विषद्वयक्षयोन्माद त्रिदोषज्वर शोषजित् । दृष्य
स्वर्णवर्णं वीर्यञ्च नाशयेत् । करोति रोगान्मृत्युञ्च
तद्व्याघातस्ततः ॥ ११९ ॥ धात्वादि मारणाय
युक्तान् पुट प्रकारा नाह रस प्रदीपे ॥

भा० दोनों विष उन्माद सन्निपात ज्वर और शोष इनको जीतनेवाला है
। कामुक के हित । अच्छी तरह भस्म न किया हुवा सोना बल वीर्य को
नाश करता है ॥ और रोगों को तथा मृत्यु को करता है इस वासे ठस्को
यत्नसे मारे ॥ ११९ ॥ रस प्रदीप में धात्वादिके मारणाय पयोगी पुट प्रकारों

कोकहाहे ॥

लोहादेर पुनर्भावस्तंजु रान्वं गुणात्पता । सलि
लेतरणाञ्चापितत्सिद्धिः पुटनाद् भवेत् ॥ १२० ॥
गम्भीरे विस्तृते कुण्डे द्विहस्ते चतुरस्रके । वनो
पल सहस्रेण पूरितं पुनर्येष धम् ॥ १२१ ॥ कोष्ठे
रुद्धे प्रयत्नेन गोविष्टोपरि धारयेत् । वनोपल स
हस्राङ्गं कोष्ठिकोपरि निःक्षिपेत् ॥ १२२ ॥ वङ्गि
विनिःक्षिपेत्तत्र महा पुटमिति स्मृतम् । कोष्ठं मृगा
सूया गोविष्टा गोइटा । [महा पुटम् ।]

भा० - धातु आदियों का फिर से न जीना उनका गुणान्व और गुणादयता है ॥ जल के ऊपर तेरना भी उसकी सिद्धि पुट से होती है ॥ १२० ॥ गहरे और बड़े दो हाथ के चौकोर कुंड में ॥ हजार अरने उपले भरि फिर औषध की ॥ १२१ ॥ कोष्ठ में पल के साथ बन्द करके गोइटा के ऊपर रखवे ॥ पान्सी अरने उपले कोष्ठिक के ऊपर डाले ॥ १२२ ॥ उसमें आचलगावे इसकी महा पुट कहा है मही की धरिया । गोइटा । महा पुट ॥

सपाद हस्तमानेन कुण्डे निम्ने तथा यते । वनोपल
सहस्रेण पूरणं मध्ये विधारयेत् ॥ १२३ ॥ पुटन
द्रव्यसंयुक्तां कोष्ठिकां सुद्रितां मुखे । अधार्द्धानि
करण्डानि अर्द्धान्युपरि निक्षिपेत् ॥ १२४ ॥
एतज्जपुटं प्रोक्तं स्थातं सर्वपुटोत्तमम् ॥

भा० - सवा हाथ के मान से गहरे तथा चौड़े कुंड से ॥ हजार अरने उपले भरि डूबे में ॥ १२३ ॥ पुटन द्रव्य से युक्त मांटी की धरिया को बन्द करके रखवे ॥ आधे कंठे नीचे और आधे को ऊपर डाले ॥ १२४ ॥ यह गज ।

पुट कहाँ है सब पुटों में उन्नत है ॥

(क) हस्तश्चतुर्विंशत्यङ्गुलप्रमाराः स सपादः

तेन त्रिंशदङ्गुलप्रमारो नैत्यर्थः अतएवोक्तम् ।

साधारण नराङ्गुल्या त्रिंशदङ्गुलको गजः ।

इति गजपुटम् । अरन्निमात्र के कुण्डे पुट वा

राह मुच्यते ॥ वितस्तिमात्र के खाते कथित को कुट

पुटम् ॥ १२५ ॥ अरन्निस्तुकनिष्ठेन मुष्टिनेत्यमरः ॥

निःसृतकनिष्ठया मुष्ट्योपलक्षितो हस्तोऽरन्निरित्यर्थः

भा० - (क) चौबीस अंगुल प्रमारा हाथ सपाद उससे तीस अंगुल प्रमारा करके यह अर्थ है । इ सी वास्ते कहा है । साधारण मनुष्य की तीस अंगुल का गज होता है ॥ इति गजपुट ॥ कोह नीसे चिटली उंगली तक के कुंड में जो पुट होता है उसको वाराह पुट कहते हैं ॥ विलस्त भरके गदों में को कुकुट पुट कहाँ है ॥ १२५ ॥ कनिष्ठा के साथ मुष्टि से इस प्रकार अमर में कहा है । निःकली हुई चिटली उंगली उस करके उपलक्षित ॥ हस्त अरन्नि है ॥

घोड़ शाङ्गुल के खाते कस्य चित्को कुट पुटम् ॥ य

त्पुट दीयते खाते अष्टसंख्येर्वनोपलैः ॥ १२६ ॥

कपोत पुट मेतन्तु कथितं पुट परिडत्तैः । गोष्ठा

न्तर्गोखुर क्षुरां शुष्कं चूर्णित गो मयम् ॥ १२७ ॥

गोवरं तत्समाख्यातं वरिष्ठं रस साधने । वहङ्गा

गडस्थितैर्यत्र गोवरं दीयते पुटम् ॥ १२८ ॥

भा० किसीके सोलह अंगुल के गदों में ० को कुट पुट होता है ॥ जो गदों में आठ भरने उपलो से पुट दिया जाता है ॥ १२६ ॥ उसको पुट पंडितों ने कपोत पुट कहा है ॥ गो शाला में गाय के खुर से खुदा सूका चूर्णित गोव

र होताहै ॥ १२७ ॥ उसको गोबर कहाहै वोहरस धानमें श्रेष्ठहै ॥ बड़े
वरतनमें रखवे डूबे गोबरसे जहांपर पुट दिया जाताहै ॥ १२८ ॥

तद्गोवर पुटं शोक्तं भिषग्भिः सूतं भस्मनि । वह द्वा
एडे तुषैः पूरणी मध्ये सूषां विधारयेत् ॥ क्षित्वाग्निं
मुद्रयेत् भारुडं तद्भारुडं पुटमुच्यते ॥ १२९ ॥

[अथ यन्त्र प्रकारनाह तत्रैव ।]

भारुडे वितस्तिगम्भीरे मध्ये निहितकूपिका । कूपि
का कण्ठपर्यन्तं वालुकाभिश्च पूरिते ॥ १३० ॥ भेष
जं कूपिका संस्थं वह्निना यत्र पच्यते । वालुकायन्त्रमे
तद्वियन्तं तत्र बुधैः स्मृतम् ॥ १३१ ॥ वालुकायन्त्रम् ॥

भा० उसको वैधौनें पारेके भस्ममें गोवर पुट कहाहै ॥ धानके छि
लकोंसे पूर्ण बड़े वरतनके बीचमें धरियाको रखवे ॥ आग डालकर व
रतनको बन्दकरदे उसको भारुड पुट कहैतैहै ॥ १२९ ॥ अनंतर ७
सीमें यन्त्र प्रकारोंको कहाहै
शीकी रखवे ॥ शीशीको रेतसे कंठ तक भरे जिसमें ॥ १३० ॥ शीशी
की बवा आगसे पकाई जातीहै ॥ ताने ७ यन्त्रका है
॥ १३१ ॥ वालुकायन्त्र ॥

निबद्ध मौषधं सूतं भूर्जेतत् त्रिगुणं वरे । रसपोट
लिका काष्ठे दृढं बद्धा गुरो नहि ॥ १३२ ॥ सन्धा
न पूर्ण कुम्भान्तः रवावलं वनसंस्थितम् । अध
स्तान् ज्वालयेदग्निं तत्तदुक्तक्रमेण हि ॥ १३३ ॥

भा० औषध और पारेको भोज पत्रमें बान्धे और उसको नीन परद किये डू
ये कपड़ेमें बांधे ॥ अनंतर उस रस पोटीकी काष्ठमें मजबूत डो
रीसे बान्धकर ॥ १३२ ॥ कांजीसे भरे डूबे घड़ेके भीतर बीचमें लटका

कर रखवे ॥ नीचे उसमें फहे डूबे कमसे आगवाले ॥ १३३ ॥

दीलायन्त्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनारण्यतदेव हि । [दीलाय
न्त्रम्] सन्धानं (काञ्चीकादि) सांस्तु स्थालीमुखे व
हे वस्त्रे स्वेद्यं निधाय च । पिधाय पच्यते यन्त्रं तद्यन्त्रं
स्वेदनं स्मृतम् ॥ १३४ ॥ [स्वेदनं यन्त्रं] अथ स्था
ल्यारसं क्षिप्त्वा निदध्यात्तन्मुखोपरि । स्थालीमूर्धे
सूरवीं सम्यङ् निरुध्य मृदु मृत् स्नया ॥ १३५ ॥ ऊ
र्ध्वे स्था ल्यां जलं क्षिप्त्वा चुल्यामारोप्य यत्नतः । अ
धस्ताज्ज्वालयेदग्निं यावत्प्रहरपञ्चकम् ॥ १३६ ॥

भा० - इसको दीलायन्त्र कहा है और स्वेदनारण्य भी वही है ॥ दीलाय
न्त्र । काञ्ची आदि । जल सहित तसले के मुख पर कपड़े को बांध कर स्वेद
वस्तु को उसके बन्द करके पकाया जाता है । जिस यन्त्र में उसको स्वेदन
यन्त्र कहा है ॥ १३४ ॥ स्वेदन यन्त्र ॥ नीचे के तसले में पारे को डाल कर
उसके मुख पर ऊपर मुख करके तसला रखवे । उसको अच्छी तरह चिक
नी मिट्टी से बन्द करके ॥ १३५ ॥ ऊपर के तसले में जल डाल कर चल्हे के ऊ
पर यन्त्र से रखवे ॥ और नीचे पांच प्रहर आगवाले ॥ १३६ ॥

स्नाङ्गः प्रीतं ततो यन्त्राद् गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् । वि
द्याधरमिधं यन्त्रमनन्तज्ज्ञैरुदाहृतम् ॥ १३७ ॥
[विद्याधर यन्त्रम्] । वालुकाभिः समस्ताङ्गः गर्तं
मूयां रसान्विताम् । दीप्तोपलेः संचरणं याद्यन्त्रं भूधर
नासकम् ॥ १३८ ॥ [भूधर यन्त्रम्] यन्त्रं डमरु
संज्ञं स्थात्तत् स्थाल्यां मुद्रिते मुखे । डमरु यन्त्रम्

भा० - स्नाङ्गः प्रीत होने पर उसमें से यन्त्र के साथ उत्तम रस को लेवे ॥

उसको जानने वालों ने इसको विद्याधर नाम यन्त्र कहा है ॥ १३७ ॥
 विद्याधर यन्त्र ॥ रसयुक्त घरिया को गढ़ में रेत से और जल ने उपलों से
 सम्पूर्णा अंग को बन्द कर उसको भूधर नामक यन्त्र कहते हैं ॥ १३८ ॥
 भूधर यन्त्रम् । दोनो तसलों के मुख जोड़ देवे उसको डमरु यन्त्र क-
 हते हैं ॥ डमरु यन्त्र ॥

[अथ मारगाय योग्य रूप्यमाह ।]

गुरुस्निग्धं मृदु श्वेतं दाहच्छेदघनक्षमम् । स्व-
 र्णादिरहितं स्वच्छं तारं नवगुणं शुभम् ॥ १३९ ॥

[अथा योग्यम्] कठिनं कृत्विमं रूक्षं रक्तं पीत द-
 लं लघु । दाहच्छेदघनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्तितम् ।

॥ १४० ॥ [अथ शोधनविधिः] पत्तली कृतपत्रा-
 रिणं तारस्याग्नेौ प्रतापयेत् । निधिञ्चेत्तप्ततप्तानि
 तैले तद्वेच काञ्जिके ॥ १४१ ॥ गोमूत्रे च कुलत्था-
 नां कषाये च त्रिधा त्रिधा । एवं रजतपत्राणां विशु-
 द्धिः सम्प्रजायते ॥ १४२ ॥

भा० अनन्तर मारण के योग्य चान्दी को कहते हैं ॥ मारी चिकनी मुलायम
 सुफेद तपाने और काटने में चोट सहने वाली ॥ स्वर्ण आदि से रहित स्वच्छ
 यह चान्दी के नव अच्छे गुण हैं ॥ १३९ ॥ अनन्तर योग्य । कठिन कृत्वि-
 म रूखी लाल पीले पत्र वाली हलकी । दाह छेद और घन में नष्ट ऐसी
 चान्दी को खराब कहा है ॥ १४० ॥ अनन्तर शोधनविधि । चान्दी के प-
 तले पत्र करके आग में तपावे ॥ तपा २ कर तेल मठा कांजी ॥ १४१ ॥
 गोमूत्र और कुरखी के काढ़ में तीन २ बार बुझावे ॥ इस प्रकार चान्दी के
 पत्रों की शुद्धि होती है ॥ १४२ ॥

(अथा शुद्धस्य रूप्यस्य दोषमाह)

रूप्यं त्वशुद्धं प्रकरोति नापं विवन्धकं वीर्य्यवलक्षयञ्च ।

देहस्यपुष्टिं हरते तनोति रोगं मृतः शोधनस्य कृ-
 यात् ॥ १४३ ॥ [अथरूप्यसारणाविधिः] ॥
 भागेकं तालकं मर्द्यं यामसस्तेन केनचित् । तेन भा-
 गत्वं तारपत्राणि परिलेपयेत् ॥ १४४ ॥ धृत्वा
 मूषाः पुटे रुध्वा पुटेत् त्रिंशद्द्वयोपलेः । समुद्धृ-
 त्य चुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ १४५ ॥

भा० - अनंतर अशुद्ध चान्दी के दोष कहते हैं ॥ अशुद्ध चान्दी तापवि-
 न्ध और वीर्यचलका साथ करती है ॥ शरीरकी पुष्टी हरती है और रोगों को क-
 रती है इसवास्ते इसका शोधन करें ॥ १४३ ॥ अनंतर चान्दीकी मारणा विधि
 एक भाग हरताल को किसी स्वर्ण के साथ एक पहर घोटकर ॥ ठसै तीन
 भाग चान्दी के पत्रों को लेप करावे ॥ १४४ ॥ उनको धरिये में रख कर बन्दकर
 के तीस अरने उपलों से पुट देवे ॥ उसको निकाल कर फिर से हरताल दे
 कर बन्दकर पुटमें पकावे ॥ १४५ ॥

एवं चतुर्दश पुटे स्तारम्भस्म प्रजायते ॥ अथान्य प्रकारः

। स्नुहीक्षीरेण संपिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत् । ता-

लकस्य प्रकारेण तारपत्रस्य बुद्धिमान् ॥ १४६ ॥

पुटे चतुर्दश पुटे स्तारम्भस्म प्रजायते ॥

[एवं मारितस्य रूप्यस्य गुणः]

रूप्यं शीतं कषायञ्च स्वादुपाकरं सुरम । वय-

सः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित् ॥ १४७ ॥

प्रमेहादिकरो गांश्च नाशयत्यचिराद्भुवम् ॥

भा० ऐसे चौदह पुटमें चान्दी का मस होता है ॥ अनंतर दूसरा प्रका-
 र ॥ रूपा मारखीको घूवरके दूधमें पीसे उसे ॥ हरताल के तरद चान्दी

के पत्रों को लेप करे ॥ १४ ॥ चौदह पुंठ देवे इससे चान्दी भस्म होती है ।
इस प्रकार चान्दी के भस्म का गुण है ॥ चान्दी शीतल क सेली पाक रस
में मधुर ॥ वपकी स्थापन चिकनी लेखन वान पित्र की जीनने वाली है ॥
१४७ ॥ और प्रमेह आदिक रोगों को निश्चय नाश करती है ॥

[अथ मारणा योग्य ताम्रमाह]

जवा कुसुम सङ्काशस्त्रिगंधगुरुधनक्षमम् । लोह
नागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥ १४८ ॥

[अथा योग्य ताम्रमाह]

रुषां रूक्षं मतिस्वच्छं श्वेतं चापि धना सहम् । लोह
नागयुतं चेति शुल्वदुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ १४९ ॥

अथ शोधनविधिः पतलीकृतपत्राणि ताम्रस्याग्ने
प्रतापयेत् । निविञ्चेत्तप्तपानि नैले तं क्रेचकाञ्जिके
॥ १५० ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा ।

एवं ताम्रस्य पत्राणां विशुद्धिः सं प्रजायते ॥ १५१ ॥

भा० — अनन्तर मारणा योग्य ताम्र को कहते हैं ॥ अङ्गुल के फूल
के सदृश लाल चिकना भारी धन सहने वाला ॥ लोहा और सीसा इनसे
रहित ताम्रा मारणा के अर्थ अच्छा है ॥ १४८ ॥ अनन्तर अयोग्य ताम्र
को कहते हैं । काला रूखा अति स्वच्छ श्वेत धन को न सहने वाला ॥
लोह नाग से युक्त ऐसा ताम्रा दुष्ट कहा है ॥ १४९ ॥ अनन्तर शोधन
की विधि ॥ ताम्र के पत्र पत्र करके आग में नपावे ॥ उनको तपा २ करतिल
मटा कांजी ॥ १५० ॥ गोमूत्र कुरथी का काढ़ा इनमें तीन २ बार बुभावे
ऐसे ताम्र के पत्रों की शुद्धि होती है ॥ १५१ ॥

शको दोषो विद्ये ताम्रे त्व शुद्धे षो भूमी वमिः । विरे

कः स्वेद उत्क्लेदो मूर्च्छा दाहो रुचिस्तथा ॥ १५२ ॥

नविषं विषमित्याहुः स्तामन्तु विषमुच्यते । एंको दो
यो वियेतामे त्वष्टो दोयाः प्रकीर्तिताः ॥ १५३ ॥

अथ ताम्रस्य मारणा विधिः ॥

सूक्ष्माणि ताम्र पत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद्बुधः ।
वासरत्रय मस्त्रेन ततः खल्वे विनिःक्षिपेत् ॥ १५४ ॥
प्रादांशं सूतकं दत्त्वा याम मस्त्रेन मर्दयेत् । ततः उ
द्धृत्य पत्राणि लेपयेद्दिगुणो न च ॥ १५५ ॥

भा० - विषमें एक दोष अशुद्ध ताम्र में आठ दोष है ॥ अं सं व मन विरेक
त्वेद उत्कृष्ट सूक्ष्म दाह अरुचि येह है ॥ १५२ ॥ विषको विषनही कहते
हैं ताम्रको विष कहते हैं ॥ एक दोष विषमें कहा है और आठ दोष ताम्र
में कहें हैं ॥ १५३ ॥ अनन्तर ताम्रके मारणा की विधि । सूक्ष्म ताम्रके
पत्र करके बुद्धिवान् उनकी संस्वेदन करे ॥ तीन दिन खटाई के साथ
उसके अनन्तर खरतन में डाले ॥ १५४ ॥ उसमें चौथाई पारा देकर ए
क पहर खटाई के साथ घोटे ॥ उससे लेकर दुंगने से उन पत्रोंको लेप
करे ॥ १५५ ॥

गन्ध के नास्त्र घृष्टेन तम्य कुर्याच्च गोलकम् । ततः पि

ष्ट्वा च सीनां क्षीचाङ्गेरी वा पुनर्नवाम् ॥ १५६ ॥

(चाङ्गेरी चतुष्पत्तास्त्रालो निका भेदः ।)

तत्कल्केन दाहर्गोलं लेपयेद्वाङ्गुलोनिसतम् । धृत्या
तज्जोलकं भण्डे सरावेण चरो धयेत् ॥ १५७ ॥

भा० - खटाई से घोटे हुए गन्धक से उसकी गोली करे ॥ उसके अनन्तर
मछे की चाङ्गेरी अथवा पुनर्नवा इसको पीसकर ॥ १५६ ॥ उसक
ल्क से दो अंगुल मोटा गोलक के बाहर लेप करे ॥ उसे गोलक की बरतन में
खकर सकोरे से बन्द कर दे ॥ १५७ ॥

वात्सुकाभिः प्रपूर्वाथ विभूतिलवणाभ्युभिः ॥ दत्त्वा
 भाण्ड मुखे सुद्रां ततश्चुल्यां विपाचयेत् ॥ १५८ ॥
 क्रमवृद्धाग्निना सम्यग्वावधामंचनुष्टयम् । स्वाङ्ग-
 शीतं समुद्धृत्य मर्दयेच्छूरणाद्रवैः ॥ १५९ ॥ यामे-
 कं गोलकं तच्च निःक्षिपेच्छूरणोदरे ॥ मृदालेपस्तु
 कर्तव्यः सर्वतोऽङ्गुष्ठमात्रकः ॥ १६० ॥ पाच्यं गज-
 पुटे क्षिप्तं मृतं भवति निश्चितम् । वमनं च विरेकं च
 धमं क्लममथा रुचिम् ॥ १६१ ॥ विदाहं स्वेदं मुतक्ले-
 दं न करोति कदाचन ॥

भा० वात्सुके भस्के और विभूतलवणा जल दूसे भाण्ड मुख में सुद्रां दे
 कर उसके अनंतर चूल्हे पर पकवावे ॥ १५८ ॥ क्रमवृद्ध अग्नि से अच्छी
 तरह पर-वार पहार आंच देवे ॥ स्वाङ्ग-शीत होने पर निकाल कर सूरणा
 के रस से घीटे ॥ १५९ ॥ एक पहार उस गोलक को सूरणा के भीतर र-
 खवे ॥ मिट्टी से सब तरफ अंगुष्ठ मात्र लेप करना चाहिये ॥ १६० ॥ पा-
 च्यको गज पुट में डालने से अवश्य मरता है ॥ वमन विरेक धमक्लम और
 अरुचि ॥ १६१ ॥ विदाह स्वेद उतक्ले द इनको कभी नही करता ॥
 एवं भारितस्य ताम्रस्य गुणाः ।

तासं कषायं मधुरं सतिक्तं मस्रं च पाके कटुसारकञ्च ।

पितापहं श्लेष्महरञ्च शीतं तद्रोयणं स्यान्नृषिखन-
 ञ्च ॥ १६२ ॥ पाण्डूदरा शोण्वरकुष्ठकासप्रवासक्ष-

यान् पीनसमस्रपित्तम् । शोथं कृमिं शूलं मूपां करो-
 ति आहुर्बुधा बृंहणमल्पमेतत् ॥ १६३ ॥ एको दो-

षो विद्येतामेतत्सम्यग्भारितैर्धुनैः । दाहः स्वेदोऽरुचिर्मू-

कां लो दोरेको वमिर्भमः ॥ १६४ ॥ रेको विरेकः ॥

भा० - येमं मारितं तं मुका गुणः ॥ तन्म्या कसेना मधुरतिल स्वद्वपाक मे
कटुसारक ॥ पित्राशक कफनाशक शीतल और रोपरा हलका लेख
नहोताहे ॥ १६२ ॥ पाद रोग उदर रोग ज्वर कुष्ठ कास श्वाम क्षय यीनस
अम्लपित्त ॥ रूजन रुमि शूल इनको दूर करताहे और पंडितोने कहाहे
कियेह घोडा पुष्टभीहे ॥ १६३ ॥ एक दोष विषमे और अच्छीतरह न
सुरे तान्त्रिम ॥ दाहस्विद अरुचि मूर्च्छा ज्वर विरेचन भमयहोनेह ॥
१६४ ॥ विरेक ॥

[अथ बद्धस्य रूपनिरूपणम् ॥]

बद्ध च गिरिजं तच्च खुरकं मिश्रकं द्विधा । तयोस्तु

खुरकं श्रेष्ठ मिश्रकं त्वहितं मनुजम् ॥ १६५ ॥

॥ तस्या शुद्धस्य दोषमाह ॥

तद् विधत्ते खलु शुद्धिहीन माक्षिकम्योच किनास

गुल्मी । कुष्ठानि शूलं क्लिप्तं वात शोथं पाण्डु प्रमेह

ज्वर भगदरञ्च ॥ १६६ ॥ विषोपसंरक्त विकारश्चन्द

क्षयञ्च रुक्काणि कफज्वरञ्च । मेहा प्रमरीविद्र

धिमुष्क रोगान्नागीऽपि कुर्यात्कथितान् विकारान् ॥ १६७ ॥

भा० - अनंतर गङ्गे का स्वरूप निरूपण ॥ पहाडों का दो प्रकार का होता है
खुरक और मिश्रक ॥ उन्में खुरक श्रेष्ठ है और मिश्रक अहित कहाहे ॥

॥ १६५ ॥ उसके अशुद्ध का दोष कहनेहे ॥ अशुद्ध गङ्गा माक्षिक य किना
स कुष्ठ वायगोला ॥ कुष्ठ शूल वात शोथ पाण्डु रोग प्रमेह भगदर ॥ १६६ ॥ उ
नको करताहे और विष के समान रक्त विकार का चन्द क्षय मूत्र रुक्का कफ ज्वर
इन्
मी ॥ १६७ ॥

तस्य शोधनमभिधीयतं बद्धं नागी प्रतमोच गति

नौ नौनिषेचयेत् । त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्याद्वि
दुग्धेऽपि च त्रिधा ॥ १६८ ॥ (क) निषेचयेत् तै
ल तक्र काञ्जिक गोमूत्र कुलत्थ काथेष्ट प्रत्येक
त्रिधा त्रिधा ततोऽर्कदुग्धेऽपि त्रिधा ।

भा० उत्की शोधनविधिकहेतु है । राइन और सीसा इनको गलायके ॥ तीन २
वार तेल मदाकाजी गोमूत्र कुरथीका कादा इनमें बुझावे और आकके दुधमें
भी तीन बार बुझावे । इससे शुद्ध होता है ॥ १६८ ॥ (क) तेल मने काजी गोमू
त्र कुरथीका कादा इनमें हर एक में तीन २ बार अनंतर मदारके दुधमें भी ती
न बार बुझावे । ॥ अथ वङ्गस्य मारणविधिः ॥

मृतपात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चा उवत्थत्वचोरजः । क्षि
प्त्वा वङ्गचतुर्थी शमयोदर्या प्रचालयेत् ॥ १६९ ॥
चिञ्चा अमिली । रजश्वूरां अयोदवीकरछुली ।
ततो द्वियाममावेण वङ्गभस्म प्रजायते ॥ अथ भ
स्म समतालं क्षित्वा स्लेन विमर्दयेत् ॥ ततो रज
पुटे पक्त्वा पुनरस्लेन मर्दयेत् ॥ १७० ॥ नालेन
दशमाशेन याममेकं ततः पुटेत् ॥ एवं दशपुटेः
पक्वं वङ्गं भवति मारितम् ॥ १७१ ॥

भा० अनंतर राइ की मारणविधि ॥ मिट्टी के बरतन में पिघलाये हुवे राइ
में इमली पीपल इनकी चूका का चूरा ॥ राइ की चौथाई डालकर लोह
की कड़ली से चलावे ॥ १६९ ॥ इमली । करछी उससे दो पहर में राइ भस्म
होता है ॥ अनंतर भस्म के समान हरताल को डालकर खटाई से घोंटे ॥
१७० ॥ दशमाशे हरताल से एक पहर भर फिर से पुट देवे ॥ ऐसी दस
पुट देने से राइ का भस्म होता है ॥ १७१ ॥

एवंमारितस्य बद्धस्य गुणाः

वङ्गं लघुसरं रूक्षं कुष्ठं मेहकफ रुमीन ॥ निहन्ति

पाण्डुं सश्यासं नेत्र्य मीषत् तुपित्तलं ॥ १७२ ॥

सिंहो गजो घृतं यथा निहन्ति तथैव वङ्गेऽखिलमे

हवर्गम् । देहस्य सौख्यं प्रवर्त्तेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं

विदधाति नूनम् ॥ १७३ ॥ अथ यशदस्य स्वरूपं ॥

यशदङ्गिरिजं तस्य दोषाः शोधनमारगो । बद्धस्ये

वहि बौद्धव्या गुणां स्तु गरा याम्यथ ॥ १७४ ॥

भा० - इस प्रकार अस्मकिये हुवे रङ्गे का गुण ॥ रङ्गा हलका सर रूखा हो
ता है और कुष्ठ प्रमेह कफ रुमि इनको नाश करता है और पाण्डु रोग श्यास इ
नको भी नाश करता है तथा नेत्र के रित्त थोड़े पित्त को करने वाला हो ॥ १७२ ॥
जैसे सिंह गज के गिरोह को नाश करता है वैसे ही रङ्ग संपूर्ण प्रमेह वर्ग को
नाश करता है ॥ मनुष्य के देह का सौख्य प्रवर्त्तेन्द्रियत्व इनको अवश्य करता
है ॥ १७३ ॥ अनंतर जिस प्रकार का स्वरूप ॥ पहाड़ी जसद्वम के दोष शोधन मा
रग में ॥ रङ्ग के ही समान गुण जानने चाहिये और कहता हूँ ॥ १७४ ॥

यशद वसरति क्त्वा शीतलं कफ पित्तहृत् । चक्षुष्यं

परमं मेहान पाण्डुं श्वासञ्च नाशयेत् ॥ १७५ ॥

[अथ सीसकस्य शोधनम् ॥]

तस्य साहजिक दोषा रङ्गस्येव निदर्शिता । शोध

ने च्चापि तस्यैव भिद्यमिर्गोदितं पुरा ॥ १७६ ॥

भा० - जिस प्रकार कि शीतल कफ पित्त का नाशक । परम नेत्र के रित्त और
प्रमेह पाण्डु रोग श्वास इनको नाश करता है ॥ १७५ ॥ अनंतर सीसे का शो
धन । उरु के सहजिक दोष रङ्ग के समान कहते हैं ॥ और शोधन भी वही है

उसी के समान कहा है ॥१७६॥

[अथ सीसस्य मारणविधिः]

ताम्रचूला रससंपिष्टं शिला लेपात्पुनः पुनः ॥ द्वाविंशतिः
शङ्खः पुटेर्नागां सिरुत्थं भस्म जायते ॥१७७॥ शि

लां सेनः शिलाः । अन्यच्च ॥ भंडवत्थचिञ्चात्वक्

चूर्णाञ्च तुर्योऽनेन निक्षिपेत् । मृतप्राज्ञे विद्वतो नामो

लोहद्वयो प्रचालितः ॥१७८॥ यामैकेन भवेद्भस्म

तत्तुल्या स्यात्सनः शिला । काञ्चिकेन द्वयं पिष्ट्वा पचेद्

गजपुटेन च ॥१७९॥ स्वाङ्गं शीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया

काञ्चिकेन च । पुनः पचेत्सरायाभ्यामेव यष्टिपुटे मृतिः

॥ और सीस पीस लोहमर्ली इन्क छाल का चूर्ण चतुर्थांश करके ॥ मृदु कि बर
तन में गलाये हुवे नाग पर डाले और लोह की करछी से चलाता जाय ॥ १७८
गक पहरे भस्म होता है उसके समान सेन सिल ले कर ॥ दोनों को कांजी
में पीसकर गजपुटे में पकावे ॥ १७९॥ स्वाङ्ग शीत होने पर फिर रसे में नसि
ल और कांजी के साथ फिर उसको ये से पकावे ये से साठ पुटे से मरता है १८०

एवं मारितस्य सीसस्य गुणाः ॥ सीसं उद्धगुणं ज्ञेयं

विशेषान्मे हनोशनम् ॥ नागस्तु नागं शनं तुल्यबलं

ददाति । व्याधिञ्च नागं शयति जीवंतं मातनोति । व

ह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति । मृत्युञ्च नाशयति

सन्तानं सेवितः सः ॥१८१॥

भा० ऐसे नाग भस्म के गुण । सीसा रङ्ग के गुण जानना चाहिये विशेषकरके प्रमेह नाशक है । नाग से हाथी के समान बल को देता है ॥ रोगों को नाश करता है । जीवन को करता है । अग्नि को दीपन करता है काम बल को करता है और मृत्यु को नाश करता है निरन्तर सेवन करने से ॥ १८३ ॥

अथ लोहस्य शुद्धस्य दीपमाह ॥ खराड त्वकुष्ठा मयसृ

त्युच्चार्य हृद्गो शूलैः कुरुतेऽत्र मरीच्य । नानारुजा

नां च तथा प्रकीर्णं कुर्याच्च हृत्प्रासमशुद्धलोहम् ॥

॥ ८२ ॥ अतस्तस्य दीपशान्तये शोधनमभिधीयते ।

पतन्ती कृतपत्राणि लोहस्याग्नेः प्रतापयेत् । निषि

ञ्चेत्तप्तमानि तैले तत्रैव काञ्चिके ॥ ८३ ॥ गोमू

त्रे च कुलत्थानां कर्षाचविधात्रिधा । एवं लोहस्य प

त्राणां विशुद्धिः संप्रजायते ॥ १८४ ॥

भा० अनन्तर अशुद्ध लोहे के दीप कहते हैं ॥ नपुंसकता कुछ मृत्यु इन को करनेवाला और हृद्गो शूल इन को करता है और अत्र मरीचिकी भी । अने करोंगो का प्रकीर्ण करता है तथा हृत्प्रास इन को भी अशुद्ध लोहा करता है । इस वास्ते उसकी दीप शान्तिके अर्थ शोधन कहते हैं ॥ लोहे के पतले पत्र करके अग्नि में तपावे ॥ और तपानपा कर तेल मठा कांजी ॥ १८३ ॥ गो मूत्र कुरखी का काटा इन में नीन । खार बुभावे । ऐसे लोह पत्रों की शुद्धि होती है ॥ १८४ ॥

अथ लोहस्य सारणाविधेः

शुद्धे लोहभवे चूर्णं पाताल गरुडीरसेः । सद्दयित्वा

पुटे वन्द्यो दद्यादेव पुटत्रयम् ॥ १८५ ॥ पुटत्रयं

कुमार्याश्च कुठारच्छिन्निकारसेः । पुटयटकं ततो

दद्यादेवं तीक्ष्णानृतिभवेत् ॥ १८६ ॥ अन्यच्च ।

क्षिपेद्वा दशमांशेन दरदंती क्षणचूर्णतः । मर्दयेत्क
न्यकाद्रवैर्यामयुग्मं ततः पुटेत् ॥ १८७ ॥ एवं सप्त पु
टेर्मृत्युं लोहचूर्णमवाप्नुयात् । सन्योऽनुभूतो योगेन्द्रैः
क्रमोऽन्यो लोहसारगो ॥ १८८ ॥ कथ्यते रामराजेन
कीदृहलधियाऽधुना । सूतकान् द्विगुणं गन्धं दत्त्वा
कुर्याच्च कंज्जलीम् ॥ १८९ ॥ ॥ ॥ ॥

भा० - अनंतर लोह की सारणाविधि ॥ शुद्ध लोहे के चूर्ण को पत्ताल मूली के रस
से घोट कर अग्नि में देवे ऐसे तीन पुट देवे ॥ १८५ ॥ तीन पुट घी कुंवार के कुरिया
के रस से ॥ छ पुट देवे ऐसे लोह भस्म होता है ॥ १८६ ॥ और भी । लोहे से
बारह अंश कर के सिंगारि फले ॥ उसकी घी कुंवार से दीपहर घोटवावे । उस
के अनंतर पुट देवे ॥ १८७ ॥ ऐसे सान पुट देने से लोह भस्म होता है ॥ सन्य
अनुभूत योगि राजा से क्रम दूसरा लोह भस्म में ॥ १८८ ॥ अव रामराजने की
दृहल बुद्धि से । परसे दुगना गन्धक देकर कंजली करके ॥ १८९ ॥

द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः । यामयु
ग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पत्रके ॥ १९० ॥ धर्मे
धृत्वा रुवूकस्य पत्रे राक्षादयेदबुधः ॥ यामद्वया
द्वेदुष्णं धान्यराशौ न्यसेत्ततः ॥ १९१ ॥ दत्त्वा
परि सरावंतु त्विदिनान्ते समुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वा च गा
लये द्वस्त्रा देवं वारितरं भवेत् ॥ १९२ ॥

भा० दोनो के समान लोह चूर्ण की घी कुंवार के रस से ॥ दीपहर घोट
उसके अनंतर पिंड कर के ताम्र के पात्र में ॥ १९० ॥ धरकर धूप में अ
डी के पत्र से ढक कर पिंडित दीपहर । रखे उससे गरम होता है उसके
अनंतर धान की राशी में रखवे ॥ १९१ ॥ सकीरे के ऊपर देकर तीन
दिन के अनंतर निकाले ॥ पीसकर कपड़े में छाने तब यह पानी में नैर

ता हि ॥ १८२ ॥

दाडि मस्य दलं पिष्ट्वा तच्च तुर्गुणं वारिणा ।
तद्र सेनाय सञ्चूणां सञ्चीय भ्रावयेदिति ॥ १८३ ॥
आतये शोयये तच्च पुटे देवं पुनः पुनः । एकविंश
ति वारैस्तन्म्रियते नात्र संशयः ॥ १८४ ॥ एवं स
र्वारिणा लोहानि स्वर्णा दीन्यपि मारयेत् ।

एवं मारितस्य लोहस्य गुणाः ॥

लोहं तिक्तं सरं शीतं कषायं मधुरं गुरु । रूक्षं वय
स्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥ १८५ ॥ क
फं पित्तद्वारं शूलं शोफार्शः स्नीहपाण्डुताः । मेदो
मेह क्रिमीन् कुष्ठं तत्किं हं तद्देवहि ॥ १८६ ॥

भा० - अनारके पत्तों को उससे चौगुनें पानी के साथ पीसकर ॥ उसरस
से लोहचूरको सानकर भिजो देवे ॥ १८३ ॥ इसको धूपमें सुकावे इस प्रकार
रवार २ पुट देवे ॥ इसीस दफेमें घोह मर जाता है इसमें कोई संशय
नहीं ॥ १८४ ॥ ऐसे सब लोह स्वर्णदि कोंको मारे ॥ इस प्रकार मारे हवे
लोहका गुण ॥ लोह तिक्त सर शीतल कसेला मधुर भारी ॥ रूखा वयके
हितनेत्रके हित लेखन वातको करनेवाला है ॥ १८५ ॥ और कफ पित्त
विष शूल शोफ ववासीर पिलही पाण्डुता ॥ मेदमें ह क्रिमिकुष्ठ इनको
नाश करता है और उसका कीट उसीके समान गुणमें होता है ॥ १८६ ॥

गुञ्जा मेकां समारभ्य यावत् स्थुर्नवरक्तिकाः । ताव
लोहं समं स्नीयाद्यथा द्रोयानलं नरः ॥ १८७ ॥
कुष्माण्डं तिलैर्नैलं च माया न्नं राजिकां तथा । मद्य
मस्तरसञ्चैव वैजयेल्लोहसेवकः ॥ १८८ ॥ शिला
गन्धार्कं दुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः । म्रियन्ते

द्वादश पुटैः सत्यं गुरु वचो यथा ॥ १८६ ॥

अथोपधानूनां सारणा प्रकार माह ॥

तत्र स्वर्गा माक्षिक स्या शुद्धस्य दोष माह ॥ ॥

मन्दान्तलत्व बलहानि सुग्मा विष्टम्भितानेत्र ग
दां शकुष्टान् । सात्नां तथैव प्रणा पूर्विकाञ्च कुर्या
द शुद्धं खलु माक्षिकञ्च ॥ २०० ॥

भा० एक रत्नी से शुरू करके नौ रत्नी तक । अनुष्य दोष और अग्निबल के
अनुसार सेवन करे ॥ १८७ ॥ पेटा तिलका तेल उड़द राई । तथा मधु अ
क्षर सड़न को लोह का सेवन करने वाला न सेवन करे ॥ १८८ ॥ मैनसि
ल गन्धक आक का दूध इनके साथ सुवर्गादि स्वधातु ॥ बारह पुट से
मरते हैं सत्य गुरु के वचनानुसार ॥ १८९ ॥ अनंतर उपधानुओं के सा
रणा का प्रकार कहते हैं । उस्में सोना सारवी अशुद्ध का दोष कहते हैं ॥
अग्नि मान्धवलहानि उग्न विष्टम्भितानेत्र रोगां शकुष्ट ॥ गंड माला इ
नको विन सोधी सोना सारवी करती है ॥ २०० ॥

अतस्तस्य दोष शान्तये शोधनमभिधीयते । माक्षि
कस्य त्रयोभागा भार्गवकं सैन्धवस्य च । सातुलुङ्ग
द्वैर्वाथ जम्बीरस्य द्वैः पचेत् ॥ २०१ ॥ चालये
ल्लोहजे पात्रे यावत् पात्रं सुलोहितम् । सवेत्त
तस्तु संशुद्धिः स्वर्गा माक्षिक मृच्छति ॥ २०२ ॥

भा० इसवासे उसकी दोष शान्ति के अर्थ शोधन कहते हैं । सोना मा
खी के तीन भाग राक भाग सैन्धव ॥ इनको नीबू के रस से अथवा जंजीरी
के रस से पकावे ॥ २०१ ॥ लोहे के पात्र में चलावे जब तक पात्र लाल हो ॥
उस्से सोना सारवी शुद्ध होती है ॥ २०२ ॥

अथ सारणा विधि ॥

कुलत्थस्य कवायेरा घृष्टा तैलेन वा पुटेत् । तक्ते
रा वाजमूत्रेण धियते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ २०३ ॥

[अथ तारमाक्षिकस्य शोधनमाह ।]

सुवर्णमाक्षिकवद्दोषा विज्ञेयास्तारमाक्षिके । अत
स्तद्विषयं शान्त्यर्थं शोधनं तस्य कथ्यते ॥ २०४ ॥ क

कोटीमेव शृङ्गु त्थेद्रवैजम्बीरजैर्दिनम् । भावये
दातपे तीव्रे चिमला शुद्ध्यति ध्रुवम् ॥ २०५ ॥

(क) चिमला तारमाक्षिकम् । ककोटी खेरवसा ।
मेव शृङ्गु मेढा शृङ्गु । [अथ मारणम् ।]

कुलत्थस्य कवायेरा घृष्टा तैलेन वा पुटेत् । तक्ते
रा वाजमूत्रेण तारमाक्षिकं मृच्छति ॥ २०६ ॥

भा० - ३ अनंतर मारणाविधिः ॥ कुरथीके काढेसे अथवा तैले से घोट
कर पुट देवे ॥ अथवा मढेसे, यावकरी सूत्र से सोना मारवी मरती है ॥ २०३ ॥
अनंतर रूपा मारवी का शोधन कहते हैं ॥ सोना मारवी के समान दोष रू
पा मारवी में जानने चाहिये । इस वास्ते उस दोष की जगन्नी के अर्थ उस
का शोधन कहते हैं ॥ २०४ ॥ खेरवसा मेढा माङ्गी इनके रस से और जंभी
री के रस से दिन भर ॥ तीक्ष्ण धूप में भावना देवे । इससे रूपा मारवी अवश्य
शुद्ध होती है ॥ २०५ ॥ (क) रूपा मारवी । खेरवसा । मेढा माङ्गी । अनंतर
मारण । कुरथीके काढे से अथवा तैले से पुट देवे ॥ मढे से अथवा चकरी के
सूत्र से रूपा मारवी मरती है ॥ २०६ ॥ - अथ तयोर्विशिष्टा गुणाः

न केवलं स्वर्णं रूप्यं गुणास्तापीजयोर्मता । द्रव्या
न्तरस्य संसर्गात्सन्नयन्येऽपि गुणास्तयोः ॥ २०७ ॥
माक्षिकं मधुरं तिक्तं स्वर्णं दृढं रसायनम् । चक्षुष्यं

वस्ति रुक् कुष्ठं पाण्डु मेह वियोदरम् ॥ २०८ ॥ अ
र्शः शोफं क्षयं कराडू त्रिदोषञ्च नियच्छति ।

। [अथ तुत्थस्य शोधनमाह ।]

विषया मर्दयेत्तुत्थ मार्जारक कपोतयोः । दशांशं
दङ्कुरां दत्त्वा पचे लघु पुटेततः ॥ २०९ ॥ पुटं
दध्ना पुटं क्षौद्रेर्देयं तुत्थविशुद्धये ॥

भा० अनंतर उनके विशेष गुण । केवल सोना चान्दी के ही गुण सोना
मारखी और रूपा मारखी में नही है ॥ किन्तु द्रव्यान्तर के संसर्ग से उनमें और
रमी गुण है ॥ २०७ ॥ सोना रूपा मारखी मधुर तिक्त स्वर के हित कामु
क के हित रसायन ॥ नेत्र के हित वस्ति पीडा कुष्ठ पाण्डुरोग प्रमेह विष
उदर ॥ २०८ ॥ वचा सीर सूजन क्षय खुजली और त्रिदोष इनको नाश
करती है ॥ अनंतर लीला थोथे का शोधन कहते हैं ॥ कबूतर और
वाल्ली इनकी विष्टा से खरल करे ॥ दशवां भाग सोहागा देकर लघु
पुट में पकावे उसके अनंतर ॥ २०९ ॥ लीला थोथे की शुद्धि के अर्थ दर्श
ते और मधु से पुट देना चाहिये ॥

[एवं शुद्धस्य तुत्थस्य गुणाः] तुत्थकं कटुकं क्षा
रं कषायं वामकं लघु । लेखनं भेदनं शीतञ्च क्षुष्यं
कफपित्तहृत् ॥ २१० ॥ वियाश्रमकुष्ठकराडू घृतद्व
रां स्वर्परमतम् । अथ कांस्यस्य रीतेष्वशोधनन्व
भिधीयते ॥ पत्तली कृतपत्राणि कांस्यस्याग्ने प्र
तापयेत् । निविञ्चेत्तप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके
॥ २११ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषायेऽत्र त्रिविधा त्रिविधा ।
एवं कांस्यस्य रीतेष्वविशुद्धिः संप्रजायति ॥ २१२ ॥

भा० इस प्रकार शुद्ध लीला थोड़े के गुण ॥ लीला थोड़ा कटक पार क
सेला वमन कराने वाला हलका ॥ लेखन भेदन शीतल नेत्र के हित कफ पि
त का नाशक ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ और विष पथरी कुष्ठ खुजली इनका नाशक है
उसका गुण खपरिया में माना है ॥ अनंतर कांसा और पीतल का शोध
नकहते है ॥ कांसे के पतले पत्र करके आग में नपावे ॥ तप्त तप्त को तेल
मद्य कांजी ॥ २९१ ॥ और गोमूत्र तथा कुरथी के काढ़ा इनमें तीन २ वा
र बुझावे ॥ ऐसा कांसा और पीतल की शुद्धि होती है ॥ २९२ ॥

[अथ मारणाविधिः] अर्क क्षीरेण संपिष्टो गन्धक

स्तेनलोपयेत् । समेन कांस्य पत्राणि शुद्धान्यस्त्र

द्रवैर्मुहुः ॥ २९३ ॥ ततो मूया पुटे धृत्वा पचेद्गजपुटे

नच । एवं पुट द्वयात्कांस्य रीति श्वस्त्रियते ध्रुवम् ॥

॥ २९४ ॥ एवं मारितयोः कांस्यस्य रीते श्वगुणाः ।

कांस्यं कवायं तीक्ष्णोष्णं लेखनं विशदं सरम् ॥

॥ २९५ ॥ रीति कातु भवेद्रूक्षा सतिक्ता लवणारसे ।

शोधिनी पाराडु रोगघ्नी रुमिहृत्नाति लेखनी ॥ २९६ ॥

भा० अनंतर मारणाविधि ॥ आक के दूध से पीसे द्रव सम भाग गन्धक से ॥
कांसे के शुद्ध पत्र लिपकरे ॥ और खट्टे के रस से बाढ़ ॥ २९३ ॥ उसके अनंतर
मूया पुट में रखकर गजपुट में पकावे ॥ इस प्रकार के दो पुट से कांसा और पी
तल अवश्य मरता है ॥ २९४ ॥ इस प्रकार मारे द्रव कांसा और पीतल के
गुण । कांसा कसेला तीखा गरम लेखन विशद सर ॥ मारी नेत्र हित रू
खा यरस कफ पित्त का नाशक है ॥ २९५ ॥ पीतल रूखा तित्तरस में लवण
शोधन पाराडु रोग का नाशक रुमि नाशक नवदुत लेखन है ॥ २९६ ॥

(अथ सिन्दूरस्य शोधनमाह ।)

दुग्धास्त्र योगतस्तस्य विशुद्धिर्गदिता बुधैः । अथ

गुणाः । सिन्दूर उष्णो वीर्यं कुष्ठं कण्डू विषापहः ।

भग्नसन्धानजननी व्रणशोधनरोपणम् ॥ २१७ ॥
 अथशिलाजतुनः शोधनमाह ।] तत्र शोधनायोग्य
 शिलाजतुमाह ।] गोमूत्रगन्धवत्कुष्मांस्तिग्धंमृदु
 तथागुरुं । तिक्तं कषायंशीतं च सर्वश्रेष्ठं तदायसम्
 ॥ २१८ ॥ - (आयसम् अयस उपधानुः)

विन्ध्यादौ बहुनंतन्तु तत्र लोहं यतोऽधिकम् । तच्छो
 धनमृते व्यर्थं मनेकमलमेलनात् ॥ २१९ ॥

भा० अनन्तरसिन्दूरकाशोधनकहतेहैं । दूधऔरखटाईकेयोगसे शुद्धि
 इसकीपंडितोंनेकहीहै ॥ अनन्तरगुणा ॥ सिन्दूरउष्णहै औरवीसर्पकुष्ठरव
 जलीबिषइनकानाशक ॥ दूटेकोजोड़नेवाला व्रणशोधनरोपणहै ॥ २१७
 अनन्तरशिलाजीतकाशोधनकहतेहैं ॥ उसमेंशोधनयोग्यशिलाजीत
 कोकहतेहैं ॥ गोमूत्रकीसीगन्धवाला कालाचिकनामृदुतथासारी ॥ ति
 क्तकसेलाजीतसर्वसेउत्तमरेखावोहलोहेकाहोताहै ॥ २१८ ॥ (लोहेका
 उपधानु) विन्ध्याचलमेवोहबहुतहोताहै । क्योंकिउसमेंलोहाअधिकहै
 वोहशोधनकेबिनाव्यर्थहै । अनेकमलकेमिलेरहनेसे ॥ २१९ ॥

शिलाजतुसमानीयसूक्ष्मंरवराडंविधायच । निक्षि
 प्यात्युष्णपानीयेयामेंकंस्थापयेत्सुधीः ॥ २२० ॥
 मर्दयित्वाततोनीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् । स्थाप
 यित्वाचमृसात्रेधारयेदानपेबुधः ॥ २२१ ॥ उपरिस्थं
 घनंयन्स्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके । एवंपुनःपुनर्नतं
 द्विसासाभ्यांशिलाजतु ॥ २२२ ॥ भवेत्कार्यक्षमं
 वद्भौक्षितंलिङ्गोपमम्भवेत् । निर्द्दुमञ्चततःशु
 ङ्गं सर्वकर्मसुयोजयेत् ॥ २२३ ॥ ॥ ॥

भा० शिला जीतको लाकर वारीक करके । बहुत गरम पानी में डालके एक पहर रख छोड़े ॥ २२० ॥ उसको मलकर उसके अनंतर कपड़े से छानकर पानी लें लेवे ॥ उसको मिट्टी के घरतन में रख कर धूप में रखवावे ॥ २२१ ॥ अगर जो गाढा निकले उसको और वरतन में डाले ॥ दोमहिने में इस प्रकार फिर २ से लिया हुआ शिला जीत ॥ २२२ ॥ काम करने में समर्थ होता है और आग में डालने से लिंग के समान होता है ॥ तथा निर्धूम भी होता है उसके अनंतर उसको सब काम में योजना करे ॥ २२३ ॥

(क) अध्यान्व प्रकारः । तत्र प्रथमतस्तस्य वहिर्मलं म पाकर्तुं केवल अलेन प्रक्षालनं कर्तव्यं । ततस्तदन्तर्गत मृत्तिकासिकतादि दीय दूरी करणाय वक्ष्य मारा कायेन तत्र भावना देया ।] तदाह - वाग्भटः [व्याधिव्याधित सान्ध्य समनु सरन् भावयेदयः पात्रे । प्राक्केवल जलधौतं शुष्कं काथे स्ततो भाव्यम् ॥ २२४ ॥ तुल्यगिरि जैन जले वसु गुणिते भाव नो बध् काथ्यम् ॥ तत्काथे पादो शेषं तोषो प्रक्षियेद्गिरिजम् ॥ २२५ ॥ तत्से सरसता ज्ञातं सशुष्कं प्रक्षियेद्रसे ॥ मूयः स्वेः स्वे रेवं काथे भाव्यं वारान् भवेत्सप्त ॥ २२६ ॥

भा० (फ) अनंतर इस प्रकार । उसमें पहिले उसका बाहर का मल दूर करने के वास्ते केवल जल से धोना चाहिये । उसके अनंतर उसके अन्तर्गत मृत्तिका से आदि दीय दूर करने को इसका दे से उसमें भावना देनी चाहिये ॥ उसको वाग्भट ने कहा है । रोग रोगी के सान्ध्य को अच्छी तरह अनुसरण करता हुआ लोह के पात्र में ॥ पहिले केवल जल से धोके सुकाकर उसके अनंतर कादों से भावना देना चाहिये ॥ २२४ ॥ अठारुने जल में शिला जीत के समान भावना के आयुधों का काढ़ा करना चाहिये ॥ चौथाई ।

वाकी छने हुवे गरम उसका हें में शिला जीत को डाले ॥ २२५ ॥ उसके समान पतले हुवे को सुका के फिर से रस में डाले ॥ ऐसे अपने २ काढ़ों से सात बार भावना देना चाहिये ॥ २२६ ॥

अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तिक्तकसाधितम् । त्वं
हं युञ्जीत गिरिजमेकैकेन तथा त्वहम् ॥ २२७ ॥

फलत्रयस्य यूषेण पटोल्या मधुकस्थच । शिला
जमेवं देहस्य भवत्युपकारकम् ॥ २२८ ॥

[काथं द्रव्याणि भावनापलञ्चाह हारीतः ॥]

लोहस्थितं निम्बगुडूचिसर्पिर्यवेर्यथा वत्परिभाव
येत्तत् । सन्तानिका कीटपतङ्गदंष्ट्रादुष्टौषधीदोष
निवारणाय ॥ २२९ ॥ (क) सन्तानिका तद्वहिः
सुलग्नमृत्तिकादिमयी । एवं भावनां दत्त्वा संशी
व्य केवलेन जलेन शोधनं कर्तव्यम् ॥

भा० - अनंतर पटोल से सिद्ध किया घृत स्निग्ध और शुद्ध में तीन दिन डाले ॥ वैस ही तीन दिन एक २ के काढ़े से शिला जीत शुद्ध करे ॥ २२७ विफला के पटोल के और महवे के काढ़े में योजना करे ॥ ऐसा शिला जीत शरीर का अति उपकार कहलावे ॥ २२८ ॥ काथ औषध भावना फल कहा है । हारीतने ॥ लोहे का मेल कीट पतंग इनका काटना और दुष्ट औषधिके दोष दूर करने के अर्थ नीम गिलोय घृत जव इन से उसको भावना देवे ॥ २२९ ॥ उसके बाहर लगी हुई मृत्तिका आदि वाले । ऐसी भावना देकर सुका के केवल जल से शोधन करना चाहिये ॥

तत्प्रकारमाह अग्निवेशः

उषो च काले रवितापयुक्ते व्यभेनियान्ते समभूमिभागे

चत्वारि पात्राण्यतितामसानि न्यस्यातये तत्र कृता

वधानः ॥ २३० ॥ शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य पात्रे प्रक्षि-
प्य तस्माद्द्विगुणाञ्च तोयम् । उष्णं तदद्दं कथित-
ञ्च दत्त्वा विशोधयेत्तं मृदितं यथावत् ॥ २३१ ॥

भा० उस प्रकार को कहा है अग्निवे अग्ने ॥ उष्णकाल में अभ्ररहित सु-
र्य तापयुक्त निवान समभूमि पर ॥ अतितामस चार पात्रों को उनमें फरक
करके धूपमें रखकर ॥ २३० ॥ पात्रमें उत्तम शिलाजीत को डालकर उ-
स्से दुगुना जल उसमें डालके ॥ उससे आधा औंठ गरम देकर उसको शोध-
न करे ॥ च्छीतरह मलन कर ॥ २३१ ॥

ततस्तु यत्कृष्णमुपैति चोर्द्धं संन्तानि कावद्रवि-
रश्मितसम् । पात्रे तदन्यत्वा ततो निदध्यात्तत्रा-
परं कोष्ठाजलं क्षियेच्च ॥ २३२ ॥ पुनश्च तस्माद्
परं पात्रे पश्चाच्च पात्राद् परं भूयः । यदा विशुद्धं
जलमेव मूर्द्धं कृष्णं समस्तं मलमेत्यर्धं स्नात् ॥ २३३ ॥
तदान्यजेत्तत्सत्तिलं मलञ्च शिलाजतु स्याज्जल-
शुद्धमेवम् ।

भा० उसके अनन्तर ऊपर की सूर्य की किरणों में सन्तप्त होवा भलाई के स-
मान काला ऊपर का जो होता है उसको दूसरे पात्रमें डाले उसमें और प्रील ग-
रम जल सी डाले ॥ २३२ ॥ फिर उससे और पात्रमें डाले और पिछले वरतन
से दूसरे में फिर से डाले ॥ जब शुद्ध जल ही ऊपर रहे काला सब में नीचे रह जावे ॥
॥ २३३ ॥ तब उस जल मल को त्याग देवे वोह शुद्ध जल ही शिलाजीत है ॥

एवं शोधितस्य शिलाजतु नो गुणा नाह ।
शिलाजतु स्मृतं तिक्तं कटूष्णं कटुपाकि च । रसा-
यनं योगवाहि श्लेष्ममेहाश्मशर्करा ॥ २३४ ॥

मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं शोथमंशोसि पाण्डुताम् । वा
तरक्तं तथा कुष्ठमपस्मारोदरं हरेत् ॥ २३५ ॥

[अथ रसस्य शोधनविधिः ।] तत्र स्वेदनम् ।
नानाधान्यै र्यथा प्राप्ते सुषवर्जे जलान्वितैः । मृ
द्वाण्डं पूरितं रक्षेद यावदस्त्वन्व माप्नुयात् ॥ २३६ ॥

भा० इस प्रकार शोधेद्वे शिलाजीत का गुला कहें तहें ॥ शिलाजीत तिक्त क
हुवा उष्ण पाकमें कहु ॥ रसायन योग चाहि है और कफ प्रमिह पथरी शर्करा
॥ २३४ ॥ मूत्रकृच्छ्र क्षय श्वास मूजन बवासीर पाण्डुता ॥ वातरक्त तथा कुष्ठ
अपस्मार उदर रोग इनको नाश करतहें ॥ २३५ ॥ अनन्तर पारेकी शोधन वि
धि ॥ उत्तम स्वेदन । वे छिलके के अनेक प्रकार के धान्य जो मिल जावें उनको
जलके युक्त । इनको मिट्टीके बरतनमें भरके रखवे जवतक खट्टा होवे ॥ २३६ ॥

तन्मध्ये भृङ्गं मुण्डा विष्णुक्रान्ता पुनर्नवा । मीना
क्षी चैव सर्पाक्षी सहदेवी शतावरी ॥ २३७ ॥ त्रिफला
गिरिकर्णी च हंसपादी च चित्रकम् । समूलं कुट्ट
यित्वा तु यथात्ना भविनिःक्षिपेत् ॥ २३८ ॥ पूर्वास्त्र
माण्डमध्ये तु धान्यास्त्रकमिदं स्मृतम् । स्वेदनादि
षु सर्वत्र रसरजस्य योजयेत् ॥ २३९ ॥ विष्णुक्रान्ता
गिरिकर्णी च अपराजितेव प्रवेत नील पुष्यभेदात् ।
अत्यस्त्रं सारनालं वा तदरावे प्रयोजयेत् ॥ २४० ॥

भा० उत्तम भाङ्ग भृङ्ग विष्णुक्रान्त गदह पूरणा मच्छ्र छीनाग फेनी सहदेई
शतावर ॥ २३७ ॥ त्रिफला नीलोत्पल की कुरद हंसपादी चित्रक ॥ मूलके सहित कु
ट कर जो मिले उमको डाले ॥ २३८ ॥ पाहेल बरतनमें के खट्टे में ये धान्यास्त्र
कहा है ॥ पारेके स्वेदनादिक सब जगह में योजनाकरें ॥ २३९ ॥ विष्णुक्रान्ता ।

और गिरि कर्णी येह दोनो अपराजिताहि है नीला और खेत पुष्पके भेद से ॥ ३
सके अभावमें बहुत खटे आरना लकी योजना करे ॥

(तदभावे धान्यास्त्राभावे)

त्यूषणालवरां जाजीर जनी त्रिफलार्द्रकम् । मद्वाव
ला नागधत्तामेघनादः पुनर्नवा ॥ २४० ॥ सेपशृङ्गी
चित्रकञ्च नवसारं समंसमम् । एतन्संस्तं वा पूर्वोस्त्रि
नैव पेययेत् ॥ २४१ ॥ प्रालम्प्येतेन कल्केन वस्त्वमङ्गु-
लमात्रकम् । तन्मध्येनिःक्षिपेत्संस्तं बद्ध्वा तत्त्रिदिनं
पचयेत् ॥ २४२ ॥ दोलायन्तेः स्त्रसंयुक्ते जायते स्वेदिनो
रसः । (क) मेघनादः चवराई शाकविशेषः । सेपशृङ्गी
मेढा शृङ्गी । तदन्ताभे कर्कट शृङ्गी ग्राह्या । नवसारं ।
नवसादरं ।

भा० — धान्येन्द्रके अभावसे ॥ त्रिकुटा लवणार्द्रहलदी त्रिफला अद्र-
क ॥ परियाग गुलसकरी चवराई गदह पूरना ॥ २४० ॥ मेढासीङ्गी चित्र-
क नवसादर येह सब समभाग ॥ इन सब को अलग २ अथवा एक सा-
थ ही पहिली खटाई से पिसवावे ॥ २४१ ॥ उस कल्क में अंगुन बराबर मो-
टा लेप कपडे पर करावे ॥ उस कपडे में पारे को ढाल कर बान्ध कर उस को तीन दि-
न पकावे ॥ २४२ ॥ अस्त्रयुक्त दोना यन्त्र में पारा स्वेदिन दोता है ॥ (क) चव-
राई । मेढासीङ्गी । इसके अभावमें काकडा सीङ्गी लेनी चाहिये ॥ नवसादर ।

अन्यच्च । मूलकानल सिन्धुत्थ त्यूषणार्द्रकराजिका

रसस्य षोडशशेन द्रव्यं युज्यात् पृथक् पृथक् ॥ २४३

द्रवेष्वनुक्त मानेषु सन्तान मितं बुधैः ॥ पट्टादनेषु

चैतेषु सूतं प्रक्षिप्य कज्जि कै ॥ २४४ ॥ स्वेदयेद्दि-

नमेकञ्च दोलायन्तेण युद्धिमान् । स्वेदार्त्ता प्रोभवे

त्सूतो मर्दनाच्च सुनिर्मलः ॥ २४५ ॥ (क) मूलक सु
 रई अनलश्चित्तकम् । त्वूषणं त्रिकटु राजिका रई
 अथ मर्दनम् । इष्टिका चूर्णा चूर्णाभ्यामादौ मर्दयिष्यन्
 तः । दध्ना गुडेन सिन्धूत्थ राजिका गृहधूमकैः ॥ अन्यच्च ।
 कुमारिका चित्रक रक्त सूर्यपैः कृतेः कषायैः बृहती विमि
 श्रितैः । फलत्रिकेणापि विमर्दिता रसो दिनत्रयं सर्व
 मलैर्विसुच्यते । [अथ मूर्च्छनम् ।] त्वूषणं त्रि
 फला बन्ध्या कन्दैः सुद्राह्वयान्वितैः ॥ २४६ ॥

भा० औरभी । मूलीचित्रक सैन्धव त्रिकुट रई ॥ पारेके सोलवे भाग
 से सबको अलग २ लेवे ॥ २४३ ॥ जिसमें दवा की तोल नही कही है उनमें यह
 तोल पंडितों ने कही है ॥ कपड़े में लेकर इनमें पारा डाल के कांजी में ॥ २४४ ॥
 एक दिन स्वेदन करे दोला यन्त्र से विद्धि वान् ॥ स्वेद से पारा तीव्र होता है औ
 र मर्दने से निर्मल होता है ॥ २४५ ॥ (क) मूलोचित्रक त्रिकुट रई अन
 तर मर्दन । ईटका चूर्ण और चूना इनसे पहिले पारेको मर्दन करना चाहिये
 उसके अनंतर ॥ दही गुड़ सैन्धव रई घरका धूआं इनसे मर्दन करे ॥ औरभी
 धीक बार चित्रक लाल सरसों कटेली इनको मिलाके इनके कोड़े से ॥ त्रिफ
 ला से भी मर्दन किया हुवा पारा तीन दिन में सब मलों से छूट जाता है ॥ अनंतर
 मूर्च्छन । त्रिकुटा त्रिफला वां भखेखसा दोनों कटेली इनसे युक्त ॥ २४६ ॥

चित्रकोर्णा निशा क्षार कन्यार्क कनक द्रवैः । सूतं
 कृतेन यूषणा वारान् सप्ताभिमर्दयेत् ॥ २४७ ॥ इ
 न्यं समूर्च्छितः सूतस्त्यजत्सप्तापि कञ्चुकात् ।

भा० चित्रक यवाड हलदी क्षार धीकुवार आकधनूरा इनके रस से
 और किये हुवे जू ख से सात बार मर्दन करे ॥ २४७ ॥ इस प्रकार स
 मूर्च्छित पाग सागों कांचली को छोड़ ता है ॥

(क) वन्ध्याकन्दः शोभस्वेखसाकन्दः क्षुद्रा द्वयं
छोटी कटाई बड़ी कटाई । उर्णा । उर्णा मेयका । नि
शा हरिद्रा क्षारः यवक्षारः । कन्या । कुमारिका अ
र्कपत्ररसः । कनक धनूर पत्ररसः । [अथोद्धृष्ट
तनम्] मयूर ग्रीवताप्याभ्यान्नष्टपिष्टीकृतस्य च ।
यन्त्रे विद्याधरे कुर्याद्रसेन्द्रस्योद्धृष्टपातनम् ॥ २४८ ॥

भा० - शोभ स्वेखसा दोनो कटेली । उर्णा मेयका । हल्दी । जवा खार । घी
कुवार । आक के पत्ते को रस धनुर के पत्ते को रस । अनंतर ऊर्द्ध पातन ।
लीला योथा सोना मारवी इनसे नष्ट और पीस गये पारेका ॥ विद्याध
र यन्त्र में ऊर्द्ध पातन करे ॥ २४८ ॥

ताप्यं सुवर्ण मारवी । नष्टपिष्टीकृतस्य । कुमारिका
द्रवयोगेन तावन्मर्दनं कर्तव्यं यावन्पारदः पृथक् न
दृश्यत इत्यर्थः । विद्याधर यन्त्रे डमरु यन्त्रे । अथा
धः पातनम् । त्रिफला शिग्रु शिरिष भिर्नवराणामु
रिसंयुतेः । नष्टपिष्टीरसं कृत्वा लेपयेद्दूर्द्धभाजनम्
॥ २४९ ॥ ततो दीपैरधः पातमुपलैस्तस्य कारयेत् ।
यन्त्रे भूधर संज्ञेतु ततः सूतो विशुध्यति ॥ २५० ॥

भा० - सोना मारवी । घी कुवार के रस से तब तक मर्दन करना चाहिये ।
जब तक पारा अलग न दिखे ॥ डमरु यन्त्र में ॥ अनंतर अधः
पातन । त्रिफला सहिजना चित्रक निमक राई रस के सहित नष्ट पारेको
करके ऊपर के बरतन में लेप करे ॥ २४९ ॥ उसके अनंतर बलने डूबे
उपलै से उसका अधः पातन करावे ॥ भूधर नाम यन्त्र में उसमें पारा
शुद्ध होता है ॥ २५० ॥

स्वेदनादिक्रियाभिस्तु शोधितोऽसौ यदा भवेत् । तदा कार्याणि कुरुते प्रयोज्यः सर्वकर्मसु ॥ २५१ ॥

अथ मुख्यदोषहरः शोधनविधिः

गृह कन्या हरति मलन्त्रि फलाग्निं चित्रकोविषं हन्ति । तस्मादेभिर्मिश्रे वारान् समूर्च्छयेत् सप्त ॥

[अथ सर्वदोषहरः संक्षिप्त शोधनविधिः ॥]

कुमारिकां चित्रकरक्तसर्यपैः कृतः कषायैर्दहती विमिश्रितैः । फलत्रिकेणापि विमर्दिती रसो दिनत्रयं सर्वमलैर्विमुच्यते ॥ २५३ ॥

भा० जव स्वेदनादिक्रियाओंसे येह शुद्ध होताहै ॥ तब कामोंको करता है तब सब कामोंमें योजना करना चाहिये ॥ २५१ ॥ अनन्तर मुख्यदोषनाशक शोधनविधि । घीकुवार मलको नाश करताहै त्रिफला अग्नि को चित्रका विषको नाश करताहै ॥ इसवास्ते इनको मिलाके सातवारसंमूर्च्छन करावे ॥ २५२ ॥ अनन्तर सब दोषनाशक संक्षिप्त शोधनविधि ॥ घीकुवार चित्रक लाल सरसो दोनोंकटेलीको मिलाके कियेदोबेकादेसे ॥ और त्रिफलेसे भी मर्दन कियाहुवा पाण तीनदिनमें सबमलोंसे छुट जाताहै ॥

कुमार्या च निशा चूर्णो दिनं सप्तविमर्दयेत् । एवं कदर्थितः सूतो षण्णो भवति निश्चितम् ॥ २४४ ॥ वह्नी

यथी कषायेणा स्वेदितः सवली भवेत् । सर्पाक्षी चित्रिका बन्ध्या भृङ्गबन्धेः स्वेदितो बली ॥ २५५ ॥ त

तः स पावक द्वाद्वैः स्विन्नः स्यादति दीप्तिमान् । सर्पाक्षी नाराफणी चित्रिका अम्बिली बन्ध्यावांभखे

खसा भृङ्गः भृङ्गगजः । अज्दीभुस्ता पावकः चित्रकम्

भा० घीकुं वार मे और हनुदी के चूर्ण से दिन भर पारे की राह ॥ ऐसा दूधित
पाग निश्चित गड़ होता है ॥ २५४ ॥ बहुत ओषधियों के कषाय से स्वेदित
घोह पारा बनी होता है ॥ २५५ ॥ और नागफन दूधली खेरखसा भाङ्गरा
नागर मोथा ॥ उससे चित्रक के रस से स्वेदन किया हुआ अति दाँतिमान हो
ता है ॥ नागफनी । दूधली । खेरखसा । भागरा । मोथा चित्रक ॥

अथ रसस्य मारणाविधिः ।

धूससारं रसं तोरी गन्धकं नवसादरम् । यामैकं मर्द
ये दस्तैर्भागं कृत्वा समं समम् ॥ २५६ ॥ काचकूप्या
विनिक्षिप्य ताञ्च मृद्वस्तु मुद्रया । विलिप्य परितो
वक्त्रे मुद्रान्दञ्चा विशेषयेत् ॥ २५७ ॥ अधः स
च्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत् । पिठरीं बालुका
पूरैश्चत्वा चाकूपि कागलम् ॥ २५८ ॥ निवेश्य चुल्यां
तदधो बङ्गिं कुर्याच्छनैः शनैः । तस्मादप्यधिकं कि
ञ्चिन्प्रावकं ज्वालयेत् क्रमात् ॥ २५९ ॥

भा०- अनंतर पारेकी मारणाविधि ॥ धूससार पारा तोरी गन्धक नवसादर
इनको समभाग लेकर खटाई से एक पहर छोटे ॥ २५६ ॥ काचकी कूपी में
डाल कर उसको मृदुवस्तु की मुद्रा से नीच कर मुख के आसपास और मुद्रा दे
कर सुका दे ॥ २५७ ॥ नीचे छिद्र सहित हाड़ी में कूपी को डाले ॥ हाड़ी
की रेत से कूपी के गले तक भर के ॥ २५८ ॥ चूल्हे पर रख के उसके नीचे
अग्नि धीरे २ बाले ॥ क्रम से उससे भी कुछ अधिक अग्नि की बाले ॥ २५९ ॥

एवं द्वादशभिर्यामैर्नियते रस उत्तमः । स्फोटयेत्
स्वाङ्गं शीतं तमूर्द्धगङ्गन्धकं त्यजेत् ॥ २६० ॥ अ
धस्थञ्च भूतं सूनं गृह्णीयात्तन्तु मान्वाया ॥ यथाचि
तानु पानेन सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २६१ ॥

अथान्यप्रकारः] अपासार्गस्य बीजानां मूषा युग्मं
प्रकल्पयेत् । तत्संपुटे क्षिपेत्सूतं मल्लयू दुग्धमिश्रि-
तम् ॥ २६२ ॥ (मल्लयू काष्ठो दुग्धरिका) ॥ द्वोरा
पुष्पो प्रसूनानि विडङ्ग मरिभेदकः । एतच्चूर्णं म-
धश्चोर्द्धं दत्त्वा मुद्रां प्रदीयते ॥ २६३ ॥ तद्गोलस्थो
पयेत् सम्यक् सृन्मूषा संपुटे पचेत् । एवमेव पुटे
नैव सूतकम्भस्म जायते ॥ २६४ ॥ तत्प्रयोज्यं
यथा स्थाने यथा मात्रं यथा विधि ॥ ॥ ॥

भा० — ऐसे वारं यहरमें उत्तम पारा मर्ता है ॥ स्वाङ्ग दीत होने पर उ-
त्को तोड़े ऊपर का गलेमें लगा हुआ गदेवे ॥ २६० ॥ नीचे का मराहु
वा पार लेवे ॥ उसको मात्रासे ॥ यथाचित अनुपानके द्वारा सब कामोंमें यो-
जना करावे ॥ २६१ ॥ अनंतर दूसरा प्रकार ॥ अपासार्ग के बीजोंको
दो घरिया बनावे ॥ उस संपुटमें पारेको कठिया गूलर के दूध के साथ
डाले ॥ २६२ ॥ कठिया गूलर ॥ गुम्मा के फूल वायबिडंग दुर्गन्ध त्व-
क्षिर ॥ इनका चूर्ण नीचे ऊपर देकर मुद्रा देवे ॥ २६३ ॥ उस गोलका
को अच्छी तरह स्थापन करे सिट्टीकी घरियां के संपुट पकावे ॥ इस प्रकार के
पुटसे पारा रस होता है ॥ २६४ ॥ उत्को यथा स्थानमें यथा मात्र यथा विधि
योजना करना चाहिये ॥

[अथान्यप्रकारः ॥]

काष्ठो दुग्धरिका दुग्धे रसं किञ्चिद्भिर्मर्दयेत् । तद्दु-
ग्ध घृष्टं हिङ्गे श्व मूषा युग्मं प्रकल्पयेत् ॥ २६५ ॥
क्षित्वा तत्संपुटे सूतं तत्तु मुद्रां प्रदायेत् ॥ घृत्वा त-
द्गोलं प्राज्ञी सृन्मूषा संपुटे ऽधिके ॥ २६६ ॥
अन्यप्रकारः] नागवल्ली रसे घृष्टः कर्कोटी कन्द ग

गर्भितः। मृन्मूषा संपुटे पक्कः सूतो यात्येव भस्मताम्
 ॥ २६७ ॥ [अथ कपूररसस्य विधिः] तत्र पारदस्य
 संक्षिप्तं शोधनं कर्तव्यं। शुद्धं सूतसमं कुर्यात्प्रत्येकं
 गैरिकं सुधीः। दृष्टिकां खटिकां तद्वत् स्फटिकां सि
 न्धुजन्मव ॥ २६८ ॥ वल्मीकं क्षारलवणं भाराडर
 ज्जक सृत्तिकाम्। सर्वानये तानि सञ्चूर्य वाससा
 चापि शोधयेत् ॥ २६९ ॥

भा० अनंतर दूसरा प्रकार ॥ कठिया गूलर के दूध से पारे को थोड़ा मर्दन करे
 हीङ्ग को उस दूध से पीसकर दो घरियावनावे ॥ २६५ ॥ उस संपुट में पारे को
 डाल कर उसका मूखन्द करे ॥ उस गोलक की मिट्टी के मूषा संपुट में डाले
 ॥ २६६ ॥ गजपुट में ही पकावे पारा भस्म होता है ॥ दूसरा प्रकार ॥ पान के रस
 से घोटोड़वा खेखसे के कन्द से गर्भित ॥ मिट्टी के संपुट में पक्का पारा भस्म हो
 जाता है ॥ २६७ ॥ अनंतर कपूररस की विधि ॥ उसमें पारे का संक्षिप्त शोधन
 करना चाहिये ॥ शुद्ध पारे के समान हर एक को लेवे गेरू ॥ ईंट खड़ी फिट करी
 सेन्धव ॥ २६८ ॥ वमई खार लवण खपरा ॥ इन सब को चूरी करके कपड़े
 से छाने ॥ २६९ ॥

खटिका खरी। स्फटिका फट करी सिन्धु जन्म। से
 न्धवम्। वल्मीकम् ववडर क्षारलवणम्। खारी गो
 न भाराडरज्जक सृत्तिका। काविसा।
 एभिश्चूरीर्युतं सूतं यावद्यामं विमर्दयेत्। तच्चूरी
 सहितं सूतं स्थालीमध्ये परिक्षियेत् ॥ २७० ॥

भा० खड़ी। फट करी। सेन्धव। वमई। खारी निमक। खपरिया। इन
 चूरी से युक्त पारा एक पहर तक मर्दन कनावे ॥ उस चूरी के सहित पारा
 तमले के बीच में डाले ॥ २७० ॥

तस्या स्थान्यामुखे स्थाली मपरां धारयेत्समाम् ॥ स व
 स्त्र कुटितं मृदा मुद्रयेदनयोर्मुखम् ॥ २७१ ॥ संशोष्य मु-
 द्रयेद्भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत् ॥ सम्यग्विशोष्य मु-
 द्रांतां स्थालीञ्चुल्यां विधारयेत् ॥ २७२ ॥ अग्निं निर-
 न्तरं दद्याद्यावद्दिनं चतुष्टयम् ॥ अङ्गरोपरि तद्यन्त्रं
 रक्षेद्यत्ना दहर्निशम् ॥ २७३ ॥ शनैरुदद्या दयेद्यन्त्रं ।
 मूर्द्धं स्थालीं गतं रसम् ॥ कर्पूरवत् सुविमलं गृह्णीया-
 द्गुणवन्तरम् ॥ २७४ ॥ तदेव कुसुम चन्दन कस्तूरी कु-
 ङ्कमैर्युतम् ॥ खादन् हरति फिरङ्गं व्याधिं सौपद्रवं स-
 पदि ॥ २७५ ॥ विन्दति बन्हेदीप्तिं पुष्टिं वीर्यबलं वि-
 पुलम् ॥ रमयति रमणीशतकं रसकर्पूरस्य सेवकः स-
 ततम् ॥ २७६ ॥ इति कर्पूररसः ॥

भा० बस स्थालीके मुखपर दूसरी स्थालीको जोड़े । इनका मुख बस्त्रके स-
 हित कूटकर मिट्टीसे जोड़े ॥ २७१ ॥ सुकाके फिरसे कपड़ मिट्टी करे और फिर
 से सुकावे ॥ अच्छीतरह मृदाको सुकाकर स्थालीको चूल्हेपर रखवे ॥ २७२ ॥
 और चारदिन तक अग्नि निरन्तर देवे ॥ अङ्गरे के ऊपर उस यन्त्रको रखे यत्न
 से रातदिन ॥ २७३ ॥ धीरेसे यन्त्रको खोले ऊपरकी स्थाली में लगा रस ॥ क-
 पूर के समान विमल कोले वे चोह वज्रत अच्छा गुणमें होताहै ॥ २७४ ॥
 उसीको लवङ्ग चन्दन कस्तूरी केसर इनसे युक्त ॥ को खाने से तत्काल उपद्रव
 से सहित फिरंगीको नाश करताहै ॥ २७५ ॥ अग्निदीपन होताहै और पुष्ट वी-
 र्य बल वज्रत होताहै ॥ निरन्तर रसकर्पूर का सेवन करने वाला सौन्दर्योंको भोग
 करताहै ॥ २७६ ॥ इति कर्पूररसः ॥

[अथ सिन्दूररसः ॥ शुद्धसूतस्य गृह्णीया द्विष्यभाग च

तुष्टयम् ॥ शुद्धगन्धस्य भागैकं तावत्कृत्रिम गन्धकम् ॥
 अथवा पारदस्यार्द्धं शुद्धगन्धकं सेवहि ॥ तयोः कज्ज-
 लिकां कुर्याद्विना मेकं विमर्दयेत् ॥ २७८ ॥ मृत्तिकां वा
 सप्ता साद्धं कुट्टयेदति यत्नतः ॥ तथा वारत्रयं सम्यक्
 चकूपीं प्रलेपयेत् ॥ २७९ ॥ मृत्तिकां शोषयित्वा तु
 कूप्यां कज्जलिकां लिपेत् ॥ तां कूपीं बालुकां यन्त्रे स्था-
 पयित्वा रसं पचेत् ॥ २८० ॥ अग्निं निरन्तरं दद्याद् या-
 वह्नित्तुष्टयम् ॥ गृहीयाद्दूर्ध्वं संलग्नं सिन्दूरसदृशं
 रसम् ॥ ॥ इति सिन्दूररसः ॥

एवं मारितस्य मूर्च्छितस्य पारदस्य गुणाः ॥

भा० अनन्तर सिन्दूर रसः ॥ वैद्य शुद्ध पारे के चार भाग लेवे ॥ और शुद्ध ग-
 न्धक का एक भाग उतनाही कृत्रिम गन्धक ॥ २७८ ॥ अथवा पारेके आधा
 शुद्ध गन्धक ॥ उनकी कजली करके एकदिन घोंटे ॥ २७९ ॥ मिट्टीको कपड़े
 के साथ अति यत्न से कुटे ॥ उसे तीनवार अच्छीतरह कांचकूपी को लेपकरे
 ॥ २८० ॥ मिट्टीको सुकाके कजलीको कूप्यामें डाले ॥ उस कूप्याको बालु-
 का यन्त्रमें स्थापन करके पारेको पकावे ॥ २८० ॥ अग्नि निरन्तर चारदिन
 तक देवे ॥ ऊपर लगाहुवा सिन्दूर के समान रसको लेवे ॥ इति सिन्दूर रसः ॥

पारदः क्षमिकुष्ठघ्नी जयदो वृष्टि कृन्तरः ॥ स्मृत्युहृच्च म-
 हावीर्यो योगवाही ज्वरापहः ॥ २८१ ॥ स्मृत्योजो रूप-
 दो वृष्यो वृद्धि कृद्वातुवर्धनः ॥ घ्राडत्वनाशनः शूलः
 खेचरः सिद्धिदः परः ॥ २८२ ॥ पारदः सकलरोगहा स्मृ-
 त् बद्धसो निरिवलयोग बाहकः ॥ पञ्चभूतमय एष की-
 र्तिनस्तेन तदुणं गणैर्विराजते ॥ २८३ ॥

भा० इस प्रकार मोरेङ्गवे मूर्च्छित पारे का गुण ॥ पारा कमि कुष्ठ नाशक जय
को करनेवाला दृष्टि करनेवाला सर ॥ मृत्यु नाशक महावीर्य योगवाही ज्वरना
शक ॥ २८१ ॥ मृत्युको जीतनेवाला रूपको देनेवाला शुक्रको करनेवाला दृष्टि
करनेवाला धातु बढ़ानेवाला ॥ नपुंसकता का नाशक ॥ रूख चर सिद्धिको देने
वाला है ॥ २८२ ॥ पारा सब रोगोंका नाशक कहल है परस से युक्त संपूर्ण योग वा
हक ॥ पंचभूत मय यह कहल है इसवास्ते उसके गुण गणों से विराजता है ॥ २८३ ॥

[रसामृते] यस्य रोगस्य यो योगस्तैव सह योजितः ॥

रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जर वाजिनाम् ॥ २८४ ॥

[अथोप रसानां शोधनविधिः।] तत्र हिङ्गुलस्य शोध
न विधिः।] मेघी क्षीरणा दख मल्ल वर्गेश्च भावितम्।

सप्तवारान् प्रयत्नेन शुद्धिमायानि निश्चितम् ॥ २८५ ॥

भा० रसामृत में कहल है। जिस रोगका जो योग है उसीके साथ योज
ना किया जवा। पारा मनुष्य गज घोड़ा इनके उस रोगको नाश करता है ॥
२८४ ॥ [अनन्तर उपरसों की शोधन विधिः। उसमें सिंगरिफ का शोधन।
मेढीके दूधसे और मल्लवर्ग से भातवार भावना दिया जवा सिंगरिफ निश्च
य शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ २८५ ॥

[एवं शोधितस्य हिङ्गुलस्य गुणाः।] तिकं कषायं कटु
हिङ्गुलं स्थाने त्रामयद्गं कफपित्त हरि। हृत्प्रास कण्डु
ज्वर कामलांश्च शीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥ २८६ ॥

[अथ हिङ्गुलाद्रसा कर्षण विधिः।] निम्बू रसे निम्बपत्र
रसेर्वा याम मात्रकम् ॥ घृष्ट्वा दरद मूर्द्धन्तु पातयेत् सू
त युक्तिवत् ॥ २८७ ॥ तत्रोद्ध पिठरीलग्नं गृह्णीया द्रसमु
नमम् ॥ शुद्धमेव हितं सूतं सर्व कर्मसु योजयेत् ॥ २८८

भा० ऐसे शोधने सिंगरफ का पुण । निकल कसेना केटु हिंगुल होता है और
नेत्र रोग का नाशक कफ पित्त का नाशक ॥ हस्तास खुजली ज्वर का मला इन
को नाश करता है तथा पित्तही आम वात और दिष इनकी नाश करता है ॥
२८६ ॥ अनन्तर सिंगरफ से थारा निकालने की विधि ॥ निम्बू के रस से अच्छा
निम्बपत्र के रस से एक पहर ॥ सिंगरफ को घोटकर डमरू यंत्र से निकाले
॥ २८७ ॥ उसमें ऊपर की हाँड़ी में लगाइवा उत्तम रस को निकाले ॥ ओषा पारा
सब कामों में योजना करे वोह हित होता है ॥ २८८ ॥

[अथ गन्धकस्या शुद्धस्य दोषमाह ।] अशुद्धो गन्धकः
कुर्यात्कुष्ठं पित्तरुज्जं भ्रमम् ॥ हन्ति वीर्यं बलं रूपं तस्मा
च्छुद्धः प्रयुज्यते ॥ २८९ ॥

[अथ शोधनविधिः ।] लोहपात्रे विनिःक्षिप्य घृतमग्नौ
प्रतापयेत् ॥ तस्मै घृते तत्समानं क्षिपेद्गन्धकजं रजः ॥ २९० ॥
विद्रुतं गन्धकं दृष्ट्वा तनुवस्त्रे विनिःक्षिपेत् ॥ यथा वस्त्रा
द्विनिःस्वृत्य दुग्धमध्ये शिवलं पतेत् ॥ २९१ ॥ एवं स
गन्धकः शुद्धो सर्वकर्माचितो भवेत् ॥

भा० अनन्तर अशुद्ध गन्धक के दोषों को कहते हैं ॥ अशुद्ध गन्धक कुछ
पित्त के रोग भ्रम ॥ इनको करता है और वीर्य बल रूप घन को नाश कर
ता है इस वासे शुद्ध प्रयोग करना चाहिये ॥ २८९ ॥ अनन्तर शोधन विधि ॥
लोहे के पात्र में घृत डालकर आग पर तपावे ॥ तप्त घृत में उसके समान गन्ध
क का चूरा डाले ॥ २९० ॥ गन्धक के गलन पर उसको बारीक वस्त्र पर डाले ॥
जैसे कपड़े से निकलकर सम्पूर्ण दुग्ध में गिरावे ॥ २९१ ॥ इस प्रकार वोह शु
द्ध गन्धक सब काम के योग्य होता है ॥

[एवं शुद्धस्य गन्धकस्य गुणाः ।] गन्धकः कटुकस्तिक्तो
वीर्योष्ण स्तुवरः सरः ॥ पित्तलः कटुकः पाके करदू

वीसर्पजन्तुजित् ॥ २६२ ॥ हन्ति कुष्ठक्षयं स्नीहं कफवातान्
नृरसायनम् ॥ [अथाभ्रकस्याशुद्धस्य दोषमाह ।]

पीडां विधत्ते विविधान्नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुरं गदञ्च
कुर्व्यात् ॥ हतृपार्श्वं पीडाञ्च करोत्यसह्यमशुद्धमभ्रं
दुरु बन्धि हत्स्यात् ॥ २६३ ॥

[अथाभ्रकस्य शोधन विधिमाह ।] कृष्णाभ्रकं धमे
द्वहो नतः क्षीरे विनिःक्षिपेत् ॥ भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा त
राडुलीयास्त योर्द्रवैः ॥ २६४ ॥

भावयेदष्टयामं नदेव ममं विशुद्धाति ॥

भा० ऐसे शुद्ध गन्धक के गुण । गन्धक कटुक तिक्त वीर्य उष्ण कसैला सर
॥ पित्त को करनेवाला पाकमें कड़ु होता है और खुजली वीसर्प कृमि इन
को जीतनेवाला है ॥ २६२ ॥ और कुष्ठ क्षय पित्तही कफ वात के रोगों को नाश क
रता है तथा रसायन है ॥ [अनन्तर अशुद्ध अभ्रक का दोष कहते हैं ।]
मनुष्यों के अनेक प्रकारकी पीड़ाओं को करता है और कुष्ठ क्षय पाण्डुरोग इन
को भी करता है ॥ तथा हृदय पसली इनकी असह्य पीडा को करना है अशुद्ध अ
भ्रक भारी अग्निनाशक है ॥ २६३ ॥

[अनन्तर अभ्रक के शोधनकी विधि कहते हैं ।] काले अभ्रक को आगमें त
पाकर उसके अनन्तर दूधमें डाले ॥ उसकी अलग पत्रक के चब राई नीम्बू
इनके रससे ॥ २६४ ॥ आठ पहर भावना देवे वोह अभ्रक इस प्रकार शुद्ध होता है

[अथ तस्य मारगाम् ।] कृत्वा धान्याभ्रकं तत्र शोषयित्वा
य मर्दयेत् ॥ अर्क क्षीरैर्दिनं खत्वे चक्राकारं च कारयेत्
॥ २६५ ॥ वेष्टये दर्कपत्रैश्च सम्यग्गज पुटे पचेत् ॥ पुनर्म
र्दये पुनः पाच्यं समवारान् पुनः पुनः ॥ २६६ ॥ ततो वट

जटा क्वाथे स्नहदेयं पुटत्रयम् ॥ म्रियते नात्र सन्देहः प्रथे
 ज्यं सर्वकर्मसु ॥ तुल्यं घृतं मृताभ्रेणा लोहपात्रे विपाच
 येत् ॥ घृतेजीर्णे नदम्बन्तु सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ २६८ ॥
 [अथ धान्याभ्रकस्य विधिः ॥] पादांशशालिं संयुक्त म-
 भ्रं वद्धाथ कम्बले ॥ त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे नत् क्लिन्नं म
 र्दयेत्कौः ॥ २६९ ॥ कम्बलाद्गलितं सूक्ष्मं बालुकारहि
 नञ्च यत् ॥ तद्धान्या भ्रमिति प्रोक्त मभ्रमाराण सि
 द्वये ॥ ३०० ॥ [एवं मारितस्याभ्रकस्य गुणाः ।]

भा० अनन्तर उस्का मारण । धान्याभ्रककरके उस्को सुरवाकर अनन्तर मले ।
 आक के दूधमें एकदिन चक्काकार करे ॥ २६५ ॥ आकके पत्तोंसे लपेटकर अ
 च्छीतरह गजपुट में फूकदेवे ॥ फिरसे घोटें फिरसे पकावे बार २ सात बार ॥
 २६६ ॥ उसके अनन्तर बटकी जटाके कटि से बैसेही तीन पुट देना चाहिये ॥
 मरजाता है इसमें कोई सन्देह नहीं उसको सब कर्म में योजना करना चाहिये
 ॥ २६७ ॥ मर्दने अभ्रक के समान घृत कढ़ाई में पकावे ॥ घृतके जीर्ण
 होनेमें बौह अभ्रक सर्वयोग में योजना करे ॥ २६८ ॥
 अनन्तर धान्याभ्रक की विधि ॥] चौथाई धानसेयुक्त अभ्रक को कंबलमें
 बान्धकर अनन्तर ॥ तीनदिन जलमें रखे उस गलेहवे को हाथोंसे मर्दन
 करे ॥ २६९ ॥ कम्बल से गलित सूक्ष्म औरजो बालूसे रहित है ॥ उसको
 धान्याभ्रक कहाहे अभ्रक मारण सिद्धिके अर्थ ॥ ३०० ॥

इस प्रकार मरिहवे अभ्रक का गुण ॥

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करन्धातु विवर्द्ध न
 च्च ॥ हन्यात्त्रिदोषं ब्रणमेह कुष्ठं स्त्रीहोदरं ग्रन्थि
 विषकृमींश्च ॥ ३०१ ॥ रोगान् हन्ति दृढयति वपुर्वी-
 र्य्यद्वाहिं विधत्ते ॥ तारुण्याढ्यं रमयति शानं योषितां
 नित्यमेव ॥ ३०२ ॥ दीर्घायुष्कान् जनयति सुतान् सिंह

तुल्य प्रभावान् ॥ मृत्योर्भीतिं हरति सुतरां सेव्यमानं
 मृताभ्रम् ॥ ३०३ ॥ [अथ तालकस्याशुद्धस्य दोषमाह]
 अशुद्धं तालमायु हृत्कफ मारुतमेह कृत् ॥ तापस्फो
 टाङ्ग सङ्कोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ३०४ ॥
 [अथ तालस्य शोधनमाह] तालकं त्राशः कृत्वा त-
 चूर्णं काञ्चिके पचेत् ॥ दोलायंत्रेण यामेकं ततः कूष्मा
 ण्डजद्रवैः ॥ ३०५ ॥ तिलतेले पचेद्यामं यामञ्च त्रिफला
 जले ॥ एवं यंत्रे चतुर्थामं पक्वं शुद्ध्यति तालकम् ॥ ३०६ ॥

भा० अन्धक कसैला मधुर सुशीत आयुको करनेवाला और धातु बढ़ानेवाला है
 ॥ और ज्वरप्रमेह कुष्ठ सीहोदर गांठ विषकृमि इनको नाश करता है ॥ ३०१ ॥
 रोगों को नाश करता है शरीरको दृढ़ करता है और वीर्य वृद्धि को करता है ॥
 तारुण्य से भरझवा नित्यही सौ स्त्रियों से भोग करता है ॥ ३०२ ॥ सिंह के स-
 मान प्रभाव वाले पुत्रों को उत्पन्न करता है । और मृत्यु के भय को हरता है सेवन
 कियाझवा अन्धकभस्म ॥ ३०३ ॥

[अनन्तर अशुद्ध हरताल का दोष कहते हैं] अशुद्ध हरताल आयुनाशक
 कफ वात प्रमेह इनको करनेवाली ॥ ताप कोड़े शरीर संकोच इनको करती है ॥
 इसवास्ति इसे शोधन करे ॥ ३०४ ॥

[अनन्तर हरताल का शोधन कहते हैं] हरताल को बारीक पीसकर उस
 चूर्णको कांजी में दोलायंत्र से पकावे ॥ एक पहर उसके अनन्तर पेटके रस से
 पकावे ॥ ३०५ ॥ तिलके तेलमें एक पहर पकावे और एक पहर त्रिफलाके पा-
 नी में पकावे ॥ इस प्रकार यंत्र में चार पहर पकी हुई हरताल शुद्ध होती है ॥ ३०६ ॥

[अथ तालस्य मारण विधिः] सदलं तालकं शुद्धं यौन
 नर्नव रसेन तु ॥ खल्वे विमर्दयेदेकं दिनं पश्चाद्दिशो वयेत्
 ॥ ३०७ ॥ ततः पुनर्नवादारैः स्थाल्यामर्द्धं प्रपूरयेत् ॥
 तत्र तद्वीलकं धृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ॥ ३०८ ॥

आकारं पितरं नस्य पिधानं धारयेन्मुखे ॥ स्थालीचुल्यां
समारोप्य क्रमाद्वह्निं विबर्द्धयेत् ॥ ३०६ ॥ दिनान्यन्तर
शून्यानि पञ्च वह्निं प्रदापयेत् ॥ एवं तन्मित्रयने तालं
मात्रा नस्यैक रक्तिका ॥ ३१० ॥ अनुपाना न्यनेकानि य-

था योग्यं प्रयोजयेत् ॥

भा० अनन्तर हरताल की मारण विधि ॥ तबकी शुद्ध हरताल की गदह घूर
ना कीरेस से एकदिन घोंटे पीछे सुकादेवे ॥ ३०७ ॥ उसके अनन्तर पुनर्नवाके
खार से आधी हांडी को भर देवे उसमें उस गोले की धारके फिरसे उसी से भर
देवे ॥ ३०८ ॥ गले तक उसके मुँ पर ढकना रखे ॥ हांडी की चूल्हे पर रखके क्रम
से आंच बढ़ावे ॥ ३०९ ॥ ढाई दिन आग देवे इस प्रकार हरताल मरती है ॥ उस
को मात्रा सकरती है ॥ ३१० ॥ यथोचित अनेक अनुपानों को योजना करे ॥

[एवं शोधितस्य मारितस्य तालकस्य गुणाः ।] हरितालं

कटुस्निग्धं कषायोष्णं हरे द्विषम् ॥ कराडू कुष्ठाश्च रोगा

स्व कफपित्तक च व्रणान् ॥ ३११ ॥ [अन्यच्च]

तालकं हरते रोगान् कुष्ठ मृत्यु ज्वरापहम् ॥ शोधितं कु-

रुते कान्तिं वीर्यवृद्धिं तथा युषम् ॥ ३१२ ॥

भा० इस प्रकार शोधके मारी हुई हरतालका गुण ॥ हरताल कड़वी चिकनी
कसेली गरम होती है ॥ और कफ खुजली विष कुष्ठ मुखरोग रक्त कफ पित्त
कच व्रण इनको दूर करती है ॥ ३११ ॥ [औरभी ।] हरताल रोगोंको
हरती है और कुष्ठ मृत्यु ज्वर इनकी नाशक ॥ शोधी हुई कान्ती को करती
है और वीर्यवृद्धि तथा आयुषको करती है ॥ ३१२ ॥

[अथ मनःशिलाया अश्रुद्धाया दोषमाह ।] तालकस्यैव

भेदोऽस्ति मनोगुप्ते स्तदन्तरम् ॥ तालकं त्वनिपीतं स्या-

द्वेष्टता मनःशिलाः ॥ मनःशिलामन्द बलं करोति ।

जन्तुं ध्रुवं शोधन मन्त्रेण । मलस्य बन्धं किल मूत्ररोधं
सशर्करं कृच्छ्र गदञ्च कुर्यात् ॥ ३१४ ॥

[अथ तच्छोधनविधिः।] पंचेत् त्यहमनामूत्रे दोला य-
न्त्रे मनः शिलाम् ॥ भावयेत्तत्सप्तधा पित्ते रजायाः सा
विशुद्ध्यति ॥ ३१५ ॥ [एवं शोधिताया मनः शिलाया गु-
णा नाह ।] मनः शिला गुरुर्वरायां सरोषाण लेखनी कटुः ॥
तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकास भूत विषाखनुत् ॥ १६ ॥
[अथ खर्परस्तु त्यभेदस्तस्य शोधनविधिः।] नरमूत्रे च
गोमूत्रे सप्ताहं रसंकम्पयेत् ॥ दोलायन्त्रेण शुद्धः स्या
ततः कार्येषु योजयेत् ॥ ३१७ ॥

भा० अनन्तर अशुद्ध मनसिल के दोष कहते हैं ।] हरताल का ही भेद है । मैन
सिल का और उसका अन्तर यह है कि हरताल बहुत पीली होती है और मैन
सिल लाल होता है ॥ ३१३ ॥ विना शोधे मैनसिल मनुष्य को कमजोर करती है
मलबन्ध मूत्रका अवरोध और शर्करा के सहित मूत्र कृच्छ्र को करती है ॥ १४
॥ [अनन्तर उसकी शोधन विधि ॥ मैनसिल बकरी के मूत्र से दोलायन्त्र में प
कावे ॥ और बकरी के पित्ते से सात भावना देवे इस प्रकार बोह शुद्ध होती है ॥
३१५ ॥ इस प्रकार शोधोद्भूत मैनसिल का गुण कहते हैं ॥ मैनसिल भारी
रंगत को अच्छा करने वाली सर उष्ण लेखन कटु ॥ तिक्त विकृती होती है ।
और विष श्वास कास भूत विष रक्त इनकी नाशक है ॥ ३१६ ॥
अनन्तर खपरिया लीला थोड़े का भेद है ॥ उसकी शोधन विधि ॥ नरमूत्र में
और गोमूत्र में खपरिये को सात दिन ॥ दोलायन्त्र से पकावे ऐसे शुद्ध होती
है उसके अनन्तर काममें लावे ॥ ३१७ ॥

[अथ तस्य गुणाः] खपरं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु ।
लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ ३१७ ॥

विषाश्रम कुष्ठकरण्डं नो नाशनं परमं मतम् ॥

[अथ सर्वोपरसानां साधारण शोधनविधिः] सूर्यावर्तो वज्रकन्दः कदलीदेव दालिका ॥ शिशुः कोशात की बन्धा काकमाची च बालकम् ॥ ३१८ ॥ एषामेक रसेनैव त्रितारैर्लवणैः सह ॥ भावयेदम्ल वर्गैश्च दिनमेकं प्रयत्नतः ॥ ३१९ ॥ ततः पचेच्च नट्टविर्दोलायन्ते दिनं सुधीः ॥ एवं शुद्धान्ति ते सर्वे प्रोक्ता उपरसा हि ये ॥

॥ ३२० ॥ [विशेषश्च] कडुगुण्डं गौरिकं शङ्खः कासी-सं टङ्कुरां तथा ॥ नीलाज्जनं शुक्तिभेदाः क्षुल्लकाः सवराटकाः ॥ ३२१ ॥ जम्बीरवारिणा स्विन्ताः दालिताः को-यणवारिणा ॥ शुद्धिमायान्त्यमो योज्याभिर्वाग्भर्यागसि

ह्वये ॥ ३२२ ॥

भा० अनन्तरउस्का गुण । खपरिया कडुक क्षार कसीला वमन करनिवाला क्षुल्लका ॥ लेखन भेदन शीतल नेत्रहितकफ पित्तकानाशक ॥ ३१७ ॥ और विष पथरी कुष्ठ खुजली इनका परम नाशक कहा है ॥

[अनन्तर सब उपरसों की साधारण शोधन विधि ॥] सूर्यावर्त वज्रकन्द कदली घघरचेल ॥ सहिजना तोरी खेखसा किमाच सुगन्धवाला ॥ ३१८ ॥ इनके एकही रससे नीनों क्षार जवरणके साथ ॥ अम्लवर्ग से एकदिन यत्नके साथ भावना देवे ॥ ३१९ ॥ उसके अनन्तर उसके रसमें बोला यंत्र से एक दिन पकावे ॥ बोह कहेहुं सब उपरस इस प्रकार शुद्ध होते हैं ॥ ३२० ॥

[विशेष] कडुगुण्ड गेरू शंख कसीस सोहागा ॥ तथा कान्नी सुप्ता सीपके भेद कौड़ियों के सहित ॥ ३२१ ॥ जम्बीरी के रससे स्विन्न सीलगरम जलसे धोये जावे ॥ यह शुद्ध होते हैं वैद्य योग सिद्धि के अर्थ इनकी योजना करे ॥ ३२२ ॥

[एवं शोधितानामुपरसानां पृथग्गुणा गुणग्रन्थे द्रष्टव्याः ॥]

[अथ रत्नानां शोधनमारणविधिः] तत्राशुद्धस्य वज्रस्य दोषमाह । अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वं व्यथां तथा ॥

धारदुता पङ्कुरत्वञ्च तस्मात् संशोध्य मारयेत् ॥ ३२३ ॥

[अथ वज्रस्य शोधनविधिः] कुलत्थ कोद्रवक्षाये दोला यन्त्रे विपाचयेत् ॥ व्याघ्री कन्दगतं वज्रं त्रिदिनं तद्विशुद्धति ॥ ३२४ ॥ व्याघ्री कराटकारिका । अन्यः

शोधनविधिः । गृहीत्वान्हि शुभे वज्रं व्याघ्री कन्दोदरे क्षिपेत् ॥ माहिषी विष्टया लिप्ता कारीषाग्नौ विपाचयेत् ॥ ३२५ ॥ त्रियामायां चतुर्यामं यामिन्यन्तेऽश्वमूत्रके ॥

सेचयेत्पाचये देवं सप्तरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३२६ ॥

इसवास्ते शोधकर मारे ॥ ३२३ ॥

अनन्तर हीरकी शोधन विधिः ॥ कुरथी कोदोंके काढेमें हीला यंत्रसे पकावे ॥ कटेली के कंद गत हीरा तीन दिनमें शुद्ध होता है ॥ ३२४ ॥ कटेली ।

[दूसरी शोधन विधिः] अच्छे दिन हीरा लाकर कटेली कंद के उदर में डाले ॥ भैसके गोबर से लीपकर करसीकी आगमें पकावे ॥ ३२५ ॥ तीन पहरमें और रातके अन्तमें चौथे पहरमें घोड़ेके मूत्रसे पकावे । इस प्रकार सातदिन में हीरा शुद्ध होता है ॥ ३२६ ॥

[अथ वज्रस्य मारणविधिः] हिङ्गु सैन्धव संयुक्ते क्षिपेत्कार्ये कुलत्थजे ॥ नष्टं नष्टं पुनर्वज्रं भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ॥ ३२७ ॥ [अन्य मारण प्रकारः]

मेषशृङ्गः भुजङ्गास्थि कूर्मपृष्ठान्धवेनसम् ॥ शशदन्तं
समम्पिष्ट्वा वज्रवीरिणा गोलकम् ॥ ३२८ ॥ कृत्वा तन्म
ध्यगं वज्रं म्रियते ध्मातमेवहि ॥

[मारितस्य वज्रस्य गुणाः]

आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च ॥ सेवितं स-
र्वं रोगघ्नं मृतं वज्रं न शंसयः ॥ ३२९ ॥

[अथ शेषरत्नानां शोधनमारणा विधिः] वज्रवत्सर्वरत्ना
नि शोधयेन्मारये तथा ॥ शुद्धानां मारितानाञ्च तेषां
शृणु गुणानपि ॥ ३३० ॥ मणयो वीर्यतः शीता मधुरा स्तु
वरास्तात् ॥ चक्षुष्या लेखनाश्चापि सारका विषहार
काः ॥ ३३१ ॥ धारणात्ते तु मङ्गल्या ग्रह दृष्टिहरा अपि ।

[उपरत्नानां शोधनमारणा विधिश्चिन्त्यः ॥

भा० अनन्तर हीरेकी मारणा विधि ॥ हीरे सेन्धा इनसेयुक्त कुरपीके काढे में न
पा तधा कर ॥ दुखीसवार डाले ॥ ३२९ ॥ [दूसरा मारणा प्रकार । मेंढे का
सींग सोंपकी हड्डी कछवेकी पीठ अमलवेत खरगोश का चोंत इनकी संम भाग
लेकर धूपहर के दूधसे पीसकर गोलाकरे ॥ ३२९ ॥ उसके बीचका हीरा घोंक
नेसेही मरजाता है ॥ [मारेज्जवे हीरेके गुण]

आयु पुष्टि बल वीर्य वर्ण सौख्य इनको करता है ॥ और सेवन किया ज्वा हीरे
का भस्म सब रोगों का नाशक है इसके कुछ संशय नहीं ॥ ३२९ ॥

[अनन्तर राज्ञी रत्नों का शोधन मारणा विधि ।] हीरेके सदृश सब रत्नों को शोध
न करे और मारे ॥ शुद्ध मारेज्जवे उनका गुण सुनो ॥ ३३० ॥ मणि वीर्यसे शी
त मधुर कसैले रससे ॥ नेत्रके हिन देखन भी और सारक विष नाशक है ॥ ३३१
॥ वे धारणा से मंगल को देनेवाले और ग्रह दृष्टि के नाशक भी हैं ॥

उपरत्नों की शोधन मारणा विधि चिन्तन योग्य है ॥

[अथ विषाणां शोधन विधिः]

[तत्र वत्सनाभस्य स्वरूप निरूपणम् ॥] सिन्दुवार सहक
पत्रो वत्सनाभ्या कृतिस्तथा ॥ यत्पार्श्वेन नरोर्द्विर्व-
त्सनाभः स भाषितः ॥ ३३२ ॥

[विषस्य शोधन विधिः] गोमूत्रे त्रिदिनं स्थाप्यं विषं
तेन विशुध्यति ॥ रक्त सर्षपतैलाक्ते तथा धार्यञ्च वा-
ससि ॥ ३३३ ॥ ये गुणा गरले प्रोक्ता स्ते स्युर्हीना विशो-
धनात् ॥ तस्माद्विषं प्रयोगे तु शोधयित्वा प्रयोजयेत्
॥ ३३४ ॥ [अथ विषस्य गुणाः।]

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्याधि च विकाशि च ॥ आग्ने-
यं वात कफ हृत् योगवाहि मेहावहम् ॥ ३३५ ॥

भा० अनन्तर विषोंकी शोधन विधि ॥ इसमें वचनाभ का स्वरूप कथन । सि-
न्दुवार के समान पत्र और वत्सनाभि का सा जो वृक्ष के बगल बहुता है वोह
वत्सनाभ कहा है ॥ ३३२ ॥ [विषकी शोधन विधिः] गोमूत्र में तीन दिन
रक्ते उरसे विष शुद्ध होता है ॥ वैसेही लाल सरसों के तेल से डूबे डूबे कपड़े
पर रखे ॥ जो गुण विषमें कहे हैं वोह शोधन करने से हीन हो जाते हैं ॥
इस वास्ते विषके प्रयोग में शोधन करके डाले ॥ ३३४ ॥

[अनन्तर विषके गुण] विष प्राण नाशक कहा है और व्याधि तथा विका-
शि भी कहा है ॥ आग्नेय वात कफ का नाशक योगवाही मेह करनेवाला है
॥ ३३५ ॥

(क) व्याधि सकल काय गुणव्यापन पूर्वक पाक गमन
शीलं । विकाशि ओजः शोषण पूर्वक सन्धिवन्ध शिथली
करणा शीलम् । आग्नेयम् अधिकाग्न्यंशं । योगवाहि स-
ङ्गि गुणग्राहकम् । मेहावहं तमोगुण प्राधान्येन बुद्धि
विध्वंसकम् ॥

तदेव युक्तियुक्तन्तु प्राणदायि रसायनम् ॥ योगवाहि
परं वात श्लेष्मजित् सचिपात हृत् ॥ ३३६ ॥

भा० (क) संपूर्ण शरीर गुणव्यापन पूर्वक पाक होनेवाला । जीवको शोषण पूर्वक सन्धिवन्धकी छीला करनेवाला । अधिक अग्निअंशुसाधीके गुणको लेनेवाला । तमोगुणकी प्रधानतासे बुद्धिनाशक । वाहि युक्ति युक्त प्राणको देनेवाला रसायन है ॥ योगवाहि परमवात कफ को नीननेवाला सचिपात का नाशक है ॥ ३३६ ॥

[अथोपविषाणां निरूपणम् ।]

अर्कक्षीरं स्त्रुही क्षीरं लाङ्गली करवीरकः ॥ गुञ्जाहि
फेनोधनूरः सप्तोप विषजातयः ॥ ३३७ ॥ एतेषां
शोधनं चिन्त्यं गुणास्तत्र तत्र द्रष्टव्याः ।

[अथ द्रव्याणां गुणवता मवधिः] गुणहीन भवेद्वा
र्या दूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ॥ मास द्रयात् तथा चूर्णं लभते
हीनवीर्यताम् ॥ ३३८ ॥ हीनत्वं गुदिका लेहो लभते च
त्सरं यदि ॥ हीनास्य घृत तैलाद्या चतुर्मासाधिका स्त-
था ॥ ३३९ ॥

भा० अनन्तर उपविषो का निरूपण ॥ आकका दूध गूहरका दूध करि-
हारी कनेर ॥ गुंजा अफीम धनूरा यह सात जातके उपविष हैं ॥ ३३७ ॥
घनका शोधन चिन्तन करना चाहिये गुणवर्ही २ पर देखने चाहिये ॥
[अनन्तर गुणवाले द्रव्यों की अवधि ॥ जैसे की वैसीही दवा वरस के ऊपर
गुणहीन होजाती है ॥ तथा दो महीने में चूर्ण वीर्य हीन होता है ॥ ३३८ ॥
और एक वरस में गुदिका अवलेह हीनवीर्य होते हैं ॥ घृत तैल आदि
वैसीही चार महीने अधिकमें हीन होते हैं ॥ ३३९ ॥

(क) घृत तैलाद्या इति योगविशेषणम् । चतुर्मासाधिकः
वत्सरादुपरि चत्वारो मासा अधिका येषु से । घृत तैलयो विंशे

षमाह । [तत्त्वान्तरे] घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यं
त्वमामुयात् ॥ तैलं पक्वं मपक्वं च चिरस्थायि गुणा

धिकम् ॥ ३४० ॥ (क) तदपि शीघ्रमासा स्थान

रिणं पक्वं तैलं गुणाधिकं बोद्धव्यम् ।

औषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्यो वत्सरात्परम् ॥

औषध्यो धान्यादयः लघुपाकाः शीघ्रपाकाः निर्वीर्योः स्युः

पुराणाः स्युर्गुरौ युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥

[अथ स्नेहपानं विधिः।]

भा० (क) घृत तैल आदि इस प्रकार योग विशेषण है । वरस के ऊपर चार मही
ने । घृत तैल में विशेष कहते हैं । तत्त्वान्तरमें । पका घृत वरस के ऊपर हीन
वीर्य होता है ॥ तैल पक्वं और अपक्व बड़नदिन रहता है । और गुणाधिक है
॥ ३४० ॥ (क) बोहमी सोलह महीने भीतर का पकाने ल गुणाधिक जानना
चाहिये ॥ वरस के ऊपर लघुपाक और निर्वीर्य होता है ॥ आसव धातु रस ये
पुराने गुण युक्त होते हैं ॥ [अनन्तर स्नेह पान की विधि।]

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृततैलं वसा तथा ॥ मज्जा च तं

पिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिने रवौ ॥ ३४१ ॥ स्थावरौ ज-

ङ्गमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ॥ तिलतैलं स्थावरेषु-

जङ्गमेषु घृतचरम् ॥ ३४२ ॥ द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वी-

यमकं स्विष्टतो महान् ॥

भा० स्नेह चार प्रकार का कहा है घृत तैल चरबी तथा गृदा ॥ उनको अनुष्य क
छ दिन निकलने पर ॥ ३४१ ॥ स्थावर और जंगम रसा दो योनि स्नेह कहा है

॥ स्थावर में तिल तैल और जंगम में घृत श्रेष्ठ है ॥ ३४२ ॥ घृत तैल इन दो
के मिलाने से यमक संतक स्नेह होता है ॥ और घृत तैल चरबी इनसे त्रिचत
तथा घृत तैल चरबी गृदा इनसे महान् होता है ॥

(क) [अस्या यमर्थः] - द्वाभ्यां स्नेहाभ्यां घृततैलाभ्यां

यमकारव्यः स्निहः स्यात् । त्रिभिः स्निहेः घृततैल
 वसारूपे स्निग्धत्ताव्यः स्यात् । चतुर्भिः घृततैलवसा-
 मज्जामिर्महान्महास्निहः स्यादित्यर्थः । यिवेत त्यहं
 चतुर्हं पञ्चाहं षड्द्वहानि चेति ॥ [यदुक्तम्]
 मृदुकोष्ठ स्तिग्धत्वेण स्निग्धस्नेहोप सेवया ॥ मध्यको-
 ष्ठश्चतुर्भिश्च दिवसेः स्निह्यति ध्रुवम् ॥ ३४३ ॥ पञ्च
 भिरवाप्य षड्भिर्वा दिनैः क्रूरो विशुद्ध्यति ॥ सप्तरात्रा-
 त्यरं स्निहः सात्मी भवति सेविनः ॥ ३४४ ॥

भा० इसका यह अर्थ है कि । दोसे यमकारव्यस्नेह । तीनों से त्रिरुत्ताव्य
 चारोंसे महान् होता है ॥ इनको तीनदिन चारदिन पांचदिन अथवा छ दिन
 पीवे ॥ मृदु मध्य क्रूर कोष्ठकी अपेक्षासे तीनदिन चारदिन पांचदिन अथ-
 वा छ दिन पीवे । जैसे कि कहा है । मृदुकोष्ठ तीन दिनमें स्निहके सेवन से
 स्निग्ध होता है ॥ मध्यकोष्ठ चारदिनमें अथवा स्निग्ध होता है ॥ ३४३ ॥
 क्रूरकोष्ठ पांच अथवा छदिनमें शुद्ध होता है ॥ सात दिनके परे सेवन कि-
 याज्जवा स्निह सात्म्य होता है ॥ ३४४ ॥

(क) मृदु मध्य क्रूर कोष्ठानां सर्वेषां सप्तरात्रात्यरं सात्मी
 भवति । वातानुलोम्य बन्धिर्दीप्ति कोष्ठ शुद्धि मृदस्ति-
 ग्धाङ्गता स्वरवचनाङ्गलाघव धातुपट्टि द्विज दाहं नि-
 र्जता बलवर्णकारी भवति ॥

ननु भक्तद्वये वातानुलोम्यादीन् करोति ।

दोषकालवयो बन्धि बलान्वालोक्व योजयेत् ॥

हीनास्तु मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान् ॥

३४५ ॥ असात्रया तथाऽकाले मिथ्याहारविहार

तः ॥ स्नेहः करोति शोथार्शस्तन्द्रा निद्रा विसंज्ञिताः ॥

॥ ३४६ ॥ देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्यैकपलोन्मिता ॥

मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकर्षिकी ॥ ३४७ ॥

(मध्यमाय मध्यमाग्नये जघन्याय हीनाग्नये)

अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्त्रीन्याः सर्वसंमताः ॥ अ-

होरात्रेण महती जीर्यत्यन्हि तु मध्यमा ॥ ३४८ ॥

जीर्यत्यल्पा दिनार्द्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥

[अयमर्थः] याहोरात्रेण जीर्यति सा मात्रा महती ।

एवं मध्यमा कनिष्ठा च ज्ञेया ।

अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या स्वल्पदोषे प्रपूजिता ॥ मध्य-

मा स्नेहनी ज्ञेया वृंहणी अमहारणी ॥ ३४९ ॥ ज्येष्ठा

कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ॥

भा० (क) सब मृदु मध्यम्रूकोष्ठ वालों के सातदिन के परे सान्म्य होता है वातकी अनुलोम करके । अग्निदीपन कोष्ठ शुद्धि मृदु स्निग्ध अङ्गुता स्वर वचन शरीर लाघ वलवर्णोंकी करनेवाला होता है ॥ नकि भक्त दूधमें घातानु लोम्यादिकों की करता है । दोषको लघु अग्नि बल बुनको देखकर स्नेहकी हीन मध्य अधिक मात्राको योजना करे ॥ ३४५ ॥ वे मात्रा के तथा अकाल में मिथ्या आहार विहार में । स्नेह सृजन बवासीर तन्द्रा निद्रा विसंज्ञिता इनको करता है ॥ ३४६ ॥ दीप्ताग्नि की स्नेहकी एकपल प्रमाण मात्रा देनी चाहिये ॥ और मध्यम अग्निवाले को दोनोले देनी चाहिये ॥ ३४७ ॥ मध्यमाग्नि की और हीन अग्निवाले की । और सबके सम्मन तीन स्नेहकी मात्रा होती है ॥ बड़ी मात्रा जो दिनरात में पचती है और दिनमें जो पचजाती है वोह मध्यम ॥ ३४८ ॥ और जो आधे दिन में पचती है उसको अल्पमात्रा जाननी चाहिये वोह सुखावह है ॥ (येह अर्थ है कि) नौरातदिन में पचती है वो बड़ी मात्रा है । ऐसेही मध्यम कनिष्ठ जाननी चाहिये । अल्प मात्रा

शुक्रको करनेवाली है । और अल्पदीप में पूजित है ॥ मध्यम स्नेहकी मात्रा पुष्ट
शुभ नाशक होती है ॥ ३४८ ॥ और बड़ी कुष्ठ विष उन्माद ग्रह अपस्मार इन
की नाशक है ॥ [सुश्रुतः पुनरेवाह]

यामात्रा प्रथमे यामे गते जीर्यति वासरे ॥ सा मात्रा
दीपयत्यग्निं मल्पदोषे च पूतिता ॥ ३५० ॥ या मा-
त्रा वासरस्यार्द्धे व्यतीते परिजीर्यति ॥ सा दृष्ट्या वृ-
हणी च स्यान्मध्यदोषे प्रपूजिता ॥ ३५१ ॥ या मात्रा
चरमे यामे स्थितेऽहः परिजीर्यति ॥ सामात्रा स्नेह
नी ज्ञेया बह्वदोषे षु पूजिता ॥ ३५२ ॥ केवलं पैत्तिके
सर्पिर्वीतिके लवणान्वितम् ॥ देयं बह्वकफे वल्लि-
व्याय क्षारसमन्वितम् ॥ ३५३ ॥ रूक्षक्षत विषा-
र्त्तानां वातपित्त विकारिणाम् ॥ ह्रीनमेधा स्मृतीना-
ञ्च सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥ ३५४ ॥ कृमिकोष्ठानिला
विष्टा प्रवृद्ध कफ मेदसः ॥ पिवेयु स्तेल सात्स्यास्तुतै-
लं दार्ढ्यार्थिनस्तु ये ॥ ३५५ ॥ व्यायामाकर्षिताः
शुष्क रेतोरक्ता महारुजाः ॥

भा० सुश्रुतने फिरसेही कहा है । जो मात्रा पहर भर गुजरने पर पचती है ।
वोह मात्रा अग्निको दीपन करती है । और छोड़े दोषमें अच्छी है ॥ ३५० ॥
जो मात्रा दो पहर गुजरने पर पचती है वोह मात्रा शुक्रको करनेवाली पुष्ट हो-
ती है और मध्यदोष में अच्छी होती है ॥ ३५१ ॥ जो मात्रा दिनके चौथे पहर
में पचती है उस मात्राको स्नेहनी जानना चाहिये वोह बह्वन दोषमें पूजित हो-
ती है ॥ ३५२ ॥ पैत्तिक में खाली घृत और वातिकमें लवण के सहित ॥ देना चा-
हिये तथा बह्वन कफमें चित्रक त्रिकुल क्षार युक्त ॥ ३५३ ॥ देना चाहिये रूक्ष

क्षत विष इनसे पीड़ित वात पित्तके विकार वालों को ॥ और हीन मेंधा स्मृति को घृतपान अच्छा है ॥ ३५६ ॥ हमी कोष्ठ वात इन करके सायिष्ट और बड़े हृवे कफ भेद वाले ॥ तथा हृदता को चाहने वाले जो हैं वे तल सात्त्य रोग में तेल को पीवें ॥ ३५५ ॥ कसरन से आकर्षित शुष्क वीर्य वेरक्तवाले बड़ी पीड़ा वाले येह भी तेल पीवें ॥

(क्रूरशयाः क्रूरकोष्ठाः सर्वतः सर्वस्मान्न स्नेहात् ।)

शानिकाले दिवास्नेह मुष्णकाले पिवेन्निशि ॥ वात

पित्ताधिके रात्रौ वातस्नेहमाधिक दिवा ॥ ३५६ ॥

नस्याभ्यञ्जनं गण्डूषं मूर्ध् कर्णादि नर्पणे ॥ तैल-

घृतं वा युञ्जीत दृष्ट्वा दोष बलावलम् ॥ ३५७ ॥ घृ-

ते कोष्ठा जलं पेयं तैलेयूषः प्रशस्यते ॥ वसामज्जा

पिबेन्मण्डं मनुषानं सुखावहम् ॥ ३५८ ॥ स्नेहद्वि-

षः शिशून् बृहन् सुकुमारान् कृष्णानपि ॥ नृणा-

लुकां नृष्णकानि सह भक्तेन पाययन् ॥ ३५९ ॥

सर्पिज्मती बह्मति ला यवागू स्वल्पं तराडुला ॥

आ ५ क्रूर आशय क्रूरकोष्ठ सब स्नेह से सब तरफ) शानिकाल में दिन में स्नेह और उष्णकाल में रात को पीवे ॥ और वात पित्ताधिक में रात को और वात कफाधिक में दिन में ॥ ३५६ ॥ पीवे नास अम्यंग गण्डूष और शिर का न नत्र इनके नर्पण में ॥ तेल घृत को योजना कर दोषों के बलावल देख कर ॥ ३५७ ॥ घृत पर सालगरम जल पीना चाहिये और तेल पर जूस प्रशस ही नहीं ॥ वसा मज्जा पर अनुपान माड पीवे यह सुखावह है ॥ ३५८ ॥ स्नेह से देख कर ने वालों को और बालक बड़ सुकुमार कृष्ण बालों को ॥ और दयावाले को उष्णकाल में योजना के साथ पिलावे ॥ ३५९ ॥ घी की बज्जन तिल से युक्त घीड़े चांचाल वाली यवागू ॥

सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहन कारिणी ॥ ३६० ॥

शर्करा पूर्ण संयुक्ते स्नेहनस्थे घृते नृ गाम् ॥ दुग्धं क्षीरं
 पिविद्रुसः सद्यः स्नेहनं मुनमम् ॥ ३६१ ॥ मिथ्या चारा
 दृढत्वाच्च यस्य स्नेहो न जीर्येति ॥ विष्टम्भा वापि जी-
 र्येत यारिणो ब्यो न चामयेत् ॥ ३६२ ॥ स्नेहस्याजीर्णं श-
 ङ्कायां पिवेदुषोत्कं नरः ॥ तदोद्गरो भवेच्छुद्धो भ-
 क्तं प्राप्ते कचिस्तथा ॥ ३६३ ॥ स्नेहेन पैतिकस्याग्निर्य-
 वा तीक्ष्णतरि कृतः ॥ तदास्यो दीर्यते तृष्णां विषभा-
 त्तस्य पाययेत् ॥ ३६४ ॥ शोतलं पायसं तेन तृष्णा त-

स्य प्रशाम्यति ॥ अजीर्णं वर्जयेत् स्नेहं मुहुरी तरुण

ज्वरी ॥ ३६५ ॥

भा० गारम खील सेवन की हुई तत्काल स्नेह न कर लेवाली है ॥ ३६० ॥ दुह-
 ने के बरतन में शर्करा पूर्ण से युक्त घृत मिलाके बसमें ॥ गायका दूध दुहक-
 र रुक्म पुरुष पीये वीह तत्काल वनम स्नेहन है ॥ ३६१ ॥ मिथ्याचार से
 अथवा बद्धत होने से जिसका स्नेह नहीं पचता ॥ विष्टम्भ होके भी पच जाता
 ॥ अजीर्ण शंका में ॥ रुचि हो ॥ तब दूधको ॥
 से इसकी त ॥ नर बाला से

ह को तसेवन करे ॥ ३६५ ॥

॥ दुर्बली ऽरोचकी स्थूलो मूलीहोती मेह पीडितः ॥ वन-

तवस्ति निर्रक्तश्च बान्तस्तृष्णा श्रमान्वितः ॥ ३६६ ॥

अकाल प्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत् ॥ स्नेहः

संशोध्य मद्यस्त्री व्याघ्राना सक्तं चिंतकाः ॥ ३६७ ॥

बृद्धबाल कृशा रूक्षाः क्षीणास्त्राः क्षीणरेतसः ॥ वाता-
 र्त्तास्तिमिरार्त्ता ये तेषां स्नेहेन मुत्तमम् ॥ ३६८ ॥ वाता
 नुलोम्यं दीप्ताऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ॥ मृदु-
 स्निग्धाङ्गता रत्नानिः स्नेह द्वेषोऽथ लाघवम् ॥ ३६९ ॥
 विमलेन्द्रियतां सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः ॥ म-
 क्तद्वेषो मुखस्त्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ॥ ३७० ॥
 तन्द्रातीसारं पराडत्वं मूत्रं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥
 रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहै रति स्निग्धस्य रूक्षराम् ॥ ३७१ ॥

भा० दुर्बल अरुचिवाला स्थूल मूर्च्छावाला प्रमेह से पीड़ित ॥ वास्ति दि-
 या ज्वरा विरेचन लिया ज्वरा वमन लिया श्रम युक्त ॥ ३६६ ॥ और अकालमें
 प्रसृत जड़ येह त्याग देवे और दुर्दिनमें भी त्याग देवे ॥ स्वेदन और संशोधन
 करके मद्य स्त्री कसरत इनको बहुत करनेवाले ॥ ३६७ ॥ बृद्ध बालक कृश
 रूखे क्षीण रक्त क्षीण धातु ॥ वात से पीड़ित तिमिर रोगवाले जो हैं उनको
 स्नेहन अच्छा है ॥ ३६८ ॥ वातका नीचे होना दीप्त अग्नि मल चिकना औ
 र ठीला ॥ मृदु और स्निग्धता सुस्ती स्नेह द्वेष और हलका पन ॥ ३६९ ॥
 इन्द्रियोंकी स्वच्छता अच्छी नारु स्निग्ध होनेमें येह लक्षण होते हैं ॥ और
 रूक्षमें इससे विरुद्ध लक्षण होते हैं ॥ भोजनमें द्वेष मुखस्त्राव गुदामें दाह प्रवा
 हिका ॥ ३७० ॥ तन्द्रा अतीसार नपुंसकता येह बहुत स्निग्धका लक्षण है ॥
 रूक्षता स्नेहसे स्नेहन और स्निग्धका रूक्षण ॥ ३७१ ॥

प्रयामाक चराका दैश्च तक्रपिशयाक शक्तुभिः ॥ दी-
 प्ताग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्दृढेन्द्रियः ॥ ३७२ ॥
 निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहं सेवी भवेन्नरः ॥ स्नेहं प्या-
 यामं संशीतिवेगाघातं प्रजागरान् ॥ ३७३ ॥ दिवास्व-
 प्नममिष्यन्दि रूक्षान्नं च विवर्जयेत् ॥

[अथ पञ्च कर्माणि]

प्रथमं वमनं पश्चाद्विरेकं ध्यानु वासनम् ॥ रक्तानि

पञ्च कर्माणि निरूढा नावनं तथा ॥ ३७४ ॥

[अथ वमनविधिः] शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले

च देहिनाम् ॥ वमनं रेचनञ्चैव कारयेत्कुशलो भिष-

क् ॥ ३७५ ॥ बलवन्तं कफव्याघ्रं हस्त्रासादि निषे-

दितम् ॥ तथा वमनसात्म्यञ्च धीरचित्तञ्च वाम-

येत् ॥ ३७६ ॥ विषदोषे सन्त्यरोगे मन्देऽग्नौ प्लीप-

देऽर्बुदे ॥ हृद्रोगे कुष्ठवीसर्पे मेहाजीर्णे अमेषु च ॥

विदारिका पचीकास श्वासपीनस वृद्धिषु ॥ अपस्मा-

रे ज्वरोन्मादे तथा रक्तानिसारिषु ॥ ३७८ ॥ नासांता-

लोष्ठ पाकेषु कर्णोत्सावेऽधि जिह्वके ॥ गलश्रुगङ्गा

मतीसारे पित्तप्लेष्म गदे तथा ॥ ३७९ ॥ मेदोगे

देऽरुचौ चैव वमनं कारयेद् भिषक् ॥

भा० सांवा चना आदिसे और मगर खल सत्त्व इनसे करे ॥ दीप्त अग्नि शुद्ध कोष्ठ धातुपुष्ट दृढेन्द्रिय ॥ ३७२ ॥ निर्जर बल धर्मासे युक्त स्नेह सेवन करले वाला मनुष्य होता है ॥ स्नेहमें व्यायाम वज्रत अग्नि वेगोंका रोकना रक्तको जागना ॥ ३७३ ॥ तिनमें सोना अभिव्यन्दि रूक्ष अन्न इनको त्याग देवे ॥

[अनन्तर पंचकर्म] पहिले वमन पीछे विरेचन अनुवासन ॥ निरूढ व स्ति नस्य येह पंच कर्म हैं ॥ ३७४ ॥ [अनन्तर वमनविधिः] शरत् कालमें वसन्तमें और प्रावृट् कालमें भी मनुष्योंको ॥ वमन विरेचन कुणालवेद्य करावे ॥ ३७५ ॥ बलवाने कफसे व्याप्त हस्त्रास आदिसे पीड़ित इनको ॥ तथा वमनसात्म्य और धीरचित्तवाले को वमन करावे ॥ ३७६ ॥ विषदोष सन्त्यरोग मन्दाग्नि प्लीपद अर्बुद हृन्मे ॥ और हृद्रोग में कुष्ठमें वीसर्प प्रमेह

अजीर्णं भ्रम-इनमें भी ॥ ३७७ ॥ तथा विदारिका अपचीकास श्वाव पीनस अण्ड
वृद्धि इनमें ॥ अपस्मार में ज्वर उन्माद तथा रक्तातिसार इनमें ॥ ३७८ ॥ और
नाक तालु होठ इनके पाक में कर्णस्त्राव में अधि जिह्वक में ॥ गल प्युंडी अती
सार तथा पित्तकफ के रोग ॥ ३७९ ॥ मेदरोग अरुचि में भी वैद्य वमन करावे ।
(दुग्ध दूध पीने से उत्पन्न ज्वरे वालक के रोग में भी वमन करावे ।)

(स्तन्यरोगे दुग्ध दुग्ध जनिते बालस्य रोगे)

न वामनी यस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशाः ॥ नातिवृ
द्धी गर्भिणी च न स्थूलो न क्षतातुरः ॥ ३८० ॥ मदार्तो
बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरुहिनः ॥ उदावर्त्यूर्द्ध
रक्ती च दुग्धार्थः केवलानिली ॥ ३८१ ॥ पाराङ्ग रोगी
कृमीव्याप्तः पठनात् स्वरघातवान् ॥ एतेऽप्यजीर्ण
व्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः ॥ ३८२ ॥ कफ व्या
प्ताश्च ते वाम्या मधुकक्काय पानतः ॥

भा० निमिर रोग वाला गुल्म रोग वाला उदर रोग वाला कृश ॥ अतिवृद्ध गर्भिणी
स्थूल क्षतातुर ॥ ३८० ॥ मद पीडित बालक रूक्ष क्षुधित निरुहस्ति लियाङ्गवा
॥ उदावर्ण वाला ऊर्द्ध रक्त वाला और केवल वातरोग वाला इनको वमन न देवे ॥
३८१ ॥ पाराङ्ग रोग वाला कृमिसे व्याप्त पठने से स्वरघात हुआ ॥ ये ह अजीर्ण से पी
डित हैं नी भी वमन करानी चाहिये और जो विष से पीडित हैं वे भी वमन कराने चा
हिये ॥ ३८२ ॥ कफ ने व्याप्त ज्वरे मज्जवे के कट्टे के पान से वमन कराने चाहिये ॥
(क) ऊर्द्ध रक्ती यस्य नासालिकाणीस्य मार्गे रक्ते प्रवर्तते सः ।

भुक्त रूक्ष ककीश द्रव्यादम्भार्थः मधुकस्थाने मधुकेति
द्वितीयः पाठः ।

संकुमारं कृशम्बालं वृद्धं भीरुञ्च वामयेत् ॥ पाय
यित्वा यवागूं वा क्षीरं नक्र दधीनि च ॥ ३८३ ॥

असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दीवानुत्क्षेप्य देहिनाम् ॥
स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक् प्रवर्त्तते ॥ ३८४ ॥
वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधुवाहितम् ॥ वीभत्सं व
मनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥ ३८५ ॥

(वीभत्सम् अरुच्यं विपरीतम् रुच्यम् ।)

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं स्वपयित्वा जलाढके ॥ अर्द्ध-
भागावशिष्टञ्च वमनेष्ववधारयेत् ॥ ३८६ ॥ क्वा
थपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता ॥ मध्यमा
परिमता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ ३८७ ॥ वम
ने च विरेके च तथा प्रोक्तानि मोक्षणी ॥ अर्द्धत्रयोद
शपलं प्रस्थमाहुर्मेनीषिणः ॥ ३८८ ॥

(अर्द्धत्रयोदशपलं सार्द्धं षट्कम्)

भा० (क) जिसके नाक आंख कान मुख इन मार्ग से रक्त निकलता है वो
ह । खाया रखा कर्कश ऐसा ब्रज्य वुः चखे है । मधुक को जगह में मधुक
ऐसा दूसरा पाठ है । सुकुमार कृश बालक बृद्ध भीरु इनको ॥ यवायू अथ
वा दध मठा दही इनको पिलाकर वमन करावे ॥ ३८३ ॥ गवुथों के दोषों को
असात्म्य कफकारी भोजनों से उखेड़कर वमन करावे ॥ स्निग्ध स्विन्न वाले
को वमन दिया जवा अच्छी तरह होता है ॥ ३८४ ॥ सब वमनों में अथवा
मधु येह हित है ॥ स्त्रा में स्त्राच वमन देवे और स्वाद में अच्छा विरेचन देवे
॥ ३८५ ॥ अरुचि को करने वाला । और रुचि को करने वाला । कढ़ी की पाव
भर दवा को चार सेर पानी में भिजोयकर ॥ बीटा के आधा पानी वाकी रहे
को वमन में देवे ॥ ३८६ ॥ क्वाथ पाव में नौ सेर बड़ी मात्रा कही है ॥ और
मध्यम मात्रा छ सेर की कही है तथा हीन मात्रा तीन सेर की कही है ॥ ३८७ ॥
वमन में विरेचन में तथा फल में सार्द्ध छ पल का सेर मुनियों ने कहा है ॥ ३८८
(सार्द्ध छ पल)

कल्क चूर्णावलेहानां त्रिपलं मात्रयोत्तमम् ॥ मध्यमं
 द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥ ३८६ ॥ वमने
 चाष्टवेगास्त्युः पित्तान्ता उत्तमास्तु ते ॥ षड्वेगा मध्य
 मा वेगा चत्वारस्त्वपरे मताः ॥ ३८७ ॥ कफं कटुक
 तीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादु हिमैर्जयेत् ॥ सस्वादु लव-
 णाश्लोषैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ ३८९ ॥

भा० कल्कचूर्ण अवलेह इनकी मात्रा उत्तम तीन पल है ॥ मध्यम दो पल औ
 र हीन पल भरकी होती है ॥ ३८६ ॥ वमन में पित्तान्त आठ वेग जो होते हैं
 वोह उत्तम है ॥ और छ वेग मध्यम तथा चार वेग हीन हैं ॥ ३८७ ॥ कफ को कटु
 तीक्ष्ण इनसे पित्त को मधुर शीतल से जीते ॥ मधुर के सहित अन्न उष्ण इन से
 वात मिले जवे कफ को जीते ॥ ३८९ ॥

कृष्णां कटुफलं सिन्धुं च कफे कोष्णाजलैः पिवेत् ॥
 पटेल वासा निम्बाश्च पित्ते शीतजलैः पिवेत् ॥ ३८२ ॥
 (कटुफलं मयनफलम्) सप्लेष्म वात पीडायां
 सत्तीरं मदनं पिवेत् ॥ अजीर्ण कोष्णापानीयं सिन्धुं
 पीत्वा वमेत्सुधीः ॥ ३८३ ॥ (मदनं मयनफलम्)
 वमनं पाययित्वा तु जानुमात्रासेन स्थितम् ॥ कराठमे
 राड नालेन स्पृशन्तं वामयेद्विषक ॥ ३८४ ॥ प्रसेको
 हृद्ग्रहः कोठः कराडु दुग्धछर्दिने भवेत् ॥ अतिवान्ने
 भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गरो विसंज्ञता ॥ ३८५ ॥ जिह्वा निः
 सरां चाक्षोर्ब्या वृत्ति हनु संहितः ॥ रक्तछर्दिः शीव
 नञ्च कराठपीडा च जायते ॥ ३८६ ॥

भा० पीपल कायफल सेन्धव दूधको कफमें सील गरम जलसे पीवे ॥ पटोल वा
सा निम्ब दूधको पित्तमें शीतल जलसे पीवे ॥ ३६२ ॥ (मैत्रफल) कफ के
सहित वातकी पीडामें दूधके सहित मैत्रफल को पीवे ॥ ३६३ ॥ अजीर्ण में
सेन्धव सील गरम पानी से पीकर वमन करे ॥ मयनफल । वमन द्रव्यको
पिलाकर घुटने से बैठकर ॥ कठको अंडीके नालमें स्पर्श कराकर वमन करा
वे ॥ ३६४ ॥ प्रसेक हृद् ग्रहकोड खुनली यह लक्षण दुच्छर्दित में होता है
॥ अतिबान्तमें नृषा हिचकी डकार विस्रजता ॥ ३६५ ॥ जीभ का निकलना ने
त्र पीडा आंखोंका निकलना मुखका खुला रहना ॥ रक्त की छवि धूक कठमे
पीडा । यह लक्षण होने है ॥ ३६६ ॥

(हनु संहतिः हन्वो रमिलनम्) वमनस्याति योगे

नु मृदुः कुर्याद्विरेचनम् ॥ वमनेन प्रविष्टायां जिह्वा

यां कवलः ग्रहः ॥ ३६७ ॥ स्निग्धान् लवणैर्युक्तैर्घृत

क्षीर रसेर्हितैः ॥ (रसेर्मांसरसैः) फलान्यन्धानि

खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः ॥ ३६८ ॥ निःसृतान्तु

तिलव्राक्षा कल्क लिप्तां प्रवेशयेत् ॥

(निःसृतां जिह्वां) व्यावृत्तेऽक्षिण घृताभ्यक्ते पीड

नञ्च शनैः शनैः ॥ हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यञ्च श्ले-

ष्म वातहत ॥ ३६९ ॥ रक्तपित्त विधानेन रक्तछीव मु-

पाचरेत् ॥ धात्री रसाज्जनो प्रारि लाजाचन्दन चारिभिः

॥ ४०० ॥ मन्यं कृत्वा पाययेच्च सघृतं क्षौद्र शर्करम् ॥

भा० शवाङ्गिका नमिलना । वमन के भनियोगमें मृदु विरेचन करे ॥ वमन कर
के प्रविष्ट जिह्वामिकवलग्रह ॥ ३६७ ॥ विकला और लवण इनकारके दूध
घृत क्षीर रसाइन करके देवे ॥ रस अर्थात् मांसरस । खट्टे फलोंको खावे उस
के पहले ॥ ३६८ ॥ और निःसृतको निनद्राजा वैवस्वा से भी निद्राको गीतकी

व्याघ्र नेत्रमें घृतसे अभ्यक्त को धीरे दवावे ॥ हनुमोक्ष में स्वेद कहा है और नास कफघातका नाशक ॥ ३६६ ॥ रक्तपिल विधानसे रक्तपीव का उपचार करे ॥ आंवले रस वनखस खीला चन्दन सुगन्धवाला इनसे मन्थ ॥ करके घृत मधु अर्करा इनके साथ पिलावे ॥

शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्या रोगाच्छर्हि समुद्भवाः ॥ ४०१ ॥
हृत्कराण शिरसां शुद्धिर्दीप्ताग्नि त्वञ्च लाघवम् ॥ क
फ पित्त विनाशश्च सम्यग्वान्तस्य लक्षणम् ॥ ४०२ ॥
ततोऽपराह्णे दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिकं शालिभिः ॥ हृद्यैश्च
जाङ्गलरसैः कृत्वा यूषञ्च भोजयेत् ॥ ४०३ ॥ तन्द्रा नि
द्रास्य दौर्गन्ध्यं कराङ्गञ्च ग्रहणीं विषम् ॥ सुवान्तस्य
न पीडाये भवन्त्येते कदाचन ॥ ४०४ ॥ अजीर्णं शीत
पानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ॥ स्नेहाभ्यङ्गञ्च रोषञ्च
दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ४०५ ॥

[इति वमनाधि कारः]

भा० वृत्ते तृषा आदिक रोग वमनसे उत्पन्नहवे श्मन होते हैं ॥ ४०१ ॥
हृदय कराण शिर इनकी शुद्धि दीप्त अग्नि हलकायन कफ पित्तका नाश
येह अच्छी तरह वमन किये हवेका लक्षण है ॥ ४०२ ॥ उसके अनन्तर
अपराह्ण कालमें दोन अग्निवाले को भूंग सारी चावल हृद्य जांगलरस से म
स करके भोजन करावे ॥ ४०३ ॥ तन्द्रा निद्रा मुखकी दुर्गन्धना खुजली संम
हणी विष ये ॥ सुवान्त के पीडाके अर्थ कदाचित् भी नहीं होते ॥ ४०४ ॥ अ-
जीर्ण शीतल नल कसरत तथा मैथुन नेलका लगाना क्रोध इनकी एक
दिन छोड़ देवे ॥ ४०५ ॥ [इति वमनाधिकारः]

[अथ विरेचन विधिः]

स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय दद्यात्सम्य विरेचनम् ॥

अवान्तस्य त्वधःस्वस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥ ४०६ ॥

मन्दाग्निं गौरवं कुर्व्या ज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ॥ अथ-

वा पाचनैः रामं बलासं परि पाचयेत् ॥ ४०७ ॥ अतौ

वसन्ते शरदि देह शुद्धौ विरेचयेत् ॥ अन्यदात्ययि

के कार्य्ये शोधनं शीलयेद्बुधः ॥ ४०८ ॥

भा० अनन्तर विरेचनकी विधि ॥ स्निग्धि स्निग्धवान्तके अर्थ अच्छीतर
ह विरेचन देवे ॥ अनन्तर वमन लिये कानीचे, जुवा कफ ग्रहणी को दक
देता है ॥ ४०६ ॥ मन्दाग्नि भारीपन इनको करता है ॥ और प्रवाहिका को क
रता है अथवा पाचनोंसे आम और कफ इसको पकावे ॥ ४०७ ॥ वसन्त
और शरदमें देह शुद्धि के अर्थ विरेचन लिवावे ॥ और अवश्यक कार्य्य में
शोधनको करावे ॥ ४०८ ॥

(आन्त्ययिके प्राणसङ्कटे)

पित्ते विरेचनं युज्या दामोद भूते गदे तथा ॥ उदरे च

तथाध्माने कोष्ठशुद्धौ विशेषतः ॥ ४०९ ॥ दोषाः कदा

चित्कुप्यन्ति जिता लङ्घन पाचनैः ॥ शोधनैः शोधि

ता ये तु ननेषां पुनरुद्भवः ॥ ४१० ॥ बालो वृद्धो भृशं

स्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः ॥ आनस्तृषार्तः स्थू

लश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥ ४११ ॥ नवप्रसूता नारी

च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ॥ शाल्यार्दितश्च रुक्ताश्च

न विरेच्या विज्ञानता ॥ ४१२ ॥

भा० (प्राण संकट में) । पित्तमें तथा आमके रोग में विरेचन न देवे ॥ और उ
दर में तथा आध्मानमें विशेष करके कोष्ठ शुद्धिमें विरेचन देवे ॥ ४०९ ॥
लंघन पाचन औषधिसे दूर हुवे दोष कंदाचिन् फिरसे हो भाते हैं ॥
और जो शोधनसे शुद्ध किये जाते हैं वे फिरसे नहीं होते ॥ ४१० ॥ बालक

वृद्ध अत्यन्त स्निग्ध क्षत क्षीण भययुक्त ॥ श्रान्ति तृषासे पीडित स्थूल गोभरणी
नवज्वर वाला ॥ ४११ ॥ नव प्रसूत स्त्री मन्दाग्निवाला भवत्ययवाला ॥
शूलसे पीडित और रुद्ध येह जानने वालेके द्वारा विरेचन देनेके योग्य नहीं है
॥ ४१२ ॥ जीर्णज्वरी गरव्याप्तौ वातरोगी भगन्दरी ॥ अर्शः

पाण्डुर ग्रन्थि हृद्भोगारुचि पीडिताः ॥ ४१३ ॥

योनिरोग प्रमेहार्ती गुल्मस्त्रीह ज्वराद्विहितः ॥ विद्र-

धिच्छर्दि विस्फोट विसृची कुष्ठसंयुताः ॥ ४१४ ॥

कर्णनासा शिरो वक्त्र गुद मेढ्रा मयान्विताः ॥ स्त्रीह

शोथान्ति रोगार्तीः कृमिद्वारा निलार्हिताः ॥ ४१५ ॥

शूलिनो मूत्रघातार्ती विरेकार्हा नरा मताः ॥ चह्र पि-

त्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः ॥ ४१६ ॥ बहु-

वात क्रूर कोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते ॥ मृद्वीमात्रा मृ-

दो कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमाः ॥ ४१७ ॥ क्रूर तीक्ष्णा

मता द्रव्यै मृदु मध्यम तीक्ष्णकैः ॥

भा० जीर्णज्वर वाला विषसे व्याप्त वातरोग वाला भगन्दर वाला ॥ ववासीर
पांडुरोग उदरगांठ हृद्भोग अरुचि इनसे पीडित ॥ ४१३ ॥ योनिरोग प्रमेह से
पीडित वायुगोला पिलही ज्वरा से पीडित ॥ विद्रधि वमन विस्फोट विसृचि कुष्ठ
इनसे युक्त ॥ ४१४ ॥ कान नाक शिर मुख गुदा लिंग इनके रोगोंसे युक्त ॥
पिलही स्त्रजन नेत्ररोग इनसे पीडित कृमि क्षार वात इनसे पीडित ॥ ४१५ ॥
शूलवाले मूत्रघात से पीडित ये मनुष्य विरेचन देनेके योग्य है ॥ अधिक पित्त
वाला मृदुकोष्ठ कहा है और अधिक कफ वाला मध्यकोष्ठ तथा अधिक वात
वाला क्रूर कोष्ठ होना है वोह दुर्विरेच्य कहा है ॥ मृदुकोष्ठ में मृदुमात्रा मध्य
कोष्ठ में मध्यमात्रा ॥ ४१७ ॥ क्रूर कोष्ठ में तीक्ष्णमात्रा मृदु मध्य तीक्ष्ण द्रव्यों
से कही है ॥

मृदुद्राक्षा पयश्चञ्चु तैलेरपि विरिच्यते ॥ मध्यमस्त्रि-
वृतातिक्ता राजवृक्षैर्विरिच्यते ॥ क्रूरार्क पयसा हेमक्षी-
री दन्ती फलादिभिः ॥ ४१६ ॥

(क) चञ्चु तैलम् ऐरगड तैलम् । राजवृक्षः । घनबहेरा ।
हेमक्षीरी । चोक । दन्तीफलम् । वृहदन्ती फलम् । जय-
पालेति प्रसिद्धम् ॥

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः फलान्तकः ॥ वेगं
विंशति भिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥ ४२० ॥

भा० मृदुकोष्ठ वालेको दारु वृध अंडीकानेल इनसेभी दस्त होने हैं ॥ ४१८
मध्यकोष्ठ को निसोथ कुदकी अमलतास इनसे दस्त आने हैं ॥ क्रूरकी आं-
क के दूधसे और चोक जमालगोटा आदिसे दस्त होने हैं ॥ ४१९ ॥

(क) अंडीकानेल । अमलतास । चोक । वडा जमालगोटा । शुल्लान की
उत्तसमात्रा तीसंदस्तोंसे होती है । वोह कफ नाशक होती है । चीस दस्तों से
मध्यम और दससे हीन मात्रा कही है ॥ ४२० ॥

द्विपलं श्लेष्ममारब्धा तं मध्यमं व पलं भवेत् ॥ पला
र्द्धे च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम् ॥ ४२१ ॥ क-
ल्क मोदक चूर्णानां कर्ष मध्वाज्यलेहतः ॥ कर्षं ह
यं पलं वापि वयो रोगाद्य पेक्षया ॥ ४२२ ॥ पित्तोत्तरे
त्रिवृच्चूर्णां द्राक्षाकाथा दिभिः पिबेत् ॥ त्रिफला का-
थ गोमूत्रैः पिबेद्योषं कफार्दितः ॥ ४२३ ॥ त्रिवृत्से-
न्धव शुरादीनां चूर्णमक्षैः पिबेन्नरः ॥ वातादिभ्यो
विरेकाय जाङ्गलानां रसेन वा ॥ ४२४ ॥ ऐरगड तैलं
त्रिफला काथेन द्विगुणेन वा ॥ युक्तं पीतं पयोभिर्वा

न चिरेण विरिच्यते ॥ ४२५ ॥
 (शीघ्रमेव विरिच्यत इत्यर्थः) त्रिवृता कौटजं बीजं
 पिप्पली विश्वमेधजम् ॥ समृद्धीका रसंक्षौद्रं वर्षा
 काले विरेचनम् ॥ ४२६ ॥ त्रिवृदुरालभा मुस्तशर्क-
 रोदीच्य चन्दम् ॥ द्राक्षास्त्रुना सयष्ट्याह्व शीतलज्व
 घनात्यये ॥ ४२७ ॥ (उदीच्यम्बाला घनात्यये शरदि)

भा० कषायों की मात्रा उत्तम दोपल मध्यम पलभर और ह्रीन आधापल जल्ला
 वकी दयार्मि होती है ॥ ४२१ ॥ कल्क मोदक चूर्ण इनकी तैलाभर मधु घृत
 मिलाके ॥ दो तोले या चार तोले वयरोग आदिकी अयेसा से देवे ॥ ४२२ ॥ पित्त
 धिकमें निसोथका चूर्ण दाख के कादेके साथ पीवे ॥ कफ से पीडित त्रिकुटाके
 चूर्ण को त्रिफलाकाथ और गेमूत्रके साथ पीवे ॥ ४२३ ॥ वातादित मनुष्य वि-
 रेचन के निसोथ सेन्धा सौठ इनका चूर्ण अम्लके साथ पीवे अथवा जाङ्गल मा-
 स इसके साथ पीवे ॥ ४२४ ॥ अथवा असर्दीके तेलकी दुगने त्रिफलाके कफि
 से ॥ अथवा इधके साव पीनेसे शीघ्रदस्त होते हैं ॥ ४२५ ॥ निसोथ चन्द्रजव
 पीपल सौठ ॥ और मुनक्का इनका रस मधुके साथ वर्षाकाल में विरेचन देवे ॥ २६
 ॥ निसोथ जवासा मागरसोथा शर्कर सुगन्धवाला चन्दन ॥ दाख के रससे मुत्तेह
 ठीके सहित वीरगामूल इनको शरदकाल में देवे ॥ ४२७ ॥

(सुगन्धवाला शरद में ।)

पिप्पली नागर सिन्धु श्यामां त्रिवृतया सह ॥ लि-
 ह्यात् क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् ॥ ४२८ ॥
 (श्यामा कृष्णा शरद) त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मका-
 ले विरेचनम् ॥ अभया मरिचं शुण्ठी विडङ्गामलका
 निच ॥ ४२९ ॥ पिप्पली पिप्पलामूलं त्वकपत्रं मुस्त-
 मेवच ॥ एतानि सम भागानि दन्ती तु त्रिगुणा भवेत्
 ॥ ४३० ॥ त्रिवृताष्ट गुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥

भा० पीपल सोंठ सुफेद सुहागा काली निसोथ के साथ चूर्ण करके मधुके साथ पिशिर में और बसेल में भी जुलाब देवे ॥ ४२९ ॥ निसोथ पाकर बराबर इनको ग्रीष्म में देवे ॥ हड़ मिरच सोंठ वायबिड़ंग आवले ॥ ४३० ॥ पीपल पीपलामूल तज पत्रज नागर मोथा ॥ इनकी समभाग और दन्ती तिगुनी ॥ ४३१ ॥ निसोथ अठगुनी और इसमें छ गुनी शकर ॥

मधुना मोदकान् कृत्वा कर्षमात्रान् प्रमाणातः ॥ ४३२ ॥

कैकं भक्षयेत्प्रातः शीतज्वानु पिवेज्जलम् ॥ ताव-

द्विसिच्यते जन्तु र्यावदुपां न सेवते ॥ ४३३ ॥ पानाहार

विहारेषु भवेन्निर्यन्त्रणः सदा ॥ विषमज्वर मन्दा

ग्नि पाराडुकास भगन्दरान् ॥ ४३४ ॥ पृष्ठपार्श्वीरु

जघन जङ्घादर रुजं जयेत् ॥ स्नेहा म्यङ्गञ्च रोषञ्च

दितमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ४३५ ॥ सततं शीलना देव

पलितानि प्रणाशयेत् ॥ अभया मोदकाद्येते रसाय

नवराः स्मृताः ॥ ४३६ ॥

[इति अभयादि मोदकः]

भा० चेकर मधुकेसाद्य कर्ष प्रमाण मोदक करके ॥ ४३२ ॥ एक २ प्रातः काल खावे और पीछे से शीतलजल पीवे ॥ नवतक दस्त आते हैं जयतक मनुष्य उपाजल नहीं सेवन करता ॥ ४३३ ॥ खान पान विहार में सदा पथ्यसे रहे ॥ विषमज्वर मन्दाग्नि पाराडुरोग कास भगन्दर इनकी ॥ ४३४ ॥ और पीठ पसली छाती कटिदेश जांघ उदर इनकी पीडा की जीनता है ॥ नैल लगाना और क्रोध इनकी बुझवान् एकदिन त्याग देवे ॥ ४३५ ॥ निरन्तर सेवन करने से ही बालों की सुफेदी दूर होती है ॥ ये छ रसायन में श्रेष्ठ अभया मोदक कहा है ॥ ४३६ ॥ इति अभयादि मोदक ॥

पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चतुष्पथी ॥ सुगन्धि किञ्चिदाघ्राय ताम्बूलं शीलयेद्बुधः ॥ ४३७ ॥

निर्वानस्थो न वेगांश्च धारयेन्न शयीत च ॥ शीताम्बु
न स्पृशेत्कापि कौषाणीरं धिवेन्मुहुः ॥ ४३७ ॥ बला
सौषधपित्तानि वायुर्वान्ते यथा व्रजेत् ॥ रेकात्तथा
मलं पित्तं भेषजञ्च कफो व्रजेत् ॥ ४३८ ॥ दुर्विस्त
स्य नाभेस्तु स्तब्धता कुक्षिशूलरुक् ॥ पुरीषवातस
ङ्गश्च कण्डू मण्डल गौरवम् ॥ ४३९ ॥ विदाहोऽरु-
चिराध्मानं श्रमश्छर्दिश्च जायते ॥ तं पुनः पाचनैः
स्नेहैः पक्वा स्निग्धन्तु रेचयेत् ॥ ४४० ॥ तेनास्याप
द्रवा यान्ति दीप्ताग्नि लघुता भवेत् ॥ विरेकस्याति
योगेन मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च ॥ ४४१ ॥ शूलं कफा
तियोगः स्यान्मांस धावन सन्निभम् ॥ मेदो निभञ्ज
स्नाभासं रक्तञ्चापि विरिच्यते ॥ ४४२ ॥ तस्य शीता-
म्बु मिः सिक्का शरीरं तराडुलाम्बु मिः ॥ मधु मिश्रे
स्तथा शीतैः कारयेद्दमनं मृदु ॥ ४४३ ॥

भा० जुल्लाव की दवा को पीकर ठंडे पानी से आँखों को छुपके देकर ॥ थोड़ी
सी सुगन्ध वस्तु को सूँघकर पान करावे ॥ ४३६ ॥ निर्वान स्थान में रहें और हस्तों
को नरोके और सेवि भी नहीं ॥ शीतल जल को कहीं पर भी न छूवे गरम सील
जल को वार २ पीवे ॥ ४३७ ॥ जैसे वमन में कफ औषध पित्त वायु निकल
ते हैं ॥ वैसे दस्त से मल पित्त और औषध तथा कफ ये सभी निकलते हैं ॥
४३८ ॥ अच्छे जुल्लाव न डूबे के नाभ में स्तब्धता कूख में शूल पीड़ा ॥ मलवात
सङ्ग खजली चकते भारी पन ॥ ४३९ ॥ विदाह अरुचि आध्मान श्रम वम
न ये होतें हैं ॥ उसको फिर से पाचन स्नेह द्रव्यों से पकाकर स्निग्ध ज्वे को
दस्त करावे ॥ ४४० ॥ उस करके इसके उपद्रव दूर होते हैं और दीप्ताग्नि हल
का पन होता है ॥ वज्र न दस्तों के होने से मूर्च्छा गुद भ्रंश ॥ ४४१ ॥ शूल कफ

का अतियोग मांस के धीवन के समान ॥ और भस्म के समान जलसा तथा रक्त भी दस्त में निकलता है ॥ उसका शरीर शीतलजल से सींच कर शीतल चावल के जल के मधु मिलाके उससे तथा शीतलजल वस्त्र से स्रुव वसन करावे ॥ ४४३ ॥

सहकारं त्वचः कल्को दध्ना सौवीर केन च ॥ पिष्ट्वा नाभि
प्रलेपेन हन्त्यतीसार सुल्बणाम् ॥ ४४४ ॥ सौवीरं तु
यवैरामैः पक्कैर्वा निस्तुं पीकृतैः । (सौवीरं सन्धानम्)
अजादीरं रसञ्चापि वैष्किरं हरिणं तथा ॥ प्रालिभिः
षष्टिकैस्तुल्यै मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥ ४४५ ॥ वर्तिका-
लाव विकर कपिञ्जलक तित्तिराः ॥ चकोर क्रकरा
द्याश्च विष्किराः समुदाहृताः ॥ ४४६ ॥ कपिञ्जल
इति ख्यातो लोके कपिशतित्तिराः ॥

क्रकरः । कराट इति लोके । हरिणस्ताम्रवर्णः स्यान्मृगः ।

भा० आमकी छालका कल्क वही अथवा सौवीरक के साथ पीसकर नाभि पर लेप करने से सुल्बण अतीसार नाश होता है ॥ ४४४ ॥ वैष्किर के कच्चे बाप के जवों से काँजी के समान जो किया जाता है उसको सौवीर कहते हैं ॥ व-
करीका दूध बंदर आदिका रस तथा हरिण आदिका रस ॥ साठी चावलों के साथ अथवा मसूर की दाल के साथ भोजन करावे ॥ ४४५ ॥ बंदर लवाविकि
र भूरे रंगका तीतर तीतर ॥ चकोर कराट आदि येह विष्किर कहे हैं ॥ ४४६ ॥
भूरे रंगके तीतर को लोकमें कपिञ्जल कहते हैं) कराट । हरिण लाल रंगका होता है ।

शीतैः संग्राहिभिर्द्रव्यैः कुर्यात्सं ग्रहणं भिषक् ॥

लाघवे मनसस्तथा वनु लोमङ्गन्तेऽनिले ॥ ४४७ ॥

सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥ इन्दि-

याणां बलं बुद्धेः प्रसादी बन्धि दीप्तिता ॥ ४४८ ॥

धातु स्थैर्यं वयस्थैर्यम्भवेद्रे च न सेवनात् ॥ प्रता
पसेवां शीताम्बु स्निहाभ्यङ्ग मजीरिताम् ॥ ४४६ ॥
व्यायामं मैथुनञ्चैव न सेवेत विरेचितः ॥ शालि
षष्टि कंसुझाद्यै र्यवागूम्भोजयेत् कृताम् ॥ ४४७ ॥
जङ्गल विष्किरणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥
हरिणैरा कुरङ्गै र्य चातायु मृगमात्रकाः ॥ ४४८ ॥

भा० हलकापन चित्रकी प्रसवना वानका अनुलोमन इस प्रकार के
लक्षण होनेमें ॥ शीतल संग्राहि औषधी से वैद्य संग्रहण करे ॥ ४४७ ॥
अच्छी तरह दस्तद्वे मनुष्य को जानकर सायंकाल में पाचन पिलावे ॥
॥ बुद्धियों का बल बुद्धि की स्वच्छता अग्नि की दीप्तिता ॥ ४४८ ॥ धातु की
स्थिरता वय को स्थिरता यह विरेचन के सेवन से होता है ॥ धूप सेवा शी
तल जल चिकनाई तैल का लगाना अजीर्णता ॥ ४४९ ॥ कसरत मैथुन
इनकी विरेचन लियाङ्गवा न सेवन करे ॥ साठी चावल मूंग आदि से य
वागू को बनाकर भोजन करावे ॥ ४५० ॥ हिरण अथवा बंदर अदियों
के मांस रस से चावल हिन है ॥ हिरण एण कुरंग वानायु मृग मादक ॥ ४५१
राजीवः पृषतश्चैव जङ्गलाः शरभादयः ॥

[अथ स्निहवस्ति विधिः] वस्तिर्द्विधानु वासारव्यो नि
रुहश्च ततः परम् ॥ यः स्निहा दीयते सः स्यादनु वा-
सननामकः ॥ ४५२ ॥ कषायदीर तैले र्यो निरुहः
स निगद्यते ॥ वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्ति रि-
ति स्मृतः ॥ ४५३ ॥

(वस्तिभिः मृगादीनां सूत्राण्यैः) तत्रानु वासना
ग्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते ॥ अनुवासन भेद
श्च मात्रा वस्तिरुदीरितः ॥ ४५४ ॥ पलद्वयन्तस्य

मात्रा तस्मादर्द्धापि वा भवेत् ॥ अनुवास्यस्तु रुक्षः
 स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥ ४५५ ॥ नानुवास्य
 तु कुशी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ॥ नास्थाय्या ना
 नुवास्याश्च जीर्णान्माद नृद्धिर्दिताः ॥ ४५६ ॥ शो-
 थ मूर्च्छीरुचि भय श्वास कास क्षयातुराः ॥ नेत्रं
 कार्थ्यं सुवर्णादि धातुभिर्दृष्ट वेणुभिः ॥ ४५७ ॥

भा० राजीव पृथक् और शरभ यह मृगके भेद हैं इनका खुलासा मांस व
 र्ग में देखलेना ॥ [अनन्तर स्नेहवस्ति की विधि ।]

वस्ति याने इनका यह दो प्रकारकी होती है अनुवासन और निरुद्ध जो
 तैलादिक दियेजाते हैं वोह अनुवासन नाम वस्ति है ॥ ४५२ ॥ काढ़ा दूध
 तेल इनसे जो दिया जाता है उसको निरुद्ध कहते हैं ॥ जिस कारण वस्तिके
 द्वारा दिया जाता है इसवास्ते उसको वस्ति कहा है ॥ ४५३ ॥ वस्ति अर्थात्
 मृदाशय ॥ उसमें अनुवासन नाम वस्ति उसको यहाँपर कहते हैं ॥ अनुवा-
 सन का भेद मात्रा वस्ति कही है ॥ ४५४ ॥ उसकी मात्रा दो पलकी और आ-
 धी भी होती है रुखा तीक्ष्ण अग्नि वाला और केवल वातरेग वाला यह अनु-
 वासन वस्तिके योग्य है ॥ ४५५ ॥ कुष्ठ रोग वाला प्रमेहवाला स्थूल नद्या
 उदर रोगवाला ॥ यह आस्थापन वस्तिके योग्य नहीं है और न अनुवासन व-
 स्तिके योग्य है ॥ और जीर्ण उन्माद तथा वनसे पीड़ित ॥ ४५६ ॥ तथा स्त-
 जन मूर्च्छा अरुचि भय श्वास कास क्षय इनसे पीड़ित येह भी आस्थापन औ-
 र अनुवासन के योग्य नहीं हैं ॥ नली सुवर्णादि धातुओं की अथवा वांस
 की करनी चाहिये ॥ ४५७ ॥

नले दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते ॥

(नेत्रं नाडी तथा चोक्तं विश्वप्रकाशे)

नेत्रं मन्थगुरो वस्त्रे तरुमूले विलोचने ॥ नेत्रबन्धे

च नाड्याञ्च नेत्रे नेतरि मध्यम् ॥ ४५८ ॥ एकव-

र्णांतु षड्विंशदयावन्मानं षडङ्गुलम् ॥ नतो हा

दशकं यावन्मानं स्यादष्टसन्निभम् ॥ ४५६ ॥ ततः
परं द्वादशभिर्ङ्गुलैर्नेत्रदीर्घता ॥ मुखच्छिद्रं कला-
यामं च्छिद्रं कोलास्थि सन्निभम् ॥ ४६० ॥ यथा स-
ङ्गां भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छ सन्निभम् ॥ गोपुच्छ
सन्निभं मूले स्थूलं तस्मात् क्रमात्कशम् ॥ ४६१ ॥

(क) मुखच्छिद्रादि प्रमाणं नेत्रं क्रमेण षड्वर्षा यद्वा द-
शवर्षाय नदूद्धं वर्षाय श्रेयम् ॥

आतुराङ्गुष्ठमानेन मूले स्थूलं विधीयते ॥ कनि-
ष्ठिका परीणाह मये च गुटिका मुखम् ॥ ४६१ ॥

(परिणाहोऽत्र स्थौल्यम्)

तन्मूले करिणके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थकात् ॥

(करिणिका गवादिकर्णवत्) योजयेत्तत्र वस्तिञ्च
बन्धद्वयविधानतः ॥ मृगाजशूकरगवां महिष-
स्यापि वा भवेत् ॥ (वस्तिरिति शेषः)

भा० मर्कटज्ञानसिंह अथवा मणि इनकी बनावि ॥ नेत्र अर्थात् नली
उस प्रकार कहा है विश्व प्रकाशमें ॥ मथानी की रस्सी वस्त्र वस्त्र की ज-
ड़ और ॥ आरवों की पट्टी नली और पेशवाह इतने अर्थ नेत्र शब्द के हैं ऐसा
विश्व प्रकाशमें कहा है ॥ ४५८ ॥ एक वरस से छ वरस तक छ अंगुल मलीका
प्रमाण कहा है ॥ उसके ऊपर बारह वरस तक आठ अंगुल की कही है ॥ ४५६
उसके ऊपर बारह अंगुल की लंबाई होनी चाहिये नली की ॥ मुखका छिद्र म-
र की बराबर या जरबरी के बराबर ॥ यथा संख्य नेत्र साफ न लगाव डुम हो-
वे ॥

(क) जड़में मोटा उस क्रमसे पतला ॥ मुखके छिद्रादिक का प्र-
माण नाड़ीके क्रमसे छ वरसवाले को बारह वरसवाले को और उसके ऊपर
वरसवालों को जानना चाहिये ॥ रोगीके अंगुठे के प्रमाणसे जड़में स्थूल कहा है

और चिटनी उंगली के बराबर मोटी आंगे और मुड़ गोली के समान होनी चाहिये ॥ ४६१ ॥ (परिणाह यहांपर मोटाई । उसके मूलमें दोकान चौथाई भाग से करने चाहिये । गायके कानके समान उसमें सरक फांसकी तरह से मूत्रकी धैली लगावे । हरिन वक्रो सख बैल और भैंसकी भी होवे ॥ मूत्रकी धैली यह श्रेष्ठ है ॥

मूत्रकोशस्य वस्तिस्तु नदलाभे तु चर्मणः ॥ कषायरक्तः स मृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ॥ ४६२ ॥ ब्रणवस्तेस्तु नेवं स्यात् श्लक्ष्णमष्टाङ्गुलोन्मितम् ॥ सुहृदिद्रं गृध्रपक्ष नलिका परिणाहि च ॥ ४६३ ॥ शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः ॥ कुरुते परिदृष्टिञ्च वस्तिः सम्यगुपासितः ॥ ४६४ ॥ दिवा शीते वसन्ते च स्नेहवस्तिः प्रदीयते ॥ ग्रीष्म वर्षा शरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् ॥ ४६५ ॥ न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वा अनुवासयेत् ॥ मदं मूर्च्छाञ्च जनयेद्विधा स्नेहः प्रयोजितः ॥ ४६६ ॥

भा०—मूत्रकी धैली उसके अभावमें चमड़े की धैली ॥ खाली लाल मुलायम चिकनी मजबूत ऐसी वस्ति अच्छी होती है ॥ ४६२ ॥ ब्रण वस्ति की नली साठ आठ अंगुलकी होती है और मूत्रके बराबर छिद्र तथा गिड़के परकी नली बराबर मोटाई कही है ॥ ४६३ ॥ अच्छी तरह वस्ति सेवन की हुई शरीरकी पुष्टता बल वर्ण आरोग्य और आयु इनकी करती है और तैय्यारी को भी करती है ॥ ४६४ ॥ दिन और शीतकाल तथा वसन्त में स्नेह वस्ति दी जाती है ॥ ग्रीष्म वर्षा और शरत् काल तथा रात्रि इनमें अनुवासन वस्ति होती है ॥ ४६५ ॥ अनि स्निग्ध भोजन को खिलाकर अनुवासन न करावे ॥ दो बार स्नेह दिया हुआ मद और मूर्च्छा को करता है ॥ ४६६ ॥

(द्विधा भोजन वस्ती च)

रूक्षं भुक्तवतीत्यन्नं बलं वर्णाञ्च हापयेत् ॥ युक्त
स्नेहमतो जन्तुं भोजयित्वानुवासयेत् ॥ ४६७ ॥

(युक्तस्नेहं यथोचित स्नेहं भोज्यं भोजयित्वेत्यर्थः)
हीनमात्रा वुभौ वस्ती नानि कार्य्य करौ स्मृतौ ॥ अ-
तिमात्रौ तथा नाह क्लृप्तातीसार कारकौ ॥ ४६८ ॥

(उभौ वस्ती अनुवासन निरुहारव्यौ)

भा० भोजन में और वस्ती में । रूक्ष अत्यन्त भोजन करने वाले के बल और वर्णों की घटाता है ॥ उचित स्नेह वाले मनुष्य को भोजन कराके अनुवासन करावे ॥ ४६७ ॥ यथोचित स्नेह भोज्य को भोजन कराके । हीन मात्रा देनेवाला वस्ति अनिकार्य्य करनेवाली नहीं कहती है ॥ तथा अतिमात्रा देनेवाली वस्ति अकारा क्लृप्त अतीसार इनको करनेवाली है ॥ ४६८ ॥

(दोनों वस्ति अथोत् अनुवासन निरुह)

उत्तमास्या त्यलैः षड्भिर्मध्यमास्यात्यलैस्त्रिभिः।

पेलाद्यर्द्धेन हीना स्यादुक्तं मात्रानु वासने ॥ ४६९ ॥

शताह्वा सैन्धवाभ्याञ्च देयं स्नेहे च चूर्णकम् ॥

तन्मात्रौ तैम मध्यान्त्या षट् चतुर्द्वय माषकैः ॥ ४७० ॥

विरेचना त्प्ररात्रे गते जातबलाय च ॥ भुक्तान्ना

यानु वास्याय वस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ ४७१ ॥ अथा

नुवास्यं स्वम्यक्तमुषणाम्बु स्वेदिनं शनैः ॥ भोज

यित्वा यथा शास्त्रं कृतञ्च द्रुमराजिनः ॥ ४७२ ॥

भा० छ पलकी उत्तम तीन पलकी मध्यम और एक पलकी हीन यह अनुवा सन में मात्रा कहती है ॥ ४६९ ॥ सोंफ और सेन्धा इनसे स्नेहमें चूर्ण देना चाहिये ॥ उग्रको मात्रा उत्तम मध्यम हीन छ चार और दो मासे से होती है ॥ ४७० ॥ विरेचन से मानविन चीतने पर बल बने को ॥ भोजन कराके अनुवासन के योग्य

को अनुवासन वस्ति देनी चाहिये ॥ ४७१ ॥ अनन्तर स्वभ्यक्त गरमजलसे स्नान किमे ऊँचे अनुवासन के योग्यको भोजन करके शास्त्रके अनुसार दहलाके उसके अनन्तर ॥ ४७२ ॥

उत्सृष्टानिल विरामूत्रं योजयेत् स्नेह वस्तिना ॥

(उष्णाम्बु स्वेदितम् । उष्णाम्बुना स्नपितम्)

सुप्तस्य वामपार्श्वे न वामजङ्घन प्रसारिणः ॥ कुञ्चि
तापरजङ्घस्य नेत्रं स्निग्धे गुदे न्यसेत् ॥ ४७३ ॥ वदं
वस्ति मुखं सूत्रैर् वामहस्तेन धारयेत् ॥ पीडये दक्षि-
णेनैव मध्यवेगेन धीरधीः ॥ ४७४ ॥ जृम्भाकासस्त
वादीश्च वस्तिकाले न कारयेत् ॥ त्रिंशन्मात्रामितः
कालः प्रोक्तो वस्तिस्तु पीडने ॥ ४७५ ॥ ततः प्राणिहि
ने स्नेहे उत्तानो वाक् शान्तं भवेत् ॥ स्वजानुनः करा
वर्त्तं कुप्योच्छेदिकया पुनः ॥ ४७६ ॥ एषामात्रा
भवेदेका सर्वत्रैवेष निश्चयः ॥

भा० वात मल मूत्र करबुके ऊँचेको स्नेह वस्ति वैद्य देवे ॥

(गरमजलसे स्नान करायिऊँचे को ।) बायें करवट हेंटे ऊँचे ॥
और बाँई जांघ पसरिऊँचे ॥ तथा दहिनी जांघको सिकोड़े ऊँचे की गुदामें
चिकनाई लगाकर नाड़ी को डाले ॥ ४७३ ॥ डोरे से बन्धे ऊँचे वस्ति मुख को
बायें हाथ से पकड़े ॥ धीर बुद्धिवाला मनुष्य मध्यवेगसे दहने हाथ से दवा
वे ॥ ४७४ ॥ वस्ति समयमें जंभाई खांसी छींक आदि न करावे ॥ तीस मात्रा
काल वस्ति के पीडन में कहा है ॥ ४७५ ॥ उसके अनन्तर प्राणिहित स्नेहमें
उत्तान सौ की गिनती तक रहे ॥ अपने घुस्ने पर हाथ फेरके चुटकी वनवि
और फिरसे फेरे ॥ ४७६ ॥

यह एकमात्र होनी है सब जगह यह निश्चय है ॥

निमिषोन्मेषां पुंसा मङ्गुल्या च्छेदिकाथवा ॥

४७७ ॥ गुर्व्यं क्षरोच्चारणं वा स्यान्मात्रेयं स्मृता बुधैः

॥ प्रसारितैः सर्व्व गात्रै र्यथा वीर्य्यं प्रसर्पति ॥ ४७८ ॥

(यथा वीर्य्यं स्नेहादि)

ताडये तलये रेन त्नींस्त्री न्वारान् शनैः शनैः ॥

स्फिजोश्चैव तथा श्रीरणी शय्याञ्चैवोत्क्षिपेत्ततः ॥

४७९ ॥ स्फिजोश्चैनं स्वपाणिभ्यां पूर्व्ववत्ताडये द्वुधः ॥

शय्याञ्च पदतस्तस्य त्वीनवारानुत्क्षिपेत्ततः ॥

४८० ॥ जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम्

॥ सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ॥ ४८१ ॥

उपद्रवं विना प्रीघ्नं स सम्यगनुवासितः ॥

(उपद्रवस्थाने तुष चोषाविति सुश्रुते पाठः)

भा० मनुष्यों के नेत्रों का निमेष और उन्मेष अथवा अंगुली से चुटकी ॥ ४७७ ॥

वा गुरु अक्षर का उच्चारण इसको मात्रा पंडितों ने कही है ॥ सब गात्र फैला

ने से वीर्य्य के अनुसार फैल जाता है ॥ ४७८ ॥ स्नेहादि । इसकी तलुवे में

धीरे २ तीन २ बार चोट देवे ॥ और चूतड़ तथा कमर इनमें भी धीरे २ थपेड़

देवे उसके अनन्तर खाटकी पावों की तरफ से ऊंची करे ॥ ४७९ ॥ बुझावा

न अपने हाथों से पूर्व्ववत् चूतड़ों में थपेड़ देवे ॥ उसके अनन्तर उसकी खाट

की पांयने की तरफ से तीन बार उठावे ॥ ४८० ॥ विधान के होने पर उसके

अनन्तर यथासुख निद्रा करे ॥ जिसके वान और मल के सहित स्नेह वि

ना उपद्रव के प्रीघ्न नोट आता है वोह अच्छा अनुवासन किया हुआ है ॥

(उपद्रव की जगहमें तुष चोष इस प्रकार सुश्रुत में पाठ है)

जीर्णान्न मय साबान्हे स्नेहे प्रत्यागते पुनः ॥ लघु

न्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निंस्तु नरो यदि ॥ (४८२ ॥

अनुवासिताय दातव्यमिदं स्निह्य सुखोदकम् ॥ धा-
न्यशुण्ठी कषायं वा स्नेह व्यापति नाशनम् ॥ ४८३ ॥

(सुखोदकं मुषणोदकं व्यापतिव्याधिः)

अनेन विधिना षड्वा सप्त वाष्टौ नवापि वा ॥ वि-
धेया व स्तयस्तेषां मन्तेचैव निरूहणम् ॥ ४८४ ॥

दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद् वस्तिवङ्गुरौ ॥

सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु नूद्धं स्थ मनिलं जयेत् ॥

॥ ४८५ ॥ बलं वर्णञ्च जनये तृतीयस्तु प्रयोजितः ।

चतुर्थं पञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसास्तृती ॥ ४८६ ॥

षष्ठी मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च ॥ अष्टमो

नवमश्चापि मज्जानञ्च यथा क्रमम् ॥ ४८७ ॥

(यथा क्रममिति वचना दंष्ट्रमोऽस्थि स्नेहयेत्)

भा० अनन्तर फिरसे स्नेह लौट आने पर सायंकाल में जीर्ण । और हलके
अन्नको दीप्ताग्निवाला मनुष्य भोजन करे ॥ ४८२ ॥ अनुवासित को दस
रे दिन सीलगरम जल देना चाहिये ॥ अथवा धनियां सोर दूधका काढ़ा दे
वे यह स्नेह व्याधिका नाशक है ॥ ४८३ ॥ सील गरम जल । रोग । इस
विधिसे छ सात आठ अथवा नौ ॥ वस्ति करनी चाहिये इनके अस्तीर में
निरूहण देना चाहिये ॥ ४८४ ॥ प्रथम दीर्घदं वस्ति पेड़ और वृक्ष को
नर करती है ॥ अच्छे प्रकार दीर्घदं दूसरी वस्ति ऊपर की वान को जीनती
है ॥ ४८५ ॥ और तीसरी दीर्घदं बल वर्ण को करती है ॥ चौथी पांक्वी दी
र्घदं रस और रक्त को नर करती है ॥ ४८६ ॥ छठी मांस को स्नेह करती है
। और सातवीं मेद को । अष्टम नवम क्रमके अनु सार नर करती है ॥
॥ ४८७ ॥ (यथा क्रम इति वचना से आठवीं अस्थि को चिकनी करनी है

एवं शुक्रगता न्योषान् द्विगुणः साधु साधयेत् ॥

[अष्टादशाधिक वस्तिः]

अष्टादशाष्ट दशकान् वस्तीनां यो निषेवते ॥ स कु-
ज्जरबलो ऽश्वस्य जव तुल्या ऽमरप्रभः ॥ ४८८ ॥ रू-
क्षाय बह्ववाताय स्नेहवस्तिं दिने दिने ॥ दद्याद्द्वय-
स्तथा त्र्येषा मग्न्या बाध भयात् व्यहात् ॥ ४८९ ॥
स्नेहो ऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः ॥
(अनत्ययः । अबाधः) । तथा निरूहः स्निग्धाना-
मल्पमात्रः प्रशस्यते ॥ अथ वा यस्य तत्कालं स्ने-
हो निर्याति केवलः ॥ ४९० ॥ तस्याप्यल्पं तरो देयो
न हि स्निग्धे ऽवतिष्ठते ॥

भा० इस प्रकार शुक्रगत दोषों को दुगना अच्छा साधन करे ॥ अठारह से अधिक वस्ति । जो छत्तीस वस्ति सेवन करता है । वोह गजके समान बल बा-
ला और अश्वके तुल्य बल देवता के समान कान्ति युक्त होता है ॥ ४८८ ॥
रूक्ष और बह्वत वात वाले को स्नेह वस्ति प्रतिदिन देवे ॥ तथा वैद्य औरों की
अग्नि बाधा भयसे तीसरे दिन देवे ॥ ४८९ ॥ रूक्षों को ऽल्पमात्र स्नेह बह्वत
कालतक अदोष होता है ॥ वेसेहि स्निग्धोंको निरूह अल्पमात्र प्रशस्त है ॥
अथवा जिसके केवल स्नेह तत्काल निकलता है ॥ ४९० ॥ उसको बह्वत छोड़ा
देना चाहिये स्निग्धके न रहनेमें ॥ (अवतिष्ठते दत्तः स्नेह इति शेषः)

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः ॥ तदाङ्ग-
सदनाध्माने शूलं श्वासश्च जायते ॥ ४९१ ॥ पक्वाण्ये-
गुरुत्वञ्च तत्र दद्यान्निरुहणम् ॥ तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधै-
र्युक्तं फलवर्त्ति मथापि वा ॥ ४९२ ॥ यथानुलोमनो-
बाधु मेलः स्नेहश्च जायते ॥ तथा विरेचनं दद्यात्ती-

स्नानं नस्यञ्च शस्यते ॥ ४६३ ॥ यस्य नोपद्रवं कुर्यात्
 स्नेहवर्तिरितिः स्मृतः ॥ सर्वोऽल्पो व्यावृत्तो रौह्या
 दुपेक्ष्यः स विज्ञानता ॥ ४६४ ॥ अनाया तन्वहोरात्रे
 स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ॥ स्नेहवस्तावनायति नान्यः
 स्नेहो विधीयते ॥ ४६५ ॥ गुडूच्ये रसाड् पूतीक भार्गी
 वृषकरो हिषम् ॥ ग्रानावरी सरुचरं काकनासां पलो
 न्मिताम् ॥ ४६६ ॥ यवमाषानसी कोल कुलत्थान्
 प्रसृतोन्मितान् ॥ चतुर्दोषोऽम्भसः पक्वा द्रोण शो-
 षेण तेन च ॥ ४६७ ॥ पचेत्तेलाढकं सर्वैर्जीवनीयैः
 पलोन्मितैः ॥ अनुवासनं मेतद्धि सर्वं वातविकारनुत् ॥ ४६८

भा० दीयाइवा स्नेह यह शेष है । जब फिरसे अशुद्ध का मलसे मिलाइवा
 स्नेह नहीं निकलता ॥ तब शरीरमें पीडा आध्मान शूल और श्वास येह होते
 हैं ॥ ४६९ ॥ पक्काप्रय में भारीपन होताहै उसमें निरुद्धरा देवे ॥ तीक्ष्ण औ
 पथों से युक्त तीक्ष्ण फल वर्जित अर्थात् गुदामें बत्ती देवे अनुलोमन होवे अथ
 वा ॥ ४६२ ॥ जैसे वायु मल और स्नेह अनुलोमन होवे ॥ वैसे तीक्ष्ण विरेचन
 देवे और नासभी प्रशस्त है ॥ ४६३ ॥ जिसकी न निकली हुई स्नेह वस्ति
 उपद्रवको नहीं करती ॥ वो सर्वथा थोडा रूखना के कारण व्यावृत्त होता
 है इसवास्ति जाननेवाले के द्वारा उपेक्षा करने योग्य है ॥ ४६४ ॥ जो स्ने-
 ह दिनरत में भी निकले उसके संशोधन से निकाले ॥ स्नेह वस्ति के न नि-
 कलने में और स्नेह न विधान करे ॥ ४६५ ॥ गिलोय अंडी करंज भार्गी
 वांसा रामकपूर ॥ सनावर कटसरैया कोवाठीडी इनको एक- पल
 लेवे ॥ ४६६ ॥ और जब उड्ड अलसी फरबेरी कुरथी इनको दो२ पल लेवे ॥
 चार द्रोण जलमें पकाकर चौथाई वाकी है तब उसे ॥ ४६७ ॥ सब जीवनी
 योंकी पल प्रमाण औषधके साथ चार सेर तेल पकावे ॥ यह अनुवासन
 सब यानयोगोंकी नाशक है ॥ ४६८ ॥

(क) पूतीकः । करञ्जः । रौहिषं इषमं सुगन्धतृण विशेषः ।

काक नासा । कौआ ठोड़ी । प्रसूतम् । पल हयम् । षोढा
 सप्त व्यापदस्तु जायन्ते वस्ति कर्मणाः ॥ दूधितान्स
 मुदायेन तांश्चिकित्स्यात्तु सुश्रुतान् ॥ ४६६ ॥ समु-
 दयेन समुचित नेत्रादि सामग्र्या । पानाहार विहा-
 राश्च परिहाराश्च कृतस्वशः ॥ स्नेह पान समाः का-
 र्य्यौ नात्र कार्य्यौ विचारणा ॥

भा० (क) कांज । रामकपूर । कौआ ठोड़ी । दौपल । वस्ति कर्म से छः सात
 दोष होते हैं ॥ समुदाय करके दूधिन उनकी सुश्रुत से चिकित्सा करनी चा-
 हिये ॥ ४६६ ॥ समुचित नाड़ी आदि सामग्र्य से । पान आहार विहार औ-
 र परिहार यह सम्पूर्ण स्नेह पान के समान करना चाहिये इसमें कोई विचा-
 रन करना चाहिये ॥

[अथ निरुहवस्ति विधिः ।]

निरुह वस्ति बहुधा भिद्यन् कारणान्तरैः ॥ नैरेव
 तस्य नामानि धूनानि मुनिपुङ्गवैः ॥ ५०० ॥

(कारणान्तरैः । समवायि कारणभेदैः)

निरुहस्या परन्नाम प्रोक्त मास्थापनं बुधैः ॥ स्व-
 स्थाने स्थापना दोष धातूनां स्थापनं मतम् ॥ ५०१ ॥

निरुहस्य प्रमाणं तु प्रस्थ पादोत्तरं परम् ॥ मध्यमं
 प्रस्थ मुद्दिष्टं हीनञ्च कुड्वास्त्रयः ॥ ५०२ ॥

(परं श्रेष्ठम्) अतिस्निग्धोऽक्षिष्टदोषः क्षतः क्षीणः
 कृशस्तथा ॥ (अक्षिष्टदोषः) अदत्तोत्तल्ले-

शान इति यावत् क्षतोरष्कः उरः क्षतवान् ॥

आध्मान छर्दि हिक्काराः कास एवास प्रपीडितः ।

भा० अनन्तर निरुहवस्ति की विधि । निरुहवस्ति कारणान्तरों से अनेक प्रकारकी है ॥ उन्हीं कारणों से उनके नाम मुनियों ने किये हैं ॥ ५०० ॥ सम वायिकारणोंभेद से । बुद्धिवातों ने निरुह का नाम आस्थापन कहा है ॥ दोष धातुओं का अपने स्थान में स्थापन होने से स्थापन कहा है ॥ ५०१ ॥ निरुह का परम प्रमाण सवास्तिर कहा है ॥ और मध्यम सेरभर कहा है ॥ तथा हीन तीनपाव कहा है ॥ ५०२ ॥ अति स्निग्ध और अक्षिप्त दोष क्षत क्षीण तथा कृश ॥ न दिया हुआ उल्केक्षण । उर क्षतवाला । आध्मान वमन हिचकी ववासीर कास स्वास से पीड़ित ।

गुद शोफाती सारात्तो विसृज्यी कुष्ठ संयुतः ॥ ५०३ ॥

गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी ॥ वात

व्याधायुदावर्ते वाधासृग्विष मज्जरे ॥ ५०४ ॥ मूत्र

च्छी तृणोदरा नाह मूत्रकृच्छ्रा पथरीषु च ॥ वृ

द्धासृग्दरमन्दाग्नि प्रमेहेषु निरुहराम् ॥ ५०५ ॥

शूलैः स्त्रपिते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद् बुधः ॥ उत्सृ

ष्टानिलविण मूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजनम् ॥ ५०६

मध्यान्हे गृहमध्ये च यथायोग्यं निरुहयेत् ॥

भा० और गुद शोफ अतीसार इनसे पीड़ित विसृज्यी कुष्ठ से युक्त ॥ ५०३ ॥

गर्भिणी मधुमेहवाला और जलोदरी येह आस्थापन योग्य नहीं है ॥ और वात रोग में उदावर्त में वद रक्त विषमज्जर इनमें ॥ ५०४ ॥ मूच्छी तृषा उ

दर आनाह मूत्रकृच्छ्र पथरी इनमें भी ॥ अंडरुद्धि रक्त प्रदर मन्दाग्नि प्र

मेह इनमें निरुहरण देवे ॥ ५०५ ॥ शूल अस्त्र पित्त हृद्रोग । इनमें भी विधि

के अनुसार योजना करे ॥ अधोवात मल मूत्र करचुके ऊँचे स्निग्ध और

स्विन्न तथा भोजन न किये की ॥ ५०६ ॥ मध्यान्ह में घरके बीच यथायोग्य

निरुहरण करे ॥

(स्निग्धम् । स्वम्यक्तम् । स्विन्नम् ।

उष्णाम्बु स्त्रपितम्) स्निहवस्ति विधानेन बुधः ॥

कुर्यान्निरुहणम् ॥ जाने निरुहे च ततो भवेदुत्कर
कासनः ॥ ५०७ ॥ निष्ठेन्मुहूर्तमात्रन्तु निरुहा गमनं
च्छया ॥ अत्र मुहूर्तमात्रशब्देनैतदपि बोधितम्
निरुहप्रत्यागमनकालो मुहूर्तमात्रः ।
अनायातं मुहूर्तं तु निरुहं शोधनैर्हरेत् ॥ निरुहै
रेव मनिमान् क्षारमृत्रास्त्रसेन्धवैः ॥ ५०८ ॥

भा० नेल लगाया हुआ । गरम जलसे स्नान किया हुआ । पंडित स्नेह
वस्त्र की विधिसे निरुहण करे ॥ निरुह होने पर उकड़ हो के ॥ ५०७ ॥
दो घड़ी ठहरे निरुह के आने की इच्छासे । यहां पर मुहूर्तमात्रशब्द
से यह भी जनाया है । निरुह के लौट आने का काल मुहूर्तमात्र है ॥
दो घड़ी में निरुह न आवे तो शोधन से निकाले । बुद्धिमान् क्षार मू
त्र अस्त्र सैन्धव इनसे युक्त निरुह से ही शोधन करे ॥ ५०८ ॥

यस्य क्रमेण गच्छन्ति विद् पित्त कफ वायवः ॥

लाघवं चोपजायेत सुनिरुहं तमादिशेत् ॥ ५०९ ॥

यस्य स्याद् वस्त्रि वज्रा ल्प वेगो हीनं मलानिलः ॥

मूर्च्छार्ति जाड्या रुचिमान् दुर्निरुहं तमादिशेत् ॥

॥ ५१० ॥ विविक्तता मनस्कुष्टिः स्निग्धता व्याधि निय-

हः । आस्थापने स्नेहवस्त्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम् ॥

५११ ॥ (विविक्तता । दन्तौषध निःसरणम्)

अनेन त्रिधिना युज्यान्निरुहं वस्त्रिदानवित् ॥

भा० जिसके क्रमसे मल पित्त कफ वायु निकलते हैं । और हलका प
न होता है उसको निरुह कहते हैं । ५०९ ॥ वजन अथवा अल्प वेग हो
ना है ॥ और हीन मूल मान होता है । तथा मूर्च्छा पीडा जाड्य अरुचि
युक्त उसको दुर्निरुह जाने ॥ ५१० ॥ अलग हो तो मन की प्रसन्नता

स्निग्धता व्याधि निग्रह ॥ आस्थापन और स्नेहवस्ति के अच्छे देनेमें येह लक्षण हैं ॥ ५११॥ दिये हुवे औषधका निकलना । वस्तिदान को जाननेवाला इस विधिसे निरुहको योजना करे ॥

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचिनम् ॥ ५१२॥

स स्निह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ॥ कषाय क

ड मूत्राद्या कफे तूष्णा स्त्रयो हिताः ॥ ५१३॥ पित्त

श्लेष्मा निलाविष्टं क्षीर यृष रसैः क्रमात् ॥ निरुहं

भोजयित्वा च ततस्तमनु वासयेत् ॥ ५१४॥ सुकुमा

रस्य बृद्धस्य बालस्य च मृदु हितः ॥ वस्ति स्तीक्ष्णाः

प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुषी ॥ ५१५॥ दद्यादुत्क्ले

शनं पूर्वं मध्यं दोषहरन्ततः ॥ पश्चात्सं शमनीय-

ञ्च दद्याद्वस्तिं विचक्षणाः ॥ ५१६॥ एराडबीजं म-

धुकं पिप्पली सैन्धवं वचा ॥ हवुषा फलकल्कश्च

वस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ॥ ५१७॥ इत्युत्क्लेशनवस्तिः]

भा० दूसरी तीसरी अथवा चौथी यथोचिन योजना करे ॥ ५१२॥ वोह स्नेह वातमें एक पित्तमें दो पयके साथ ॥ और कफमें उष्ण कषाय कडू मूत्र भादि से तीन हितहैं ॥ ५१३॥ पित्त कफ वात इनकरके आविष्ट को दूध जूस रस इन से हलके साथ ॥ भोजन करा कर निरुह देवे उसके अनन्तर अनुवासन वस्ति देवे ॥ ५१४॥ सुकुमार बालक बृद्ध इनको मृदु वस्ति हितहैं ॥ तीक्ष्ण वस्ति देने से उनका बल आयु नाश होता है ॥ ५१५॥ पहिले उत्क्लेशन देवे । मध्यमें दो पहर उसके ॥ पीछे संशमनीय देवे वस्ति चतुर ॥ ५१६॥ अंघी कीजड़ मज्जवा पीपल सेन्धा वच ॥ हाड बेरके फलका कल्क यह । उत्क्लेशन वस्ति कही है ॥ ५१७॥ इति उत्क्लेशन वस्ति ॥

शताह्वा मधुकं विल्वं कौदजं फलमेव च ॥ स काञ्चि

कः सगोमूत्रो वस्तिदोषहरः स्मृतः ॥ ५१८ ॥

[इति दोषहर वस्तिः]

प्रियङ्गुर्मधुकं मुस्ता नथैवच रसाञ्जनम् ॥ सक्षीरः

शस्येत वस्तिदोषाणां शमनः स्मृतः ॥ ५१९ ॥

[इति शमन वस्तिः]

विफला क्वाथं गोमूत्रं दौद्रक्षीरं संमायुताः ॥ ऊषका-

दि प्रतीवापै वस्तयोः लेखनाः स्मृताः ॥ ५२० ॥

(ऊषकादि प्रतीवापाः। ऊषकादिगणा विशेष चूर्ण

प्रक्षेपाः) [इति लेखन वस्तयः]

वृंहणं द्रव्यनिष्काथैः कल्कैर्मधुरैर्युताः ॥ सर्पिर्मोस

रसोपेता वस्तयो वृंहणाः स्मृताः ॥ ५२१ ॥ इति वृंहण व-

स्तयः] वदय्यैरावती शेलु शाल्मली पुष्यजाङ्गुराः ॥

भा० सोंफ मझवा बेल इन्द्रजव ॥ कांजी और गोमूत्र के साथ यह वस्ति दोष हर कही है ॥ ५१८ ॥ (इति दोषहर वस्ति) ॥ प्रियंगु मझवा नागर मोथा वैसे ही रसोत ॥ दूध के सहित वस्ति प्रशस्त है। वोह दोषोंकी शमन कही है ॥ ५१९

(इति शमन वस्ति) ॥ विफला का काढ़ा गोमूत्र मधु जवारवार इनसे युक्त ऊषकादि प्रतीवाप से लेखन वस्ति कही है ॥ ५२० ॥ ऊषकादि गणों विशेषके चूर्णोंको डालना ॥ (इति लेखन वस्ति) ॥ वृंहण द्रव्यके काढ़े में मधु करके कल्क से युक्त ॥ और घृत मांस रस से युक्त वृंहण वस्ति कही है ॥ ५२१ ॥

(इति वृंहण वस्ति) ॥ वें वदपत्री लिसोड़ा सेमल के फलोंके अङ्गुर ॥

(ऐरावती । नारङ्गी । शेलुः । बङ्ग आर ।)

क्षीर सिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिल संज्ञिताः ॥

अजोरम्ब्रेण रुधिरैर्युक्ता देया विचक्षणेः ॥ ५२२ ॥

(अजम्बूगः । उरभ्रोमेषः । राणः कृष्णाम्बुगः ।)

मात्रा पिच्छिलवस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मता ॥

(इति पिच्छिलवस्तिः ।) दत्त्वादी सैन्धुवस्याहमधुनः

प्रसृति द्वयम् ॥ ५२३ ॥

भा० नारङ्गी । वहवार । दूधसे सिद्ध किये मधुके युक्त येह पिच्छिल नाम वस्ति है ॥ बकरा मेढा काला हिरन इनके ऊधिर से युक्त चतुर के द्वारा देनी चाहिये ॥ ५२३ ॥ (बकरा मेढा काला हिरन । पिच्छिल वस्ति की मात्रा बारह पल कही है ॥ (इति पिच्छिल वस्ति)) ॥ दो पल मधु और एक नीला मधु पहिले देकर ॥ ५२३ ॥

विनिर्गम्य ततो रद्यात् स्नेहस्य प्रसृति त्रयम् ॥ सकी

भूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृति द्विपेत् ॥ ५२४ ॥

संमूर्च्छिते कषायन्तु चतुः प्रसृति सम्मितम् ॥ गृ

हीयाच्च तदा वाय मन्ते द्विप्रसृतोन्मितम् ॥ ५२५ ॥

क्षित्वा विमथ्य दद्याच्च निरुहं कुशलो भिवक् ॥

एवं प्रकल्पितो वस्तिर्द्वादश प्रसृति भवेत् ॥ ५२६ ॥

इति चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात् स्नेहस्य षट्पलम् ॥ पि

ते चतुष्पलं क्षौद्रं स्नेहं दद्यात्पलत्रयम् ॥ ५२७ ॥

कफेन षट्पलं क्षौद्रं लिपेत् स्नेहं चतुष्पलम् ॥

भा० मधकर उसके अनन्तर स्नेहको छ पल देवे ॥ उसके अनन्तर स्नेह के मिल जाने पर दो पल कल्क डाले ॥ ५२४ ॥ संमूर्च्छित होने पर कषाय आठ पल प्रमाण लेवे ॥ अथ वाक्के अन्तमें इसको चार पल प्रमाण ॥ ५२५ ॥ डालकर और मथके कुशल वैद्य निरुह को देवे ॥ इस प्रकार कल्पना की हुई वस्ति बारह प्रसृति होती है ॥ ५२६ ॥ वातमें चार पल मधु और स्नेह छ पल देवे ॥ तथा पित्तमें चार पल मधु और स्नेह तीन पल देवे ।

॥ ५२७ ॥ कफ में छे पल मधुस्नेह चार पल डाले ॥ इति निरुह वस्तिकी मात्रा

एराड काथ तुल्यांशं मधु तैलं पलाष्टकम् ॥ शतधुष्या

पलाद्धेन सैन्धवाद्धेन संयुतम् ॥ ५२८ ॥ मधु तैलक

संज्ञोऽयं वस्तिर्दारु विलोडितः ॥ मेढो गुल्म कृमि

स्नीह मलोदावर्त नाशनः ॥ ५२९ ॥ बलवर्ण कर श्वे

व दृष्यो दीपन दंष्ट्राः ॥ [मधु तैलक वस्तिः]

क्षौद्राज्य क्षीरं तैलानां प्रसृतं प्रसृतं भवेत् ॥ हवुषा

सैन्धवा क्षांशो वस्तिः स्याद् यापनः परः ॥ ५३० ॥

[इति पाचन सारकः यापन वस्तिः]

भा० अंडी के काढ़े के समान मधु तेल आठ पल ॥ सोंफ आधा पल सैन्धव एक

तोला इनसे युक्त ॥ ५२८ ॥ मधु तैलक नाम येह वस्ति लकड़ी से बिलोडित

है ॥ मेढ बाय गोला कृमि पिलही मल उदावर्त इनकी नाशक है ॥ ५२९ ॥

और बल वर्ण की करनेवाला दृष्य दीपन उष्ट्र है ॥ मधु तैलक वस्ति ॥

मधु घृत दूध तेल यह दो दो पल होते ॥ हाउ बेर सैन्धव येह एक एक तोला

येह पाचन वस्ति है ॥ ५३० ॥ [इति पाचन सारक यापन वस्ति]

एराड मूल निष्काथो मधु तैलं स सैन्धवम् ॥ एष

युक्त रयो वस्तिः सबचा पिप्पली फलः ॥ ५३१ ॥

[युक्त रयो वस्तिः] पञ्चमूलस्य निष्काथै स्तैलं मा

गधिका मधु ॥ स सैन्धवः सयष्ट्वाहः सिद्ध वस्ति

रिति स्मृतः ॥ ५३२ ॥ ॥ इति सिद्ध वस्तिः ॥

स्नानमुष्णो दकैः कुर्याद्दिवा स्वप्न मजीरीताम् ॥

वर्जयेदपरं सर्व माचरेत् स्नेह वस्तिवत् ॥ ५३३ ॥

भा० अंडीकी जड़का काढ़ा मधु नैल और सैन्धवके सहिन ॥ और बच पीपल
के सहिन येह युक्त रयो वस्ति है ॥ ५३१ ॥ इति युक्त रयो वस्ति ॥]
पंच मूलके काढ़ेके साथ नैल पीपल मधु ॥ सैन्धव के सहिन और मुलहरी के
सहिन सिद्ध वस्ति दूस प्रकार कही है ॥ ५३२ ॥ सिद्ध वस्ति ॥
गरम जलसे स्नान करे दिनमें सोला अजीर्णता इनको त्याग देवे बाकी सब स्नेह
वस्ति के समान करे ॥ ५३३ ॥

[अथोत्तर वस्ति विधि:] अनः परम्प्रवक्ष्यामि वस्ति मुन
र संज्ञितम् ॥ निरुहा दुत्तरो यस्मा तस्मा दुत्तर संज्ञकः
॥ ५३४ ॥ द्वादशाङ्गुलकं नेत्रं मध्ये च कृत करिणिकम्
॥ मालती पुष्प वृन्ताभं च्छिद्रं सर्पप निर्गमम् ॥ ५३५ ॥
पञ्च विंशति वर्षाणां मधो मात्रा द्विकार्षिकी ॥ न
दूर्ध्वं मूलमात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः ॥ ५३६ ॥
अथ स्थापन शुद्धस्य तृप्तस्य स्नान भोजनैः ॥ स्थित
स्य जानु मात्रे च विष्टे स्निग्ध प्रालाकया ॥ ५३७ ॥
स्निग्धया मेढू मार्गे तु ततो नेत्रं त्रियोजयेत् ॥ शनैः
शनैर्घृताभ्यक्तं मेढू रन्ध्राङ्गुलानि षट् ॥ ५३८ ॥
ततोऽव पीडयेद्वस्तिं शनैर्नेत्रं विनिर्हरेत् ॥

भा० अनन्तर उत्तर वस्ति की विधि ॥ इसके उपरांत उत्तर संज्ञित वस्ति को
कहता हूं ॥ जिस कारण निरुद्ध से उत्तर कही है ॥ उस कारण उत्तर संज्ञ
क येह वस्ति है ॥ ५३४ ॥ बारह अंगुल की नली के बीच में कान की दूर्ध्व चम
ली के फूलके डंठल के समान छिद्र सरसों निकलने के माफिक होनी
चाहिये ॥ ५३५ ॥ पच्चीस वरसके नीचे दो तोले की मात्रा है ॥ उसके
ऊपर मूलमात्रा स्नेहकी कही है ॥ ५३६ ॥ अनन्तर आस्थापन से शु
द्ध और स्नान भोजन से तृप्त ॥ और घुटना टेक कर बैठे की स्निग्ध ॥

॥ ५३७ ॥ लिंग मार्गमें चिकनी सलाई करके उसके अनन्तर नली लगा देवे ॥
धीरे २ घी लगाकर लिंग छिद्रमें छ अङ्गुल करे ॥ ५३८ ॥ उसके अनन्तर
वस्ति को दबावे और धीरे २ नली को निकाल लेवे ॥

ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेह वस्ति क्रमो हितः ॥ ५३९ ॥

स्त्रीणां कनिष्ठिका स्थूल नेत्रं कुर्यादशाङ्गुलम् ॥

मूत्रप्रवेशायैव योन्यन्तश्चतुर्दशङ्गुलम् ॥ ५४० ॥

द्व्यङ्गुलं मूत्रमार्गं च सूक्ष्मं नेत्रं वियोजयेत् ॥ मूत्र

कच्छ विकारेषु बालानां त्वेकमङ्गुलम् ॥ ५४१ ॥

शनैः निष्क्रम्यमाधेयं सूक्ष्मं नेत्रं विचक्षणैः ॥ माल-

नी पुष्पचृन्तामनेत्रमित्युदितं पुनः ॥ ५४२ ॥

भा० उसके अनन्तर स्नेह लौट आनेपर स्नेह वस्ति क्रमहित है ॥ ५३९ ॥
स्त्री यो की चिटली उंगलियों के समान मोटी और दस अंगुल लम्बी नली करे
॥ और मूत्र जाने माफिक छिद्र करे तथा उस योनि के भीतर चार अंगुल करे
॥ ५४० ॥ सूक्ष्म नली दो अंगुल मूत्र मार्ग में योजना करे ॥ और मूत्र कच्छ वि-
कारमें बालकों को एक अंगुल ॥ ५४१ ॥ धीरे न कांपता हुआ सूक्ष्म नली को
चतुर भीतर करे ॥ चमेली के फूल के डंठल की समान नली इस प्रकार कहा है
५४२ ॥ सूक्ष्म शब्द अभिधाने बालानां तुतोऽपि नेत्रस्य

सूक्ष्मता बोधनार्थं ॥ योनि मार्गेषु नारीणां स्नेह मात्रा द्वि-

पालिकी ॥ मूत्र मार्गे पलोन्मानं बालानां च द्विकार्षिकी

॥ ५४३ ॥ उत्ताना ये स्त्रियै दद्याद्द्वेजान् वै विचक्षणाः

॥ अपत्या गच्छति भिषग्वस्तावन्तर संजिते ॥ ५४४ ॥

भूयो वस्ति विदध्याच्च संयुक्तं शोधनैर्गुणैः ॥ फलव-

र्ति विदध्याद्वा योनिगर्गि दद्यान्मिषक ॥ ५४५ ॥

सूत्रे विनिर्दिष्टास्त्रिधा शोधन द्रव्य संयुक्ताम् ॥ दह्य-
माने तथा वस्त्रौ दद्याद्वस्ति विधारदः ॥ ५४६ ॥ क्षीर
वृक्ष कषायैश्च पयसा शीतलेन वा ॥

(दह्यमाने वस्त्रौ) अस्मिन् स्थाने वस्ति र्देतस्तस्मिन्
वह्यमाने ॥] वस्ति शुक्ररुजः पुसां स्त्रीणां मार्तव
जा रुजः ॥ ५४७ ॥ हन्यादुत्तर वस्तिस्तु नोचिनो मेह
नात् क्वचित् ॥ सम्यग्दत्तस्य लिङ्गाणि व्यापदः क्रम
मेव च ॥ ५४८ ॥ वस्ते रुत्तर संज्ञस्य समानः स्नेह
वस्तिना ॥

भा० सूत्रमशब्द के कहने से बालकों की नली उमसे भी सूक्ष्म होनी चाहिये
। स्त्रियों की योनि मार्ग में दोपलकी स्नेह मात्रा होनी चाहिये ॥ और मूत्र
मार्ग में पलभर तथा बालकों को दो तोलेकी होनी चाहिये ॥ ५४३ ॥ चतुर
ऊपर घुटने की इर्द्ध उन्नत स्त्रीको पिचकारी देवे ॥ उत्तर वस्ति देने पर ली
दकर न आवे तो वैद्य ॥ फिर से ॥ ५४४ ॥ शोधन गुरों से युक्त वस्तिको देवे
॥ अथवा योनि मार्ग में दृढफल वस्ति अर्थात् वस्तिको देवे ॥ ५४५ ॥ सूतसे
बनाई इर्द्ध चिकनी शोधन द्रव्यसे युक्त देवे ॥ तथा पेड़ पर जलन होने में च-
तुर ॥ ५४६ ॥ क्षीर वृक्षों के काढ़े से अथवा शीतल जल से वस्ति देवे ॥ जहाँ
वस्ति दी है वहाँ पर जलन होने में ॥ पुरुषों की वस्ति शुक्र की और स्त्रियों की
आर्तव की पीड़ा ॥ ५४७ ॥ उत्तर वस्ति नाश करती है येन मूत्र मार्ग से और
कहीं पर योग्य नहीं है ॥ अच्छी तरह विये हवे के लक्षण दोपका क्रम भी
॥ ५४८ ॥ स्नेह वस्ति के समान उत्तर वस्ति कही है ॥

[अथ फलवर्तिविधिः ।] घृताभ्यक्ते गुदे क्षिप्त्वा म्ल-
क्षणां स्वाङ्गुष्ठ सन्निभा ॥ मलप्रवर्तिनी वर्तिः फल
वर्तिश्च सा स्मृता ॥ १ ॥

[अपनस्य ग्रहणविधिः]

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासा ग्राह्यं यदौषधम् ॥ नाचनं
नस्यं कर्मेति तस्य नाम द्वयं मतम् ॥ २ ॥

(नस्यं कर्म नासिकायां कर्म चिकित्सा येन तत् नस्यं कर्म)
नस्यं भेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ॥ रेचनं क
र्षणं प्रोक्तं स्नेहनं वृंहणं मतम् ॥ ३ ॥ कफ पित्तानि
लघ्वंसी पूर्व मध्या पराह्ण के ॥ दिनस्य गृह्यते नस्यं
रात्रौ चप्युत्कटे गदे ॥ ४ ॥

(दिनस्य । त्रिधा विभक्तस्य । पूर्व भागादौ ।)

भा० अनन्तर फलवर्ति अर्थात् बत्ती देना उसकी विधि ॥ अपने अंगुठे के
समान मोटी चिकनी बत्ती घृत लगाई हुई गुदा में डाली हुई और मलको
निकालने वाली की फलवर्ति कहा है ॥ १ ॥ [अनन्तर नास लेने की विधि ॥
जो औषध नाकसे ग्रहण करने योग्य है उसको धीर नास कहते हैं ॥ नाच
न और नस्य कर्म यह उसके दो नाम कहे हैं ॥ २ ॥

नाक की चिकित्सा । जिसे बौह नस्य कर्म है ॥ नास का भेद दो प्रकार कहा
है रेचन तथा स्नेहन ॥ रेचन घबाना कहा है और स्नेहन बढ़ाना है ॥ ३ ॥
कफ पित्त वात का नाशक क्रमसे दिन के पूर्वान्ध मध्याह्न और अपराह्ण ॥
में नास लिया जाता है और उत्कट रोग में रात को भी लिया जाता है ॥ ४ ॥

(तीन प्रकार विभाग किये दिन के पूर्व भागादि में ।)

नस्यन्त्यजे द्वाजनान्ते दुर्दिने चोपनर्पितः ॥ तथा नव
प्रतिश्यायी गर्भिणी ज्वर दूषितः ॥ अजीर्णी दन्तवन्ति
अथ पीतस्नेहो दकासवः ॥ ५ ॥ क्रुद्धः शोकाभिभू-
तश्च तृषार्तो वृद्ध बालकौ ॥ वेगावरोधो आन्तश्च
स्नानं कामश्च वर्जयेत् ॥ ६ ॥ (नस्यं निनिशेयः)

भा० भोजनान्त में दुर्दिने में नास न लेवे । और नर्पित किया हुआ । नये तु काम

ना गर्भिणी ज्वरसे दूषित ॥ अजीर्णवाला हीहर्दे वस्तिवान्ना और स्नेह उद-
क आसव पिया हुआ ॥ कुछ शोक करके अभिभूत न्यासे पीड़ित रुद्ध वा-
ल्क ॥ बेगोंको रोकनेवाला श्रान्त त्वान काम येहभी नास न्याग देवे ॥ ६ ॥
(नास येह श्रेय है)

अष्ट वर्षस्य बालस्य नस्य क.

र्म संमाचरेत् ॥ अशीति वर्षा दूर्द्धञ्च नावनं नैव दीय-
ते ॥ ७ ॥ अथ विरेचनं नस्यं ग्राह्यं नैले सु तीक्ष्णकैः ॥
तीक्ष्णं भेषजं सिद्धैर्वा स्नेहैः काथैः रसैस्तथा ॥ ८ ॥
नासिकां रन्ध्रयोरष्टौ षट्चत्वारश्च विन्दवः ॥ प्रत्ये-
कं रेचनं योग्यं मुख्यं मध्याल्प मात्रया ॥ ९ ॥ नस्य
कर्माणि दातव्यं शारीकं तीक्ष्णमौषधम् ॥ हिङ्ग-
स्वाद्यव मात्रान्तु माषिकं सैन्धवं मतम् ॥ १० ॥ क्षी-
रञ्चैवाष्ट शारां स्या त्पानीयञ्च त्रिकार्षिकम् ॥
कार्षिकं मधुरद्रव्यं नस्य कर्माणि योजयेत् ॥ ११ ॥
अवपीडः प्रथमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ॥

भा० आठ वरसके बालक को नस्य कर्म करावे ॥ अस्सी वरस के कपर नास न-
ही दिया जाता ॥ ७ ॥ अनन्तर विरेचनका नास नोत्तान नेलसे लेना चाहिये
॥ अथवा नात्तान औषधसे सिद्ध स्नेह द्वाय नद्या रस इनसे भी ॥ ८ ॥ दोनों
नद्यनों में आठ छ और चार दूरे ॥ हर एक रेचन योग्यको उत्तम मध्य अ-
ल्प मात्रासे लेना चाहिये ॥ ९ ॥ नस्य कर्म में तीक्ष्ण औषध चार मासे देना
चाहिये ॥ हीङ्ग जब बराबर और एक मासे सैन्धव कहा है ॥ १० ॥ दूध व
तीस मासे और पानी तीन नेल ॥ नद्या एक नेला मधुर द्रव्य नस्य कर्म में
योजना करे ॥ ११ ॥ अवपीड और प्रथमन दो भेद और कहे हैं ॥

शिरो विरेचनस्यार्थं नो तु देयो यथा यथम् ॥ १२ ॥

कल्की कृता दोषधातुः पीडितो निःसृतो रसः ॥ सोऽ
वपीडः समुद्दिष्ट स्तीक्ष्णद्रव्यं समुद्भवः ॥ १३ ॥ षडङ्गु-
ला द्विवक्त्राया नाडी चूर्णान्तया धमेत् ॥ तीक्ष्णं कोल-
मिनं वक्त्रवानैः प्रथमं हितम् ॥ १४ ॥ ऊर्द्धं जत्रु गते
रोगे कफजे स्वर संक्षये ॥ अरोचके प्रतिश्याये शिरः-
शूलं च पीतसे ॥ १५ ॥ शोफाषस्मार कुष्ठेषु नस्यं वै
रेचनं हितम् ॥ भीरुस्त्री कृश बालानां नस्यं स्नेहेन
प्रास्यते ॥ १६ ॥ गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्व-
रे ॥ मनो विकारे कृमिषु पूज्यते चाव पीडितम् ॥
अत्यन्तोत्कट दोषेषु विसंक्षेषु च दीयते ॥ चूर्णं प्रथ-
मं धीरे स्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥ १७ ॥ [नस्यं वैरेच-
नं यथा] नस्यं स्याद्गुडं शुण्ठीभ्यां पिप्पली सैन्धवेन वा

भा० उनको शिरो विरेचन के अर्थ देने चाहिये ॥ १३ ॥ कल्क क्रिये हुवे औष-
ध के निचोड़नेसे जो निकला हुआ रस है ॥ तीक्ष्णं द्रव्य से निकला बोह अव-
पीड कहा है ॥ १३ ॥ छ अंगुल की दो मुखवाली जो मन्नी है उसे चूर्ण डालक
र फूँके ॥ बोह चूर्णकोल प्रमाण मुखके बातसे धींकना हित होता है ॥ १४ ॥
जत्रु के कपर के रोग में कफके रोग में स्वर क्षय में ॥ अरुचि में जुकाम में शिर
के शूल में पीनस रोग में ॥ १५ ॥ सूजन मिरगी कोठु इनमें वैरेचन नस्य हि-
त है ॥ भीरु कृश बालक इनको नास चिकनाई के साथ प्रशस्त है ॥ १६ ॥
मलरोग में तान्नपात में निद्रामें विषमज्वर में ॥ चित्त विकार में कृमि में अ-
व पीडक नस्य अच्छा है ॥ १७ ॥ विष संज्ञ अत्यन्त उत्कट दोष में भी दिया
जाता है ॥ धीरे के द्वारा फूँकना जो है वोह खूब तीक्ष्ण का है ॥ १७ ॥
वैरेचन नास जैसे । गुड सोंठ नास है अथवा पीपल सैन्धव ॥

॥ जलपिष्टे न करणीक्ष नासामूर्द्ध भवा गदाः ॥ १८ ॥

मन्याहनु गलाद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः ॥ मधूक
सार कृष्णाम्ब्यां बच मरिच सैन्धवैः ॥ २० ॥ नस्य को
ष्णाग्निभसा पिष्टं दद्यात् संज्ञा प्रबोधनम् ॥ अपस्मा
रे तथोन्मादे सन्निपातेऽपतन्त्रके ॥ २१ ॥ सैन्धवं
श्वेत मरिचं सर्षपा कुष्ठ मेवच ॥ बस्तू मूत्रेण संपि-
ष्टं नस्यन्तन्द्रा निवारणम् ॥ २२ ॥

(श्वेत मरिचं सहिजनका बीजं)

रोहितस्य च पित्तेन भावितं मरिचं वचा ॥ कटफलं
चेति तच्चूर्णं देयं प्रथमनं बुधैः ॥ २३ ॥ अथ वृंहण
नस्यस्य कल्पना कथ्यतेऽधुना ॥ मर्शश्च प्रतिम-
र्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥ २४ ॥

भा० इनको जलसे पीसके नास लेनेसे कान आंख नाक इनकी कर्ब भवरो-
ग ॥ २६ ॥ और मन्याहनु गला इनमें डूबे नद्या भुजा और पीठ के रोग ना-
श होते हैं ॥ मडूके का साल पीपल और वच मरिच सैन्धव इनकी ॥ २० ॥
सौल गरम जलसे पीसकर नास देवे यह संज्ञा प्रबोधन है ॥ अपस्मार त-
था उन्माद सन्निपात अपतन्त्रक इनमें ॥ २१ ॥ सैन्धव सफेद मरिच सरसों
कूट ॥ इनको बकरी के मूत्रसे पीसकर नास तन्त्रा का दूर करने वाला है ॥
२२ ॥ सहिजन का बीज । रोझ मछली के पित्तेसे भावना दिया हुआ मरिच
वच । कायफल इनके चूर्णको बुद्धिवान् के द्वारा प्रथमन देना चाहिये ॥
२३ ॥ अनन्तर वृंहण नासकी कल्पना कहता हूँ ॥ स्नेहनेमें मर्श और प्रति
मर्श दो भेद कहे हैं ॥ २४ ॥

मर्शस्य नर्पणी मात्रा मुख्या या

तौः स्मृताऽष्टभिः ॥ मध्यमा तु चतुःशारौ हीना प्रण-
मिता मता ॥ २५ ॥ एकैकास्मिं स्तु मात्रेयं देया नासा
पुटे बुधैः ॥ मर्शस्य हि त्रिवलं वा धीव्यक्षेपवला-

बलम् ॥ २६ ॥ एकान्तरं द्युन्तरं वा नस्यं दद्याद्विचक्ष
णः ॥ (एकान्तरंम् एकं दिनमन्तरं नस्य शून्यं यत्र
तदेकान्तरम् ॥) त्यहं पञ्चाहमथवा सप्ताहं वा
सुयन्त्रितः ॥ (क) अथवा त्यहम् । त्रीण्य
हानि यावत् । प्रतिदिनं एवं पञ्चाहं सप्ताहञ्च ।
सुयन्त्रितः । सावधानः । यथाऽच्छिक्कं न भवति ।
मर्मं शिरो विरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः ॥ दो-
षोत् क्लेशात् क्षया चैव विज्ञेया स्ता यथा क्रमम् ॥
॥ २७ ॥ दोषोत् क्लेश निमित्तासु युज्याद्वमन शो-
धनम् ॥ (वमनरूपं शोधनम् ।)

भा० मर्षकी नर्यणी मुख्यमात्रा आठ शाण से कही है ॥ मध्यम चार शाण
की और हीन चार माषकी कही है ॥ २५ ॥ एक नासा पुट में इस मात्रा को
देना चाहिये ॥ मर्षकी दो तीन बार दोष के बला बल को देखकर ॥ २६ ॥
एक दिन बीच में देकर अथवा दो दिन बीच में देकर बुद्धिमान नास देवे ॥
एक दिन बीच में देना है । जिसे । तीन दिन पांच दिन अथवा सात दिन साव-
धान होके देवे ॥ (क) अथवा तीन दिन । प्रतिदिन ऐसे ही पांच
दिन अथवा सात दिन । सावधान । जैसे बे छींक न होवे । मर्म के शिरो
विरेक में विविध रोग कहें हैं ॥ दोष के उत्क्लेश से और क्षय से वोह यथा
क्रम जानने चाहिये ॥ २७ ॥ दोषोत् क्लेश निमित्त में वमन शोधन योजना
करे ॥ (वमनरूप शोधन)

अथ क्षय निमित्तासु यथास्वं चंहरां हितम् ॥ शिरो
नासादि रोगेषु सूर्यावर्त्तीर्द्ध भेदके ॥ २८ ॥ दन्त
रोगेऽबले हीने मन्यावा हंशसे गदे ॥ मुख शोषे
कर्णनादे वात पित्त गदे तथा ॥ २९ ॥ अकाल प-

अकाल पलिते चैव केशश्मश्रु प्रपातने ॥ पूज्यते
 वृंहणं नस्य स्निहैर्वा मधुरद्रवैः ॥ ३० ॥

[वृंहणं नस्य यथा] सशर्कर पयः पिष्टं भृष्टमाज्यैः

न कुङ्कुमम् ॥ नस्य प्रयोगेति हन्या ह्यनरक्त
 भवारुजः ॥ ३१ ॥ शूशङ्गानि शिरःकर्णं सूर्या
 वर्त्तद्भेदकान् ॥ नस्य स्यादणु तैलेन तथा ना-
 रायणो न वा ॥ ३२ ॥ माषादिना वा सर्पिर्भिस्तद्दे

पञ्च साधितैः ॥

भा० और तय निमित्त में वृंहण हित है ॥ शिर नाक नेत्र इनके रोगों में
 और सूर्यावर्त्त भेद भेदक इनमें ॥ ३० ॥ दंत रोग में अवल में मन्था वा-
 ज्जकधा इनके रोगों में ॥ मुख रोग शोष में कर्णनाद में वात पित्त के रोग में
 तथा ॥ ३१ ॥ अकाल में शिर के बाल पकने में केश और दाढ़ी इनके गिर
 जाने में ॥ वृंहण नास हित है ॥ अथवा मधुर द्रव और स्निहसे हित है ॥ ३० ॥
 वृंहण नस्य जैसे ॥ शर्करा के सहित दूध और घृत से भूती जड़ के सर पीस
 के ॥ नस्य प्रयोग से वात रक्त की योड़ा दूर होती है ॥ ३१ ॥ भव शंख नेत्र शि-
 र कान सूर्यावर्त्त भेद भेदक इनको भी नाश करता है ॥ अणु तेल से अथ-
 वा नारायण तेल से नास देवे ॥ ३२ ॥ माष आदि करके अथवा उन औषधों
 से साधित घृत से नास देवे ॥

भ्रमः अणु तैल सुश्रुतने कहा है ।] <क> जैसे तिल पेरने उपकरण अघात को लहू आदि के उनको लाकर गिनसे बहुत दिन तक तेल पेला गया हो उनको टुकड़े २ करके ऊखलंगे फूट कर कढ़ाई में पानी से भिगोकर काढ़ा करे उससे तेल निकलता है उस तेल को हाथ से जल में से निकलकर वात नाशक औषध कल्क से पक्कावे वोह अणु तैल है वोह वातरोग का नाशक है ॥

तैल कफे स्थाहते च केवले पवने तथा ॥ दद्यान्नस्य
सदापि ते सार्धं मज्जान भवे च ॥ ३३ ॥ साषात्म गु-
ह्यरात्राभिर्बलारू बुकरो हिषैः ॥ कृनोऽश्वगन्ध
या द्वायो हिङ्गु सैन्धवसंयुतः ॥ ३४ ॥ कौष्णो न-
स्य प्रयोगेण यक्षाघातं सकम्पनम् ॥ जयेदर्दित
वातञ्च मन्यास्तम्भाय वाङ्गको ॥ ३५ ॥ प्रतिम
र्शस्य मात्रा तु द्वित्रिविन्दु मिता मता ॥ प्रत्येकरो
नासिकया स्नेहनेऽति विनिश्चितम् ॥ स्नेह ग्रंथि
द्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः ॥ ३६ ॥ तर्जनीयं
स्वेद्विन्दुं सा मात्रा विन्दु संज्ञिता ॥

भा० तैल कफ में और वात में भी तथा केवल वात में भी नास देवे ॥ औ
पित्त में घृत मज्जा को भी देवे ॥ ३३ ॥ उदर के बाँच एस्ता चरियारा अंडी
राम कपूर ॥ असर्गंध इनका बनाया कड़ा हींग सैन्धव के साथ ॥ ३४ ॥
भरम सील नास के प्रयोग से संकणन पक्षाघात को जीतता है ॥ और अर्द्ध
त वात मन्यास्तम्भ अपवाङ्गक ॥ ३५ ॥ इनको भी नाश करता है प्रतिमर्श
की मात्रा दो विन्दु कही है ॥ हर एक से नासिका के द्वारा स्नेहन में अति वि
निश्चित है ॥ स्नेह में ग्रंथि द्वय तक डूबी और फिर से निकाली जड़ इस्ते
॥ ३६ ॥ जो व्यपकानी है तर्जनी की बन्द उसमात्रा की विन्दु संज्ञा है ॥

एवं विधौ विन्दु संज्ञै रक्षामिः एषा उच्यते ॥ ३७ ॥

सदेया मर्षे नस्येषु प्रतिमर्षो द्विविन्दुकः ॥ समयाः
 प्रतिमर्षस्य बुधैः प्रोक्ता श्वनुर्दश ॥ ३९ ॥ प्रभाते
 दन्तकाष्ठान्ते गृहा निर्गमने तथा ॥ व्यायामाध्व
 यवायान्ते विरामूत्रान्तेऽञ्जने ह्येते ॥ ४० ॥ कवला
 ने भोजनान्ते दिवास्वप्नोत्थिते तथा ॥ वमनान्ते त
 था सायं प्रतिमर्षः प्रयुज्यते ॥ ४० ॥ ईषदुच्छिक्क
 नान् स्नेहो यथावक्तुं प्रपद्यते ॥ नस्ये निमित्तान्तं
 विन्द्यात् प्रतिमर्षः प्रमाणतः ॥ ४१ ॥ (आत्रायुक्तम्)

भा० इस प्रकार की आठ वृन्दों की प्रमाण कहते हैं ॥ ३९ ॥ वोह मर्ष नास
 गेदेना चाहिये और प्रतिमर्ष दो वृन्दकी होता है ॥ प्रतिमर्ष के समय पंडितों
 ने चौदह कहे हैं ॥ ३९ ॥ सवेरे दानवन के बाद घरसे निर्गमनमें तथा ॥
 कसरत मार्ग चलना इनमें और मैथुन के अन्तमें मल मूत्र के अन्तमें अंजन
 करने पर ॥ ४० ॥ कवल के अन्तमें भोजन के अन्तमें दिनमें सोके उठने पर
 तथा ॥ वमन के अन्तमें तथा सायंकाल में प्रतिमर्ष देवे ॥ ४० ॥ छोड़िसे छीं
 कने से स्नेह जैसे मुखमें आना है ॥ नासमें स्थिर हवे उसके प्रमाण से प्रतिम
 र्ष जानि ॥ ४१ ॥ (आत्रायुक्त ।)

उच्छिष्टन्न पिवेचैन निष्ठीवे न्मुखमागतम् ॥
 (उच्छिष्टम् । नस्यावशिष्टं) क्षीणे तृष्णास्य शोषा
 र्ते बाले वृद्धे च पूज्यते ॥ ४२ ॥ प्रतिमर्षान्न जायन्ते
 रोगाश्चैवोर्द्ध जलुजाः ॥ वली पलितनाशश्च बल
 मिन्द्रियजं भवेत् ॥ ४३ ॥ विर्भातं निम्ब गम्भारी
 शिवा पोलुश्च काकिनी ॥ एकैक तैल नस्ये न प-
 लितं नश्यति ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ अथ नस्य विधिं वक्ष्ये

नस्य ग्रहणं हेतवे ॥ देशो वांतरजो मुक्ते कृतदन्त निष-
 र्वाणम् ॥ ४५ ॥ विशुद्धं धूमपानेन खिन्नभास्व गलं
 तथा ॥ उत्तान प्रायिनं किञ्चित् प्रलम्ब शिरसं नरम्
 ॥ ४६ ॥ आस्तीर्णं हस्तपादञ्च दस्ताच्छादित लोचन
 म् ॥ समुन्नामित नासाग्रं वैद्यो नस्येत योजयेत् ॥
 ॥ ४७ ॥ कोशेनाच्छिन्नं धारेण ह्येतारादि शुक्तिभिः
 ॥ शुक्त्या वा यंत्र शुक्त्या वा स्तोत्रैर्वा नस्य माचरेत् ॥
 ॥ ४८ ॥ (स्तोत्रैर्वस्त्रैस्तदुपलक्षितैस्तुलैरपि)

भा० उच्छीष्ट की नपीवे और सुखमें आयेज्जये की थूक देवे ॥
 (नासकी बाक्की) क्षीणमें तथामें सुख शेष से पीड़ित में हृष्ट की बालककी
 भी प्रशस्त है ॥ ४२ ॥ ऊर्ध्व जत्रु के रोग प्रतिमर्श से नहीं उत्पन्न होते हैं ॥ और
 कुर्ियां बालोंकी सफ़ेदी इनका नाशक तथा इन्द्रियों की दल होता है ॥ ४३ ॥
 बहेड़ा नीम कुम्हार हड़ तिसौड़ा कौवाढोटी ॥ इनके एक एक तैलकी न्या
 स से बालों की सफ़ेदी अवश्य नाश होती है ॥ ४४ ॥
 [अनन्तर नास ग्रहण के हेतु नासकी विधि कहते हैं ॥] वायु और धूल से रहित
 देशमें दातुन किया जवा ॥ ४५ ॥ धूम पानसे विशुद्ध ऊँचा माथा और गले
 में चिकानाई लगाया जवा ॥ चित लेराजवा कुछ सिरकी नीवे किये ऊँचे ऐसे
 मनुष्य को ॥ ४६ ॥ हाथ पांव फैलाकर कपड़े से नेत्र ठक के ऊपर नाक के
 अग्रको करके वैद्य नास को डाले ॥ ४७ ॥ सील गरम वरावर धारसे सोना चाँ
 दी की सुतही से ॥ अथवा सीपसे अथवा जिससे शुक्तिके साथ कोंवे से नास
 देवे ॥ ४८ ॥ (वस्त्र उस करके उपलक्षित रुई से भी)

नस्यैषां सिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकल्पयेत् ॥ न कुप्ये
 न प्रभाषेत नोच्छिक्तेन हसे तथा ॥ ४९ ॥ एते हि
 विहितः स्नेहो नैवान्तः सम्प्रपद्यते ॥ ततः कांस
 प्रतिश्याय शिरोऽक्षि गद सम्भवः ॥ ५० ॥ शृङ्गाद

क मभिष्याप्य स्थापयेन्न गिलेद् द्रवम् ॥ यच्च सप्त
दशैवस्थसां त्रा स्निहस्य धारणे ॥ ५१ ॥ उपविष्या-
थ निष्ठीवे त्रासा वक्त्रागतं द्रवम् ॥ वामं दक्षिणं पा-
र्श्वभ्यां निष्ठीवेत्सं मुखेन हि ॥ ५२ ॥ नीति नस्ये म-
नस्तापं रजः क्रोधञ्च सन्यजेत् ॥ शयीत निद्रा-
न्यक्त्वा च प्रोक्तानौ वाक् शतन्नरः ॥ ५३ ॥

भाव नास डालने के समयमें शिरको न हिलावे ॥ न गुस्सा करे ॥ न बीले
न छींके ॥ हंसे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार किया हुआ नास स्निह भीतर नहीं जाता
॥ उसे खासी जुकाम शिर नेत्र इनके रोग होनेहै ॥ ५५ ॥ शृङ्गाटक में फेंक
कर स्थापन करे द्रवको निगले नहीं ॥ पांच सात दश मात्रा तक स्निह धा-
रण करे ॥ ५६ ॥ नाक से मुखमें आयेहुए द्रवको बैठके धुके ॥ बाये रहने
तर्फ धुके और सामने न धुके ॥ ५७ ॥ नास लेनेपर मनुस्नाय धूल और
क्रोध इनको त्याग देवे लेदे नोद न लेवे चिन सी की गिन्ती न करे ॥ ५८ ॥

तथा शिरो त्रिरैकान्ते धूमो वाक् चलोहिता ॥ नस्ये-
त्तीक्ष्णं पदित्थानि लक्षणानि प्रयोगतः ॥ ५९ ॥ शृ-
ङ्गाहो नाति योगाहि विज्ञेयाः शास्त्र चिन्तकैः ॥
लाघवं मूलं संशुद्धिः स्नानसां व्याधिसंज्ञयः ॥ ६० ॥
चिनेन्द्रिय प्रसादश्च शिरसः शुद्धि लक्षणम् ॥ क-
ण्डू प्रदेहो गुरुता स्नानसां कफ संस्त्ववः ॥ ६१ ॥
मूर्द्धि हीन विशुद्धे स्तु लक्षणं परितोर्त्तितम् ॥
(हीन विशुद्धे हीन नस्ये न विशुद्धेः)

मस्तु लङ्गागमो वात वृद्धि रिन्द्रिय विम्रमः ॥ शृ-
न्यता शिरसश्चापि मूर्द्धि गाढ विरेचिते ॥ ६२ ॥

भा० तथा शिरसे विरेचन के अन्तमें जूझा अथवा कबल हित है ॥ नाममें क
हे ऊँचे तीन लक्षण प्रयोगसे ॥ ५४ ॥ शुद्धिहीन अतियोग शास्त्र के विन्नक
जाने ॥ हलकापन मलकी अच्छी तरह शुद्धि ॥ सोती के रोग का नाश ॥ ५५
चित्त इन्द्रियकी प्रसन्नता यह शिरके शुद्धि का लक्षण है ॥ शरीर में खुन
ली भारीपन सोती से कफ का स्वाव ॥ ५६ ॥ शिरकी हीन शुद्धि का यह लक्ष
ण कहा है ॥ हीन नस्य से विशुद्धि का । मगज का निकलना वातकी वृद्धि
इन्द्रिय भ्रम ॥ शिरका सूतापन भी यह लक्षण शिरके अधिक विरेचनमें
होते हैं ॥ ६७ ॥

मस्तु लुङ्गम् । मस्तकान्तः स्नेहः इन्द्रिय विभ्रमः ।

इन्द्रियाणां मन्यथा विषय ग्रहणः । हीनानि शुद्धे

शिरसि कफ वातघ्न माचरेत् ॥ तत्र हीनेन नस्येन

शुद्धे वातघ्न माचरेत् ॥ ५८ ॥ सम्यक् विशुद्धे शिरसि

सर्पिर्न स्येन दीयते ॥ कफ प्रसेकः शिरसो गुरुते

न्द्रिय विभ्रमः ॥ ५९ ॥ लक्षणान्तदति स्निग्धे तत्र

रूक्षं प्रदापयेत् ॥ भोजयेच्चा नभिष्यन्दि नस्ये वातिकं

मादिशेत् ॥ ६० ॥ वातिकम् । वानलमुपदिशेत् ॥

इति पञ्चकर्म्मणि ॥

भा० शिरके भीतर का गुदा । इन्द्रियों का अन्यथा विषय ग्रहण । हीन औ
र अतिशुद्ध शिरसे कफ वात नाशक उपाय करे ॥ उसमें हीन नस्य से शुद्ध
में वात नाशक उपाय करे ॥ ५८ ॥ अच्छी तरह शुद्ध ऊँचे शिरसे नास से
घृत दिया जाता है ॥ कफ स्वाव शिरसे भारीपन इन्द्रिय भ्रम ॥ ५९ ॥ यह
लक्षण स्निग्ध में होते हैं । उसमें रूक्ष औषध देवे । और नभिष्यन्दि भी
जन करावे । और नास में वानल वस्तु उपदेश करे ॥ ६० ॥ वानल उप
देश करे । इति पञ्चकर्म्म ।

[अथ धूमपान विधिः ।

धूमस्तु वडिधः प्रोक्तः शमनोदहण स्तथा ॥ रेचनः

कासहा चैव वामनो ज्ञेय धूमनः ॥ ६१ ॥ शमनस्य
 तु पर्यायी मध्यः प्रायोगिकः स्तथा ॥ वृंहणस्य
 च पर्यायी स्नेहनो मृदुरेव च ॥ ६२ ॥ रेचनस्यापि
 पर्यायी शोधनस्तीक्ष्ण एव च ॥ अधूमाहार्हाश्च ।
 खल्वेते श्रान्तो भीतश्च दुःखिनः ॥ ६३ ॥ दन्त-
 वस्ति विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥ पिपासि
 तश्च दाहार्त स्तालु शोथी तथोदरी ॥ ६४ ॥ शिरो
 धमितापी तिमिरी चूर्द्धाध्मान प्रपीडिनः ॥ क्षतो
 रस्कः प्रमेहार्तः पाण्डुरोगी च गर्भिणी ॥ ६५ ॥
 रूतः क्षीणोऽभ्यवहत क्षीर क्षौद्र घृतासवः ॥ भु-
 क्तान्न दधि मत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा ॥ ६६ ॥
 अकाले चाति पीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ॥

भा० अतन्तर धूमपान विधिः ॥ धूम छ प्रकारका कहाँ है । शमन वृंह
 ण तथा ॥ रेचनकास नाशक वसन ज्ञेय धूमन येह है ॥ ६१ ॥ शमनका
 पर्याय मध्य तथा प्रायोगिक है ॥ और वृंहण का पर्याय स्नेहन तथा मृ
 दुर है ॥ ६२ ॥ रेचन का पर्याय शोधन और तीक्ष्ण है ॥ धूमके अयोग्य
 येहै ॥ श्रान्त भीत दुःखिन ॥ ६३ ॥ वस्ति दिया जवा विरेचन लिया जवा
 रातमें जागा जवा ॥ व्यासा दाहसे पीडित तालु शोषवाला तथा उदरवाला
 ॥ ६४ ॥ शिरमें भसिकापवाला तिमिर रोगवाला और वमन आध्मान इन
 से पीडित ॥ उरजतवाला प्रमेह से पीडित पांडुरोगवाला गर्भिणी ॥
 ॥ ६५ ॥ रूत क्षीण दूध मधु घृत आसव इनको पीया जवा ॥ भज दही
 मछली इनको भोजन किया जवा और बाल वृद्ध दुवन्ता ॥ ६६ ॥ अका
 लमें वज्रत पीया जवा धूम उपद्रवों को काता है ॥

तत्रेष्टं सर्पिधः पानं नावनाञ्जन नर्पणम् ॥ सर्पि

रित्तरसं द्राक्षां पयो वा शर्करासु वा ॥ मधुराह्नौ सौ
 वापि वमनाय प्रदापयेत् ॥ ६८ ॥ धूमस्तु द्वादशात्
 वर्षात् गृह्यते शीतकात् न च ॥ कास प्रवास प्रति
 प्रयाया लन्त्याहनु शिरोरुजः ॥ ६९ ॥ वातप्लीष
 विकारांश्च हन्याद्धूमः सुयोजितः ॥ धूमो पथागा
 त्युरुषः प्रसन्नेन्द्रिय बाह्यनः ॥ ७० ॥ दृढकेश
 द्विजशमश्रुः सुगन्धि वदनो भवेत् ॥ धूमनाडी भ
 वेत्तत्र त्रिखण्डा च त्रिपल्लिका ॥ ७१ ॥ कुनिष्ठि
 का परीणाही राजमाषा गमान्तरा ॥

[राजमाषागमः सुभक्ता नाडी] ॥ ७२ ॥

भा० इसमें दूधपात इष्ट है और नास अंजन तर्पण इष्ट है ॥ ६८ ॥ दूध दार
 कारस दारस दूध अथवा शर्करा ॥ अथवा मधुर अश्वारस वमनके अर्थ देवे ॥
 ॥ ६९ ॥ धूम बारह बरस से ग्रहण किया जाता है और जस्ती से नहीं ग्रह
 ण किया जाता ॥ कास प्रवास जुकाम मन्त्याहनु शिर इनकी पीडा ॥ ६९ ॥
 वान कफ के रोग इनकी अच्छी तरह योजना किया धूम नाश करता है ॥ ध
 मके उपयोग से उरुष प्रसन्न इन्द्रिय बाणी और मन होता है ॥ ७० ॥ और
 केश बान्ना दाडी येह दृढ होने है ॥ इसमें धूमकी नली तीनहकडे का वा ती
 न पोर वाली ॥ ७१ ॥ चिटली उंगली के समान मोटी और बड़ा बड़द जोतेम
 फिक छिद्र वाली होनी चाहिये ॥

धूम नाडी भवेद्दीर्घा शमने रोगिणी इत्युक्ते ॥ ७२ ॥ च

त्वारिणान्मिने स्तद्वद्वान्विंश द्विमुदौ मता ॥

(मृदा चहरी) तीक्ष्णो चतुर्विंशतिभिः कासमे प्रोडशो

न्मितैः ॥ (तीक्ष्णो रेचने) दशाङ्गुलैर्वामनीये तथा

स्याद्द्वारा नाडिका ॥ (तथा दशाङ्गुलैस्तमिनाः) ॥

आरोगियों की श्रमन में चालीस जंगल खंवी धूवेकी नली होती है ॥
 ऐसेही जंगल में बत्तीस जंगलकी कही है ॥ ७२ ॥ रेचन में रेचन
 न चौदास जंगलकास नथक में सोलह जंगलकी नली कही है ॥
 (रेचन में) वामनीय में दस जंगल और दस जंगलकी ब्रणकी नली होती
 है ॥ (तथा दशाङ्गुल ।)

कलाय मण्डलस्थूला कुलत्या गम रन्ध्रिका ॥ अथे

पिदां प्रलिप्येच्च सुप्तलक्षणं द्वादशाङ्गुलाम् ॥

(द्विषिकाम् शरकारण्डम् ॥) धूम द्रव्येन कल्केन-

नेपश्चाद्याङ्गुलः स्मृतः ॥ कल्कं कर्पमितं लिप्त्वा

च्छाया शुष्कञ्च कांक्षेत् ॥ ७३ ॥ द्विषिका प्रपनी

याथ खेहाक्तां वर्णिमादरान् ॥ अङ्गुरैर्द्विषितां कृ-

त्वा घृत्वा नेत्राय रत्नके ॥ ७४ ॥ वदनेन पिवेद्धूमं व

दनं नैव संत्यजेत् ॥ नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखे नै

व वमिषुधीः ॥ ७५ ॥ शराव संपुटे लिप्त्वा कल्कम

ङ्गुरैर्द्विषिताम् ॥ छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ जरांते नैव

धूपयेत् ॥ ७६ ॥ एलादि कल्कं ग्रामने त्रिगन्ध स-

र्ज्जरसं मृदौ ॥ रेचने नोदा कल्कञ्च श्वासधेनु

तु कोषणम् ॥ ७७ ॥

भा० भद्र के समान मोटी और कुरथी जाने लायक छिद्रबाली । अनन्तर
 वारह जंगलके भाफ सरकंडे को । धूम द्रव्य के कल्कसे आठ जंगल नेपकहा
 है ॥ तैलेर कल्क का लेप करके छाया में सुकवावे ॥ ७३ ॥ सरकंडे को
 निकाल कर छिद्र पुक्त बत्ती को ॥ जलाके नली के छिद्र पर धरके ॥ ७४ ॥
 मुख से धूनी छोड़े और मुखसेही छोड़े ॥ और उसके अनन्तर नासिसे पीकर
 मुखसे ही निकाले ॥ ७५ ॥ शराव संपुट में अंगुरै से द्विषित कल्क को डा-

ले कर नलीमें छिद्रमें लगाकर ब्रणको उसी धूवेंसे धूपदेवे ॥ ७६ ॥ शमन में
इलायची आदिका कल्क और ब्रंहण में शल चिकनाई ॥ रेचन में दस्तावर क
ल्क कास नाशक में कटेली मरिच ॥ वमन में स्त्रायु चर्म से युक्त धूम पान
देवे ॥ ब्रणमें नीम वच आदि सब धूपन प्रशस्त है ॥ ७७ ॥

वमने स्त्रायु चर्मोद्यं दद्याद्दूमस्य पानकम् ॥ ब्रणे
निम्ब वचाद्यञ्च धूपनं संप्रशस्यते ॥ ७७ ॥ अ-
न्येऽपि धूमा गेहेषु कर्त्तव्या रोगशान्तये ॥

[सयथा] मयूर पिच्छं निम्बस्य पत्राणि बृहतीफल
म् ॥ मरिचं हिङ्गु मांसी च बीजं कार्पास सम्भवम् ॥
॥ ७८ ॥ छागरोमाहि निर्मोको विष्ठा वैडालिकी त
था ॥ (अहि निर्मोकः सर्पकञ्चुकः)

गजदन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद्घृत विमिश्रितम् ॥
गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् बाल ग्रहान् हरेत् ॥ ७९ ॥
पिशान् राक्षसान् हत्वा सर्वज्वर हरं भवेत् ॥

[इत्यपराजितो धूमः।]

भा० रोग शान्ति के वास्ते और भी धूवें घरमें करे ॥ बौहजैसे । मोर पंख नीम
के पत्ते दोनों कटेली ॥ मरिच हीङ्ग जय मासी कपास के बीज ॥ ७८ ॥ बक
रे के रोवें सांपकी केचली विल्लीकी विष्ठा ॥ हाथीदन्त इनका चूर्ण थोड़े
से घृतको मिलाके ॥ घरमें धूवां दिया हुआ सब बाल ग्रहोंको हरता है ॥ ७९ ॥
पिसाच और राक्षसोंको मारके सब ज्वरोंका नाशक है ॥ इति अपराजितो
धूपः ॥ मनस्तापं रजः क्रोधो धूमपाने निवारयेत् ॥

नेत्राणि धातु जान्याहर्नलं वंशादि जान्यपि ॥ ८१ ॥

[अथ गरुड्य कवल प्रतिसारण विधिः।]

तत्र गरुडष कवल प्रतिसारणानां भेदकोनि लक्षणा
 न्याह ॥] [तत्र गरुडषः] स्नेह क्षीर कषायादि द्वैः
 सम्पूर्ण माननम् ॥ ओषध्य स्थीयते तावद्विधि गरुड
 ष धारणे ॥ ८२ ॥ कफ पूर्णस्थिता यावच्छिदो दोषस्य
 वा भवेत् ॥ तत्र घ्राण स्तुति र्याव तावद्गरुडष धार
 णम् ॥ ८३ ॥ गरुडषान् सुस्थितः कुर्यान् स्वन्नभा
 ल गलादिकः ॥ मनुष्यस्त्वीं स्तथा पञ्च सप्त वा दोष-
 नाशनात् ॥ ८४ ॥

गलादिक इत्यादि शब्देन गरुडकपोलो गृह्यते संशु-
 तोक्तत्वात् ॥ चतुर्विधः स्याद्गरुडषः स्नेहनः शम-
 नस्तथाः ॥ शोधना रोपणश्चैव कवलश्चापि ता-
 दृशः ॥ ८५ ॥

भा० मनको सन्नाप धूल क्रोध इनको घूम पानमें न करे ॥ नली घातुवा
 की अंगुली वास आदिक की भी कहीं है ॥ ८२ ॥ अमन्ता कुल्ल कवल और
 मंजन इनकी विधि ॥ ८३ ॥ लक्षणां को कहते हैं ॥ ८४ ॥
 संपूर्ण मुख भरके ॥ तब तक रखा जाता है गरुडष धारण ॥ ८२ ॥
 तब तक में कफ से पूर्ण मुख होवे । ओं दोषको छेदन जब तक में हो ॥
 तथा और नाक को बहना जब तक में हो तब तक कुरले की धारण करना
 चाहिये ॥ ८३ ॥ स्वस्थ शिर गला आदिकमें चिकनाई लगाकर कुल्लो को
 करे ॥ मनुष्य तीन तथा पांच सात दोष नाशन नके करे ॥ ८४ ॥ गलादिक
 इत्यादि शब्दसे गरुड कपोल लिये हैं । मुशुन के कहने से । चार प्रकारको
 गरुडष होता है ॥ स्नेहन तथा शमन ॥ शोध और रोपण वैसे ही कवन भी ।
 ॥ ८५ ॥

स्निग्धोष्णैः स्निहिको वाने स्वादुशीतैः प्रसादनः ॥

पित्ते कटुश्च लवणैः रुषौः संशोधनं कृते ॥ ८६ ॥ क-
षाय तिक्त मधुरैः कटुषो रीयसो ब्रणैः ॥ इद्याद्वे-
षु चूर्णञ्च गरुडेषु कोलमात्रकम् ॥ ८७ ॥ कर्षप्र-
माणः कल्कश्च कवले दीयते बुधैः ॥ धार्यन्ते प-
ञ्चमाद्वर्षा इराड्वाः कवलादयः ॥ ८८ ॥ व्याधेर-
पचयस्तु द्विवैशद्यं वत्तं लाघवम् ॥ इन्द्रियाणां प्र-
सादश्च गरुडेषु विधृते भवेत् ॥ ८९ ॥ हरेदास्यस्य
वैरस्यं शोषपाकं ब्रणं नृषाम् ॥ दन्त चालञ्च गरुड-
पो वैशद्यं तु करोति हि ॥ ९० ॥

[अथ कवलः] वातपित्त कफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं
मुखे ॥ अर्द्धं निःक्षिप्य संचर्व्य निष्ठीवेत् कवले विधिः
॥ ९१ ॥ कवलः कुरुते काङ्गुलम्भत्येषु हरते कफम् ।

भा० वातमें स्निग्ध उष्णसे स्नेहिक गरुडेष दिया जाता है ॥ और पित्तमें
मधुर शीतसे प्रसादत ॥ तथा कफमें कटु अम्ल लवण और रुक्ष इन
से शोधन करे ॥ ८६ ॥ कषाय तिक्त मधुर से कटु उष्ण सर्पण ब्रणमें करे
॥ ब्रण गरुडेषमें चूर्ण आठ मासेदेवे ॥ ८७ ॥ एक तोला कल्क कवलमें दि-
या जाता है ॥ पांच वर्स से गंडुष कवलादिक लिये जाते हैं ॥ ८८ ॥ रोग
का घटना प्रसन्नता वैशद्य मुखमें हलका पन ॥ इन्द्रियों की प्रसन्नता गरुड-
ष धारण में येह लक्षण होते हैं ॥ ८९ ॥ मुख की विस्तता शोष पाक ब्रण
तथा ॥ दांत का हिलना इनको बुर करता है ॥ और गरुडेष वैशद्य को घर-
ना है ॥ ९० ॥ [अनन्तर कवल] वात पित्त कफ नोशक द्रव्य का कव-
ल मुखमें ॥ आधा डालकर और चबाके उसको घुंके येह कवल की विधि
॥ ९१ ॥ कवल मौजनमें दृच्छाको करता है और कफको हरता है ॥

नृणां शोषञ्च वैरस्यं दन्त चालञ्च नाशयेत् ॥ ९२ ॥

[अथ प्रतिसारणम्] दन्तजिह्वा मुखानां यच्चूर्णकल्कां
व लेहकैः ॥ शनैर्घर्षणं मङ्गुल्या तदुक्तं प्रतिसार-
णम् ॥ ६३ ॥ वैरस्यं मुखदौर्गन्ध्यं मुखशोकं तथा
नृणाम् ॥ अरुचिन्दन्ते पीडाञ्च निहन्ति प्रति सा-
रणम् ॥ ६४ ॥ हीने जाड्यकफोत् क्लेशावरसं ज्ञान-
मेव च ॥ अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा वमि-
ह्मः ॥ ६५ ॥ [अथ स्वेदविधिः]

स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तपोष्म स्वेद संज्ञितः ॥

उपनाहो द्रवः स्वेदः स्वं चान्तात्ति हारिणः ॥ ६६ ॥

तापस्वेद उष्मस्वेदश्च ताभ्यां संज्ञितः [उपनाहः स्वेदः]

भा० तथा तथा शोष विरसता दातों का हिलना इनको नाश करता है ॥
६२ ॥ [अनन्तर मञ्जन ॥ दांत जीभ मुख इनको जो चूर्ण कल्क अब-
लेह इनसे ॥ धीरे २ अंगलीसे घिसना उसको प्रतिसारण कहा है ॥ ६३ ॥
विरसता मुखकी दुर्गन्धि मुखशोष तथा तृष्णा ॥ अरुचि दातों की पीडा इन
को प्रतिसारण नाश करता है ॥ ६४ ॥ हीनमें जडता कफ का उत्क्लेश रस
का न जानना होना है ॥ और अतियोग से मुखमें पाक शोष तथा वमन
ह्म ॥ ६५ ॥ होता है ॥ [अनन्तर स्वेद विधि ।]

स्वेद चार प्रकारका कहा है । ताप उष्म स्वेद संज्ञित । उपनाह द्रव स्वेद
येह सब वातकी पीडाके नाशक हैं ॥ ६६ ॥ ताप स्वेद उष्म स्वेद उनका
रके संज्ञा किया गया ॥ [उपनाह स्वेद ।]

स्वेदो तापोष्मजो प्रायः प्लेष्मद्वी समुदीरितौ ॥

उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसङ्गे द्रवोहितः ॥ ६७ ॥

द्रवोहि द्रवस्वेदः) महाबले महाब्याधी शीते स्वे-
दो महाम् स्मृतः ॥ दुर्बले दुर्बल स्वेदो मध्यमे म

ध्यमो मतः ॥ ६८ ॥ वलासे रूक्षणाः स्वेदो रूक्षस्निग्धः क-
फानिले ॥ (रूक्षणाः रूक्षयतीति रूक्षणाः नन्द्यादि
त्वान्न प्रत्ययः।) कफ मेदो वृते वानि कोष्णं गे-
हं रवेः करान् ॥ नियुद्धं मार्गं गमनं दुर्गं प्रावरणं
ध्रुवम् ॥ ६९ ॥ चिन्ता व्यायाम भारांश्च सेवेता
मय मुक्तये ॥ येषां नस्यं प्रदातव्यं वस्तिश्चापि हि
देहिनाम् ॥ १०० ॥ शोधनीयाश्च ये केचित् पूर्व
स्वेद्याश्च ते मताः ॥ स्वेद्या ऊर्ध्वन्तयोऽपीह भग-
न्दर्य्यं प्रसस्तथा ॥ १०१ ॥ अशमर्य्या चातुरो जन्तुः
शमयेच्छस्त्र कर्मण ॥

भा० ताप और उष्णज स्वेद प्रायः कफ नाशक कहें ॥ उपनाह वात ना-
शक है पित्त अङ्गमें द्रव हित है ॥ ६७ ॥ द्रवस्वेद महामल शीत महा
रोग में महान् स्वेद कहा है ॥ दुर्बल को दुर्बल स्वेद और मध्यम को म-
ध्यम कहा है ॥ ६८ ॥ कफ में रूक्षणा स्वेद और कफ वान में रूक्ष स्निग्ध
स्वेद कहा है ॥ जो रूक्षान्करे वोह रूक्षणा नन्द्यादिन्व से न्तु प्रत्यय होता
है। कफ मेद से धिरे वान में गरम घर सूर्य के किरण ॥ लङ्घन रस्ते का
चलना मारी ओढ़ना येह निश्चय हित है ॥ ६९ ॥ और चिन्ता कसरन
तथा भार इनको रोग दूर होने के वास्ते सेवन करे ॥ जिन मनुष्यों को ना
सेवेना है और वस्ति भी जिनको देनी है ॥ १०० ॥ और जो कोई शोधन के
योग्य है उनको पहिले स्वेदन करना चाहिये ॥ येह तीनो पश्चात् स्वेद
न करने योग्य है भगंदर वाला बवासीर वाला ॥ १०१ ॥ और अशमरी
वाला। ये रोगी मनुष्य शस्त्र कर्म से अच्छे होते हैं ॥

(शस्त्र कर्मणः ऊर्ध्वं पश्चाच्चेति सश्रुते)

पश्चात् स्वेद्या हते पाल्ये मूढ गर्भ गदे तथा ॥ का
ले प्रजानाऽकाले वा पश्चात् स्वेद्या नितम्बिनी ॥ १०२

सर्वान् स्वेदान् निवाने च जीर्णान्तेवा विचारयेत् ॥ स्वे
दाद्यात् स्थितां दोषाः स्नेहं क्लिन्नस्य स्नेहिनः ॥ १०३ ॥
द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठान्तर्गत्वा यान्ति विरेकताम् ॥
स्नेहाभ्यक्त शरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी ॥ १०४ ॥

भा० प्राग् कर्मके पश्चात् इस प्रकार सुश्रुत में कहा है ॥ शून्य के निकालने में तथा बृहत् गर्भरोगमें पीछेसे स्वेदन करना चाहिये ॥ कालमें प्रसव ऊर्ध्व। अथवा अकालमें प्रसव ऊर्ध्व नितम्बवाली स्त्री को पीछेसे स्वेदन करना चाहिये ॥ १०३ ॥ सब स्वेदों को निवात स्थानमें और जीर्णके अन्तमें करे ॥ स्वेदसे स्नेह क्लिन्न वाले मनुष्य के धातुमेंके दोष ॥ १०३ ॥ पिघल कर कोष्ठ भीतर हो के दस्त होके निकल जाते हैं ॥ शरीर में तेल लगाये ङ्गवे के नेत्रों को शीतल से आच्छादन करके ॥ १०४ ॥

स्वेद्यभान शरीरस्यः हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥
(शीतैराद्रवत्त्वादिभिः।) अजीर्णो दुर्बली मेही क्षतः
क्षीणः पिपासितः ॥ अतीसारी रक्तपित्ती पाण्डुरो
गी तथोदरी ॥ १०५ ॥ मेदस्वी गर्भिणी चैव नहि स्वेद्या
विजानता ॥ स्विदादिषां यान्ति देहो विनाशं नि साध्यत्वं
याति चैषां विकाराः ।]

एतान्यपि मृदु स्वेदैः स्वेदसाध्यानु पाचरेत् ॥ मृदु
स्वेदं प्रयुञ्जीत तथा हन्मुष्क दृष्टिषु ॥ १०६ ॥

अतिस्वेदात्सन्धिः पीडा दाह स्तृष्णा हंमो अमः ॥

भा० शरीर को पसीना निकाले ङ्गवे के हृदयको शीतल वस्त्रसे स्पर्श करे ॥ (गोले कपड़े आदिसे) अजीर्ण वाला दुर्बल प्रमेहवाला उर क्षतवाला क्षीण व्यासा ॥ अतीसारवाला रक्तपित्तवाला पाण्डुरोगवाला तथा उदररोगवाला ॥ १०५ ॥ मेहवाला गर्भिणी इनको जानने वालेमें स्वेदन न कराना चाहिये ॥ स्नेह

से इनके देहका नाश होता है और इनके रोग साध्य नहीं होते ॥ इनको भी स्वेद साध्य होवेनो मृदु स्वेद से उपचार करे ॥ तथा हृदय अण्डकोण दृष्टि इनमें मृदु स्वेद करे ॥ १०६ ॥ अति स्वेद से सन्धिमें पीड़ा दाह तथा ग्लानि भ्रम

पित्ता सूक्ष्मपिडका कोपस्तत्र शीतैरुषा चरेत् ॥ १०७ ॥

[तत्र ताप स्वेदमाह] नेषु तापाभिधः स्वेदो बालुका व-
स्त्रपाणिभिः ॥ प्रतप्ते रम्लसिक्तैश्च कायेऽलक्तकवे-
ष्टिते ॥ १०८ ॥ [उष्ण स्वेदमाह] अथवा वात निर्ना

शि द्रव्यकाथ रसादिभिः ॥ उष्णैर्घटं पूरयित्वा पा-
र्श्वच्छिद्रं विधाय च ॥ १०९ ॥ विमुड्गास्यं त्रिख-

गडाञ्च धातुजां काष्ठजां सुत ॥ षडङ्गुला स्याद्गो

पुच्छां नाडीं युज्याद्विहस्तं काम् ॥ ११० ॥ मुखोप

विष्टं स्वभ्यक्तं दुरु प्रावरणा वृतम् ॥ हस्ति शुण्डि-

कया नाड्या स्वेदये द्वात्रिंशत् रोगिरणाम् ॥ १११ ॥

भा० पित्त रक्तकी पुनसियों की होता है उसमें पीतल उपचार करे ॥ १०७ ॥ उसमें तापस्वेद की कहते हैं ॥ उसमें ताप नाम स्वेद रेत कपड़ा हा-
य इनको ॥ तथा कर अम्ल द्रव्य सींचके चियड़े से लपेटी हुई कायामें किया जाता है ॥ १०८ ॥ [उष्ण स्वेद की किया जाता है ॥ अथवा वात ना-
शक औषध का उष्ण काढ़ा रस आदिसे ॥ घड़े को भरकर बगलमें छिद्र करके ॥ १०९ ॥ मुखको बन्द कर तीन इकड़ें वाली सुवर्णादि धातु की अथवा लकड़ी की ॥ छ अंगुल मुखवाली गावदुम दो हाथकी नली उसमें ल-
गावे ॥ ११० ॥ तेल लगाकर उष्ण और भारी कपड़े को ओढ़के अच्छी तरह बैठे हवे चानरोगे वाली को हाले श्रांडका नाडी से स्वेदन करे ॥ १११ ॥

(क) त्रिखण्डामिति स्वेदमौकर्यार्थं मूषडङ्गुलास्या

मिति । मूले षडङ्गुलं विशालमुत्वं गोपुच्छमिव क्र-
मकृशम् ॥ तेनाग्र गोपुच्छाग्र परिमाणेन कृशम्
नाडीम् अन्तः सरम्भां द्विहस्तिकाम् हस्तद्वय परि-
माणाम् । हस्तिशुण्डिकयेति हस्तिशुण्डेव क्रम-
शक्तत्वाद्नाडादयं संज्ञा ।

पुरुषा याममात्रां वा भूमिं संमार्ज्य स्वादिरेः ॥ का-
ष्ठैर्दग्ध्वा तथा मुद्व्य क्षीर धान्यान्म्ल वारिभिः ॥ ११२ ॥

वानघ्न पत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम् ॥

भा० (क) नील इकडे स्वेदकी आसानी के बाले । मूलमें छ अंगुल विशाल
मुख गोपुच्छ के समान क्रमसे पतली । उसे अग्रमें गोपुच्छ परिमाण से
पतली नाडी भीतर छिद्र सहित दोहाथ की हाथोंकी संडके समान क्रमसे
पतली होनेसे नाडी का येह नाम है ॥ अथवा साढ़े तीन हाथ भूमिको छिद्र
क के खैरको लकड़ी से जलकर उसी प्रकार दूध धान्यान्म्ल जलसे छिद्रक क
र ॥ ११२ ॥ अंडी के पत्तों से ढककर लेटे ऊँवे मनुष्य को स्वेदन करे ॥

एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानं स्वेद मान्वरेन ॥ ११३ ॥

[उपनाह स्वेदः] नथो पनाह स्वेदञ्च कुर्याद्वातहरौष-
धैः ॥ प्रदह्य देहं वानार्त्त क्षीर मांस रसादिभिः ॥ ११४ ॥
अम्लपिष्टैः सलवणैः सुरवोषणैः स्नेह संयुतैः ॥ उत
ग्राम्या नूपमांसैर्जीवनीय गणेन च ॥ ११५ ॥ दधि सौ-
वीरक क्षीरैर्वीरि तरत्रादिना तथा ॥ कुलन्ध्य माष-
गोधूमे रत्तसीतिल सर्षपैः ॥ शतपुष्पा देवदारु रो-
फाली स्थूल जीरकैः ॥ ११६ ॥

भा० इस प्रकार माषादि स्विन्नसे लेटे ऊँवे का स्वेदन करे ॥ ११३ ॥

उपनाह खेद । वैसेही बात नाशक औषधों से उपनाह खेद करे ॥ दूध मांस रस आदियों से वान से पीड़ित शरीर को गरम करके ॥ ११४ ॥ कौं जी से पीसा डवा लवण के सहित नैलके सहित सील गरम से ॥ या ग्राम्य अनूप मांस तथा जीवनीय गणसे ॥ ११५ ॥ तथा दही सौबीरक दूध इन से और वीर तरादि से । तथा कुरघी उड़द गेहूं और अलसी निल सरसों इनसे ॥ सौंफ देवदारु शफालि कालीजीरी ॥ ११६ ॥

गोरांडमूल जीरेश्च रास्ना मूलक शिग्रुभिः ॥ मिसिह-

णा कुठैश्च लवणैश्च संयुतैः ॥ ११७ ॥ प्रसारण-

श्च गन्धाम्बा बलाभिर्दशमूलकैः ॥ गुड्या वानरी-

बीजै र्यथा लाभ समाहृतैः ॥ ११८ ॥ क्षुण्णैः स्विन्नैश्च

वस्त्रैश्च बद्धैः संस्वेदयेन्नरम् ॥ महाशाल्वरा संज्ञो-

ऽयं योगः सर्वानिलाति हत ॥ ११९ ॥

(क) अस्यायमर्थः । उपनाह खेदज्ज्व कुर्व्यात् केन प्र-

कारेण त्याकाङ्क्षया तत्प्रकार माह । वानहरीषधैः

कथम्भूतैः । अम्लपिष्टैः । अम्लेन काञ्जिक नकादि-

ना पिष्टैः सलवणैः । स्निह संयुतैः । क्षीर मांस रसान्वितैः

। सुखेणैः । वानार्त देहं प्रदह्य प्रलिप्य स्वेदयेदित्यर्थः ।

भा० अण्डी का उड़ और जीरा इनसे रासना मूली सहिजना इनसे ॥ सौंफ पीपल । सफ़ेद तुलसी और अम्ल से युक्त लवण इनसे ॥ ११७ ॥ गंध प्रसारणी असगंध इनसे बरियारा दशमूल इनसे ॥ गिलाय फिवाच के बीज इन से इनमें नो मिलनावे उसको लाकर ॥ ११८ ॥ जव कूट करके स्वेदन कर के वस्त्र से बान्धकर उसे स्वेदन करे ॥ महाशाल्वरा नाम यह योग सब वानकी पीड़ा को नाश करता है ॥ ११९ ॥

(क) इसका यह अर्थ है कि उपनाह खेद करे किस प्रकार से इस आ

शंका में उस प्रकार की गर्द्धि है ॥ वातनाशक औषधों से । कैसी काँजी से पीसी
 हुई । काँजी मठा आदिसे पीसी हुई । सबरा के सहित । दूध मांस के रस से यु-
 क्त सील गरम । वात से पीड़ित रहेको लेप करके स्वेदन करे ॥

अथवा स्नान संपिष्टैः कोषैः सूक्ष्म पुटस्थितैः ॥ भौ-
 षजैः स्वेदयेत्किं वा स्विन्नेः कोषैः पटस्थितैः ॥

॥ १३० ॥ [द्रवस्वेदमाह] द्रवस्वेदस्तु वातघ्नो
 द्रव्यकाथेन पूरिते ॥ कदाहे कोष्ठके वापि सूपवि-
 ष्टेव गाहयेत् ॥ १३१ ॥ सौवर्णं राजतं वापि नाम्नं ।
 लोहञ्च दासजम् ॥ कोष्ठकन्तत्र कुर्वीतो च्छ्राये
 षड्विंश दङ्गुलम् ॥ १३२ ॥ आयामे वा नदेव स्या
 चतुष्कोणान्तु चिक्कणम् ॥

भा० अथवा अण्डासे पीसे जैयं सीलगरम सूक्ष्म पुट स्थित । औषधसे स्वेदन
 करे अथवा सिन्न सील गरम रुपड़े में स्थितसे स्वेदन करे ॥ १३० ॥

[द्रवस्वेदको कहते हैं ॥ द्रवस्वेद वान नाशक है । औषधियों के काढ़े से भ-
 री हुई कढ़ाई में अथवा हीन में भी वावड़ी में वेदे ज्वेके नाई नहावे ॥ १३१ ॥
 सोनेका चानीका तांबिका मोहेका कोष्ठक उसमें करे ऊँचाई में छवीस अंगुल
 ॥ १३२ ॥ और चौड़ाई में भी इतनाही होवे चौकोन साफ बनावे ॥

[पक्षान्तरमाह । नामेः षडङ्गुलं यावन्मग्नं काथस्य
 धारया ॥ कोष्णयाः स्कन्धयोः सित्तं स्तिष्ठेत् स्ति-
 ग्धतनुर्नरः ॥ १३३ ॥ (क) [अयमर्थः ।]

प्रथम तो चानिद्र द्रव्य काथेन कण्ठ पूरिते कोष्ठ
 के कदाहे वा सूपविष्ट स्तिष्ठेत् ॥ अथवा नामेः
 षडङ्गुल मूर्द्धं यावत्काथे मग्न उपविष्टः । पश्चा-

त्कायस्य धारया स्कन्धयोः सिच्यमानस्तिष्ठेत् ॥

यावत्कोष्ठकं परिपूर्णं भवतीत्यर्थः । कायपक्षे प्रथ-
तः स्नेहाभ्यक्त तनुरूप विशेषत् ॥

सुहृत्तेकं समासभ्य यावत्स्यात्त चतुष्टयम् ॥ तावत्
द्वगगाहेत यावदारोग्य निश्चयः ॥ १३४ ॥ एवं तैले
न दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम् ॥ एकान्तरो ह्यन्त
रो वा युक्तः स्नेहो ऽवगाहने ॥ १३५ ॥

(क) एतावता क्वाथो दुग्धञ्च नित्यमेव युज्यते स्नेहस्तु
दिनमेक न्हे वा दिने गमयित्वा युक्तः । अग्निमान्द्य
शङ्कयेति भावः ।

भा० पक्षान्तर को कहते हैं । नाभिसे छ अंगुल तक डूबा ऊँचा और गरम
सील काढ़ेकी धारसे कंधोंपर सींचा ऊँचा स्निग्ध शरीर मनुष्य ठहरे ॥ १३३ ॥
(क) यह अर्थ है कि पहले वात नाटक औषधके काढ़े से गलेतक भरे
ऊँचे कोष्ठकटाह में बैठा रहै ॥ अथवा नाभिसे छ अंगुल ऊपर जबतक काढ़े
में डूबा बैठा ऊँचा । पीछे से काढ़े की धार से कंधोंपर सींचा ऊँचा ठहरे ॥
तब तक कोष्ठ भरजावे । काय पक्षमें पहले से शरीर में तेल लगाया ऊँचा ठ-
हरे । एक सुहृत्ते से चार सुहृत्ते तक । तब तक न्हावे जबतक आरोग्य निश्चय
है ॥ १३४ ॥ इस प्रकार तेल दूध और घृतसे मनुष्य को स्वेदन करे एक दिन
बीच देकर अथवा दो दिन बीच देकर स्नेह युक्त ऊँचा स्नान करे ॥ १३५ ॥
उसे काढ़ा दूध नित्यही योजना करे । और स्नेह एक या दो दिन बीच देकर
योजना करे । अग्निमान्द्य की शंकासे यह मतलब है ॥

शिरा मुखे लोम कूर्पे धेमनीभिश्च तर्पयेत् ॥ शरीरे
वलमाधत्ते युक्तः स्नेहो ऽवगाहने ॥ १३६ ॥ जलसि-
क्तस्य वर्द्धन्ते यथा मूले ऽङ्गुरादयः ॥ तथै धातु हृदि ॥

हि स्नेह सिकस्य जायते ॥ १३७ ॥ नातः परतरः कश्चि
दुपायो वातनाशनः ॥ शीत शूलव्यु परमे क्षमम् गो-
रव निग्रहे ॥ १३८ ॥ दीप्तेऽग्नौ मार्दवे जात स्वेदनाहि
रतिमताः ॥ (अथ मूर्द्ध तैलविधिः)

अभ्यङ्गः परिषेकञ्च पिचुर्वस्ति रिति क्रमात् ॥ मूर्द्ध
तैलञ्च तुर्द्धास्याद् बलवत्त यथोत्तरम् ॥ १३९ ॥

(क) अभ्यङ्गः तैलेन शिरसो मर्दनम् । परिषेकः । शिर-
सि धारापातनं पिचुः । तैलाक्तं तूल । फाहा इति लोके
वस्ति वक्ष्यमाणः ॥

भा० शिरः मुख लीन कृप धमनीके द्वारा नृत्त करे । स्नेह युक्त स्नान करने
में शरीर में बल होता है ॥ १३६ ॥ जैसे मूल में जल संचि के अकुरादिक व
हते हैं । वैसेही स्नेह संचि की धातुवृद्धि होती है ॥ १३७ ॥ इससे सिवाय और
कोई उपाय वात नाशक नहीं है ॥ शीत शूल का उपरम क्षमम् और
भारीपन इनका निग्रह ॥ १३८ ॥ दीप्त अग्नि मृदुता येद स्वेदने में होते हैं ॥

[अनन्तर मूर्द्ध तैलविधि ॥ अभ्यंग परिषेक पिचु वस्ति इत्यु क्रमसे ॥
मूर्द्ध तैल चार प्रकारके हैं दोह यथोत्तर बल वाले हैं ॥ १३९ ॥

(क) तैल से शिरका मलना । शिर पर धार देनी । फाहा । वस्ति वक्ष्यमा-
रा हैं ॥

त्रयोऽभ्यङ्गनदयः पूर्वं प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृ-
ताः ॥ शिरो वस्ति विधिश्चात्र प्रोच्यते सूत्रसम्भ-
तः ॥ १४० ॥ शिरो वस्ति च्चर्म्मणः स्याद्विमुखे द्वा-
दशाङ्गुलः ॥ शिरः प्रमाणस्तं बद्धा मस्तके माध-
पिष्टकैः ॥ १४१ ॥ सन्धिरोधं विधायाणु स्नेहैः
कोर्याः प्रपूरयेत् ॥ नावहार्यं स्तु यादस्यान्नासा

कर्णमुख श्रुतिः ॥ १४२ ॥ वेदनोपशमो वापि मात्रा
 राणां वा सहस्रकम् ॥ स्वजानुना करावर्त्तं कुर्याच्छ्रो-
 टिकया युतम् ॥ १४३ ॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्व्व
 त्रैवैष निश्चयः ॥ विना भोजनमेवात्र शिरो वस्तिः
 प्रशस्यते ॥ १४४ ॥ प्रयोज्यस्तु शिरो वस्तिः पञ्च
 सप्त दिनानि वा ॥ विमोच्य शिरसा वस्तिं गृह्णीया-
 च्च समन्ततः ॥ १४५ ॥

भा० अभ्यंगादिक तीन पहले सब तरफ प्रसिद्ध कहे हैं ॥ सूक्ष्म सम्मती
 से शिरो वस्ति की विधि यहाँ पर कहने हैं ॥ १४० ॥ शिरो वस्ति चमड़े की दो
 मुख बारह अङ्गुल होती है ॥ शिरके परमाणु उसको मस्तक में बान्धकर
 उड़द की पीठी से ॥ १४१ ॥ शीघ्र सन्धिको बन्द करके सील गरम तैल से
 भर देवे ॥ तब तक धारण करे जब तक नाक कान मुख इनमें से स्नाव हो
 वे ॥ १४२ ॥ वेदना का प्रामन अथवा हजार मात्रा तक धारण करे ॥ अप-
 ने घुटने पर हाथ फेरे ॥ चूड़की के साथ ॥ १४३ ॥ येह एक मात्रा होती है
 सब जगह येह निश्चय है ॥ यहाँ पर भोजन के बिना ही शिरो वस्ति प्र-
 शस्त है ॥ १४४ ॥ शिरो वस्ति पाँच सान दिन देनी चाहिये ॥ शिरकी व-
 स्ति को विमोचन करके आस पास से शिर पर ग्रहण भी करे उसके अ-
 नन्तर सील गरम जल में स्नान करे ॥

ऊर्ध्वकायन्ततः कोष्णे नीरे स्नानं समाचरेत् ॥ अ-
 नेन दुर्ज्या रोगा वानजा यान्ति सङ्ख्यम् ॥ १४६ ॥
 शिरः कम्पादयस्तेन सर्व्व कालेषु युज्यते ॥
 पञ्च सप्त दिनानि वेत्युक्त्वा सर्व्वकाले ध्विति शिरः
 कम्पादि रोगान् दृष्टौ ज्ञेयम् ॥

[अस्य कर्त्तव्यं निधिः]

स्विदये त्वर्णी देशान्तु किञ्चिन्नुः पार्श्व शायिनः ॥

मूत्रैः स्नेहैः रसैरुषौः श्रोत्र रन्ध्रं प्रपूरयेत् ॥ १४७ ॥

कर्णाञ्च पूरितं स्वेच्छृत यञ्च शनानि वा ॥ सह-

स्रं वापि मात्त्राणां श्रोत्रकराठ शिरोगुहे ॥ १४८ ॥

मूत्राद्यैः पूरणां कर्णो भोजनात्याक् प्रशस्यते ॥ तै-

लाद्यैः पूरणां कर्णो भास्करेऽस्त मुपागते ॥ १४९ ॥

[तद्यथा] कर्णो शूलाकुले कोष्ठां वस्तुमूत्रं ससैन्धवम्

निः क्षिपेत्तेन शाम्यन्ति शूल पाकादिका रुजः ॥

॥ १५० ॥ शृङ्गवेरञ्च मधुकं सैन्धवं तैलमेव च ॥

कटूणां कर्णयोर्देयं मेतत् स्याद् वेदनापहम् ॥ १५१ ॥

भा० इससे पुर्ज्यय वानके रोग नाशको प्राप्त होते हैं ॥ १४६ ॥ उस्ते शिरः क
म्पादिक सब कालमें रहते हैं ॥ पांच सात दिन इस प्रकार कहकर सब का
ल में इस प्रकार शिरः कंपादि रोगकी अनुवृत्ति में जानना चाहिये ॥

[अनन्तर कर्ण विधि ॥ थोड़ेसे करवट जूवेके कर्णदेशोंमें सेदन करे ॥ मूत्र
स्नेह उष्ण रस इनसे कर्ण छिद्रकी भर देवे ॥ १४७ ॥ भरे हुए कर्णोंकी रक्षा को
सौ पान्ती ॥ अथवा हजार मात्रा कान कंद और शिरके रोगमें ॥ १४८ ॥ कर्ण
में मूत्रादिक से पूरणा भोजन से पहिले प्रशस्त है ॥ कानमें तैलादिक का डालना
सूर्य्यास्त होनेपर प्रशस्त है ॥ १४९ ॥ बौह जैसे] शूलसे व्याकुल कर्णोंमें
सील गरम वकरी का मूत्र सैन्धव के सहित ॥ डाले वस्से शूलपाक आदि री
ग शामन होते हैं ॥ १५० ॥ अद्रक मधुवा सैन्धव तैल । कटु उष्ण इनकी कानों
में देना चाहिये ॥ येह वेदना का नाशक है ॥ १५१ ॥

पीतार्क पत्र माज्येन लिप्तौ चन्तौ प्रतापयेत् ॥ त

द्वसः श्वरो लिप्तः कर्णशूल हरः परः ॥ १५२ ॥

[अथ लेप विधिः] आलेपस्य तु नामानि लेपो ले-

पन लिप्तकौ ॥ दोषघ्नो विषहा वार्यः स च लेपस्त्रि
धामतः ॥ १५३ ॥ त्रिप्रमाणश्चतुर्भागस्त्रिभागाद्धी
ङ्गुलीन्नतः ॥ आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दू-
षयति छविम् ॥ १५४ ॥

[चतुर्भाग त्रिभागाद्धीङ्गुलीन्नतः दोषघ्नो लेपो
यथा] शोथघ्नं दारु सिद्धार्थं शुण्ठी शोभाञ्जनत्वं
चाम् ॥ आरनालेल पिष्टानां प्रलेपः सर्वशोथहा ॥ १
१५५ ॥ (शोथघ्नी पुनर्नवा ।)

भा० जर्द आंक के पत्तों को घृत लगाकर आग पर सेके ॥ उसका रस
कान में डालने से वोह अत्यन्त कर्णशूल का नाशक है ॥ १५२ ॥
[अनन्तर लेपविधि ।] आलेप के नाम । लेप लेपन लिप्तक । येह
नाम है ॥ वे दोषघ्न विषनाशक वर्णों को अच्छा करने वाले ऐसे तीन
प्रकार कहे हैं ॥ १५३ ॥ तीन प्रमाण कहे हैं । चतुर्भाग त्रिभाग और अर्द्ध
ङ्गुल ऊंचा ॥ वोह गीला रोगनाशक होता है । और सूखा छवि को बिगा
ड़ता है ॥ १५४ ॥ चतुर्भाग त्रिभाग और अर्द्धङ्गुल ऊंचा दोष नाशक लेप
जैसे । पुनर्नवा देवदारु सरसों सोंठ सहिजने की छाल ॥ इसको आरनाल
से पीसकर लेप सब शोथ नाशक है ॥ १५५ ॥

(आरनाल का कौ प्रकरण में देख लेना) (पुनर्नवा शोथनाशक)

शिरिष मधु यष्टी च तगरं रक्तचन्दनम् ॥ रत्ना मांसी
निशा युग्मं कुष्ठं बालकमेव च ॥ १५६ ॥ इति संचू-
र्यं लेपोऽयं पञ्चमांस घृतस्त्रुतः ॥ जलेन क्रियते
सुप्तैर्दंशाङ्ग इति संज्ञितः ॥ १५७ ॥ वीसर्यञ्च वि-
षस्फोटान् शोथदुष्टं ब्रणान् जयेत् ॥

[विषहा लेपो यथा] अजादुग्ध तिलैर्लेपो नवनी

तेन संयुतः ॥ शोथ मारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्ण
 मार्तिकः ॥ १५६ ॥ (नवनीते नार्द्रि केणा ।)
 [परार्य लेपो यथा] रक्त चन्दन मञ्जिष्ठा लोध कु
 ष्ठ प्रियङ्गुः ॥ वदाङ्गुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुख
 कान्तिदाः ॥ १५७ ॥ अथ लेप विधिश्चैव प्रोच्यते
 सुप्त सम्मतः ॥ आलेपश्च प्रदेहश्च द्वौ भेदौ तस्य
 भाषितौ ॥ १५८ ॥ चर्माद्रि माहिषं यद् व्योच्यते सं-
 मित स्तयोः ॥ शीतस्तनुर्विशोषी च प्रलेपः पित्त
 हन्मतः ॥ १५९ ॥ आर्द्रो घनस्तथोष्णः स्यात्प्रदेहः
 श्लेष्म वातहा ॥

भा० शिरीस मुलहरी नगर लालचन्दन । इलायची जदामांसी दीनों हल
 दी कूट सुगन्धवाजा ॥ १५६ ॥ इनको पीस कर यह लेप पांचवाँ भाग घृत
 से युक्त ॥ जलसे किया जाता है इसको बुद्धिवानों ने दशाङ्गु ऐसा कहा है
 ॥ १५५ ॥ यह विसर्प विषफोड़े स्त्रजन दुष्टव्रण इनको जीतना है ॥ विष
 नाशक लेप जैसे ॥ बकरीके दूधसे तिलोंको पीस कर मारवन के साथ ॥
 यह लेप भिलविकी स्त्रजनको नाश करता है अथवा काली मिट्टीका लेप
 नाश करता है ॥ १५६ ॥ (आधे मारवनसे) विषहा लेप जैसे ।
 लाल चन्दन मजीठ लोध कूट प्रियङ्गु । वटके अङ्गुर मसूर इनका लेप
 व्यङ्ग नाशक मुखकी कान्ति को देने वाला है ॥ १५७ ॥ अनन्तर बुद्धिवानों
 की सम्मतीसे लेप विधि कहते हैं ॥ आलेप और प्रदेह यह दो भेद उसके क
 हे हैं ॥ १५८ ॥ उनका प्रमाण भैंसके गीले चमड़े के समान कहते हैं ॥
 शीतल पतला सूखा ऊँचा प्रलेप पित्त नाशक कहा है ॥ १५९ ॥ गोला गा-
 दा तथा उष्ण प्रदेह होता है यह कफ वात का नाशक है ॥

न रात्रौ लेपनं कुर्याच्छुष्यमाणां न धारयेत् ॥ १६० ॥
 शुष्यमाणा सुपेक्षित प्रदेहं पीडनमग्रति ॥ तमस्ता

पिहितो ह्यूष्मा लोमकूपमुखे स्थितः ॥ १६१ ॥ वि
ना लेपेन निर्याति रात्रौ न लेपयेदतः ॥

(तमसा रात्रन्धकारिण) रात्रावपि प्रलेपादि व्रणो
देयो विचक्षणैः ॥ अपाकि न्यति गम्भीरे रक्तस्लेष्म
समुद्भवे ॥ १६२ ॥ [ऽलेपो यथा]

मधुकं चन्दनं मूर्वा नलमूलञ्च यर्पटम् ॥ उशीरं
बालकं पद्मं प्रलेपः पित्तशोथहृत् ॥ १६३ ॥

भा० रात को लेप न करे और सूके जूने को न धारण करे ॥ १६० ॥ पीड़न के वा
ले सूके जूने को भी रहने देवे ॥ रोम कूपके मुखमें रहनेवाली गरमी तमसे
ढकी रहती है ॥ १६१ ॥ वोह रातमें बिना लेपके निकलती है हुएवास्ते लेप न
करे ॥ (रात की अन्धेरी से) चतुरं व्रणोंमें रातको भी प्रलेपादि देना चाहि
ये ॥ कच्चे अति गम्भीर रक्तपित्त से उत्पन्न जूने में ॥ १६२ ॥

[प्रलेप जैसे । महुवा चन्दन मरोडफली नरकटकी जड़ पित्त पायड़ा ॥ खस
सुगंधवाला यद्वाख बनका लेप पित्तके शोथ का नाशक है ॥ १६३ ॥

[प्रदेहो यथा । बीजयूर जटाहिंसा देवदारु महौषध

म् ॥ रास्त्राऽरणिः प्रदेहोऽयं वातशोथविनाशनः ॥

॥ १६४ ॥ (अरणि रणिमन्थः) कृष्णाधुराणपि

रयाक शिगुत्वकसिकता शिला ॥ गोमूत्रपिष्टः

कोष्णोऽयं प्रदेहः स्लेष्मशोथहा ॥ १६५ ॥

[अथ शोणितस्त्रावणविधिः]

भा० प्रदेह जैसे । विजोरे की जड़ कठेली देवदारु सोंठ । रास्त्रा अरणी इनका
यह प्रदेह वात शोथ का नाशक है ॥ १६४ ॥ अग्निमन्थ । पीपल पुरानी खल
सहिंजने की छाल रेत रुड़ ॥ गोमूत्र से पीसा जवा यह सील गफ प्रदेह कफ
शोथ का नाशक है ॥ १६५ ॥ [अनन्तर रक्तस्त्रावण विधिः।]

शोणितं स्त्रावये ज्ञन्नो रामयं प्रसमीक्ष्य च ॥ प्रस्थं
 प्रस्थाद्धं मथवा प्रस्थाद्धौद्धं मथापि वा ॥ १६६ ॥
 शरत्काले स्वभावेन शोणितं स्त्रावयेन्नरः ॥ त्वग्र
 दोष ग्रन्थि शोषाद्या नश्यन्ति रुधिरोज्झवाः ॥ १६७ ॥
 व्यश्ले वर्षासु विद्युत्सु शीते ग्रीष्मे शरदपि ॥ मध्या
 न्हे शीतकाले च रुधिरं स्त्रावयद् बुधः ॥ १६८ ॥
 मधुरं वर्णतो रक्तः मशीतोष्णं तथा गुरु ॥ शोणितं
 स्निग्धं विस्रज्ज्वं विदग्धं पित्तं कृद्भवेत् ॥ १६९ ॥ विस्र
 तां द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा ॥ भूम्यादि पञ्च
 भूतानां मेते रक्ते गुणाः स्मृताः ॥ १७० ॥

भा० मनुष्य रोगको देख कर रुधिर निकलवावे ॥ प्रस्थमर आधाप्रस्थ अ
 थवा उत्तै भी आधा निकलवावे ॥ १६६ ॥ मनुष्य शरत्कालमें स्वभावसे ही
 रुधिर निकलवावे ॥ त्वचाके दोष गाँठ सज़न आदिक रक्तसे ज़वे नाशको प्रा
 प्त होते हैं ॥ १६७ ॥ बादल के न होनेमें विजली संयुक्त वर्षामें शीत ग्रीष्म में
 शरद में भी । मध्याह्न में शीत कालमें भी बुद्धिवान् रुधिर निकलवावे ॥ १६८ ॥
 मधुर वर्णसे रक्त जशीत उष्ण तथा भारी ॥ चिकनी दुर्गन्धि युक्त विदग्ध रु
 धिर पित्तको करने वाला होता है ॥ १६९ ॥ दुर्गन्धता पतलापन राग चन्नन
 तथा विलय ॥ भूमि आदि पांच भूतोंको यह गुण रक्तमें कहें हैं ॥ १७० ॥

रक्ते दुष्टे भवेच्छोयो रक्तमण्डलमेव च ॥ व्यथा
 दाहश्च पाकश्च कण्डूश्च पिङ्गकोद्धमः ॥ १७१ ॥
 वृद्धे रक्ताङ्गः नेत्रत्वं शिराणां पूर्यता तथा ॥ गात्रा-
 राणां गौरवं निद्रा मेहो दाहश्च जायते ॥ १७२ ॥ क्षीरो
 ज्ञे नधुराकाङ्क्ष मूर्च्छा च त्वचि रुक्षता ॥ श्लेष्मि-

ल्यञ्च शिराणां स्या द्वाता दुन्मार्गं गामिता ॥ १७३ ॥
 (वातात् रूक्षदौ रयज नितात्) अरुणं फेनिलं रू-
 क्षं परुषं तनु शीघ्रगम् ॥ आस्कन्दि सूचीनिस्रोदि
 रक्त स्याद्वात दूषितम् ॥ १७४ ॥ पित्तेन पीतं हरितं नी-
 लं श्यावञ्च विस्त्रकम् ॥ अस्वा दूषां माक्षिकाणां
 पिपीलिका मनिष्टकम् ॥ १७५ ॥ शीतलं बद्धलं स्नि-
 ग्धजैः रिकोदक सन्निभम् ॥ मांस पेशी प्रभं स्कन्दि
 मन्दगं कफ दूषितम् ॥ १७६ ॥ द्विदोष दुष्टं संसृष्टं
 त्रिदुष्टं पूति गन्धकम् ॥ सर्व लक्षणा संयुक्तं काञ्चि
 काभञ्च जायते ॥ १७७ ॥

भा० दुष्ट रक्तमें सूजन लाल चकते । पीड़ा दाह पाक खुजली फुनसियां
 यह होती हैं ॥ १७१ ॥ रक्त के बढ़ने में शरीर और नेत्र लाल शिराओंकी पूर्णता
 तथा ॥ अङ्गोंमें भारीपन निद्रा प्रमेह और दाह येह होते हैं ॥ १७२ ॥ रक्त के
 क्षीणमें मधुरकी इच्छा सूच्छा त्वचामें रुक्षता । शिथिलता शिराओंकी होती
 है ॥ वातसे उन्मार्ग गमन होता है ॥ १७३ ॥ (रूक्ष और क्षीणता से)
 अरुण जागवाला रूखा कठोर सूक्ष्म शीघ्र चलनेवाला फुटकियों से युक्त सुई
 सी चुभनेवाला । ऐसा रक्त वातसे दूषित होता है ॥ १७४ ॥ पित्त से पीला हर नी-
 ला काला दुर्गन्धि युक्त ॥ अमधुर ऊषण माक्षिका और चींटी चनकी अप्रिय होता है
 ॥ १७५ ॥ कफसे बिगड़ा हुआ शीतल मोटा चिकना गेरू के जल सदृश ॥ मांसकी
 घेली समान गाँठोंसे युक्त मन्द चलनेवाला होता है ॥ १७६ ॥ दो दोषों से बिगड़ा हुआ
 मिले हुए लक्षणा होता है तथा तीन दोषों से वृष्ट दुर्गन्धिवाला होता है ॥ सर्व
 लक्षणों से युक्त काँजी के समान होता है ॥ १७७ ॥

विषदुष्टं भवेत्श्यावं नासिकोन्मार्गं तथा ॥ विसं-
 काञ्जिक संकाशं सर्वकुष्ठकरं तथा ॥ १७८ ॥ इन्द्र-
 गोप प्रभं ज्ञेयं प्रकृति स्थम संहनम् ॥ शोथे दाहे

ऽङ्गपाके च रक्तवर्णोऽसृजः स्त्रुतो ॥ १७६ ॥ वात रक्ते
 तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले ॥ पाराङ्गुरोगे श्लोषदे
 च विषकुष्ठे च शोणिते ॥ १७७ ॥ ग्रन्थ्यवुदा पचीक्षु
 द्र रोगाधि मन्थकाभिधे ॥ विदारी स्तन रोगेषु गात्रा
 र्णां सादगौरवे ॥ १७८ ॥ रक्ताभिष्यन्द तन्द्रायां पूति
 त्राणस्य देहिके ॥ यक्षन् स्नीह विसर्पेषु विद्रधौ पि-
 डकोद्धमे ॥ १७९ ॥ करौर्गोष्ठ घ्राण वक्त्रा र्णां पाके
 दाहे शिरो रुजि ॥ उपदंशे रक्त पित्ते रक्त स्वावे प्रश-
 स्यते ॥ १८० ॥ दोषेष्वे शु प्रक्षरौर्वा जलौका लावका
 हिभिः ॥ अथवापि शिरा मोक्षैः कारयेद्रक्त पातन-
 म् ॥ १८१ ॥ न कुर्वीत शिरा मोक्षं कृशस्याति व्यवा-
 यिनः ॥ स्त्रीवस्य भीरोगभिणयाः स्रस्तायाः पा-
 राङ्गुरोगिणाः ॥ १८२ ॥

भा० विषसे उष्ण काला नाक से जानेवाला । दुर्गन्धि युक्त काँजी के समान
 सब कुष्ठों को करनेवाला होता है ॥ १७६ ॥ प्रकृतिस्य पतला वीर बज्रही के
 समान जानना चाहिये ॥ सृजन दाह अंगपाक रक्तवर्ण फस्त ॥ १७६ ॥ वात
 रक्त तथा कुष्ठ पीडाके सहित दुर्जय वानमें ॥ पाराङ्गुरोग श्लोषदे विषसे दुष्ट
 रुधिर ॥ १७७ ॥ गाँठ अर्बुद अपची क्षुद्ररोग ओधमन्थक ॥ विदारी स्तनरो
 ग शरीरकी पीडा और भारीपन ॥ १७८ ॥ रक्ताभिष्यन्द तन्द्रा दुर्गन्धियुक्त ना
 क मुख देह वाला ॥ निर्झी पिलही विसर्प विद्रधि और फुनसियों के होने में
 ॥ १७९ ॥ कान होठ नाक मुख इनका पाक दाह शिरकी पीडा ॥ उपदंश रक्त
 पित्त इनमें फस्त अच्छी है ॥ १८० ॥ इन दोषों में पड़ने से अथवा जोक न
 म्बी इनसे ॥ अथवा फस्त से रुधिर निकल जावे ॥ १८१ ॥ दुर्बल को बज्रत
 मेषुन करनेवाली को नपुंसक की इरपोक की गर्भरणी की जन्मा की पाराङ्गुरोग
 वाले की ॥ १८२ ॥

पञ्च कर्म विशुद्धस्य पीत ज्ञेहस्य चार्शसाम् ॥ सर्वा

इं शोथ युक्ताना मुदरि श्वास कासिनाम् ॥ १८६ ॥
 छर्द्यतीसार कुष्ठाना मति स्विन्नतरोरपि ॥ ऊन षोड
 श वर्षस्य गत सप्तति कस्य च ॥ १८७ ॥ आघातात्
 स्त्रुत रक्तस्य शिरा मोक्षो न शस्यते ॥

(तथा च स्त्रुतरक्तस्य रक्त पित्तादिना गत रक्तस्य)
 एषां चात्यधिके रोगे जलौकाभिर्विनिर्हरेत् ॥ तथा
 च विष जुष्टानां शिरामोक्षो न शस्यते ॥ १८८ ॥ गो
 शृङ्गे न जलौकाभिर लावूभि रपि त्रिधा ॥ वातपित्त
 कफैर्दुष्टं शोणितं स्वावयेद् बुधः ॥ १८९ ॥ द्विदोषा
 भ्यान्तु दुष्टं यत् त्रिदोषै रपि दूषितम् ॥ दूषितं स्वा
 वयेद् युक्त्या शिरामोक्षैः यदै स्तथा ॥ १९० ॥ गृह्णा
 ति शोणितं शृङ्गं दशाङ्गुल मितं म्वलात् ॥ जलौ
 का हस्त मात्रं तु तस्वी तु द्वादशा ङ्गुलम् ॥ १९१ ॥

भा० पंच कर्मसे शुद्ध की स्नेह पीयेकी बवासीर बालेकी ॥ सब अंगमें शोथ
 युक्त की उदर वाला प्रवास कास वाले की ॥ १८६ ॥ वमन अतीसार कुष्ठ बाले
 की अति स्विन्न शरीर वाले की ॥ सोलह वरस से कम की और सतर वरस वा
 ले की ॥ १८७ ॥ चोट से रुधिर निकले की इनको फल अच्छी नहीं है ॥ उस
 प्रकार रक्त पित्तादि निकले रक्त का ॥ इनके रोग बहुत बढ जानेमें जोकों से
 रुधिर निकाले ॥ वैसेही विष युक्तों की शिरा मोक्ष अच्छा नहीं है ॥ १८८ ॥
 शीङ्ग से जोकों से और तस्वी से भी तीन प्रकार ॥ वात पित्त कफ से दुष्ट रुधि
 र को बुद्धिमान निकलवावे ॥ १८९ ॥ दो दोषों से जो दुष्ट और जो तीनों दोषों से
 दूषित ॥ ऐसे विगड़े जूँचे की नस्तर से युक्ति के साथ निकल पावे ॥ १९० ॥
 दशा उङ्गुल की सींगी के द्वारा दलात्कारसे निकलवावे ॥ और हाथ भरकी
 जोक तथा बारह अंगुल की तस्वी ॥ १९१ ॥

पदमङ्गुल मात्रस्य शिरा सर्वाङ्ग शोधिनी ॥ शीते

निरन्ते मूर्च्छाति निद्रामीति मदश्चमैः ॥ १६२ ॥ यु-
 क्तेना प्रावये द्रक्तं तथा विणमूत्र सङ्गिनाम् ॥ शो-
 रिते चा प्रवृत्तेषु कुष्ठ त्रिकटु सैन्धवैः ॥ १६३ ॥
 मर्दयेत् व्रण वक्त्रञ्च तेन रक्तं प्रवर्त्तेते ॥ तस्मान्न
 प्रीति नात्युषो ना स्विन्नेनाति नापिते ॥ १६४ ॥ पी-
 त्वा यवागूं तृप्तस्य स्त्रावये च्छोषितं बुधः ॥ अति
 स्विन्नस्योष्ण काले तथैवाति शिरा व्यधात् ॥ १६५ ॥
 अति प्रवर्त्तते रक्तं तत्र कुर्यात्प्रति क्रियाम् ॥

भा० नस्तर एक जंगल का नुस सरोरुह ॥ शीतमें उपवास में मूर्च्छा पीड़ा नि-
 द्रा भय मद श्रम इनसे ॥ १६२ ॥ युक्त में फल न खुलवावे और मल मूत्र सङ्गि-
 योंकी ॥ रुधिर के न निकलने में कूट त्रिकुट सैन्धव इनसे ॥ १६३ ॥ व्रण का
 मुख मले । उससे रक्त निकलना है ॥ इस वास्ते न शीतमें न अति उष्ण में
 न अति स्विन्न में न अति नापित में रुधिर निकलवावे ॥ १६४ ॥ यवागू को
 पीकर तृप्तज्वे की फलत खुलवावे ॥ अति स्विन्नकी उष्णकाल में वैसीही अ-
 ति शिरा व्यध से ॥ १६५ ॥ रक्त बहुत निकलना है उसका ब्रह्मण करे ॥

अति प्रवृत्ते रक्तेषु लोघ्र सज्जर साज्जनेः ॥ १६६ ॥ य-
 वगोधूम चूर्णेऽथ धव धन्वन गैरिकैः ॥ सूर्य निम्बो-
 कि का चूर्णे वामतः स्थापितं नरः ॥ १६७ ॥ मुखं
 व्रणस्य दद्धा च प्रीति प्लोष चो व्रणाम् ॥ विधे-
 दूर्ध्व शिरान्ताव हृत्त क्षरेण वह्निना ॥ १६८ ॥ व्र-
 णं कपायं सन्धते रक्तं स्कन्दयते हिमः ॥ व्रणस्य
 भोजये त्सारो दाहः सङ्कोचये च्छिराः ॥ १६९ ॥

भा० वज्रन रक्त के निकलने लोथ रत्न रसचत इनसे ॥ १६६ ॥ और जब गेड़ के चूर्ण से और धव जवासे गेरू इनसे ॥ और सांप की कैंचली का चूर्ण वारं तरफ रखके मनुष्य इनसे ॥ १६७ ॥ ब्रण का मुख बान्धकर शीतल द्रव्यों से उपचार करे ॥ अथवा उसके ऊपर सिरको बान्धे । और द्वार अग्नि से जलावे ॥ १६८ ॥ ब्रण को कपाय जोड़ना है और शीतल रक्त को जमाना है ॥ ब्रण के मुखमें शार योजना करे और दाह सिरा का सङ्कोच करते हैं ॥ १६९ ॥

रक्ते दुष्टे ऽवशिष्टे ऽपि व्याधिनैव प्रकुप्यति ॥ अतो
रक्षेत सावशेषं रक्ते नाति स्त्रुति र्हिता ॥ २०० ॥ आ-
न्ध्य माक्षेपकं तृष्णान्तिमिरं शिरसोरुजः ॥ पक्षा-
घातं श्वास कासौ हिक्का दाहौ च पाण्डुताम् ॥ २०१ ॥
कुरुते ऽतिस्त्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च ॥ देहस्योत्प-
त्ति रस्त्रजो हेहस्ते नैव धार्यते ॥ २०२ ॥ रक्तं जीवस्य
चाधार स्तस्मा द्रक्षेद सृगुबुधः ॥ शीतोप चारैः कुपि-
ते स्त्रुत रक्तस्य मारुते ॥ २०३ ॥ कोप्येण सर्पिषा शोथं
सव्यथं परिषेचयेत् ॥ क्षीणस्यैण शशोरम्भ हरिण-
च्छाग मांसजः ॥ २०४ ॥

भा० दुष्ट रक्त के बाक्की रहने में भी व्याधी प्रकोप को नहीं प्राप्त होती ॥ इसवास्ते अवशेष के सहित रक्षा करे रक्त का वज्रन निकलना हिन नहीं है ॥ २०० ॥ अन्ध्या पन आक्षेपक तृष्णान्तिमिर शिरकी पीड़ा ॥ पक्षाघात श्वास कास हिचकी दाह पाण्डुता ॥ २०१ ॥ इनको वज्रन निकलना रक्त करना है ॥ और मरण को भी करता है । रक्त से शरीर की उत्पत्ति है और देह उसीसे रहता है ॥ २०२ ॥ रक्त जीवका आधार है इसवास्ते बुद्धिवान् रक्त की रक्षा करे ॥ प्रसूत स्त्रिये का शीत उपचार से कुपित हुवे वानमें ॥ २०३ ॥ सौल गरुड एतसे पीड़ा के शोथको सींचे ॥ क्षीण को हरिण खरगोश उरम्भ लाल हिन वकरा इनका ॥ २०४ ॥

रसः समुचितः पाने क्षीरं षष्टिकया हितम् ॥ पीडा

शान्तिर्लघुत्वं च व्याध्युपद्रव संक्षयः ॥ २०५ ॥ मनः
स्वास्थ्यम्भवे च्छिन्हं सम्यक्निःसारिनेऽसृजि ॥

व्यायाममैद्युनं क्रोधशीतस्नानप्रदानकान् ॥ २०६ ॥
एकाशनं दिवानिद्राक्षारान्मृकटुभोजनम् ॥ श्लोकं
वादमजीर्णञ्च त्यजेदावलदर्शनान् ॥ २०७ ॥

[अथप्रसादनकर्मणि]

सेक आश्रयोत्तनं पिण्डी विडालस्तर्पणं तथा ॥ सु-
टपाकेऽञ्जनञ्चेति कृत्वा नेत्रमुपाचरेत् ॥ २०८ ॥

भा० श्लोकप्रशस्त है और पीनेमें साठी चावलके साथ दूध हित है ॥ पी-
डा की शान्ति हलकापन रोगके उपद्रवों का नाश ॥ २०५ ॥ मनकी स्वस्थ-
ता होती है । अच्छी तरह फल लियेमें येह लक्षण होते हैं ॥ कसरत मैद्युन
क्रोधशीतस्नान कठोरचान इनकी ॥ २०६ ॥ एकबार भोजन दिनमें प्रा-
यन क्षार अम्ल कटु इन रसोंका भोजन ॥ श्लोक वाद और अजीर्ण इनकी
चल आने तक त्याग देवे ॥ २०७ ॥

[अनन्तर नेत्रकी स्वच्छता के कर्म ।] सेक आश्रयोत्तन पिण्डी विडाल तर्पण
तथा ॥ सुट पाक अञ्जन इनको करके नेत्रका इलाज करे ॥ २०८ ॥

[अथ कल्पोविधिः तत्र सेकविधिः ।]

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हिनः ॥ मी-
लिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरङ्गुलात् ॥ २०९ ॥
स सत्नेहो भवेत् वान्तिपित्ते रक्ते च रोपणः ॥ लेखन-
स्तु कफे कार्यस्तस्य मात्राभिधीयते ॥ २१० ॥ य-
ड्भिर्वाचं शनैः स्नेहे चतुर्भिश्चैव रोपणं ॥ तैस्त्रि-
भिर्लेखनं कार्यः सेको नेत्रप्रसादने ॥ २११ ॥

भा० [अनन्तर कल्प विधि ।] उसमें सेक विधि ॥ मनुष्य की आँख बन्द कर
वाकर चार उंगल ऊपर से सेक देना चाहिये । यह सब प्रकार के नेत्र रोग में
हित है ॥ २०६ ॥ स्नेह के सहित वान में हित है और पित्त तथा रक्त में रोपण ॥
कफ में लेखन करना चाहिये उसकी मात्रा कहना हूँ ॥ २१० ॥ स्नेह में छ सौ मात्रा
और रोपण में चार सौ मात्रा तथा नीन सौ मात्रा लेखन में नेत्र प्रसादन सेक क
रना चाहिये ॥ २११ ॥

निमेषौ न्मेघरां पुंसा मङ्गुल्या च्छोटिकाथ वा ॥ गुर्व
क्षरोच्चारणं वा वाङ्माल्यं स्मृता बुधैः ॥ २१२ ॥ से
कस्तु दिवसो कार्यो रात्रौ चात्यन्ति के गदे ॥ एरराड-
स्य दलैः पिष्टैः पक्कमाज्यं पयो हितम् ॥ २१३ ॥ सु
खोष्णं नेत्रयो रन्तः सिक्कं वानार्ति नाशनम् ॥

भा० मनुष्यों का निमेष और उन्मेष उंगली की चुटकी ॥ अथवा गुरु अक्षरका
उच्चारण इसको बुद्धि वानों ने वाङ्माल्य कहा है ॥ २१२ ॥ सेक दिन में करना चाहि
ये और रात में अत्यन्तिक रोग में करना चाहिये ॥ अराडी के पत्ते पीसकर उसे
पकाया हुआ बकरी का दूध हित है ॥ २१३ ॥ सील गरम नेत्र के भीतर सीचा हुआ
वान की पीडा का नाशक है ॥

[अथा श्योतन विधिः ।]

क्वाथ दौघासव स्नेह विन्दुना यत्तु पातनम् ॥ द्यङ्गु
लोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्र्योतनं हितम् ॥ २१४ ॥
विन्दवोऽष्टौ लेखनेषु रोपणे दश विन्दवः ॥ स्नेहे
ते द्वादश प्रोक्ताः शीतले कोष्णा रूपिणः ॥ २१५ ॥
उष्णो त्वशीत रूपाः स्युः सर्वत्रै वैष निश्चयः ॥ वाते
तिक्कं तथा सिग्धं पित्ते मधुरं शीतलम् ॥ २१६ ॥ क
फे तिक्कोष्णा रूपाः क्लृप्ताश्च श्योतनं हितम् ॥ आश्र्यो

तनानां सर्वेषां मात्रास्या द्वाक् शतोन्मिता ॥ २१७ ॥

ततः परं लोचनाम्भे षजा नामयोगतः ॥ आश्व्यो

तनं न कर्तव्यं निशायां केन चित् क्वचित् ॥ २१८ ॥

[तद्यथा] किल्वादि पञ्च मूलेन बृहत्येराड शिशुभिः

॥ क्वाथ आश्व्योतने कोषीणा वाताभिष्यन्द नाशनः ॥

२१९ ॥ [अथ पिराडी विधिः] युक्त भेषज कल्क

स्य पिराडीक बल मात्रया ॥ वस्त्र खण्डेन संबद्धा ने

त्रेऽभिष्यन्द नाशिनी ॥ २२० ॥

भा० अनन्तर आश्व्योतन विधि ॥ काढ़ा मधु आसव स्नेह इनको दो अंगतः खु

ले नेत्र में जोवून् २ रुपकाना है उसको औश्व्योतन कहा है वोह हिन है ॥

॥ २१४ ॥ लेखन में आठ बून् रोपण में दशबून् ॥ स्नेह में बारह बून् कहे

हैं ॥ पीतल में सील गरम ॥ २१५ ॥ उष्ण में पीत होवे ऐसे सब जगह निश्च

य है ॥ बात में निक तथा स्निग्ध पित्त में मधुर और पीतल ॥ २१६ ॥ कफ में ति

क्त उष्ण रूक्ष क्रमसे आश्व्योतन हिन है ॥ सब आश्व्योतनों की सौ मा

त्रा होती है ॥ २१७ ॥ उसके अनन्तर नेत्रों को औषधों के अयोग से ॥ आश्व्यो

तन न करना चाहिये रात में किसी से कभी ॥ २१८ ॥ [बाह जैसे]

बेल आदि पञ्चमूल और कबेली अंडी सहिजन इनका ॥ काढ़ा आश्व्योतन में

गरम सील वाताभिष्यन्द का नाशक है ॥ २१९ ॥ [अनन्तर पिंडी विधि]

युक्त औषध के कल्क की पिंडी कवल मात्रा से ॥ वस्त्र से डकड़े से बन्धी

ऊई नेत्र के अभिष्यन्द को नाशक है ॥ २२० ॥

स्निग्धोष्णा पिरिडका वाते पित्तसा पीतला अता ॥

रूक्षोष्णा श्लेष्मणा प्रोक्ता विधिरुक्ता बुधैरयम् ॥

२२१ ॥ [सायथा] धात्री विरचिनापित्ते शिशु प

त्र कृता कफे ॥ [अथ विडालक विधिः] विडालको बहिलेपो नेत्र पद्म विवर्जितः ॥ तस्य

मात्रा परि ज्ञेयां मुखालेप विधानवत् ॥ २२२ ॥ यष्टी
गैरिक सिन्धूत्य दर्वी तार्क्ष्यः समांशकैः ॥ जलपि
ष्टैर्वहिर्लेपः सर्व नेत्रामया यहः ॥ २२३ ॥

[अथ तर्पणविधिः] वाता तप रजोर्हनि वैप्रमन्युत्तान
शायिनः ॥ अभितो माष चूर्णेन क्लिन्नेन परि पिण्ड
तौ ॥ २२४ ॥ समौ दृढौ च संबोधौ कर्त्तव्यौ नेत्र कोशयोः
॥ पूरयेत् घृत मण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ २२५ ॥
सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेन वा ॥

भा० स्निग्ध उष्ण पिंडिका-बात में और पित्त में वो शीतल कही है ॥ स्तूली उष्ण
कफ में कही है ॥ येह विधि बुद्धिवानों ने कही है ॥ २२१ ॥ बोह जैसे ।

आवलों से बनाई जड़ दिकिया पित्त में । सहिजने के पत्तों की कफ में हित है ॥

[अनन्तर विडालक विधि ॥ नेत्र पद्म से रहित बाहर लेपको विडालक क
हते हैं ॥ उसकी मात्रा मुख आलेप के विधान समान जाननी चाहिये ॥ २२२ ॥
मुलहठी गेरू सैन्धव दारहरवी रसौन इनको सम भाग लेकर ॥ जल से पीसके
बाहर लेप किया जवा सब नेत्र रोगोंका नाशक है ॥ २२३ ॥

[अनन्तर तर्पण विधिः] वात आतप धूल इनसे रहित घरमें चित सोये ज्वेके
॥ नेत्र में चारों तरफ उड़द के गीले चून को लगावे ॥ २२४ ॥ सम और दृढ़ आँ
खों के चारों तरफ से घेरकर जैसे कबेरी होती है ॥ उसके भीतर टिघला घृत वा
मांड़ वा सील गरम जल इसे ॥ २२५ ॥ अथवा सौचारका धीया घृत या दूधका
घृत इनसे भरे ॥

निमग्नान्यक्षि पद्ममणि यावत् स्युस्तावेदेव हि ॥

॥ २२६ ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ॥

भिषग्भिरेष विख्यात स्तपर्ण स्योदितो विधिः ॥ २२७ ॥

यद्रूक्षञ्च परिष्यन्दि नेत्रं कुटिल माविलसू ॥ शीर्षी

पद्म शिरोत्पात कृच्छ्रोन्मीलनं संयुतम् ॥ २२८ ॥
 तिमिरार्जुन शुक्राद्यै रभिष्यन्दाधि मन्थकैः ॥ शु-
 ष्कादि पाक शोथाभ्यां युतं वात विपर्ययैः ॥ २२९ ॥
 दत्तेन तर्पयेत् सम्यङ् नेत्ररोग विशारदः ॥ तर्पणं
 धारये हर्तुं रोगे वातां शतं बुधैः ॥ २३० ॥ स्वस्थे क
 फे सन्धि रोगे चान्वां पञ्च शतानि च ॥ षट् शता
 नि कफे कृष्णा रोगे सप्त शतानि हि ॥ २३१ ॥ दृष्टि
 रोगे शता न्यष्टा वधिमन्थे सहस्रकम् ॥

भा० निमग्न नेत्र यद्म जब तक होते हैं तब तक ही भरे ॥ २२६ ॥ उसके
 अनन्तर धीरे २ खोले ॥ वैद्यों ने यह तर्पण की विधि प्रसिद्ध कही है ॥ २२७ ॥
 जो रूखा परिघन्दि कुटिल मैला ॥ नेत्र पलकें गिरीझड़ शिरोत्पन्न कट से उन्मी
 लन से युक्त ॥ २२८ ॥ तिमिर अर्जुन शुक्र आदिसे युक्त और अभिष्यन्द अधि
 मन्थक इनसे ॥ तथा शुष्क नेत्र पाक शोथ इनसे युक्त वात विरुद्धों से ॥ २२९ ॥
 दिये झवे औषध से अच्छी तरह पर नेत्र रोग का जानने वाला तर्पण करे ॥ व
 त्म रोगमें सौमात्रा तर्पण धारण करे ॥ २३० ॥ स्वस्थ में कफ के सन्धिरोग में पा
 न सौ ॥ और छ सौ तथा कफ के कृष्ण रोग में सप्त सौ ही ॥ २३१ ॥ दृष्टि रोग में
 आठ सौ अधिमन्थ में हजार ॥

सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेव हि तर्पणम् ॥ २३२ ॥ पूर्णे
 चापाङ्ग मार्गेण स्नायित्वाक्षि शोधयेत् ॥ स्निग्धेन
 यव पिष्टेन स्नेह दीर्ये रितं ततः ॥ २३३ ॥ यथा स्वन्धू
 म पानेन कफमस्य विरेचयेत् ॥ सकाहं वा त्र्यहं वा
 पि पञ्चाहं तर्पणञ्चरेत् ॥ २३४ ॥ तर्पणे तृप्ति लि
 ङ्गानि नेत्रस्थितानि लक्षयेत् ॥ सुखं स्वभावबोध
 त्वं वैशद्यं नेत्रपाटवम् ॥ २३५ ॥ निर्हन्ति व्याधिशा

न्तिश्च क्रियालाघवमेवच ॥

(क) निर्हन्तिः सुखं क्रियालाघवम् । नेत्रस्य क्रियायां
निमेषोन्मेषादौ लघुता । गुर्वाविल मतिस्त्रिगुध
मश्रु करडूप देहवत् ॥ घर्षतोद युतं नेत्र मति
र्पित मादिशेत् ॥ २३६ ॥ आस्त्राव शोफ पीडाय
मुपदेह समाकुलम् ॥ रुक्ष मस्त्राव मरुणं नेत्रं
स्या ह्रीन तर्पितम् ॥ २३७ ॥ अनयोर्दोष बाहुल्या
त् प्रयतेत् चिकित्सिते ॥ रुक्ष स्निग्धोपचाराभ्या
मेतयोः स्यात्प्रति क्रिया ॥ २३८ ॥

(अनयोः अति तर्पित हीन तर्पितयोः)

भा० और वातरोग में हजार मात्रा तर्पण रखना ही चाहिये ॥ २३२ ॥ अपाङ्ग-
मार्ग से पूर्ण में स्त्राव कराकर नेत्र शोधन करावे ॥ स्निग्ध जवके आटे से स्नेह
वीर्य में जो कहा है उससे ॥ २३३ ॥ अपने गौर पर धूम पान करके इसके कफको
निकाले ॥ एकदिन वा तीनदिन अथवा पांचदिन तर्पण करे ॥ २३४ ॥ तर्पण
इन नेत्रके दृष्टि लक्षणों को जानलेवे ॥ सुख स्वप्न अवबोधता वैशद्य नेत्र
की पढ़ता ॥ २३५ ॥ सुख क्रिया लाघव रोग की शान्ति येह लक्षण हैं ॥

(क) सुख । नेत्र की क्रिया में अर्थात् निमेष उन्मेष आदि में लघुता । भारी
पैला अति स्निग्ध और अश्रु खुजली बुद्धके मानिन्द ॥ घर्ष तोद से युक्त
अर्थात् पीडा विशेष इनसे युक्त नेत्र को अति तर्पित कहे ॥ २३६ ॥ आस्त्राव
स्त्रावन पीडा वृद्ध की सी व्याकुल ॥ रुखी पानी का जाना अरुण नेत्र होते हैं
हीन तर्पण से ॥ २३७ ॥ इनकी दोषों की अधिकता से चिकित्सा में यत्न करे
॥ रुक्ष स्निग्ध उपचार से इनकी चिकित्सा होती है ॥ २३८ ॥

(अति तर्पित और हीन तर्पितों की)

दुर्दिना तूष्ण्या शान्तिषु चिन्तायां संभ्रमेषु च ॥ अ-
शान्तो यद्रवे चादि तर्पणं न प्रशस्यते ॥ २३९ ॥

[अथ पुटपाक विधिः] द्वे विल्वे स्निग्ध मांसस्य परद्रव्यं पलं मतम् ॥ द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ २४० ॥ तदेकत्र समालोड्य पत्रैः सुपरि वेष्टितम् ॥ पुटपाक विधानेन तत्र पश्चात्तद्रसं वृधैः ॥ २४१ ॥ तर्पणोक्ते न विधिना यथा वदवधारयेत् ॥ दृष्टि मध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ॥ २४२ ॥ स्नेह नो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा । हितः स्निग्धोऽति सूक्ष्मस्य स्निग्धस्य स तु लेखनः ॥ ४३

भा० बुद्धिसे अतिशीत में उष्ण में विन्ना में संधर्म में ॥ उपद्रव के शान्त न होने में नेत्र तर्पण प्रशस्त नहीं है ॥ २३६ ॥ [अनन्तर पुटपाक विधिः] हरिण आदिका मांस दो पल और औषध पल २ भर ॥ और द्रव पाव भर सब को एक जगह पीसे ॥ २४० ॥ इन सबको एक जगह मिलाकर पत्रों से अच्छी तरह लपेट के ॥ पुटपाक के विधान से उसको पकाकर उसके अनन्तर उस रस को ॥ २४१ ॥ तर्पण में कहे ऊँचे विधान से अच्छी तरह पर धारण करे ॥ नित्य चित्त सुलाकर दृष्टि के बीच में डाले ॥ २४२ ॥ बोह स्नेहन लेखन रोपण ऐसे तीन प्रकार होता है ॥ अति सूक्ष्म को स्निग्ध हित होता है और स्निग्ध को सेस न हित है ॥ २४३ ॥

(क) दृष्टिर्वलार्थः इतरः पिनास्य ग्राह्य वातस्तत् ।

(इतरो रोपणः) स्नेह मांस वसा मज्ज मेदः स्यादौषधैः कृतः ॥ स्नेहनः पुटपाकः स्याद्धार्योऽयं वाक्शतं नरः ॥ २४४ ॥ जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यं संयुतैः ॥ हृष्य लोहं रजस्ताम्रं शङ्खं विद्रुमं सिन्धुजैः ॥ २४५ ॥ समुद्र फेन कासी संस्नेजोऽञ्जदधि मस्तुभिः ॥ लेखनो वाक्शतं तस्य परन्धारणा मिष्य-

ते ॥ स्तन्य जाड्गल मध्वाज्य तिक्त द्रव्य विपाचितम् ॥

भा० दृष्टि के बलके वास्ते और बाकी पित्त रक्त व्रण वान इनके नाशक हैं ॥
रोपण । तेल मांस बसा मज्जा मेद औषध से पकाये डूबे । यह स्नेहन पुट पाक
है ॥ इस मनुष्य सौ मात्रा तक धारण करे ॥ २४४ ॥ हरिल आदिकों के यकृत मां
स लेखन द्रव्य से युक्त ॥ कान्ति लोह का चुरा नाम्बा शंख मृगा सैन्धव ॥ २४५ ॥
समुद्र फेन कसीस सुरमा दही का पानी इनसे लेखन सौ मात्रा तक रखे ॥ २४६ ॥
खी का दूध मृग मांस मधु तिक्त द्रव्य से पकाया घृत ॥

लेखनात् त्रिगुणो धार्यः पुट पाकस्तु रोपणः ॥

[तिक्तक द्रव्याख्याह] निम्बामृता वृष पटोल निदि-
ग्धिकाभिः स्यात् पञ्च तिक्तक इति प्रथितो गणो
ऽयम् ॥ २४७ ॥ आचरेत् तर्पणोक्तां तु क्रियां व्या-
पत्ति दर्शने ॥ व्यापत्ति दर्शने मिथ्या कृत पुटपाक
जनित व्याधि दर्शने ॥

तेजांस्यनिल माकाश मादर्शम्भा स्वराणि च ॥

नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुट पाकवान् ॥ २४८ ॥

भा० यह रोपण पुटपाक लेखन से त्रिगुण धारण करना चाहिये ॥ २४७ ॥ ति-
क्तक द्रव्यों की कहने हैं ॥ नीम गिलोय वांसा पटोल कदेली आदसे ॥ पंच ति-
क्तक होता है ॥ इस प्रकार यह गण कहा है ॥ २४७ ॥ रोग दर्शन में तर्पण में क
हुई क्रिया करे ॥ (क) मिथ्या किये डूबे पुटपाक से उत्पन्न रोगों के
देखने में । नेत्र वान आकाश आइना और प्रकाशवाली वस्तु इनको ॥ तर्पण
किया डूबा और पुटपाक किया डूबा न देखे ॥ २४८ ॥

[अथ्याञ्जन विधिः ।] अथ संपक्व दोषस्य प्राप्तम-
ञ्जनमाचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियेत येन तद्द्रव्यं चाञ्ज-
नम् मतम् ॥ २४९ ॥ [तद्यथा] रसो वटीस्तथा

चूर्णमिति त्रिविधमञ्जनम् ॥ यथा पूर्वं बलं तेषु
स्नेहमाहर्मनीषिणः ॥ २५१ ॥ तत्प्रत्येकं विधा
प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा ॥ स्नेहनञ्चेति लिङ्गानि
तेषां विस्तरतः शृणु ॥ २५२ ॥ लेखनं क्षारतीक्ष्ण
रसैरञ्जनमुच्यते ॥ नेत्रवर्त्मशिराजालाश्चोन्न
शृङ्गाटकस्थितम् ॥ २५३ ॥ मुखनासादिभिर्दोष
सुदक्षिण्यस्त्रावयेच्च तत् ॥ कषायतिकृकं चापि
सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ २५४ ॥ स्नेहस्य शैत्यात् व-
र्ण्यं स्यात् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम् ॥ मधुरं स्नेहमण्डं
तदञ्जनं स्यात् प्रसादनम् ॥ २५५ ॥

भा० अन्तर अञ्जनविधिः । अन्तर पकेइव रोपबाले को अञ्जन करे ॥
जिसे अञ्जन किया जाता है उस द्रव्यको अञ्जन कहते हैं ॥ २५० ॥
बोह जैसे] सबही तथा चूर्ण ऐसे तीन प्रकार अञ्जन होता है ॥ उनमें पहले
१ स्नेह वलयुक्त सुनियों ने कहा है ॥ २५१ ॥ बोह हरणक तीन प्रकार
लेखन रोपण तथा ॥ स्नेह नइस प्रकार उनके लक्षण विस्तार से सुनो ॥ २५२ ॥
क्षार तीक्ष्ण अम्ल रसों से लेखन अञ्जन कहते हैं ॥ नेत्र वर्त्म शिराजालका
शृङ्गाटक में स्थित ॥ २५३ ॥ मुख नाक आंख इनसे रोपको उखेड़कर बोह
वहाता है ॥ कषाय तिकभी स्नेहके सहित रोपण कहा है ॥ स्नेहको शीत ता
हीनेसे वर्णकी हिन होता है और दृष्टि के बलको बढ़ाने वाला है ॥ मधुर स्नेह
से युक्त नो अञ्जन होता है प्रसादन है ॥ २५५ ॥

दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेह नार्थश्च तद्धितम् ॥ सेराड
मात्रा वर्त्तिस्तु लेखनी स्यात् प्रमाणात् ॥ २५६ ॥ सा
र्द्धं करेण कभिना रोपणी वर्त्तिरिष्यते ॥ क्रियते स्ने
हनी वर्त्तिर्हि हरेण कमात्रया ॥ २५७ ॥

ते ॥ स्तन्य जाङ्गल मध्वाज्य तिल द्रव्य विपाचितम् ॥

भा० दूध के बलके बासे और बाकी पिन रक्त घण वात इनको नाशक हैं ॥
रोपण । नेल मांस वसा मज्जा मेद औषध से पकाये हुवे । येह खिहन पुट पाक
है ॥ इस मनुष्य सौ मात्रा तक धारण करे ॥ २४४ ॥ हरिल आदिकों के यकृत मांस
लेखन द्रव्य से युक्त ॥ कान्ति लोह का चूरा ताम्बा शंख मृगा सैन्धव ॥ २४५ ॥
समुद्र फेन कसीस सुरमा दहोका पानी इनसे लेखन सौ मात्रा तक रखे ॥ २४६ ॥
खी का दूध शृगमांस मधु तिल द्रव्य से पकाया घृत ॥

लेखनात् त्रिगुणो धार्यः पुट पाकस्तु रोपणः ॥

[तिलक द्रव्याणामाह] निम्बामृता वृष पटोल निदि-
ग्धिकाभिः स्यात् पञ्च तिलक इति प्रथितो गणो
ऽयम् ॥ २४७ ॥ आचरेत् तर्पणेत्तां तु क्रियां व्या-
पत्ति दर्शने ॥ व्यापत्ति दर्शने मिथ्या कृत पुटपाकं
जनित व्याधि दर्शने ॥

तेजांस्यनिल माकाश मादर्शम्भा स्वराणि च ॥

ने क्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ २४८ ॥

भा० येह रोपण पुटपाक लेखन से त्रिगुण धारण करना चाहिये ॥ २४७ ॥ ति-
लक द्रव्यों की कहते हैं ॥ नीम गिलोय बांसा पटोल कदेली आदसे ॥ पंच ति-
लक होता है ॥ इस प्रकार यह गण कहा है ॥ २४७ ॥ रोग दर्शन में तर्पण में क-
हुई क्रिया करें ॥ (क) मिथ्या किये हुवे पुटपाक से उत्पन्न रोगों के
देखने में । तेज वात आकाश आइना और यकाशवाली वस्तु इनको ॥ तर्पण
किया हुआ और पुटपाक किया हुआ न देखे ॥ २४८ ॥

[अथाञ्जन विधिः] अथ संपक्व दोषस्य प्राप्तं भ-
ञ्जन माचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्ज-
नम् मतम् ॥ २४९ ॥ [तद्यथा] रसो बटीस्तथा

चूर्णमिति त्रिविधमञ्जनम् ॥ यथा पूर्वे बलं तेषु
स्नेहमाहुर्मनीषिणः ॥ २५१ ॥ तत्प्रत्येकं त्रिधा
प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा ॥ स्नेहनञ्चेति लिङ्गानि
तेषां विस्तरतः शृणु ॥ २५२ ॥ लेखनं क्षारतीक्ष्ण
स्त्ररसैरञ्जनमुच्यते ॥ नेत्रवर्त्मशिराजाला
शृङ्गाटकस्थितम् ॥ २५३ ॥ मुखनासादिभिर्दोष
सुतक्षिप्त्यस्त्रावयेच्च तत् ॥ कषायतिक्तकंचापि
सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ २५४ ॥ स्नेहस्य शैत्यात् व-
र्णं स्यात् दृष्टेऽथ बलवर्द्धनम् ॥ मधुरं स्नेहमण्डं
तदञ्जनं स्यात्प्रसादनम् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर अञ्जनविधिः । अनन्तर पके ज्वे रोपबाले को अञ्जन करे ॥
जिसे अञ्जन किया जाता है उस द्रव्यको अञ्जन कहते हैं ॥ २५० ॥
बोह जैसे] रसबरी तथा चूर्ण ऐसे तीन प्रकार अञ्जन होता है ॥ उनमें पहले
१ स्नेह - बलयुक्त मुनियों ने कहा है ॥ २५१ ॥ बोह हर एक तीन प्रकार
लेखन रोपण तथा ॥ स्नेह न इस प्रकार उनके लक्षण विस्तार से सुनो ॥ २५२ ॥
॥ क्षार तीक्ष्ण अम्ल रसों से लेखन अञ्जन कहते हैं ॥ नेत्र वर्त्म शिराजालका
शृङ्गाटक में स्थित ॥ २५३ ॥ मुख नाक आँख इनसे दोष को उखेड़ कर बोह
बहाता है ॥ कषाय तिक्तभी स्नेहके सहित रोपण कहा है ॥ स्नेहको शीत ता
होनेसे घ्राणकी हित होना है और दृष्टि के बलको बढ़ाने वाला है ॥ मधुर स्नेह
से युक्त जो अञ्जन होता है प्रसादन है ॥ २५५ ॥

दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेहवार्थञ्च तद्विदम् ॥ ऐरण्ड-
मात्रा वर्तिस्तु लेखनी स्यात्प्रमाणतः ॥ २५६ ॥ सा
र्द्धं करेण कभिता रोपणी वर्तिरिष्यते ॥ क्रियते स्ने-
हनी वर्तिर्हि हरेण कमादया ॥ २५७ ॥

स्य मात्रातु पिष्टा वर्त्ति मिता मता ॥ चूर्णं तु लेखनं
वेद्यै द्विंशलार्कं प्रदीयते ॥ २५८ ॥ रोपणं त्रिशला
कं स्या चतस्रः स्नेह नाज्जने ॥

(चतस्रः शलाकाः स्नेहनाज्जने चूर्णं)

मुखेयां मुकुलाकारा कलाय परि मराडला ॥ अ-
ष्टाङ्गुला शलाका स्या दशमजा धातुजाथवा ॥ ५६ ॥

(कलाय परि मराडला अग्रे कलाय वद्वर्त्तुला ।)

ताम्र लोहाश्म संजाता शलाका लेखने मता ॥ सु-
वर्णा रजतोद्भूता स्नेहने समुदाहता ॥ २६० ॥

भा० दृष्टि दोष की सफाई के अर्थ और स्निहन के अर्थ बोहू हिन है ॥ प्रमाण
से अंडी के बीज के समान लेखनी बनी होती है ॥ २५६ ॥ और डेढ़ में बड़ी
के बीज समान रोपणी वर्त्ति रही है ॥ और स्नेहनी बत्ति दो में बड़ी के बीज
के समान जाती है ॥ रसांजन की मात्रा पिष्ट वर्त्ति के समान होती है ॥ लेखन
चूर्ण वियों के द्वारा दोसलाई दिया जाता है ॥ रोपण तीन सलाई और स्नेहन
अज्जन में चार सलाई दिया जाता है ॥

जो मुख में फूल की कली के समान मरके बराबर गोलाई ॥ आठ उं
गल की सलाई होती है पत्थर की अथवा धातु की ॥ २५८ ॥ अग्र में मट-
र के समान गोल । ताम्बा लोहा पत्थर इनकी सलाई लेखन में कही है ॥
सोने चान्दी की सलाई स्निहन में कही है ॥ २६० ॥

अङ्गुली च मृदुत्वेन रोपणं संप्रयुज्यते ॥ कृष्ण भा-
गावधिं निम्ब्या दपाङ्गं यावदज्जनम् ॥ २६१ ॥ हे
मन्ते शिशिरे चैव मध्यान्हे ऽज्जनं मिष्यते ॥ पूर्वा-
ह्ने वापराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ २६२ ॥ व-
र्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते नु सदैव हि ॥ अथवा

सर्वदा प्रातः सायं वाञ्छन माचरेत् ॥ २६३ ॥ नाति
शोतोष्ण वाताभ्रवेलायां तत् प्रयुज्यते ॥ आन्तोऽ
थ रुदिते भीते पीन मध्ये नवज्यरे ॥ २६४ ॥ अजीर्णं
वेगघाते च नाञ्जनं संप्रयुज्यते ॥ रागोप देहो निमि
रं शूलं संरम्भमेव च ॥ २६५ ॥ निद्रा क्षयञ्च कु-
रुते निषिद्धे युक्त मञ्जनम् ॥

भा० अंगुली मुलायम होने से रोपण में दी जाती है ॥ अञ्जन कृपा भाग को
छोड़ कर अपाङ्ग तक लगावे ॥ २६१ ॥ हेमन्त और शिशिर में मध्याह्न में
अञ्जन कहा है ॥ पूर्वान्ह अथवा अपरान्ह में ग्रीष्म शरद में कहा है ॥ २६२
॥ वर्षा में बादल न होने पर नवद्वत गरमी में और वसन्त में सदा ही अञ्जन
देवे ॥ अथवा सर्वदा संजा सवरे अञ्जन लगावे ॥ २६३ ॥ उसको अति शीत
उष्ण वात अत्र ऐसे समय में न लगावे ॥ आन्त रुदित भीत इनको और नद्य
पीये की नवज्यर वाले को ॥ २६४ ॥ अंजन न करे और अजीर्ण में वेगके अव
रोध में भी अञ्जन नहीं लगाया जाता है ॥ राग उपदेश निमिर शूल संरम्भ ॥
२६५ ॥ और निद्रा नाश इनको निषिद्ध में किया क्वा अञ्जन करता है ॥

[अथ वटीलेखनी यथा]

शङ्खनाभि विभीतस्य मञ्जापथ्या मनःशिलाः ॥ पि
प्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ २६६ ॥
छागं क्षीरेण संपिष्य वर्ति कुर्याद् यवोन्मिताम् ॥
एरण्ड मात्रां संपिष्य जलैः कुर्याद्यथाञ्जनम् ॥ २६७
॥ निमिरं मांसं वृद्धिञ्च काचं षटलं मर्चदम् ॥ रात्र्य
न्धं वार्षिकं शुष्यं वर्ति अन्द्रोदया हरेत् ॥ २६८ ॥

[इति चन्द्रोदया वर्ति लेखनी]

भा० अनन्तर लेखनी वटी जैसे । मांस की नाभ वहेडे की गिरा हड़ में मलिन

पीपल मिरिच कूठ वच इनको बराबर लेकर ॥ २६६ ॥ बकरी के दूध से पीस
के जव बराबर बत्ती करे ॥ अरंडी के बराबर जल से पीसकर अंजन करे ॥
॥ २६७ ॥ तिमिर मांस वृद्धि काच पदल अर्बुद ॥ रात्र्यन्ध वरसानी फूली ।
इनको यह चन्द्रोदय वर्त्ति नाश करती है ॥ २६८ ॥

[इति चन्द्रोदय वर्त्ति लेखनी ।]

[अथ रोपणी वर्त्तिः । अशीति तिल पुष्पाणि षष्टि
पिप्पलि तराडुलाः ॥ जानी पुष्पाणि यज्वाशान्मरि
चानि तु षोडशः ॥ २६९ ॥ सूक्ष्म पिष्टाम्बुना वर्त्तिः
कृताकुसुम का भिधा ॥ तिमिरा जुन शक्राणां नाशि
नी मांस वृद्धि नुत ॥ एतस्या अज्जने प्रोक्ता मात्रा सा
ई हरेणुका ॥ (इति कुसुमिका रोपणी वर्त्ति)

भा० अनन्तर रोपणी वर्त्ति ॥ अस्ती तिल के फूल साठ पीपल के दाने । चमे
ली के फूल पचास सोलह मिरिच ॥ २६९ ॥ जल से इनको बारीक पीसकर कु
सुमिका नाम बत्ती बनावे ॥ यह तिमिर अर्जुन शक्र इनको नाश करने वा
ली और मांस वृद्धि की नाशक है ॥ २७० ॥ अंजन में इसकी मात्रा डेढ़ मेव
डी के समान कही है ॥ [इति कुसुमिका रोपणी वर्त्ति ॥

[अथ स्नेहनी वर्त्तिः] धातव्यक्ष पथ्या बीजानि एक द्वि
त्रि गुणानि च ॥ पिष्ट्वा वर्त्ति जलैः कुट्या दज्जनं द्वि
हरेणुकम् ॥ २७१ ॥ नेत्र स्वावं हरत्याशु वानरक्त रु
जन्तथा ॥ [अथ रस क्रिया लेखनी यथा]

तुल्य मात्रिक सिन्धूत्या सिता शंख मनःशिलाः ॥
गैरिकं सिन्धु फेनञ्च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ २७२ ॥
संयोज्य मधुना कुट्या दज्जनार्थं रस क्रियाम् ॥

वर्त्म रोगार्मेति मिरङ्गा च शुक्रहरीं पराम् ॥ २७३ ॥

[अथ रोपणो रस क्रिया] रसाञ्जनं सर्ज रसो जाली पु
ष्पं मनःशिलाः ॥ समुद्र फेणो लवणं गैरिकं मरि-
चन्तथा ॥ २७४ ॥ एतत्समाशं मधुना पिष्टं प्रह्लिन्न
वर्त्मने ॥ अञ्जनं ह्लेद कराडूष्णं पद्मरागञ्च प्ररोह-
राम् ॥ २७५ ॥

भा० अथ स्नेहनी वर्ति ॥ आंवले बहेडे हड इनके बीज क्रमसे एक दो तीन
गुना ॥ इनको जलसे पीसकर दो मेवड़ी के बीज समान अञ्जन करे ॥ २७१ ॥
येह नेत्र स्वावको शीघ्र नाश करना है ॥ तथा वान रक्त की पीड़ा को नाश क-
रता है ॥ [अनन्तर रसक्रिया लेखनी जैसे । सीला थोथा सोना मा-
खी सैन्धव मिश्री शंख मैनसिल ॥ गेरू समुद्र फेन मिरच इनकी पिसवावे ॥
॥ २७२ ॥ मधुके साथ मिलाकर अञ्जनके अर्थ रस क्रिया करे ॥ येह वर्त्म
रोग अर्मे निमिर कांच शुक्र इनको नाश करने वाली है ॥ २७३ ॥

[अनन्तर रोपण रस क्रिया ॥ रसवत रत्न चमेलीके फूल मैनसिल ॥ समुद्र
फेन लवण गेरू तथा मरिचके साथ पीसके प्रह्लिन्न वर्त्मन में अञ्जन ह्लेद
कराडूका नाशक और पलकों का प्ररोहण है ॥ २७५ ॥

[अथ स्नेहनी रसक्रिया] कनकस्य फलं घृष्ट्वा मधु
ना नेत्रभञ्जयेत् ॥ ईषत्कपूर सहितं स्मृत नेत्र प्र-
सादनम् ॥ २७६ ॥ [अथ चूर्णं तल्लेखनं यथा]
दक्षाराडत्व च्छिलांकाच शङ्ख चन्दन सैन्धवेः ॥
अञ्जनं हरते नित्यं सर्वानक्षि गदान् बलात् ॥ २७७ ॥

(दत्तः कुक्कुटः तथा च निघण्टुः)

हृक वाकुस्तथा दत्तः कालजोऽथ शिखरिडक इति ।

भा० अनन्तर स्नेहनी रस क्रिया ॥ निर्मली के फल को मधुके साथ घिस कर नेत्र में अर्जन करे ॥ थोड़े से कपूर के साथ नेत्र प्रसादन कहा है ॥ २७६ ॥

अनन्तर लेखन चूर्ण जैसे । मुरगे के अंडेके छिलके शंख चन्दन सैन्धव ॥ इनका अञ्जन सब नेत्र के रोगोंको बलान्तरसे नाश करता है ॥ २७७ ॥

मुरगा । उस प्रकार निघंटु में कहा है ॥ कृक वाकु तथा दक्ष कालज और शिखंडिक इति ॥ [अथ रोपण चूर्णम् ।]

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सव्यगा स्नाव्य वारिणा ॥ गृ-

ह्नी या तज्जलं सर्वन्यजे चूर्णं मधोगतम् ॥ २७८ ॥

शुष्कं तच्च जलं सर्वं पर्यटी सन्निभं भवेत् ॥ विचू-

र्यं भावयेत्सम्यक् त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ २७९ ॥

कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निःक्षिपेत् ॥ अञ्जये-

न्नयनन्तेन सर्वदोषप्रशान्तये ॥ २८० ॥ समस्तने-

त्र रोगघ्नं चूर्णं मेतन्न संशयः ॥

भा० अनन्तर रोपण चूर्ण ॥ शिलापर खपरिया को पीस कर अच्छी तरह पा-

नी से धोल कर ॥ उसका सब जल ग्रहरण करे और नीचे के चूर्णको त्याग देवे

॥ २७८ ॥ जब बोह सब जल सूक जावे तब बोह पपड़ी के समान हो जाता है ॥

पीस कर तीन बार त्रिफला के रस से भावना देवे ॥ २७९ ॥ उसमें कपूर का चू-

रण दसवां हिस्सा डाले । उसे सब दोषों की शान्ति के अर्थ नेत्रों में अर्जित ॥ २८० ॥

॥ यह चूर्ण सब रोगका नाशक है इसमें कुछ संशय नहीं ॥

अथ स्नेहनं चूर्णम् । अग्नितप्तं हि सौवीरं निषिञ्चे-

त् त्रिफलारसैः ॥ समवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सि-

क्तं विचूर्णितम् ॥ २८१ ॥ (सौवीरं श्वेत मञ्जनम् ।)

अञ्जये तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषो र्हितम् ॥ सर्वान-

क्षि विकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः ॥ २८२ ॥

भा० अनन्तर स्नेहन चूरी ॥ आगमें तपाया हुआ सुरमा त्रिफला के रसमें बुझा
वे ॥ सानवार तथा स्त्री के वृषसे सींच के बारीक पीसकर ॥ २०० ॥ उसे नेत्रमें
हर रोज भंजन करे वोह नेत्रके हित है ॥ सब नेत्रके रोगों की बाध करता है इ-
समें कोई संशय नहीं ॥ २०१ ॥

[अथ प्रत्यञ्जन विधिः]

गतदोष मपेताशु प्रपश्यत् सम्यग्भसि ॥ प्रक्षा-
ल्यादि यथा दोषं कार्यं प्रत्यञ्जनन्तः ॥ २०२ ॥
तथा निर्वात दोषेति धावनं सम्यगोजयेत् ॥ प्रत्य-
ञ्जने कृते दद्याच्चूर्ण तीक्ष्ण प्रसादनम् ॥ २०३ ॥

[तद्यथा] शुद्ध नागेन्द्र तुल्यन्तु राक्षसं सूतं विनिःक्षिपेत् ।
कृष्णाञ्जनं तयोस्तुभ्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ २०४ ॥
दशमांसेन कर्पूरं तस्मिंश्चूर्णे विनिःक्षिपेत् ॥ एतत्प्र-
त्यञ्जनं नेत्रे गद जिन्नयना मृतम् ॥ २०५ ॥

(कृष्णाञ्जनं श्रोतोऽञ्जनम्) [तथा च मदनपालः]

श्रोतोऽञ्जनन्तु तद्विद्यादञ्जनाभं यदञ्जनम् ॥

भा० अनन्तर प्रत्यञ्जन की विधि ॥ गतदोष और गत अश्रुपानी में अच्छी
तरह देखे ॥ आंखों की धीके दोषके अनुसार प्रत्यञ्जन करना चाहिये ॥
तथा निर्वात देशमें नेत्र पीवे ॥ प्रत्यञ्जन करने के अनन्तर प्रसादन तीक्ष्ण चू-
री देवे ॥ २०३ ॥ (वोह जैसे) शुद्ध शीशे के बराबर शुद्धपारा डाले ॥
काला सुरमा घृत रोनों के बराबर इन सबको एक जगह पीसे ॥ २०४ ॥ उन
चूर्णमें दसवां हिस्सा कर्पूर डाले ॥ यह प्रत्यञ्जन नेत्र रोग का जीतनेवाला नेत्र
मृत है ॥ २०५ ॥ काला सुरमा । वैसे मदनपाल ने कहा है ॥ श्रोतमें अञ्जन उस
को जानना चाहिये जो काजल के समान होना है ॥

[नयनामृतं प्रत्यञ्जनम्]

[अथ दृष्टि प्रसादनी शलाका]

त्रिफला भृङ्गः शुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा ॥ गोमूत्रं मध्वजा क्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥ २८५ ॥
तच्छलाकां हरत्येव सर्वान् नेत्र भवान् गदान् ॥

[इति भेषजानां विधानानि]

[अथ भेषज भक्षण समयः ॥ भेषज्य मभ्यवहरे त्वभाते प्रायशो बुधः ॥ कषायांस्तु विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥ ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भेषज्य ग्रहणो नृणाम् ॥ किञ्चित्सूर्योदये जानि तथा दिवस भोजने ॥ २ ॥ सायन्तने भोजने च सुहृद्वापि तथा निशि ॥

भा० अनन्तर दृष्टि प्रसादनी शलाका ॥ त्रिफला भृङ्गरासीठ इनका रस वैसेही घृत ॥ गोमूत्र मधु बकरी का दूध इनसे सीसे को तपाकर साँचे ॥ २८५ ॥ उसकी सलाह सब नेत्र के रोगों को नाश करती है ॥ ॥ इस प्रकार औषधों के विधान ॥ [॥ अनन्तर औषध भक्षण का समय ॥]
बुद्धिवान् प्रायशः औषध को सवेरे सेवन करे ॥ और कषायों को विशेषकरके सवेरे सेवन करे ॥ उसमें भेद कहा है ॥ १ ॥ मनुष्यों को औषध ग्रहण में पाँच प्रकार का काल जानना चाहिये ॥ कुछेक सूर्योदय के होनेमें तथा दिन के भोजन में ॥ २ ॥ सायंकाल में और सायंकाल के भोजन में तथा फिरसे रात को ॥ येह पाँच समय हैं ॥

तत्र प्रथम कालः] प्रायः पित्त कफा द्वेके विरेक वमनार्थयोः ॥ लेखनार्थे च भेषज्यं प्रभातेऽनन्तरं माहरेत् ॥ ३ ॥ [अथ द्वितीय कालः । भेषज्यं वि-

गुरोपानि भोजनाग्रे प्रशस्यन्ते ॥ अरुचौ चित्त भोज्यै
 श्व मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ ४ ॥ समानवाते विगुरे
 मन्दे ऽग्नावति दीपनम् ॥ दद्याद्भोजन मध्ये च भै
 षज्यं कुशलो भिषक् ॥ ५ ॥ व्यानकीपे तु भैषज्यं
 भोजनान्ते समाहरेत् ॥ हिक्का क्षेपक कम्पेषु पूर्वम-
 न्ते च भोजनात् ॥ ६ ॥ [अथ तृतीयकालः]
 उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादि कारिणि ॥ आसि प्रा-
 सान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्य भोजने ॥ ७ ॥ प्राणे प्रदु-
 ष्टे सान्ध्यस्य भुक्तस्यान्ते प्रदीयते ॥ औषधं प्राय-
 शो धीरैः कालोऽयं स्यात् तृतीयकः ॥ ८ ॥

भा० उसमें प्रथम काल । प्रायः पित्तकफ के बढ़ने में विस्त्रवमन के अ-
 र्थ ॥ और लेखन के अर्थ प्रातःकाल में बिना भोजन किये औषध सेवन क-
 रे ॥ ३ ॥ [दूसरा काल । अपात वात के प्रकोप में भोजन के पहिले औष-
 ध प्रशस्त है ॥ अरुचि में अच्छे स्वाद युक्त भोजनों में मिलाके सेवन करे ॥
 ॥ ४ ॥ समान वात के निगड़ने में और मन्दगति में अति दीपन ॥ औषध भोज-
 न के बीच में कुशल वैद्य देवे ॥ ५ ॥ व्यान वायु के कोप में भोजन के अन्त में
 औषध सेवन करे ॥ हिक्का आक्षेपकम्प इनमें भोजन से पहिले और अ-
 न्त में औषध देवे ॥ ६ ॥ अनन्तर तीसरा काल ॥ स्वरभङ्गादि करने वाले उदान
 वात के कोप में सायंकाल के भोजन में प्रास २ के बीच में औषध देना चाहिये
 ॥ ७ ॥ प्राण वात के दुष्ट होने में सायंकाल के भोजन के अन्त में प्रायः औषधि
 दिया जाता है यह तीसरा काल है ॥ ८ ॥

[अथ चतुर्थकालः] मुहुर्मुहुश्च तृच्छर्दि हिक्का
 श्वास गरेषु च ॥ सान्नञ्च भैषजं दद्यादिति काल-
 श्चतुर्थकः ॥ ९ ॥ [अथ पञ्चम कालः]

ऊर्ध्वजत्रु विकारेषु लेखने चंहरो तथा ॥ पाचने श
मने देया मन्त्रं भेषजं निशि ॥ १० ॥

[इति पञ्चमकालः ॥] [निरन्त्रस्य भेषजस्य गुण-
माह] वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनम् ॥ ह-
न्या तदामयम् संशयमाशु चैव ॥ तद्बालवृद्ध
युवती मृदुभिश्च पीतम् ॥ ग्लानिं परान्नयति चाशु
बलक्षयञ्च ॥ ११ ॥ [सान्नस्य भेषजस्य गुणमाह]
शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या । दन्तादन्त
च मुहुर्वदना न्निरेति ॥ एतद्वितं स्थविरबाल क
शाङ्गनाभ्यः । प्राग्भोजना द्यद्विशितं किल तच्च तद्वत्

॥ १२ ॥ भा० अनन्तर चौथा काल । तथा च मन हिचकी श्वास विष
इनमें अन्नके सहित औषध देवे यह काल चौथा है ॥ ६ ॥ अनन्तर पंचम का
ल ॥ गले की हड्डी के ऊपर के रोगोंमें और लेखन चंहरण में तथा ॥ पाचन शम
न में रक्त को बिना भोजन के औषध देवे ॥ १० ॥ इति पंचमकाल ॥
निरन्त्र औषध का गुण कहने हैं ॥ अन्नहीन औषध वीर्याधिक होता है ॥
और उन रोगों को निःसंशय शीघ्र नाश करता है ॥ और वोह बालक वृद्ध युवती
तथा मृदु इनका पीया हुआ ॥ अत्यन्त ग्लानिको करता है और शीघ्र बल का
नाश करता है ॥ ११ ॥ [अन्नके सहित औषध का गुण ॥] अन्न से युक्त औषध
शीघ्र विपाक को प्राप्त होता है और बल को नाश नहीं करता उसको मुख से नि
रन निकाले ॥ येह वृद्ध बालक दुर्बल स्त्री इनको हित है ॥ जो भोजन के पहिले
सेवन किया गया है वोह उसी के समान है ॥ १२ ॥

(अन्नादन्तवत् भेषजमिति शेषः)

औषध शेषे भुक्तं भोजन शेषे यदौषधं पीतम् ॥ न
करोति गदोपशानम् प्रकोपयत्यन्य रोगांश्च ॥ १३ ॥

(योत्तमित्युपलक्षणं लीढादिकं च ।)

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृषणा सुमनस्कताः॥

लघुत्वमिन्द्रियो हार शुद्धिर्जीर्णौषधा कृतिः ॥ १४ ॥

क्षमो दाहोऽङ्गसदनं भ्रममूर्च्छा शिरोरुजः ॥ अर

तिर्वलहानिश्च साव शेषौषधा कृतिः ॥ १५ ॥

[अथ भेषजलक्षणविधिमाह चरकः]

देवान् गुरुंस्तथा विप्रान् पूजयित्वा प्रणम्य च ॥ आ

शिषश्च समादाय श्रद्धया भेषजं भजेत् ॥ १६ ॥

रसायनमिवर्षीणां देवानामस्तुतं यथा ॥ सुधे वो

त्तमनागानां भेषज्यमिदमस्तुते ॥ १७ ॥

भा० अन्तसे युक्त औषध । औषध शेषमें भोजन किया हुआ और जो औषध भोजन के शेषमें पीया गया ॥ रोगों का शमन नहीं करना और अन्य रोगों को प्रकोप करना है ॥ १३ ॥ खाया आदिभी । वातका अनुलोम स्वास्थ्य क्षुधा तृपा चित्तकी प्रसन्नता ॥ हलकापन इन्द्रियों में डकार यह जीर्ण औषध का लक्षण है ॥ १४ ॥ क्षम दाह शरीर में पीड़ा भ्रम मूर्च्छा शिरमें पीड़ा ॥ वेचने वलकी हानी साव शेष औषध का लक्षण है ॥ १५ ॥

अनन्तर औषध लक्षणविधि कही है चरक ने ॥ देव गुरु तथा ब्राह्मण इन का पूजन करके और नमस्कार करके ॥ आशिर्वाद लेकर श्रद्धासे औषध का सेवन करे ॥ १६ ॥ यह आशिर्वाद । इसका अर्थ । ऋषियों की रसायन के समान और जैसे देवताओं को अमृत ॥ उत्तम नागों की सुधा के समान मृगको यह कहा होवे ॥ १७ ॥

ब्रह्मदत्ता शिव रुद्रेन्द्र भूचन्द्रार्कानिलोनलाः ॥ दे

वाश्च सौषधिग्रामा भूमिदेवाश्च यान्तुवः ॥ १८ ॥

औषधं हेम रजत मृदाजन पारस्थितम् ॥ पिवेदास्त

जनस्याग्रे प्रसन्न वदनेक्षणः ॥ १६ ॥ विश्रान्तस्तूप

विश्रयाथ पीत्वा पात्र मधोमुखम् ॥ निःक्षिप्याच

स्य सलिलं ताम्बूलाद्युप योजयेत् ॥ २० ॥

इति श्री मिश्र लटकन तनय श्रीमन् मिश्र भाव विरचिते
ने विरचिते भावप्रकाशे पञ्चमं प्रकरणं चिकित्सायां
सप्ताङ्गानि संपूर्णानि ॥ ५ ॥ ❀ ॥

भा० ब्रह्मा दत्त प्रजापति अश्विनीकुमार इन्द्र एष्वि चन्द्र सूर्य वात अग्नि ।
देव औषध के सहित ग्राम देवता और भूमिदेव नुम्हारी रक्षा करो ॥ १८ ॥

इति । औषध को सोने चान्दी अथवा मिट्टी के बरतन में रख के । प्रसन्न मुख
रख दृष्टि ही के दृष्ट जनों के आगे पीवे ॥ १६ ॥ विश्रान्त होके बैठ के पीकर
पात्रको ओंछा करके ॥ जल से आचमन करके पान इलायची आदिको खा
वे ॥ २० ॥ इति श्री मिश्र लटकन पुत्र श्री भाव मिश्र विरचित भाव
प्रकाशमें पांचवां प्रकरण चिकित्सा में सात अंग संपूर्ण ॥

[अथ चिकित्सार्थं रोगिणः परीक्षा तत्र वाग्मरः ।]

दर्शन स्पर्शन प्रश्नै स्तं परीक्षेत रोगिणम् ॥ आयुरा

दि दृशः स्पर्शा च्छीतादि प्रश्नतः परम् ॥ १ ॥

(१) आयुरादि आदि शब्दात्साध्यत्वासाध्यत्वादि दृ
शा दर्शनेन अत्र सम्पदादि स्यश्च भावे क्लिप् । स्पर्शन
शीतादि शीतोष्ण मृदु कठिनत्वादि नाडी परीक्षणम् वा ।
प्रश्नतः उदर स्नायव गौरव तृषाऽतृषा बुभुक्षाऽबुभुक्षा
वलावलादि ॥

भा० अनन्तर चिकित्सा के अर्थ रोगी की परीक्षा ॥ उसमें वाग्मर ने कहा है ।

दर्शन स्पर्श प्रश्न इनसे रोगीकी परीक्षा करे ॥ दृष्टि से आयु अदिके स्पर्शसे शीतादिक प्रश्नसे और परीक्षा करे ॥ १५ ॥

(क) आदि शब्द से साध्यता और असाध्यता आदि । दर्शन से । यहाँ पर सं पदादि से भावमें किय होना है । स्पर्शसे शीतादि । शीत उष्ण मृदु कठिन आदि अथवा नाडी परीक्षा ॥ प्रश्नसे पेदका हलकापन भारीपन प्यासका होना न होना । भूखका होना न होना बल अबल आदि ॥

मिथ्या दृष्टा विकारा हि दुरांख्याता स्तथैव च ॥ तथा
दुष्परि पृष्टाश्च मोहयेयु श्विकि त्सकान् ॥ २ ॥

(नेत्र दर्शनं नेत्र जिह्वा मूत्रादीनां कर्तव्यम्)

[नेत्रनेत्र परीक्षा यथा] नेत्रं स्यात् पर्वणा द्रुक्ष धूम्रव
र्णं तथा रुराणम् ॥ कोणं गतं प्रविष्टं च तथा स्तब्ध
विलोचनम् ॥ ३ ॥ हरिद्रा खण्ड वर्णं वा रक्तं बाह-
रितं तथा ॥ दीपद्वेषि सदा हन्व नेत्रं स्यात्पित्तको
पतः ॥ ४ ॥ चक्षुर्बलास बाहल्यात् स्निग्धं स्यात्स
लिलस्तुतम् ॥ तथा धवल वर्णञ्च ज्योतिर्हीनं व-
लान्वितम् ॥ ५ ॥

भा० मिथ्या देखे झवे रोग तथा दुराख्यत तथा दुष्परिपृष्ट येह वैधों की मोह
करता है ॥ २ ॥ उसमें नेत्र दर्शन जिह्वा मूत्र आदियों का करना चाहिये ॥

[उसमें नेत्र परीक्षा जैसे] रक्त धूम्र वर्ण तथा अरुण ॥ कोना निकला
ऊँचा और दबा हुआ तथा स्तब्ध देखना ऐसे नेत्र वान से होते हैं ॥ ३ ॥ हरदी
की गाँठ के समान वर्ण अथवा लाल वा हरित ॥ तथा दीवे वा दुष्पन बाह
के सहित नेत्र पित्त प्रकोप से होते हैं ॥ ४ ॥ कफ की अधिकता से नेत्र चिकने
पानी भरे झवे ॥ तथा श्वेत वर्ण ज्योति हीन बल युक्त होते हैं ॥ ५ ॥

नेत्रं द्विदोष बाहल्यात्स्या दोषद्वय लक्षणम् ॥

त्रिदोष लिङ्गसङ्केतं तन्मायति रोगिणम् ॥ ६ ॥

त्रिदोष दूषितं नेत्रमन्तर्मग्नं भृशं भवेत् ॥ त्रिलिङ्गं

सलिलस्त्रावि प्रान्ति नोन्मील यत्पि ॥ ७ ॥

[अथ जिह्वा परीक्षा] शाकपत्रप्रभा रूक्षा स्फुटना

रसना निलात् ॥ रक्ता प्यावा भवेत्पित्ता लिप्ता द्रो

धवला कफात् ॥ ८ ॥ परिदग्धा खरस्पृशा कृष्णा दो

ष त्रयेऽधिके ॥ सैव दोष द्वयाधिक्ये दोष द्वितय

लक्षणम् ॥ ९ ॥

भा० दो दोषों की अधिकता से नेत्र दो दोषों के लक्षण होते हैं ॥ त्रिदोष के लक्षण मिलजाने से वोह रोगी को नाश करता है ॥ ६ ॥ त्रिदोष से दूषित नेत्र भीतर अत्यन्त भग्न होता है ॥ तीनों के लक्षणों संयुक्त जलको बहने वाला प्रान्तमें उन्मीलन भी नहीं होता ॥ ७ ॥

[अनन्तर जीभ की परीक्षा ॥ शाकपत्रके समान सूखी फटी जीभ वात से होती है ॥ लाल भरी पित्त से होती है ॥ और लिंसी गीली सप्रेद कफ से होती है ॥ ८ ॥ फुलसी जड़ खरदरी काली त्रिदोष की अधिकता में होती है ॥ वोही दो दोषों के अधिक में दो दोषों के लक्षण वाली होती है ॥ ९ ॥

[अथ सूत्र परीक्षा] वातेन पाण्डुरं सूत्रं रक्तं नीलञ्च पि

ततः ॥ रक्तमेव भवेद्रक्ता द्रवत्वं फेनिलं कफात् ॥

॥ १० ॥ (अथ शरीरस्य शैत्योष्णत्वादि ज्ञानार्थं स्पर्शनं कार्यम्) [तत्र नाडी परीक्षा माह]

पुंसो दक्षिणहस्तस्य स्त्रियो वामकरस्य तु ॥ अङ्गु

ष्ठमूलगां नाडीं परीक्षेत् भिषग्वरः ॥ ११ ॥ अङ्गुली

भिस्तिसृभिर्नाडीं मवहितः स्पृशेत् ॥ तच्चैष्टया

सुखं दुःखं जानीया कुशलोऽखिलम् ॥ १२ ॥ सद्यः
स्नानस्य सुप्तस्य क्षुत्तृष्णा न पशीलिनः ॥ व्याघ्रान्
श्रान्तदेहस्य सम्यक् नाडी न बुध्यते ॥ १३ ॥ वातऽ
धिके भवेत्ताडी प्रव्यक्ता तर्जनी तले ॥ पित्ते व्यक्ता
मध्यमा यां तृतीया इंगुलिका कफे ॥ १४ ॥ तर्जनी स-
ध्यमा मध्ये वात पित्ताधिके स्फुटा ॥ अनामिकायां
तर्जन्यां व्यक्ता वात कफे भवेत् ॥ १५ ॥ मध्यमा ना-
मिका मध्ये स्फुटा पित्त कफेऽधिके ॥ अङ्गुलि त्रित-
येऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सान्निपाततः ॥ १६ ॥ वाताद्य-
क्तू गतिन्धत्ते पित्तादुत्सुत्य गामिनी ॥

भा० अनन्तर मूत्र परीक्षा ॥ वातसे मूत्र सफेद और पित्तसे लाल नीला ॥
और रक्तसे लाल ही होता है तथा कफसे काग से युक्त धौला होता है ॥ १० ॥
अनन्तर शरीर के शैत्य उष्णत्व ज्ञान के अर्थ स्पर्शन करना चाहिये ॥

[उसें नाडी परीक्षा कहते हैं] पुरुष के दाहिने हाथकी और स्त्रियों के
बायें हाथकी ॥ अंगुष्ठ मूलसे गर्दे ऊर्ध्व नाडीकी वैद्य परीक्षा करे ॥ ११ ॥
जाना ऊँचा तीन अंगुलियोंसे नाडीको स्पर्श करे ॥ कुशल उन्नी चेष्टासे संपूर्ण
सुख दुःख को जाने ॥ १२ ॥ गतकाल स्नानक्रियेकी सोवेड़ेकी कुधा नपा
युक्त की ॥ कसरत से थके ऊँचेकी इन सबकी नाडी अच्छी तरह नहीं मालूम
होती ॥ १३ ॥ वातके अधिकमें नाडी तर्जनी के नीचे प्रव्यक्त होती है ॥ पित्तादि-
क में मध्यमा में व्यक्त होती है ॥ और तीसरी अंगुली के बीच कफमें व्यक्त होती
है ॥ १४ ॥ तर्जनी मध्यमा के बीचमें वात पित्ताधिक में स्फुट होती है ॥ अना-
मिका और तर्जनी में वात कफ में प्रगट होती है ॥ १५ ॥ मध्यमा और अनामि-
का के मध्यमा पित्त कफ में प्रगट होती है ॥ सन्निपात से तीनों अंगुली के नीचे
व्यक्त होती है ॥ १६ ॥ वातसे वक्त्र गतिकी धारणा करती है पित्तसे उठल-
चलती है ॥

कफा मन्दगति र्ज्ञेया सन्निपातादति हुता ॥ १७ ॥ व
 त्कं मुत् स्तुत्य चलानि धमनी वातपित्ततः ॥ वहेच्च
 त्कञ्च मन्दञ्च वात श्लेष्माधिकं त्वतः ॥ १८ ॥ उत्
 स्तुत्य मन्दञ्चलानि नाडी पित्त कफेऽधिके ॥ कामा
 त् क्रोधा द्वेगवहा क्षीणा चिन्ता भयस्तुता ॥ १९ ॥
 स्थित्वा स्थित्वा च लेह्या सा हन्तिस्थान च्युता तथा ॥
 अतिक्षीणा च शीता च प्राणान् हन्ति न शैशैयः ॥
 २० ॥ ज्वर कोपेन धमनी सोष्णा वेगवन्तो भवेत् ॥

भा० कफसे मन्दगति जाननी चाहिये और सन्निपात से बहुत शीघ्र गति
 चलती है ॥ १७ ॥ पित्त के कोप से धमनी देढ़ी उठलकें चलती है ॥ वात कफ
 अधिक से देढ़ी और मन्द चलती है ॥ १८ ॥ पित्त कफ के अधिक में नाड़ी उछ
 ल के मन्द चलती है । काम और क्रोध से वेग से चलती है चिन्ता और भय
 से युक्त, क्षीण होती है ॥ १९ ॥ जो ठहर २ के चलती है वोह स्थान च्युत वोह
 नाश करती है ॥ अति क्षीण और शीत प्राणों को नाश करती है । इसमें को
 ई संशय नहीं ॥ २० ॥ धमनी ज्वर कोप से गरम और वेगवाली होती है ॥

मन्दानिः क्षीण धातोश्च सर्वं मन्दतरा मता ॥ २१ ॥
 चपला क्षुधितस्य स्यात् तृप्तस्य भवति स्थिरा ॥ सु
 खिनो स्थिरा ज्ञेया तर्था बलवती मता ॥ २२ ॥

[अथ येन येन रोगाणां ज्ञानं स्यात् तदाह]

हेतुस्तदनु संप्राप्तिं पूर्वं रूपञ्च लक्षणम् ॥ तथैवो
 पश्यायः पञ्च रोग विज्ञान हेतवः ॥ २३ ॥

[तत्र हेतोर्लक्षणा माह]

भा० मन्त्राग्निवालेकी और क्षीण धातुवालेकी बोझी मन्त्र बढ़ती है ॥ २१॥
क्षयित की चपल और लक्षकी स्थिर होती है ॥ सुखी की भी स्थिर जाननी चाहि
ये ॥ तथा चलवनी होती है ॥ २२॥

[अनन्तर जिस २ से रोग का ज्ञान होता है उस २ को कहते हैं] कारण उसके
पञ्चात् सम्प्राप्ति और पूर्वरूप लक्षण । तथा उपशय यह पांच रोगों के विशेष
ज्ञान के हेतु हैं ॥ २३॥ [उन्हीं हेतु का लक्षण कहते हैं]

यत्तु न स्याद्विना येन तस्य तद्धेतु रुच्यते ॥ शास्त्रे सं
व्यवहाराय तत् पर्यायान् प्रचक्ष्महे ॥ २४॥ निदानं
कारणं हेतु निर्मितं च निबन्धनम् ॥ मूल मायतनं
तल प्रत्ययोऽपि निगद्यते ॥ २५॥

(तत्र हेतु व्याधीनां ज्ञानाय हेतु र्यथा)

(क) वर्षारूक्ष अमहिमानश्रानानि मैथुन शोक चिन्ता
भयादयो वातप्रकोप हेतवो वातजान् व्याधीन् बोधय
न्ति । शरत् कटुस्त्रोण तीक्ष्ण क्रोध तथा क्षुधाभिघाता
तथादयः पित्त प्रकोप हेतुः पित्तजान् व्याधीन् बोध
यन्ति । वसन्त मधुर स्निग्ध शीतादयः कफ प्रकोपहेत
वः कफजान् व्याधीन् बोधयन्ति ॥

भा० जिसके बिना जो नहीं होता वोह उसका हेतु कहते हैं ॥ शास्त्र में व्यवहार
के अर्थ उसके पर्यायों को कहना है ॥ २४॥ निदान कारण हेतु निर्मित और
निबन्धन ॥ मूल आयतन और प्रत्यय भी कहते हैं ॥ २५॥ उन्हीं हेतु व्याधी के
ज्ञान के अर्थ हेतु जैसे ॥ -

(क) वर्षा रूक्ष अमहिमान भोजन मैथुन शोक चिन्ता भयादिक वात प्रको
प के हेतु वात के रोगों को ज्ञाने हैं ॥ शरत् कटु मधुर स्निग्ध तीक्ष्ण क्रोध तथा
क्षुधा अभिघात आत प आदिक पित्त प्रकोप के कारण पित्त के रोगों को ज्ञाना

हैं । वसन्त मधुर चिकनाई सिक्कादिक कफ के कोपका कारण कफ के रोगों को जनाना है ॥

[अथ संप्राप्ते र्लक्षणमाह] यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानु विसर्पता ॥ उत्पत्तिर्यामयस्यासौ संप्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ २६ ॥ (क) यथा दुष्टेन दोषेण यथा कारणभेदेन दोषेण यथा चानु विसर्पिता । अनेकधा दोषाणां विसर्पता मूर्द्धाधस्तिर्यगादिगतिभेदेन तथा च विसर्पिता । आमयस्य या उत्पत्तिः । असौ संप्राप्तिः । शास्त्रव्यवहारस्य संप्राप्तेः पर्यायानाह जातिरागतिरिति । संप्राप्तेरौपाधिकभेदानाह ।

भा०-अनन्तर संप्राप्ति का लक्षण कहने हैं] जैसे दुष्ट दोष से जैसे अनेक प्रकार फैलने से जो रोग की उत्पत्ति है वह संप्राप्ति जाति आगति है ॥ २६ ॥

(क) जैसे दुष्ट दोष से अर्थात् जैसे कारण भेददोषकरके । अनेक प्रकार दोषों का ऊपर नीचे तिर्यक् आदि भेदसे । तथा फो.ली.ऊई । रोग की जो उत्पत्ति है । वह संप्राप्ति है । शास्त्र व्यवहार के अर्थ संप्राप्ति के पर्यायों को कहने हैं ॥ जाति आगति । संप्राप्ति के औपाधिक भेदों को कहने हैं ॥

सङ्ख्या विकल्प प्राधान्य बलकाल विशेषणः ॥

सा भिद्यते यथा त्वैव वक्ष्यन्ते ऽष्टौ ज्वरा इति ॥ २७ ॥

(ख) सङ्ख्यादिरूपं विरोधास्तेभ्यः सा संप्राप्तिर्भिद्यते भेदवती क्रियत इत्यर्थः । तत्र संख्यां विहरणोति । यथा ज्वरो ऽष्टधा अतीसारः षड्विध इत्यादि विकल्पं विहरणोति । दोषाणां समवेतानां विकल्पो ऽंशंश कल्पना समवेतानां समुदितानां दोषाणां अंशंश कल्पनाहीन म-

ध्याधिक भेदैर्भागकल्पना विकल्पः । प्राधान्यं वि-
चरणीति । (ख) स्वातन्त्र्य पारतन्त्र्याभ्यां व्या-
धेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ व्याधेः स्वातन्त्र्येणा प्रा-
धान्यं पारतन्त्र्येणाऽप्राधान्यञ्च वदैदित्यर्थः । य-
था स्वतन्त्रस्य ज्वरस्य प्राधान्यं ज्वराधीनानां स्वा-
सा दीनामप्राधान्यम् ॥

भा० संख्या विकल्प प्राधान्य बल काल इनके विशेष से वो भेद की प्राप्त
है जैसे वहाँ पर कहा है आठ ज्वर इस प्रकार ॥ २३ ॥ संख्यादि रूप विरो-
ध उनसे वोह संप्राप्ति भेदको प्राप्त है उसमें संख्या की कहते हैं । जैसे
ज्वर आठ प्रकार अतीसार छ प्रकार इत्यादि । विकल्प की कहते हैं ।
मिले ज्वर दोषों की अंशंश कल्पना । हीन मध्य अधिक भेदसे भाग कल्पना
विकल्प है । (प्राधान्य की कहते हैं) ।

(ख) स्वतन्त्रता और परतन्त्रता इनसे रोगका प्राधान्य कहें ॥ रोगकी
स्वतन्त्रता से प्रधानता और परतन्त्रता से अप्रधानता कहें । जैसे स्वतंत्र
ज्वरका प्राधान्य और ज्वरके आधीन स्वास भादियोंकी अप्रधानता हो-
ती है ॥

(ग) [बलं विचरणीति] हेत्वादि कार्त्तृस्थ्या वय-
वैर्बलाबलविशेषम् । अत्रापि व्यधिरित्यनुवर्त-
ते हेत्वादेः हेतु पूर्व रूप रूपाणाम् । कार्त्तृस्थ्यन-
साकल्येन अवयवैः एकदेशेन व्याधेर्बलाबल-
यो विशेषणम् । विशेष बोधः । कालं विचरणीति ।

भा० बलको कहते हैं । कारणादि संपूर्ण अवयवों से बल और अबल वि-
शेषण है । यहां भी रोगके येह फिरसे कहा है । हेतु आदिका अर्थात् कार-
ण पूर्व रूपोंका । संपूर्णता करके एक देश से रोगका बलाबल में विशेषण है
विशेष बोध । कालको कहते हैं ।

(घ) नक्तं दिनर्तुं भुक्तांशैर्व्याधि कालो यथा मलम् ॥

नक्तं मन्त्राव्ययं रात्रिवाचकम् । एतेनैतदुक्तं यस्मिन्
क्तादिरंशो यस्य दोषस्य प्रकोप उक्तोऽस्ति सोऽंशस्त
स्य दोषजस्य व्याधेः काल इत्यर्थः । नक्तादेरंशेषु
वातादे प्रकोपे उक्तो वाग्भटेन ।

ते व्यापिनोऽपि हन्नाभ्यो रधो मध्योर्ध्व संश्रयाः ।

वयोऽहो रात्रि भुक्तानामन्त मध्यादिगाः क्रमादिति

॥ २८ ॥ वात पित्त कफाः । ऋतुषु वातादिको यथा ।

वर्षासु शिशिरे वायुः पित्तं शरदि उष्णके ॥ वस-

न्ते तु कफः कुप्ये देषा प्रकृति रार्त्तवी ॥ २९ ॥

भा० रात दिन ऋतु और भोजन किया हुआ इनके अंशोंसे दोषके अनुसार
व्याधि काल है ॥ (घ) नक्त यहाँ पर अव्यय रात्रि वाचक है । इस्से य
ह कहा है कि जिसमें रात्रि आदि अंश जिस दोषका प्रकोप कहा है वोह अंश
उस दोषके रोगका काल यह अर्थ है । नक्तादिके अंशमें वातादि प्रको
प कहा है वाग्भट ने । वात पित्त कफ संपूर्ण शरीर में फैले हुवे भी हृदय
नाभ के नीचे वायु हृदय नामके बीचमें पित्त और हृदय नाभके ऊपर कफ ।
इस क्रमसे रहते हैं ॥ वय दिन रात और भोजन किये हुवे इनके अन्त म-
ध्य आदि क्रमसे रहते हैं ॥ २८ ॥ वात पित्त कफ । ऋतु में वातादिक जैसे
। शीत वर्षा में वायु । उष्ण शरद में पित्त । और वसन्त में तो कफ कुपित
होता है । यह ऋतु की प्रकृति है ॥ २९ ॥

[संप्राप्तिव्याधीनां ज्ञानाय हेतु र्यथा]

(क) सिध्याहार विहार कुपिता वाताद्या माशय गमन
रस दूषण कोष्ठाग्नि बहिर्नि स्तरण रूपं न्वरोत्पत्ति प्र-

कारं बोधयति । तथा व्याधीनां सङ्ख्या दोषांश कल्पना प्राधान्य बल कालांश्च बोधयति । तेषु ज्ञा तेषु चिकित्सा विशेषश्च स्यात् ॥

[अथ पूर्वरूपस्य लक्षणमाह]

पूर्वरूपन्तु तद्धेतुविद्याद्भाविनमामयम् ॥ सामान्यं च विशिष्टं च द्विविधन्तदुदाहृतम् ॥ ३० ॥

सामान्यं तत्र दोषाणां विशेषैरनुधष्ठितम् ॥ विशिष्टं मीषद्युक्तं स्याद्विशेषैश्च समन्वितम् ॥ ३१ ॥

(क) दोषाणां विशेषाः जृम्भातिशयिनेत्रदाहानिमान्धादयः । तत्र पूर्वरूपं व्याधीनां ज्ञानाय हेतुर्यथा । श्रमादयो भाविनं ज्वरं बोधयन्ति । अथ च अनस्रं श्रमादयोऽतिशयित जृम्भायुक्ता भाविनं वातज्वरं नेत्रदाहयुक्ताः पित्तज्वरं वह्निमान्धा युक्ता भाविनं कफज्वरं बोधयन्ति ॥

भा० संप्राप्ति रोगोंके ज्ञानार्थ हेतु जैसे । (क) मिथ्या आहार विहार से कृपित वानादि आमाशय में जाकर रक्तको विगाड़ के कोष्ठाग्नि की बाहर निकाल कर ज्वरकी उत्पत्ति को जमाता है । वैसे रोगों की संख्या दोषकी अंश कल्पना प्राधान्य बल कालों को जनाना है । उनके जानने में चिकित्सा विशेष होता है । [अनन्तर पूर्व रूपका लक्षण कहते हैं]

पूर्वरूप बोह है जिसे होनेवाला रोग जाना जाना है । सामान्य और विशिष्ट दो प्रकार बोह कहा है ॥ ३० ॥ सामान्य बोह है जो दोष विशेषों अधिष्ठित नहीं है ॥ विशिष्ट बोह है जो बड़ा व्यक्त और विशेष करके युक्त है ॥

॥ ३१ ॥ (क) दोषोंके विशेष जंभाई की अधिकता नेत्रदाह आनिमान्धा

आदिक । उमें रोगोंके पूर्वरूप ज्ञानके अर्थ कारण जैसे । अमादिक होने वाले ज्वरकी जनाने हैं । और इसीवासी अम आदिक अधिक जम्माई से युक्त होने वाले ज्वर को और नेत्र दाहादि युक्त पित्तज्वरकी जनाने हैं । तथा अग्निमान्द्य, कफज्वर की जनाने हैं ॥

[अथ लक्षणस्य लक्षणं माह ।] पूर्वरूपं विशिष्टं य
व्यक्तं तत् लक्षणं स्मृतम् ॥ संस्थानं लिङ्गं चिह्नञ्च
व्यञ्जनं रूपं माहतिः ॥ ३२॥

(क) विशिष्टं पूर्वरूपम् । ईषद्व्यक्तं रूपम् । तदेव सम्य
ग्व्यक्तं लक्षणं स्मृतं तस्य शास्त्रे व्यवहाराय पर्याया
नाह संस्थानं मित्यादि लक्षणं व्याधेर्ज्ञानाय हेतुर्यथा ।
स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणान्तथा ॥ युग
पदे यत्र रोगेन स ज्वरः परिकीर्तितः ॥ ३३॥

युगपदे तल्लक्षणं ज्वरं बोधयति ।

भा० अनन्तर लक्षण का लक्षण कहते हैं । पूर्वरूप विशिष्ट जो व्यक्त ही
ना है उसकी लक्षण कहा है । संस्थानं लिङ्गं चिह्नं व्यञ्जनं रूपं माहति ये
ह उसके पर्याय हैं ॥ ३२॥ (क) पूर्वरूप विशिष्ट । थोड़ा व्यक्त रू
प । वही अच्छी तरह व्यक्त लक्षण कहा है । उसका शास्त्रमें व्यवहारके
वासी पर्यायों को कहते हैं । संस्थानं मित्यादि लक्षणं रोग ज्ञानके अर्थ का
रण जैसे । पसीने का अवरोध सन्ताप तथा शरीर में अकड़ाव । ये एक साथ
जिस रोगमें होते हैं वोह ज्वर कहा है ॥ ३३॥

(एक साथ ये लक्षण ज्वरकी जनाना है)

[अथौषधं शमस्य लक्षणं माह ।]

औषधान्न विहारणमुपयोगं सुखावहम् ॥ नृ
णां सुपशमं विद्यान् सहि सात्म्यमिति स्मृतः ॥ ३४॥

[तत्र वातस्थोपशममाह]

मधुर लवण सास्त्र स्निग्ध नस्योष्ण निद्रा गुरु रवि
कर वस्ति स्वेदसं मर्दनानि । दधि जलदा शोषाम्यङ्ग
सन्तर्पणानि । प्रकुपित पवमानं पान्तमेतानि कु
र्युः ॥ ३५ ॥ [अथ पित्तस्थोपशममाह ।]

तिक्त स्वादुकषाय शीत पवनच्छाया निशव्यञ्जन
ज्योत्स्ना भृगूहयन्त्र वारिद जलजं स्त्री गात्र संस्पर्शनम् । सर्पिः क्षीर विरेकं सेक रुधिरस्त्रावप्रदेहादि
कम् ॥ पानाहार विहार भेषजमिदं पित्तं प्रशान्तिं
नयेत् ॥ ३६ ॥ [अथ कफस्थोपशममाह]

रूक्षाक्षार कषाय तिक्त कटुक व्यायाम निष्टीवनम् ।
धूमान्युष्ण शिरा विरेक वमन स्वेदोपवासादिकम् ॥
स्त्री सेवाध्वनि युद्ध जागर जलक्रीडाङ्गना सेवनम्
पानाहार विहार भेषजमिदं श्लेष्माणस्य मुग्रं हरेत् ॥ ३७

भा० अनन्तर उपशमका लक्षण कहते हैं । औषध अन्नविहारों का स्वस्वा
वह उपयोग है उसको मनुष्यों का उपशम जाने उसे सामान्य ऐसा कहा है
॥ ३४ ॥ [उसमें वातका उपशम कहते हैं । मधुर लवण अम्लके सहित स्निग्ध
नास उष्ण निद्रा भारी सूर्य की किरण वस्ति स्वेद संमर्दन । दधि जलद
संपूर्ण अभ्यंग सन्तर्पण येह प्रकोप को प्राप्तहुँवे वातको शमन करने हैं ॥
॥ ३५ ॥ [अनन्तर पित्तका उपशम कहते हैं । तिक्त मधुर कषाय शीत
वात छाया रत पंखा चान्दनी नहरवाना यंत्र में घ और जलज स्त्री के शरीर
का संस्पर्श । घृत बूध और गुलाब सेक रक्त स्त्राव प्रदेह आदिक । येह पान
आहार विहार और औषध पित्तको शमन करने हैं ॥ ३६ ॥

अनन्तर कफ का उपशम कहते हैं ॥ रूक्ष तार कषाय तिक्त-कटु कसरत नि
ष्ठीवन धूम उष्ण शिथि विरेचन वमन स्वेद उपवासादिक ॥ मैथुन मार्ग चल
ना रतकोजागना जलक्रीड़ा स्त्री सेवन ॥ पान आहार विहार येह औषध
उग्र कफको हरना है ॥ ३७ ॥

(क) जलक्रीड़ा कफ क

थं हरति । तदाह । जलक्रीड़ा जनित शैत्ये नावरु
द्धोष्मापङ्कः लिप्ता भितः पाकाग्नि रिवोग्रो भूत्वा कफं
शोषयतीति समाधिः ॥ उपशमो व्याधेर्ज्ञानाय
हेतु र्यत उक्तञ्चरकेण । गूढ लिङ्गं संकीर्णं लक्षणाञ्च
व्याधि सुपशमानु पशमाभ्यां परीक्षे दिति ॥

[नथा च सुश्रुते] अभ्यङ्गः स्वेदन स्नेहैर्विकारे वाति
कस्तुयः ॥ न शाम्ये तत्र विज्ञेयोरक्तमत्रास्ति दूषि
तम् ॥ ३८ ॥ सर्वेषां मेव रोगाणां निदानं कुपिता म
लाः ॥ तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधा हित सेवनम् ।
॥ ३९ ॥ (क) सर्वेषां रोगाणां निदानं सन्निहृष्टं
कारणम् । कुपिताः स्वहेतुदुष्टा मलाः वान पित्त
कफा एवेत्यन्वयः ॥

भा० जलक्रीड़ा कफको कैसे हरना है सो कहते हैं । जल क्रीड़ा की शैत्यता
से अवरुद्ध उष्मा पङ्कः लिप्ता आस पास पाकाग्नि के समान उग्र होकर
कफ को सुकाना है इस प्रकार की समाधि है । उपशम रोग के ज्ञानके अर्थ
कारण जैसे कि कहा है चरक ने ॥ संकीर्ण लक्षणा रोग उपशम अनुशम
ने परीक्षा करे ॥ [वैसे सुश्रुत ने कहा है] अभ्यङ्ग स्वेद स्नेह इनसे रोग
वृत्तिव्य न शमन होवे उसमें जानना चाहिये इसमें रक्त दूषित है ॥ ३८ ॥
उन रोगों के कारण कुपित मल हैं ॥ उनके प्रकोप का कारण अनेक प्रकार का

अहिमसेवन है ॥ ३६ ॥ (क) सब रोगों का निदान सन्नि कृष्ट कारण। अपने कारण से दुष्ट मल वात पित्त कफ है इस प्रकार अन्वय है ॥

[तथा च वाग्भटः] दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणां मेक

कारणमिति । (क) नन्वागन्तुज व्याधिषु व्यभिचा

रः स्यात् । तन्न । तच्चाप्युत्पत्त्यनन्तरं दोष प्रकोपस्या

वश्यम्भावित्वात् । उत्पन्नद्रव्येषु गुणयोगस्येव ।

[उक्तञ्च चरके] आगन्तु हि यथा पूर्वा जायते । यश्चा

न्निजैर्दोषैरनुबध्यत इति । तत्प्रकोपस्य तु । दोष प्र

कोपस्य तु । निदानम् । विविधानि नाना विधानि ।

यान्यहिनान्य सात्त्व्यान्या हार विहारा दीनि । तेषां

सेवनं यथा वायोः प्रकोपस्य निदानानि ।

नीवारस्तिपुटः सतीनचरणकः प्रयामा कमुद्गाढकी ।

निष्यावश्च मकुष्ट कश्च वररा मङ्गल्यकः कोद्रवः ।

यद्द्रव्यं कटुकं सनिक्त त्वरं शीतञ्च रूक्षं लघु । स्व

ल्पाशो विषमाशनं निरणं भुक्ते ह्यजीर्णः शनम् ॥ ४० ॥

भा० उस प्रकार वाग्भट ने कहा है । दोष ही सब रोगों का एक कारण है ॥

(क) शंका । आगन्तुक रोग में व्यभिचार होता है ॥ उत्पन्न द्रव्य में गुण योग का ही कहा है । चरक में । आगन्तुक पहले होता है । पीछे से निज दोषों से युक्त होता है । दोष प्रकोप का निदान नाना प्रकार के जी असात्म्य आहार विहारादिक । उनका सेवन । जैसे वायु के प्रकोप का निदान ।

तिन्नी के चावल खेसारी मटर चना सांवा कंगुनी भुङ्ग अरहर । सेमके बीज मकुष्ट वररैमसूर कोद्रव ॥ और जो द्रव्य कटु केस निक्त कसेला शीतल रूखा हलका स्वल्प भोजन करनेवाले विषम भोजन लघन अजीर्ण में भोजन ।

भुक्त जीर्णतरं परिश्रम भरो गर्त्तादि कोष्ठां घनम् ॥
 बाहुभ्यान्तरणान्तनोः प्रतपनं मार्गेऽति धानम्यदा ।
 दण्डादि ग्रहति स्तथोच्च पतनम् धातुक्षयो जा
 गरः । मार्गस्या वरणां व्यवाय भृशता वा तादि
 वेगाहतिः ॥ ४१ ॥ अत्यर्थं वमनं विरेचन मति
 स्वावोऽधिकश्चा सृजो । रोगान्मांस विहीनता
 ति मदन श्रिन्ताच शोको भयम् । वर्षावै शि
 शिरो दिनस्य रजने भागौ तृतीयौ घनाः । प्राग्
 वातस्तु हिनं शरीर मरुतौ दुष्टे रमी हेतवः ॥ ४२ ॥

भा० भोजन किया बहुत जीर्ण हो नावे परिश्रम भार गर्त्तादिक उ
 ष्णा घन । बाहुवांसे तैरना वृद्धसे गिरना पैदल मार्ग बहुत चलना
 दण्ड आदिकी चोट । याऊँ चैसे गिरना धातुक्षय रक्तका जागना मा
 र्गका आवरणा मैथुनकी अधिकता वातादि वेगसे नष्ट ॥ ४१ ॥
 अत्यन्त वमन विरेचन अतिस्त्राव अधिकरक्त के । रोग मांस विही
 नता अतिकाम चिन्ता शोक भय । वर्षा शिशिर दिन और रात
 का तीसरा भाग और मेघ । प्राग्वात हिन शरीर के दुष्ट वात होने
 में येह कारण है ॥ ४२ ॥

(क) नीवारः प्रसाधिकाः । तीनी इति लोके । त्विषु-
 टः खेसारी इति लोके । सतीनः वर्तुलकलायः नि
 ष्यावः । कोलशिम्बी सदृश फला । राजशिम्बि स्तस्या
 बीजमन्नं भवति । बरटि बराटिका । कुसुम्भ बीजम्
 । वररै इति लोके । सङ्गल्यको मसूरः । विषमाश
 नम् । बहुस्तोक सकाले वा भुक्तं तद्विषमाशनम् ।

(ख) अतियानम् । पादाभ्यामतिचलनम् । तरोः प्रपतनम् । तरोरित्युपलक्षणम् । जागरः रात्रौ । वातादि वेगाहतिः । आदि शब्देन विरामूचांश्च छिद्येकाङ्कार इदिभुक् क्षुत्तृषोच्छ्वास निद्राः संगृह्यन्ते । दिनस्य विधा विभक्तस्य । एवं रजनेश्च । यस्य पुनरुक्तिस्तेन तेन वातस्याति दुष्टिर्बोद्धव्या ।

भा० (क) दूध पीडा व दहत वे समय में भोजन किया हुआ विषनाशन है । वातादिवेगों का रोकना आदि शब्द से मल मूत्र आंसु झींक ढकार वमन शुक्ल क्षुधा तृषा उच्छ्वास निद्रा लीगर्द है । तीन प्रकार विभक्त दिनका । ऐसे ही रातका । जिसकी पुनरुक्ति उक्त रसेवानको अति दुष्टि जाननी चाहिये ।

[अथ पित्तस्य प्रकोप कारणानि यथा]

कटुस्त्वोष्ण विदाहि तीक्ष्णलवण क्रोधोपवासा तपस्वीसम्भोग तृषा क्षुधाभि हनन व्यायाम मद्यादिभिः । भुक्ते जीर्यति भोजने च शरादि प्रोष्णे तथा प्रारिणाम् मध्याह्ने च तथा र्द्धरात्र समये पित्तप्रकोपो भवेत् ॥ ४३ ॥ [विदाहि लक्षणम्]

विदाहि द्वय मुद्गार मलं कुर्यात् तथा तृषाम् । हृदि दाहञ्च जनये त्पाकञ्छति नाच्चिरात् ॥ ४४ ॥

[अन्यच्च] माषैस्त्रिलैः कुलन्थैश्च मत्स्यैर्मेषा मिवेरा च । गव्येरा दधि तत्रेण तृणां पित्तं प्रकुप्यति ॥ ४५ ॥

भा० अनन्तर पित्तके प्रकोप कारण जैसे । कटु अम्ल उष्ण विदाही तीक्ष्ण लवण क्रोध उपवास आतप । स्त्री सम्भोग तृषा क्षुधा अभिप्रात कमरत मद्य

आदि से । भोजन के पचने पर घृण्य घ्राण्य में । तथा प्राणियों का मध्यान्ह में
यथा अर्धरात्रि के समय में पित्त प्रकोप होता है ॥ ४३ ॥

[विवाहि लक्षण] विवाही द्रव्य खट्टी डकार तथा तृषा और हृदय में दाह उत्पन्न
करता है । उस का शरीर में पाक होता है ॥ ४४ ॥ और भी । माष तिल कुर्यात् मूत्र
ली मेढेका मांस । इन द्रव्यों से तथा दही मूत्र से मनुष्यों का पित्त कुपित होता
है ॥ ४५ ॥

[अथ श्लेष्म प्रकोप कारणा नि यथा ।]

शुरु षट् मधुरास्ल स्निग्ध माषै स्तिलैश्च । द्रव दीध
दिन निद्रा शीत सर्पिः प्रपूरैः । प्रथम दिवस भागे रा-
त्रि भागेऽपि चाद्यैः । भवति हि कफ कोपो मुक्त मात्रे
वसन्ते ॥ ४६ ॥ (क) प्रथम दिवस भागे विंश विभ-
क्तस्य दिवसस्य प्रथम भागे । एवं रात्रे आद्य भागे ।
ननु सर्वेषां रोगाणां निदानं दोषा एव किमन्य दप्यस्ती-
ति संशये चरक आह ।

निदानार्थं करो रोगो रोगस्था प्युप लक्ष्यते ॥

इति रोगस्य निदानार्थं कर्तुः निदानस्य रोगोऽपि उप लक्ष्य-
ते दृश्यते । अत्र दृष्टान्त माह ।

भा० अगन्तर कफ प्रकोप कारण जैसे । भारी लवरण अस्ल स्निग्ध तिल उपुद्र इन
से ॥ और द्रव दही दिन का सोवना शीत घन प्रपूर इनसे प्रथम दिन के भाग में ॥
तथा रात्रि के भी प्रथम भाग में ॥ तथा मुक्त मात्र में वसन्त में कफ प्रकोप होता
है ॥ ४६ ॥ (क) पू० सब रोगों का निदान उप दोष ही है की और भी है ।
इस संशय में चरक ने कहा है ॥ रोग का निदानार्थक रोग भी दिखाई देता है ।
इसमें दृष्टान्त कहा है ॥

तद्यथा ज्वर सन्तापा द्रक्त पित्त मुदीर्यते ॥ रक्त पिना
ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युप जायते ॥ ४७ ॥ स्त्रीहा

मिदृश्या ज्वरं ज्वराच्छोफं स्पृच च ॥ अर्शो रथौ जा
 हरं दुःखं गुल्मश्चाप्युप जायते ॥ ४८ ॥ प्रतिश्याया
 दथोत्कासः कांसात्संजायते क्षयः ॥

(क) अन्यत्वाद् मधुकोशे । रोगस्य रोगश्चे निदानं त
 या निदानमित्येवाच्यते । तद्विहाय निदानार्थकर इति
 वचनमेतद् बोधयति । रोगस्य रोगो निदानार्थकरः ।
 निदानकार्यकरणे सहायः । निदानन्तु रक्तपित्तादीन्
 कतिचिद्रोगान् प्रतिज्वरादिरेव हेतुरिति सिद्धान्तः ।

भा० बोह जैसे । ज्वर सन्नाय से रक्त पित्त प्रकोप होना है ॥ रक्त पित्त से ज्वर उब
 से श्वास होना है ॥ ४७ ॥ पिलही की दृष्टि से उबर रोग और उबर रोग से सूजन
 व बवासीर से काठर रोग और वायुगोला भी होता है ॥ ४८ ॥ कुकाम से का
 से और खासी से क्षय होता है ॥

(क) ओसे ने कहा है । मधुकोशमें । रोग का रोगकारण होनेनौ जैसे निदान
 सेसाही कहे ॥ उसको छोड़कर निदानार्थकर रक्त प्रकार यह वचन बोधक
 रक्ता है । रोग का रोग निदानार्थकर ॥ अर्थात् निदान कार्य करने में सहाय ।
 निदान तो रक्त पित्तादी कुछ रक्त रोगों के प्रति ज्वरादिक ही कारण चेह सिद्धा
 न्त है ॥

अत एवाग्ने स्यष्टमेव चरकः । कश्चिद्वि रोगो रोगस्य
 हेतुर्भूत्वेति । प्रथमस्य रोगस्य ज्वरादेर्यो दुष्टो दोषो हि

तुः स एव पञ्चाङ्गाविनो रक्तपित्तादे रपि रोगस्य हेतुः ।

सर्वेषां मेव रोगाणां निदानं कुपिता मत्ताः ॥

(क) इति नियमात् तत्र यदा रक्त पित्तादि रूपद्वय लक्ष
 ण योगेन रोगाच्च विधातः स्थाततः सर्वेषामिति वच
 न सामान्यम् । निदानार्थकर इति विशेष वचनात् ।

भा० इसी वीस्ते आगे स्पष्ट ही कहा है चरक ने ॥ कोई रोग रोगका कारण हो के इस प्रकार । प्रथम रोग ज्वरादिक का जो बुद्ध दोष कारण है । वोही पीछे से हो ने वाले रक्तपित्तादिक दोषों का भी हेतु होता है ॥ सब ही रोगोंका निदान कुपित मल है ॥ (क) इस प्रकार के नियम से उसमें जब रक्त पित्त आदिके उपद्रव उत्पन्न ही योगसे रोगत्व विघात होता है । इस वास्ते सर्वोंका येह वचन सामान्य है । निदानार्थ कर इस प्रकार के विशेष वचन से ।

रोगस्य हेतो रोगस्य वैचित्त्यमाह । कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतु भूत्वा प्रशाम्यति । (ख) यथा ज्वरो रक्त पित्त मुत्याद्य स्वयं प्रशाम्यति ननु यो दोषो द्वेके ण ज्वरो रक्त पित्त मुत्यादित वांस्तस्मिन् सति सतु ज्वरः कथं शाम्यति । तत्र व्याधि स्वभाव एव कारण मिति न दोषः ।

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥ (ग) अन्यो हेत्वर्थमपि कुरुते स्वयञ्च न प्रशाम्यति । यथा प्रतिश्यायः कासं करोति स्वयञ्च न प्रशाम्यति । तत्राणो जठर गुल्मौ करोति स्वयञ्च न निवर्तत इति ।

[अथ दोष धातु मलानां क्षीणानाञ्च चिकित्साग्रहं सुश्रुतः]

भा० रोगके कारणों रोगकी विचित्रता को कहते हैं । कोई रोग रोग का हेतु हो के शमन हो जाता है ॥ (ख) जैसे ज्वर रक्तपित्त को उत्पन्न करके आप शमन न होता है । [शंका] जो दोष प्रकोप से ज्वर रक्त पित्त को उत्पन्न करता भया उसके रहने वोह ज्वर कैसे शमन होता है । उसमें रोग स्वभावही कारण है इससे दोष नहीं है । और शमन नहीं होने तथा हेत्वर्थ को करेभी हैं ।

(ग) और हेत्वर्थ को करते भी हैं आप शमन नहीं होते । जैसे जुकाम खांसी को करता है और आप शमन नहीं होता ॥ वैसेही बवासीर जठर वावगोले

को करती है और नहीं हटती ॥

चिकित्सा कहते हैं सुश्रुत ॥

[अनन्तर दोष धातु मल क्षीणों की

अत्यन्त कुत्सिता वेतौ सदा स्थूल कृशौ नरौ ॥ श्रेष्ठो

मध्य शरीर स्तु स्थूलः क्षीणो न पूजितः ॥ ४६ ॥ क

र्षयेद् दृढये चापि सदा स्थूल कृशौ नरौ ॥ रत्नरा

न्चापि मध्यस्य कुर्वीत कुशलो भिषक् ॥ ५० ॥

[अन्यच्च] क्षपयेद् दृढये चापि दोष धातु मलान् भिष

क् ॥ नरो रोगान्वितो याव द्रोगेण रहितो भवेत् ॥

॥ ५१ ॥ (क) क्षपयेदति प्रवृद्धा दोष धातु मलां स्त

त्र क्षीण्य हेतुभिर्दोष धातु विहारै र्हासयित्वा समी कु

र्यात् । दृढयेत् । क्षीणान् दोषादौ स्त तद् दृढि हेतुभि

र्दोष धातु विहारै र्वर्द्धयित्वा समी कुर्यात् ।

भा० यह स्थूल और कृश अत्यन्त निन्दित है । इनमें मध्य शरीर श्रेष्ठ है और स्थूल क्षीण अच्छे नहीं ॥ ४६ ॥ कुशल वैद्य मीरे को दुबला करे और कृश को पुष्ट करे और मध्य को रत्न करे ॥ ५० ॥ (और भी) वैद्य दोष धातु मल इनको घटावे और बढ़ावे । रोगयुक्त मनुष्य जब तक रोग रहित होवे ।

॥ ५१ ॥ (क) बड़े ऊँचे दोष धातु मलों को घटावे उसमें क्षीण करने वाले औषध अन्न विहार से घाँके सम करे । क्षीण दोषादियों को उनको बढ़ाने वाले औषध अन्न विहार से बढ़ाकर सम करे ॥

अस्वस्थो येन विधिना स्वस्थो भवति मानवः ॥ तमे

व कारये द्वेद्यो यतः स्वास्थ्यं सदैव सिद्धम् ॥ ५२ ॥

[स्वस्थस्य लक्षणं माह] समदोषः समाग्निश्च समधा

तु मलक्रियाः ॥ प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्य

भिधीयते ॥ ५३ ॥ समक्रियः। शरीरानु रूपकर्मा।
आत्मा शरीरं। तन्वान्तरेऽपि।

दिरामृत्ताखिल दोष धातु समता काङ्क्षान्नपाने रुचि
सुक्तं जीर्यति दुष्टये परिणतिः स्वभावबोधैः सुख
म् ॥ ५४ ॥ गृह्णीते विषयान्यथा स्वमुचिनान् वृ
त्तिं मनोवृत्तिः ॥ स्वस्थस्याभिहितं चतुर्दश विधं -
जन्तोरिदं लक्षणम् ॥ ५५ ॥

भा० स्वस्थ मनुष्य जिस विधिसे स्वस्थ होता है। उसी को वैद्य कहे जिसे कि
सदा स्वस्थ होवे ॥ ५२ ॥ स्वस्थ का लक्षण कहते हैं। सम दोष सम आग्निस
म धातु मल क्रिय। और पसन्न आत्मा इन्द्रिय मन से सो को स्वस्थ ऐसा कह
ते हैं ॥ ५३ ॥ शरीर के अनुसार कर्म करने वाला ॥ आत्मा शरीर तन्वान्तरमें भी
। मल मूत्र संपूर्ण दोष धातु समता इच्छा अन्नपानमें रुचि भोजन किया पचजा
ये पुष्टिके अर्थ परिणाम। सोने जागने से सुख ॥ ५४ ॥ मनोवृत्ति से अपने
यथोचित विषयों को ग्रहण करना ॥ स्वस्थ मनुष्य का यह चैदह प्रकाश लक्ष
ण कहते हैं ॥ ५५ ॥

(क) रुचिः शरीर कान्तिः नन्व

हर्निशर्तु भुक्तवत्सु दोषाणां वृद्धेः कथं समदोषता।
उच्यते। अहोरात्र प्रथम भागादिषु नक्षदोषवृद्धेः स्वस्थ
रतोक्त विधिभिरुपशमात्समदोषतेति न दोषः।

[किन्तु] यत्समत्वं हि दोषाणां भिषग्भिरवधार्यते।

अतस्वास्थ्यं विना वक्तुं शक्यमन्येन हेतुना ॥ ५६ ॥

(क) तेन समदोषस्वस्थयो लक्षणमन्योन्यापेक्षया।

पञ्च स्वस्थानु वृत्तिङ्गरोनि । ऋतुचर्या ध्याये सेव्यत्वेनो-
क्तम् । तथा मात्रा शीलयेत् तृतीयेऽध्याये रक्तशालिः
पष्टिक यव गोधूम जाङ्गल मांस जीवन्ती शाकादि मो-
दक क्षीरादि । तथा यदेजस्करं रसायनं बानीकरणं
सर्व्वदा शीलनीयत्वेन निर्दिष्टम् ॥

भा० (क) रुचि भर्थात् कान्ति । प्रांका । रात दिन और भोजनकिये में दोषों
के बदले से कैसी सम दोषता कहने हैं ॥ दिन रात के प्रथम भागादिक में उन दो-
षों की वृद्धि हो स्वस्थ वृत्तमें कहीं अद्दे विधि करके शमन होनेसे सम दोषता
कही है ॥ इससे दोष नाहीं है ॥ किन्तु । दोषों ने दोषोंकी समता जी मानी है ।
वोह स्वस्थ के बिना और ऐन्दु से नहीं कहे सक्ते ॥ ५६ ॥

(क) उस समदोष और स्वस्थ के लक्षण अन्योन्य को अपेक्षा करके स्वस्थ
समदोष स्वस्थ में रहित वोह स्वप्रमाण स्थित दोष धानु मल इनकी साध्या
नुवृत्तिक रसो मुख स्वस्थानु वृत्तिको करना है । ऋतु चर्या ध्याये में सेव्यत्व
करके कहा है । उस प्रकार मात्रा मेव न करे । नीसरे अध्याय में लाल धान सा-
दी जव गेहू जांगल मांस जीवन्ति शाकादि लड्डू दूध आदि । तथा जो औज क
रनेवाला रसायन बानीकरण यह सर्व्वदा शीलनीयत्व करके कहा है ॥

[अथ दोष धानु मलानां वृद्धे निर्दानान्याह ।

तत्तद् वृद्धिं करह्यार विहारानि निषेवणात् ॥ दोष
धानु मलानां हि वृद्धिं रुक्ता भिषग्वरैः ॥ ५७ ॥

[अति वृद्धानां तेषां लक्षणां न्याह]

बाने वृद्धे भवेत्काश्यं पारुष्यं चोषा कामिता ॥ ग्रा-

टं मलं बलञ्चाल्यं गात्रस्फूर्तिं विनिवृता ॥ ५८ ॥

विरामूत्र नेत्र गात्राणां पीतत्वं क्षीणमिन्द्रियम् ॥

शीनेच्छा तापमृच्छाः स्युः पित्ते वृद्धेऽस्य मूत्रता ॥ ५९ ॥

भा० अनन्तर दोष धातु मल इनकी वृद्धि के कारणों को कहते हैं ॥ उन २ के बढ़ने वाले आहार विहार के नङ्गन सेवन से । दोष धातु मल इनकी वृद्धि वे दो ने कही है ॥ ५३ ॥ [अति वृद्ध उनके लक्षणों को कहते हैं]

वात वृद्धि में कृषाता कठोरता उष्ण पदार्थ की वृच्छा ॥ गाढमल अल्प बल शरीर में स्फूर्ति निद्राका, थोड़ा आना यह लक्षण हैं ॥ ५४ ॥ मल मूत्र ने ३ शरीर में पीला पन क्षीण इन्द्रिय ॥ शीत की वृच्छा नाप मूर्च्छा और अल्प मूत्र ना यह लक्षण पित्त बढ़ने में होते हैं ॥ ५५ ॥

विडादि शौल्यं शीतत्वं गौरवञ्चाति निद्रता ॥ स
न्धि शैथिल्य मुतत्केदा मुखसेकः कफे अधिके ॥
॥ ६० ॥ रसे वृद्धे ऽन्न विद्वेषो जायते गात्र गौरवम् ॥ ला
ला प्रसेक श्छर्दिश्च मूर्च्छा सादो भ्रमः कफः ॥ ६१ ॥
प्रवृद्धं रुधिरं कुप्यी जात्र मारक्त वर्णकम् ॥ लोचन
ञ्च तथा रक्तं शिराः पूरयते ऽपि च ॥ ६२ ॥

[अन्यच्च] रक्तन्तु कुरुते वृद्धं विसर्प्य स्निह विद्रधीन् ॥
कुष्ठं वातास्त्रकं गुल्म शिरा पूर्णं त्वकामैले ॥ ६३ ॥
गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते ॥ व्यङ्गगनि
साद संमोह रक्त त्वङ्नेत्र मूत्रता ॥ ६४ ॥ गुद मेढ्रा
स्य पाकार्शः पिङ्का मशका स्तथा ॥

भा० मलादिकों की शुक्लता शीतता भारीपन अति निद्रता । सन्धि में शैथिल्य लता । मतली मुखमें पानी छूटना कफ के अधिक होने में यह लक्षण होते हैं ॥ ६० ॥ रस की वृद्धि में अन्न का द्वेष और शरीर में भारीपन होता है ॥ और लार बहना वमन मूर्च्छा वीर्य भ्रम कफ यह होते हैं ॥ ६१ ॥ बढ़ा हुआ रुधिर शरीर का लाल वर्ण ॥ तथा लाल नेत्र और मसों की भर ना भी है ॥ ६२ ॥

औरभी । वृद्ध रक्त विसर्पपिलही विद्वधि इनकी करना है ॥ कीट वातरक्त वा
युगीला शिरापूर्णाव कामला ॥ ६३ ॥ शरीर में भारीपन निद्रा मद और दाह
होता है ॥ व्यङ्ग-अग्निमान्ध मोह रक्तत्वचानेत्र भ्रूता ॥ ६४ ॥ गुदा लिंग मुख
इनमें पाक वचासीर कुनसी भस्से ॥

इन्द्रलुप्ताङ्ग मर्द्दीसृग् दरास्तापं कराङ्घ्रिषु ॥ ६५ ॥
प्राप्तये द्रुक्त वृद्धान्धान् रक्तस्रुति विरेचनैः ॥ मांसवृ
द्धन्तु गराडौष्ठ स्फिगुपस्थोरुचाङ्गषु ॥ ६६ ॥ जङ्घन्योः
कुरुते छद्दिं तथा गात्रस्य गौरवम् ॥ उदरे पार्श्वयोर्द्वे
द्विं कास श्वासोदय स्तथा ॥ ६७ ॥ दौर्गन्ध्यं स्निग्धता
गात्रे मेदोवृद्धौ भवेदिति ॥ अन्यच्च ॥ प्रवृद्धं कु
रुते मेदः श्वासमल्पेऽपि चेष्टिते ॥ तृद स्वेद गलगराडौ
ष्टं रोगमेहादि जन्म च ॥ ६८ ॥ श्वासं स्फिगु जठर-
ग्रीवा स्तनानां लग्ननं तथा ॥ वृद्धान्यस्थीनि कुर्व
न्ति अस्थीन्यन्यानि चास्थिषु ॥ ६९ ॥ आचरन्ति
तथा दन्तान् विकटात्महनं स्तथा ॥ मज्जा वृद्ध
समस्ताङ्ग नेत्र गौरव माचरेत् ॥ ७० ॥

भा० इन्द्रलुप्त अंगमर्द् रक्त प्रवर ताय पावों में जलन ॥ रक्त छद्दि के रोगों की
रक्त स्नाव विरेचन इनसे शमन करे ॥ मांस वृद्धि गाल होट चूतड़ लिंग जांच
वाङ्ग इनमें ॥ ६६ ॥ और जाघों में छद्दि करना है । तथा शरीर का भारी पन
पेट पसलीयों में छद्दि कास श्वास आदिक होते हैं ॥ ६७ ॥ मेद वृद्धि में दुर्ग
न्यता शरीर में और चिकनापन होता है ॥ ॥ औरभी ॥ बृद्धाङ्ग मा
द थोड़े से काम में श्रम ॥ नृपा पर्माना गलगंड होट इनमें रोग और भ्रम
आदिकी उत्पत्ति ॥ ६८ ॥ श्वास चूतड़ पेट गरदन छाती दन्त वृद्धि ॥

इनको करना है ॥ वृद्ध अस्थि हड्डी में और हड्डी को करती है ॥ ६६ ॥
तथा दांत विकट और बड़े होते हैं ॥ बड़ी मज्जा समस्त शरीर नेत्र
इनमें भारीपन को करती है ॥ ७० ॥

शुक्राश्रमरी शुक्र वृद्धौ शुक्रस्याति प्रवर्तनम्
॥ मल प्रवृद्धा वाटोपो जायते जठरे व्यथा ॥
॥ ७१ ॥ मूत्रे मुहुर्मुहुर्मूत्रमाध्मानं वस्ति वेद
ना ॥ स्वेद वृद्धे तु दौर्गन्ध्यं त्वचि कराड्श्च जा
यते ॥ ७२ ॥ आर्तवाति प्रवृत्ति स्या दौर्गन्ध्य
ञ्चार्तवे भवेत् ॥ अङ्गमर्द्दश्च जायते लिङ्ग
स्यादार्तवेऽधिके ॥ ७३ ॥ स्तनयो रति पीनत्वं
क्षीर स्त्रावो मुहुर्मुहुः ॥ तोदश्च तत्र भवति ।
स्तन्याधिक्यस्य लक्षणम् ॥ ७४ ॥ उदरादि
प्रवृद्धिस्तु वृद्धे गर्भेऽभिजायते ॥ स्वेदश्च ग
र्भवत्याः स्यात्प्रसवे व्यसनं महत् ॥ ७५ ॥

भा० शुक्रवृद्धि में शुक्र अश्रमरी गर्भ और शुक्र का वृद्धत निकल
ना होता है ॥ मल बढ़ने में उदर में गुड़ ३ शब्द होता है ॥ ७२ ॥
मूत्र दृष्टि में बार बार मूत्र फेट का फूलना वस्ति की पीड़ा ॥ पसी
ने बढ़ने में दुर्गन्धता त्वचामें और रवाज होनी है ॥ ७२ ॥ आर्तव
के अधिक होने में आर्तवकी वृद्धत प्रवृत्ति और रजमें वृद्धत दु
र्गन्धता होती है ॥ वदन दृष्टता भी है यह लक्षण है ॥ ७३ ॥ चूचि
यों वृद्धत भरजाना दूधका स्त्राव बार बार और उसमें खुभन हो
ती है ॥ यह अधिक दुग्धका लक्षण है ॥ ७४ ॥ गर्भ के बढ़ने में उद
र आदि वृद्ध जति है ॥ और पसीना तथा गर्भवति को प्रसव में वृद्ध
न लक्षण होता है ॥ ७५ ॥

[अथाति वृद्धानां दोषाणां मलानां द्वासनमाह]
 तत्तद्भासकराहार विहार परिवेषैराणाम् ॥ दोषधा-
 तु मलानां हि द्वासो निगदितो नृणाम् ॥ ७६ ॥ पूर्वः
 पूर्वोऽति वृद्धत्वा दृढं येद्वि परस्परम् ॥ तस्मादति
 प्रवृद्धानां धातूनां हसनं हिदम् ॥ ७७ ॥

[अथ दोषधानु मलानां क्षयस्य निदानान्याह]
 असात्म्यान् सदाक्रोध शोक चिन्ता भयश्रमैः ॥
 अतिव्यवायानशानात्यर्थसंशोधने रपि ॥ ७८ ॥
 वेगानां धारणाच्चापि साहसदभिघाततः ॥ दो-
 षाणां मथ धातूनां मलानां च भवेत् क्षयः ॥ ७९ ॥

भा० अनन्तर बड़त बड़े हूवे दोषमें धनका घटना कहते हैं ॥ उनको घटाने वाले आहार विहार के सेवन से। दोष धातु मलों का घटना कहा है ॥ ७६ ॥ पहिले १ बड़त बड़ने से उत्तर २ के बड़त बड़ने हैं ॥ इसवास्ति बज्रत वड़े हूवे धातुओं का घटाना हिन है ॥ ७७ ॥ अनन्तर दोषधातु मलों के क्षय के निदानों को कहते हैं ॥ असात्म्य अन्न सदा क्रोध शोक चिन्ता भय श्रम ॥ अतिमैषुन सवारी रूधन बड़त वमन विरेचनादि लेना इनसे ॥ ७८ ॥ चौदह वेगों के धारण से भी और साहस अभिघात इनसे ॥ दोष धातु मल इनका क्षय होता है ॥ ७९ ॥

[नेपां क्षीणानां लक्षणा न्याह]

वानक्षयेऽल्प चेष्टत्वं मन्दवाक्त्वं विसंज्ञता ॥ पित्त-
 क्षयेऽधिकः लेष्मा वह्निमान्द्यं प्रभात पः ॥ ८० ॥
 सन्धयः शिथिला मूर्च्छा रौप्यन्दाहः कफक्षये ॥
 हृत्पीडा कंठशोथौ त्वक् शून्या तृदरसक्षये ॥ ८१ ॥

शिराः श्लथ्वा हिमास्त्रेष्वा त्वक् पाकष्यं क्षयेऽसृजः ॥
 गराडौष्ठ कन्धरास्क न्धवक्षो जठर सन्धिषु ॥ ८२ ॥ उ
 पस्थ शोथ पिराडीषु शुष्कता गात्र रूक्षता ॥ तीक्ष्णम
 न्यः शिथिला भवेयु मांस संक्षये ॥ ८३ ॥ स्त्रीहाभिदृ
 द्विः सन्धीनां शून्यता तनु रूक्षता ॥ प्रार्थना स्निग्धमां
 सस्य लिङ्गं स्यान्मेदसः क्षये ॥ ८४ ॥ अस्थि शूल न्त
 नी रोक्ष्यं नखदन्त त्रुटिस्तथा ॥ अस्थि क्षये लिङ्गमे
 तद्वैद्यैः सर्वैरुदाहृतम् ॥ ८५ ॥ शुक्राल्पत्वं पर्वभेद
 स्तोदः शून्यत्व मस्थिनि ॥ लिङ्ग न्येतानि जायन्ते
 नराणां मज्ज संक्षये ॥ ८६ ॥ शुक्र क्षये रते शक्तिव्य
 था शोफसि मुष्कयोः ॥ चूरेण शुक्र सेकः स्यात्से
 के रक्ताल्प शुक्रता ॥ ८७ ॥

भा० अनर्क्षीणां ॐ लक्षणों को कहते हैं ॥ वात क्षयमें अल्पवेष्टा मन्दवाक्प सं
 ज्ञानहानि ॥ पित्त क्षयमें अधिक कफ अग्निमान्ध कान्तिक्षय ॥ ८० ॥ जोड़ों
 में झीलापन मूर्च्छा रूक्षता दाह होता है ॥ कफ क्षय में हृदयमें पीडा कंठ शो
 थ त्वचाकी शून्यता तृषा होती है ॥ रस क्षय में ॥ ८१ ॥ ढीली नसें शीतल और
 खटे की इच्छा त्वचामें कठोरता रक्त क्षयमें ॥ गाल होठ गरदन कंधा छाती उ
 दर जोड़ इनमें ॥ ८२ ॥ और लिङ्ग चुतड़ पिंडलि इनमें सूक्ष्मपन गात्रकी रूक्ष
 ता ॥ चुमन धमनीकी शिथिलता होती है मांस क्षयमें ॥ ८३ ॥ पिलही का बढ
 ना सन्धियों में शून्यता शरीरमें रूखापन ॥ चिकना मांसकी बच्छा येह ल
 क्षण होते हैं मेद क्षयमें ॥ ८४ ॥ अस्थि शूल शरीर में रूक्षता नख दांतका
 टूटना ॥ अस्थि क्षय में येह लक्षण सब वैद्यों ने कहा हैं ॥ ८५ ॥ मनुष्यों के
 मज्जा क्षयमें शुक्रकी अल्पता पोरोंमें पीड़ा चुमन शून्यता अस्थिमें ॥ येह ल
 ण होते हैं ॥ ८६ ॥ शुक्र क्षयमें मैथुन में अशक्ति लिङ्ग आंठोंमें पीड़ा ॥ देरमें
 शुक्र निकलता है और खलित होनेमें थोड़ा रक्त शुक्र होता है ॥ ८७ ॥

[अथौजः क्षयस्य निदान माह]

औजः संक्षीयते कोपा चिन्ता शोक श्रमादिभिः ॥ सू-
क्ष्म तीक्ष्णोष्ण कटुकैः कर्षणै रपरे रपि ॥ ८८ ॥

[अथ क्षीणौजसो लक्षण माह]

विभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं चिन्तयेद्यस्थितेन्द्रियः ॥

अभ्युत्था योन्मना रूक्षः क्षामः स्यादौजसः क्षये ॥

॥ ८९ ॥ पुरीषस्य क्षये पार्श्वे हृदये च व्यथा भवेत् ॥

स शब्दस्या निलस्योर्ध्वं गमनं कुक्षि संवृतिः ॥ ९० ॥

[उदर सङ्कोचः] सूत्र क्षयेऽल्प सूत्रत्वं वस्तौ तोदश्च जा-
यते ॥ स्वेद नाशो त्वचो रौल्यञ्च क्षुषो रपि रूक्षता ॥

॥ ९१ ॥ स्तब्धाश्च रोम कृपाः स्यु लिङ्गं स्वेद क्षये भवेत् ॥

॥ ९२ ॥ स्तब्धाश्च रोम कृपाः स्यु लिङ्गं स्वेद क्षये भवेत् ॥

॥ आर्तवस्य स्वकाले चा भावस्तस्याल्पता यथा ॥ ९३ ॥

भा० अनन्तर औज क्षय निदान कहते हैं । क्रोपसे और श्रम शोक आदिसे ॥ तथा

सूक्ष्म तीक्ष्ण कटुक और कर्षणों से भी औज क्षीण होता है ॥ ८८ ॥

अनन्तर क्षीण औज का लक्षण कहते हैं ॥ इतरा है दुर्बल सर्वदा चिन्तन करता
है ॥ पीड़ित इन्द्रिय उदने के वास्ते चंचल चित्त रूक्ष काष्ठ औज क्षयमें होता है ॥

॥ ८९ ॥ [मल क्षयमें पसली और हृदय में पीड़ा होती है । शब्द के स-
हित वात का कपर होना उदर का संकोच ॥ ९० ॥ सूत्र क्षयमें अन्य पत्र पेट में

चुगन होती है ॥ पसीने के क्षयमें त्वचामें रूक्षता नेत्रों में भी रूक्षता ॥ ९१ ॥ स्तब्ध

रोम कृप येन लक्षण स्वेद क्षयमें होना है ॥ आर्तव क्षय में आर्तव के काल में अ-

भाव अथवा उल्कीकमी ॥ ९२ ॥

जायते वेदना योनौ लिङ्गं स्यादार्त वक्षये ॥ अभावः

स्वल्पना वास्यात स्वप्नस्य भवनस्तथा ॥ ९३ ॥ स्तब्धौ

पथेऽपि चेतश्चक्षुषां सत्य संक्षये ॥ अनुव्रतो भवेत्

कुक्षि गर्भस्या स्पन्दन न्तथा ॥ ६४ ॥ इति गर्भक्षये प्रा
 शै लक्षणां समुदाहृतम् ॥

[अथ क्षीरणानां धातुदोष मलानां वर्द्धन माह]
 तत्तत् संबर्द्ध नाहार विहारति निषेवणात् ॥ तत्तत्
 प्राप्य नरः शीघ्रं तत्तत् क्षयमपोहति ॥ ६५ ॥ ओ
 जस्तु वर्द्धते नृणां सुस्निग्धैः स्वादुभिस्तथा ॥ वृष्ये
 रन्ये विशेषानु क्षीरमांस रसादिभिः ॥ ६६ ॥

[अन्यच्च] दोषधातु मलक्षीणो बलक्षीरोऽपि मानवः।
 तत्तत् संबर्द्धनं यत्तदन्नपानं प्रकाङ्क्षति ॥ ६७ ॥ यद्य
 दाहारं जातन्तु क्षीणः प्रार्थयते नरः ॥ तस्य तस्य
 सुलाभेन तत्तत् क्षयमपोहति ॥ ६८ ॥

[तत्र केन क्षीणः किङ्काङ्क्षतीत्य काङ्क्षाया माह]

भा० ० योनि में पीड़ा येह लक्षण होते हैं । कुम्भकान होना अथवा थोड़ा होना
 ॥ ६९ ॥ स्नान कुचा येह लक्षण कुम्भ क्षयमें होता है ॥ मटका पेट गर्भका न
 होना ॥ ६७ ॥ इस प्रकार बुद्धिमानों ने गर्भक्षय लक्षण कहा है ॥

अनन्तर क्षीण धातु दोष मल इनका बह ना कहने हैं ॥ उन २ को बढ़ाने वा
 ले आहार विहार इनके वर्द्धन सेवन से ॥ मनुष्य उन २ को पाकर उन २ क्षय
 को खोता है ॥ ६५ ॥ मनुष्य का ओजस्निग्ध मधुर ॥ वृष्य और विशेष करके
 दूध मांस रस आदियों से बढ़ता है ॥ ६६ ॥ ओर १ । दोष धातु मल क्षीण
 या बलक्षीण मनुष्य ॥ उन २ को बढ़ाने वाले अन्नपान को चाहता है ॥ ६७ ॥
 क्षीण मनुष्य जो २ हार चाहता है । उस २ को मिलान में पीछे रखन पट होता है ॥
 ६८ ॥ ३ [जैसे किसी क्षीण क्या चाहता है इस साक्षात् में कहते हैं।]

कषाय कटु तिक्तानि रुक्ष शीत लघूनि च ॥ यव मुद्ग
प्रियङ्गुश्च वातक्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ ६६ ॥

[पित्तक्षीणः किं काङ्क्षतीत्या काङ्क्षत्या माह]

तिल माष कुलन्त्यादि पिष्टान्न विह्वानि न्तया ॥ यस्तु
शुक्लास्त तक्राणि काञ्चिकञ्च तथा दधि ॥ १०० ॥
कटुम्भ लवणोष्णानि तीक्ष्णं क्रोधं विदाहि च ॥
समयं देश मुष्णञ्च पित्त क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ १०१ ॥
मधुरं स्निग्ध शीतानि लवणान्त गुरूणि च ॥ दधि
क्षीरं दिवा स्वप्नं कफ क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ १०२ ॥
रसक्षीणो नरः काङ्क्षत्यम्भोऽति शिशिरं मुद्गः ॥
रात्रि निद्रां हिमं चन्द्रं भीक्षुञ्च मधुरं रसम् ॥ १०३ ॥
इत्तु मांस रसं मन्थं मधु सर्पि गुडोदकम् ॥ द्राक्षा
दाडिम शुक्रानि सस्नेह लवणानि च ॥ १०४ ॥

भा० कषाय कटु तिक्त रुक्ष शीतल हलका ॥ जव मूंग केंगनी इनकी
वात क्षीण चाहता है ॥ ६६ ॥ पित्त क्षीण क्या चाहता है । इत आकांक्षा
में कहते हैं ॥ तिल उड़द कुलथी बड़े आदि । बहीका पानी सिरका खटाई
मठा कांजी तथा दही ॥ १०० ॥ कटु लवण अम्ल उष्ण तीक्ष्ण क्रोध विदाही
॥ समदेरा उष्ण इनकी पित्त क्षीण चाहता है ॥ १०१ ॥ मधुर स्निग्ध शीत लव
ण अम्ल भारी ॥ दूध दही दिनका सोना इनकी कफ क्षीण चाहता है ॥ १०२ ॥
रस क्षीण मनुष्य बहुत शीतल जल चार बार चाहता है ॥ रात्रि निद्रा शीतल
चन्द्र भोजनको मधुर रस ॥ १०३ ॥ ईस मांस रस मन्थ मधु घृत शर्बत ॥ दाग
अतार शुक्र स्नेह लवण सहित ॥ १०४ ॥

रक्त सिद्धानि मांसानि रक्त क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥

अन्नानि दधि सिद्धानि षाड्वांश्च बहूनपि ॥ १०५ ॥
 स्थूल कृव्यादमांसानि मांसक्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥
 षाड्वा मधुरास्त्रादि रस संयोग पाचिताः गुडव प्र
 भृतयः ॥ मेदः सिद्धानि मांसानि ग्रास्यानूपौदका
 निञ्च सत्ताराणि विशेषेण मेदः क्षीणोऽभि का
 ङ्क्षति ॥ १०७ ॥ अस्थि क्षीणस्तथा मांसं मज्जास्थि
 स्नेह संयुतम् ॥ स्वाद्वन्म संयुतं द्रव्यं मज्जा क्षीणो
 ऽभि काङ्क्षति ॥ १०८ ॥ शिखिनः कुक्ष्यस्याण्डं हं
 ससारस योस्तथा ॥ ग्रास्यानू पौदकानाञ्च शुक्र
 क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ १०९ ॥ यवान्नं यवकान्च
 शाकानि विविधानि च ॥ मसूर माष यूषञ्च मल
 क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ ११० ॥

भा० रक्त सिद्ध मांस रक्त क्षीण चाहता है ॥ दधि सिद्ध अन्न बहूनसे खाडव
 ॥ १०५ ॥ स्थूल कृव्याद मांस मांस क्षीण चाहता है ॥ षाडव मधुर अन्न
 आदि रस के संयोग से पकावे ॥ १०६ ॥ मेद सिद्ध मांस ग्रास्य आनूप औदक
 ॥ क्षारके सहित विशेष करके मेद क्षीण चाहता है ॥ १०७ ॥ अस्थि क्षीण वे
 से ही मांस मज्जा अस्थिसे युक्त ॥ मधुर अन्न युक्त द्रव्य मज्जा क्षीण चाहता है
 ॥ १०८ ॥ मोर-मुगों के अण्डे और हंस सारस के भी ॥ ग्रास्य आनूप औदक
 इनको शुक्र क्षीण चाहता है ॥ १०९ ॥ जव छोटे जव अनेक प्रकार के शाक ॥
 मसूर उड़द इनका जूस इनको मलक्षीण चाहता है ॥ ११० ॥

पेयमिहुरसं क्षीरं सगुडम्बदण्डकम् ॥ मूत्र क्षी
 णोऽभि लपति त्वप्तुसै वारुकाणि च ॥ १११ ॥ अस्थि
 क्षीं हर्तने मद्यं निवान शयनाग्ने ॥ गुरु प्रावरणं

चैव स्वेद क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ ११२ ॥ कट्वस्त्रलव
 णोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ फल शाका
 नि पानानि स्त्री काङ्क्षन्त्या त्विदये ॥ ११३ ॥ सुरा
 शाल्यन्न मांसानि गोक्षीरं शर्करान्तथा ॥ आसवं
 दधि हृद्यानि सन्ध्यक्षीणोऽभि वाञ्छति ॥ ११४ ॥
 मृगाजा विवहोरोणां गर्भान्वाञ्छति संस्कृतान् ॥
 वसा शूल्य प्रकारदीन् भोक्तुं गर्भ परिदये ॥ ११५ ॥

भा० पेय ईसरस गुड़के सहित बदरीरक ॥ और खीर ककड़ी घृतको चाह
 ताहै ॥ १११ ॥ अभ्यङ्ग उवटना मद्य निवात में शयन आसन ॥ भारी कपड़ेका
 ओढ़ना स्वेदक्षीण चाहताहै ॥ ११२ ॥ क्रुद्र अम्ल लवण उष्ण विदाही भारी ॥
 फल शाक पान इनको स्त्री आर्तव क्षय चाहतीहै ॥ ११३ ॥ मदिरा चावल मांस
 गायका दूध शर्करा ॥ आसव दही हृद्य इनको दुग्ध क्षीण वाली चाहतीहै ॥
 ११४ ॥ गर्भ क्षयमें नृग बकरी भेड़ सूवर इन घनायेहु वे गर्भों की चाहतीहै ॥
 और चरबी कबाब आदिक खानेकी चाहतीहै ॥ ११५ ॥

[अथ बललक्षणमाह सुश्रुतमते]

रसादि शुक्र पर्य्यन्तं पुष्ट धातु निमित्तकम् ॥ चेष्टा

सु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते ॥ ११६ ॥

[अथ बलस्य क्षय निदानमाह] अभिघाताद्भयात् क्रो
 धा चिन्तया च परिश्रमात् ॥ धातूनां सङ्ख्याच्छे
 का इव बलं संक्षीयते नृणाम् ॥ ११७ ॥

[अथ बलक्षयस्य लक्षणम्] गौरवं स्तब्धता गात्रे मुख
 स्नानि विवर्णता ॥ तन्द्रा निद्रा वान शोथो बल व्या
 पत्ति लक्षणम् ॥ ११८ ॥

सुखीयन

ज्ञानवत्तानः शय भवानी पर शास्त्र
गिरधर लाल बाके देहली
सत्तार दीवे कल्लो

माधव निदान सदी का पा दंदरू •	१७	शास्त्र धर हाणा ललनक	१७
माधव निदान सदी का पा देहली	१७	निवंद भाया का • नेरुव भागस	१७
बाग मव मूल हापा कल्काता	५	माधव निदान मूल	५
बाक मूल हापा कल्काता	१७	अमर विनोद	१७
सुधुत मूल हापा कल्काता	५	अमृत सागर हापा मेरु भागस	१७
रसि विना मणि सत्तार कर हा	५	योग दिना मणि ख • नेरु भागस	१७
पा कल्काता ॥		• चिकित्सा धातु सर भाया	५
वीर सिंघा वलो का	१७	औषध सार भाया	१७
अमृत सागर हापा दंदरू	१७	हृदय	३
योग दिना मणि हापा वीर	१७	शक वली काल कोष	३
चिकित्सा हापा कल्काता	१७	वाल चिकित्सा	३
वैद्य कल्प द्रुम	५	वैद्य कसार	५
मौलि राज	१७	वैद्य रत्न	५
इष्टकें औरी का होके हा रही है		जीमन	
बाग सदी		पेगली १७ • ना वाद १७ •	
अमर कोर दोहा चौकई में	१७	का ३ कपडे	
औरी कोरी			
सुधुत बाक			
मिाले भाषा देव बादि का			